



वीर कवि विरचित

# जंबूसामिचरित

[ विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना, अनुवाद तथा परिशिष्टों सहित ]

सम्पादक

डॉ० विमलप्रकाश जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

रीडर, संस्कृत, पालि-प्राकृत विभाग

जवलपुर विश्वविद्यालय, जवलपुर



## भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रथम संस्करण— वीर नि० सं० २४९४, वि० सं० १०२५, सन् १९६८

मूल्य पन्द्रह रुपये,

---

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्पुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा  
संस्थापित

## भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें  
उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक  
जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव  
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन मण्डारोंकी  
सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-  
ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी  
इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०  
डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर वार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय केन्द्र : ३६२०१२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

---

स्मापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० • विक्रम सं० २००० • १८ फरवरी सन् १९४४

सर्वाधिकार सुरक्षित

भारतीय ज्ञानपीठ



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहू शान्तिप्रसाद जैन





[ Thesis approved for the Ph. D. Degree of the University of Jabalpur. ]

# JAMBŪSĀMICARIU

*of*

## VĪRAKAVI

[ Critically Edited with Hindi Introduction, Translation, Appendices etc. ]

*Edited by*

**Dr. Vimal Prakash Jain, M. A., Ph. D.**

Reader in the Deptt. of Sanskrit, Pali &

Prakrit, University of Jabalpur

JABALPUR



**BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION**

---

First Edition— VĪRA SAMVAT 2494, V. S. 2025, 1968 A.D.  
Price Rs. 15/-

---

**BHĀRĀTĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ**

**JAINA GRANTHAMĀLĀ**

FOUNDED BY

**SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN**

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

**SHRĪ MŪRTIDEVĪ**

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL,  
PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS  
AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṂSA, HINDI,  
KANNAD, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED  
IN THERE RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR  
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES  
AND  
CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS, INSCRIPTIONS,  
STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR  
JAIN LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

General Editors

Dr Hiralal Jain, M A., D Litt

Dr A N Upadhye, M. A., D. Litt.

Bharatiya Jnanpitha

Head office . 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.

Publication office : Durgakund Road, Varanasi-5.

Sales office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

---

Founded on Phalgunā Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000. 18th Febr. 1944

All Rights Reserved

## प्रधान सम्पादकीय

जम्बूस्वामी जैन या श्रमण संघके एक विनोद पूज्य व्यक्ति हैं। वे महावीरके साक्षात् शिष्य सुवर्म द्वारा संघमें दीक्षित किये गये थे, अन्तिम केवली थे और उनका ४६३ ई० पू० में निर्वाण हुआ। आगम ज्ञानकी परम्परामें जम्बूस्वामीका योगदान स्मरणीय है। धर्ममागधी आगमके अनुसार सुवर्मस्वामीने जम्बू-को अंग ग्रन्थोका उपदेश दिया और जम्बूस्वामीचे अपने शिष्योंको। यद्यपि वे ऐतिहासिक व्यक्ति थे, फिर भी उनके जीवनके विषयमें समकालीन या आगम श्रोतासे हमें बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। तथापि उनके सम्बन्धकी बहुत कुछ बातें हमें अन्य स्तरोके परवर्ती जैन साहित्यसे उपलब्ध होती हैं। उनके जीवनकी मौलिक घटनाएँ अश्वघोष रचित 'सौंदर्यनन्द' काव्यमें चित्रित नन्दके चरित्रके समानान्तर प्रतीत होती हैं। कालान्तरमें जम्बूस्वामीको यह परम्परागत जीवनी विविध स्रोतोंसे प्राप्त अनेक उपास्यानोंसे जुड़ गयी और समृद्ध हुई। जैन लेखकोंमें जम्बूस्वामीका जीवन इतना लोकप्रिय और प्रेरक सिद्ध हुआ कि विभिन्न भाषाओंमें लगभग ९५ रचनाएँ इस विषयको लेकर रची गयी हैं।

प्रस्तुत संस्करणमें महाकवि वीर-द्वारा रचित 'जंबूसामिचरित' नामक अपभ्रंश ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके रचयिता विनोद ज्ञानी हैं। उन्होंने कालिदास, पुष्पदंत आदि पूर्व कवियोंके साहित्यिक गुण परम्परासे प्राप्त किये हैं तथा उनके काव्यने नयनन्दी, रङ्गू, राजमल्ल आदि परवर्ती कवियोंको प्रभावित किया है। उनकी रचनाओंमें प्रस्तुत काव्यसे समानता रखनेवाले अनेक खंड सरलतासे खोजे जा सकते हैं। वीर कविने अपने जीवन सम्बन्धी अनेक बातें कही हैं। उनका जीवन-काल विक्रम संवत् १०१०-१०८५ तक पाया जाता है। उन्होंने १०७६ वि० सं० अर्थात् १०१९ ई० में जंबूसामिचरितको पूर्ण किया।

डॉ० विमलप्रकाश जैनने प्रस्तुत संस्करणमें अपभ्रंश काव्य जंबूसामिचरितका सम्पादन पाँच हस्त-लिखित प्रतियोंके आधारसे किया है जिनमें सबसे प्राचीन प्रति वि० सं० १५१६ की है। उन्होंने उन सभी प्राचीन प्रतियोंके पाठान्तर संक्षिप्त रूपसे अंकित किये हैं। अपभ्रंश पाठके नीचे हिन्दी अनुवाद है जो मूला-नुगामी होते हुए भी ऐसी धारावाही शैलीसे प्रस्तुत किया गया है कि वह स्वतन्त्ररूपसे भी पढ़ा जा सकता है। उक्त प्राचीन प्रतियोंमें-से तीनमें संस्कृत टिप्पणी पायी जाती है जिसे सावधानीपूर्वक सम्पादित कर अन्तमें जोड़ दिया गया है। शब्दकोशमें वर्णानुक्रमसे अपभ्रंश शब्दोंकी सूची, उनके संस्कृत रूपों तथा सन्दर्भों सहित संकलित की गयी है। अन्तमें ग्रन्थमें आये भौगोलिक नामोंकी एक सूची है जिनका आवश्यक स्पष्टीकरण और उचित सन्दर्भ दिया गया है।

डॉ० वि० प्र० जैनकी प्रस्तावना ग्रन्थका एक सर्वांग सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत करती है। सम्भवतः यह अपने ढंगका प्रथम सर्वांगपूर्ण प्रयास है, जिसमें जम्बूस्वामीके जीवनका सभी दृष्टियोंसे अध्ययन किया गया है। उन्होंने उसके महाकाव्यात्मक लक्षणों, विषय-वस्तुसे सम्बद्ध विभिन्न चरित्रों, विषयके आस्थान्तर-वर्ती उपास्यानों, काव्यरसों तथा अलंकारों एवं कवि-द्वारा प्रयुक्त छन्दोंका अध्ययन किया है। प्रस्तावनाके एक भागमें काव्यकी शैलीका ग्रन्थके सन्दर्भों सहित मूल्यांकन किया गया है। वीर कवि-द्वारा प्रयुक्त अपभ्रंश-भाषाका उसकी ध्वनियों, संज्ञारूपों और क्रियारूपों आदिका विस्तारसे विवरण दिया गया है। वीर कवि कृत इस जंबूसामिचरितके आधारसे जम्बूस्वामीके जीवनके आलोचनात्मक अध्ययन-द्वारा लेखकने जलपुर विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी०की उपाधि अर्जित की है जो उचित ही है।



## General Editorial

Jambūsvāmin is an important dignitary of the Jaina or Śramaṇa Saṃgha. He was initiated into the order by Sudharman, the immediate pupil of Mahāvīra. He passed away as the last Kevalin in c. B. C. 463. In the inheritance of scriptural knowledge Jambūsvāmin has played a memorable role. As presented in the Ardhamaṅgadī canon, the Aṅga texts are addressed by Sudharman to Jambū who, then, imparted the same to his pupils. Though he was a historical person, we know very little about his biography from contemporary or even canonical sources. A good deal of information about him, however, is available in different strata of later Jaina literature. The basic details of his biography appear to have been parallel with those of Nanda's life as depicted in the Saundarananda, a poem by Aśvaghoṣa. With the passage of time, this traditional biography of Jambūsvāmin got interlinked with and enriched by a large number of sub-stories in different sources. With the Jaina authors the life of Jambūsvāmin has proved to be so popular and inspiring that some 95 works in different languages have been written on this theme. In the present edition is presented the Apabhraṃśa work, Jambūśāmicarīu composed by Vīra. The author is a man of learning. He has inherited the influence of earlier poets like Kālidāsa, Puṣpadanta etc ; and his poem has left as well its influence on later authors like Nayanandī, Raidhū, Rājamalla and others. A number of parallel passages in their works are easily traceable. The author Vīra gives plenty of autobiographical details. He is assigned to a period Vikrama Samvat 1010-1085. He completed the Jambūśāmicarīu in V. S. 1076, i. e., A. D. 1019.

Dr. V. P. Jam has carefully edited in this volume the Apabhraṃśa text of Jambūśāmicarīu based on five mss. (the earliest of the V. S. 1516) and noting their various readings in a concise manner. The text is accompanied below by a Hindi translation which is close to its contents and is so fluently presented that it can be read by itself. The Sanskrit gloss on this text available in three Mss. is carefully edited and presented at the end. The Śabdakoṣa gives an alphabetical register of Apabhraṃśa words with their Sanskrit equivalents and references to the text. At the end there is a list of Geographical names found in this work with necessary explanation and suitable references.

Dr. V. P. Jam's introduction is a thorough piece of study. Perhaps here is an exhaustive attempt, first of its kind, to study the biography of Jambūsvāmin in all its aspects. The editor has critically evaluated the Jambūśāmicarīu as a Kāvya. He has studied its characteristics as a Mahākāvya, the different characters involved in its plot, the sub-stories intervening the theme, poetical sentiments and embellishments permeating the presentation and the metrical forms employed by the author. A special section is devoted to the stylistic estimate of the poem with necessary references to the context. The Apabhraṃśa dialect used by Vīra is described in

details with regard to its phonology, declensions and verbal forms etc. This critical study of the Life of Jambhūvāmin on the basis of Jambhūvāminīcarit of Vira has justly earned the Ph. D. degree of the University of Jabalpur for its author.

The General Editors of the Mārtandey Granthamālā are thankful to Dr. V. P. Jain for giving us his valuable edition of the Jambhūvāminīcarit, in Apabhraṃśa, composed by Vira for being included in this Series. Not only he brings to light an unpublished Apabhraṃśa work but has also presented here a helpful Hindi translation and a critical and exhaustive study of all the details about the author and his works in his learned Introduction. Publication of such Apabhraṃśa works is indeed a forward step in the progress of studies of Apabhraṃśa language and literature the understanding of which is quite essential to work out the growth of New Indo-Aryan.

We record our sense of gratitude to Smt. Ramul vi Jain and to Shri Sahu Shantiprasadji Jain through whom manifestation such rare works of Indian literature are being brought to light in the Mārtandey Granthamālā in a sumptuous form. Our thanks are due to Shri L. C. Jain, the Secretary, who is very enthusiastic in pushing the publication of such works. Dr. G. K. Acharya Jain deserves our thanks. He helped us in various ways by his presence in Banaras where this work was printed.

A. N. Upadhye  
H. L. Jain

## प्राक्कथन

वीर कवि द्वारा रचित 'जंबूसामिचरित' विक्रमको ११वो शतीका एक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश चरित महाकाव्य है। इसका परिचय सर्वप्रथम पं० परमानन्दजीने अनेकान्तमें प्रकाशित किया था। लगभग सात वर्ष पूर्व पूज्य डा० होरालाल जैनने इस ग्रंथके संपादनकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। उसी समय कारंजा जैन शास्त्रभंडारकी एक हस्तलिखित प्रति (क) तथा आमेर जैन शास्त्र भंडारकी हस्तलिखित प्रतिकी फोटो प्रति (ख) ये दो प्रतियाँ भी मुझे उनमे उपलब्ध हुईं। इन दो प्रतियोंके आधारपर संपादन कार्य प्रारंभ करनेके बाद 'जंबूसामिचरित'की तीन ओर प्रतियाँ (ग घ ङ) उपलब्ध हुईं। इनमें सबसे अधिक प्राचीन प्रति (ख) वि० सं० १५१६ की है। इन सब प्रतियोंका पूर्ण विवरण आगे 'संपादनपरिचय'में दिया गया है।

हस्तलिखित प्रतियोंकी खोजके प्रयासोंमें 'जंबूसामिचरित'की एक संस्कृत पंजिका (पं) भी उपलब्ध हुई, जो संक्षिप्त होनेपर भी महत्त्वपूर्ण है। अतः उस पंजिकाकी अन्य प्रतियों (ख एवं ग) में उपलब्ध टिप्पणोंके साथ संपादन करके प्रस्तुत ग्रंथके अंतमें दे दिया गया है। काव्यके मूलपाठ चयन एवं हिंदी अनुवाद, दोनोंमें इन संस्कृत टिप्पणोंसे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है।

मूल अपभ्रंश प्रतियोंकी खोजके ही सिलसिलेमें जंबूस्वामीकथासे संबंधित शताधिक ऐसी रचनाओंकी जानकारी प्राप्त हुई जो विविध भारतीय भाषाओंमें भिन्न-भिन्न प्रदेशों व कालोंमें रची गयीं। उनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करणमें वीर कवि कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरित'को मूलानुगामी हिंदी अनुवादके साथ सुसंपादित रूपमें सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। समालोचनात्मक संपादनकी परंपराके अनुसार इस महाकाव्यके प्रत्येक पहलुका विशेष अध्ययन करके उसके निष्कर्ष प्रस्तावनामें दिये गये हैं। ग्रंथका विशद शब्द-कोष भी प्रबंधके अंतमें दिया गया है।

जंबूस्वामीके जीवनचरितके संबंधमें आगमिक साहित्यसे लेकर संपूर्ण प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत जैन साहित्यमें जो कुछ भी सामग्री उपलब्ध है, उसका सूक्ष्मतासे अध्ययन कर प्रस्तावनामें जंबूस्वामीके जीवनचरितपर यथासंभव पूर्ण विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। 'जंबूसामिचरित' महाकाव्यके परिप्रेक्ष्यमें इस संपूर्ण सामग्रीके अध्ययनसे यह प्रमाणित होता है कि जंबूस्वामी जैन श्रमण-परंपरामें एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, जिन्होंने ई० पू० ५२७ में भगवान् महावीरके तीर्थमें उनके साक्षात् शिष्य आचार्य सुषमसे जिन-दीक्षा स्वीकार की थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं कठोर तपःसाधनाके कारण वे जैन श्रमण सघके न केवल प्रधानाचार्य ही बने, बल्कि उन्होंने श्रमण-साधनाकी परंपरा और पुरातन आगमिक साहित्यिक संपत्तिकी सुरक्षित रखने, उसका प्रचार-प्रसार करने तथा चिरस्थायी बनानेमें भी अपना अभूतपूर्व एवं अद्वितीय योगदान दिया। प्रश्नोंके माध्यमसे जंबूस्वामीने सुषमाचार्यसे सारे आगमोंकी सुनकर धारण किया, और जंबूस्वामीसे वह सारा ज्ञान उनकी शिष्य-संततिकी प्राप्त हुआ और उनके द्वारा आगेकी संतियोंकी। इन प्रकार गुरु-शिष्य परंपराके द्वारा आगम साहित्यकी स्थायी सुरक्षा तथा प्रचार-प्रसार, ये दोनों ही कार्य सिद्ध हुए।

आगमिक साहित्यमें जंबूस्वामीके जीवनचरितके विषयमें उपलब्ध सामग्री अत्यल्प है। बादेके जंबूस्वामीकथा एवं चरित साहित्यसे उनके जीवनपर कुछ विशेष प्रकाश पड़ता है। परंतु अबसे ढाई हजार वर्ष पूर्व होनेवाले इस महापुरुषके वास्तविक जीवनचरितकी सामग्री, इस कथाके परंपरागत होनेपर भी,



कथा-अंतर्कथाओंके ताने-बानेमें दुःखद आश्चर्यकारक रूपसे ऐसी खो गयी या छूट गयी है कि इनके जीवनचरितके सूत्र ऐतिहासिक संदर्भोंके साथ पूर्ण-रूपसे जोड़ पाना आज संभव नहीं है। तथापि अद्यावधि प्राप्त समस्त ऐतिहासिक साहित्यिक सामग्रीके आधारसे उनके जीवनकी प्रमुख घटनाओं जन्म, दीक्षा, केवल-ज्ञानोपलब्धि, जैन श्रमगमनका कुरुपरित्व (आचार्यत्व) एवं मोक्षप्राप्तिको ऐतिहासिक तिथियोंके साथ जोड़ा गया है।

- ऐतिहासिक जीवनचरितकी दृष्टिसे जंबूस्वामीका चरित जितने महत्त्वका है, साहित्यिक कथानायककी दृष्टिसे भी किमी भी प्रकार उससे कम महत्त्वका नहीं है। कामदेव सदृश सौंदर्य, कुबेर सरीखा वैभवविलास, बृहस्पतिके समान अलौकिक प्रतिभा एवं ऐंद्रियिक भोगविलासकी वासनाके दुर्निवार-दुर्दम्य जनक तथा प्रेरक अविद्याता उद्दाम यौवनकालमें कामदेवकी रतिके समान अनुपम सुंदरी एकाधिक कन्याओंसे विवाह, इन सारे स्वर्गोपम सुखसाधनोंको खात मारकर, महावीर और बुद्धके समान मुनि जीवन अंगीकार करके जीवनके क्लृप्तलक्ष्य—परिपूर्णबोध अर्थात् केवलज्ञान और मोक्षको प्राप्त करना, इन सारे तत्त्वोंने पाँचवी-छठी शती ई०से लगाकर अद्यावधि चत.पंद्रह वीं वर्षोंमें प्रत्येक शतीमें और देशके लगभग प्रत्येक राज्यमें जैन साहित्यकारोंको बलात् अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही कारण है कि प्राचीन प्राकृत साहित्यसे लेकर संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती और हिंदी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओंमें जंबूस्वामी चरितकी एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है, जो बसुदेव-हंडी(प्राकृत)के रचयिता संघदास गणि (पाँचवी-छठी शती ई०)से लगाकर बीसवीं शतीतक अविच्छिन्न रूपसे चली आयी है।

- आभार—इस ग्रन्थको तैयार करनेमें हस्तलिखित प्रतियोंको उपलब्ध करानेसे लेकर प्रस्तुत रूप देने तकमें जिन पूज्य गुरुजनों, विद्वानों, श्रीमानों तथा मित्रोंका सहयोग प्राप्त हुआ है उनके सूची बहुत बड़ी है, और उन सबके प्रति नामोल्लेखपूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करना यहाँ संभव नहीं है, तथापि कुछ अवश्य उल्लेखनीय व्यक्ति और सत्याएँ हैं—पूज्य डॉ० हीरालाल जैन, जिन्होंने प्रस्तुत काव्यकी प्रतियाँ प्रदान करते हुए मुझे इसके संग्रहण करनेकी प्रेरणा दी और तिनसे मैंने आलोचनात्मक अध्ययन तथा संपादनकी पद्धति सीखी और निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त किया, जैन शोधसंस्थान, अहावीर भवन जयपुरके डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल तथा जैन महाविद्यालय जयपुरके प्राचार्य पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, जिनकी कृपासे मुझे जयपुरके मंडारोकी तीन प्रतियाँ, पंजिका, फोटो प्रतिका मूल प्रति एवं ब्रह्म-जिनदासकृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्रकी प्रतियाँ उपलब्ध हुईं; लालभाई दलपतभाई शोधसंस्थान, अहमदाबादके निदेशक पं० दलसुख भाई मालवगिया, जिनके सहयोगसे मुझे उस संस्थानसे भिन्न-भिन्न जंबूस्वामीचरितोंकी सत्रह हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं; प्राच्य शोध संस्थान बड़ौदाके संचालक डॉ० भोगीलाल साडेवरा, एवं भंडारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूनाके मैनुस्क्रिप्ट्स विभागके अध्यक्ष डॉ० ए० डी० पुंमालकर, जिनसे मुझे जंबूस्वामी-अध्ययन नामक रचनाकी भिन्न-भिन्न कई प्रतियाँ तथा मानसिंह कृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्र उपलब्ध हुए, प्राकृत, जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (विहार)के निदेशक डॉ० नथमल टाटिया, पार्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसीके निदेशक डॉ० मोहनलाल मेहता तथा स्याद्वाद-महाविद्यालय वाराणसीके प्राचार्य पू० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जिनके कृपापूर्ण सहयोगके कारण मुझे इन संस्थाओंसे सहायक ग्रंथ उपलब्ध हुए तथा डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री आरा, जिन्होंने समय-समयपर मेरा मार्गदर्शन किया और मेरी समस्याओंको सुलझाया, इन सबका हृदयसे आभारी हूँ।

- भारतीय ज्ञानपीठके मंत्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके प्रधान संपादक डॉ० आ० ने० उपाध्येका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इसे भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित करनेकी स्वीकृति प्रदान की। भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसीके व्यवस्थापक डॉ० योगेशचन्द्र जैन, उनके अन्य सहयोगी तथा श्री पोल्हावनजीका भी आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रंथके यथाशोध, सुंदर और शुद्ध मुद्रणमें आद्योपात् अत्यंत आत्मीयतासे बहुत अधिक सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इस प्रसंगमें तारा-प्रकाशन,

वाराणसीके प्रबंध-संचालक श्री रमाशंकरजी पंड्याका स्मरण और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा प्रिय कर्त्तव्य है जिन्होंने मुझे डा० ही० ला० जैन-द्वारा संपादित 'सुदमणचरित' की पूर्ण प्रूफ कॉपी प्रदान की, जिससे मैं जंबूसामिचरित तथा 'सुदंसणचरित' का तुलनात्मक अध्ययन सरलतासे कर सका। इन सबके अतिरिक्त मैं सहायक एवं संदर्भ ग्रंथोंके सभी विद्वान् लेखक-संपादकोंके प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्तमें, मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमलेश, जिन्होंने इस कार्यको पूर्ण करानेमें मेरे साथ अथक परिश्रम किया और अनगिन वृष्ट प्रमन्नतासे सहन किये, उनके प्रति कुछ न कहकर ही सब कुछ कहा जा सकेगा। मेरे अत्यन्त शुभेच्छु एवं परम-स्नेही आत्मीय मित्र और वाघव जो वपेंसि मुझे कार्य पूर्ण करनेकी निरंतर प्रेरणा व उत्साह प्रदान करते रहे, उनकी सद्भायनाओंका ऋण शब्दोंमें व्यक्त कर मैं उद्धृत होना नहीं चाहता।

प्रकाश पर्व १ नवंबर १९६७

- विसलप्रकाश जैन

## विषय-सूची

### प्रस्तावना

१. संपादन परिचय	१-१०	अंतर्कथाओंका महाकाव्यकी दृष्टिसे औचित्य मूल्यांकन	७७
प्रति परिचय	१	कथातत्त्वो एवं कथानकरुद्धियोंका विश्लेषण	७८
संपादनमे सहायक अन्य सामग्री	६	६. जंबूसामिचरिउका काव्यात्मक मूल्यांकन	८०-१०७
प्रति-प्रशस्तियोंकी प्रामाणिकता	८	(क) चरितकाव्यकी दृष्टिसे समीक्षा	८१
पाठ-संपादनकी पद्धति	८	(ख) महाकाव्यात्मकता	८२
२. ग्रंथकार परिचय	१०-१९	(ग) वस्तु-व्यापार-वर्णन	८२
जन्मभूमि, माता-पिता	१९	(घ) शौल-विश्लेषण	८७
लाडवग वंशकी ऐतिहासिकता	११	(ङ) रत्न-भात्र योजना	९२
काव्य-रचना प्रेरक	१२	(च) अलंकार योजना	९७
समय निर्धारण	१३	(छ) विंब-योजना	९९
उल्लिखित पूर्ववर्ती कवि और काव्य	१४	(ज) छंद-योजना	१०१
समकालीन कवि और आचार्य	१५	७ जंबूसामिचरिउकी गुण और रीति-युक्तता	
समकालीन राजा	१६	एवं सुभाषित और लोकोक्तियाँ	१०७-११७
कविकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व	१८	गुण : माधुर्य, ओज, प्रसाद	१०८
३. कथासार, कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन एवं मौलिकता	२०-२६	रचना शैली (रेतियाँ) . बंदर्भी, पाचाली, गोरी, लादी	१०९
४. जंबूस्वामी . एक ऐतिहासिक कथापुरुष, कथाकी दीर्घ परंपरा और मूलस्रोत	२६-४७	सुभाषित एवं लोकोक्तियाँ	११२
आगमिक ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर जंबूस्वामीका जीवनकाल और चरित	२६	कहावर्तोंकी कहानियाँ	११७
जंबूस्वामीचरित कथाकी पूर्व परंपरा :		८ जंबूसामिचरिउका भाषा एवं व्याकरणात्मक विश्लेषण	११७-१२७
वसुदेव-हिंडी, उत्तर पुराण, सम० कहा, घर्मोप० विवरण एवं जंबूचरित्यं	२९	९. वीर तथा अन्य कवि	१२७-१३७
जंबूस्वामिचरितकी कथा-परंपराओंका तुलनात्मक अध्ययन	३७	(क) 'जंबूसामिचरिउ' पर पूर्वकालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवि तथा साहित्यकारोंका प्रभाव : अवधोप, कालिदास, प्रवरसेन, बाण, भवभूति, स्वयंभू, सोमदेव, पुष्पदंत, गुणपाल	१२७-१३३
वीर रचित जंबूसामिचरिउकी विशेषता	३९	(ख) 'जंबूसामिचरिउ' का पश्चात् कालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंपर प्रभाव : नयनंदि, बह्म जिनदास, राजमल्ल और रद्घु	१३३-१३७
जंबूचरितकी कथाका मूलस्रोत : सौन्दर्य-मन्द काव्य	४०	१०. समसामयिक अवस्था	१३८-१४७
जंबूस्वामी विषयक रचना-सूची	४३	भौगोलिक स्थिति	१३८
५. जंबूस्वामी-चरितकी अंतर्कथाएँ	४८-८०	ग्राम और ग्राम्य जीवन	१४०
अंतर्कथाओंका मूलकथानकसे संबंध एवं संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश जंबूस्वामीचरिताम उपलब्ध कथाओंका तुलनात्मक विश्लेषण	४८	नगर और नागरिक जीवन	१४०
जंबूस्वामी चरितोंकी कथासारिणी	७४		

आर्थिक अवस्था	१४१	अन्य सामाजिक प्रथाएँ, दैनिक जीवन, एवं	
सामाजिक स्थिति	१४२	मनोरंजनके साधन	१४४
अन्य जातियाँ एवं आजोविकाके साधन	१४२	शिक्षा और साहित्य	१४५
विवाह संस्था	१४३	धार्मिक स्थिति	१४६
वैवाहिक पद्धति	१४३	सन्दर्भ ग्रन्थ एवं संकेत सूची	१४८
वैवाहिक भोज	१४३		

## मूलपाठ

संघि	विषय	कडवक	संघि	विषय	कडवक
१.	मंगलाचरण		२.	भवदेवका विवाह और ठीक उसी अवसर-	
	महावीर वंदना	१		पर मुनि भवदत्तका घर आगमन	९
	कविका आत्म-निवेदन	२		भवदत्त-भवदेवकी वार्ता	१०
	कविका विनय-प्रदर्शन	३		भवदत्तका भवदेवको धर्मोपदेश	११
	कविका वंश परिचय	४		भवदेवका मुनि भवदत्तके साथ अत्यंत	
	काव्य रचना प्रेरकका वंश परिचय	५		अनिच्छापूर्वक मुनि संघमें जाना, भवदेवकी	
	कवि और काव्य-गुण तथा भगवद्वर्णन	६		अनचाही दीक्षा, निरंतर पत्नीका ध्यान	
	भगवद्वर्णन	७-८		और भोगेच्छासे शिव लौटकर आना १२-१५	
	राजगृह वर्णन	९-१०		भवदेवका अंतर्द्वंद्व और पत्नी ( नागवसु )	
	भगवदराज श्रेणिक	११		से भेंट	१६
	रानियोका सौंदर्य	१२		भवदेव-नागवसुकी वार्ता	१७
	विपुलगिरिपर भ० महावीरके आगमनकी			नागवसु द्वारा भवदेवको बोधक उपदेश	१८
	सूचना	१३		भवदेवको सच्चा बोध और पश्चात्ताप	१९
	भ० महावीरके दर्शनार्थ गमनकी तैयारी	१४		भवदत्त-भवदेवकी कठोर तपस्या और मर-	
	भ० महावीरके दर्शनार्थ गमन	१५		कर स्वर्गगमन	२०
	भ० महावीरका समोशरण	१६	३.	पूर्व विदेहमें पुष्कलावती क्षेत्रका वर्णन	१
	समोशरणमें विराजमान भ० महावीरकी			पुंडरिकिणी नगरीका वर्णन	२
	शोभा	१७		पुंडरिकिणी नगरीमें सागरचंद्रका जन्म और	
	भ० महावीरकी स्तुति	१८		वीताशोक नगरीका वर्णन	३
२.	महावीरका धर्मोपदेश	१-२		वीताशोक नगरीमें शिवकुमारका जन्म	४
	समोशरणमें विद्युन्माली देवका आगमन	३		पुंडरिकिणीमें सागरचंद्रका मुनि होना	५
	विद्युन्माली देवके पूर्वजन्मोंका कथन प्रारंभ	४		वीताशोक नगरीमें मुनि सागरचंद्र ( पूर्व	
	भवदत्त-भवदेवकी कथा, माता-पिताका			जन्ममें भवदत्त ) के दर्शनसे शिवकुमारको	
	स्वर्गवास	५		अपने पूर्वजन्म (भवदेव) का स्मरण	६
	वर्तमान गाँवमें सुधर्म मुनिका आगमन			शिवकुमारको वैराग्य और दीक्षा लेनेकी	
	और धर्मोपदेश	६-७		इच्छा	७-८
	सुधर्मके धर्मोपदेशसे भवदत्तको वैराग्य और			माता-पिताके आग्रहसे शिवकुमारकी घरमें	
	दीक्षा	८		रहते हुए ही तपस्या और संन्यासमरण; ९	

संधि	विषय	कडवक	संधि	विषय	कडवक
३.	सागरचंद्र, शिवकुमारका स्वर्गगमन, विष्णु- न्माली ( शिवकुमार ) देवकी चार देवियाँ और उनका पूर्व-भव १० चार देवियोंका पूर्व-भव—शूरसेन श्रेष्ठिकी चार पत्नियाँ ११ वसंतागमन और नागयक्षके मंदिरकी यात्रा १२ श्रेष्ठि-पत्नियोंकी धर्म-साधना और भ्रकर स्वर्गमें विष्णुन्मालीकी देवियाँ बनना १३ विष्णुचर परिचय १४		४.	तुडकर भागना और नागरिकोंको ब्रास देना २० हाथीका उपद्रव २१ जंबूस्वामी द्वारा हस्ति-विजय २२ ५ श्रेष्ठिकी राजसभा १ राजसभामें विद्याधर गगनगतिका आगमन और विलासवती वृत्तांत २ विलासवतीको बलपूर्वक प्राप्त करनेके लिए विद्याधर रत्नशेखर-द्वारा केरलपुरीकी बेरेबंदी ३ जंबूस्वामी और गगनगतिकी वार्ता, जंबू- स्वामीका गगनगतिके साथ प्रयाण ४-५ श्रेष्ठिक सैन्यकी युद्धार्थ प्रयाणकी तैयारी ६ सैन्य प्रयाण ७ विष्णुपर्वत और विष्णुगर्भकी वर्णन ८ विष्णुवेश वर्णन ९ रेवानदी तथा कुरल पर्वत वर्णन १० श्रेष्ठिक सैन्यका पडाव और जंबूस्वामीका केरल पहुँचना ११ दूतके रूपमें जंबूस्वामीका रत्नशेखर विद्या- धरकी छावनीमें प्रवेश कर उसके सामने पहुँचना १२ जंबूस्वामीका रत्नशेखरको बुरा-भला कहना और रत्नशेखरका रोष १३ जंबूस्वामी-द्वारा किये गये अपमानसे उत्ते- जित विद्याधर योद्धाओं और जंबूस्वामी- के मध्य युद्ध १४ ६. वीर पुरुष ( और वीर कवि ) का सहज परिकर; विद्याधर सैन्यमें विशोभ, केरल राजा भृगाककी अपने अज्ञात सहायक जंबूस्वामी-द्वारा विद्याधर सैन्यसे भया- नक युद्धकी सूचना प्राप्ति और केरल सैन्यका सन्नद्ध होना १-२ सैनिक-पत्नियोंके वीरतापूर्ण सदेश ३ केरल सैन्यका प्रयाण ४ सैन्य प्रयाणसे उड़ी धूलि और परस्पर युद्ध ५ आकाशमें उड़ी धूलि, युद्ध और युद्ध भूमिका दृश्य ६-९	
४.	जंबूस्वामीके माता-पिता और अणादिय यक्ष १ भ० महावीर द्वारा अणादिय यक्षका पूर्व- भवकथन और जंबूस्वामीके अंतिम केवली होनेकी सविष्यवाणी २-३ भगवान्के द्वारा संक्षेपमें जैनपुराण कथनका उल्लेख और श्रेष्ठिक द्वारा भगवान्की स्तुति ४ राजाका नागरिकों सहित नगरको छोड़ना और सातवें दिन अहिरदासकी पत्नीको पाँच स्वप्न माना, और स्वप्नोका फल ५-६ जंबूस्वामीका गर्भावतरण, माँकी गर्भावस्था और शिशुका जन्म ७ जंबूस्वामीका जन्मोत्सव और नामकरण ८ बालक जंबूस्वामीका बढना और गुरुके पास शिक्षा ग्रहण ९ बालकके यशका विस्तार १० जंबूस्वामीके दर्शनसे नागरिकोंकी उत्तेजना ११ सागरक्षतादि श्रेष्ठियोंकी पञ्चमी आदि चार कन्याएँ १२ कन्याओंका सांदर्य और उनका जंबूस्वामी- से वाग्दान १३-१४ श्रेष्ठि घरोंमें विवाहकी तैयारी और वसंता- गमन १५ नागरिकोंका उद्यान क्रोडाहेतु गमन, उप- वनकी योजना १६ नागरिक नियुक्तोंकी उद्यान-क्रोडा प्रेमियोंकी वक्रोक्तियाँ १७ नियुक्तोंकी जन्म-क्रोडा १८ मंठको मारकर राजाके पट्ट हाथीका वंश १९				

संघि	विषय	कडवक	संघि	विषय	कडवक
६.	रत्नशेखर और गगनगति का युद्ध रत्नशेखर-भृगांक साक्षात्कार और परस्पर युद्ध रत्नशेखर-द्वारा माया-युद्धके बलसे भृगांक-को बांधना; जंबू-द्वारा विद्याधर सैन्य संहार	१० ११-१३ १४	८.	जंबूस्वामीका सुषमसि उसे दीक्षा देनेका अनुरोध जंबूस्वामी और माता-पिताकी वार्ता, और उसका दीक्षा लेनेका निश्चय जान माता-पिताकी अवस्था जंबूस्वामी-द्वारा सत्पुत्र लक्षण कहकर माता-पिताको समझाना समाचारवाहकों-द्वारा जंबूके दीक्षा लेनेका निश्चय जानकर सागरदत्तादि श्रेष्ठियों व कन्याओंके अन्य स्वजनोकी दुःखद अवस्था, कन्याओंका जंबूस्वामीसे उनके साथ केवल एक दिनके लिए विवाह करनेका आग्रह ९-१० स्त्रीसुलभ कामचैष्टाओं-द्वारा पद्मश्रीका जंबूस्वामीको वशमें करनेका विश्वास जंबूस्वामी-द्वारा विवाह करनेकी स्वीकृति और विवाह मध्याह्नकालमें वैवाहिक भोज वर-वधुओंका वरगृहको जाना, संख्या, सूर्यास्त एवं रात्रि आगमन रात्रि, चन्द्रोदय एवं ज्योत्स्ना वर्णन वधुओंकी कामचैष्टाएँ	६ ७ ८ ११ १२ १३ १४ १५ १६
७.	कवि और काव्य; युद्ध-भूमिका दृश्य विद्याधर और केरल सैन्यमें क्रमशः जय- पराजयका दृश्य, गगनगति-द्वारा जंबूस्वामी- की स्तुति और भृगांकके बांधे जानेका वृत्तांत कहकर सम्मान रक्षाका निवेदन सच्चा वीर पुरुष; युद्धका वृत्त सुनकर जंबू- स्वामीका रोष केरल सैन्यमें पुनर्युद्धका उत्साह और दोनों सेनाओंका पुन. भिडना महान् शस्त्र-युद्ध; श्रेष्ठ और अधम वृषभ जंबूस्वामी और रत्नशेखरका पुनर्साक्षा- त्कार और परस्पर शस्त्र-युद्धका आह्वान सेनाओंका युद्ध-भूमिसे हटना तथा जंबू- स्वामी और रत्नशेखरमें शस्त्र-युद्ध जंबूस्वामी-द्वारा रत्नशेखरका बांधे जाना; भृगांकको छुड़ाना, गगनगति-द्वारा समस्त वृत्त कथन और विजयोत्साहपूर्वक सबका नगर प्रवेश नगरकी शोभा, जंबूस्वामीका स्वागत, राजकुलमें प्रवेश और रत्नशेखरको क्षमादान भृगांक कन्या विलासवती सहित सबका राजगृहकी ओर प्रस्थान, कुरल पर्वतपर श्रेणिकसे भेंट, श्रेणिकका विलासवतीसे परिणय और राजगृह पहुँचनेपर मंदनवन उद्यानमें सुषमं मुनिके दर्शन कवि और काव्य जंबूस्वामी और सुषमं वार्ता; सुषमं-द्वारा दोनोके पूर्व-भवोंका कथन मगध देशमें संवाहन नगर वर्णन और सुषमंका आत्म परिचय सुषमसि उनका और स्वयंका परिचय आदि जान जंबूस्वामीको वैराग्य	१ २-३ ४ ५ ६ ७ ८-९ १०-११ १२ १२ १३ १ २ ३-४ ४ ५	९.	काव्य परीक्षा ; जंबूस्वामीका अंतर्मुखी चितन पंकजश्री-द्वारा जंबूस्वामीपर व्यंग्य मूर्खहालीका दृष्टांत आमिष छोसी कौवेका दृष्टांत खेचरका दृष्टांत कामातुर गृध्रपति वानरका दृष्टांत संखिणी नामक कबाडीका दृष्टांत भ्रमुरका दृष्टांत, सर्प दृष्टांतके प्रसंगमें वर्षा वर्णन सर्प करकैटा दृष्टांत शृगालका दृष्टांत विद्युच्चरका वेश्यावाटसे चोरी हेतु निर्ग- मन, वेश्यावाटका वर्णन वेश्याओंका जीवन और मिथुनोके सुरत- व्यापार	१ २ ३-४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

संधि	विषय	कडवक	संधि	विषय	कडवक
९.	विद्युच्चरका जंबूस्वामीके घरमें जोरी हेतु प्रवेश, तथा जंबूस्वामी और बधुओंके कथोपकथन सुनकर एवं मौ- की निकल अवस्था देख चित्त-परि- वर्तन और माँसे नार्ता १४-१५		१०.	जंबूस्वामीकी दीक्षा और वस्त्रासूयण परित्याग, २०	
	विद्युच्चरका चौरूपमें आ-मपरिचय तथा जंबूस्वामि मिलकर लगका चित्त-परिवर्तन करनेके प्रयासमें असफल होनेपर स्वयं भी उसके साथ दीक्षा लेनेका निश्चय १६			विद्युच्चर, अरहदास, जिनमती भाता और बधुओंकी प्रव्रज्या; सुवर्माको केवल- ज्ञान और जंबूकी द्वादशविध तपस्या २१	
	भक्तिद्वारा विद्युच्चरको जंबूस्वामीका मामा कहकर उससे मिलाना १७			जंबूस्वामीकी तपस्या, सुधर्माकी मोक्ष, जंबूस्वामीकी कैवल्य, देवी-द्वारा कैवल्योत्सव, और जंबूस्वामीकी मोक्ष प्राप्ति, माता, पिता एवं बधुओंका संन्यासमरण करके स्वर्गगमन २२-२४	
	विद्युच्चरका वेष वर्णन, जंबूस्वामी एवं विद्युच्चरका साक्षात्कार और कुशलवार्ता १८			विद्युच्चर मुनिका संघसहित ठाप्रलक्षित नगरीमें आगमन और मुनि संघपर दैवी उपसर्गकी सूचना २५	
१०.	विद्युच्चरका देश-यात्रा वर्णन १९			मुनि संघपर घोर उत्सर्ग, विद्युच्चर मुनिकी उपसर्ग सहनेकी वृत्ता २६	
	कवि और काव्य, विद्युच्चर-द्वारा जंबू स्वामीकी प्रशंसा और सांसारिक भोगोंको भोगनेकी प्रेरणा १		११.	विद्युच्चर मुनि-द्वारा बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतन : अष्टबानुप्रेक्षा १	
	विद्युच्चरका नास्तिक भोगवाद २-३			अष्टरानुप्रेक्षा २	
	जंबूस्वामीका कार्य-कारणयुक्त आस्तिकवाद ४-५			संसारानुप्रेक्षा ३	
	जंबूस्वामी-द्वारा निजके पूर्वजबोका संक्षिप्त कथन ६			एकत्वानुप्रेक्षा ४	
	उष्ट्र दृष्टांत ७			अन्यत्वानुप्रेक्षा ५	
	असती दृष्टांत ८-१०			अशुचित्वानुप्रेक्षा ६	
	वणिक् और चित्तामणि दृष्टांत ११			आप्तवानुप्रेक्षा ७	
	मील और शृगाल दृष्टांत १२			संवरानुप्रेक्षा ८	
	एक कवाड़ीका दृष्टांत १३			निर्जरानुप्रेक्षा ९	
	बोड नटका दृष्टांत १४			लोकानुप्रेक्षा १०-१२	
	विभ्रमा नामक रात्री और चंगका दृष्टांत १५-१७			बोषिदुर्लभानुप्रेक्षा १३	
	विद्युच्चरको बोध प्राप्ति और अपना वंश परिचय देना, तथा मूर्खोदय १८			धर्मस्वात्स्यावत्त्वानुप्रेक्षा १४	
	जंबूस्वामीका दीक्षार्थ अभिनिष्क्रमणोत्सव और सत्कार १९			विद्युच्चरका समाधिमरण करके सर्वार्थ- सिद्धि स्वर्गप्राप्त १५	
				प्रशस्ति: काव्य रचनाकाल और कविका वंश परिचय आदि	

## संस्कृत टिप्पण और शब्द-कोष

संस्कृत-टिप्पण	पृ० २३५-२८७	अद्य-यन्त्र	पृ० ३९१
अकारादिक्रम शब्द-कोष	पृ० २८८-३९०	बृह-वनस्पति	पृ० ३९२
खाद्य-पदार्थ	पृ० ३९०	व्यक्तिगत-नाम	पृ० ३९३
ध्वन्यात्मक-ध्वज	पृ० ३९१	भौगोलिक-नाम	पृ० ३९६-४०२

## प्रस्तावना

### १. संपादन परिचय

#### प्रति परिचय

वीर कवि विरचित जंयूयामिचरित नामक यह अपभ्रंश महाकाव्य प्रथम बार संपादित होकर प्रकाशमें आ रहा है। इनका संपादन निम्नलिखित पाँच प्राचीन प्रतियोंके पाठोंका पूर्ण मिलान करके किया गया है।

क प्रति कारंजा भंडारसे पू० डा० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है। प्रतिमें कुल १०४ पत्र हैं, जिनमेंसे प्रथम पत्र केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११" × ४ ३/४"; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ अधिकांशतः ९, और किन्हीं विश्ही में १०; अक्षर प्रति-पंक्ति लगभग ३६; हाशिया दोनों पार्श्वोंमें १", ऊपर-नीचे ३/४"। लिखावट सर्वत्र समान नहीं है। कहीं अक्षर बड़े-बड़े लिखे हैं, तो कहीं छोटे-छोटे। लेख सर्वत्र सुंदर है।

प्रतिका प्रारंभ '॥ स्वस्ति ॥ ओं नमो वीतरागाय' से होता है; और ग्यारहवीं सविके अंतमें 'इय जयूयामिचरिण् मिगारवीरं महाकाव्ये महाकहदेवचल' यही तक आकर अगूरी पुष्पिका पर ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे कोई भी प्रशस्ति नहीं है। अतः इस प्रतिके लेखन-कालका अनुमान लगाना कठिन है।

इन प्रतिकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

- (१) यह प्रति अनुस्वार प्रधान है, तथा इसमें निरर्थक अनुस्वारका अत्यधिक प्रयोग हुआ है।
- (२) 'न'के स्थानपर सर्वत्र ण'का प्रयोग हुआ है, केवल दो स्थानोंको छोड़कर (१) कामिनी, (२) अन्य > अन्यु।

(३) अनेक स्थलों पर 'इ'के स्थान पर 'य' श्रुति, और 'य' श्रुति के स्थान पर 'इ'का प्रयोग मिलता है। इ > य जैसे—अवइण्ण > अवयण्ण (अवतीर्ण); छइल्ल छयल्ल—(हि० छैला, विदग्ध-पुरुष); कइवय > कयवय (वतिपय), बइतरिणि-वयतरिणि (वैतरणी), पइवय > पयवय (पतिवत्त) आदि, एवं य > इ जैसे वेयल्ल > वेइल्ल (विचकिल्ल), आयउ > आइउ (आगत) आदि।

(४) कहीं कहीं 'य' श्रुतिके स्थानपर 'व' श्रुतिका भी प्रयोग मिलता है, जैसे जुयल > जुवल (युगल);

(५) क्वचित् 'व'कारके स्थान पर 'म'कारका प्रयोग—ताव > ताम (तावत्), एवंहि > एमहि (इदानीम्)

(६) तृतीया तथा सप्तमी विभक्तियोंमें सर्वत्र 'इ'का प्रयोग—(तृ०) करणि, अब्भांसि, पिपरि; तथा (स०) हियवइ, घरि घरि, आउसि आदि।

ख प्रति—यह पोथी जयपुरके आमेर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध है। प्रतिमें कुल ७६ पत्र हैं, जिनमें ६२वाँ पत्र नहीं है। प्रथम पत्र इस प्रतिमें भी केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११" × ५ ३/४"; पंक्तियाँ प्रति-पृष्ठ (पत्र १ से ७४ तक) १४; और बीच-बीचमें कुछ पत्रोंपर (२०, ३१, ३३) १५;



तथा पत्र ७५ व ७६ पर भोटे-भोटे अक्षरोमे पृष्ठतः ९, ८, ९ व ११ पंक्तियाँ; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३५; हाशिया पावर्षे १ $\frac{३}{४}$ " व १ $\frac{३}{४}$ " तथा ऊपर-नीचे १", १"। लेख असमान, कही अक्षर छोटे छोटे, कही बड़े-बड़े परन्तु सामान्य रूपसे सर्वत्र स्पष्ट, शुद्ध एवं सुन्दर।

रत्न प्रतिकी एक फोटो-कॉपी भी संपादकको पू० डॉ० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है, और संपादन कार्यका आरंभ उसी प्रतिके पाठोके मिलानसे किया गया था। पीछे जयपुर जानेपर उप-युक्त मूल रत्न प्रति उपलब्ध हो सकी। फोटो, कॉपीका आकार है ६ $\frac{१}{२}$ " × ३"; हाशिया पावर्षोंमें ६" व ३" तथा ऊपर नीचे ३", ३"।

इस प्रतिका आरंभ 'श्री नमः सिद्धेभ्यः' से होता है। अतमे वीर कविकी स्वकृत प्रशस्तिके उप-रात 'इति जंबूसामिचरितं समाप्तं' लिखा गया है, और इसके पश्चात् निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है—

मन्ये वयं पुण्यपुरीव आति सा भूमौति प्रकटीषसुव।

प्रोत्तुगतन्मडनचैत्यगेहाः सोपानवद्धयति नाकलोके ॥१॥

पुरस्सराराम-जलन्नकृपा-हर्म्याणि तत्रास्ति रतीव रम्या।

दुर्वति लोकार्चनपुण्यमाजा ददाति दानस्य विशालशाळा ॥२॥

श्री विक्रमावर्कन गते घाताब्दे षडैक-पंचैक (१५१६) सुमार्गशीर्षे।

त्रयोदशीयातिथिसंबंधुदा श्री जम्बूसामीति च पुस्तकोऽयम् ॥

इससे ज्ञात होता है कि यह प्रति संवत् १५१६ मे मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीके दिन भूमौपुर (राजस्थान) नामक अति समृद्ध नगरीमे लिखी गयी, जो अपनी योग्यतामें स्वर्गलोकके समान थी। प्रति लेखक अथवा लिखानेवालेके संबंधमें इससे कोई ज्ञान नहीं होता।

उपलब्ध पाँचों प्रतियोमे यह प्रति सबसे अधिक प्राचीन है। पाठोकी दृष्टिसे भी यह प्रति सबसे शुद्ध है। अतः मुख्य रूपसे इस प्रतिके पाठोको ही मूल ग्रन्थका आधार माना गया है। इस प्रतिकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदि 'न' का नियमित रूपसे सुरक्षित रहना।

(२) मध्यवर्ती असंयुक्त 'न' के स्थानपर 'ण' का सर्वत्र प्रयोग, कुछ अपवादो, जैसे क्षाणानल, निनह, दावानल, मुहियएन आदिको छोड़कर।

(३) मध्यवर्ती संयुक्त 'स' का सुरक्षित रहना, जैसे आसन्न, उत्पन्न, सन्न, सन्नद आदि।

(४) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्य' तथा 'नं' के स्थान-पर अनियमित रूपसे 'स' अथवा 'ण' का प्रयोग, जैसे मन्न-मणह, सेन्न-सेण, निशासिय आदि।

(५) अनेक स्थलो-पर 'इ' के स्थानमें 'य' श्रुतिका तथा कहीं कहीं 'य' श्रुति के स्थानमे 'ड' का प्रयोग इ>य जैसे जइवि>जयवि, वइसवण>वयसवण, अवइण्ण>अवयण्ण, पइसइ>पयसइ, सेणावइ>सेणावय आदि, य>इ वेयल्ल>वेडल्ल (वेगवान)।

(६) वचिच्त् 'व' के स्थानपर 'म' का प्रयोग, जैसे सकिवाण>सकिमाण, और कही 'म' के स्थानपर 'व' का, जैसे मामिणी>माविणि।

(७) तृतीया एवं सप्तमीके प्रत्ययो, कर्तके पूर्वकालिक क्रिया रूपो तथा अन्यत्र भी 'ए' व 'मा'का बाहुल्य जैसे (तृ०) अस्मासँ, पियरँ, करणे [न], मुखेदँ, (सप्तमी) रयणे, घरे घरे, आउसे; (क० पूर्व० क्रिया) परिहरेदि, करेवि, मुखेवि आदि, अन्यत्र तेत्थ, जेत्य, जे, एत्तहे, तेत्तहे, सेट्ठ (किएम्), ठेठ्ठ-अनिष्ट (भात्तु) आदि, और कहीं कही 'इ' मात्रा भी जैसे घरि घरि, आयाणिवि आदि,

तथा कृ० पूर्व० क्रिया प्रत्ययोमे जायवि, पडवि, करवि, परिहरवि ऐसे रूप भी बहुषः उपलब्ध होते हैं।

(८) यह प्रति सटिप्पण है, जिसके चारो हाशियो-पर छोटे-छोटे अक्षरोमे आद्योपात् टिप्पण लिखे गये हैं। टिप्पणोंके संबंधमे विशेष जानकारी मूल ग्रन्थके अंतमे संस्कृत टिप्पणोंकी भूमिकामे दी गयी है।

ग प्रति—यह भी जयपुरके वास् भडारमे सुरक्षित है। इसमे कुल ११४ पत्र हैं। आकार १२" × ४ १/२"; हाशिया दोनो पास्वोंमें १ १/२"; १ १/२", ऊपर-नीचे १", १"; पक्तिसंख्या पत्र २ से ३१ तक प्रति पृष्ठ ८, ८, बीचमे पत्र २६ में ९, ९। पत्र ३२ से पत्र ११४ तक पंक्ति संख्या कही ८, कही ९। इस प्रकार कुल ६३ पत्रोमे ८, ८ पंक्तियां हैं, पत्र १०६ तथा ११० पर १०, १०; तथा प्रथम-पत्रपर एक ओर कुल ८, अक्षर प्रतिपक्ति ८, ८ पंक्तियोवाले पत्रोमे लगभग ३२, व ९, ९ पंक्तियोवाले पत्रोमे लगभग ४०; लिखावट असमान, अक्षर कहीं छोटे, कहीं बड़े, परंतु हस्त-लेख आद्योपात् सुंदर, स्पष्ट व शुद्ध। स्थान-स्थानपर बीच-बीचमे अक्षरोकी स्याही समयके प्रभावसे उड़ गयी है।

यह प्रति भी सटिप्पण है। चारो हाशियोपर स्पष्ट अक्षरोमे सुंदरतासे टिप्पण लिखे गये हैं; जो अधिकांशतया ख प्रतिके टिप्पणोंके समान हैं, परन्तु अनेक स्थानो पर उनसे भिन्न और विशद हैं।

पाठकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्णतया ख प्रतिसे मेल खाती है, और इसीको आदर्श मानकर लिखायी गयी प्रतीत होती है। अतः इस प्रतिकी समस्त पाठगत विशेषताएँ ये ही हैं, जो उपर्युक्त ख प्रतिकी। इन दोनों प्रतियोमे यदा-कदा विरले ही परस्पर कोई पाठ-भेद उपलब्ध होता है, और अधिक करके वह पाठ ख की अपेक्षा शुद्ध सिद्ध हुआ है। परन्तु ये दोनो प्रतियां निश्चयतः एक ही परंपराकी हैं।

ग प्रतिका आरंभ ख प्रतिके समान ही 'ओं नमः सिद्धेभ्य' से होता है, और अंत कवि प्रशस्तिके उपरांत 'इयं जंबूसामिचरितं समाप्तं' से। इसके उपरांत निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है :—

संवत् १६०१ वर्षे आपाङ्ग सुदि १३ मीमवासरे तोडागढवास्तव्ये राजाधिराज्य-राव श्री राम-चन्द्र-विजयराज्ये श्री आदिनाथचैत्यालयमे श्री मूलसंघे नद्याम्नाये बलात्कारण्ये सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदा-चार्यायै भ० श्री पद्मसंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तच्छिष्य भ० श्री धर्मचन्द्रदेवास्तदात्मनाये खंडेलवालान्वये साहगोत्रे जिनपूजापुरंदरदानगुण-श्रेयो वृपति ॥ सा० महासा तज्ज्यायै सुहागदे तत्पुत्र सा० मेघचंद द्वितीय कौश्ल । सा० मेघचंद भार्या माणिकदे द्वितीय नीलादे तत्पुत्र सा० हेमा द्वितीय सा० हीरा तृतीय सा० छात्र । सा० हेमाभार्या हमीरदे तत्पुत्र चिरजी भीषा । सा० हीराभार्या हीरादे । सा० कौश्लभार्या कौतिगदे तत्पुत्र सा० पदारथ द्वितीय पीषा । सा० पदारथभार्या पाटमदे तत्पुत्र सा० वनपाल । सा० पीषाभार्या पिबतिरि तत्पुत्र दूगरसी । एतेषां मध्ये सा० हेमाभार्या हमीरदे एतत् जंबूस्वामिचरितं लिपाय रोहिणीव्रत-उद्यापनार्थं ज्ञानपात्राय मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्राय दत्तं ॥

ज्ञानवा ज्ञानदानेन निर्मयोऽभयदानतः । ज्ञानदाणात् शुची नित्यं निर्व्याधिर्भवेज्ज । भवेत् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥ जैनधर्मं चिरं जीयात् ॥ कल्याणं जयतु ॥

इस वृहत् प्रशस्तिसे निम्न बातोंकी जानकारी होती है :—

(१) यह प्रति संवत् १६०१ मे आपाङ्ग शुक्ल त्रयोदशी मंगलवारके दिन महाराज श्री रामचन्द्र-विजयके राज्यमे तोडागढनगरमे श्री आदिनाथ चैत्यालयमें मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्रको प्रदान

करने हेतु लिखवायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्न प्रकार थी :—

मूलसप्त, नंदाम्नाय, वलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ श्री कुदकुदाचार्यान्वये —

म० पद्मनदि

|

म० शुभचन्द्र

|

,, जितचन्द्र

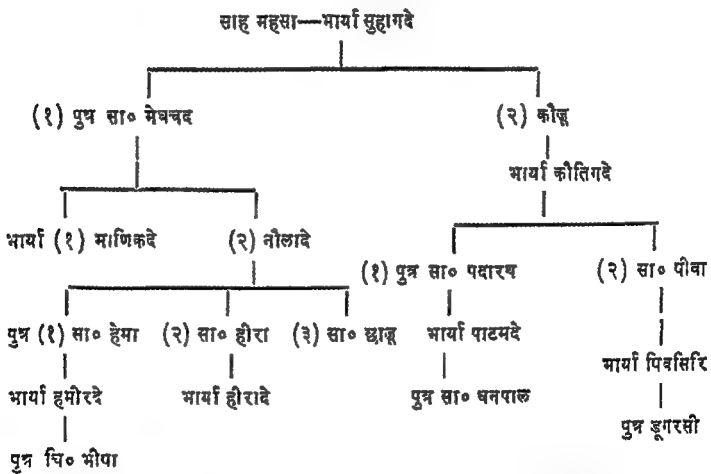
|

,, प्रभाचन्द्र

|

मडलाचार्य मुनि श्री धर्मचन्द्र

इन म० धर्मचन्द्रके आम्नायमे खडेलवाकान्वयमें इनके श्रावक शिष्योंकी परम्परा चली, जिनमे साह हेमाकी भार्या हमीरदेने रोहिणीव्रतके उद्यापनार्थ इस जम्बूस्वामिचरित्रको लिखवाकर आचार्य धर्मचन्द्रको प्रदान किया। इस श्राविकाका वंशवृक्ष निम्नप्रकार है :—



ग प्रतिसे उपलब्ध उपयुक्त समस्त तथ्योंको ध्यानमें लेनेसे स्पष्ट है कि कुछ बातोंमे यह ख प्रतिसे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रति है।

घ प्रति—यह भी जयपुरके घाम्भ भट्टारमे उपलब्ध है। पत्र सख्या दो भागोंमे दी गयी है। पहले पत्र मध्या १ मे ५१ तक है, और पुन १ से ४७ तक, इस प्रकार कुल पत्र सख्या ९८ होती है। एते बीचमे पत्र ४१ तक लाकर नये मिरमे १ से प्रारम्भ करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। आगर ११" × ४१", पत्तियाँ प्रति पृष्ठ ११; अक्षर प्रति पक्ति लगभग ३४, प्रथम व अंतिम पत्र दोनोंपर केवल एक ओर गु १०, १० पत्तियाँ लिखी गयी हैं। श्रमिया दोनों पाद्योंमें ११", ११", ऊपर-नीचे १", १"। मध्य मुद्रा स्पष्ट व शुद्ध है।

प्रतिका प्रारम्भ "स्वस्ति श्री गणेशाय नमः ॥ ओं नमो वीतरागाय ॥" इन दो मंगल नमस्कारोंसे होता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रति-लेखक कोई गणेश भक्त अथवा पंडित था। अंतर्गत प्रति अपूर्ण है। ११वीं सधिये १२वें कदंबकके घंटाकी दूसरी पक्षिका 'सोमेश्वरपरंपर' वस इतने प्रारम्भिक अंशके उपरांत ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे किसी प्रकारकी कोई प्रशस्ति नहीं है। अतः प्रतिके लेखनकाल आदि का अनुमान लगाना कठिन है।

प्रतिगत विशेषताएँ :—

(६) इस प्रतिकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदिमे सर्वत्र तथा मध्यमे 'न' न्य, एव 'नं' इन संयुक्त रूपोंमें विद्यमान 'न' ध्वनिकी पूर्ण सुरक्षा; कहीं-कहीं मध्यमे भी असंयुक्त 'न' का सुरक्षित रहना; अन्यत्र जैसे 'न' और 'ए' के स्थान पर प्रचुरतासे तथा कहीं-कहीं एण, स्न, ल्ल, एवं ष्य के स्थान-पर भी न, न, न के प्रयोगका बाहुल्य। आदि 'न' सुरक्षित रहनेके संबंधमें यह ख एव ग प्रतियोंसे पूर्णतः मेल रखती है। अन्य स्थितियोंमें न के प्रयोगोंमेंसे कुछ उदाहरण निम्नप्रकार हैं :—

मध्य असंयुक्त न > न नमिनिमि, भाषानल आदि, न > न जीवासाधिन, आसन्नभव, भिन्न, पक्षय, संचिन्न, सन्निह आदि, न्य > न अन्न, अन्न, वन्न रायकक्षा, सिन्न आदि; नं > न पुणु-सन्न (पुनर्नवः), निन्नासिन्, दुन्निरिव्व आदि; एण > ल्ल तुम्हिको; स्न > न नेह; स्न > न्द न्हाण; ल्ल > न मन्मन्न, ष्य > न लावन्नवन्न, तारन्न, महापुन्न, भन्न, आदि, न > न संपन्नान, न > न सन्नालुय, विन्न, विन्नाण आदि, एं > न अवन्न, फल्लिवन्न, वन्निकण, उन्नामय, संपुन्न, कन्नुड, निव्वन्मि, सहन्मव आदि आदि।

(२) तृतीया एव सप्तमी विभक्तियोंमें, एवं अन्य शब्द रूपोंमें 'इ' एव 'ि' मात्राके प्रयोगमें यह क प्रतिसे मेल रखती है।

(३) अन्य पाठोंमें इस प्रतिका मेल अविकारोंमें क एवं ङ प्रतियोंसे तथा अल्पांशमें ख एव ग प्रतियोंसे है, और अनेक पाठ चारों प्रतियोंसे भिन्न तथा अविकार युक्त है। अतः यह प्रति क ङ और ख ग इन प्रति परंपराओंकी अपेक्षा किसी अन्य स्वतंत्र प्रतिसे संबध रखती है। संभव है इस परम्पराकी कोई अन्य प्रति किसी शास्त्र-अंशमें कभी अधिक शोध-खोज होनेपर उपलब्ध हो सके। 'जंबूनामि-चरित्र पंजिका'से भी उपर्युक्त दोनों प्रति-परम्पराओं (क ङ, ख ग) से भिन्न प्रति होनेके संकेत मिलते हैं।

क प्रति भी जयपुर शास्त्र-अंशमें उपलब्ध है। कुल पत्र मस्या १०६; आकार १०" × ४ १/२", पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ १०; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३४; अंतिम पृष्ठपर कुल आठ पंक्तियाँ हैं, और अन्य प्रतियोंके समान इसमें भी प्रथम पत्रपर केवल एक ही और कुल १० पंक्तियाँ हैं। हाशिया दोनों पाश्वर्कोंमें लगभग ३", ३", तथा ऊपर नीचे ३", ३"। लिखावट बहुत सुन्दर और चमकीली है, पाठ भी अनेक स्थलों-पर क प्रतिकी अपेक्षा युक्त है। इसके लेखनकी दीर्घ कालावधिके प्रभावसे प्रतिके पत्र बहुत जीर्ण और टूटनेवाले हो गये हैं।

प्रतिका आरंभ "॥ स्वस्ति ॥ ओं नमो वीतरागाय ॥" इस प्रकार होता है। प्रति पूर्ण है। कवि प्रशस्ति इसमें नहीं है, परन्तु निम्न प्रति प्रशस्ति उपलब्ध है :—

संवत् १५४१ वर्षे आसीजवदि ७ सप्तमै क्षनिद्वारे श्री मूलसधे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंद-कुंदाचार्याय [ 'यान्वये ] भट्टारक श्री पद्मनदिदेवा तस्यै भट्टारक श्री शुभचंद्रदेवा तस्यै भट्टारक श्री जिनचंद्र देवा तस्मिन् श्री रत्नकोटि देवा पंडेलवालान्वे [ 'व्ये ] पाटणीगोत्रे संघी चतुराज संप्रति [ 'स्वर्गस्थः' ] तस्य भार्या कोडी। तयो पुत्रा संघी देवराज। मूलराज। तस्य पुत्र [ पुत्राः ] सोनपाल। रणमल। महिपाल। मल्ल। जानावरणीकर्मक्षयनिमित्तं मु० [ मुनि ] श्री विशालकोटि जोगु सक्ती [ ? ] पाटणी पुस्तक घटापितं ॥ शुभ भवतु ॥

इस प्रगस्ति-पर-से इतनी बातें जानी जा सकती हैं :-

(१) प्रतिका लेखन संवत् १५४१ में आग्निन कृष्ण सप्तमी शनिवारके दिन पूर्ण हुआ ।

(२) यह प्रति मुनि श्री विशालकीर्तिको प्रदान करनेके निमित्तसे लिखायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्नप्रकार थी :-

मुंउसंग-ब्रह्मात्काराण-सरस्वतीगच्छ-कुदकुंदाचार्यान्वयमे भ० श्री पद्मनंदी ( सं० १३८५-१४५० )

↓  
भ० श्री शुभचंद्र ( सं० १४५०-१५०७ )

↓  
,, ,, जिनचंद्र ( सं० १५०७-१५७१ )

↓  
श्री रत्नकीर्ति

↓ (?)

मुनि श्री विशालकीर्ति

खंडेलवालास्वयमे, पाटनी गोत्रमे श्री रत्नकीर्तिके एक ( श्रावक ) शिष्य संघही ( संघाधिप-सध-पति ) धनराज थे, वे स्वर्गस्थ हो गये । उनकी कोडी नामकी भार्या थी । उसके दो पुत्र थे, संघही देवराज और मूलराज । संभवतः मूलराजके चार पुत्र हुए सोनपाल, रणमल, महिपाल और मल्ल । इसके बादका अंग स्पष्ट नहीं है । इसी पाटनी परिवारके किसी व्यक्तिने जो मुनि श्री विशालकीर्तिका भक्त था, उनके लिए यह पुस्तक लिखायी ।

प्रतिगत विशेषज्ञोंकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्ण रूपसे क प्रतिसे समानता रखती है तथा निश्चित रूपसे ये दोनों प्रतियाँ एक ही प्रति-परंपराकी हैं । ऊ प्रतिका लेखनकाल उपर्युक्त प्रगस्तिके अनुसार बिल्कुल निश्चित है, परंतु क प्रतिमें कोई प्रगस्ति न होनेसे उसके लेखनकालका अनुमान लगाना कठिन है, यह पहले ही कहा जा चुका है । तथापि प्रतियोंके पत्रोंकी अपेक्षाकृत जीर्णता तथा ऊ प्रतिमें क प्रतिकी अपेक्षा अनेक पाठ शुद्ध होने एवं क प्रतिके अश्रूरेपन आदि तथ्योपर विचार करनेसे ऐसी दृष्टि प्रतीति होती है कि ऊ प्रति क प्रतिसे बहुत अधिक प्राचीन है । और इस दृष्टिसे देखनेपर वास्तवमें इन प्रतियोंके संकेत बिल्कुल विपरीत अर्थात् ऊ के स्थानपर क, और क के स्थानपर ऊ ऐसा होना चाहिए था । परन्तु क्योंकि संपादकको क प्रति सर्वप्रथम उपलब्ध हुई और ऊ प्रति सबसे पीछे । अतः इनकी उपलब्धता की दृष्टिसे ही इनके ये संकेत मान लिये गये हैं ।

उपर्युक्त पाँचों प्रतियोंमें ख प्रति सबसे प्राचीन है, संवत् १५१६ की । इनके बाद कालक्रममें ऊ प्रतिका नाम आता है जो ख के ठीक २५ वर्षोंपरांत संवत् १५४१ में लिखी गयी थी । इसके उपरांत ग प्रतिका समय आता है, जो ऊ प्रतिके ६० वर्षोंपरांत संवत् १६०१ में लिखकर पूर्ण हुई । क एवं ग प्रतियाँ अंतर्गत् अपूर्ण हैं, जेप इनके संबंधमें ऊपर लिखा गया है ।

यहाँ संपादन-सामग्रीके परिचयमें 'जंबूस्वामीचरित्रपत्रिका' (पं) का परिचय देना इस दृष्टिसे आवश्यक है कि संस्कृत टिप्पणोंके साथ मूल पाठके जो उद्धरण इसमें दिये गये हैं, वे पाठ-संशोधनमें बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं, और कहीं-कहीं तो केवल पत्रिकाका पाठ ही शुद्ध रहनेसे उसे मूलमें स्वीकार कर अन्य सब प्रतियोंके पाठोंको पाठभेदोंमें दे दिया गया है ।

पं की प्रतिमें कुल पत्र संख्या ३१ है; आकार १० $\frac{३}{४}$ "×४ $\frac{३}{४}$ "; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ १२; अक्षर प्रति-पंक्ति लगभग ४०; हाथिया दोनों पाखोंमें १", १" से कम, ऊपर-नीचे  $\frac{३}{४}$ ",  $\frac{३}{४}$ "। पत्र २३ अ, (पृ० ४५) पर कुल ९ $\frac{३}{४}$  पंक्तियाँ हैं। प्रथम पत्रपर दाहिनी ओरके हाथियेपर 'जंबूस्वामीचरित्रस्य पत्रिका' लिखा हुआ है। यह प्रति जयपुरके छोटे तेरापंची मंदिरके आस्व-भंडारमें उपलब्ध है।

पंजिका (पं) का प्रारंभ "ओ नमो श्री वीतरागाय। मन्दमतीनां सुखावबोधार्थं जंबूस्वामी-चरित्रे करोमि टिप्पणक" इस प्रकार होता है और अंतमें निम्न अपूर्ण प्रति प्रगति भी उपलब्ध होती है :-

श्री शुभं भवतु। संवत् १५६५ वर्षे फाल्गुण सुदि १० गुहवासरे पुष्यनक्षत्रे श्रीमूलसंवे नंचाम्नाए सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनदिदेवा तत्पट्टे भ० श्री० शुभचंद्रदेवा तत्पट्टे भ० श्री जिनचंद्रदेवा तत्पिण्य मंडलाचार्यं मुनि श्री रत्नकीर्तिदेवा तत्पिण्य मंडला० मुनि श्री हेमचंद्र तदा-म्नाए पंडेलवालानुप [ 'न्वये ] टोग्या गोत्र संघभारपुरस्चरं ..... सं० ।

इस अपूर्ण प्रशस्तिसे यह जानकारी होती है कि यह पंजिका (पं) संवत् १५६५ में फाल्गुण शुक्ल दशमी गुहवारके दिन लिखी गयी, और जिन्होंने (?) इस पंजिकाकी रचना की; अथवा अपने गुहसे अर्थोंको सुनकर लिखा, या स्वयं लिखवाया, उनकी गुहपरम्परा निम्न प्रकार थी :-

‘मूलसंघ-नंचाम्नाय-सरस्वतीगच्छ-कुंदकुंदाचार्यान्वयमें —

भ० श्री पद्मनदी [सं० १३८५—१४५०]

” ” शुभचंद्र [सं० १४५०—१५०७]

” ” जिनचंद्र [सं० १५०७—१५७१]

मंडला० मुनि श्री रत्नकीर्ति [ इन्होंने सं १५७२ में दिल्ली जयपुर शाखासे अलग नागौर शाखा स्थापित की। ]

मंडला० मुनि श्री हेमचंद्र

इनके आम्नायमें खंडेलवालान्वयमें टोग्या गोत्रके संघपति\*\*\* (अपूर्ण) ..... [ने इस प्रतिकी मुनि हेमचन्द्रजीके निमित्त लिखवाया ]।

सम्पादनमें सहायक सामग्रीके रूपमें दो और रचनाओंका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है।

(१) ब्रह्म-जिनवामकृत ‘जंबूस्वामीचरित’ और (२) पं० राजमल्लकृत ‘जंबूस्वामीचरित’। ब्रह्म जिनदास भ० सकलकीर्तिके शिष्य थे और इन्होंने संवत् १५२० में जंबूस्वामिचरित्रकी रचना पूर्ण की थी। यह चरित प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यके समान ११ परिच्छेदोंमें पूर्ण हुआ है, और अधिकांशतया सभी बातोंमें न केवल भावार्थक रूपसे बल्कि शब्दात्मक रूपसे भी इससे इतनी अधिक समानता रखता है कि इसे यथार्थमें प्रस्तुत अपभ्रंश-काव्यका संस्कृत रूपांतर कहना अनुचित न होगा। अतः स्वाभाविक रूपसे इस संस्कृत रूपान्तरसे मूल अपभ्रंशके पाठ संशोधन और हिंदी अनुवादमें बहुत अधिक सहायता मिली है।

पं० राजमल्लकी रचना सं० १६३२ में आगरेमें पूर्ण हुई। इसमें १३ पर्व हैं, और इसका भी विषयानुसार पर्व-विभाजन प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यसे अत्यधिक मिलता-जुलता है। प्रारंभमें कुछ पर्व केवल आगरे आदिका वर्णन होनेसे वास्तवमें मूल रचनासे विशेष संबंध नहीं रखते। इसका अध्ययन करनेसे स्पष्ट होता है कि यह भी अपभ्रंश जंबूस्वामिचरित्रका अधिकांशमें संस्कृत रूपांतर ही है। अतः इससे भी पाठसंशोधन व अनुवाद कार्यमें पर्याप्त सहायता उपलब्ध हुई है। -

## प्रति प्रशस्तियोंकी प्रामाणिकता

ख ग ङ प्रतियों तथा पं की प्रशस्तियोंमें मूलसंघ, बलात्कारगणके जिन भट्टारको एवं मुनियो, तथा खंडेलवालाव्ययमे पाटनी, टोम्पा ( या ठोल्पा ? ) और साहू गोत्रोमे उनके श्रद्धालु श्रावको तथा प्रतिलेखन स्थानोके नाम आये हैं, उनकी ऐतिहासिक सचाईकी परीक्षाके लिए यहाँ कुछ चर्चा कर लेना उचित होगा ।

दिगंबर जैन-संघके इतिहासमे बलात्कारगणका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, और जैन साहित्यकी मुरखा एवं संवर्द्धनमे इस गणके भट्टारको, आचार्यों, मुनियो तथा श्रद्धालु श्रावकोका अभूतपूर्व एवं अनुपम योगदान रहा है । केवल साहित्य ही नहीं, जैनधर्म, संप्रदाय और जैनतीर्थों व मंदिरोंकी सुरक्षा, प्रचार-प्रसार और निर्माणमे सदैव ही इन संघका बहुत बड़ा हाथ रहा है ।

यूँ तो इस गणका उद्भव आचार्य कुंदकुंदसे ही माना जाता है, और तदनुसार इसके साथ कुंदकुंदाचार्यत्वय, नचाम्नाय, सरस्वतीगच्छ आदि पद भी जुड़े रहते हैं, परन्तु इस गणका प्रथम उल्लेख आचार्य श्रीचंद्रने किया है, जो धारा नगरीके निवासी थे, और जिन्होंने सं० १०७०, १०८०, एवं १०८७ मे क्रमशः पुराणसार, उत्तरपुराण वे पद्यचरितकी रचना की थी । यहीसे इस गणकी ऐतिहासिक परंपरा चालू होती है, और विक्रम की १५वीं शती तक जाती है । दक्षिणमे इस गणकी कारजा एवं लातूर शाखाएँ वि० की १६वीं शतीसे प्रारम्भ होकर वर्तमान तक चल रही हैं ।

बलात्कारगणकी उत्तर-शाखा मंडपदुर्य ( माडलगढ-राजस्थान ) मे भट्टारक वसंतकीर्तिके द्वारा सं० १२६४ मे प्रारंभ हुई, तथा विशालकीर्ति शुभकीर्ति-चर्मचंद्र-रत्नकीर्ति एवं प्रभाचंद्र भट्टारकोसे होती हुई अ० पंचमंदो ( सं० १३८५-१४५० ) तक आकर उनके बाद दिल्ली-जयपुर; ईडर एवं सूरत इन तीन प्रमुख शाखाओंमे विभक्त हो गयी । दिल्ली-जयपुर शाखामे-से दो और उपशाखाएँ निकली, नागौर शाखा एवं अटेर शाखा । अटेरशाखामे से सोनागिर प्रशाखा; ईडरशाखामे-से भानपुर उपशाखा; और सूरत शाखामे-से जेरहट उपशाखा । इन सबका दीर्घकालीन इतिहास है, और इनमें-से बहुत-से भट्टारकपीठ आज भी विद्यमान हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि बलात्कारगणकी शाखा, उप-शाखा और प्र-शाखाएँ संपूर्ण उत्तरभारतमे व्याप्त थी । दिल्ली-जयपुरके निकटवर्ती उत्तरप्रदेश एवं पंजाबमे हिसार तक्रा सारा प्रदेश इसी शाखाके प्रभावमे था । गुजरात, राजस्थान एवं मालवामे भट्टारक-नप्रदायका अत्यधिक प्रभाव था; और दिल्ली जयपुर, पंजाबमे आजका कुश्नीय तथा उत्तरप्रदेशमे मेरठ व आगराके सभाग, इन समस्त प्रदेशोंमे बलात्कारगणके भट्टारको, मुनियो तथा भक्तश्रावकों-द्वारा निरंतर धर्म व साहित्यकी सुरक्षा और संवर्द्धनका कार्य सफल किया जाता रहा ।

यहाँ उपर्युक्त विस्तृत टिप्पणी देनेका तात्पर्य यह है कि जम्बूसामिचरित्रकी ख ग एव ङ प्रतियों तथा पं की प्रशस्तियोंमे बलात्कारगणसे संबद्ध जिन-जिन आचार्यों, खंडेलवालाव्यय, पाटणी, साहू तथा टोम्पा [ ठोल्पा ? ] गोत्रो एवं भूमिजपुर और तोडागढ नगरो तथा रावराजा रामचंद्र ( नोलकी ) के नामोल्लेख हुए हैं, वे सभी पूर्णतः ऐतिहासिक हैं, तथा भट्टारक संप्रदायसे संबद्ध लेखों, प्रशस्तियों व पट्टावलिओंमे इन सबके नाम उपलब्ध होते हैं । अतः प्रतियोंकी प्रशस्तियोंमे दी गयी सूचनाएँ ऐतिहासिक सत्य हैं ।

## पाठ-सम्पादनकी पद्धति

§ १ सामान्य विद्वानके रूपमे ख एव ग प्रतियोंकी परंपरागत सर्वप्राचीनता, तथा पाठोंकी प्रामाणिकता ध्यानमे रखकर इन प्रतियोंके पाठोंको ही मूलमे स्वीकार किया गया है । परन्तु अर्थ औचित्य तथा पंजाबन एव छद्मद्विकी दृष्टिमे जहाँ कहीं नी आवश्यक प्रतीत हुआ है वहाँ क घ एव ङ प्रतियों-

के, या केवल क ड प्रतियोंके, तथा बहुत बार केवल किसी एक ही प्रति, विशेष रूपसे घ मे उपलब्ध पाठको ही ले लिया गया है। वचिचत् केवल प मे उपलब्ध पाठको भी इसी आधारपर स्वीकार किया गया है, और इसी प्रकार कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ मत्र प्रतियोंके पाठोंके आधारपर उनसे भिन्न शुद्ध पाठ बनाया गया है। ऐसे समस्त स्थानोंमे यह पाठ परिवर्तन कही भी एक अक्षर, एक मात्रा अथवा एक अनुस्वारसे अधिक नहीं किया गया।

§ २ 'न' और 'ण' के प्रयोगके सम्बन्धमे निम्न प्रणाली अपनायी गयी है :—

(i) आदि 'न' की सर्वत्र सुरक्षा।

(ii) मध्यवर्ती संयुक्त 'न' की सुरक्षा; जैसे सप्तद्व, भिन्न, आसन्न आदि।

(iii) आदिमे 'न' के पश्चात् 'न' आनेपर 'न' का प्रयोग, जैसे निन्तासिय।

(iv) भणानल, अनल तथा नेह (नेह) शब्दोंमे 'न' की सुरक्षा।

(v) अन्य सब स्थितियोंमे मध्यवर्ती असंयुक्त तथा संयुक्त न के स्थानपर सर्वत्र ण का प्रयोग किया गया है। इस संबंधमे घ प्रतिका साक्ष्य भिन्न है, और जैसा कि घ प्रतिके परिचयमे प्रतिगत विशेषताओंके अन्तर्गत § १ मे कहा गया है कि यह प्रति 'न'कार बहुला है और इसमे न, व्य, ज, ण्य, यो, ण्य, स्न और ह्न के स्थानपर प्रचुरतामे न, न्न, न् का प्रयोग हुआ है, इन प्रयोगोंको स्वीकार नहीं किया गया। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि स्वयं इस प्रतिमे भी ये प्रयोग सर्वत्र नियमित रूपमे नहीं किये गये हैं, कहीं हैं, कहीं नहीं, और दूसरा यह कि जो एक परंपराकी प्राचीनतम व प्रामाणिक-तम उपलब्ध प्रतियाँ स्न और ग हैं, उनमे ये प्रयोग नहीं पाये जाते। अब यह साक्ष्य इस अकेली घ प्रति-का रह जाता है, जिसकी प्राचीनताका कोई निश्चय नहीं है।

'न' के इन प्रयोगोंके सम्बन्धमे यहाँ दो साक्ष्य प्रस्तुत हैं। प्रथम साक्ष्य श्रीचंद्र कृत अपभ्रंश 'कहकोमु' (कथाकोप, वि० सं० ११२३) का है, जिसमे उपयुक्त घ प्रतिके ठीक समान, परंतु अधिक नियमित रूपसे शब्दोंके आदि एवं मध्यमे असंयुक्त तथा संयुक्त सभी स्थितियोंसे न एवं न्न का प्रयोग अत्यंत प्रचुरतासे किया गया है। दूसरा साक्ष्य जिनदत्तसूरि (वि० सं० ११३२-१२११) विरचित अपभ्रंश काव्यत्रयी (चर्चरी, उपदेशरसायनरास, कालस्वरूपकुलक) का है, जो गुर्जरदेशीय थे और जिन्होंने वीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यकी रचनाके अधिकसे अधिक एक ही वर्षोंके अंदर ही अपनी काव्यत्रयीकी रचना की थी। इस अप० काव्यत्रयीमे उपर्युक्त पाँचों स्थितियोंमें न, न्न एवं न् का प्रयोग किया गया है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं :—नमिनि (च० १) गुणवक्षण (च० २) पुष्पिहि (पुष्पै च० ७), मन्निउ (मानित च० १४), न्हवण (उप० ४८), निक्किन्नी (उप० ६७), सुन्नड (काल० १२) तथा नेह (काल० १३)। परंतु प्रस्तुत रचनामे इस संपादकने कुछ विशिष्ट स्थितियोंमे ही न, न्न का प्रयोग स्वीकार किया है, इसका कारण ऊपर ही लिखा जा चुका है।

§ ३ सभी प्रतियोंमे लगभग सर्वत्र 'व' के स्थानपर 'व' का प्रयोग मिलता है, इस संबंधमे मैंने मूल संस्कृत शब्दके अनुसार यथास्थान व् व् दोनोंका प्रयोग किया है।

§ ४, दो स्वरोंके बीचमे 'य' श्रुति एवं 'व' श्रुतिके प्रयोगमे प्रतियोंमे एकरूपता नहीं है, कहीं इनका प्रयोग हुआ है, और कहीं केवल उद्धृत स्वर ही शेष रहा है। इस संबंधमे जहाँ दो या अधिक प्रतियोंमे श्रुतिका प्रयोग हुआ है, उसे स्वीकार किया गया है। 'व' श्रुतिका प्रयोग उन दो स्वरोंके

१. संपादक : डॉ० हीरालाल जैन; प्रका० प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी अहमदाबाद - ग्रन्थ सीध प्रकाश्यमान है।

२. संपादक : लालचंद अग्रवालदास गांधी, प्रका०-गायक० ओरि० सिरीज़ ग्रन्थ क्र० XXXVII बड़ौदा १९२७ ई०



बीच किया गया है, जिनमें पूर्व स्वर 'उ' हो, अन्यत्र साधारणतः प्रतियोंके अनुसार 'य' श्रुति ही रखी गयी है। जहाँ प्रतियोंमें किसी श्रुतिका प्रयोग नहीं मिलता, वहाँ नियमतः उद्बुत्त स्वर ही रखा गया है।

§ ५. तृतीया एवं सप्तमीके कारक प्रत्ययो तथा कृदन्तके पूर्वकालिक क्रियाके क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्ययोंके स्थानपर और अन्यत्र भी ख ग प्रतियोंके साक्ष्यके अनुसार छन्दकी आवश्यकताको ध्यानमें रखते हुए सबसे अधिक 'ए' व 'प्र' तथा इनकी मात्राएँ ( २, ३ ) और जहाँ ये नहीं हैं वहाँ 'इ' अथवा 'इ' की मात्रा ( १ ); अथवा इन दोनोंसे रहित जैसे करवि, पढ़वि, परिहरवि आदि रूपोंको ( ख ग प्रतियोंके अनुसार ) स्वीकार किया गया है।

§ ६. क एवं ङ प्रतियोंके अनुस्वारबहुल शब्दोंको इन प्रतियोंपर प्रादेशिक बोलीके प्रभावको विस्तारनेकी दृष्टिसे इस प्रथम संस्करणमें पाठभेदोंमें रख लिया गया है। भविष्यमें किसी दूसरे संस्करणमें इन्हें रखनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

§ ७. प्रतियोंमें लिखावट संबंधी निम्नप्रकारकी भूलें हैं, परन्तु शुद्ध-पाठ लेना सर्वत्र सम्भव हुआ है :—(१) ° उं न > ° पुण्ण - उड्डिउं न > उड्डिपुण्ण ( ख ग )

> ° ऊण्ण „ „ > उड्डिऊण्ण ( क ङ )

(ii) ए > प } — पारए तरट्टि > पारपत्तरट्टि ( क ङ )  
त > त्त }

(iii) च > व तवचरण > तववरण ( क ङ )

चिराउसई > विराउ° ( „ )

° संकेयचत्तो > ° वत्तो ( क ङ )

व > च वेयइ > चेयइ ( क ख ग ङ )

ववगयसत्त > ववगय° ( क ङ )

(iv) च्छ > छ } धणुच्चत्थणीण > धणुव्वच्छणीण ( क ङ )  
त्थ > छ्छ }

(v) च्छ > त्थ सच्छा > सत्था ( ख ग )

(vi) त्थ > च्छ विरिण्ण > विच्छिण्ण ( क ङ )

(vii) थ > त भुवडाल > तुयडाल ( घ )

(viii) म > व } उवसावमि > उवसामवि ( क ङ )  
व > म }

म > स समुद्धरहि > सुमुद्धरहि ( क ङ )

(ix) र क > वल पर-केवलइ > पवखेवलइ > ( क )

(x) ल > स तण्हालुयउ > तण्हालुवउ ( क ङ )

इसपर-से स्पष्ट है कि लिखावटकी ये अविशेष भूलें क एवं ङ प्रतियोंमें हुई हैं। इससे इन प्रतियोंके पाठोंकी प्रामाणिकता कम जाती है।

साधारणतः उपयुक्त सिद्धान्तोंके अनुसार इस रचनाका संपादन किया गया है।

## २. ग्रन्थकार परिचय

जन्मभूमि, परिवार, पिता, काव्यरचना प्रेरक, समय, पूर्ववर्ती और समकालीन कवि तथा आचार्य, समकालीन राजा, व्यक्तित्व और कृतित्व :

महाकवि वीरसे जम्बूसामिचरित ( १. ४—५ ) में अपना परिचय स्वयं दिया है। उनका जन्म मालव देशके गुलखेड नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिता लाडवर्गगोत्रके महाकवि देवदत्त थे,

जिन्होंने पद्विडिया छंदमें (१) चरंगचरित, (२) चच्चरिया शैलीमें शांतिनाथका यशोगान ( शांति-नाथरास ); (३) सुन्दर काव्य शैलीमें सुदयवीरकथा; एवं (४) अंशदेवीरास की रचना की थी, जिसका नृत्याभिनय वीर कविके कालमें किया जाता था। कविने अपने पिताको कवि स्वयंभू तथा पुण्डरीक पद्मचरित तीसरा स्थान प्रदान किया है और कहा है कि 'स्वयंभूके होनेपर एक, पुण्डरीक के होनेपर दो तथा देवदत्तके होनेपर तीन कवि विख्यात हुए ( ५.१ )।' कविके इस कथनमें अतिशयोक्ति अवश्य संभावित है, तथापि इससे इतना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि अवश्य ही कविके पिता देवदत्त अपने समयके प्रख्यात व उच्चकोटिके कवियोंमें रहे होंगे।

कविकी माँका नाम श्रीसंतुषा था, और (१) सीहल (२) लक्षणाक तथा (३) जसई नामीसे प्रख्यात तीन अनुज थे। कविनी चार पत्नियाँ थी। प्रथम जिनमती, दूसरी पद्मावती, तीसरी लीलावती एवं अंतिम ( चतुर्थ ) भार्याका नाम जयादेवी था। उनकी प्रथम पत्नीसे उन्हें नैमिचंद्र नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। यद्यपि वीर संस्कृत काव्य-रचनामें निपुण थे, किन्तु पिताके मित्रोंकी प्रेरणा, उत्साह संबर्द्धन एवं आप्रह, तथा संस्कृत काव्य-रचनाको छोड़कर सर्वजनप्रिय प्राकृत ( अपभ्रंश ) प्रबन्ध शैलीमें जंबूसामिचरितकी रचना करनेके अपने पिताके आदेशके कारण कवि अपभ्रंश-प्राकृतमें महाकाव्यकी रीतिसे 'जंबूसामिचरित' की रचनामें प्रवृत्त हुआ।<sup>१</sup>

### लाडवग वंशकी ऐतिहासिकता

कविका जन्म लाडवग अर्थात् लाट-वर्गट वंशमें हुआ था। इस लाट-वर्गटवंशका इतिहास बहुत पुराना है। वास्तवमें इस वंशका प्रारम्भ पुष्पाट सघसे हुआ है। इस संघके आचार्य पहले पुष्पाट अर्थात् कर्नाटक प्रदेशमें विहार करते थे, इसलिए इसका नाम पुष्पाट था। बादमें इसका प्रमुख कार्यक्षेत्र लाड-बागड ( सं लाट-वर्गट ) अर्थात् गुजरात और सागवाडेके आसपासका प्रदेश हुआ। इसलिए इसका नाम लाड-बागड गच्छ पडा।<sup>२</sup>

पुष्पाट सघके प्राचीनतम ज्ञात आचार्य जिनसेन हैं, जिन्होंने शक सं० ७०५ ( वि० सं० ८४० ) में वट्मानपुरके पार्श्वनाथ तथा दोस्तटिकाके शातिनाथ मंदिरमें रहकर हरिवंशपुराणकी रचना की।<sup>३</sup>

आचार्य जयसेन लाड-बागडसघके नामसे ज्ञात प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने वि० सं० १०५५ में सकली कूरहाटक ( करहाड, आधुनिक कराड, बम्बई प्रदेश ) ग्राममें रहकर धर्म-रत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखा।<sup>४</sup> प्राय इसी समय इस गणके दूसरे आचार्य महासेनने प्रबुम्नचरित लिखा, तथा सं० ११४५ में इसी गणके आचार्य विजयकीर्तिके उपदेशसे एक मंदिर बनवाया गया।<sup>५</sup>

१. दुर्भाग्यवत्, महाकवि देवदत्तकी इन चारोंमें-से किसी एक भी रचनाका अभी तक कोई पता नहीं चलता। संभव है कि कालांतरमें जिन-याज्ञ अंडारोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचियाँ अभी तक पूर्ण रूपसे प्रकाशित नहीं हो पायी हैं, उनमें-से किसीमें कोई रचना उपलब्ध हो सके।

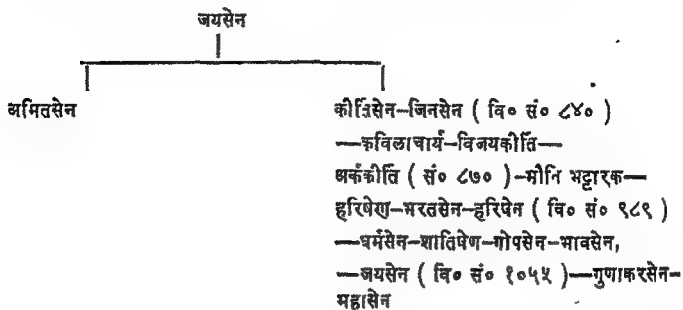
२. जं० सा० सं० १.५.५. तथा १.१८. घत्ताके उपरांत संस्कृत पद्य २-३।

३. पुष्पाट और लाडबागड संघोंकी एकताके लिए देखिए : सं० संग्र०- ले० १४१, व ७४७ तथा पृष्ठ २५७।

४. सं० संग्र० ले० ६२३

५-७. वही, पृ० २५७, तथा पं० नाथूराम प्रेमी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' द्वि० सं० पृ० २७८

आ० जयसेनसे लेकर महासेन तक इस सघकी गुरु-शिष्य परम्परा निम्नप्रकार है ।



शातिपेणके शिष्य आ० विजयकीर्ति ( सं० ११४५ ) जो की गुरु परम्परा इस प्रकार थी—  
देवसेन—कुलभूपण—दुर्लभसेन—शातिपेण—विजयकीर्ति । ऐसे भी देवसेन गुरु तक यह परम्परा वि० सं० १०५० के पूर्व तक जा पहुँचती है ।

प्रस्तुत काव्यके रचयिता कवि वीरके पिता देवदत्त मालवामे इसी संधके अनुयायी वधमे उत्पन्न हुए थे । वीर कृत 'जम्बूसामिचरित' का रचनाकाल वि० सं० १०७६ निश्चित है । अतः उनके पिताका समय सरलतामे वि० सं० १००० के लगभग माना जा सकता है । आ० विजयकीर्ति ( सं० ११४५ ) के आगे भी वि० सं० १५०० तक लाङ्ग-वागड सघकी परम्परा अखण्ड रूपसे चलती रही ।

### वीर कविके काव्य-रचनाका प्रेरक

वीर कविते लिखा है ? ( १-५२ ) कि मधुसूदनके पुत्र और उसके पिताके मित्र तक्षक नामक श्रेष्ठ जो कि मालवदेशमे सिन्धुवर्षा नामक नगरीके रहनेवाले थे, ने वीरको संस्कृत काव्य रचनामे निपुण जानकर प्राचीन कवियोंके द्वारा अनेक ग्रन्थोमे उद्धृत ( उल्लिखित या लिखित ) 'जम्बूसामिचरित' को सर्वजनप्रिय प्राकृत ( अपभ्रंश ) प्रवन्ध शैलीमे ससेपमे लिखनेकी प्रेरणा दी । कविके सकोच करने-पर तक्षकके अनुज भरतने अपभ्रंशकी बातका समर्थन किया और कविको काव्य रचनेका उत्साह दिलाया । तक्षकके पिताका नाम मधुसूदन था, और वह धक्कडवग्ग अथवा धकंटवशका आभूषण था ।

धकंट या धक्कडवाल वध यह वैश्यकी ही एक जाति है । अपभ्रंश भविसयत्त कहा ( भविष्यदस्तुत्या ) के रचयिता महाकवि धनपाल ( १०वीं शती ई० ) इसी धक्कड वणिक् वधमे उत्पन्न हुए थे ।<sup>१</sup> उन्होंने 'भविसयत्तकहा' ( सन्धि २२ ) मे कहा है —

धक्कडवणिक्खंति माएसरहो समुच्चवणि ।

धणसिन्धिविमुएण विरइउ सरसडसभविण ॥

अपभ्रंश भाषाकी धम्मपरिकक्षा ( धर्म परीक्षा ) के कर्त्ता हरिपेण भी इसी धक्कडवधके हैं जिनका

१. भ० सम्प्र० पृ० २६६

२. देखें, भागे प्रस्तावना : समय निर्धारण ।

३. देखें, डॉ० इटाल और गुणे द्वारा न्यायिन 'भविसयत्तकहा' प्रका०—भायक० आरि० पृ० X X—पड़ोदा मन् १०२३; तथा प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४०९ ।

समय वि० सं० १०४४ है। आगे भी देलवाड़ा तथा आवूके जिलालेखोंमें इस जातिका उल्लेख है। हरिप्रेषणने 'सिरिउजपुरणिमयधनकडकुल' लिखा है, अर्थात् सिरिउजपुरसे निकला हुआ धनकडकुल। 'सिरिउजपुर' सम्भवतः टोंक राज्यके सिरौजका ही पुराना नाम है। मेवाड़की पूर्वसीमापर टोंक राज्य है, और सिरौज पहले मेवाड़में ही शामिल था। हरिप्रेषणने अपनेको मेवाड़ देशका कहा भी है। यह धनकडजाति अब भी विद्यमान है। ये लोग दिगम्बर जैनधर्मका पालन करते हैं, तथा अपने मूल निवास राजस्थानसे महाराष्ट्रके अकोला और यवतमाल जिला तक फैल गये हैं। मुनि जिनविजयजी-के अनुसार मूलतः धनकडकुल उपकेस (श्रीसवाल) जातिकी एक शाखा है।<sup>२</sup>

### समय-निर्धारण

'जंजूसामिचरिउ' की प्रशस्तिके साक्ष्यके अनुसार वि० सं० १०७६ में भाव सुवल दशमीके दिन इस काव्यकी रचना पूर्ण हुई, तथा इस रचनाको पूर्ण करनेमें कविकों एक वर्षका समय लगा।

प्रस्तुत काव्यके अंतःसाक्ष्य तथा अन्य बाह्य साक्ष्योंसे भी प्रशस्तिमें उल्लिखित समय ठीक सिद्ध होता है। जैसा ऊपर कहा गया है कि कविने अपने पूर्वजाचार्योंमें महाकवि स्वयंभू (लगभग ८वीं शती विक्रम) पुष्पदेन (वि० की नौवीं शती का उत्तरार्द्ध एवं दसवींका पूर्वार्द्ध) तथा स्वयं अपने पिता देवदत्तका उल्लेख किया है। पुष्पदेनके उल्लेखसे ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह महाकवि अपने जीवनका उत्तरार्द्ध काल-यापन कर रहा था, और जिस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयकी मृत्यु (वि० सं० १०२४) के पंच ही वर्ष उपरान्त धारानरेज परमारवशीय राजा सीयक या श्रीहर्षने कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारी व अनुज खोद्दिगदेवको आक्रमण करके मार डाला था, एवं मान्यछेटपुरीको बुरी तरह लूटा तथा ध्वस्त कर दिया था (वि० सं० १०२९), तथा इनके महापुराणकी रचना पूर्ण हो चुकी थी; तबतक हम निष्परिग्रही, निरासक्त, निःस्वार्थ एवं अभिमान-भेर महाकविकी स्थाति वीर कविके मलिन-प्रान्तमें भी पूर्णरूपसे व्याप्त हो चुकी होगी; उसी समय वीर कविने अपने बाह्यकालमें ही बागेवरीदेवीके इस वरद पुत्रकी स्थाति मुनी होगी तथा हीश संभालनेपर अवश्य उनकी रचनाओंका अध्ययन किया होगा।

'जंजूसामिचरिउ' पर पुष्पदेनकी रचनाओंका गंभीर एवं व्यापक प्रभाव भी इस तथ्यकी पुष्टि करता है। अतः वीर कविके समयकी पूर्वसीमा वि० सं० १०२५ के लगभग निश्चित हो जाती है। प्रदेन उत्तरसीमा निर्धारित करनेका है।

वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य साधक प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० में होनेवाले मुनि नयनदिके 'सुदंसाचरिउ' पर 'जंजूसामिचरिउ' का अत्यन्त गम्भीर और प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।<sup>३</sup>

एक और बात जो इस संबंधमें कही जा सकती है वह यह है कि प्रस्तुत काव्यकी ५ वी-६वीं एवं ७वीं सर्धियोंमें हंसद्वीपके राजा रत्नशेखरके द्वारा केरलके बेर लिये जाने, व मगधराज श्रेणिककी सहायतासे राजा रत्नशेखरको परास्त किये जानेके बहानेसे वीर कविने जिस ऐतिहासिक युद्ध घटनाकी ओर संकेत किया है, जिसमें कविने स्वयं भी एक पक्षकी ओरसे भाग ले लिया हो, ऐसा प्रतीत होता है, वह घटना परिवर्तित रूपमें भुजके द्वारा केरल, चोल तथा दक्षिणके अन्य प्रदेशों-पर वि० सं० १०३० से १०५० के बीच चढ़ाई करके उन्हें विजित करनेकी मालूम पड़ती है।

१-२. धनकडकुलकी उत्पत्ति और वर्तमान स्थितिपर जिनविजयजीके उसके किए देखिए : प्रेमी, जै० सा० और इति०, पृ० ४०५ तथा उस पर पाद टिप्पण।

३. देखें : आगे प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

## परवर्ती एवं वाह्य साक्ष्य

बीर कविके परवर्ती साक्ष्योंमें प्रथम साक्ष्य ग्रह जिनदासकृत सस्कृत जम्बूसामिचरित है, जिसे उन्होंने वि० नं० १५२० में पूर्ण किया। यह रचना बीरकृत अपभ्रंज काव्यका अधिकांशतया सम्पूर्ण रूपान्तर मात्र है। कवि रचने (१५वीं शती ई०) भी अपनी दो रचनाओंमें बीर कविका नामोल्लेख किया है। इसके पश्चात् वि० नं० १५१६, १५४१ एवं १६०१ की जम्बूसामिचरितकी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका पूर्ण उपयोग इस काव्यके संपादनमें किया गया है। वि० सं० १६३२ में वागिरामे प० राजमल्ल-द्वारा रचित जम्बूसामिचरित भी प्रस्तुत अपभ्रंज काव्यका सस्कृत रूपान्तर ही है।

## कवि-द्वारा उल्लिखित पूर्ववर्ती कवि और काव्य

कवि बीरने अपनी उस रचनामें स्पष्ट रूपसे सर्वप्रथम अपभ्रंज महाकवि स्वयंभूका स्मरण किया है। 'मन्मन्च' अपने रिताश्री महाकवि देवदत्तका<sup>१</sup> धागे चलकर कविने यह कहते हुए कि स्वयंभूके होनेपर लोकोमें एकमात्र (अपभ्रंज) कवि हुआ, पुष्पदन्तके जन्म लेनेपर दो हो गये, तथा देवदत्तके होनेपर तीन<sup>२</sup>, इस प्रकार अर० महाकवि पुष्पदन्तका आदरपूर्वक स्मरण किया है। सधिका दूसरे कविरक्षी निम्न पंक्ति के द्वारा विमुचन स्वयंभूका भी अप्रत्यक्ष उल्लेख होना संभावित है—'सो चैय मरु अदण्ड करइ, नहो कज्जे पवणु तिहुयगु घरइ'। अपभ्रंज कवियोंकी प्राचीन परंपरामें इनके निवाय किसी अन्य कविका उल्लेख प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमें बीर कविने नहीं किया।

अने निना कवि देवदत्त-द्वारा रचित जिन चार काव्य कृतियों<sup>३</sup> (१) पद्मडिया छंदमें रचित 'वगमन्ति' (२) 'मुद्गयबीरकहा' (३) 'शानिनायचरित' अथवा रासके रूपमें शानिनायका महाद्वयनामान तथा (४) 'अवादेवी-राम' का उल्लेख कविने किया है, दुःख है कि इनमेंसे किसी रचनाका अभी तक कोई पता नहीं चल पाया।

प्रचलित साहित्यिक निर्माता कवि और काव्योंमें बीर कविने 'मेतुबन्ध' महाकाव्यका<sup>४</sup> अप्रत्यक्ष उल्लेख किया है।

मन्मन् साहित्य बीर साहित्यनामोंमें सर्वप्रथम उल्लेख 'प्रदीप' नामक शब्दशास्त्रका<sup>५</sup> तथा वागमे धर्मनाम्न,<sup>६</sup> मन्मन्निहृ (नामनाम)<sup>७</sup> और तर्क (शास्त्र) का उपलब्ध होता है। मेतुबन्धके नायक नामाग्राममें मेतुबन्धकी घटनाका संबंध है। नामाग्रामके उल्लेख प्रस्तुत 'जम्बूसामिचरित' में एक-धिर नाम प्राप्त होता है।<sup>८</sup> महाभागकी चर्चा भी स्पष्ट रूपमें काव्यमें हुई है।<sup>९</sup> भरतमुनि और उनके

नाट्यशास्त्रका स्मरण कविने जिस रूपमें किया है उसमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि भरतमुनिके नाट्य-शास्त्रका वीर कविने मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया, और उनके नाट्यशास्त्रके शास्त्रीय नियमोंके आदर्श पर अपनी काव्यकृतिमें रभी, भावो, अलंकारों आदि काव्य तत्त्वोंका समावेश किया। यह तथ्य 'जंबूतामिचरित' के तुलनात्मक अध्ययन से और भी अधिक परिपुष्ट होता है। इनके अतिरिक्त वीर कविने संस्कृतके अन्य किसी कवि या काव्यका कोई उल्लेख नहीं किया, तथापि प्रस्तुत काव्यकृतिका सूक्ष्मतासे अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कवि संस्कृतके महाकवि कालिदास, हर्षचरितकार, बाण, विश्वनाथलवधके प्रणेता कवि माघ एवं उत्तररामचरितके रचयिता भवभूतिसे अवगत प्रभावित था।<sup>३</sup> संस्कृत कवियोंमें कवि वीर कालिदाससे सबसे अधिक प्रभावित है, और प्रस्तुत काव्यके अनेक वर्णनोंमें यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, यहाँ तक कि कुछ स्थलोंपर तो वीर कविने कालिदासके श्लोकोंको शब्दशः अपभ्रंश रूपान्तर करके अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है।

### समकालीन कवि और आचार्य

जैन साहित्यके इतिहासमें विक्रमकी ११वीं शती सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैन साहित्यके विविध-अंगों अथवा अनुयोगों—सिद्धांत व दर्शन, आचार, ज्योतिष, गणित, भूगोल एवं पुराण कथा व चरित इन सब विषयोंपर अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंकी रचनाकी दृष्टिसे यह ११वीं शती प्रारंभसे लगभग अंत तक अत्यधिक क्रियाशीलता और उत्साहकी रही है।<sup>४</sup> संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश सभी भाषाओंमें इस शतीमें बहुत उच्चकोटिके महाकाव्य, चरितकाव्य, चर्याकाव्य एवं कथा-कृतियोंकी रचना की गयी है। संस्कृतमें वीरनंदिकृत चंद्रप्रमचरित ( महाकाव्य ); अजितसेनके शिष्यका चामुंडपुराण, महासेनका प्रद्युम्नचरित ( सं० १०३१-१०६६ के बीच ), जंबूनागका मणिपतिचरित्र, जिनेश्वरसूरि कृत निर्वाणलीलावतीकथा एवं वीरचरित्र, सोमदेव कृत यशस्तिलकचंपू ( वि० सं० १०१६ ) धनपाल कृत नवसाहसकचरित ये प्रमुख रचनाएँ हैं। प्राकृतमें धनेश्वर सूरिकृत सुरसूदरी-चरित्र इसी शतीकी एक विशिष्ट रचना है। अपभ्रंशमें इस शतीकी प्रमुख रचनाएँ हैं :—महाकवि पुष्पदत्तकृत 'तिसहिमहापुरिसगुणालंकार' या महापुराण, णायकुमारचरित एवं जसहूरचरित; हरिवेणकृत 'धम्म-परिक्षा' ( वि० सं० १०४४ ), महेश्वरसूरि कृत संयममंजरी कहा; सागरदत्तकृत पार्वपुराण एवं जंबू-चरित ( वि० सं० १०७६ ) तथा नयनदिकृत सुदंसणचरित ( वि० सं० ११०० )।

उपयुक्त संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंमें जिनका कवि वीरके साथ विशेष संबंध रहा होगा, वे हैं—संस्कृतमें (१) यशस्तिलकचंपू आदिके रचयिता सोमदेवसूरि; (२) सुभाषितरत्नसन्दोह ( वि० सं० १०५० ), धर्मपरीक्षा ( वि० सं० १०७० ), पंचसंग्रह एवं उपासकाचार आदि ग्रंथोंके प्रणेता आचार्य जमिंतगि; (३) कविके ही पितृकुल लाड-बागड वंशसे संबद्ध तथा प्रद्युम्नचरित्र ( वि० सं० १०३३ से १०६६ के बीच ) के कर्ता महासेन, (४) नव-साहसक चरित ( लगभग वि० सं० १०५० ) के लेखक पद्म-या परिमल तथा (५) पांडुमलच्छीनाममाला और तिलकमंजरीके कर्ता धनपाल। एक सोमदेश्वरको छोड़कर ये सभी परमार राजा मुंजकी राजसभाके रत्न थे, और अधिकतर इन सबने धारा नगरीमें रहकर अपनी कृतियाँ पूर्ण की थीं। सोमदेवने कृष्णतृतीयके राज्यकालमें शक सं० ८८१ ( वि० सं० १०१६ ) में कृष्ण-तृतीयके चाक्यववंशी सामंत अरिवेसरीके ज्येष्ठ पुत्र वागराजकी राजधानी गंधधारामें रहकर

१. वही ३ १.३-४.

२. देखें : प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

३. वही।

४. देखिए मूल १.३.१-१२; सिलाइए रघुवंश १-२-४।

५. विशाद जानकारीके लिए देखें : फतहचंद बेलाणी : 'जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार' पृ० १०-१४।

अपने ग्रंथोंकी रचना की थी। संभव है धारवाड़के निकट गंगवाटी नामक स्थानका ही प्राचीन नाम गंगधारा रहा हो।<sup>१</sup>

अपभ्रंशमे महाकवि पुष्पदंत तथा घम्मपरिव्रजा ( वि० सं० १०४४ ) के रचयिता हरिषेण इन दोनोंसे कविका विशेष साक्षात् संपर्क होनेकी सम्भावना है। इनमेसे पुष्पदंतने तो मान्यदेवपुरी ( मलखेड, बरार ) मे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके मन्त्री भरतके आश्रयमे रहकर अपनी काव्य प्रतिभा दिखलायी और हरिषेण मुन्नके आश्रयमे धारानगरीमे रहकर अद्भुत कथाकोपके समान विचित्र कथाशेसे भरी हुई अपनी घम्मपरिव्रजाकी रचना की। अपभ्रंशभाषामे ही पाण्डुपुराण तथा 'जम्बूचरित' के कर्ता सागरदत्त विशेष ध्यान देने योग्य हैं। जैन ग्रंथावलम्बे उनके 'जम्बूचरित' का रचनाकाल भी ठीक वही कहा गया है जो वीर कृत प्रस्तुत 'जम्बूसामिचरित' का है, अर्थात् वि० सं० १०७६। सधियोंकी संख्या भी इसी काव्यके अनुसार ग्यारह बनायी गयी है। अतः इन दो रचनाओंका तुलनात्मक अध्ययन सबसे महत्त्वकी वस्तु होता; क्योंकि एक ही भाषा, एक ही नाम, एक ही नायक, एक ही विधा, एक-सा ही परिमाण तथा ठीक एक-सा ही समय, फिर भी दो सर्वथा भिन्न रचनाओंका होना प्राचीनकालकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। परंतु खेद है कि सागरदत्त कृत 'जम्बूचरित'की एकमात्र जिन प्रतिका उल्लेख जैन ग्रंथावलम्बे किया गया है, वह प्रयास करनेपर भी संपादकको उपलब्ध नहीं हो सकी। रचना स्थानका भी कोई अनुमान लगाया नहीं जा सकता। अतः इन दोनोंके परस्पर संबंध, सादृश्य या वैषम्य किसी भी सर्ववशे कुछ कहा नहीं जा सकता।

### समकालीन राजा

वीर कवि यद्यपि अपने समकालीन राजाओं तथा राजनैतिक स्थितिके संबंध स्पष्ट उल्लेख नहीं किये किंतु प्रकारांतरसे जो जानकारी दी है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जम्बूसामिचरितकी प्रशस्ति (पंक्ति ९-१०) में कविने कहा है कि बहुत-से राजकार्य, धर्म, अर्थ एवं काम गोष्ठियोंमें विभाजित समयवाले वीर कविको इस चरित-काव्यकी रचना करनेमें एक वर्षका समय लगा। पाँचवीसे लेकर सातवीं संधि तक युद्धका जो वर्णन है, वह अपने आपमें विशेष महत्त्व रखता है। निश्चित समय ( वि० सं० १०७६ ) तथा उसका निवास स्थान गुलखेड इस सामग्रीके विषयमे विचार करनेके लिए एक निश्चित आधार देते हैं। गुलखेड नामक ग्राम या नगर मालवामें सिधुवर्षी नगरी (?) के निकट ही कहीं रहा होगा। सिधुवर्षी नगरीकी भौगोलिक स्थितिका इनका ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्वी मालवामें जमुनासे निकलनेवाली एक छोटी नदीका नाम काली-सिधु या सिधु नदी है। यह नदी प्राचीन दशार्ण क्षेत्र, जिसकी प्राचीन राजधानी विदिशा थी, से बहती हुई पद्यावती नामक स्थानपर आकर बर्मणवती (चंबल नदीसे भोपालके निकट निकलनेवाली पारा नदीमे मिल जाती है। वहाँसे आगे दोनों नदियाँ मिलकर देतवामें गिर जाती हैं। इसी सिधु नदीके तीरपर भोपालसे पूर्व और विदिशासे उत्तरमे कहीं सिधुवर्षी नामक नगरी रही होगी। इससे अविक ठीक स्थिति कह सकना कठिन है।

इन दो सूचनाओंका आश्रय लेकर अर्थात् मालव देश एवं वि० सं० १०७६ ( के आस पास ) का समय, देखनेपर जान होता है कि मालवामे वि० सं० १०२४ में भंजके पिता सीयक, श्रीहर्ष या सिंहमट राज्य कर रहे थे। वि० सं० १०२४ के पहले वे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके द्वारा हराये गये थे। परंतु वि० सं० १०२९ के प्रारंभमे कृष्ण तृतीयकी मृत्यु हो जानेपर उनके अनुज क्षोद्विगदेव गद्दीपर बैठे। क्षोद्विगदेवके गद्दीपर बैठते ही सीयकने पूरी तैयारीके साथ मान्यदेवपर आक्रमण किया और क्षोद्विगदेवकी हराकर मान्यखेड नगरीको बुरी तरह दूटा व वस्तु किया। सीयककी राजधानी धारा-नगरी थी। इससे वे धारानरेश या धारानाथ कहलाते थे। सीयकके उपरान्त उनके पुत्र प्रसिद्ध भुंज राजा गद्दीपर बैठे। इन्होंने अपने पितासे प्राप्त राज्य सीमाओंकी न केवल रक्षा की बरन् उनका विस्तार भी

किया। कर्णाटक, लाट, केरल, चोलके राजाओंको उन्होंने जीता था, और अन्य भी कई प्रदेशों पर चढ़ाई की तथा अपने राज्यकी सीमा वृद्धि की थी। उन्होंने सोलंकी राजा तैलप द्वितीयको छह बार हराया था, पर सातवीं बार गोदावरीके पासके युद्धमें वे कैद कर लिये गये और वि० सं० १०५०-१०५४ के बीच मार डाले गये। गुजरातका दूसरा नाम वाक्पतिराज भी था।<sup>३</sup>

गुजरातकी मृत्युके बाद सिधुल, सिधुराज, कुमारनारायण या नव-साहसक नामोंसे विख्यात उनके छोटे भाई गद्दीपर बैठे। इन्होंने हूणोंको तथा दक्षिण कोसल, बागड, लाट और मुरल तथा अन्य कई प्रदेशोंके राजाओंको युद्धमें हराया। ये गुजरात नरेश सोलंकी चामुण्डराजके साथको लड़ाईमें मारे गये। वि० सं० १०५० और १०६६ के बीच किसी समय इनके मारे जानेका अनुमान किया गया है।<sup>४</sup>

सिधुराजकी मृत्युके उपरांत भोजराज गद्दीपर बैठे और वि० सं० १११२ तक लगभग ४५ वर्ष राज्य किया।<sup>५</sup> राज्याधिकार होते ही भोजने दिविवजयका उपक्रम किया और अनेक युद्ध किये। उनमेंसे बहुतसे युद्धोंमें ये विजयी हुए, परंतु दक्षिणमें इनकी विजय अस्थायी रही और जयसिंहके पुत्र सोमेश्वर प्रथमने कर्णाटकी गद्दीपर बैठनेके बाद दक्षिणके संघर्षमें भोजदेवकी मयानक दुर्दशा की। गुजरातमें भी भोजराजकी विजयश्री हाथ नहीं लगी। भोजराज अतिशय साहित्यिक अभिरुचि संपन्न राजा थे और इनकी सभा अनेक विख्यात कवियों-साहित्यकारोंसे अलंकृत रहती थी।

इस पृष्ठभूमिपर और कविकी सूचनाओं और वर्णनोंको जाँचनेमें विशेष सुविधा होगी।

ज० सा० च० की प्रगल्भि (पंक्ति ९-१०) में कविने लिखा है कि बहुतसे राजकार्यमें लगे रहकर इस काव्यकी रचना करनेमें उन्हें एक वर्षका समय लगा। इससे यह प्रमाणित है कि कविका किसी राजाकी राज्य सभासे घनिष्ठ सवध था।

काव्यकी पाँचवीं सधिये कविने लिखा है कि केरलमें मृगांक नामका राजा था, उसकी विलासवती नामक कन्या दैवज्ञ मुनिके कथनानुसार मगधके श्रेणिकराजकी व्याही जानी थी। परंतु हसदीपके राजा रत्नशेखरने उसके रूप-गुणोंकी प्रशंसा सुनकर उसके पिता मृगांकसे विलासवतीको अपने लिए माँगा, और न देनेपर केरलपुरीको चारों ओरसे घेर लिया। यह समाचार मृगांकके साले गगनगति विद्याधरसे सुनकर श्रेणिक राजाने सैन्य सहित केरलकी ओर प्रस्थान किया। परंतु काव्यके नायक अकेले जवूस्वामीने ही गगनगति विद्याधरके साथ जाकर मृगांककी सेनाकी सहायता करके रत्नशेखर विद्याधरको हरा दिया। आदि। छठीं सातवीं सधियोंमें दोनों सैन्यो एवं प्रमुख व्यक्तियों गगनगति—रत्नचूल, मृगांक-रत्नचूलके बीच युद्धमें केरल पक्षकी पराजय तथा अतमें जवूकुमार-द्वारा रत्नचूलके पराजयका वर्णन है, और फिर आठवीं सधिकी प्रारंभिक पंक्तियोंमें कहा है कि शार्पश्रीक कथासे अधिक जो मैंने युद्धादिका वर्णन किया उसके लिए गुस्सन मुझे क्षमा करें। कविके इस कथनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि उसने अपने काव्य-को महाकाव्य बनानेकी दृष्टिसे अपनी ओरसे यह सारा युद्धका प्रसंग जोड़ दिया। यह युद्ध वर्णन सर्वथा काल्पनिक भी हो सकता था, परंतु कविने फिर कहा है कि हाथमें धनुष, तथा दो भुजाओंमें विक्रम और कविका सहज परिकर है। आदि (६.१.३-६)। इससे ज्ञात होता है कि कविने स्वयं भी किसी युद्धमें

१-२. प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, द्वि० सं० पृ० २८२।

३. पृ० २८१, बल्लाल कृत भोजप्रबंधके संपादक पं० जगदीशलालशास्त्रीने ग्रंथकी भूमिका पृ० १ पर इन्हें 'वाक्पतिराज द्वितीय'के नामसे प्रसिद्ध कहा है।

४. जगदीशलालशास्त्री; बल्लालकृत भोजप्रबंध भूमिका पृ० ८।

५. प्रेमी, जै० सा० इति० पृ० २८२ द्वि० सं०।

६. श्री गांगुलीके मतानुसार भोजराज लगभग वि० सं० १०५६-५७ में गद्दीपर बैठे और ५५ वर्ष राज्य किया; देखिए : ज० ला० शास्त्री यो० प्र० भूमिका पृ० ८।



भाग लिया था। देखना यह है कि वह युद्ध कौन-सा, किस राजाके द्वारा, कहाँ किया हो सकता है, जिसमें वीर कविने भाग लिया हो और जो उसके वर्णनके अनुकूल भी पड़ता हो।

इस भूमिकापर जब हम विचार करके देखते हैं तो उपर्युक्त परमारवंशीय राजाओंमें सर्वप्रथम सीयक या सिंहभट्टके जीवनके ऊपर अनायास हमारी दृष्टि पहुँच जाती है, जिन्होंने दक्षिणमें कर्णाटक, लाट, केरल और चोलदेशके राजाओंको जीता था, और जिनका राज्यकाल सं० १०२४ से लगाकर सं० १०५४ तक तीस वर्षोंकी दीर्घ अवधि पर्यंत बना रहा। इसके बाद परमार वंशके राजाओंको दक्षिणमें ऐसी विजय प्राप्त नहीं हुई। अतः उपर्युक्त सारी चर्चाको ध्यानमें रखकर, तथा सब साक्ष्योंको एक साथ मिलाकर देखने-पर ऐसा अनुमान होता है कि सीयककी दक्षिण-विजय यात्राओंमें कवि अपने जीवनकालमें उनके साथ रहा, और प्रौढत्व अथवा वृद्धत्व आनेपर राजकाजमें लगे रहते ही उसने जं० सा० च० की रचना अपने पिताके मित्र मधुसूदन श्रेष्ठिके पुत्र तक्षककी प्रेरणा और उसके अनुज भरतके अति उत्साह संवर्द्धन करनेसे की और सीयककी दक्षिण-विजय यात्रा, जिसमें केरल भी सम्मिलित था, को ही अपने काव्यके अनुरूप परिवर्तित करके कविने उसे यह काव्योचित रूप दे डाला। यह अनुमान करनेमें कोई असंगति या असंभाव्यता प्रतीत नहीं होती।

सीयककी मृत्युके उपरांत भी कवि कमसे कम २५-३० वर्ष जीवित रहा, और इस बीच मुंज व सिधुल राजा हुए तथा उनके बाद भोजदेव गद्दी पर बैठे। भोजदेवके शासनकालमें भी वीर कवि कमसे कम १५-२० वर्ष जीवित रहा, और उसकी राज्यसभाका सदस्य रहा होना चाहिए। इस विषयमें अभी अन्य साक्ष्योंकी अपेक्षा बनी रहती है।

उपर्युक्त समस्त विवेचनके आधारसे राष्ट्रकूटवंशीय कृष्णराज-तृतीय तथा परमारवंशीय सीयक, मुंज, सिधुल और भोजदेव वीर कविके समकालीन व उसके संरक्षक राजा कहे जा सकते हैं। और इन सभ्योपर-से कविका जीवनकाल भी बहुत कुछ निश्चित हो जाता है जो लगभग वि० सं० १०१० से लगाकर वि० सं० १०८५ तक ढहरता है।

### कविकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इस विषयमें कविने अपनी रचनाओंमें पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। आदिमें तीर्थंकर महावीर, पार्व एवं आदिनाथ-श्रद्धासमकी स्तुति तथा महाकाव्योंकी रीतिके अनुसार सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा व काव्यदोषोंकी क्षमा करनेके लिए मध्यस्थ जानी जनोकी अभ्यर्थना तथा महाकवि स्वयंभूका नाम स्मरण व गुण संकीर्तन करके, कवि अपनी विनयशीलता प्रदर्शित करते हुए कहती है—सुकाव्य रचाना में मनसे प्रवृत्त होकर भी मैंने उसके लिए विद्यासाधन रूपी कौन-सी सामग्री एकत्र की? क्या मैंने प्रदीप नामक शब्दशास्त्रका अध्ययन किया; या छंदशास्त्र सहित निर्घट्टको जाना; या कि तर्कशास्त्रको समझा या कि महाकवि रचित, विशिष्ट काव्य सेतु<sup>१</sup>—का अध्ययन किया? व्याकरणकी गुण, वृद्धि आदि क्रियाओं, समास-विधान, अपशब्द व शुद्ध शब्दोंका भेद, अथवा छंदशास्त्र इनमें-से किसीको भी तो मैंने नहीं समझा; हाँ रामायणमें समुद्रपार सेतु बाँधा गया था, यह मैंने अवश्य सुना है—आदि-आदि। कविके इन वाक्योंसे स्पष्टतया यह प्रकट होता है कि वह शब्दशास्त्र, छंदशास्त्र, निर्घट्ट (नायकोव), तर्कशास्त्र तथा प्राकृत काव्य सेतुबंध इन सबका विशेष रूपसे गहन अध्ययन करनेके उपरांत काव्य रचाना में उद्यत हुआ। प्राचीन प्रणालीके अनुसार जैन साहित्यके चारो अनुयोग (विद्याओं) प्रथमानुयोग (पुराण, कथा, चरित, साहित्य), द्वितीयानुयोग (सैदांतिक साहित्य), तृतीयानुयोग (आचारपरक धार्मिक साहित्य) एवं करणानुयोग (जैन-भूगोल,

१. जं० सा० च० १.३.१-१०।

२. ट्रेसिए ऊपर पृ० १४, पाद टिप्पण ६।

३. महाकवि प्रवरसेन (२वीं शती ई०) विरचित 'सेतुबन्ध' महाकाव्य।

गणित ज्योतिष आदि) का कविने आचार्य-परंपरासे गंभीर एवं तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया था, यह तथ्य संपूर्ण रचनामें पद-पदपर झलकता है। मूल ग्रंथमें अनेक पौराणिक घटनाओंके उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि कविको केवल जैन पौराणिक परंपराका ही नहीं, बल्कि वाल्मीकि-रामायण व महाभारत इन दोनों पौराणिक महाकाव्यों तथा शिवपुराण आदि पुराणोंसे भी गहरा परिचय था। इनके अतिरिक्त प्राचीन कवियोंके प्रसिद्ध काव्यग्रंथो व शास्त्रीय लक्षणग्रंथो, विशेषरूपसे भरतके नाट्यशास्त्रके अनुसार अलंकार व अन्य काव्य-लक्षणोंका कविको तलस्पर्शी ज्ञान था, इसके भी अनेक प्रमाण प्रस्तुत काव्य-कृतियोंमें<sup>१</sup> हमें उपलब्ध होते हैं। संस्कृत साहित्यके कुछ प्रमुख-कवियों, लेखकोंकी रचनाओंसे कवि सुपरिचित एवं प्रभावित था, जिनमें-से महाकवि कालिदास, तथा वाण विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।<sup>३</sup>

शास्त्रीय ज्ञानके अतिरिक्त कवि लौकिक शिक्षामें भी निष्णात था। केवल काव्य-रचना ही उसका एक-मात्र जीवन व्यापार अथवा साधन नहीं था, बल्कि वह अन्य भी बहुविध राजकार्य, धर्म, अर्थ, व काम चर्चाओंमें लगा रहता था, और इन सब कार्योंमें व्यस्त रहते हुए इस 'जंबूसामिचरित' नामक चरितकाव्यकी रचना करनेमें उसे एक वर्षका समय लगा।<sup>४</sup> अर्थात् कविको समाजके विभिन्न वर्गों एवं जीवन-यापनके विविध साधनोंका साक्षात् अनुभव था। वीर कवि एक अद्वैत-भक्तियान् जैन सद्गृहस्थ था; और उसने मेघवनपत्तनमें भगवान् महावीरकी प्रतिमाकी स्थापना करायी थी।<sup>५</sup> अन्यत्र कविने स्वयं कहा है कि दरिद्रोंको दान, दूसरोंके दुःखमें दुःखी, सरस-काव्य [ की रचना ] को ही सर्वस्व माननेवाले पुरुषोंको धारण करनेसे ही चरित्रकी कृति होती है, तथा हाथमें धनुष, साधुचरित्र महापुरुषोंके चरणोंमें सिरस. प्रणाम, मुखमें सच्ची वाणी, हृदयमें स्वच्छ-प्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए श्रुतका ग्रहण, तथा दो भुज-लताओंमें विक्रम यह वीर ( पुरुष, कवि ) का सहज परिकर हुआ करता है।<sup>६</sup> अर्थात् वीर कवि पूर्ण रूपसे एक अनुकंपावान सलक्षण जैन गृहस्थ होनेके साथ ही साथ एक सच्चा वीर पुरुष भी था।

कवि केवल अपभ्रंश रचनामें ही सिद्धहस्त नहीं था। संस्कृत एवं प्राकृतमें भी उसे निर्विघ्न नैपुण्य एवं गति प्राप्त थी। संस्कृतके कुछ श्लोक प्रथम संधिके अंतमें तथा एक आर्या पंचम संधिके ११वें कडवकमें उपलब्ध हैं, और प्राकृतकी अनेक गाथाएँ प्रत्येक संधिके प्रारंभमें विद्यमान हैं। प्रशस्ति भी प्राकृत गाथाओंमें लिखी गयी है। पहली और सातवीं संधियोंके बीचमें भी ( १.११; ७.६ ) प्राकृत गाथाएँ हैं। इन गाथाओंकी भाषा गूढ़ अर्थ प्रधान व क्लिष्ट है, और ये शुद्ध साहित्यिक शैलीमें निबद्ध हैं, तथा अत्यंत गंभीर और विशद भावोंसे स्रोतित हैं। संपूर्ण रचना संस्कृतके सत्सम शब्दोंसे भरी है, और शैली भी संस्कृत काव्योंके अनुरूप समास, अलंकार तथा श्लेष प्रधान है। ये बातें यह सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त हैं कि संस्कृत रचनामें निपुण होनेका कविका दावा असत्य नहीं है, और प्राकृत रचनामें उसकी सिद्धहस्तता प्रकट करनेके लिए तो कविकी प्रस्तुत रचनामें उपलब्ध गाथाएँ ही पर्याप्त प्रमाण हैं। इस प्रकार कविकी एक मात्र कृति 'जंबूसामिचरित' से प्रमाणित है कि कवि संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश तीनों भाषाओंमें निष्णात था, तथा किसी भी भाषामें काव्य रचना करनेमें समर्थ था।

१. जं० सा० च० १.१०.७-८; ३.१२.१-२; ४. १८.१२-१३; ५-८.३१-३६, एव ५.९.१४.।

२. चही, ३.१३.४; ७.१.३-४; ८.१.३-१०, ९.१.१-४; एवं १०.१.१-४।

३. विशेषके लि० देखें—प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

४. जं० सा० च० प्रशस्ति गाथा ५।

५. जं० सा० च० प्रशस्ति गाथा ४।

६. जं० सा० च० ६.१.१-६।

### ३. कथासार, कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन और मौलिकता

तीन तीर्थंकर महावीर, पार्श्व एवं कृपयकी स्तुति बंदना करके (१.१) अपने विद्याभ्यास, (१.३) माता-पिता (१.४) एवं प्रेरणादायकोका परिचय देकर कवि जंबूस्वामीचरितकी कथा प्रारंभ करता है (१.५-६)। भगवद्दश (१.६-८) के राजगृह नगर (१.९-१०) में श्रेणिक नामका राजा (१.११) था, उसकी कई सहस्र सुंदर रानियां (१.१२) थी। एकवार भ० महावीर अपने समवशरण सहित विपुलाचल पर पधारे (१.१३)। राजा अपने समस्त परिवार, परिजन, पुरजन, व सेना सहित भगवान्‌के दर्शनोको गया (१.१४-१६) तथा स्तुति-बंदना करके (१.१७-१८) उचित स्थानपर बैठ गया। (सधि—१)।

श्रेणिकके अनुरोध करने पर भगवान्‌ने जीवादि तत्त्वोका उपदेश दिया (२.१-२)। उसी समय एक महातेजस्वी देव अपनी चार देवियों सहित अपने आकाशगामी विमानसे उत्तरा व भगवान्‌को बंदना करके समवशरणमें देवताओके कोठेमें बैठ गया। श्रेणिकके प्रश्न करने पर भगवान्‌ने कहा यह विद्युमाली नामका देव है, जो सातवें दिन स्वर्गसे च्युत होकर इसी नगरमें मनुष्य रूपमें जन्म लेगा व तप करके उसी भवसे मोक्ष जायेगा (२.३)। श्रेणिक-द्वारा पुन. पूछे जाने पर भगवान्‌ने उस देवके पूर्व भवोकी कथा इस प्रकार कहनी प्रारंभ की—

इसी भगव देशमें वर्द्धमान नामका ब्राह्मणोका अप्राहार प्राप्त है (२.४)। वहाँ सोमशर्म नामका वैद्वज ब्राह्मण रहता था, जिसकी सोमशर्मा नामक पत्नी थी। उनके दो शास्त्रज्ञ पुत्र हुए, बड़ा भवदत्त तथा छोटा भवदेव। कुछ काल पश्चात् व्याधिग्रस्त होकर उनका पिता विष्णुका स्मरण करता हुआ जीवित ही चित्तमें प्रविष्ट होकर मृत्युधर्मको प्राप्त हुआ। पतिव्रता सोमशर्मनि भी चित्तमें जलकर तत्क्षण पतिका अनुगमन किया। माता-पिता दोनोंके विद्योगको स्वजन्मके धर्म बधाने पर (२.५) किसी-किसी तरह सहन करते हुए बड़ा भाई भवदत्त न्याय-नीतिपूर्वक गृहस्थधर्मका पालन करने लगा। उस समय बड़ा भाई भवदत्त अठारह वर्षका था, और छोटा भवदेव चारह वर्षका। कुछ दिन बाद सुधर्म मुनिका उपदेश (२.६) सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और छोटे भाई भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर वह सधमें दीक्षित हो गया (२.७)। बारह वर्ष पश्चात् मुनिसंघ विहार करते-करते पुन उसी गाँवमें आया। छोटे भाई भवदेवको भी दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुनी अनुज्ञा लेकर भवदत्त मुनि भवदेवके घर आये (२.८)। उस समय भवदेवका विवाह हो रहा था। बड़े भाईका आगमन सुनकर वह नववधूको अर्द्धमंडित ही छोड़कर गुरुत श्राद्ध धाया (२.९), और मुनिके पूछने पर उसने बताया कि मैंने इसी गाँवके दुर्मर्षण नामक ब्राह्मण व उगमनी नामदेशी नामक पत्नीको नागवसू नामक कन्यासे विवाह किया है (२.११)। भवदेवके आप्रहते वही ब्राह्मण वैद्वज भवदत्त मुनि वहाँ संघ ठहरा था, वहाँ लौट चले। नगरके अन्य नर-नारी कुछ दूर तक मुनितो छोड़कर नगरको लौट गये, पर मुनिने भवदेवको वापिस लौट जानेको नहीं कहा। अत नार्दिक प्रति श्रद्धा व रज्जुके कारण भवदेव घर जानेको अत्यंत उत्सुक होने पर भी लौट नहीं सका और मुनिके साथ वहाँ मंद टहरा था, वहाँ पहुँच गया (२.१२)। सधमें जाकर अन्य मुनिजनोको प्रेरणासे तथा नार्दिक भी ऐसी ही अनर्पण इच्छा जानकर उनके सम्मानकी रक्षाके लिए वे-मनमें भवदेवने आचार्यने शोधा से ली (२.१३)। उत्तमतर मय पत्नीने विचार कर गया। भवदेव दिन-रात नग-सूते ध्यानमें लीन रहता हुआ, वगैरे लौटकर पुन. उसके साथ कामयोग मोगनेने अमररक्षा प्रतीक्षामें समय व्यतीत करने लगा (२.१४)। बारह वर्ष पश्चात् मुनि संघ पुन. उसी वर्द्धमान गाँवके निरुद्ध आकर ठहरा। भवदेव इनमें बहुत उत्तमतर हुआ, और अगता करने मनेमें श्रेय व श्रेय मुनिको अर्द्धमें पत्रा हुआ अपने घरकी ओर गया (२.१५-१६)। गाँवमें आकर ही पुन. निरुद्ध-यात्रामें उसकी नागवसूमें भेंट हो गयी। वृत्ताके पालनेमें अति इच्छामान, निरुद्ध-यात्रा में भवदेवने भवदेव उसे पशुपान नहीं सका (२.१६)। जाने कुछ व पत्नीके भवदेवने पुन. घर आकर उसे पशुपान मनेमें निरुद्ध भवदेव है, और धर्मरक्षा होता पशुपान है। उस पशुपान में भवदेवने भवदेव दिया और भवदेव वगैरे धर्मरक्षा कर व नागवसूमें पशुपान

देकर भवदेवको प्रतिमुद्र किया ( २.१७-१८ ) । इस प्रकार बोध प्राप्त करके भवदेवने आचार्यके समक्ष जाकर सब कुछ बतलाकर प्रायश्चित्त किया, पुन दोहा ली ( २.१९ ) और अति कठोर तप करने लगा । तप करके दोनो भाई मरकर तीसरे स्वर्गमें देव हुए ( २.२० ) । ( संधि-२ ) ।

मंदराचलसे पूर्व दिशामें पूर्व-विदेहमें पुंडरिकिणी नामकी नगरी ( ३.१-२ ) है । वडे भाई भवदत्तना जीव स्वर्गमें अपनी बायु पूरी करके, वहाँके राजा वज्रदंत व उसकी रानी यशोवत्याका सागरचंद्र नामक पुत्र हुआ ( ३.३ ) । उसी देशमें वीताशोक नामक नगरीमें, छोटे भाई भवदेवका जीव, वहाँके राजा महापद्म और उसकी वनमाला नामक पट्टरानीका शिवकुमार नामक पुत्र हुआ ( ३.३ ) । युवा होनेपर उसका युवराज पद्म-पर अभिषेक एवं अनेक राजकन्याओंके साथ परिणय करा दिया गया । उत्तर पुंडरिकिणी रगनी में सुवर्णतिलक नामके एक महामुनि पवार ( ३.४ ) । उनसे धर्म श्रवण एवं दोनों भाइयोंके पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त करके कुमार सागरचंद्र वही दीक्षित हो गया ( ३.५ ) । मुनिमंथके साथ विहार करते हुए मुनि सागरचंद्र छोटे भाई भवदेवके जीव युवराज शिवकुमारको प्रतिबोध देनेकी इच्छासे वीताशोक नगरीमें पवारे । उन्हें देखकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण होनेमें शिवकुमारको भी वैराग्य हो गया और उनमें दोहा लेनेकी अनुमति माँगी ( ३.७ ) । परंतु दोहाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञा न मिलनेसे घरमें ही मंत्रीपुत्र दृढदर्मके हाथों केवल कांजीका शुद्ध आहार लेते हुए अनेक वर्षों तक कठोर तप करके आध्यात्मिक अंतर्गमें संयास-पूर्वक मरण किया ( ३.९ ) । उसी तपके प्रभावसे पहले भवदेव, फिर स्वर्गमें देव और फिर शिवकुमारका वह जीव विद्युन्माली नामका यह अति तेजस्वी देव हुआ है । उबर बड़ा भाई भवदत्त, फिर देव, और फिर सागरचंद्र मुनिका जीव भी आध्यात्म पूरा करके स्वर्गमें देव हुआ । अब विद्युन्माली देव ननुप्य जन्म लेकर विद्युत्प्रभ नामक चोरके साथ दोहा लेगा ( ३-१० ) ।

विद्युन्माली देवकी चार देवियोंका पूर्वजन्म पूछनेपर भगवान्ने कहा—भारतदेशमें चंपानगरीमें सूर्यसेन नामका एक सेठ जयमद्रा, सुमद्रा, चारिणी और यशोमती नामकी चार अतिसुंदर पत्नियोंके साथ रहता था ( ३-१० ) । कुछ काल बाद कर्मविपाकसे सूर्यसेनको कुछ आदि अनेक भयानक व्याधियाँ हो गयीं और वह अपनी पत्नियोंसे बड़ी ईर्ष्या रखने लगा, तथा द्वेष व शंकासे उन्हें नानाप्रकारकी यातनाएँ देने लगा ( ३-११ ) ।

एक बार वसंतऋतु ( ३.१२ ) में नागयज्ञकी यात्रा ( पूजा )-के अवसर-पर वे चारों भी नागदेवताके दर्शन कर निकटस्थ वासुपूज्य भगवान्के मंदिरमें गयीं । वहाँ सुमतिनामक मुनिसे उन्होंने श्रावणके व्रत ले लिये । सूर्यसेनकी मृत्युके उपरांत सब संपत्ति भविर निर्माणमें लगाकर चारो बहूएँ मुद्रा आर्थिकाके पास आर्थिकाएँ हो गयीं । वे ही चारो तप करके मरणीपरान्त स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी चार प्रियाएँ हुई हैं ( ३.१३ ) ।

पुन. विद्युच्चोरके संबंधमें पूछने पर भगवान्ने कहा—मगधदेशमें हस्तिनापुर नामक नगरमें विसंज्र नामके राजा व उसकी श्रीसेना नामक प्रिय रानीसे विद्युत्प्रभ नामका पुत्र हुआ जो चोरीके व्यसनके बशीभूत होकर पिताका राज्य छोड़कर राजगृह नामक नगरमें आकर कामलदा नामक वैश्याके घरमें रहता है, व चोरीका धन ला-लाकर उसका घर भरता है ( ३-१४ ) । ( संधि ३ ) ।

तब विद्युन्माली देवके जन्मकुलके संबंधमें पूछनेपर भगवान्ने कहा कि यह देव इसी राजगृह नगरी-के निवासी व यही समयधारणमें उपस्थित श्रेष्ठी अरहदास व उसकी प्रिय भार्या जिनमतीके पुत्ररूपमें जन्म लेगा । भगवान्ने वे वचन सुनकर एक यक्ष अपने गोश्रीके प्रणसा करता हुआ प्रसन्नताके कारण ठठकर नाचने लगा ( ४.१ ) । इसका कारण पूछने पर भगवान्ने कहा कि इसी नगरीमें वनदत्त नामका सेठ रहता था । उसकी गोम्वती नामकी भार्या थी । उसके दो पुत्र हुए, बड़ा अरहदास जो बहुत सज्जन व धर्मात्मा हुआ, और छोटा जिनदास जो जवानकी वेगमें कुसंगतिके प्रभावसे जुवा आदि व्यसनोमें डूरी तरह पड़ गया । एक दिन वह जुएमें छत्तीस सहस्र स्वर्णमुद्राएँ हार गया । घरसे मुद्राएँ लाकर देनेका वचन देने पर भी छलक नामके एक जुआड़ीने जिनदाससे व्यर्थ झगड़ा करके उसके पैटमें कटारी मार दी ( ४-२ ) । यह नूचना

मिलने पर बड़ा-भाई अरहदास उसे धर ले गया, और सब उचित उपचार किया। पर वह बच नहीं सका, और भाईके सदुपदेशसे श्रम भावसे मरकर उसने यक्ष योनिमें इस रूपमें जन्म लिया है। अतः अपने पूर्व-जन्मके पितृकुलमें भाईके घरमें अंतिम केवलीके जन्म होनेकी बात सुनकर अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ आनन्दके कारण नाच रहा है। (४-३)।

इसके पश्चात् भगवान् ने नानाप्रकारसे धर्मोपदेश किया व आगे होनेवाले संपूर्ण जंबूस्वामी चरित्र-को विस्तारसे बतलाया। धर्म ध्वषण करके व नानाप्रकारसे श्रावकब्रतोंको लेकर राजा सहित सब पुरज्ज नगरको लौट आये। सात दिन पश्चात् अरहदासकी जिनमती भायनि सोते समय रात्रिके अंतिम प्रहरमें पाँच माँगलीक स्वप्न देखे (४-५) :—

(१) अत्यंत सुगंधित जंबूफलोका समूह, (२) सनस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला ध्वजसहित अग्नि, (३) फूला हुआ व फलभारसे नम्र सुगंधित शालिशेन, (४) चक्रवाक् हंस आदि पक्षियोंके समूह कलरबते युक्त सरोवर एवं (५) नाना मगरमच्छ—कच्छपादिते घरा हुआ विद्याल सागर। इसी समय विद्युन्माली देव जिनमतीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ (४-७)। नौ मास पूर्ण होने पर वसंतकी शुक्ल पंचमीको सोमवारके दिन जब चंद्रमा रोहिणी नक्षत्रमें विद्यमान था, प्रत्युप कालमें पुत्र जन्म हुआ। बहुत आनंदसे पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया। स्वप्नमें जंबूफलोका प्रथमदर्शन होनेसे पुत्रका नाम जंबूस्वामी रखा गया (४-८)। उचित समयपर बालककी शिक्षा-दीक्षा हुई और उसके रूप (४-९) व गुणोंकी द्वाति चारों ओर फैलने लगी (४-१०)। जहाँ भी वह जाता नगरकी नारियाँ उसे देखकर अपनी सब सुख-दुःख खो बैठतीं और कामबाणोंसे पीड़ित हो जाती (४-११)।

अरहदासके चार घनाढ्य-बालमित्रोंने बचपनमें खेल-खेलमें की हुई प्रतिज्ञानुसार अपनी अपनी चार कन्याओंको ( जो पूर्वजन्ममें विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ थीं ), जिन्हें सब प्रकारकी स्त्रीजनोचित विद्याओं व कलाकौशलकी शिक्षा दी गयी थी (४-१२), को जन्मसे ही अद्वितीय सुंदरियाँ थीं, और दिन-दिन पूर्ण यौवन (४-१३-१४) को प्राप्त हो रही थीं, अरहदाससे जंबूस्वामीके लिए वधू रूपमें स्वीकार करनेका अनुरोध किया। जिनमतीकी अनुमति लेकर अरहदासने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया (४-१४)। पाँचों श्रेष्ठियोंके घरोंमें विवाहकी पूरी तैयारियाँ होने लगीं (४-१५)। इतनेमें वसंत वा गृष्मा (४-१५)। नगरके स्त्री-पुरुष युगलोंके साथ राजा नगरसे निकला और उपवनमें पहुँचा (४-१६)। वहाँ उपेक्ष्य उद्यान क्रीड़ा को गयी (४-१७)। जंबूस्वामीने भी उन्मुक्त नाचते कामिनियोंके साथ हास-परिहास किया (४-१८)। पश्चात् सबने वेर तक जलक्रीड़ा की (४-१९)। जलक्रीड़ा समाप्त करके जब सब लोग नगरमें जानेकी तैयारी कर रहे थे (४-२०) कि राजाका विषमसंग्रामधूर नामक पटुहाथी बंधन तुड़ाकर भाग निकला, और उसने नगर व उपवनमें सर्वत्र मृत्यु एवं विनाशका भयावह दृश्य उपस्थित कर दिया (४-२०-२१)। उसे कोई बध्म नहीं कर सका। जंबूस्वामीने सरलतासे उसपर विषय प्राप्त कर ली (४-२२)। इसपर राजाने बहुत प्रकारसे जंबूस्वामीकी प्रशंसा की। (संवि-४)।

विविध प्रकारसे जंबूस्वामीका सम्मानादि करके राजाने उसके साथ नगरमें प्रवेश किया और अपनी राजसभा लगायी ( ५ १ )। एक दिन जब राजा जंबूस्वामीके साथ सभामें बैठा था, तो गगनगति नामन्त्र विद्याघर अपने विमानसे राजसभामें आकर उतरा, और प्रणाम करने निवेदन करने लगा—देव, मैं सहस्र-शृंग नामक पर्वतपर रहनेवाला गगनगति नामका विद्याघर हूँ। मलयाचलमें केरल नामकी नगरीके राजा भृगांशुके मालवीलता नामक मेरी बहन व्याही गयी है। उनकी दिलासवती नामकी अपूर्व सुंदरी कन्या है। मुनिके कपनामुनार उसका परिणय आन्ते किया जाना है (५-२) उधर हंसद्वीपके रत्नचूल नामक प्रबंध बली विद्याघर राजाने वलपूर्वक उत्त कन्याको प्राप्त करने हेतु अपनी सेनाके साथ केरल नगरीको चारों ओरसे घेर लिया है, तथा वहाँ बड़ा विनाश कर रहा है। जब अन्य कोई उपाय न देखे, क्षात्रवर्धनी रक्षा हेतु अपने सीमित सैन्य साधनके साथ भृगांक राजा उसके दिन नगरसे बाहर निकलकर रत्नरोवरसे

युद्ध करेगा, और सर्वनाशको प्राप्त होगा ( ५.३ ) । मैं अपना धर्म निभाने वहीं जा रहा हूँ । रास्तेमें आपकी सभा देखकर प्रासंगिक समाचार आपसे निवेदन कर दिया है । उसके इतना कहने पर जंबूस्वामी राजाकी अनुज्ञा लेकर, उसके साथ विमानमें बैठकर अकेले ही केरल नगरीकी ओर चल दिये । इधर राजाने भी अपने सेनापतियोंको केरल नगरीकी ओर प्रयाण करनेके लिए तैयार होनेका आदेश दिया ( ५.५ ) । प्रयाणकी तैयारियाँ की गयी व राजाने सेनाके साथ प्रस्थान किया ( ५.६ ) । रास्तेमें विध्याटनी पड़ी ( ५.८ ) । उसे पार कर राजाने विध्यप्रदेगमें प्रवेश किया ( ५.९ ) । आगे रेवा नदी पड़ी और उसके तट पर कुरल पर्वतके निकट राजाने सेना सहित पड़ाव डाल लिया ( ५.१० ) । इधर गगनगति विद्याधरके साथ जंबूस्वामी केरल नगरीमें पहुँचे और नगरके बाहर ही विमानसे उतरकर मृगाक राजाके दूत बनकर रत्नशेखरकी छावनीमें प्रविष्ट हो गये ( ५.११ ) । रत्नशेखरकी सभामें पहुँचकर, दूसरेके निमित्त दी हुई कन्याको बलपूर्वक लेनेके कदाग्रहपर उसे बहुत बुरा-मला कहा ( ५.१२-१३ ) । इससे रत्नशेखर बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने अपने भटोको जंबूस्वामीको पकड़कर मार डालने की आज्ञा दी । समास्थलमें ही भयानक युद्ध प्रारंभ हो गया । गगनगतिने जंबूस्वामीको एक दिव्य डाल व तलवार भेंट की, व स्वयं भी युद्ध करने लगा । स्वामीने अकेले ही नाना प्रकारके पतरे बदलते हुए सहस्रों शत्रु भटोंको मार गिराया व उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया ( ५.१४ ) । ( संवि—५ ) ।

अपने चरोसे यह सब समाचार पाकर मृगाक राजाने तुरंत अपनी सेनाको युद्धमें चलनेकी तैयारी करनेके आदेश दिये । वीर वधुओने अपने प्रियतमोंको नाना संदेश दिये ( ६.३ ) । सेनाने नगरसे प्रयाण किया ( ६.४ ) । दोनों सेनाओंमें भीषण युद्ध हुआ ( ६.५-६ ) । संग्रामका भीषण दृश्य ( ६.७ ) । भटोंकी अवस्था ( ६.८ ) । युद्ध ( ६.९ ) । गगनगति और रत्नशेखर विद्याधरमें आकाशमें युद्ध हुआ, उसमें गगनगति धायल हो गया ( ६.१०-११ ) । रत्नशेखर आकाशसे नीचे उतरा, और मृगाक राजासे युद्ध करके, उसे परास्त करके बाँधकर ले गया ( ६.१२-१४ ) । इससे केरल राजाकी सेना पराभूत भावसे निश्चेष्ट व अधोमुख होकर बैठ रही । ( संवि—६ ) ।

छावनीके भीतरसे युद्ध करते हुए बाहर निकलने पर जंबूस्वामीको गगनगतिसे युद्धके सब समाचार ज्ञात हुए, व स्वामीकी प्रेरणासे केरल सेना पुनः युद्धके लिए तत्पर हो गयी । दोनों सेनाएँ पुनः आमने-सामने डट गयी ( ७.१-५ ) फिर बीरोका परस्पर महान् युद्ध हुआ, व अनेक कायर जन भाग खड़े हुए ( ७.६ ) । इधर रत्नशेखरसे सामना होने पर जंबूस्वामीने उसे अपने साथ दंड युद्धके लिए ललकारा, जिससे व्यर्थ नरसंहार न हो । दोनों सेनाओंको अलग-अलग दूर हटा दिया गया ( ७.७ ) । जंबूस्वामी एवं रत्नशेखरमें महाभयानक युद्ध हुआ ( ७-८.१० ) । जंबूस्वामीने युद्धमें रत्नशेखरको परास्त करके बाँध लिया, और मृगाक राजाको बंधनसे छुड़ा लिया, तथा मृगाक राजाके अनुरोधसे केरल नगरीको गये । 'वहाँ जाकर रत्नशेखर विद्याधरकी भी बंधन मुक्त कर दिया, व केवल क्षात्रधर्मकी रक्षा हेतु युद्ध करनेके लिए क्षमा माँगी । तत्पश्चात् कुछ दिन केरल नगरीमें रहकर पत्नी व कन्या सहित मृगाक राजा, गगनगति विद्याधर एवं रत्नशेखर विद्याधरादिके अनेक विसालोंके साथ कुमारने मगधकी ओर प्रयाण किया । इन सबके साथ पर्वतके निकट ही ससैन्य श्रेणिक राजासे भेंट हो गयी । राजाने जंबूस्वामी व अन्य सबका समुचित स्वागत किया । गगनगति विद्याधरने सबका परिचय दिया, विलासवती कन्याका राजासे परिणय करा दिया गया । मृगाक व रत्नशेखरमें मैत्री करा दी गयी । सब लोग अपने-अपने स्थानोंको विदा कर दिये गये । श्रेणिक राजाने भी राजगृहकी ओर प्रयाण कर दिया । राजगृह पहुँच कर नगरके बाहर ही उपवनमें सुषर्मा स्वामी ५०० मुनियोंके साथ विराजमान दिखाई दिये । राजा व अन्य सबने मुनिको वंदना की, और जंबूकुमारने भी प्रणाम किया ( ७.११-१३ ) । ( संवि—७ ) ।

आठवीं संधिके प्रारंभमें कवि विनयपूर्वक निवेदन करता है कि आर्षप्रोक्त कथासे अधिक वसंतकीड़ा, हस्तिका उपद्रव, नरेंद्रका प्रस्थान एवं युद्धका वृत्त, यह जो मैंने कहा, उसके लिए गुणीजन मुझे क्षमा करें । इसके पश्चात् कई गाथाओंमें काव्यके लक्षणीपर प्रकाश डालकर कवि कथासूत्रकी आगे बढ़ाता है । सुषर्मा

स्वामीको देखकर अपने मनमें अनायास उनके प्रति बड़ा स्नेह उमड़ आनेसे जंबूस्वामीने सुघर्म गणधरसे इसका कारण पूछा। तब सुघर्मस्वामीने भवदत्त-भवदेवके जन्मसे लगाकर दोनोंके पाँच भवोका वर्णन किया। तू पहले भवदेव था, मैं भवदत्त। तत्पश्चात् दोनों स्वर्गमें एक साथ देव हुए। अनंतर तू शिवकुमार हुआ, मैं सागरचंद्र। इनके पश्चात् फिर दोनों देव हुए। तू विद्युन्माली देवके रूपसे च्युत होकर यहाँ जंबूस्वामी हुआ है, और मैं स्वर्गसे च्युत होकर इसी मगध देशमें संवाहन नामक नगरमें सुप्रतिष्ठ राजा व हविमणी रानीका सुघर्म नामका पुत्र हुआ। एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा सपरिवार महावीर जिनेंद्रके समवशरणमें गया, और भगवान्का उपदेश सुनकर वही दीक्षित हो गया। सुघर्मकुमारने भी उसी समय पिताके मार्ग-पर अनुगमन किया। पिता भगवान्के चतुर्थ गणधर हुए और मैं सुघर्म उनका पाँचवाँ गणधर बना। वही मैं ऋतुपिषधके साथ विहार करते हुए यहाँ आया हूँ। तथा वे जो तुम्हारी चार बेवियाँ थीं, उन्होंने भी पूर्वजन्मके स्नेहसे बंधे हुए सागरदत्तादि चार श्रेष्ठियोंकी चार अति सुंदर कन्याओंके रूपमें जन्म लिया है। आजसे दसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा (८१-५)। यह सब इतिवृत्त सुनकर जंबूस्वामीको ससारसे वैराग्य हो गया, और उसने आचार्यसे दीक्षा देनेका अनुरोध किया, व आचार्यके आदेशसे घर जाकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। माता-पिताके अनेक प्रकारसे पुत्रको समझाने व सांसारिक सुख भोगनेके लिए प्रेरित करनेपर जब वह किसी भी प्रकार नहीं माना तो उन्होंने कन्याओंके पिताओंको यह समाचार भिजवाकर अनुरोध कराया कि कन्याओंके लिए अन्य वर देख लिया जाये। कन्याएँ इसके लिए प्रस्तुत नहीं हुईं, व अपने अपूर्व सौंदर्य और काम-चेष्टाओं द्वारा (८१-११) जंबूस्वामीको अपने वशमें कर लेनेके विस्वाससे स्वामीको यह समाचार भिजवाया कि स्वामी केवल एक दिनके लिए विवाह कर लें, अगले दिन प्रातः दीक्षा ले लें, तब उन्हें कोई नहीं रोकेगा। स्वामीने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वणिक् गोपाचारकी भेंट रीतिसे विवाह हुआ (८१-१२-१३) विवाहके उपरांत जंबूस्वामी चारों वधुओंके साथ अपने घर आये। इतनेमें सायंकाल हो गया, व घड़ी दीरमें चारो ओर घना अंधेरा छा गया (८१-१४)। कुछ देर बाद चंद्रोदय हुआ और स्वामी वधुओं सहित अपने वासगृहमें प्रविष्ट हुए (८१-१५)। सब समागत मित्र-स्वजन अपने अपने घरोंको विदा कर दिये गये, वासगृहके द्वार निखिलरूपसे बंद कर दिये जानेके उपरांत वधुएँ जंबूस्वामीको वशमें करनेके लिए नानाप्रकारकी कामचेष्टाएँ करने लगी (८१-१६)। (संघ.८)

नीची सधिके आदिमें दो गायालीमें पुनः काव्यके कुछ लक्षण कहकर कवि कथाको आगे ले चलता है। वधुओंको उन सब कामचेष्टाओंका जंबूस्वामीपर रंचमात्र भी कोई प्रभाव न पड़ते देखकर वधुओंको बड़ी निराशा हुई, और उन्होंने क्रम क्रमसे जंबूस्वामीपर व्यंग्य करते हुए उसे इंद्रिय सुखोंमें प्रेरित करनेके लिए प्रचलित लोक कथाएँ सुनायी आरंभ की। जंबूकुमारने भी प्रत्येक वधूकी कथाके उत्तर स्वरूप, उसके आशयको उद्धृत करनेवाली उतनी ही कथाएँ कही। (इन सब कथाओंके लिए देखिए . प्रस्ता. 'जंबूस्वामी चरित'की अंतर्कथाएँ एवं मूलका हिंदी अनुवाद ९.४ से ९.११)।

इस प्रकार परस्परमें कथा बार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी। इधर चोरीके हेतु वेद्याबाद (९.१२) मेंसे निकलकर मिथुनोकी कामक्रीडा—(९.१३) को देखता हुआ विद्युच्चर नामक चोर जंबूकुमार (स्वामी) के घर पहुँचा व भित्तिसे लगकर छिपकर छड़ा हो गया परंतु वर-वधुओंके सारे कथा-गलापकी मुनरुर उसका चित्त बंदल गया। जंबूकुमारकी व्याकुलतासे जागती, बार बार जाती आती मानी उसे देख लिया व पूछा तू कौन है व क्या चाहता है? विद्युच्चरने अपना परिचय दिया, और माँकी व्याकुलताका कारण पूछा। माँसे सब सुनकर उसने कहा—माँ किसी तरह मुझे भीतर प्रवेश कराओ, तो मैं भी द्वारको समझानेका प्रयत्न करके देखता हूँ। यदि समझ जाये तो ठीक, अन्यथा मैं भी बिहान होते ही इसीके साथ तत्पश्चात्पण अनुसरण करूँगा। माँने अपना छोटा भाई कहकर पुत्रकी अनुमति लेकर उसे भीतर प्रवेश कराया। जंबूस्वामीने उस मामाका उचित स्वागत अभिनंदन किया, और पूछा कि मामा इतने बर्षों तक दान्ते बर्ताने-भ्रमण किया (९.१८)। विद्युच्चरने दक्षिण दिशामें समुद्रने लगाकर, क्रमशः दक्षिण, दक्षिण, उत्तर व अंतमें पूर्व दिशामें अपने भ्रमण किये हुए सब देवोंके नाम लिये (९.१९)। (संघ.९)।

इसके उपरांत जंबूस्वामीकी स्तुति करके विद्युच्चरने उसे भोगोंकी ओर प्रेरित करनेके लिए भौतिक दर्शनके तर्क दिये। स्वामीने युक्तिपूर्वक विद्युच्चरके समस्त तर्कोंका खंडन कर उसे निरुत्तर कर दिया ( १०.१-५ ), और अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तांत भी कहा ( १०.६ )। यह सुनकर विद्युच्चर बोला, यदि किसी तरह तुम्हें पूर्वजन्मोंमें देवसुख प्राप्त हो गया तो बार-बार हृदयेच्छिज सुख कहाँसे प्राप्त होगे। इस संबंधमें विद्युच्चरने उस जैटका आख्यान सुनाया जिसने एक बार कहीं मधुका स्वाद लेकर, मधुकी जाशमें अन्य कुछ खाना ही छोड़ दिया ( १०.७ )। इसपर जंबूस्वामीने वाणिकूत्रको कथा सुनायी ( १०.८ )। क्रमशः दोनोंने उत्तर-प्रत्युत्तर स्वरूप बार-बार कथाएँ कही। ( कथाओंके लिए देखिए भागे, प्रस्तावना—जंबूसामिचरिउकी अंतर्कथाएँ व हिंदी अनुवाद १०.७ से १०.१७ ) इस समस्त चर्चाके होते-होते विद्युच्चरको भी प्रतिबोध हो गया, और भक्तिपूर्वक जंबूस्वामीकी स्तुति करके स्वयं भी उनके साथ दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की ( १०.१८ ) जंबूस्वामीकी चारों वधुओं व माता-पिताको भी ज्ञान हो गया। ये सारे समाचार मिलनेपर श्रेणिक राजाने बड़े उछाहसे जंबूस्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। जंबूस्वामी व राजा सहित सब कोई सुधर्मगणधरके पास पहुँचे ( १०.१९ )। जंबूस्वामीने आचार्यसे दीक्षा ग्रहण की व एक एक कर ममस्त वस्त्राभूषणको उतार फेंका, तथा सिरसे केज ढीब कर लिया। विद्युच्चरने भी दीक्षा ले ली। जंबूस्वामीके पिता अरहदास भी निर्णय माधु हो गये। उनकी माता व चारों वधुएँ भी आर्थिकाएँ हो गयी, व कठोर तप करने लगीं। जंबूस्वामी गुप्तके साथ रहकर बारह प्रकारका महान् तप करने लगे ( १०.२०-२२ )।

अठारह वर्ष बीतनेपर माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल विपुलगिरिके शिखरसे सुधर्मस्वामी निर्वाणको प्राप्त हुए ( १०.२३ )। उसी दिन जंबूस्वामीको भी कैवल्य प्राप्त हुआ। देवताओंने बड़ा उत्सव मनाया। इसके पश्चात् जंबू अठारह वर्षों तक धर्मोपदेश करते हुए, अंतमें विपुलगिरिके गिरधरपर निर्वाणको प्राप्त हुए। पिता-माता व चारों वधुएँ तप करके समाधि एवं सल्लेखनापूर्वक मरकर विभिन्न स्वर्गोंमें देव हुए ( १०.२४ )।

जंबूस्वामीके निर्वाणगमनके उपरांत विद्युच्चर मुनिसघके साथ विहार करते-करते तात्रलिप्ति पवारे व नगरके बाह्य ही ठहर गये। वहाँ भूत-पिशाचोंने समस्त सघपर महान् उपसर्ग किया। एक विद्युच्चर महामुनिको छोड़कर अन्य कोई मुनि उस उपसर्गको सहन नहीं कर सके और योग-ध्यान छोड़कर भाग निकले। उस महान् उपसर्गमें विद्युच्चर मुनि विलकुल अडिग व निर्भय रहे ( १०.२५-२६ ) ( संधि-१० )।

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग बढ़ता गया, वैसे-वैसे मुनि अनित्य, अशरण, अशुचि व आदि बारह भावनाओंका चिंतन करते हुए कर्मोंको काटने लगे। दशविध वर्गोंका ध्य न व अनुप्रेक्षाओंकी भावना करते हुए, परीपहोके बशीभूत न होकर, समाधिपूर्वक मरकर विद्युच्चर महामुनि सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुए। वहाँ आयुष्य पूरा कर वे एक ही बार अनुष्य जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे ( संधि-११ )।

### कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन एवं मौलिकता

महाकवि वीरने जंबूस्वामीके पौराणिक आख्यानको महाकाव्यकी कथावस्तुके रूपमें ग्रथित किया है। यही कारण है कि मूल आख्यान और अंतर्कथाओंका गठन बहुत सुदृढ़ रूपमें हुआ है। इस काव्यमें प्रयुक्त अंतर्कथाएँ मूलकथाप्राकारके छोटे-छोटे जलस्रोतोंके समान हैं, जो आगे चलकर मूलकथासे मिलकर उसकी धाराको पुष्कलतर, गंभीरतर और विशालतर बना देते हैं। लघु कथाएँ स्वतंत्र होते हुए भी मूलकथासे संबद्ध हैं। सभी कथाओंसे नायकके फलागमपर प्रभाव पड़ता है। कथावस्तुका आरंभ एक दिव्य विमूलिके दर्शनसे होता है। श्रेणिककी दृष्टि आकाश मार्गसे आये हुए विद्युन्माली देवपर पड़ती है और वे उसके सौंदर्य, ऐश्वर्य, एवं प्रभावसे आकृष्ट हो उसका इतिवृत्त जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। इस प्रकार यद्यपि कथावस्तुका आरंभ शुद्ध-पौराणिक रूपमें हुआ है, वक्ता और श्रोताके रूपमें कथा गतिमान हुई है, तो भी कविने इतिवृत्तके साथ वर्णन-व्यापारोंका समावेश कर कथाकी महाकाव्योचित गरिमा प्रदान



की है। कविने पौराणिक मान्यताओंको पुराणके रूपमें ही प्रस्तुत किया है, पर कथा सामुबंध होनेसे उसमें महाकाव्यत्व आ गया है।

महाकवि बीरके पूर्व जंबूस्वामीचरितकी कथावस्तु संघदासगणिने वसुदेवहिंदीमें कथाकी उत्पत्ति नामक प्रथम प्रकरणमें, गुणभद्रने उत्तरपुराणके छिहत्तरवें पर्वमें तथा कवि गुणपालने गद्य-पद्य मिश्रित शैलीमें रचित प्राकृत जंबूचरियमें ग्रथित की है। पुष्पदन्तने अपभ्रंश महापुराणके उत्तरखंडमें सीधों संघमें 'जंबूसामि-दिक्खवण्ण'में पूर्ण रूपसे गुणभद्रका ही अनुकरण किया है। इन आचार्योंने नायकको प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित कर तदनंतर उसको भव-परंपरा प्रस्तुत की है। पर बीर कविने विष्णुमाली देवके चमत्कारसे आकृष्ट हो श्रेणिक-द्वारा उसके पूर्वजोंको जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करायी है। अतः कविने प्रारंभमें ही यह दिखलानेका सफल प्रयास किया है कि सर्वसाधारण विषयासक्त मनुष्य भी साधनाके बलसे भगवत्पदको प्राप्त कर सकता है। आत्मा परमात्मा है, पर उसकी यह शक्ति अप्रकटित है। इसे प्रकाशमें लानेके लिए पुनर्प्राप्त अपेक्षित है। इस तथ्यकी मनमें निहित रखकर ही कविने नायकका उत्तरोत्तर विकास दिखलाया है। अत आध्यात्मिक साधनाकी व्यंजना उत्तरोत्तर वर्द्धमान है। कथावस्तु आरंभसे ही पाठक और श्रोताके मनमें जिज्ञासाके साथ यह द्वंद्व उत्पन्न कर देती है कि भवदेवकी भूमिकामें जंबूस्वामी किध प्रकार आत्मोद्धारके लिए प्रयास करता है।

कविने 'विषयोसे ठुकराया हुआ व्यक्ति आत्मसाधनाकी ओर अग्रसर होता है,' इस तथ्यकी यथार्थ पुष्टि की है। हिंदीके महाकवि तुलसीदासका जीवन भी इसी तथ्यका एक और उत्कृष्ट उदाहरण है। कथागठनमें भी कविने अपनी मौलिकताका परिचय दिया है। संघदासगणि, गुणभद्र एवं गुणपाल कथाकारके रूपमें हमारे सामने आते हैं, जबकि बीर कवि एक महाकाव्य रचयिताके रूपमें। कथाकार केवल कथातत्त्वोंके निर्वाहका ध्यान रखता है। जबकि बीर कविने वस्तुव्यापार-वर्णनों तथा यथास्थान छोटी-बड़ी अनेक अन्तर्गत कथाओंका समावेश करके 'जंबूसामिचरित'में कथाका विकास महाकाव्योचित आग्रामके मध्य किया है। कविकी मौलिकता इस बातमें भी है कि उसने अपने नायकका प्रतिद्वंद्वी नायक भी कल्पित किया, यतः महाकाव्यमें प्रतिनायकका रहना आवश्यक है। विद्याधर रत्नशेखरका आख्यान वसुदेवहिंदी, उत्तरपुराण तथा प्राकृत जंबूचरियं इन तीनों ही पूर्ववर्ती ग्रंथोंमें नहीं है। कविने कन्या-प्राप्ति, विरक्त नायकके जीवनमें न दिखलाकर नायकके स्वामी श्रेणिकके जीवनमें दिखलायी है, और कन्याके अधिकारी श्रेणिकको युद्धमें न भेजकर नायक जंबूस्वामीको युद्धमें भेजा है। अत नायकके शौर्य, पराक्रम, साहस एवं युद्धकला प्रवीणता दिखलानेका कविकी पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ, और उसने इस अवसरको निर्माण कर उससे पूर्ण लाभ भी उठाया। नायकके चरित्रके इन गुणोंका उद्घाटन किये बिना कविकी इस रचनामें महाकाव्यत्व नहीं आ सकता था। रत्नशेखर-विषयक आख्यानकी सृष्टि करके कवि अपनी कृतियों महाकाव्यके संपूर्ण तत्त्वोंका यथोचित समावेश कर, अपने काव्यको महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करते हुए अपनी मौलिक सूक्ष्म-वृत्तका परिचय देनेमें पूर्ण रूपसे सफल हुआ।

## ४. जंबूस्वामी : एक ऐतिहासिक कथापुरुष, कथाकी दीर्घ परंपरा और मूलस्रोत

जैन साहित्यकी ऐतिहासिक परंपरा भ० महावीरसे प्रारंभ होती है, जिसका निर्वाणकाल भारतीय इतिहास, साहित्य एवं संस्कृतिके स्वदेशी एवं विदेशी लगभग सभी विद्वान् अब एक मतसे ५२७ ई० पू० अथवा ४७० वि० पूर्व मानते हैं।<sup>१</sup>

१. नागवसु द्वारा भवदेवको बोध प्रदान करनेका वृत्त उत्तरा० २२ में राजलु और रथनेमिके आख्यानसे सुखनीय है।

२. डॉ० ही० छा० जैन सा० सं० में जैन धर्मका योगदान पृ० २५-२६; पं० कैलाशचन्द्रशास्त्री : जैन सा० और इति० की पृथ्वीरिका पृ० २८७-३३७ आदि ग्रन्थ।

भ० महावीरके पञ्चात् उनके प्रमुख गणवर इंद्रभूति गौतमका नाम आता है। वि० पू० ४७० में कात्तिक कृष्ण अमावस्याको प्रातःकाल महावीरका निर्वाण हुआ, उसी दिन सध्याकालमें गौतमको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। बारह वर्ष तक केवली रूपसे धर्मापदेश देते रहकर जिस दिन गौतम निर्वाणको प्राप्त हुए, उसी दिन महावीरके दूसरे प्रधान शिष्य सुधर्माको कैवल्यकी प्राप्ति हुई और ये बारह वर्षों तक संघके प्रधान रूपसे धर्मापदेश देते हुए विचरण कर निर्वाणको प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्माके प्रमुख शिष्य जंबू केवली पदको प्राप्त हुए, तथा जैन श्रमणसंघके प्रधानाचार्य अथवा कुलपति बने और अड़तीस वर्षों तक जैनधर्म व श्रुतका प्रचार-प्रसार करते रहकर वि० पू० ४०८ (ई० पू० ४६५)में निर्वाणगामी हुए। ये ही जंबू प्रस्तुत चरितके नायक जंबूस्वामी हैं। जैन परंपरामें इन्हें अंतिम केवली माना जाता है, तथा ये एवं इनकी शिष्य-संततिके द्वारा ही भ० महावीरके उपदेशोंकी अर्द्धमागधी जैनागमके रूपमें सुरक्षा हो सकी यह ऐतिहासिक सत्य है। इस कारण जैन परंपरामें जंबूस्वामीका स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गौतमको केवलज्ञान होनेसे लगाकर जंबूस्वामीको मोक्ष होने तक बीर निर्वाणके १२ + १२ + ३८ = ६२ (या स्वे० परंपरानुसार १२ + ८ + ४४ = ६४ वर्ष) पूर्ण होते हैं। जंबूस्वामीके पञ्चात् दिगंबर परंपरानुसार विष्णु या नंदी १४ वर्ष, नंदिमित्र १६ वर्ष, अपराजित २२ वर्ष, गोवर्द्धन १९ वर्ष और भद्रबाहु २९ वर्ष, इस प्रकार आगामी १४ + १६ + २२ + १९ + २९ = १०० सी वर्षोंको अवधिमें ये पाँच श्रुतकेवली हुए, और कुल मिलाकर बीर निर्वाणके १६२ वर्ष पूरे हुए।

स्वेतांबर गुरु पट्टावलिमेंके अनुसार बीर निर्वाणके बारह वर्ष पञ्चात् इंद्रभूति (गौतम गोत्र) का निर्वाण हुआ और इनके आठ वर्ष, तथा बीर नि० के बीस वर्ष पञ्चात् सुधर्मा (अग्नि वेत्यायन गोत्र) और सुधर्माके निर्वाण जानेके उपरांत चवालीस वर्षों तक केवलज्ञानी रूपसे धर्मापदेश देते हुए विचरण करते रहकर जंबूस्वामी (काश्यप गोत्र) मोक्षको गये। इस प्रकार बी० नि० के बीसठ वर्षों तक तीन केवल-ज्ञानियोंकी यह परंपरा अविच्छिन्न रूपसे चली। जंबूस्वामीके बाद इनके समकालीन गुरुजंबू प्रभव, जिन्हें दिग० आम्नायके साहित्यमें विद्युच्चर नामसे जाना जाता है, और जो हमारे चरित काव्यके एक अन्य प्रमुख पात्र हैं, वे ११ वर्ष तक संघके प्रधान रहे, इनके उपरांत गम्यमंत्र २३ वर्ष, यशोभद्र ५० वर्ष, संमृतिविजय ८ वर्ष और भद्रबाहु १४ वर्ष = ६४ + ११ + २३ + ५० + ८ + १४ अर्थात् बी० नि० १७० वर्ष।

उपर्युक्त दोनों गुरु-परंपराओंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि जंबूस्वामीके निर्वाणकाल—अर्थात् बी० नि०के ६२ या ६४ वर्षों तक दोनोंकी गुरु शिष्य वंशावली एक समान है। जबके पञ्चात्से इनमें स्पष्ट भेद पड़ जाता है। दिग० परंपरामें जंबूके उपरांत विष्णु या नंदिका नाम आता है, तथा गुरु-पट्टावलीमें कहीं भी विद्युच्चर (प्रभव) का नाम नहीं आता; जबकि स्वे० परंपरामें प्रभवके ११ वर्ष तक संघप्रधान रहनेका उल्लेख है। आगेके अन्य नाम भी भिन्न हैं। गुरु-शिष्य वंशानुक्रमके इस मतभेदमें पड़ना प्रस्तुत प्रसंगमें आवश्यक नहीं है। अतः जंबूस्वामी तककी मतभेद रहित वंशावलीको स्वीकार करके जंबूस्वामीके जीवन-चरितके विषयमें ऐतिहासिक दृष्टिसे यहाँ कुछ विचार किया गया है।

प्रस्तुत काव्यकृतिमें बीर कविने कहा है कि जंबूस्वामीके दीक्षा लेनेके अठारह वर्षोंपरान्त माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल सुधर्माको मोक्ष हुआ, और उसी दिन जंबूको केवलज्ञान; तथा सुधर्माके निर्वाणके अठारह वर्ष व्यतीत होनेपर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ। ये दोनों मिलाकर (१८ + १८) छत्तीस वर्ष पूरे हुए। अब स्वे० एवं दिग० दोनों संप्रदायोंकी ऐतिहासिक गुरु-परंपरानुसार यदि बी० नि० के ६२ या ६४ वर्ष पीछे जंबूका निर्वाण माना जायें तो इस रीतिसे बीर कविके उपर्युक्त उल्लेखानुसार बी० नि० से २६ या २८ वर्ष पीछे गौतमका निर्वाण मानना होगा, जो अवलोक्य अन्य सभी जैन साहित्यिक-ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सर्वथा विपरीत है। तिलोत्पण्णत्तिके रचयिता यतिवृषभाचार्य (दूसरी-तीसरी शती ई०) औरसेनी पट्टवंशानुक्रमके घटला टीकाकार बीरसेन, और गोम्मटसारके रचयिता नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्त्ति

(१ अ० ई०) एवं उत्तरपुराण (ई० ८९८ से पूर्व) के कर्ता गुणभद्र तथा अपभ्रंश महापुराण (या तिसद्विंश महापुरिसगुणालकाह) के प्रणेता महाकवि पुष्पदंत इन दोनों के १२ वर्ष पश्चात् गौतम, इनके १२ वर्षोपरान्त सुघर्मा, एवं सुघर्माके ४० वर्ष (तिलोयपण्णत्तिके अनुसार ३८ वर्ष) पीछे जंबूस्वामीको मोक्ष प्राप्त होना एक मतेसे मान्य किया है।

अब यदि हम अन्य उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीको और दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि भ० बुद्धका निर्वाण ५४४ ई० पू० में हुआ। बुद्धके निर्वाणसे ८ वर्ष पहले ५५२ ई० पू० में अजातशत्रु मदीपर बैठा और लगभग उसी समय राजा श्रेणिक विविसारकी मृत्यु हुई। जंबूस्वामीके जन्मके संबंधमें स्वयं भ० महावीरसे अथवा कहिए गौतम गश्वरसे राजा श्रेणिक विविसारने प्रश्न किये, ऐसा उल्लेख सभी जैन साहित्यकारोंने किया है। तदनुसार जंबूका जन्म श्रेणिकके स्वर्गवाससे कुछ काल पूर्व अथवा उसीके आसपास लगभग ५५२-३ ई० पू० में होना चाहिए। और ऐसा होना असंभव भी नहीं है कि जंबूस्वामीकी आयु अस्ती धर्म न होकर उससे अधिक नब्बे वर्ष रही हो। और कविने और उसके अनुसार ब्रह्म विनदास (१३ अ० वि०) तथा राजमल्ल (१७ अ० वि०) ने यह भी कहा है कि जंबूस्वामीने राजा श्रेणिक विविसारके राज्यकालमें ही दीक्षा अंगीकार की थी, और राजाने स्वयं उनका दीक्षास्नान वडे धूमधामसे मनाया था। इस क्रमपर विचार करनेसे जंबूका जन्म ५५२ ई० पू० में श्रेणिककी मृत्युके कमसे कम १६, १७ वर्ष पूर्व अर्थात् ई० पू० ५६८-६९ में मानना पड़ेगा, और ऐसा माननेसे जंबूका आयुष्य ४६३ ई० पू० से ५६८ ई० पू० तक लगभग १०५ वर्षका, तथा गौतम इंद्रभूति, सुघर्मा एवं जंबू तीनोंके केवलज्ञान कालके संबंधमें इन्हीं तथा दिग० दोनो संप्रदायों-द्वारा स्वीकृत कालक्रमका खंडन करना होगा, जिसके लिए हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। अतः और कविका यह कथन ऐतिहासिक दृष्टिसे समीचीन प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार औरके अनुसार सुघर्मा और जंबूका केवली रूपमें रहनेका समय कुल १८, १८ वर्ष माननेमें भी ऐतिहासिक साक्ष्य विरुद्ध है, यह ऊपर ही कहा गया है। संबंध है और कविके समस्त ऐसी कोई गुरु-पट्टावलियां रही हो, जिनमें गुरु-वंशावलीके संबंधमें कोई ऐसे उल्लेख रहे हो, पर वर्तमानमें उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीसे संग्रहीत तथ्योंसे यह सर्वथा विपरीत है। इसी प्रसंगमें इव० आम्नायमें प्राप्य गुरु-पट्टावलियोंमें गौतम, सुघर्मा एवं जंबूके संबंधमें जो कुछ जानकारी उपलब्ध होती है, उसपर विचार कर लेना उचित है। इनके अनुसार इंद्रभूति गौतमका जन्म ई० पू० ६०७ में हुआ। वे ५० वर्ष गृहस्थ रहे तथा ३० वर्ष साधु और ई० पू० ५२७ में भ० महावीरके निर्वाणके दिनसे ई० पू० ५१५ तक १२ वर्ष केवली रहकर निर्वाणको प्राप्त हुए। सुघर्माका जन्म भी ६०७ ई० पू० हुआ। वे भी ५० वर्ष गृहस्थ रहे, ३० वर्ष साधु, १२ वर्ष तक गौतमके केवलज्ञान कालमें सब प्रज्ञान तथा ८ वर्ष (दिग० परंपरानुसार १० वर्ष) केवली, इस प्रकार तीनों वर्षकी आयुमें लगभग ५०७ ई० पू० इनका निर्वाण हुआ। जंबूस्वामीका जन्म ५४३ ई० पू०; दीक्षा १६ वर्षकी अवस्थामें भ० महावीरके निर्वाणसे कुछ पीछे ५२७ ई० पू०; केवलज्ञान ५०७ ई०

१. भ० बुद्धके निर्वाणकालके संबंधमें भी बहुत मतभेद है, तथापि अब सामान्य रूपसे सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि भ० बुद्धका निर्वाण भ० महावीरके निर्वाणसे १६ वर्ष पहले लगभग ५४४ ई० पू० में हुआ; द्रष्टव्यः बौद्धधर्मके २५०० वर्ष।

२. पं० कै० च० शास्त्री : जैन सा० इति० पृथ्वीठिका पृ० ३०३-२१२।

३. जंबूके जन्मके संबंधमें महाकवि-पुष्पदंतने लिखा है कि जिस रात जंबू गर्भमें आयेगे, उसी रात भ० महावीरका निर्वाण होगा (भ० पु० १००-२)। तदनुसार जंबूस्वामीका जन्म और निर्वाणके एक वर्ष पश्चात् ई० पू० ५२६ में मानना होगा। महाकवि पुष्पदंतका यह कथन भी अन्य किसी ऐतिहासिक उल्लेखसे समर्थित न होनेसे माननीय नहीं है।

४. जैन सत्यप्रकाश वर्ष ४, अंक ३-२ पृ० ४९-७४ : मुनि न्यायविजयजीका 'गुरु-परंपरा' नामक छेख।

पू० तथा निर्वाण ४६३ ई० पू० । जंबूस्वामीके जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान एवं मोक्ष कालके संबंधमें अद्यावधि उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रिके आधारपर यह मत ही सबसे अधिक समीचीन है ।

उपर्युक्त रीतिसे जंबूस्वामीके जीवनकालके संबंधमें चर्चा करनेके उपरांत अब हमें उनके जीवन चरित विषयक प्राचीनतम उपलब्ध सामग्री, कथाकी पूर्व परंपरा एवं मूलस्रोतोंपर विचार करना है । इस विषयमें हमारा ध्यान सर्वप्रथम अर्द्धभाग्यी जैनागमोंपर जाता है । जैन संप्रदायकी इस पुरातन पवित्र साहित्य संपत्तिका अवलोकन करनेसे हमें जंबूस्वामीके संबंधमें इतनी सूचनाएं प्राप्त होती हैं कि वे महावीर स्वामीके पाँचवें गणधर अग्निवेश्यायन गोश्रीय आर्य सुधर्मा ( सुधर्मस्वामी ) स्थविरके प्रधान शिष्य थे, और कश्यप गोत्रके थे । संघमें दीक्षा लेनेके उपरांत इन्होंने आर्य सुधर्मसि क्रमशः एक-एक जैनागमको कटनेका अनुरोध किया, व आर्यसुधर्मसि जैसा ४० महावीरके मुखसे सुना था, तदनुसार जंबूको एक-एक आगम कहकर सुनाया ।<sup>१</sup> स्थान-स्थानपर जंबूस्वामीने श्रमण भ० महावीरके धर्म व सिद्धांतके संबंधमें भी अनेक प्रश्न किये और सुधर्मसि उनका उत्तर दिया ।<sup>२</sup> इस प्रकार समस्त जैनश्रुत गुरु-शिष्य परंपरासे ४० महावीरसे आर्य सुधर्मको, सुधर्मसि आर्य जंबूको एवं जंबूसे उनकी शिष्य संततिको प्राप्त हुआ । जंबूस्वामीके जीवनके संबंधमें इससे अधिक सामग्री आगम साहित्यसे प्राप्त नहीं होती ।

आगमिक परंपराके अध्ययनके उपरांत कालक्रमसे यतिवृषभाचार्य ( दूसरी तीसरी शती ई० ) कृत तिलोय-पण्णत्तिका नाम आता है, जिसमें जैन दृष्टिसे त्रेसठ पौराणिक महापुरुषों [ २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वल्लदेव, ९ वासुदेव ( नारायण ), ९ प्रतिवाचुदेव ( प्रतिनारायण ) ] के जीवनचरित अथवा जैन महापुराणों व चरितग्रंथोंकी सामग्री बीज रूपमें नामावलियोंके रूपमें प्राप्त है, जिनमें माता-पिता, वध, जन्मस्थान, निर्वाणस्थान व महापुरुषोंके जीवनसे संबद्ध प्रमुख व्यक्तियों, स्थानों व घटनाओंके नाम मात्र उल्लिखित हैं । परंतु जंबूस्वामीके संबंधमें इस ग्रंथमें केवल इतनी ही संक्षिप्त सूचना उपलब्ध होती है कि जिस दिन ४० महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधरको केवलज्ञान प्राप्त हुआ । पुनः गौतमके सिद्ध होनेपर उनके पश्चात् सुधर्मस्वामी केवली हुए ।<sup>३</sup> सुधर्मस्वामीके मुक्त होनेपर जंबूस्वामी केवली हुए । पश्चात् जंबूस्वामीके भी मोक्षको प्राप्त होनेपर फिर कोई अनुयुद्ध केवली नहीं रहे ।<sup>४</sup> गौतमादिक केवलियोंके धर्म-प्रवर्तनकालका प्रमाण पिंड (एकत्र) रूपसे बासठ वर्ष है (१२ + १२ + ३८ = ६२) ।<sup>५</sup>

तिलोयपण्णत्तिके पश्चात् जंबूस्वामीके जीवनचरितकी दृष्टिसे सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ संघदास गणि (५ वी-छठी शती ई०) कृत वसुदेव-हिंडी है, जो न केवल प्राचीन ही है, बल्कि पर्याप्त विशद भी है, और जिसे पीछेके समस्त जंबूचरितके रचयिता कवियों, लेखकोंका प्रमुख आधार ग्रंथ बननेका गौरव प्राप्त है ।

१. आगमोंमें जंबूस्वामी विषयक उल्लेखोंके लिए देखें : जाया० १.१.१; सूय० १.१; २.१.१; २.३.४३; २.४.६३ और २.७.८१; णाण० १.१; समवाय० १.१; भगवती० १.१.४; नाया० १.४; ५.३१-३२; उवासग० १.१ आदि; अंतगड०, अणुत्तर० एवं विजाग० के अध्ययनोंका प्रारंभ व अंत; पण्ह० चाग० में पाँच आसन्नवहार, पाँच संवरद्वार आदि प्रश्नोंका प्रकरण; नंदी० गाथा २२; विशीथ चू० २, पृ० ३६०; कल्पसूत्र-विजयविजय पृ० २४९; कल्पसूत्र-अभिजय पृ० १६२; कल्पसूत्र-स्थविरावलीचरित ५.५-७; निरयावलि १.१; तिथोगणित ६९८ ff; व्यवहार भाष्य १०, ६९९; दसवैका० चू० पृ० ६ ।
२. देखिए सूय० ५.१.१-२; ५.२.१; ६.१.१-२; ८.१.१; ९.१.१, ११.१.१-२ ।
३. तिलोयपण्णत्ती ४.१४७६ ।
४. वही ४.१४७७ ।
५. वही ४.१४७८. इससे अगली गाथामें एक और महत्वपूर्ण उल्लेख है कि केवलज्ञानियोंमें अंतिम श्रीधर कुंडगिरिसे सिद्ध हुए (४.१४७९) ।

इसके संबंधमें विद्वानोंका यह मत है कि वसुदेव हिंडी<sup>१</sup> गुणाढ्य कृत पैशाची बृहत्कथाका सबसे प्रामाणिक जैन रूपांतर है।<sup>२</sup> भाषाकी अपेक्षा भी यह गुणाढ्यकी पैशाची बृहत्कथाके सबसे अधिक निकट है।<sup>३</sup>

वसुदेव-हिंडीके कथाकी उत्पत्ति<sup>४</sup> नामक प्रथम अधिकारमें मंगलाचरणके उपरांत जंबूस्वामीकी कथा इस प्रकार प्रारंभ होती है—प्रथमतः सुधर्मास्वामीने जंबूस्वामीकी प्रथमानुयोग श्रयमें तीर्थंकर, चक्र-वर्ती तथा दशार वंशके व्याख्यानके प्रसंगमें आये हुए वसुदेवचरितको कहा था। अतः वसुदेवचरित प्रारंभ करनेसे पूर्व जंबूस्वामी तथा उनके शिष्य प्रभवकी उत्पत्तिकी कथा कहनी चाहिए। यह कथा इस प्रकार है :

मगध देशके राजगृह नामक नगरमें अंगिक नामका राजा था, व चेलना रानी। इनका कूणिक नामक पुत्र था। इसी राजगृहमें क्षपमदत्त नामक सेठ था, जिसकी धारिणी नामक पत्नी थी। एक बार वह अर्द्ध-जाग्रत अवस्थामें निम्न पाँच स्वप्न देखकर जाग उठी—(१) धूम्ररहित अग्नि (२) पयसरोवर (३) फलभारसे नम्र शालिक्षेत्र (४) घवल मेघके समान श्वेत व उद्धत चतुर्दंतयुक्त हाथी, एवं (५) वर्ण-गंध व रसपूर्ण जंबूफल। इसी रात्रिको स्वर्गसे ज्युत होकर विद्युन्माली देवका जीव धारिणीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। नवमास पूर्ण होनेपर बालकका जन्म हुआ, एवं बालकके बड़े होनेके साथ-साथ उसके रूप व गुणोंकी क्वालि सब ओर फैलती गयी।

उसी कालमें सुधर्मास्वामी राजगृहके गुणशील नामक चैत्यमें संघ सहित पधारे। जंबूस्वामी सब लोगोके साथ आर्य सुधर्माके दर्शनको गये। आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर जंबूको वैराग्य हो गया, और दीक्षाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञा लेने हेतु घरकी ओर चले। नगरके एक द्वारपर भीड़ देखकर सारथीको रथ घुमाकर दूसरे द्वारसे चलनेको कहा। वहाँ सन्नु सैनिकोंके घातके लिए शिला-शतपत्ती आदि शस्त्रोंको ओरसे लटकते हुए देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि अचानक कोई शस्त्र ऊपर आकर गिरे तो बिना त्रत लिये ही मेरी मृत्यु होगी। यह विचार मनमें आते ही जंबू रथ लौटाकर पुनः आर्य सुधर्माके पास गये, और आजन्म ब्रह्मचर्यका व्रत लेकर घर आये। आकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। तब माता-पिताने कहा कि धर्म श्रवण सब कोई करते हैं, पर कोई वैराग्य तो नहीं लेता। इसपर जंबूस्वामीने कहा—धर्म श्रवण करनेपर किसीको तत्त्वार्थोंका निश्चय देरने होता है, और किसीको सुरंत हो जाता है, तथा वह धर्मके आर्गपर लग जाता है। इस संबंधमें जंबूस्वामीने उन पाँच मिश्रोंकी कथा सुनायी जो एक बार उद्यानमें गये। वहाँ तीर्थंकरका दर्शन कर व उनका उपदेश सुनकर परस्पर विचार-विनिमय करके वहीके वही दीक्षित हो गये, तथा अंतमें केवली होकर मोक्ष गये। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें। फिर भी माता-पिताने जंबूको विपुल संपत्तिसे वृद्ध विषयभोग भोगकर पीछे दीक्षा लेनेको कहा। इसपर जंबूस्वामीने उस वानरकी कथा कही जो अपनी विषय लोलुपताके कारण अंतमें शिलाजीतमें चिपककर दुःखद अंतको प्राप्त हुआ। नानाप्रकारसे समझानेपर भी जब जंबूस्वामी नहीं माने तो माताने समुद्रश्री, सिधुमती आदि उन आठ कन्याओंके माता-पिताके पास यह समाचार मिजवाया जिनका बहुत पहलसे ही जंबूके साथ वाग्दान किया जा चुका था। ऐसा जानकर कन्याओंने कहा जंबूस्वामीसे हमारा वाग्दान हो चुका है, अतः जो आर्ग

१. प्राकृतमें हिंडघातुका अर्थ है चलना, फिरना, परिभ्रमण करना, अतः वसुदेव-हिंडीका अर्थ हुआ 'वसुदेव ( वासुदेव कृष्णके पिता ) का परिभ्रमण (वृत्तांत)।' इस अर्थमें वसुदेवके गृह त्यागकर चले जानेके उपरांत अनेक वर्षोंके परिभ्रमण व भावा' कन्याओंसे परिणयके वृत्तांत एवं अनुभव कहाना रचित साहित्यिक सैद्धीमें वर्णित हैं।

२. वसुदेव हिंडी प्र० खंड, गुप्त० अनु० भूमिका पृ० ९-१३; प्रकाशक जैन आत्मानंद समा भावनगर।

३. वही, भूमिका पृ० १६

४. इस अंशकी विद्वानोंने शुद्ध जैन-कथाभाग कहा है; वही पृ० १२।

उनका, वही हमारा ! कन्याओंका ऐसा निश्चय जानकर जंबूस्वामीसे उन कन्याओंके माथ विवाह कर लेनेका अनुरोध किया गया, जिसे स्वामीने स्वीकार किया । उचित त्रियि-मुहूर्तमें विविपूर्वक विवाह संस्कार मंत्र हुवा और जंबू वधुओंके साथ घर आकर वासगृहमें प्रविष्ट हुवा ।

उसी कालमें जयपुरवासी विषय राजाका कलानिपुण प्रभव नामक पुत्र था, जो पिताके द्वारा छोटे भाई प्रभुको राज्य दे देनेसे रुष्ट होकर राज्य छोड़कर चला आया था, और विषयचलकी विषम तलहटीमें चोर सरदारोंके साथ चोरी करके जीवन यापन करता हुवा रहता था । जंबूस्वामीका विवाह एवं अर्परमित दहेजकी बात सुनकर अपने साथी पाँच सौ चोरोंके साथ छटवीसे निकलकर, रातके समय नगरीमें प्रविष्ट हुवा । तालोद्घाटनी विद्यासे ताले खोलकर जंबूस्वामीके धरमें पहुँचा, तथा अवस्थापिनी विद्यासे बलसे सबके सो जानेपर चोर सोते हुए लोगोंके आभूषण आदि खोलने लगे । यह देखकर चोरकी विद्यासे अभ्रमावृत्त, अतः जागते हुए जंबूने ये निर्भीक वचन कहे—‘आमंत्रित लोगोंको स्वयं मत करना’ । ये वचन सुनकर चोर स्तमित जैसे हो गये । प्रभवने जंबूको देखकर अपना परिचय देकर कहा मेरी दो विद्याएँ ‘तालोद्घाटनी व अवस्थापिनी’ ले लीजिए, और मुझे अपनी ‘स्तंभिनी तथा मोचनी’ विद्याएँ दे दीजिए । इसपर जंबूने कहा—‘मुझे सांसारिक विद्याओंसे कोई प्रयोजन नहीं है । मैंने तो गणधरके पास संसारमोचनी-विद्या ग्रहण की है । प्रमात्त होते ही घर-परिवार सब छोड़कर मैं दीक्षा लूँगा । जंबूके ऐसे वचन सुनकर प्रभव आश्चर्यचकित रह गया, व उसने भी यौवनमें मानुषिक विषयमूल भोगकर पक्व वयमें दीक्षा लेना उचित बतलाया । विषयमुखोके संबंधमें जंबूने प्रभवको ‘मधुबिंदु आत्माव’का दृष्टांत सुनाया ( प्रस्तावना—५ ‘जंबूस्वामी चरित-को अंतर्कथाएँ’ ) ।

पुनः प्रभवके यह पूछने पर कि किस दुःखके कारण तुम अकालमें स्वयंनोंका त्याग करते हो, जंबूने गर्भावास दुःखके संबंधमें कलितानकुमारका आस्थान सुनाया (वही : ‘जंबूस्वामीचरितकी अन्तर्कथाएँ’) ।

इसीप्रकार जंबूने सांसारिक संबंधोंकी असरताके विषयमें कुबेरदत्त एवं कुबेरदत्ताका, पितरोंको पिंड-दानादि रूप लोकधर्मकी असंगतिसे वारेंमें महेश्वरदत्ताका, तथा सांसारिक सुख व मोक्षमुखकी तुलनाके संबंधमें एक कौड़ीके लिए सर्वस्व हार जाने वाले वनियेका, तथा बतके सद्युपयोगके बावत गोपयुक्का, ये सब कथानक प्रभवको सुनाये । इस कथा-वातकि उपरान्त प्रभवको भी बोध हो गया । प्रातःकाल होते ही जंबूस्वामीने दीक्षाके लिए अभिनिष्क्रमण किया । जंबूद्वीपके अधिपति अनादत्त (अणादित्य) देवने स्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया । बैभारगिरि-पर सुवर्मा गणधरके पादमूलमें जंबूस्वामीने दीक्षा ली । आर्य सुवर्माने प्रभवको जंबूके गिर्यरूपमें विहित किया । जंबूस्वामीकी माँ एवं बधुएँ भी सुवर्मा आगिकाकी-शिष्याएँ हो गयी । थोड़े ही समयमें जंबू श्रुतकेवली हो गये ।

कालांतरमें आर्य सुवर्मा संवसहित विहार करते-करते चंपानगरीके पूर्णभद्र चैत्यमें पधारे । कृष्णिक राजा उनकी बंदना करने आया, व अति स्वरूपवान जंबूस्वामीको देखकर उनके पूर्वकृत तप, त्याग, दान, शील आदिके संबंधमें विशेष जानकारी चाही । इसपर आर्य सुवर्माने उत्तर दिया कि पूर्वकालमें तुम्हारे पिता श्रेणिककी भगवान् महावीरने जिस प्रकार यह कथा सुनायी थी, उसे कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । यह कहकर सुवर्माने केवली होने पर्यंत राजपि प्रसन्नचंद्रका कथानक विस्तारसे कहा ( प्रस्तावना—५ ) । देवता राजपिका कैवल्योत्सव मनाने आये । भगवान्से यह जानकर श्रेणिकने पूछा इनके पीछे कौन केवली होगा । तभी महातेजस्वी विद्युन्माछी देव अपनी चार देवियों सहित भगवान्की बंदना करने आया । उसकी ओर संकेत कर भगवान्ने कहा—यह देव, जो कि सात दिन बाद देवगति त्याग करके मनुष्य गतिमें अवतीर्ण होगा । उसकी असाधारण, असामान्य तेजस्विताके विषयमें पूछने पर भगवान्ने श्रेणिक से कहा—

इसी जनपदमें सुप्राम नामक गाँवमें आर्यव नामका एक राष्ट्रकूट रहता था । उसकी रेवती नामक पत्नी थी । उनके दो पुत्र भवदत्त व भवदेव हुए । बड़ा भवदत्त युवावस्थामें ही वीक्षित हो गया । कुछ काल

बाद साधुसंघ विहार करते-करते पुनः उसी गाँवमें आया। भवदत्त अनगार छोटे भाई भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुकी अनुज्ञा लेकर भवदेवके घर गया। उसी समय भवदेवका विवाह हुआ था, और वह कुलकी रीतिके अनुसार वधपरीणिता नागिलाका मंडनकर्म कर रहा था। भाईका आगमन सुनकर भवदेव नागिलाको अर्द्धमंडित ही छोड़कर बाहर आया। आहारादि करके भवदत्त अनगार घरसे निकले व धी का भरा पात्र भवदेवके हाथमें दे दिया। भवदेवके भाईके पात्रको लेकर धीघ्रसे धीघ्र घर लौटनेकी इच्छा करता हुआ वेमनसे भाईके साथ चला, व संघमें जाकर भाईकी सम्मान रक्षाके लिए दीक्षा ले ली। बहुत काल बाद भवदत्त अनगार समाधिभरण करके स्वर्ग गया।

इधर भवदेव मनमें पत्नीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य पालने लगा। एक बार जब साधुसंघ पुनः उसी गाँवमें आया, तो गुरुको कहे बिना ही अपने घरकी ओर चल दिया, और गाँवके बाहर ही एक मंदिरमें विश्राम करने बैठा। तभी उसकी व्रतोपवाससे क्षीण देहवाली पत्नी नागिला एक ब्राह्मणिके साथ उसी मंदिरमें पूजा करने आयी। भवदेव उसे पहचान नहीं सका, तथा उससे अपने माता-पिता और पत्नीके विषयमें पूछा और नागिलासे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। नागिलाने उसे पहचानकर अपना परिचय दिया, व भवदेवको बोध देनेके लिए भोगपिपासाके कारण पाठा बनने वाले ब्राह्मणपुत्रकी कथा सुनायी (प्रस्तावना-५)। इतनेमें ब्राह्मणिका पुत्र कहीसे दूध-भाक जीमकर चढ़ा आया व मसि बोला—मैं एक बाली लाओ, उसमें अतिशय स्वादिष्ट दूधपाकका वसन कलंगा। अभी अन्यत्र जीमने जाता है। पुनः भूख लगनेपर अपने वसित दूधपाककी खाऊंगा। भाँने कहा बैठा वसन करके लाया नहीं जाता। भवदेवने भी उसे धिक्कारा। इसी पर नागिलाने भवदेवको बोध दिया—तुम भी वसित (त्यक्त) नागिला और भोगिका भक्षण करना चाहते हो। इससे भवदेवको प्रतिबोध हो गया।

इसके पश्चात् भवदेवने कठोर तप किया, व सल्लेखनापूर्वक मरकर स्वर्ग गया। उधर भवदत्त देवायु पूरी करके पुष्कलावती देशमें पुंडरीकिणी नगरीमें वज्रदंत चक्रवर्ती व यशोधरा राजाकी सागरदत्त नामक पुत्र हुआ एवं युवावस्थामें ही एक बार मेरुपर्वतके समान महामेघको क्षणभरमें विलीन होते देखकर विरक्त हो गया और मुनिसंघमें दीक्षा ले ली। इधर भवदेवका जीव देवायु पूरी करके उसी देशमें वीतशोका नगरीमें पद्मरथ राजाकी वनमाला देवीसे शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। युवा होने पर अनेक राजकन्याओंके साथ उसका परिणय करा दिया गया और वह भोग-विलासपूर्वक रहने लगा।

कालांतरमें सागरदत्त मुनि संघसहित विचरते हुए वीतशोका नगरीमें पधारे। उन्हें देखकर शिव-कुमारको बड़ा स्नेह उमड़ आया। कारण पूछनेपर मुनिने अपने व शिवकुमार दोनोंके अवततकके दो पूर्व-जन्मों [ भवदत्त—भवदेव (१), स्वर्गमें देवता (२) ] की कथा सुनायी। यह सुनकर शिवकुमारको वैराग्य हो गया। माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति न मिलने पर घरमें ही रहते हुए मंत्रीपुत्र दूहधर्मके हाथों देवल काजी व अंबिल आहार लेते हुए बारह वर्षों तक उसने कठोर तप किया, और पीछे समाधिपूर्वक देह-त्याग करके स्वर्गमें विष्णुमाली नामक महातेजस्वी देव हुआ। आजसे सात दिनों बाद अपनी देवायु पूरी करके यह राजगृहमें ऋषभदत्त सेठकी धारिणी नामक पत्नीके गर्भमें पुत्र रूपमें अवतरित होगा। यह बात सुनकर जंबूद्वीपका अधिपति अनादृत देव अपने कुलकी प्रशंसा करता हुआ उठकर नाचने लगा। कारण पूछनेपर भगवान्ने श्रेणिककी कथा—

इसी नगरमें गुप्तिमति नामका श्रेष्ठपुत्र था। ऋषभदत्त व जिनदास उसके दो पुत्र थे। ऋषभदत्त शील सदाचारवान् था, जबकि जिनदास मद्य-वेश्या एवं जूएका व्यसनी। ऋषभदत्तने जिनदाससे कोई संबंध न होनेकी घोषणा कर दी। एक बार एक सेनापतिके साथ जूआ खेलते समय जिनदासने कुछ धोदाला किया। इसपर सेनापतिने उसे शस्त्रसे मारा। यह दुःखद समाचार मिलते ही ऋषभदत्त दौरेत आया और औपधौपचार निमित्त जिनदासको घर ले गया। तब जिनदासको भारी पश्चात्ताप हुआ। भाईसे अपने कुकृत्योकी क्षमा माँगकर, उससे सदुपदेश लेकर, मावत समस्त आरंभ परिग्रहको त्याग कर अनशन वारण-करके, सम्यक् आराधना करते हुए, समाधिभरण करके जिनदास स्वर्ग गया। वही यह जंबूद्वीपका अधिपति

अनादृत नामक देव है। मेरे कुलमें अंतिमोत्तरी होगा, ऐसा जानकर यह देव अपने कुलकी प्रशंसा करना हुआ प्रसन्नताके भावावेगमें नाच रहा है। भगवान्‌के मुखसे यह सारा वृत्तांत सुननेके अनंतर वह देव भगवान्‌की वंदना करके उनके समक्षस्थानसे उठकर अपने देवलोककी चला गया।

विद्युन्माली देव भी वहाँमें चला गया। पीछे उसकी चारों देवियोंके पूछनेपर प्रसन्नचंद्र केवलीने बताया कि देवलोकमें विद्युन्माली देवसे वियोग प्राप्त कर, राजगृहीमें श्रेष्ठपुत्रियोंके रूपमें जन्म लेकर तुम लोगोका पुनः संगम होगा, और तुम लोग भी उसके साथ समय धारण करके स्वर्गमें देव बनोगी। केवलीके ऐसे वचन सुनकर देवियाँ भी उनकी वंदना कर चली गयीं।

‘वसुदेव-हिंदो’में उपलब्ध जंबूचरितका संक्षेपमें अध्ययन कर आपे दृष्टिपात करनेसे कथाकी एक ओर परंपरा हमारे सामने आ जाती है। वह है गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण, जिसकी रचना ८९७ ई० से पहले ही पूर्ण की जा चुकी थी। उत्तर पुराणमें आदि तीर्थंकर ‘श्रुतपथ जिन’की छोटकर शेष बासठ शलाका पुरवो (पौराणिक जैन महापुरुष) का जीवन चरित विस्तारसे वर्णित है। उत्तर पुराणके छिहत्तरवें पर्वमें १ से लगाकर २१३वें श्लोक तक जंबूस्वामीकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार वर्णित है :-

एक बार भ० महावीर विहार करते-करते राजगृह नगरमें आये, और संक्षिप्त विपुलाचल पर्वतपर पधारे। राजा श्रेणिक भगवान्‌के दर्शनको आया व उनकी स्तुति की। फिर गणधर गीतमकी स्तुति करके, मार्गमें देखे हुए घर्मरक्षि मुनिके<sup>१</sup> ध्यानमें लीन होनेपर भी मुखपर विकृत भाव होनेका कारण पूछा। गीतम स्वामीने संक्षेपमें घर्मरक्षि मुनिका संपूर्ण वृत्तांत सुनाकर उनके मुखपर विकृत भाव आनेका कारण बतलाया और श्रेणिकने कहा—‘नाभी, उनके कपाय-भाव शांत करो। श्रेणिक गया, और गणधरके कथनानुसार मुनिको बोध देकर उनके भाव शांत कर, उन्हें प्रसन्न कर आया। कुछ ही क्षणोंमें घर्मरक्षि मुनिकी केवलज्ञान हो गया। इंद्रादि देवोंने आकर उनकी पूजा की और श्रेणिकने भी; तथा भगवान्‌के पास आकर गणधरसे पूछा कि इनके वाद सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन होगा ? इतनेमें विद्युन्माली देव अपनी चारों देवियों सहित वहीं आ पहुँचा और भगवान्‌की वंदना कर यथास्थान बैठे। उसकी ओर संकेत कर गणधरने कहा—यह अंतिम केवली होगा। आजसे सातवें दिन यह स्वर्गसे व्युत्त होकर इसी नगरके सेठ अर्हदासकी स्त्री जिनदासके गर्भमें आवेगा। इसके पहले जिनदासी पाँच स्वधन देखेंगी—हाथी, सरोवर, धानका खेत, ऊर्ध्वशिखा निर्धूमामनि, व देवकुमारों-द्वारा लाये हुए जामुनके फल। उसका नाम जंबूकुमार होगा, जो बहुत रूपवान्‌, भाग्यवान्‌, कात्तिमान्‌, सर्व कलाकुशल व यौवनके आरंभसे ही विकार रहित रहेगा। मैं पुनः इसी विपुलाचलपर सुघर्म गणधरके साथ आऊँगा। चैलिनीका पुत्र इस नगर ( राजगृही ) का राजा कूणिक मेरा धर्मोपदेश सुनने आवेगा व जंबूकुमार भी उपदेश सुनकर विरक्त होकर बीक्षा लेना चाहेगा, पर अपने भाई-बन्धुओंके आग्रहके कारण ऐसा नहीं कर सकेगा। फिर नगरके सामरदत्तादि चार सेठोंकी कन्याओंके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह होगा। और विवाहके उपरांत भी वह बन्धुओंके साथ आवास महलमें निविकार भावसे पृथिवीतलपर बैठेगा। मेरा पुत्र अपनी बन्धुओंका वशवर्ती हुआ या नहीं, यह देखनेकी आकुलतासे उसकी माँ स्नेहवश अपने आपकी छिआकर वही खड़ी होगी। उसी समय पीदनपुर नगरके राजा विद्युद्वाजकी रानी विमल-मंडीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका चोर, जो बद्धस्थ होने आदि रूप अनेक विद्याओंका जानकार होगा, चोरी करने अर्हदासके घर आवेगा। जंबूकुमारकी माँकी जागी देखकर अपना परिचय देकर उससे इतनी रात तक जागनेका कारण पूछेगा। माँसे सब बातें जानकर उससे प्रभावित अपने कर्मोंकी निंदा व विषकार तथा जंबूकुमारकी महान्‌ विरक्तिके संबंधमें सोचता हुआ वह जंबूकुमारको समझाने हेतु उसके वासगृहमें आवेगा, जहाँ जंबूकुमार सब बन्धुओंके बीच निविकार भावसे बैठे रहेगा। वहाँ जाकर वह जंबू-

१. वसुदेव-हिंदोमें घर्मरक्षि मुनिके स्थानपर प्रसन्नचंद्र राजर्षिका कथा पूरे विस्तारसे दिया गया है। ( देखिए परिशिष्ट २ )।



कुमारको भीठा वृक्ष सागेबाले उठनी कथा सुनाकर कह्या कि इसी प्रकार उपस्थित नोगोंने छेँटकर स्वर्ग मुखोंकी उच्छा करने लू भी उठ लैके समान मृत्युको प्राप्त होगा। इसके उत्तरमें अब्बाह्वरले पंडित वैष्णवी कथा कह्या (प्रस्ता०-५)। अंतमें जंबूकुमारके तर्जि विद्युच्चरको नो बोध प्राप्त होगा, तथा जंबूस्वामीनी ना एवं वधुएँ भी संसारसे विरक्ति भावको प्राप्त होंगी। जंबूस्वामीको वैराग्य भावको जानकर उसके सब स्वजन, सेना सहित कुण्डि राजा व जनादृत देव आकर अपना दोषा अभिषेकोत्सव मनावेंगे। तब जंबूकुमार दिव्य यानपर उड़कर वड़े वनजमुहके साथ विपुलाचलके शिखरपर मेरे ही पास आवेगा, तथा विद्युच्चर और उसके ५०० भृत्योंके साथ मुवर्न गणधरके पास बीछा लेगा। जंबूस्वामानके बारह वर्ष बाद मुझे निवास होगा, तब मुवर्नको कैश्य लाम। इसने बारह वर्ष बाद जब मुवर्नानी नोल होगा, तब जंबूको कैश्य लाम, और ४० वर्ष तक वे कैश्या अवस्थाने वनोदये देते हुए विहार करते रहेंगे। इस कथानो पुनकर अनन्त नानक देव जने वंशका माहुरान्यगत करडा हुआ उठकर नाचने लगा। श्रेणिज्जे पूछनेपर गौडनने अनन्त देव (वनु) हिंजीने अनन्त देव) का पूजनव अति संशेगेन कहा—अर्द्धमका भाई शिवदास पद्मनाभों पड़कर वरवस्थाको प्राप्त होकर पद्मानाभ करके मरकर देव हुआ।

इस कथाने कहु कुन्नेपर श्रेणिज्जे विदुन्नाको देवका पूर्ववत् पूछा। आगेको संपूंकथा, शिवकुमार और मागवत्त तथा भवदेव और भवदेवके जन्मों तथा चारों देवियोंके जगामी जन्ममें जंबूस्वामीनी मलिन्या बननेका वृत्तान्त सब कुछ वधुदेव हिंजीके अनुसार है। अंतर केवल इतना है कि भवदेव-भवदेवके जन्म स्थानका नाम बृद्ध नानक गांव, गिता राज्जुट नानक वैश्य, भवदेवकी वधूका नाम चागिकाने स्थानपर नागधी, और भवदेवको बोध देनेका निमित्त नागधी नहीं एक गणिनीको बतलाया गया है। गणिनीके कदमानुसार नागधीकी चारित्र्य आदिसे पीठित कुण्डल्याकी देखकर भवदेवको संसारकी असारता एवं देहकी लपनगुरताका बोध प्राप्त होकर सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

संबद्ध गणि हूट वधुदेव-हिंजी तथा गुणमत्र कृत उत्तर-गुणाने अतिरिक्त (परंतु जालकी दृष्टिसे इन दोनोंके बीच) जंबूस्वामीने अंतिम भवनी कथाने लगभग पूर्णतया समझ बूझी कथा हरिमत्र कृत समराइव-कथा (८वीं शती ई०) के नौवें भद्रमें प्राप्त होती है। कथा संशेगेन निम्नप्रकार है—कुमार समरादित्त वड़े ही पतिमाधाली, विद्यापू, शौर्य-वीर्य-कैय आदि सर्वगुण एवं रूप-योग्य संपन्न राजकुमार थे। परंतु पूर्वजों के अज्ञात संस्कारोंके कारण बाल्यकालसे ही उन्हें नोगोंसे विरक्ति थी। फिर भी पिताके अति चाग्रहके कारण उन्होंने वे कथाओंके प्रायः विवाह किया, परंतु वे उनके अयोग्य बनते किंचित् नो विचलित नहीं हुए, और वधुओंकी वे प्रसन्न चर्चोंके साथ ठठकर कथा-वार्ता करते रहे। इसी प्रसंगमें उन्होंने रति रात्री तथा शुभंकरकुमार के अनुचित अनुप्रासकी कथा (जंबूसामिचरितमें विव्रना नामक रात्री और ललिताकुमारकी कथा किंचित् नैर छिये हुए छेप पूर्णतः समराइवकथाके अनुरूप) सुनाकर दोनों वधुओंको समझाया, और निम्न शब्दोंमें अनुप्रासकी सच्ची परिभाषा भी बतलायी : 'परमहित-मोक्षकी प्राप्तिमें अनुराग और जन्मे जालीयइतको उसकी प्रेरणा देना।' वधुओंके द्वारा विषय-नोप त्याग दिये जानेपर, उनकी इस शुभ भावनापर आन करते-करते शुभंकर कुमारकी धरमें रहते ही अवविश्राम हो गया, और नाका कथाओंके द्वारा जन्मे माता-पिताकी भी समझकर कुमार समरादित्तने निम-बीछा ले ली। देवताजाने आकर उनकी पूजा की। तत्पश्चात् धीरे ही कालमें तप करते हुए मृनि समरादित्तको ब्रह्मचर्य कैश्य तथा मोक्षकी प्राप्ति हुई। जंबूस्वामीने आख्याने इसका सादृश्य उत्पन्न स्पष्ट है, अतः कवि लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

जयन्हि मूरि-द्वारा विरचित धर्मपदेसमालाविवरण (वि० सं० ९१५) में 'दोषबाह्ये नूपुरपडिता-कथा'; मधुविदु-कृष्ण-नर-कथा, क्र० ७३; तथा ब्रह्म-माहाटव्यां वमसार्यवाहकथा, क्र० ८५-८६; ये सब कथाएँ पूर्णरूपेण विद्वत्मान-हैं, और निष्पद्यतः ये ही कथाएँ गुणलङ्घित जंबूचरित्रं (लिङ्गमनी ११ वीं शतीके

१. 'जंबूसामिचरित' की कुछ संतर्कधाराओंके समकक्ष अन्य कथाएँ भी समराइवकथामें उपलब्ध हैं, उनका मित्रेन आगे यथास्थान किया गया है।

पूर्व) की कथाओका आदर्श यनी है। जंबूस्वामीकी कथा इसमें अति संक्षेपमें 'सत्पुरुषप्रभावे जम्बूकथा', (क्र० ५३), में निम्न गायिकाके व्याख्यान रूपमें विद्यमान है :—

सुपुरिसचेट्टं दटुं वुज्जंते नूण कूरकम्मा वि ।

मुणि-जंबु-दंशणाओ चिलाय-यमवा जहा बुद्धा ॥३८॥

जम्बूद्वन्नात् प्रभव. प्रतिबुद्धः। 'रायमिहे उसभदत्तस्स धारिणोए जह नेमित्ति-सिद्धपुत्तादेसाओ जंबू नामो जाओ। जहा य संवडिहओ पहिबुद्धो, जणणि-जणय-वयणाओ जह अट्ठ कन्नयाओ परिणोयाओ। ताहि सह जुत्त-गडिवत्तीहि धम्मज्जाग(र)णेण जग्गत्तस्स चोर-सहिओ पमवो बोहिओ। जहा हि दोन्नि वि पव्व-इया, तहा सुप्पमिद्धं' ति काळण न भणियं गंव-भोरव-भोरुत्तणओ, नवर भुवणओ सवुद्धोए कायव्वो।

'जंबूसामिचरिड' कथाकी पूर्व परंपराकी दृष्टिसे प्रथमतः वसुदेव द्विदो, द्वितीय गुणभद्र कृत उत्तर-पुराण, तृतीय समराइच्च कहा, एवं चतुर्थ जयसिंह सूरि कृत 'धर्मोपदेशमालाविवरण' पर विचार करनेके उपरांत जिस ग्रंथपर हमारी दृष्टि अनायास आकृष्ट हो जाती है वह है प्राकृत 'जंबूचरियं'। मुनि गुणपालकी यह कृति सुंदर रत्नोसे बीच-बीचमें जटित एक थोड़ा मुक्तामालाके समान गद्य-पद्यमय मिश्रित शैलीमें रचित काव्य एवं साहित्य-रससे भरपूर एक उत्कृष्ट रचना है। इस ग्रंथका लेखनकाल अतीतक निःसंदिग्ध रूपसे निर्धारित नहीं किया जा सका है, परंतु इसके विद्वान् संपादक मुनि श्री जिनविजयजीने उसकी भाषा एवं शैलीपर गंभीरतापूर्वक विचारकर ग्रंथकी प्रस्तावनामें इसका रचनाकाल विक्रमकी ११वीं शती अथवा इससे पूर्व माना है। डॉ० नेमिचंद्रजी गाश्मिने भी अपने ग्रंथ 'प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन'में इसका रचनाकाल मुनि जिनविजयजीको अपेक्षा और भी दो शती पूर्व अर्थात् विक्रमकी नौवीं शतीके लगभग माना है। 'जंबूचरियं' तथा 'जंबूसामिचरिड'के तुलनात्मक अध्ययनसे यह समस्या कुछ और सुलझ जाती है और निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि 'जंबूचरियं'की रचना वि० सं० १०७६ में 'जंबूसामिचरिड'के प्रणयनसे अवश्य ही कुछ पूर्व समाप्त हो चुकी होगी, तथा इसकी महान् ख्यातिसे आकृष्ट होकर वीर कविने निश्चयसे गंभीरतापूर्वक इसका अध्ययन किया होगा, और संभवतः इसकी किञ्चित् प्राकृत भाषा निबद्ध शैली एवं लंबे-लंबे वाकिक उपदेशों व नीरस और वार्त्तिक प्रतीकोके कारण इसे सर्वजनप्रिय न समझकर, सरलतर प्राकृत अर्थात् अश्लेष भाषामें, अर्थ-सुगम शैलीमें, काव्यरससे सर्वसाधारणको विभोर कर देनेवाले अपूर्व श्रयरत्नकी रचना करनेकी वलवत्तर प्रेरणा उसके कविहृदयमें उदग्म हुई होगी, जिसकी महाकाव्यात्मक कथावस्तुका आयाग आदर्श रूपमें स्वभावतः उसके समस्त उपस्थित हो गया था। निम्न पंक्तियोंके अध्ययनसे यह कथन स्वतः प्रमाणित हो सकेगा।

वसुदेव द्विदो तथा गुणभद्र कृत उत्तरपुराण के मूलकथा गठनके परिप्रेक्ष्यमें जब हम गुणपालकृत 'जंबूचरियं' के मूलकथा-गठन एवं अंतर्कथा-मुंफन-शिला-पर विचार करके देखते हैं तो एक सर्वथा परिवर्तित, नवीन एवं अपूर्व कथावस्तु हमारे सामने उपस्थित होती है, जिसमें प्रथम दो उद्देश्योंमें हरिभद्र कृत समराइच्च कहाके समान साहित्यिक रीतिसे कथाओंके अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा एवं सकीर्णकथा ये चार भेद बतलाकर, फिर मनुष्योंके कल्याण हेतु धर्मकथा कहना ही काव्य-रचनाका उद्देश्य एवं प्रयोजन बतलाकर विस्तारसे धर्मचर्चा करके तीसरे उद्देश्य (अध्याय) से वास्तविक कथा प्रारंभ की गयी है। संक्षेपमें कथा निम्न प्रकार है :—

जंबूदीपके राजगृह नामक नगरमें श्रेणिक नामका राजा था, उसकी चेलना नामक महादेवी थी। एक समय विपुलाञ्जलपरभ० महावीरका समोशरण आया। राजा श्रेणिक भी भगवान्के दर्शनोके लिए नगरसे निकला। रास्तेमें प्रसन्नचंद्र मुनिके दर्शन हुए; जिनके मुखपर ध्यानावस्थामें ही नाना प्रकारके उत्तर-वृद्धाव आ रहे थे। समोशरणमें जाकर श्रेणिकने भगवान्से प्रसन्नचंद्र राजाधिके संवत्समें जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त की। भगवान्ने राजपिका पूर्ण कथानक विस्तारसे सुनाया। इससे राजपिको केवलज्ञान हो गया और आकाशसे देवगण उनका कैवल्योत्सव मनाने आये। 'राजपिके दाद अतिम केवली कौन होगा?' यह प्रश्न करनेपर भगवान्ने अपनी चार देवियों सहित प्रसन्नचंद्र केवलीकी वदना निमित्त वहाँ आये हुए अत्यंत तेजस्वी विष्णु-

न्माली देवकी ओर संकेत करके बतलाया कि यही देव अंतिम केवली होगा। विष्णुन्माली देवकी अतिशय तेजस्विताका कारण एव उसके पूर्व-भव पृच्छनेपर भगवान् महावीरने उसके प्रथम भवसे कथा प्रारंभ की। सुग्राम नामक ग्राममें भवदत्त-भवदेव दो भाई थे। सुस्थित नामक मुनिके संयोग एव वर्मोपदेशसे भवदत्तको वैराग्य हो गया और वह साधुसखमें दीक्षित हो गया। कुछ काल बाद अनुजको भी दीक्षित करनेके निश्चय-से मुनि भवदत्त, संघके पुनः अपने ग्राममें आनेपर, अपने घर गया। और नव-वधूके साथ सातफैरे (सप्तपदी) लेते हुए भवदेवको विवाहकार्यके बीचमें-से ही भोजनयुक्त भिक्षा-पात्र हाथमें देकर, इस वहाने उसे नगरके बाहर जहाँ संघ ठहरा था, उस ओर ले जाने लगा। भवदेव घर लौटनेकी इच्छासे पूर्व-कीर्तित स्थानोको दिखलाता हुआ चला। मुनि 'हूँ, हाँ, स्मरण करता हूँ', ऐसा कहते हुए चुपचाप जैसे चलते रहे। भवदेव भी अग्रजके सम्मान, मर्यादा एवं लज्जाके बंधीभूत हुआ, उनकी अनुमति बिना घर न लौट सका, और सघमें जाकर चुपचाप दीक्षित हो गया, पर सासारिक सुखोका ही चिन्तन करता रहा। कुछ काल बाद मुनि भव-दत्तके स्वर्गस्थ हो जानेपर अवसर पाकर भवदेव पुनः अपने घरकी ओर चला। नगरके बाहर ही जिन चैत्यालयमें मामिला (पत्नी) से भेंट हो गयी। उसने भोग-सुखकी वासनासे पाड़ा बननेवाले तथा अपने ही बमनको खानेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणपुत्रोके दृष्टांतों द्वारा भवदेवको बोध दिया। इसके उपरांत भवदेव कठोर तपस्या कर स्वर्गमें देव हुआ। स्वर्गसे आकर बड़ा भाई भवदत्त सागरदत्तके रूपमें जन्मा, और भवदेव राजपुत्र शिवकुमारके रूपमें। सागरदत्तके दर्शन व संयोगसे शिवकुमारको पूर्व-जन्मस्मरण एव वैराग्य हो गया। माता-पिताके आग्रहको न टाल सकनेके कारण शिवकुमार घरमें रहता हुआ ही कठोर तप करने लगा (इस जन्ममें शिवकुमार एवं कनकवतीकी परस्पर प्रणयकथा बहुत ही रोचक है)। सागरदत्त मुनि तप-साधना कर मोक्ष गये और शिवकुमार समाविसरण कर स्वर्गमें विष्णुन्माली नामक देव हुआ, जिसकी चार अत्यंत प्रिय देवियाँ हैं। यह सात दिनों बाद राजगृहके सेठ ऋषभदत्तकी धारिणी नामक बर्मपत्नीके गर्भमें आवेगा तथा अत्यंत यशस्वी पुत्र होगा, और १६ वर्षकी अवस्थामें दीक्षा लेकर अंतिम केवली होगा। ये चारों देवियाँ स्नेहवशात् इसकी पत्नियाँ बनेंगी। कुल आठ कन्याओं (४ पूर्व देवियाँ + ४ कन्याएँ) से इसका विवाह होगा। इसी प्रसंगमें अणादिय देवका लघु आख्यान कहा गया है।

उचित समयपर जब्बाका जन्म हुआ। युवा होनेपर सुवर्माका उपदेश सुनकर उसे वैराग्य हो गया, पर माता-पिताके अत्यधिक आग्रहके कारण पूर्व वाग्दत्त आठ कन्याओंसे विवाह किया और अपने वासगृहमें आकर निर्विकार भावसे बैठा। सब सो गये। प्रभव और अपने ५०० साथियोंके साथ चोरी करने आया। जब्बो जागते हुए देखकर उससे कथासलाप करने लगा। जब्बुमारने सासारिक सुखोके संवर्धमें मधुविदु दृष्टात एवं रिद्धे-नाते और पिंडदानके संवर्धमें एक ही जन्ममें अठारह नाते तथा महेश्वरदत्तके आख्यान सुनाये। बहुतों भी जाग गयी और पहले एक पत्नी-द्वारा कथा, फिर जब्बु-द्वारा उसका उत्तर; फिर दूसरी पत्नीको कथा और उसका उत्तर, इस प्रकार कथा-प्रतिकथाके रूपमें (१) मूल किसान, (२) कौवा, (३) वामर-धुगल, (४) ईंशालदाहक, (५) नूपुरपंडिता, (६) मेघरथ-विष्णुन्माली, (७) शंखधमक, (८) यूपपति वामर, (९) बुद्धि-सिद्धि, (१०) आत्यक्ष, (११) ग्रामकूट पुत्र, (१२) घोड़ीपालक, (१३) माँ-साहस पक्षी, (१४) तीन मित्र, (१५) चतुर शास्त्रण कन्या, (१६) ललिता रानी, (१७) बनिये और खदानें तथा (१८) इन्द्र्या-टवी-भावाटवीका दृष्टात ये सब आख्यान कहे गये। अंतके तीन आख्यान अकेले जब्बुस्वामी-द्वारा सुनाये गये। सबको बोध हो गया। राजा कृणिवने जब्बुका दीक्षोत्सव बड़े उत्साह-उत्साहसे मनाया। जब्बु, उसके माता-पिता, वधूएँ व उनके माता-पिता एवं ५०० साथियों सहित प्रभव, सबने दीक्षा ली। सुवर्मा कंबल्य प्राप्त कर मोक्ष गये। जब्बु संघके प्रधान हुए और यथासमय मोक्ष गये। अन्य सब तप करके स्वर्गको प्राप्त हुए। इस प्रकार मुनि गुणपाल कृत जब्बुचरित पूर्ण हुआ।

उपसृक्त रीतिसे गुणपाल कृत जब्बुचरितके मूलकथा-गठन एव अंतर्कथाओंके संयोजनपर जोडा-सा ध्यान देनेमें ही यह बात विलकुल स्पष्ट हो जाती है कि वीर कविने अपने महाकाव्यकी योजनामें, इस दृष्टि-से आदर्शक जन्म सत्त्वोका समायेन तथा यथामात्र सद्योप-संवर्द्धन और परिवर्तन कर, अन्य सब रीतिभेदे

‘जंबूचरिय’ को ही प्रमुख रूपसे अपना आदर्श आधार-ग्रंथ माना है, हाँ, सामग्री उन्होंने गुणभद्रके उत्तर पुराणसे भी यथावश्यक यथेष्ट परिमाणमें संग्रहीत की है; और ‘जंबूसामिचरिड’ में समाविष्ट पाँच अंतर्कथाएँ तो ऐसी हैं, जो प्रथम बार केवल ‘जंबूचरिय’ में ही उपलब्ध होती हैं, इसके पूर्व अन्य किसी ग्रंथमें नहीं। संभव है गुणपालको अर्द्धमागधी भागमंत्रयोकी टीकाओं या चर्चियों अथवा मौखिक परंपरासे ये लघुकथाएँ उपलब्ध हुई हों, परंतु इस संपादकको अवगत इनका कोई अन्य पूर्ववर्ती स्रोत ज्ञात नहीं हो सका। सभी प्रमुख जंबूस्वामिचरितोकी आद्योपांत कथासारिणीसे भी यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है। उपर्युक्त नमस्त चर्चापर विचार करते हुए गुणपालकृत ‘जंबूचरिय’ का रचनाकाल वि० सं० १०७६ में ‘जंबूसामिचरिड’ की रचनासे पूर्वतर मानना युक्तिमय एवं औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

बीर कविके पूर्ववर्ती साहित्यकारोंकी उपर्युक्त रचनाओंके अतिरिक्त महाकवि पुण्यदत्त कृत महापुराण ( वि० सं० १०२९ ) के उत्तरखंडमें ‘जंबूसामिदिवलवण्ण’ नामक सौवी संधिमें संक्षेपमें जंबूस्वामिचरित वर्णित है, जो पूर्णतः गुणभद्र कृत उत्तर पुराणके ७६वें पत्रके अनुकरणपर रचित है, अतः उसमें कोई नवीनता नहीं है।

कालक्रमसे जंबूस्वामीकी कथा-परंपरामें इन सबके उपरांत बीरकृत ‘जंबूसामिचरिड’ का स्थान है। बीरके पश्चात् दिगम्बर आम्नायकी साहित्य-संपत्तिमें इस कथापर आधारित दो प्रमुख कृतियाँ हमारे समक्ष आती हैं - ( १ ) ब्रह्म जिनदास ( वि० सं० १५२० ) तथा ( २ ) पं० राजमल्ल ( वि० सं० १६६२ ) कृत ‘जंबूस्वामिचरित्र’। ये दोनों रचनाएँ संस्कृत भाषामें सुंदर काव्यशैलीमें रचित हैं, परंतु कुछ कम-अधिक दोनों ही बीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यके लगभग पूर्णतया संस्कृत-स्वांतर हैं, अतः इनमें कोई नवीन सामग्री नहीं है। पुरानी जयगुरी हिंदी, व आधुनिक हिंदीमें भी इन्हीं ग्रंथोंके छंटे-बड़े संक्षिप्त रूपांतरोंमें कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनकी सूची आगे दी गयी है।

अब आम्नायकी साहित्य-भारामें जंबूस्वामीचरित-कथाकी परंपरा आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूपसे चलती आयी है, और इसमें विविधशैलियों, भाषाओं व छोटो-बड़े आकारोंकी पचासों कृतियाँ उपलब्ध हैं ( देखें आगे सूची )। उनमेंसे कुछ प्रमुख ग्रंथ हैं ( १ ) भद्रेश्वर कृत प्राकृत-कथावली ( वि० सं० १२ वीं शती पूर्वार्द्ध ); ( २ ) नैमिचंद्रसूत्रिकृत प्राकृत-प्राख्यानरामणिकोप ( वि० सं० १२२९, केवल प्रसन्नचंद्र राजपि तथा मुरपडिता, ये दो अंतर्कथाएँ ); ( ३ ) हेमचंद्र कृत संस्कृत परिशिष्टपर्व ( वि० सं० १२१७-१२२९ ); एवं ( ४ ) उदयप्रभसूत्रि कृत संस्कृत धर्मभूय-महाकाव्यमें संपूर्ण अष्टम सर्ग ( वि० सं० १२७९-१२९० ) आदि।

### जंबूसामिचरिडकी कथा-परंपराओंका तुलनात्मक अध्ययन

ऊपर बसु० हिंडीके अनुसार जंबूकथाके संक्षेपमें हममें देखा है कि कथावस्तु सीधे जंबूस्वामीके गर्भमें आनेसे लेकर, जन्म, युवावस्था, गुरुपदेश, वैराग्य, माता-पिताके आग्रहसे आठ कन्याओंसे विवाह, प्रसवका चोरी हेतु आगमन, जंबूसे कथोपकथन ( अधिकांश अंतर्कथाओंका यहाँ समावेश ), सबको बोध और दीजा तक आकर कृष्णिक अज्ञातभट्टके द्वारा जंबूके पूर्व-भव जाननेकी जिज्ञासा करनेपर कथा पीछेकी ओर मुड़ती है, और उसमें विद्युन्मालीका आख्यान आता है। तथा वहाँसे फिर और पीछे चलकर भवदत्त-भवदेव सागरदत्त-शिवकुमार और पुनः विद्युन्मालीदेव तथा उसकी चार देवियों-पर लैं जाकर कथा बड़े विचित्र स्थलपर आकर समाप्त हो जाती है।

गुणभद्रके उत्तरपुराणमें भी कथाको जंबूस्वामीसे ही प्रारंभ कर पीछेकी ओर उलटे क्रमसे : विद्युन्माली, सागरदत्त-शिवकुमार एवं भवदत्त-भवदेव-पर ले जाकर अपनी पत्नी नागश्रीकी दारिद्र्यादि जनित दारुण दुरवस्था देखकर वास्तविक वैराग्य और तपःसाधना आरंभ करनेपर कथा समाप्त की गयी है। इन दोनों चरितकथाओंके संपूर्ण गठन एवं अंतर्कथाओंके संक्षेप-विस्तारके अतिरिक्त वास्तविक अंतर नगण्यके समान है।

‘जंबूसामिचरित’ को कथावस्तुके साथ उपर्युक्त कथा-रूपरेखाओपर तुलनात्मक दृष्टिपात करके देखें तो हमारे सामने निम्न तथ्य स्वतः उपस्थित होते हैं :—

(१) धनुर्देव-हिंडी तथा उत्तरपुराण दोनोंमें जंबूस्वामीकी कथाका वह प्रारम्भिक स्थूल प्राप्त दिखाई देता है जब कि वह आगम क्षेत्रसे निकलकर पुराण एवं कथा साहित्यमें अवतीर्ण हुई थी। इस समय तक इस कथाने काव्य रचनाके योग्य कथावस्तुका ही नहीं, बरन् व्यवस्थित चरित कथाका भी रूप धारण नहीं किया था। इन दोनों ग्रंथोंमें जिस स्थलपर एवं जिस रूपमें जंबूस्वामीके अंतिम भवकी कथा कही गयी है, उससे स्पष्ट है कि अन्य पूर्वभवकी कथासे इसका कोई वास्तविक संबंध नहीं है। केवल विद्यु-म्नालीके भवका कुछ सवध मालूम पड़ता है, वह भी धनिष्ठतासे नहीं। जंबूस्वामीके भवका वृत्तांत जान लेनेके उपरांत पाठकको वास्तवमें उसके पूर्वभव जाननेकी कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती। विद्युम्नाली देवसे कथाका संबंध जोड़कर किसी तरह कुछ जिज्ञासा और उसके साथ अन्य भवोंके विषयमें भी कुछ उत्सुकता उत्पन्न की जाती है।

(२) राजर्षि प्रमत्तचंद्र अथवा धर्मध्वजिका जो आख्यान इनमें मिलता है, उसका मूलकथासे बिल्कुल कोई संबंध नहीं है।

(३) शिवकुमार सागरदत्त, तथा भवदेव-भवदत्तके आख्यानोंको ऊपरसे किसी तरह आरोपित किया गया है, यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि नायकका वर्तमान भव पूर्ण जान लेनेके उपरांत, पिछले भवोंकी अधिकांश जिज्ञासा स्वयमेव शांत अथवा नष्टप्राय हो जाती है। अर्थात् इन ग्रंथोंमें पाँचो भवोंकी कथाओंमें कोई वास्तविक संबंध तो प्रतीत नहीं हो जाता, इसके विपरीत ऐसा अनुभव होता है कि जंबूस्वामीके एक भवके संक्षिप्त वृत्तके साथ, अन्य भवोंकी कथाएँ अन्यान्य स्रोतोंसे लेकर सबको किसी प्रकार एक ही कथावस्तुके सन्निवेश में भर दिया गया है।

(४) कथाक्रम भी दोनोंमें व्यवस्थित नहीं है। वसुदेव-हिंडीमें पहले जंबूस्वामी, फिर विद्युम्नाली, उसके पश्चात् भवदत्त-भवदेवका भव, तथा अंतमें सागरदत्त-शिवकुमारकी कथा कहकर उनका विद्युम्नाली और फिर जंबूस्वामीसे संबंध स्थापित किया गया है। उत्तरपुराणमें क्रम और भी बिचित्र है, पहले विद्युम्नाली देवका आना, फिर जंबूस्वामीका चरित, फिर विद्युम्नालीके पूर्व-भवमें शिवकुमार सागरदत्तका चरित, और इसी भवमें सागरदत्तसे भवदत्त और भवदेवके पूर्व-भवकी कथा कहलायी गयी है। इस प्रकारके क्रमसे कथामें एक विस्पृहलता आ गयी है, जिससे पाठककी जिज्ञासाका ह्रास होता है और वह आत-थक्ति-ही हो जाती है।

(५) उत्तरपुराणमें भवदेवको उसकी त्यक्त पत्नीसे नहीं, बरन् एक गणिनी ( साध्वी ) से बोध दिलाकर कथाका एक और उत्कृष्ट मार्मिक स्थल नष्ट कर दिया गया है।

(६) जंबूस्वामीकी आठ या बार पत्नियोंके सवधमें पूर्वभवका कोई वृत्तांत नहीं कहा गया।

(७) जंबूस्वामी तथा सुधर्माका पूर्वजन्मका कोई सवध इन ग्रंथोंमें दिखलाया नहीं गया। बरन्, भवदत्त-भवदेवमें अश्वज-अन्व संबंध तथा सागरदत्त-शिवकुमारके भवमें पूर्व संबंध जनिता आकास्मिक अनुराग एवं तत्तज्जन्म पूर्व-जातिस्मरण भवका उल्लेख है।

(८) नायक ब्रह्म भूमिमें वीर भावको प्रकट करनेकी कोई आवश्यकता इन्हें प्रतीत नहीं हुई, अथवा ऐसा करनेका कोई सुयोग्य अपनी रचनाओंमें ये नहीं जुटा पाये।

उपर्युक्त मुद्दोंपर विचार करनेसे ऊपर लिखे अनुसार यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें वर्णित मूल-जंबूकथा तथा उसके भव-भवांतरोंकी अन्य कथाओं एवं अंतर्कथाओंमें कोई बहिच्छेद-अखंड-नीय संबंध नहीं है। अतः ये सब मिलकर किसी सुव्यवस्थित-सुगठित चरित-कथाका निर्माण नहीं करती और स्पष्टतया कथाकथन मात्रके उद्देश्यसे ऊपरसे जैसे-तैसे आरोपित की गयी आभासित होती है, जिससे इनमें वर्णित चरित-कथा अनेक लघुकथाओंके सकलनके समान प्रतीत होती है।

वसुदेव-हिंडी तथा उत्तरपुराणकी जंबूचरित-कथाके अध्ययनसे एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी

प्रकट होता है कि मुद्र साहित्यमें दिग०, दवे० जैसा क्षुद्र आम्नाय-भेद तबतक न्यागित नहीं हुआ था। विमलसूरिके प्राकृत पञ्चचरित्रं तथा दिग० परंपराके आ० जिनमेन रचित पद्मसुगणके अध्वयनसे भी यह तथ्य पुष्ट होता है।

अब इन्ही मुद्दोंपर गुणगाल कृत जंबूचरित्रका विवेचन करनेमें निम्न बातें प्रकट होती हैं।—

(१) गुणपालने कथाक्रमको पूर्णतः परिवर्तित कर, विद्युन्माली देवसे प्रारम्भ कर, भवदत्त-भवदेव, देवगति, सागरदत्त-शिवकुमार, सागरदत्तको मोक्ष एवं शिवकुमारका विद्युन्माली देवके रूपमें जन्म लेना और महासि जंबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्ष जाने तकके वृत्तको अत्यंत सुंदर, सुगठित, सुसंवद्ध तथा महाकाव्य रचनाके सर्वथा योग्य आध्यात्ममें सजाया-सँवारा है।

(२) राजपि प्रसन्नचंद्रके कथानकको गुणपाल भी संभवतः पूर्वपरंपराके आग्रहके कारण छोड़ नहीं सके।

(३) शिवकुमार-सागरदत्त एवं भवदेव-भवदत्तके आख्यानोंको सुसवद्ध रीतिसे इस प्रकार लिया गया है कि वे मूलकथाके अनिवार्य-अविच्छेद्य अंग बन गये हैं। शिवकुमार एवं कनकवतीका परस्पर प्रेमाख्यान बहुत सुंदर व रोचक है, तथा अन्य सभी जंबूचरित्रोंसे अतिरिक्त है। इस कथाका आचार सम० कहाके हि० भवमें सिंहकुमार-कुमुमावलीको प्रणयकथा है।

(४) कथाक्रम बिलकुल सुव्यवस्थित है, जिससे पाठको जिज्ञासा और कुतूहल आद्योपांत निरंतर बने रहते हैं।

(५) वपु० द्विषीके समान भवदेवको उसकी पत्नी नागिलाके द्वारा ही बोध प्राप्ति कराया गया है।

(६) जंबूस्वामीको आठ पत्नियोंके संबंधमें पूर्वभवका कोई वृत्तांत इसमें भी नहीं है।

(७) जंबूस्वामी-सुधर्माका कोई पूर्व-संबंध यहाँ भी स्थापित नहीं किया गया है।

(८) नायकमें बीरताका गुण प्रकट करनेका इन्हें भी कोई विचार नहीं आया।

### बीर रचित 'जंबूसामिचरित्र' की विशेषता

अपर्युक्त तीन कृतियोंके विवेचनसे यह सुजात हो जाता है कि गुणपाल कृत 'जंबूचरित्र'का इतिवृत्त ही प्रस्तुत 'जंबूसामिचरित्र' महाकाव्यकी मूल कथावस्तुका प्रमुख आधार है। उसीमें परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधन करके बीरने अपनी रचनाको चरित्रात्मक प्रेमाख्यान महाकाव्यका रूप दिया है। विद्युन्माली देवके प्रकट होनेसे, उसके पूर्वभवके संबंधमें प्रश्न करके पाठकमें जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न कर गुणपाल और बीर दोनोंही भवदत्त-भवदेव, देव, सागरदत्त-शिवकुमार; विद्युन्माली देव एवं जंबू-सुधर्मा तथा प्रभव या विद्युच्चर-के कथानकोंको और ले चलते हुए पाठककी अभिरुचि और जिज्ञासा निरंतर जाग्रत-बनाये रखनेमें सफल हुए हैं। गुणपालकी रचना लवे-लवे धार्मिक उपदेशों और कथाओंके साथ सर्वत्र गूढ़ धार्मिक-आध्यात्मिक प्रतीकोंको संवद्ध करनेसे सामान्य पाठकके लिए दुःख और बोझिल हो गयी है। बीरने अपनी काव्य-चातुरीसे अपनी रचनामें ऐसी स्थिति कही भी उत्पन्न नहीं होने दी।

गुणपालने पूर्व-परंपराानुसार भवदत्त-भवदेवके संबंधको तीसरे भवमें सागरदत्तको मोक्षोपलब्धि कहकर बही काट दिया। परंतु बीर कवि ऐसा न करके उसे पाँचवें भव तक ले आया; तथा पाँचवें भवमें सुधर्माके द्वारा उससे पूर्वके चारो स्त्रियोंको संक्षेपमें कहलाकर कथासूत्रको आद्योपांत प्रगाढ़ एवं अविच्छेद्य-रीतिसे जोड़ दिया। इसी प्रकार जंबूस्वामीको चार पत्नियों वा विद्युन्माली देवको चार देवियोंका एक श्रेष्ठिकी चार पत्नियोंके रूपमें पूर्वभवका वृत्तांत जोड़कर उनके उस जन्मके तपस्वी सुकृत-नामधर्म्यसे उनमें जंबूस्वामीकी पत्नियाँ बनने योग्य अर्हता उत्पन्न कर, इस जन्ममें उनके संबंधका सार्थक्य एवं अविच्छेद्य संगति भी असूतपूर्व रीतिसे सिद्ध किये हैं। बाल्यकालसे ही विवेकवान् होनेपर भी नायकको सर्वथा नीरस-वैराग्यी नहीं दिखलाया जैसा कि अन्य पूर्व रचनाओंमें है। बल्कि युवावस्थामें अपनी सुहृन्मंडलीके साथ कामनियंसे कामविकार रहित स्वच्छ जल-झोड़ा भी दिखलायी है, और जंबूस्वामीमें महाकाव्योचित नायकके

बुद्धिमत्ता, वीर्य, वीर्य, वीर्य, साहस, तेजस्विता आदि सभी गुणोंको प्रकट करनेकी दृष्टिसे जलक्रीडाके समय हस्त्ययुद्ध और स्वानी-द्वारा सरलतासे उसका पराजय तथा केरल नगरीमें युद्ध-की घटनाओंको अपनी कवि-कल्पना-द्वारा मूल कथाके साथ गुफित कर दिया है। प्रसन्नचंद्र ( या घर्मरुचि ) के मूल-कथा-गठनमें सर्वथा अनावश्यक और ऐसे ही अन्य छोटे-बड़े कथानकोंको अपनी रचनामें-ने निराल दिया है और कुछ नवीन सुंदर लघुकथाओंको समाविष्ट कर लिया है। व्यभिचारिणी रानी एवं वणिक्पुत्रवधूके द्विकथात्मक बड़े आख्यानमें-से रानी संबंधी अंग विलकुल छोड़ दिया है, तथा वणिक्पुत्रवधूके आख्यानको भी बहुत सजिस्त कर दिया है।

इस प्रकार वीर कवि अपनी मौलिक सूत-बुझ और काव्य-कला कीशालसे प्राचीन सामग्रीमें-से एक उत्कृष्ट व अभिनव महाकाव्यकी रचनामें पूर्ण सफल हुआ। संघदास, गुणभद्र एवं गुणपाल भी, मूलतः कवि रूपमें नहीं, कथाकार व उपदेशके रूपमें हमारे समक्ष आते हैं, जबकि वीर चरित-काव्यके निर्माता महाकविके रूपमें। अतः उने महाकवि कहा जाना सर्वथा उचित है।

### जंबूचरितकी कथाका मूलस्रोत

जंबूस्वामीकथाकी पूर्व-परंपराका गंभीरताने अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वसुदेव-हिंडीके पूर्व विंग०, स्वे० संपूर्ण आगम साहित्यमें 'जंबू काश्यप गोश्रीय थे, वे सुघमके गिण्य थे, नृधर्मसे जंबूके प्रभोके उत्तर-स्वरूप सारे अर्द्धयागभी आगमोंको उन्हें कहकर सुनाया, सुघमके मोक्ष जानेपर जंबूको केवलज्ञान हुआ और ४०,४४ वर्ष जैन साधु संघके प्रधान रहकर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ, तथा जंबू इस कालमें अंतिम केवली हुए—'इन सूचनाओंके अतिरिक्त जीवनचरित-विषयक अन्य कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं होती। तब यहाँ यह प्रश्न होता है कि संघदास गणिते जंबूचरित कथाका निर्माण किस प्रकार किया? क्या शुद्ध निनी कल्पनासे? अथवा उनके सामने कोई और अज्ञात आचार-होना संभव है? जंबूके चार या आठ कथाओंसे विवाह करने भी, भरपूर जीवनमें बिना इंद्रिय सुख भोग लिये, विरक्त होकर दोसा लेनेका वृत्त भौतिक-परंपराके माध्यमसे भी संघदासको प्राप्त होना संभव है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि भवदत्त-भवदेव जन्मकी अत्यंत रसात्मक व मार्मिक कथा किस तरह, कहलै, संघदासने जंबूके जीवन-चरितसे जोड़ दी?

इस कथाके मूलस्रोतकी शोधमें अन्य भारतीय साहित्यपर दृष्टिपात करनेसे प्राचीन संस्कृत साहित्यमें जो रचना बलात् हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है बौद्ध महाकवि अश्वघोष कृत सौंदर्यनंद काव्य। कौय प्रभृति संस्कृत साहित्यके इतिहासकार विद्वानोंके मतानुसार अश्वघोषको भास व कालिदाससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। इनका अनुमानित जीवनकाल ई० पूर्व प्रथम शती माना जाता है।

इन काव्यकी 'कथावस्तु' जंबूस्वामीके पाँच भवोमें-से उनके प्रथम और अंतिम इन दो भवोंके वृत्तसे संक्षेपसे मेल रखती है। यहाँ जंबूस्वामीके पाँचवें पूर्वजन्ममें भवदेवने भाईकी मर्यादाकी रक्षाके विचारसे वैराग्य लिया, और १२ वर्षों तक भुनितवैश्यां रहकर भी पत्नीका ही ध्यान करता रहा। फिर पत्नीसे मिलने आया, तब उसीने बोध देकर पतन होनेसे अवाया। फिर देव हुआ। फिर शिवकुमारके जन्ममें बड़े भाईके जीव सागरदत्त मुनिके दर्शनसे उसे प्रतिबोध हुआ। धरपर रहकर ही तपस्या की। फिर देव हुआ, और अंतमें जंबूस्वामी। इस जन्ममें चार नव-विवाहित वधूओंको छोड़कर दोसा ली, तप किया, कैवल्य प्राप्त किया और फिर मोक्ष। यह पाँच जन्मोंकी कथा पूर्ण हुई।

दूसरी ओर सौंदर्यनंद काव्यमें सर्ग ४ से १२ तक गौतम बुद्धके अपनी दूसरी माँसे उत्पन्न सगे भाई नंदका चरित्र वर्णित है। बुद्धत्व प्राप्तिके उपरान्त जब गौतम कपिलवस्तुके आराम-प्राणणोमें जीवोंको चार आर्यसत्त्वों व अष्टांगिक-मार्गका उपदेश देते हुए विहार कर रहे थे, उसी कपिलवस्तुके राजमहलोंमें उन्हीं-का सगा भाई नंद, बुद्धके आगमनसे सर्वथा निरपेक्ष रहकर अपनी प्रियतमा सुंदरीके साथ भोग-विलासमें डूबा हुआ था। बुद्धने भिक्षाके लिए नंदके प्रासादमें प्रवेश किया, पर वहाँ किसीका ध्यान अपनी ओर

आकृष्ट न होनेसे भिक्षा लिये बिना ही वापस बनकी लौट चले । प्रासादकी छतपर खड़ी एक दासीने बुढ़की लौटते देखकर नंदको इसकी सूचना दी । इससे नंद दुःखित हुआ । वह तुरंत लौट आनेका वचन देकर, क्षण-भरके लिए भी जिसे प्रियतमका वियोग असह्य था, ऐसी अपनी प्रियतमासे मुनिको प्रणाम करने जानकी अनुमति मांगकर, एक ओर प्रियाके स्नेहके अदम्य आकर्षण तथा दूसरी ओर गुच-भक्तिके दृढ़के झूरेमें झूलता हुआ और प्रियाके अनुग्रह रूपका ध्यान करता हुआ मुनिके दर्शनोंकी चला ( सर्ग-४ ) । गीतम मार्गमें ही मिल गये । नदने मुनिके घर चलकर भिक्षा लेनेका अनुरोध किया, परंतु गीतमने उसे स्वीकार नहीं किया, तथा उसके ऊपर ( प्रज्ज्वा-दान रूपी ) अनुग्रहकी वृद्धिसे भिक्षापात्र उधरी हाथमें दे दिया । परंतु भिक्षा-पात्र हाथमें होनेपर भी जब नंद घर लौटनेको इच्छासे मार्गसे हटने लगा, तब गीतम अपनी दिव्य शक्तिके-द्वारा उसका मार्गविरोध करके बलात् नंदको संश्रमं ले गये । वहाँ उपदेश देकर उसे दीक्षित होनेको कहा । लज्जावश एक बार हाँ कहकर फिर स्पष्ट-त. मना करनेपर भी किसी-किशोरी तरह समझा-बुझाकर गीतमने प्रियाकी यादमें रोते हुए उस नंदका भिक्षुशो-द्वारा मुंडन कराकर उसे आनंदके मिथ्य रूपमें भिक्षु बना लिया ( सर्ग-५ ) ।

छठे सर्गमें नंदकी नव परिणीता पत्नी सुंदरीका नाना संकल्प-विकल्पोंसे युक्त अत्यंत फावणिक विलाप है, जिसे पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक डबीभूत हुए बिना नहीं रहता ।

सातवें सर्गमें नंदका विलाप है, और प्रियाके स्मरणसे उत्पन्न नंदकी दुःख अवस्थाका अतिशय मार्मिक चित्रण है । नंद एक ओर भौतिक सुखके सर्वसाधन-संपन्न अपने महलमें लौटकर अपनी दिव्य रूपवती पत्नी सुंदरीके साथ समस्त इंद्रिय भोगोंका भोगना चाहता है, दूसरी ओर गुरु और उनके प्रति भक्ति व लज्जा उसे घर जानेसे रोकते हैं । इस अंतर्द्वंद्वमें नंदकी स्थिति प्रतिलक्षण और भी अधिक दुःख होती जाती है और इसी अंतर्द्वंद्वकी स्थितिमें कामसे अभिभूत होनेवाले पूर्व मुनियोंके चरित्रोंका स्मरण कर ( ७.२५-७.५० ) एक दिन ऐसा आ ही जाता है जब वह 'कुलीन व्यक्तिके लिए भिक्षुवेष ग्रहण करके छोड़ना उचित नहीं, यह जो मेरा विचार है, वह भी नष्ट हो जाता है, यह सोचकर कि वे और नृपति तनीवनको छोड़कर अपने घरोंको लौट गये', इस विचारधाराके द्वारा अपने विवेककी तिलांजलि देकर घर लौट जानेका निश्चय कर लेता है । उसके अश्रुपूर्ण लोचन और इस प्रकारकी मानसिक स्थितिसे एक निन्दवर्ती भिक्षु उसके उच्च निश्चयको नाप लेता है, और नाना प्रकारसे स्त्री शरीरकी अशुचिता, रोगोंका धरं आदि उपदेशोंके द्वारा उसे भिक्षु जीवनमें स्थिर करनेका प्रयास करता है ( सर्ग ७ ) । विद्वत्प्राप्त कर लेने-पर नंद अपने अंतर्मनकी बात स्पष्ट रूपसे भिक्षुसे कह देता है कि प्रियतमाके बिना एक क्षण भी उसका मन यहाँ नहीं लगता । भिक्षु उसे फिर समझाता है, कहता है—'तू फँदों-से निकलकर फिर उसीमें फँसना चाहता है, तू अपने ही वस्त्र ( त्यक्त पत्नी और कामभोग ) को फिरसे खाना चाहता है आदि, और नाना प्रकारसे स्त्रीकी निंदा करता है ( सर्ग ८ ) । पर नंदके ऊपर इस सब उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । भिक्षु जब उसे समझाकर हार गया, तब नंदकी मन-स्थिति गीतमसे जाकर कह दी । ( सर्ग ९ ) । नदने गीतमके सामने भी अपना घर लौट आनेका निश्चय दृढ़तासे साफ-साफ कह दिया । तब गीतम पुनः अपनी दिव्य शक्तिका प्रयोग कर नंदको स्वर्ग ले गये । वहाँकी अप्सराओंका रूपविलास एवं उन्मत्त मादक क्रीड़ाएँ देखकर नंदका चित्त उनमें मोहित हो गया और वह अपनी प्रियाको भूलकर स्वर्गकी अप्सराओंकी प्राप्ति के लिए तप करने लगा । नंदको स्वर्ग-सुखोंके ध्यानमें लगे देखकर आनंदने उसे उन सुखोंकी विनश्वरताका ज्ञान कराया ( सर्ग १० ), और नाना प्रकारसे स्वर्गकी निंदा की ( सर्ग ११ ) । अंतमें नंदका हृदय शूद्र हो गया और वह सच्चा वीतराग बनकर समागर्गपर लौट आया । अब उसने गीतम बुढ़के समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया और शूद्र निर्वाण-मार्गपर चलने लगा ( सर्ग १२ ) । आगेके चार सर्गोंमें चार आर्यसत्य आदि बौद्ध दार्शनिक तत्त्वोंकी व्याख्या की गयी है । तथा सत्रहवें सर्गमें नंदको अर्हत् पद प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है । इस प्रकार यह कथा जंबूद्वीपीयके कैवल्य बनने तकके वृत्तांतसे समाप्त हो-रखी है—

नदके इस आख्यानेसे जंबूद्वीपीयचरित कथाका संबंध स्थापित करते समय यह प्रश्न उठना



स्वाभाविक है कि क्या वसुदेव-हिंडीके रचयिता सघदासको अश्वघोषकी यह उत्कृष्ट काव्य कृति उपलब्ध हो सकी होगी या नहीं ? इस संबंधमें ऐतिहासिक स्थिति यह है कि १०वीं शती ई० तक नालंदा, ( विहार ) बलभी ( गुजरात ) तथा १२वीं शती ई० तक विक्रमशिला ( भागलपुर, विहार ) के बौद्ध विश्वविद्यालय अपने चरम उत्कर्षपर रहे, तथा ये संपूर्ण भारत देशके सबसे बड़े अध्ययन केंद्र थे । इन विश्वविद्यालयोंमें संस्कृतका अध्ययन अनिवार्य रूपसे किया जाता था, और इनकी साहित्य संपत्तिका कोई पाराधार नहीं था । इस परिस्थितिमें महाकवि अश्वघोषकी ऐसी सुंदर काव्य कृतिका अत्यंत लोकप्रिय एवं सर्वप्रचलित होना एक विलकुल सामान्य बात है, और जैन विद्वानोंके सदासे उदार व्यापक एवं जिज्ञासु दृष्टिकोण-को ध्यानमें रखकर यह बात और भी अधिक बलपूर्वक कही जा सकती है कि संघदास गणि जैसे महान् साहित्यकारने ऐसी सर्वप्रसिद्ध तथा महान् काव्य रचनाका अध्ययन अवश्यमेव किया होगा । स्वयं वसुदेव-हिंडीके अध्ययनसे यह प्रतीत होता है कि जबूके जीवनचरितके साथ भवदत्त-भवदेवकी कथाका कोई अनिष्ट वास्तविक संबंध नहीं है, तथा उसके साथ यह कथा विलकुल अलगसे बादमें जोड़ी गयी है, यह बात वसु० हिंडीके कथा-विश्लेषणसे स्वतः श्लक्ष्णती है । जंबूस्वामीकी कथाको रसात्मक बनानेके हेतुसे नाम बदलकर बाहरकी किसी कथाको समाविष्ट कर लेना कोई असाधारण घटना नहीं है । नंद तथा भवदत्तके आख्यानोंके कथा-तत्त्वोका तुलनात्मक विश्लेषण करनेसे भी उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है ।

नंद और उनकी पत्नी सुंदरीका परस्पर अत्यंत प्रगाढ़ अनुराग, एक ही पिताके सगे-मौसरे भाई बुद्ध द्वारा उसे निर्वाण मार्गपर लगानेका प्रयत्न, नंदके घर जाना, किसीका ध्यान बुद्धकी ओर न जानेसे भिज्ञा न मिलना, बुद्धका रिक भिक्षापान हाथमें लिये नगरसे बाहर लौट पडना; एक सेविकाके द्वारा नंदको यह सूचना मिलनेपर, शीघ्र लौट जानेका वचन देकर, पत्नीकी अनुमति ले उभरका रुज चितन करते हुए बुद्धके दर्शनको जाना, और बुद्धके द्वारा अनुग्रह बुद्धिसे नंदके हाथमें रिक भिक्षा-पत्र दिया जाना, नंदकी घर लौटनेकी प्रबल इच्छा, बुद्ध-द्वारा उसे दिव्य शक्तिसे व्यामोहित कर संघमें ले जाना, नंदकी अनिच्छा और स्पष्ट अस्वीकार करनेपर भी उसका सिर झुंकाकर उसे प्रव्रजित कर लेना, नंदका विलाप और सुंदरीका ही निरंतर चितन, उसे समझानेके सब प्रयासोंकी विफलता होनेपर बुद्ध-द्वारा उसे स्वर्गदर्शन, और फिर स्वर्ग सुखोंकी भी क्षणिकता दिखलाकर सच्चे निर्वाण मार्गपर लया देना, तथा अतः नंदका अहंत् होकर निर्वाण लाभ, इस कथाके ये मूलतत्त्व हैं । जंबूचरित-कथामे किंचित् परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ ये सभी तत्त्व सन्निहित हैं । बुद्ध-द्वारा नंदके घर आनेसे लेकर नंदकी दोक्षासे उसे सच्चा वैराग्य होने तकका घृत भवदत्त-भवदेवके वृत्तांतसे पूर्णतया समान है । नंद और बुद्धके सशरीर स्वर्गगमनसे भवदत्त-भवदेवके मृत्युके उपरांत स्वर्गगमनकी तुलना की जा सकती है । शिवकुमार सागरदत्त-भवकी कथा विशेष महत्त्वकी नहीं है । तथा जंबूकी मोक्ष-प्राप्ति नंदके निर्वाणके समान है । अतः जंबूस्वामीकी कथामें आद्योपांत सौंदर्यनंदकी कथाको पिरो लेना संघदास जैसे जैन साहित्यकारके लिए अत्यंत स्वाभाविक प्रतीत होता है ।

वीर कविने पाँचो भवोंमें प्रथम बारके भ्रातृत्व संबंधकी पूर्वजाति-स्मरण-द्वारा स्थायी बनाये रखा और इस प्रकार पहले जन्मके बड़े भाई भवदत्तके द्वारा बार-बार छोटे भाई भवदेवके जीवकी बोध प्रदान किया, व अंतमें वही उसके पाँचवें जन्ममें मोक्षप्राप्तिमें उसका साक्षात् गुरु और मार्गदर्शक बना, एक यह तथ्य; और दूसरे भवदेवके अंतर्द्वका मामिक काव्यमय-चित्रण, दो बातोंसे ऐसा अनुमान होता है कि संभवतः स्वयं वीर कविने भी अश्वघोषके सौंदर्यनंदका गभीरतासे अध्ययन किया, जिससे वह अपने काव्य वर्णनमें इतनी सजीवता और सामिकता ला सका । इस संबंधमें जैन कथाकारोंकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने भवदेवकी पत्नीके द्वारा ही प्रथम भवमें उसे सच्चा बोध प्रदान कराकर भारतीय नारीके चरित्रको बहुत ऊँचा और सदाके लिए आदर्श तथा महनीय बना दिया है । नारी चरितका ऐसा परम उत्कर्ष प्रेम, विरह और अंतर्द्वके भांगिक-रसात्मक स्वर एवं मानव-जीवनके सर्वोत्कृष्ट ध्येयकी उपलब्धि, इन सब तत्त्वोंने जैन-मार्ग-

परामें जंबूस्वामीके कथानकको ह्तावा अधिक लोकप्रिय बना दिया कि वर्तमान काल तक यह कथा काल-समुद्रको उत्ताल तरंगोके प्रचंड लपेटोका अतिक्रमण कर्ती हुई, अखंड-अविच्छिन्न रूपसे निरंतर गतिशील और प्रवहमान रही। तथा ५वीं शती ई० से लगाकर २०वीं शती ई० तक प्रत्येक क्षतीके उत्तर भारतके गुजरात, राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, एवं उत्तर प्रांत, इन सभी क्षेत्रोमें विविध भाषा और शैलियोंमें छोटे-बड़े-मध्यम सभी आकारोमें अनेक रचनाएँ जंबूस्वामीके जीवनके विविध पक्षोंको लेकर प्रणीत की जाती रहीं, जिनकी संख्या लगभग एक सौ तक जा पहुँची है। इन रचनाओंका कालक्रमानुसार विवरण निम्न प्रकार है—

### जंबूस्वामी विषयक रचना-सूची

- \*१. वसुदेव-हिंडीमें 'कथोत्पत्ति' नामक प्रकरण—संघदास गणि, ५वीं ६ठी शती विज्ञप्त, भार्प जैन महाराष्ट्री प्राकृत, सर्वप्राचीन कथानक, आगेकी जंबूस्वामी विषयक समस्त रचनाओंका आधार।
२. 'रिटुरेणमिचरिउ' के अंतर्गत—स्वयंभू देव, ई० सन् ७०० के लगभग, अपभ्रंश।
- \*३. धर्मापदेशमालाविवरण—जयमिहसूरि, वि० सं० ९१५, महाराष्ट्री प्राकृत, संक्षेपमें कुछ पंक्तियाँ मात्र, फुटकररूपमें जंबूस्वामि चरित्रकी चार कथाएँ उपलब्ध हैं ( देखें : प्रस्ता०—५ 'कथासारिणी' )।
- \*४. उत्तरपुराण, ७६वाँ पर्व—गुणभद्राचार्य, वि० सं० ९५५ के पूर्व, संस्कृत, २१३ श्लोक।
- \*५. 'तिसट्टिमहापुरिसगुणालकाह' ( महापुराण ) १००वीं सर्गि—गुणदत्त, वि० सं० १०१५-१०२१, अपभ्रंश।
- \*६. जंबूचरियं—मुनि गुणाल, वि० सं० १०७६ के पूर्व, महाराष्ट्री-प्राकृत, १६ उद्देशक।
७. जंबूसामिचरियं—मं० सागरदत्त, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्रंथाग्र २६००, बृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५-३०७ के अनुसार।  
जंबूसामिचरियटिप्पण—गुजराती, ग्रंथाग्र ११००, बृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५-३०७ के अनुसार।
- \*८. जंबूसामिचरिउ—कवि वीर, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्यारह सर्गियाँ, प्रस्तुत रचना।
९. 'कहावली' के अंतर्गत—भग्नेश्वर, ई० सन् ११०० के लगभग, प्राकृत।
१०. (क) 'उपदेशमाला' पर 'विशेषवृत्ति' : या 'दोषती वृत्ति' के अंतर्गत—वृत्तिकार रत्नप्रभ-सूरि, वि० सं० १२३८, संस्कृत।  
\*(ख) कर्पूर प्रकरणटीकाके अंतर्गत—( १ ) जिनसागरसूरिकृत, ( २ ) प्रतिष्ठासोमकृत, संस्कृत, अति सक्षिप्त, एक पृष्ठ मात्र।
- \*११. परिशिष्टपर्व—हेमचंद्राचार्य, वि० सं० १२१७-१२२९ के बीच, संस्कृत, चार पर्व, गुणपाल कृत 'जंबूचरियं' के अनुसार।
- \*१२. धर्माभ्युदय महाकाव्य, अष्टमसर्ग मात्र—उदयप्रभसूरि, वि० सं० १२७९-९० के बीच, संस्कृत एक सर्ग।
- \*१३. जंबूस्वामिचरित्र—महेंद्रसूरिके शिष्य धर्ममुनि, वि० सं० १२६६, पुरानी गुजराती, ४१ कड़ियाँ, ५ पत्र, गुज० भाषामें अवतक प्राप्त सर्वप्रथम कृति ( प्रा० गु० का० सं० में प्रकाशित )।
१४. जंबूचरित्र—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १२९९, अपभ्रंश, ( अन्य सूची, जैन ग्रन्थावली भाग-२ )।
१५. जंबूस्वामी फाग—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १४३०, पुरानी गुजराती, प्रा० गु० का० सं० में प्रका०।
- \*१६. जंबूस्वामीचरित्र-काव्य—जयशेखरसूरि, वि० सं० १४३६, संस्कृत, ७२६ श्लोक प्रमाण, छह-प्रकरण। जय शेखर सूरि अंचल गच्छके भट्टारक थे। यह कथानक उनकी स्वीकृत उपदेश-चिंतामणि-वृत्तिके अंतर्गत आया है। इसमें कथा प्रारंभ आर्यवसु-ब्राह्मण, सोमशर्मा ब्राह्मणी, भवदत्त-भवदेव पुत्र, सीधे यहींसे होता है। भवदेवकी दोक्षाके वृत्तमें भी कुछ भेद है। पहली बार जब भवदत्त, भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे घर गये तो वहाँका राग-रंग देखकर स्वयं उनका मन विचलित

हो उठा और वे भीषण चहोंसे संघमें लौट आये। संघमें मुनियों-द्वारा व्यंग्य किये जानेपर पुनः भवदेवके घर गये और उसे किसी तरह संघमें लाकर दीक्षित किया।

१७. जंबूस्वामीनो विवाहलो—पीपल गच्छीय हीरानंदसूरि, वि० सं० १४९५। साचोरमें वैशाख शुक्ल अष्टमीके दिन रचना पूर्ण हुई। पुरानी गुजराती।
१८. जंबूस्वामीचरित—रत्नविह सूरिके शिष्य, वि० सं० १५१६, रचयिताने अपना नाम न देकर केवल अपने गुरुका नामोल्लेख किया है।
- \*१९. जंबूस्वामी चरित्र—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, संस्कृत ११ संघियाँ, पूर्णरूपसे बीर कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरित्र' का संस्कृत रूपांतर, इसी सपादक-द्वारा संपादनाधीन इसकी अनेक प्रतियाँ आमेर, आरा, जयपुर, बवाई, व्यावरके जैन भंडारोंमें विद्यमान हैं।
२०. जंबूकुंवर रास—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, पुरानी जयपुरी हिन्दी, ११ संघियाँ,
- \*२१. जंबूस्वामि चौपाई—जिनभद्र सूरि, वि० सं० १५२२ आविन पूर्णिमाके दिन नंदेसमें लिखित, पुरानी जयपुरी हिन्दी (पद्यात्मक), पत्र ११, अरहन्तादि प्राचीन जैन मुनियोंके नामोल्लेखोंकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण।
२२. जंबूस्वामिपद्मभव-वर्णन चौपाई—देपाल भोजक, वि० सं० १५२२, लगभग १७९ गाथा प्रमाण।
- \*२३. प्रभव-जंबूस्वामि जेलि—वि० सं० १५४८ आसोज वदी आठम, पुरानी राजस्थानी हिन्दी, पत्र ५, कुल २३ सुंदर गेय पद्य, प्रभव-जंबू वार्तालापसे प्रारंभ।
२४. जंबूस्वामिचरित्र—सकलचंद्र ( वि० सं० १५२० ) के शिष्य भुवनकीर्ति, वि० १६वो शती, प्राकृत। ये भुवनकीर्ति संभवतः दिग० परपराके थे।
- \*२५. जंबू अंतरंग रास अथवा जंबूकुमार विवाहलो—पद्मसुंदर, वि० १६वीं शती, राघवपुर नगरमें लिखित, पुरानी गुज० मिश्रित हिन्दी, पत्र ४, ५ डालें, ६४ सुंदर गेय पद्य, अंतमें एक दोहा। यह लघुकृति सुंदर काव्यकी रीतिसे प्रतीकात्मक शैलीमें रची गयी है, और लौकिक वस्तुओंको त्यागकर इसमें जंबूस्वामीका सिद्धि ( मोक्ष ) रूपी वधूसे परिणय वर्णित है।
२६. जंबूस्वामी गीता—वि० सं० १५९३, गुज०, पत्र-५, ( जैनग्रन्थां भाग० २ )।
२७. जंबूस्वामी रास ( पद्मभव चरित्र )—विजयगच्छीय मल्लिदास, वि० सं० १६१९, गुज० मिश्रित हिन्दी, ३० डालें।
२८. जंबूकुमार रास—पीपलगच्छीय विमलप्रभ सूरिके शिष्य राजपाल, वि० सं० १६२२, गुज० मिश्रित हिन्दी, २७ श्लोक प्रमाण, लगभग ९५५ कड़ियोंमें रचित।
२९. जंबूचरित—उपा० पद्मसुंदर नागौरी, वि० सं० १६२६-३९ के बीच, प्राकृत। इनके गुरु तपा-गच्छीय पद्मदेव थे, और दादागुरु आनंददेव थे, जो अकबरके एक सभासद् थे। ये कवि चक्रवर्तिके नामसे भी प्रसिद्ध थे।
- \*३०. जंबूस्वामिचरित्रम्—पं० राजमल्ल, वि० स १६३२ आगरामें रचित, संस्कृत, १२ पर्व, बीरकृत अपभ्रंश जं० सा० च० के आधारसे, लगभग सहीका संस्कृत रूपांतर ( प्रकाशित )।
३१. जंबूस्वामिचरित्र—पाडे जिनदास, वि० सं० १६४२, मूल संस्कृतका भाषा। ( हिन्दी ) रूपांतर कर्त्ता पाडे जिनदास, छंदोबद्ध कर्त्ता लमैचू नाथूराम; शुद्ध हिन्दी गद्यानुवाद सूरतसे प्रकाशित।
३२. जंबूरास—हरसरगच्छीय गुणविनय, वि० सं० १६७०, बाह्रहमेर ग्राममें रचित, पुरानी राजस्थानी।
- \*३३. जंबूस्वामि चरित्र—भावशेखर शाह, वि० सं० १६८४, पाटननगर नामक ग्राममें रचित, राजस्थानी-गुज० मिश्रित, ग्रन्थाग्र २१००, गाथाएँ ११००, पत्र १ से ६ नहीं, ७ से ३६ हैं। इसके रचयिता भावशेखर अंचलगच्छ, श्रीमालिबंध, चंद्रकुल और प्रसिद्ध पालीताणीया शाखाके थे। इनकी गुरु परपरा इस प्रकार थी : भवनतुरंगसूरि—वाचक कमलशेखर—प्रत्यशेखर—विवेकशेखर—रागिनिअय-शेखर—भावशेखर शाह।

३४. जंबू चौपाई—उपागच्छीय कमलविजय, वि० सं० १६९२ सिवाणा ग्राममें रचित, राज० गुज० मिश्रित ।
- \*३५. जंबूकुमार चौपाई अथवा जंबूस्वामी रास—उत्तरगच्छीय ज्ञाननदि वाचकके शिष्य—पाठक भुवन-कोटि गणि द्वितीय, वि० सं० १७०५, धावण सुदी १, बृहनिपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, पत्र ३६; ४ अधिकार; दोहा, ढाल सब मिलाकर १३५३ सुंदरगेय पद्योंमें रचित, परिशिष्ट पूर्ण ( हेमचंद्र ) के आधारसे ।
३६. जंबूस्वामी रास—उत्तरगच्छीय पद्मचंद्र, वि० सं० १७१४, सरिसा पाटनमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, लगभग १५११ गाथा प्रमाण, परि० पूर्वके आधारसे ।
३७. जंबू चौपाई—उत्तरगच्छीय जिनसागर सूरिके शिष्य : कवि उदयरत्न, वि० सं० १७२०, राज० गुज० मिश्रित ।
- \*३८. जंबूपूच्छा रास अथवा कर्मविपाक रास—वीरजी मुनि, वि० सं० १७२८, पाटन नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, १३ ढालें । इसमें जंबूस्वामीके प्रश्न हैं, जिनका उत्तर सुधर्मा द्वारा दिया गया है । भीमजी माणिक-द्वारा प्रकाशित ।
३९. जंबूरास—धर्ममंदिर, वि० सं० १७२९, मुलतान नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, धर्ममंदिर व सुमतिरंग दोनोंकी ये रचनाएँ एक ही वर्षमें एक ही स्थानमें रहकर लिखी गयी । अतः तुलनात्मक दृष्टिसे ये अवश्य अध्ययनीय हैं । संपादकको ये रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो सकी ।
४०. जंबूस्वामी चौपाई—उत्तरगच्छीय सुमतिरंग, वि० सं० १७२९, मुलताननगरमें रचित राज० गुज० मिश्रित ।
४१. जंबूकुमार रास—उपागच्छीय चंद्रविजय, वि० सं० १७३४, ग्राम कोरडावेमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, ८५२ गाथा प्रमाण ।
- \*४२. जंबूस्वामी रास—उपागच्छीय कविराज धीरविमलके शिष्य नयविमल, वि० सं० १७३८, मार्गशीर्ष शुक्ल १३ सोमवार, ग्राम थिरपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, ३५ ढालें ( पत्र ३५ ) प्रकाशित ।
- \*४३. श्रीजंबूस्वामी ब्रह्मगीता—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३८ ( खंभातमें रचित ), गुजराती, पत्र २, लघु कृति मदनपराजय (अपभ्रंश) की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु० सा० सं० भाग १ में प्रकाशित ।
४४. जंबूस्वामी रास—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३९, खंभातमें रचित गुजराती, ५ अधिकार, ३७ ढालें, मदनपराजय (अपभ्रंश)की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु० सा० सं० भाग २ में प्रकाशित ।
४५. जंबूस्वामी रास—उपागच्छीय उदयरत्न, वि० सं० १७४९, ग्राम खेडा हरियाणामें रचित, गुजराती, ६६ ढालें, लगभग २५०० गाथाएँ ।
४६. जंबूस्वामी रास—उत्तरगच्छीय यशोवर्धन, वि० सं० १७५१ ।
४७. जंबूस्वामी रास—उत्तरगच्छीय जिनहर्ष, वि० सं० १७६०, ४ अधिकार, ८० ढालें, लगभग १६५७ गाथाप्रमाण ।
४८. जंबूकुमार रास—कढवागच्छीय लावाशाह, वि० सं० १७६४, ग्राम सोहीमें रचित, ३२ ढालें ।
४९. जंबूस्वामी स्तवन—भाग्यविजय, वि० सं० १७६६, १४ श्लोकप्रमाण ।
- \*५०. जंबूसामिचरित्तं—( पूर्व ) मुनि जिनविजय, वि० सं० १७८५-१८०९ के बीच, प्राकृत, प्रकाशित ।
५१. जंबूस्वामी चौढालिया—उत्तरगच्छीय विमलनदके शिष्य श्री दुर्गादास, वि० सं० १७९३ ।
- \*५२. जंबूकुमार रास—नयविजय विबुधके शिष्य, वाचक जसविजय, वि० सं० १७९९, खंभनगरमें रचित, राजस्थानी, पत्र ४४ ।
५३. जंबूचरित—श्री चेतनविजय, वि० सं० १८०५, अजीमगंजमें रचित, राजस्थानी ।

५४. जंबूस्वामी चरित्र—विजयकोत्ति, वि० सं० १८२७, हिंदी पद्य, पत्र २०, जयपुर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध ।
५५. जंबू चौपाई—श्री चंद्रमाण, वि० सं० १८३८, ग्राम बोडावळमें रचित, राजस्थानी, ३५ ठालें ।
५६. जंबूकुमार चरित—स्व० तेरापंथके संस्थापक आचार्य शोषणजी, लगभग वि० सं० १८५०, राज०, ४६ ठालें, गाथाजीके ऊपर २१५ दोहे, ७८८ गाथाएँ, परि० पर्वके आधारसे, मि० ग्र० रत्ना० द्वि० खंड, प्रका० ३६० तेरा० महा० कलकत्ता ।
५७. जंबूस्वामि चरित्र—धीचेतनविजय, वि० सं० १८५२-५३, हिंदी, पत्र ३० ।
५८. जंबूकुमार चौढालिया—श्री सौभाग्यसागर, वि० सं० १८७३, पाटनमें रचित, भीमशो-माणिक-द्वारा प्रकाशित ।
५९. जंबूस्वामी श्लोक—श्री लखिविजय, वि० १९वीं शती ।
- \*६०. जंबूस्वामी कथा—विजयशकर-विद्याराम वि० सं० १९१४, द्वि० ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष सोमवार, ओनगरमें रचित, गुज० परक हिंदी, पत्र, २०; छहरहित गद्यात्मक पद्यशैली, जंबूस्वामीचरितकी २३ अंतर्कथाओंसे युक्त ।
- \*६१. जंबूस्वामी गुणरत्नमाला—भोसवाल भावक जेठमल चोरडिया, वि० सं० १९२०, आपाठ कृष्ण-५, ( जयपुर ) पुरानी राजस्थानी, पत्र-३०, प्रकाशित ।
- \*६२. जंबूस्वामी चौपाई—कर्ता अज्ञात, रचनाकाल अज्ञात, राजस्थानी, पत्र-४ पहले पाँच पृष्ठोंमें राजूल कथा; अंतमें एक पृष्ठमें अतिसंक्षेपमें जंबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्षगमन पर्यंतकी कथा ।
- \*६३. जंबूस्वामी चरित—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, संस्कृत गद्य, पत्र-३, सरल शैली, छोटे-छोटे वाक्य, संक्षिप्त कथा ।
- \*६४. जंबूस्वामी चौपाई—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, पुरानी राजस्थानी, पत्र-२, पृ० ३, अपूर्ण, भवदेवके जन्मसे कथा प्रारंभ, विविध जन्मोंकी रूपरेखा प्रस्तुत करके जंबूस्वामी जन्म, व प्रभवके साथ वातावरणमें महेश्वरवत्तके आस्थान पर आकर कथा अपूर्ण समाप्त ।
- \*६५. जंबूकुमार रास—श्रीबालुचवर्गीके शिष्य लोकागच्छके नायक मुनि भूधर, संवत् भारवर्नस्पति भाषुषपु. मुनिवर वर्ष ( ? ) आश्विन मास विजयादशमी, पुरानी राजस्थानी, पत्र-१४ ।
- \*६६. जंबूचरित अथवा जंबूस्वामी अज्ज्ञयण—( संभवतः ) पद्यसुंदरगणि, रचनाकाल अज्ञात अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश, ३६ पत्रोंसे लगाकर ६० पत्रों तकमें लिखित अनेक प्रतियाँ उपलब्ध । १९ उद्देशक, यह बहुत महत्त्वपूर्ण रचना है । इसके जंबूअज्ज्ञयण, जंबूपयण्णा, जंबूस्वामि कथानक, जंबूचरित्र एवं जंबूस्वामि अज्ज्ञयण ये अनेक नाम प्रचलित हैं । इसपर अनेक बालावबोधों व टिप्पणीकी रचना हुई है । यह कृति भी इसी संपादकके संपादनाधीन है ।
- (क) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १७९०, पुरानी गुजराती ।
- (ख) जंबूचरित्र बालावबोध—श्री सुंदरगणि, वि० सं० १७९५ से पूर्व, पुरानी गुजराती ।
- (ग) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १८०८, पुरानी गुजराती ।
- (घ) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१२, पुरानी गुजराती ।
- (ङ) जंबू अध्ययन चरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१६ से पूर्व, पुरानी गुजराती ।
- (च) जंबूस्वामीकथानक—वि० सं० १८२९, पुरानी गुजराती ।
६७. जंबूस्वामिकुलक—प्राकृत, प्रकीर्ण ग्रन्थसंग्रह । ( जैन ग्रंथा० २ )
६८. जंबूचरित्र—अज्ञात, ( जैन ग्रंथा० २ )
६९. जंबूचरित्र—( संभवतः ) संघमद्र, अपभ्रंश, कैवल २० गाथाएँ, ( जैन ग्रंथा० २ )

७०. जंबूचरित्र—प्रद्युम्नसूत्रि; दादागुरु प्रद्युम्न, गुरु वीरभद्र, प्रारंभ : पदमभवे भवदेशो गह्वियवशो पदम-  
सुरपनरो । रामसुयसिवकुमारो कथं वारसवास तव-सारा ॥१॥ अंत : वारस तवाणुए भद्व सिय  
पहिव गुरि समुद्धरियं । घन्तासी भाषाए भणियव्वं संघभट्टकए ॥२०॥
७१. जंबूचरित्र—गुजराती, पत्र ४४, ७२५ श्लोक प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २) ।
७२. जंबूस्वामीश्लोको—लक्ष्मिविजय, पत्र ३, ४५ श्लोक प्रमाण (जैन ग्रन्था० २) ।
७३. जंबूचरी—गुजराती, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २) ।
७४. जंबूस्वामी कथा—नयविमल, गुजराती, पत्र ९, (जैन ग्रंथा० २) ।
७५. जंबूस्वामिचतुष्पदी—गुजराती, २७५ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
७६. जंबूस्वामीस्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, ११ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
७७. „ „—गुजराती, पत्र १, १६ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
७८. जंबूकुमार स्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, (जैन ग्रंथा० २) ।
७९. जंबूनाटक—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८०. जंबूस्वामिचरित्र—रत्नशेखर, (मुद्रित जैन-ग्रंथावलि) ।
८१. जंबूचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८२. „ „—मूल संस्कृत (?) गुजराती भाषांतर, वि० सं० १९५०, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८३. जंबूस्वामिचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८४. „ „—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि) ।
८५. जंबूस्वामीचरित्र—१६४४ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २) ।
८६. „ „ पद्यसुंदर, प्राकृत, ७५० गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २) ।
८७. „ „ संस्कृत, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २) ।
८८. „ „ संस्कृत गद्य, ८९७ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २) ।
८९. „ „ सकलहर्ष, पत्र ११, (जैन ग्रन्था० २) ।
- \*९०. „ „ यानसिंह, संस्कृत पद्य, ग्रंथांश १३००, (जैन ग्रन्था० २) । (यह ग्रंथ भी इसी संपादकके संपादनाधीन है) ।
९१. „ „ पत्र ५०, (जैन ग्रन्था० २) ।
९२. जंबूस्वामीकथा—प्राकृत, (जैन ग्रन्था० २) ।
९३. जंबूस्वामिचरित्र—नमिदत्त, (जि० २०-कौश) ।
९४. „ „ विद्याभूषण, (जि० २०-कौश) ।
९५. „ „ पं० दीपचंद्रवर्णी, सन् १९३९ (मथुरा), हिंदी, प्रकाशित ।

नोट :—उपर्युक्त सूची डा० २० ला० चौ० ला० शाह द्वारा संपादित उपा० यशो० कृत जंबूस्वामीरासकी प्रस्ता०; जैन ग्रन्थवली भाग-२; मुद्रित जैनग्रन्थावली; जिनरत्नकोश; तथा स० ओ० रि० ई० पूना, ओरि० रि० ई० बहोदा एवं ला० द० भारती शो० सं० अहमदाबादकी हस्तलिखित प्रतियों-की सूचियों एवं अंतिम तीन सस्याओके निदेशको व संग्रहालयाध्यक्षोके सौजन्यसे प्राप्त जंबूस्वामी-चरितविषयक पोथियोंके आधारसे प्रस्तुत की गयी है । संपादकने इस सूचीमें तारा \*चिह्नार्थकित ग्रन्थो व पोथियोंका स्वयं अध्ययन किया है ।

## ५. जम्बूस्वामी-चरितकी अंतर्कथाएँ

मूल कथाओंसे संबंध, संस्कृत, अपभ्रंश जंबूस्वामी-चरितोंमें उपलब्ध कथाओंका तुलनात्मक विश्लेषण एवं अंतर्कथाओंका महाकाव्यकी दृष्टिसे औचित्य तथा मूल्यांकन एवं कथानक रुढ़ियोंका विश्लेषण :

‘जंबूसामिचरित’में लघु अंतर्कथाओंकी शृंखला उस स्थानसे प्रारंभ होती है, जब जंबूस्वामी विवाहके उपरांत चारों वधुओंके साथ मातृगृहके भीतर एकांतमें आकर उन वधुओंके बीच निविकार भावसे बैठ जाते हैं। वधुएँ प्रथमतः अपनी शारीरिक चैष्टाओं, सुंदर अंग-प्रत्यंगोंके प्रदर्शन तथा नाना प्रकारके हाव-भाव विलास, तोखे कटाक्ष एवं मधुरता पूर्वक वात्स्यायनके कामसूत्रके पाठ आदिके द्वारा जंबूस्वामीको अपने हृदय-यौवनके पाशमें फँसाना चाहती हैं, पर जंबूस्वामीके विवेकपूर्ण हृदयपर इन सबका, किंचित्नात्र कोई भी प्रभाव नहीं होता और वह हिमाचलके समान अहिम, अडोल बना रहता है। यह अवस्था देखकर वधुएँ निराश होने लगती हैं और अब अपने कथा कौशलसे उसे वशमें करनेका प्रयत्न आरंभ कर देती हैं। इन्हीं कथा-प्रतिकथाओंके रूपमें इन लघु आख्यानोंकी सृष्टि होती है।

यहाँ एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि ‘वसुदेव-हिंशी’ तथा गुणभद्रकृत ‘उत्तरपुराण’में भवदेवके जन्ममें उसे बोध देनेके हेतु उसकी वधू नागिलासे अपने ही वनकी खानेवाले ब्राह्मण पुत्रकी अथवा जैन गणिनी ( साध्वी ) के मुखसे एक दासीके द्वारा अपने पुत्रको उसीका वन खिलानेका प्रयत्न करनेकी जो कथा कहलायी गयी है, वह वीर कविकी इस रचनामें नहीं है, यद्यपि उसका यहाँ होना अनुचित नहीं होता। दूसरी मुख्य बात यह है कि उपर्युक्त दोनों ग्रंथोंमें कथाके मध्यमें राजर्षि प्रसन्नचंद्र अथवा धर्मरक्षिका जो कथानक है, उसकी जंबूस्वामी चरितकी कथावस्तुसे कोई भी संगति न होनेसे, उसे यहाँ सर्वथा छोड़ दिया गया है।

अणालिख अथवा अनादृत नामक देवका आख्यान और ‘जंबूसामिचरित’में केरलके राजा भृगुकर्षी, राजा श्रेणिकसे परिणेत कन्या विलासवतीके निमित्त हुए युद्धका वृत्तांत, ये सब प्रस्तावना—३ में ‘मूलग्रन्थकी संक्षिप्त कथावस्तुके’ अंतर्गत आ गये हैं। अतः यहाँ ‘जंबूसामिचरित’में वर्णित समस्त लघु आख्यानोंकी संक्षेपमें लेकर, उनमेंसे जो अन्य प्राकृत-संस्कृत चरितोंमें उपलब्ध है, उन्हींका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रसंगमें एक आवश्यक कथ्य यह है कि इस अध्ययनमें वीर कविके पूर्ववर्ती वसुदेवहिंशी, उत्तर पुराण ( गुणभद्र ) एवं जंबूचरित ( गुणपाल ), तथा पञ्चादवर्ती चरितकारोंमें संस्कृतमें हेमचंद्र, अहम जिनदास एवं पं० राजमल्ल, इस प्रकार प्राकृत-संस्कृत जंबूस्वामी विषयक छह प्रतिनिधि ग्रंथोंको आधार बनाया गया है।

[१] पहली कथा जंबूस्वामीकी सखी परिणीता पंजणभी उन्हींकी ओर संकेत कर अपनी सपत्नियोंको संबोधित करते हुए कहती है, ‘सखियो ! हमारा यह भर्तृ धनहृद ( धनदत्त ) नामक मूर्ख किसानका अनुसरण कर रहा है। धनदत्त नामका एक मूर्ख किसान था। उसकी पहली सुशील—सद्गुणिणी पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर स्वर्ग चली गयी। पुत्र बड़ा होकर घरका सब कार्य-भार भली भाँति देखने लगा। मृदुत्वमें दैवसे प्रेरित होकर उसने एक चंचलचित्त और अति कामुक तरुणीसे विवाह किया तथा उसका वशवर्ती होकर रहने लगा। एक दिन अर्द्ध रात्रिको वह अकस्मात् उससे क्रुद्ध होकर शयनपर मुँह फेर कर पड़ रही। बहुत अनुनय-विनय करनेपर कारण वतलाया—घरमें तुम्हारा पुत्र पुत्र विद्यमान है, मेरे उदरसे जो पुत्र होगा, वे सब इसके दास बनकर ही जी सकेंगे। अतः इसे मार डालो। मेरे उदरसे जो पुत्र होगा, वृद्धापमें उनसे सुख उठायेंगे। पिता-पुत्र सबध, लोक-लाज, राज-भय और पुत्रकी विलम्बिताका भी डर, कहीं उलटे मुझे ही न मार डाले, आदि वतलानेपर भी वह नहीं मानी और पुत्रको सरलतासे मार डालनेका उपाय भी सुझा दिया, ‘प्रातःकाल खेतमें जब पुत्र हल चला रहा होगा, तो तुम भी पीछे-पीछे उद्धत बैल और तोखे फल वाला हल लेकर जाना। उसके पीछे हल चलाते हुए उसे दृष्ट बैलसे सीधे मरवा देना, फिर हलके तीक्ष्ण फालसे उसकी विदीर्ण करके मार डालना ! इसमें न राजभय है, न लोक लाजकी चिन्ता, न पुत्रके वलवान् होनेका डर।’ ‘साँप भी मेरे और लाली न टूटे’ ऐसा उपाय वतलाया। पासके घरमें सोते हुए पुत्रने यह सब

पापयोजना नुन लो और मरेरे ही आगे जाऊर हरे भरे खेतमें हल चलाकर उसका विनाश करने लगा। पीछेसे किसान आया, तथा यह देखते ही अपना मन पड़यंत्र भूल गया और बोला, अरे ! क्या पागल हो गया है, जो हरे-भरे खेतको उजाड़ रहा है ? पुत्रने कहा, इसे उखाड़कर इसमें नया वान रोपूंगा। पिताने निंदा की, रे मूर्ख ! चला जा ! प्राप्यको छोड़कर अप्राप्यको इच्छा करता है। पुत्रने उत्तर दिया आप भी तो रायिमें की हुई सलाहके अनुसार मृग्य जैसे पुत्रको मारकर नयी महिलासे अन्य पुत्रोंको इच्छा करते हैं। इसपर पिता पुत्रका आलिंगन करके रोने लगा। इसी प्रकार हम लोगोका यह नतीर ( जंबूस्वामी ) हम लोगोंको त्याग कर भविष्यमें सुरनारियोंके साथ किन्हीं अपूर्व सुख भोगोंकी उपलब्धिको आशा करता है।'

यह आख्यान वसुदेव-हिंडी एवं उत्तर पुराण दोनोंमें नहीं है। गुणगाल कृत प्राकृत 'जंबूचरित्र'में यह थोड़ेसे परिवर्तनके साथ वर्णित है, तथा ब्रह्म जिनदाम (वि० सं० १५२०) और पं० राजमल्ल (वि० सं० १६३२) कृत जंबूस्वामी चरित्रोंमें यह तथा इनमें उपलब्ध अन्य आख्यान भी लगभग जैसे-वैसे संस्कृत रूपांतरमें वर्णित हैं। राजमल्लको रचनामें जिन कथानकोंमें कुछ अंतर है, उन्हें यथास्थान निदिष्ट कर दिया गया है। गुणगालके अनुसार पत्नीकी मृत्युके उपरांत पिताका कष्ट देखकर पुत्रने ही पितासे दूसरा विवाह कर लेनेका आग्रह किया। परंतु विवाह योग्य जवान पुत्र घरमें रहनेसे कोई अपनी कन्या उसे देनेको तैयार नहीं हुआ। इसपर किमानने विवाहमें बाधक युवा पुत्रको मार डालनेका निश्चय किया और एक तीक्ष्ण धारवाला फरसा छुरा कर हल चनाने गया, तथा पुत्रको मार्गनेके अपघ्नानमें लड़े खेतमें हल चलाकर उसे ही उजाड़ने लगा। पीछेसे पुत्रने आकर कहा, यह क्या खड़े खेतको उजाड़कर नया वान रोपोगे ? किसानको लगा, पुत्रने मेरा आशय जान लिया और सब बात सच कहकर रोने लगा।

इन दो कथानकोंका अंतर गुणगाल-द्वारा वर्णित किसान पिताका चरित्र बहुत मोचे गिरा देता है, कि वह स्वयं पुत्रको मारनेका निश्चय करता है, जबकि 'जंबूनामिचरित्र'का किमान दूसरी तरफ पत्नीके बार-बार वधि आग्रह करनेपर एवं अपनी कोई युक्ति न चलनेपर विवश होकर पुत्र घातके लिए प्रस्तुत होता है।

[२] उपर्युक्त आख्यानको सुनकर जंबूस्वामीने प्रत्युत्तर स्वरूप यह कथा मुनायी—'विष्णुपर्वतपर एक बड़ा हाथी वर्षाके पूरसे मर्मदा नदीमें बह कर मर गया। उसके मासका लोलुपी एक कौवा भी उसके साथ-साथ बहता हुआ समुद्रमें जा पहुँचा और जब वहाँ पहुँचकर चारों ओर देखा तो आश्चर्यके लिए कोई गाँव, ठाँव, रुख आदि कुछ भी नहीं दिखाई दिया। हाथीको मच्छोने निगल लिया और कौवा निराश्रय होकर आकाशमें उड़ा तथा अंतमें काँव काँव करता हुआ समुद्रमें डूब कर मर गया। इसी प्रकार विषयासक्त हो तुम लोगोका सुख भोगता हुआ मैं ससार महासमुद्रमें फँसकर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा।'

वसुदेव-हिंडीमें यह कथा चतुर्थ नीलयासा लभकके अंतर्गत, ललितांगक देवके-द्वारा उसके पूर्व भवकी कथामें उसके मित्र स्वयंबुद्धके मुखसे कहायी गयी है और कुछ परिवर्तित रूपमें है—'ग्रीष्म ऋतुमें एक बड़ा हाथी पहाड़ी-पर से नदीमें उतरता हुआ एक विषम किनारेपर आकर गिर पड़ा। भारी शरीर व अशक्तताके कारण वह वहाँसे उठ नहीं सका, और वहीं मर गया। अनेक पशु-पक्षी आकर गुदा-द्वारसे उसका मांस खाने लगे। इस प्रकार द्वार बड़ा हो जानेपर अनेक कीए उसके पेटमें धुसकर मांस खाते हुए वहीं रहने लगे। आतपके प्रभावसे कदाचित् गुदा द्वार छोटा हो गया, कौवे और प्रसन्न हुए कि अब और भी निविधन रूपसे यहीं रहेंगे। वर्षाकालमें पूरमें पड़कर हाथी नदीमें बह गया। समुद्रमें जानेपर हाथीको मच्छोने निगल लिया, कौवे उसके पेटमेंसे निकलकर उड़े और कहीं आश्रय न पा समुद्रमें गिर कर मर गये।'

उत्तरपुराणमें यह कथा नहीं है, गुणगाल तथा हेमचंद्र कृत चरित्रोंमें वसुदेव-हिंडीके कथानकके अनुसार संक्षिप्त रूपमें है—'विष्णु पर्वतपर एक बड़ा हाथी किसी प्रकार मर गया। इसके आगे उपर्युक्त कथानुसार और समाप्ति इस प्रकार कि गुदा-द्वार बंद होनेपर ( एक ) कौवा हाथीके पेटके भीतर ही मर गया। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें बीरके अनुसार ही कथा आयी है।



[ ३ ] अब कनकश्री बोली—'कैलास पर्वतपर एक वंदर रहता था। एक दिन वह उसके शिखरसे गिरकर चूर-चूर होकर मरा, और तुरंत मणिस्वर्ण-जटित मुकुटको धारण करनेवाला विद्याधर हो गया। किसी दूसरे विद्याधरने इसे देखा और प्रियासे बोला कि जहाँ वानर मरकर विद्याधर हो जाता है, तब यदि विद्याधर मरे तो अवश्य उत्तम देव होया! ऐसा कहकर रोती हुई प्रियाके द्वारा बार-बार रोके जानेपर भी पर्वत शिखरसे कूद पड़ा और मरकर लाल मुँह वाला बंदर बनकर रह गया।'

बसु० हिंडी तथा उ० पु० में यह आख्यान भी नहीं है। गुणपाल तथा हेमचंद्रमें कुछ परिवर्तनके साथ परिवर्द्धित रूपमें है। उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—'भागोरथीके तटपर बंदरोका एक जोड़ा रहता था। एक दिन वानर तटवर्ती वृक्षपर चढ़ा और प्रमादसे भागीरथीमें गिर गया तथा सुंदर मनुष्य बनकर निकला। वानरी भी उसी वृक्षसे भागीरथीमें कूद पड़ी और सुंदर स्त्री बन गयी। तब मनुष्यने कहा आर्थो फिर कूद पड़ें, अबकी बार मनुष्यसे देव हो जायेंगे। स्त्रीने मना किया, नहीं माना और फिर कूद पड़ा तथा पुनः बंदर हो गया। स्त्री नहीं कूदी, और दैववशात् निकटवर्ती नगरके राजाको अग्रमहिषी बनी। वंदरको एक मदारोने पकड़कर नाचना सिखाया और एक दिन उसे राजमहलमें ले गया। वहाँ नाचनेके बाद हाथ फैलाकर भागते समय वंदरने रानीको देखा और पहचानकर अपनी दुर्गतिपर रोने लगा। रानीने भी उसे पहचान लिया और संबोधित किया, 'तब समझानेपर नहीं माना अब क्यों रोते हो?'

गुणपाल व हेमचंद्रके अनुसार 'रानीको पहचानकर वंदरने अपनी करनीपर पश्चात्ताप किया' यहीपर कथा समाप्त हो जाती है। इस परिवर्द्धनसे कथाके इस आशयमें कोई अंतर नहीं आता कि उपलब्ध सुखको छोड़ कर जो कोई भविष्यमें अधिक सुखकी आशा करता है, वह दोनोंसे वंचित होता है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरितमें यही कथानक वीरकी अपेक्षा कुछ अंतरसे वर्णित है पर्वतसे गिरकर विद्याधर बननेके उपरान्त उस पूर्व वानरको एक भूमिके दर्शन हुए। उनसे विद्याधरने अपना पूर्वभव पूछा। भूमिने कैलास पर्वतसे गिरनेका वृत्तान्त उसे कह सुनाया। उसे सुनकर विद्याधरसे देव बननेकी इच्छासे वह पुनः पर्वतसे कूद पड़ा, और मरकर बापिस लाल मुँहवाला बंदर हो गया। कवि वीर-द्वारा वर्णित इस कथानकमें कुछ अस्पष्टता और सद्विधता है, जब कि ब्रह्म जिनदास व राजमल्ल-द्वारा वर्णित कथा विलकुल स्पष्ट है। इसमें किसी अन्य विद्याधर युगलका प्रवेश नहीं है। एक ही वानरके साथ सारी घटनाएँ हुई हैं। कथाके आशयकी दृष्टिसे भी यह कथानक किसी प्राचीनतर कथाका शुद्ध रूप है; क्योंकि वानरसे विद्याधर बनकर उपलब्ध सुखोसे सतोष नहीं हुआ, और विद्याधरसे मरकर देव बननेकी लालसासे उसने ऐसा किया, तथा पुनः बंदरका बंदर होकर रह गया।

हरिभद्रकृत समराइच्च कहाके दूसरे भवमें इस कथाका प्राचीनतर रूप उपलब्ध होता है। वहाँ भूमि वर्मबोध, वरदास एव सोना नामक पति-पत्नीके रूपमें अपने दो पूर्वभवोकी आत्मकथा सुनाते हुए कहते हैं—'सोनाके अतिशय धार्मिक आचरणके कारण, कामभोगके सुखसे वंचित होनेसे खरदास बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे घट्टे-घट्टे फूलकी माला निकालनेके अंगाने सपंसे कटवाकर मार डाला। खरसेनने मरकर तोतेका जन्म लिया और सोनाने पर्वतपर हाथीका, जो अनेक हथिनियोंके साथ क्रीडापूर्वक सुखसे रहता था। तोतेने हाथीको सुखी देखा तो पूर्वजन्मका वैर स्मरण हो आया और उसने किसी प्रकार हाथीको इस सुखसे वंचित करनेका निश्चय किया। दैवयोगसे लीलारति नामक विद्याधर, भृगाक नामक विद्याधरकी बहिन चंद्रलेखा, जिसपर वह अनुरक्त था, उसे चुराकर वहाँ लेकर आया और तोतेको देखकर बोला—'मे इस पर्वतकी गहन कंदरामें अपनी प्रियाके साथ छिप जाता हूँ। भृगाक विद्याधर मेरा पीछा कर रहा है। जब वह यहाँ आये तो तुम कुछ मत बोलना, जब चला जाये तो मुझे संकेत कर देना। मैं तुम्हारे लिए इसका कुछ प्रत्युपकार करूँगा।' तोतेने

१. कथाकीधर्म एक स्नानवती तीर्थका उल्लेख है जिसमें पशुओंकी मनुष्य बनानेकी शक्ति कही गयी है। दो वंदर जो जादूसे बना दिये गये थे; इस विषयमें वातचीत करते सुनाई पड़ते हैं।

अवसरका लाभ अपने कुनिश्चयको पूरा करनेके लिए उठाया। वह हाथी अपनी प्रियाओं सहित सुन ले, 'इस प्रकार जोरसे अपनी मैनामें बोला 'इस विकट प्रपातमें गिरनेसे सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। जो व्यक्ति जो इच्छा करके इसमें गिरता है, उसकी वे इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। ऐसा मैंने महर्षि वशिष्ठसे सुना है। तो हम लोग विद्यावर वननेकी इच्छा करके इसमें कूद पड़ें।' ऐसा कहकर जब लीलारत्निका अत्रु विद्यावर मृगाक वहसि चला गया तो वह अपनी प्रियाके साथ लीलारत्निका विद्यावरको संकेत देनेके लिए प्रपातमें नीचेकी ओर गिरा। उसी समय विद्यावर अपनी प्रेमिकाके साथ वहांसे उड़ा। हाथीने यह सब देखा और तोतेका कहना सब मानकर, विद्यावर वननेकी इच्छा करके अपनेको उस प्रपातमें गिराकर धूर-धूर कर लिया। इसी बीच तोता वहसि उड़ गया।

[ ४ ] इसके उत्तरमें जंबूस्वामी बोले—'विध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर यूयगति वानर रहता था। जो दूसरे नर-वानरोंको वहाँ ठहरने नहीं देता था। वानरोंसे जो भी संतान उत्पन्न होती, पुत्रोंको छोड़कर, पुत्रको मार डालता था। कदाचित् एक वानरों सगर्भा हुई, और उस प्रदेनको छोड़कर, दूसरे वनमें जाकर संतान उत्पन्न की। बड़े होनेपर पुत्रने पिताके सर्वधर्म जिज्ञासा की और वानरोंसे सब वृत्तत जानकर बहुत क्रुद्ध हुआ तथा बदला लेने चला। विध्यमें जाकर वानर पितासे युद्ध करके उसे घायल व परास्त कर दिया और पीछा करते हुए उसे निकाल भगाया। वृद्ध वानर भयसे द्रस्त भागता हुआ तुषासे व्याकुल हो उठा। एक स्थानपर सामने पानी जैसा पदार्थ ( लेप—'शिलाजीत' ? ) बहते देखा, और उसे पीनेको जैसे-ही हाथ बढ़ाये वे उसीमें चिपक गये। इसी तरह पैर भी और मुँह भी, तथा उसीमें चिपक कर मर गया। अब उस वानरके समान विषय मुखोका प्यासा होकर मैं भी बिनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा !'

यह आख्यान भी वसु० द्विडी तथा उ० पु० में नहीं मिलता। गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें कुछ परिवर्तित रूपमें है, परंतु मूल कहानी यही है और इसका सारांश भी उपर्युक्त ही है।

ब्रह्मविन्ददास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान कुछ भिन्न रूपमें इन प्रकार है—विध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर वानर वानरियोंके साथ रमण करता हुआ रहता था। दूसरे किसी वानरको वहाँ टिकने नहीं देता था। एक बार एक वानरोंसे एक बलवान् बंदर उत्पन्न हुआ और तरुण होकर उसीके साथ काम-क्रीडाके लिए उद्यत हुआ। यह देखकर वृद्ध वानर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और दोनोंमें युद्ध होने लगा। तरुण वानरने वृद्धको अत्यधिक घायल कर दिया और उसे वनसे बाहर भगा दिया। वृद्ध वानर वहीं मर गया। तरुण वानरको लौटते समय प्यास लगी, युद्धके घाव और थकान भी हो। उसने एक स्थानपर पानी देखा। वहाँ घनी कीचड़ थी, इसका उसे ज्ञान नहीं हुआ। पानी पीने जाकर उस सचन कीचड़में फँस गया। अशक्त होनेके कारण उसमेंसे निकल नहीं सका और वहीं मर गया। वीर कृत इस कथामें कुछ अस्पष्टता है और कौन सा वानर मरा यह ठीक ज्ञात नहीं होता। यहाँ वह विलकुल स्पष्ट है। आशय दोनोंका एक ही है—अतिशय कामवासनाओंके कारण मृत्यु।

[ ५ ] इसके उपरांत विनयश्रीने कहा—हमारा यह दूल्हा मूर्ख संखिणीके समान है। 'किसी नगरमें संखिणी नामका एक कबाड़ी रहता था। वह वनसे ईधन ला, उसे बेचकर कष्टसे अपना पेट भरता था। कुछ दिनोंमें धीरे-धीरे भोजनसे बचकर उसके पास एक रुपया रोकड़ जमा हो गयी। बड़े उत्साहसे पत्नीके साथ मिलकर घड़ेमें रख कर, उसे एकांत स्थानमें गाड़ दिया। कुछ दिन-बाद सूर्यग्रहणके अवसरपर कुछ यात्री बहुत-से मणि-रत्न लेकर तीर्थस्थानको चले और उन मणि-रत्नोंको सुरक्षित रखनेके लिए जब गदा खोदा तो भाग्यसे संखिणीके रखे हुए उस एक रुपये सहित वह घड़ा उनके हाथ लग गया। उन्होंने उसीमें अपने मणि-रत्न रखकर घड़ेका पुन भूमिस्त कर दिया, तथा तीर्थस्थान कर अपने घरोंको लौट गये। एक पर्वका दिन आनेपर रुपयेको निकालनेके लिए जब संखिणीने वहाँ खोदा तो उसे मणि-रत्नोंसे भरा देखकर वह उछल पड़ा और पत्नीसे कहा—'हम बहुत भाग्यशाली और पुण्यवत हैं। देखो, एक रुपया रखकर गाड़नेसे ही घड़ा मणि-रत्नोंसे भर गया। अब उसका लोभ अत्यधिक बढ़ गया और यह सोचकर कि एक-एक सिक्का अलग-अलग घड़ोंमें रखकर गाड़ देनेसे सभी घड़े इसी प्रकार रत्नोंसे भर जायेंगे, उसने

वैसा ही किया, तथा कवाड़ीपनसे ही अपनी जीविका चलती रहेगी, ऐसा निर्णय कर उसमें-से एक भी सिक्का नहीं निकाला और घर चला गया, एवं उसी प्रकार लकड़ियाँ बेचकर कष्टपूर्वक जीवन थापन करता रहा। किसी दूसरे पर्वपर यात्री अपना धन खोजने आये तथा खोज-खोजकर सब घड़ोंमें-से अपने सब मणिरत्नोंके साथ कवाड़ीका एक रुपया भी निकालकर ले गये। दुबारा जब कवाड़ी उस गडी हुई संपत्तिको देखने गया तो सब घड़ोको रोता देखकर अपना सिर पीट लिया कि हाय उन मणि-रत्नोंके साथ मेरा एक मात्र रुपया भी चला गया।<sup>१</sup> इसी प्रकार हमलोगोका यह स्वामी स्वामीन लक्ष्मीको तो भोगता नहीं और श्रेष्ठ स्वर्ग सुखको चाहता है। इसके हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह आख्यान शंख नामक कवाड़ीके नामसे वर्णित है। अन्य चरितोंमें यह उपलब्ध नहीं होता।

[ ६ ] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामी बोले—‘हे सुदरी ! रति सुखके लिए मैं भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा। कमलगंधका लोभी भूष्य और सूर्यास्तको भी नहीं जान पाता और रात्रिके आनेपर उसी कमलमें बंद होकर मर जाता है। इसी प्रकार विषय-सुखोका त्याग न करके मैं अपना सर्व-नाश नहीं करूँगा।’ भ्रमरका यह सजित दृष्टांत भी अन्य चरितोंमें उपलब्ध नहीं होता।

[ ७ ] यह दृष्टांत सुनकर रूपभीने कहा, तुम्हारे जैसे ही आत्मगर्बसे एक सर्प स्वयंकी ही करलोसे नेबलोके द्वारा निगल लिया गया। ‘किसी समय वर्षाकालमें सात दिनों तक लगातार घनघोर वृष्टि हुई। जल-यल सब एक हो गये। भूय भी दिखाई नहीं दिया। बहुत घर-पानीसे गल गये, बह गये। मनुष्य और पशु सभी भूखसे तड़पने लगे। ऐसे समय एक अति प्राज्ञ करकैंटा पानीमें बहता हुआ किसी तरह किनारे आकर लगा और आहारकी खोजमें निकला तो भयानक काले व नीम लपलपाते हुए सर्पके सामने जा पहुँचा। तत्काल उससे बचनेका उपाय सोचकर सर्पका जय-जयकार करके बोला, ‘हे स्वामिश्रेष्ठ, मुझे मारकर इस क्षुद्र जलधोनिसे मेरा उद्धार कीजिए।’ इतना कहकर झीन मुख बनाकर अथु बहाता हुआ रोने लगा। इस आश्चर्यजनक व्यवहारका कारण पूछनेपर उसने सर्पको बतलाया कि आप हमारे कुलप्रभु हैं। अतः आपसे लाया जाकर मैं सीधे भोज प्राप्त करूँगा, यह तो मेरे द्वारा आपके जय-जयकार किये जानेका कारण है। परंतु मेरे कुटुंबमें संतानें बहुत हैं। एक मेरे न रहनेसे वे अनाथ हो जावेंगे। यह मेरे रोनेका कारण है। इसलिए हे देव ! अच्छा हो कि आप चले और मेरे सारे कुटुंबको खा डालें। ‘बताओ तुम्हारा कुटुंब कहाँ है ?’—सर्पके ऐसा प्रश्नपर करकैंटा एक पहलेसे देखे हुए नेबलोके बिलको ओर आगे-आगे चला और सर्प पीछे-पीछे। बिलके सामने पहुँचकर करकैंटा बोला, स्वामी जाइए। भीतर प्रवेश करके मेरे कुटुंबका भक्षण कर लीजिए। सर्प बिलमें घुसा और वहाँ नेबलोके समूहने उसे फाड़कर खा डाला। अधिककी इच्छा रखनेवाला सर्प दूसरों को देखता है, परंतु घातमें लगे व्यक्तिके प्रहारको नहीं देख पाता। इसी प्रकार अधिक ( अनुपलब्ध ) सुखोकी इच्छा करनेवाले हमारे इस प्रियतमके उपलब्ध सुख साधन भी शिव और माधव धूर्तों-द्वारा प्रलौभित राजपुरुषोंके समान लुट जावेंगे।<sup>२</sup>

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान अति संक्षेपमें वर्णित है। अपने आहारकी खोजमें निकला हुआ एक करकैंटा एक काले साँपके सामने जा पड़ा और उसे देखते ही अपने पहले देखे एक नकुल-विवरका स्मरण करके दीडकर सँकड़ी छिड़ोवाले उस विवरमें घुस गया। सर्प भी उसके पीछे-पीछे भागा और नकुलोके महात्रिलमें घुसते ही फाड़कर खा लिया गया।

१. यही आख्यान लोक कथा रूपमें इस प्रकार प्रचलित है—एक कवाड़ी बहुत कष्टसे रहकर प्रतिदिन कुछ बचाकर बंगलमें बड़ेमें गाड़कर रखने लगा। एक दिन उस बड़ेको खोदकर उसमें कुछ रखते हुए कवाड़ीको एक धूर्तने देख लिया और उसके जानेपर बड़ेमें-से उसकी सारा जमा-पूजा आरामसे निकालकर ले गया। ब्रह्म जिनदासकी कृतिमें भी इस आख्यानका अतः भाग इसी प्रकार है।

२. शिव और माधव धूर्तों-द्वारा राजपुरुषोंको प्रलोभित करके लूटनेका आख्यान संपादकको अभी तक नहीं मिल सका।

[ ८ ] जंबूस्वामीने कहा कि विप यदि स्वावीन भी हो, तो भी क्या तुरंत ही उसका त्याग नहीं कर दिया जाता ? और यह क्या सुनायी—किसी रात्रिमें एक शृगाल एक नगरमें ब्राह्मण्यं प्रविष्ट हुआ। उसने मार्गमें पड़ा एक मृत बैल देखा और उसका मांस खाने लगा। इसमें वह इतना आनन्द हो गया कि खाते-खाते उसका मुँह छिल गया और सारी रात कब बीत गयी, इसका भी उसे कोई भान नहीं हुआ। प्रातःकाल होनेपर लोगोंने आवागमनके शोरसे उसे बोध हुआ। तब उसने सोचा कि अपनेकी मृत दिखला देता हूँ, रात्रि आनेपर जंगलमें चला जाऊँगा। इतनेमें वहाँ लोग एकत्र हो गये और उनमेंसे एकने औपचार्य शृगालके कान व पूँछ काट लिये। फिर भी वह थात पड़ा रहा, यह सोचकर कि पूँछ व कानके बिना भी जी लूँगा, यदि पुण्यसे आज बच जाऊँ तो। इतनेमें एक कामुकने उसके दाँतसे प्रियाका मन बगमें करनेके लिए पत्थर लेकर एक दाँत तोड़ डाला। अब शृगाल जान बचाकर भागा। परन्तु सिंहके समान बलवान् एक कुत्तेने दौड़कर उसका गला पकड़ लिया और घोर करते हुए अनेक कुत्तेने मिलकर उस शृगालको खा लिया। इसी प्रकार जो व्यक्ति विषय-भोगोंमें अंधा बना रहता है। वह निश्चयसे विनाशको प्राप्त होता है। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह कथानक संक्षेपमें वर्णित है, अन्य चरितोंमें सर्वथा नहीं।

[ ९ ] इस प्रकार कथा-प्रतिकथा होते होते आधी रात्रि व्यतीत हो जाती है। इसी बीच विपुल धन चुरानेकी इच्छासे विद्युच्चर ( वसु० हिंडीके अनुसार प्रभव अपने ५०० साधियों सहित; उ० पू० के अनुसार विद्युत्प्रभ ) नामक और वहाँ पहुँचता है। पहले दोनोंमें कुछ दार्शनिक वाद-विवाद होता है। विद्युच्चर माता प्रकारसे जंबूस्वामीको सांसारिक भोग भोगनेकी प्रेरित करता है। जंबूस्वामी अपने पिछले बार जन्मोका वृत्तांत सुनाते हैं। यह सुनकर विद्युच्चर कहता है कि यदि पूर्व जन्मोके बुभुक्षामौकी परिणतिसे तुम्हें किसी प्रकार स्वर्ग मिल गया, तो बार बार ऐसा होना कैसे समझ है ? इस संबंधमें एक कथा कहता है, उसे सुनो—“किसी धुमकड़ने अपने कायसे भ्रष्ट तथा खस (मुजली) व्याधिसे पीड़ित एक ऋत्तिको अटवीमें छोड़ दिया। स्वच्छंद विचरण करनेसे ऊँट स्वस्थ और बलशाली हो गया तथा बहुत दिनोंपर कहीं उसे मधु खानेको मिला। उस मधुका सदैव स्मरण करते रहकर वह करीलकी गाखाओंको कभी चरता या और कभी नहीं भी चरता था। यही बात भोगे हुए स्वर्ग सुखोंको स्मरण करनेकी है। भला स्वर्ग और भोज किस मूढको प्राप्त होते हैं ?

ऊँटका यह कथानक उ० पू० में कुछ भिन्न रूपमें है। एक स्वच्छंद विचरण करनेवाला ऊँट चरता हुआ कहीं पर्वतके निकट पहुँचा। वहाँकी घास किसी ऊँचे स्थानसे टपकते हुए रससे मीठी हो रही थी। ऊँटने उसे एक बार खाया, तो वस सदैव वैसी ही मीठी घास खानेके संस्कारसे मधु टपकनेकी प्रतीक्षामें अन्यथा वास चरना छोड़कर वही बैठ रहा और अंतमें मूखसे लड़पकर मर गया। वसु० हिंडी और गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें यह कथा नहीं है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामीचरित्रमें इस कथानकमें उ० पू० की अपेक्षा कुछ अंतर है—वनमें स्वच्छंद घूमते हुए एक ऊँटने एक कुएँके तटपर खड़े हुए वृक्षके पत्ते खाते समय ऊपरसे टपकता हुआ एक मधुविंदु चख लिया। और अधिक मधु प्राप्त करनेकी इच्छासे उसने ऊँची चढ़ाव करके शाखासे टपकते मधुको घाटनेकी चेष्टा की, और नहसा शरीरका संतुलन खो बैठनेसे कुएँमें गिरकर मर गया।

[ १० ] इसे सुनकर जंबूस्वामी यह कथा कहने लगे—“एक वणिक्पुत्र धन कमानेकी अति तृष्णासे अकेला हो व्यापारको चला और एक बरणधर्में शीतल जलशाला एक सरोवर देखा। वहाँ उसे चोरोंने लूट लिया, और वह भयसे कांपता हुआ, जलका स्मरण करते हुए सो गया। स्वप्नमें उसने उस सरोवरको देखा और स्वप्नमें ही मानो प्रचुर जल पी लिया ऐसे संस्कारवशात् जाग उठा तथा अत्यंत प्याससे पीड़ित हो जिह्वासे थोसविंदु चाटने लगा। भला इनसे कहीं उसकी प्यास बुझ सकती है ? इसी प्रकार वह व्यक्ति है जो भोगे हुए स्वर्ग सुखोंका स्मरण करता है। उसकी अभिलाषाएँ कभी नहीं मिट सकती। और फिर मनुष्यका यह काम-भोगों संबंधी सुख तो बहुत की विनोदा, विवेक रहित तथा दूसरोंके लिए केवल कौतूहल उत्पन्न करनेवाला है।

बनू- हिडोमें यह कथानक नहीं है। उ० पु०में इसके स्थानपर यह कथानक उपलब्ध होता है—‘एक मनुष्य महा बह्मन्त्रसे पीड़ित था। उसने नदी, सरोवर, ताल आदिका प्रचुर पानी बार-बार पिया तो भी उसकी प्यास शांत नहीं हुई। तो क्या कुशाग्रपर रखे हुए क्षुद्र जलविंदुसे उसकी प्यास बुझ जावेगी ? कदापि नहीं। इन्ही प्रकार इस जीवने फिर कान्तक स्वर्ग पुत्र भोगे हैं, फिर भी यह तृप्त नहीं हुआ, तो क्या हाथीके कानके समान चंचल ( धार्मिक ) इन वर्तमान मुखोंसे यह तृप्त हो जावेगा ?

गुणपाल कृत्र ‘जंबूवरिच’में इसके स्थानमें यह कथा उपलब्ध होती है।—‘कलिंग देशमें अंबाडाग ग्राममें कौयलेने आजीविका करनेवाला एक लकड़हारा था। करवेंमें पानी भरकर लकड़ी काटने जंगलमें गया। लकड़ियाँ काटकर उन्हें जला दिया। आगकी गर्मी, सूर्यका ताप और परिश्रमसे उसे अत्यंत तीव्र प्यास लगी। डबर करवेंमें रखा हुआ जल बंदर पी गये। प्यासा ही चरको चला। पर शरकर वहीं गिर पड़ा। इतनेमें थोड़ी मेघ वृष्टि हुई और ठंडो हुआ चको, जिससे उसे नोद आ गयी। स्वप्नमें उसने देखा कि उसने सब सगेबरोँ और कुञ्जका जल पी लिया पर प्यास नहीं मिटी। नींद चुल्हेपर प्याससे पीड़ित हो, वह एक कुएँपर गया। वासन्ती रस्ती बनायी और कुएँमें उतरकर उसके कीचड़युक्त जलको जीभसे चाटने लगा। भला इससे क्या उसकी प्यास बुझ जायेगी ? इस कथाके पश्चात् सांसारिक वस्तुओंकी आध्यात्मिक दृष्टिसे तुलना की गयी है जैसे, पुरुष-जीव, सृष्ट्या-भोगेच्छा आदि। हेमचंद्रने भी अपने परिशिष्ट पर्वमें इस कथाको लिया है।

[ ११ ] पुनः विद्युच्चरने कहा सुनिए—‘एक वृद्ध बगिया था उसकी तस्य स्त्री थी। वह गनि-चारिणी थी। एक बार वह ब्रह्ममुष्ट नामके एक षेटके साथ बहुत-सा द्रव्य लेकर निकल गयो। रास्तेमें उन्हें एक घूर्त्त मिला। वनपर दृष्टि रखकर उनके साथ उसने कपट प्रेम संबध बढ़ाया। उन दोनोंके अनुचित संबध-को जानकर कामोत्तेजक नष्ट गायन-द्वारा उस स्त्रीको मोह लिया और एक ग्रामासन्न देवालयमें पहुँचकर ब्रह्ममुष्टिसे पीछा छुड़ानेका यह उपाय किया—उसने स्त्रीसे कहा तुम ग्रामरक्षकसे कह आओ कि दीर्घमाषासे यकी हुई मैं अपने पतिके साथ अमुक देवालयमें जाऊँगी। स्त्रीने वैसा ही किया। रात्रियें ( नगरमें चोरोंकी कोई दुर्घटना होनेसे ) कोतवाल अपने सहायकोंके साथ देवालयमें आया। स्त्री अटट ब्रह्ममुष्टिकी दीवारपर अकेले सोते हुए छोड़कर जागते हुए घूर्त्तकी शय्यापर आ गयी, और घूर्त्त उस कोतवालसे बोला कि हमने बित्तों ही कह दिया था कि हम पति-पत्नी हैं, तीसरेको हम नहीं जानते, तुम लोग खोज नां। लोगोंने बेचारे ब्रह्ममुष्टिको पकड़ लिया, उसे बहुत मारा और बाँधकर ले गये। घूर्त्त उस कुलटाको साथ लेकर बहसि भाग निकला और एक नदीके किनारे पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह बोला कि नदी बड़ी अथाह और दुस्तर है, जलः पहले तुम अपने मव बस्त्राभूषण उतार कर दे दो। एक बार उन्हें उस पार रल बाँके, वापस आकर सुन्हे साथ ले आऊँगा। स्त्रीने उसका निश्वास कर सारे बस्त्राभूषण उतारकर उसे दे दिये। घूर्त्त उन्हें लेकर पार उतर गया और परले पार जब धीघ्रतासे जाने लगा तो स्त्री चिल्लाकर बोली, बरे वृष्ट भुझे ठगकर और इस जन्म अवस्थामें छोड़कर कहाँ चला ? घूर्त्तने धीघ्रतासे चलते हुए हाथ हिलाकर उत्तर दिया, अरे तूने पहले तो परिणय किये हुए धोष भर्तारको छोड़ा, फिर आरको भी मरवा डाला, तो अब क्या मुझ नी खाना चाहती है ? मैं जाता, तू यहाँ रह। घूर्त्तके चले जानेपर जब वह असही इस दुस्त्वस्थामें वीर पर लड़ी थी कि भागका टुकड़ा लिये एक शृगाल वहाँ आया और उस मांसके टुकडेको छोडकर जल्से धाहर स्थलपर पडे हुए एक मच्छको पकड़नेको लग्य। इतनेमें मच्छ जन्ममें कूद गया और जबर मांसके टुकडेको एक बाख छपटकर ले गया। दोनोंसे बचि हो बडे लज्जित और दुःखी हुए उस शृगालको लक्ष्य करके उस कुलटाने ध्वग किया, रे मूर्ख शृगाल ! म्वाचीन ( भागका टुकड़ा ) वस्तुको छोडकर तुझे क्या लाभ हुआ ? इन व्यंग्यवाणसे विधकर शृगालने ( मनुष्यकी वाणीमें ) उत्तर दिया—‘मैं तो अवश्य कुत्रुडि या मूर्ख हूँ, पर तेरी यह सत्वृडि जो मुझे नोख डे रही है, वह स्वयं नेरे छिर कहाँ दिखाई देने लगे ? पहले तूने पतितो छोड़ा, फिर जानको मरवा डाला और अब घनसे भी गयो व घूर्त्तने भी। नम बडों न्हकर वाग्यनेमें कुछ तो लज्जा कर।’ यह कथानक पुनःकर विद्युच्चर बोला—‘इम असती कथानकको समझो, और देखमुखों-के लिए स्वाधीन मुखोओ छोडकर मनका दयन मत करो।

यह कथानक वसु० हिंदीमें नहीं है। उ० पु० में केवल शृगालसे संबद्ध अंश स्वतंत्र रूपसे इतना भर है कि एक शृगाल मासका टुकड़ा मुँहमें लिये कहीसे आया, नदी तट-पर जलसे बाहर मच्छको देख, मासका टुकड़ा छोड़, मच्छको पकड़ने खपटा, मच्छ पानीमें खिसक गया। इधर मांसके टुकड़ेकी वाज उठाकर ले गया, और शृगाल दोनोंसे वंचित हुआ। यहाँ असतो कथानकसे इसका कोई संबंध नहीं दिखलाया गया है, परंतु अन्य चरितोंमें मित्र-मित्र रूपमें कहीं अति विस्तारसे और कहीं संक्षेपमें वर्णित है। गुणपाल कृन जंबूचरिय तथा उसका अनुकरण करनेवाले हेमचंद्रने इसे बहुत विस्तारसे दिया है और इसके साथ एक दुराचारी सुनार पुत्र या वणिक् पुत्र वधूका बृहद् आख्यान भी जुड़ा हुआ है ( देखें आगे )।

ग्रहा जिनदाम एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामिचरित्रमें इस कथानकसे कुछ अंतर है। यह संक्षेपमें इस प्रकार है—‘एक वृद्ध वनियोंको तरुण स्त्री विटोसे स्वेच्छासे रमण करनेको धन लेकर एक जारके साथ भाग गयी। रास्तेमें किसी दूसरे धूर्त्तने उसे मोह लिया और उसके साथ किसी अन्य नगरमें जाकर ठहरी। वहाँ वह तीसरे जारसे लग गयी। तब धूर्त्तने नगर रसकसे जाकर शिकायत की कि कोई जार मेरी स्त्रीके पास आता है, उसे पकड़ो तो तुम्हें कुछ सुवर्ण लाभ कराऊँगा। रात्रिमें धूर्त्त जागते हुए उस पुरुषलोकसे साथ पड़ रहा। कुछ देर बाद वह तीसरा जार आया। स्त्री उठकर चुपचाप उसके अंकमें चली गयी। फिर कौनवाला अपने सहायकोंके साथ आया और पूछा, यहाँ कौन जार या चोर है? तीसरा जार झटसे बोला, मैं नहीं जानता आप लोग खोजें! उन्होंने धूर्त्तको ही पकड़ लिया, उसका कुछ कहना नहीं सुना कि उसने ही कोतवालको शामको समाचार दिया था। उसके पकड़े जानेपर तीसरा जार स्त्रीको लेकर भाग निकला।’ आगेका कथानक चोरके अनुसार है। इतना अंतर है कि शृगालके ऊपर ध्यान करनेपर दूसरे तीरपर-से वह जार चिल्लाकर बोला यह तो पशु है, इसे हिताहितका विवेक नहीं, पर पापिनी तूने स्वयं क्या किया? अपना चरित्र तो देख...आदि, और उसे नदीके इसी तीरपर नग्न छोड़कर चला बना।

[१२] इसका उत्तर जंबूस्वामीने यह कथानक सुनाकर दिया—‘एक वनिया जहाज लेकर कहीं दूसरे तीरपर पहुँचा और एक श्रेष्ठ बहुमूल्य चिंतामणि रत्न खरीदकर जहाजसे वापिस लौट चला। आते समय उस चिंतामणि रत्नको हुथेलीपर रखकर, अन्यत्र उसे लेकर नाना प्रकारके हाथी-घोड़े आदि खरीदकर राजाके समान संपदा सहित घर लौटनेकी सुखद कल्पनाएँ करते-करते अर्द्धनिद्रित-सा हो गया। जिससे वह रत्न हुथेलीसे निकलकर समुद्रके मध्यमें जा गिरा। वनिया तुरंत सचेत होकर तीरनेवालोंसे चिल्लाया, अरे! अरे! जहाज रोको! चिंतामणि रत्न समुद्रमें गिर गया है, उसे ढूँढकर मुझे लाकर दो। भला वह रत्न क्या उस वनियोंको पुनः मिल सकेगा? उसी प्रकार यह मनुष्य जन्म चिंतामणि रत्नके समान है। रति सुखकी निद्रामें पड़कर संसार समुद्रमें खोकर, मैं इसे फिर कैसे पाऊँगा?’ वसुदेव हिंदी, गुणपाल कृत जंबूचरिय तथा हेमचंद्रके परिशिष्ट पर्वमें यह आख्यान नहीं है। उ० पु० में इसके स्थानपर यह कथा-नक है—‘कोई मूर्ख पथिक कहीं जा रहा था। रास्तेमें किसी चौराहेपर उसे महा देदीप्यमान रत्नकी राशि मिली। वह चाहता तो सरलतासे उसे ले सकता था। परंतु तब उसे न लेकर पथिक आगे चला गया। फिर कुछ समय बाद मनमें विचार आनेपर उस रत्नराशिको लेनेकी इच्छासे वापिस लौटकर पुनः उस चौराहेपर आया, तो क्या वह उस रत्नराशिको पा सकेगा? नहीं। इसी प्रकार जो मनुष्य इस संसार रूपी समुद्रमें गुण लगी मणियोंको पाकर भी उन्हें एक बार स्वीकार नहीं करता, वह पीछे उन्हें फिर कभी नहीं पा सकेगा।’ यहाँ कथानकका आशय मनुष्य जन्ममें प्राप्य त्रय, संयम, सावचादि गुणोंसे है, जिन्हें मनुष्य जन्मके सिवाय अन्य किसी गतिमें, किसी शरीरमें पाया नहीं जा सकता।

[१३] जंबूस्वामीके यह कथानक कहनेके उपरान्त विवृचचरने एक शृगाल संबंधी कथानक सुनाया—‘विध्य क्षेत्रमें एक वनस्पतारी प्रचंड भील रहता था। एक दिन उसने वाणिके आवाजसे एक हाथीको मार डाला। इधर उसे सर्पने डस लिया। उस सर्पको उसने वही वनस्पते प्रहारासे मार डाला और स्वयं भी विषके प्रभावसे गिरकर मर गया। देवीयोंसे ये सब, भूत हाथी, भील और सर्प तथा वनस्प एक

धूमने हुए शृगालको दृष्टिमें पड़ गये। उसने मोचा यह हाथी छ भास, मनुष्य एक भास और मर्प मेरा एक शिनाम; मोचन होगा। अच्छा हो इन मवन्तों अभी रहने दें। आज तो अतनी क्षुधा मैं धनुषको सूखी ताँतों काकर मिटा लेता हूँ। ऐसा मोचकर उस ताँतको काटने लगा। उसे कुतन्त्रने धनुषमें बँधी हुई गाँठ टूट गयी और उसके एक मिरसे उसका तालू और कपाल फूट गया, तथा वह शृगाल वहीं ढेर हो गया। अत्यधिक क्रोध करनेवाला शृगाल जिस प्रकार विनष्ट हुआ, उसी प्रकार वर्तमान उग्रजन्म सुनोको टोडकर भविष्यत् निब (मोक्ष) स्वर्ग सुखकी आशामें तुम भी यूँ ही विनष्ट होवोगे।'

यह आख्यान गुणपाल और हेमचंद्रके चर्चितोंमें नहीं है। उ० पु० में इसी प्रकार तथा वसु० हिंरीमें नीलयना नामक चतुर्थ लभकमें कुछ परिवर्तित रूपमें है—'भोलने एक ही बाणने हाथीको मार गिराया और हाथी दाँत तथा गजमुक्ता निकारनेके लिए एक फरमा लेकर उसपर प्रहार करने लगा। हाथीने मिरते समय एक बड़ा सर्प उनके नीचे दब गया और उसने भीड़को डम लिया, नील भी गर गया और मर्प भी।' दोष कथा पूर्ववत् है। ब्रह्म जिनदासकी रचनामें यह घोरने अनुसार ही वर्णित है।

[१४] इस कथाके प्रत्युत्तरमें जंबूसामीने लकड़हारेका कथानक सुनाया—'एक दिन एक लकड़हारा कुन्हाडो लेकर वनमें गया। लकड़ी काट, गड़ा बाँध, उसे मिरपर रखकर चला दिया। मध्याह्न कालमें लोदण ऋषि किरणोंसे तप्त होकर, मार डालकर एक वृक्षके नीचे पड़कर मों रहा। स्वप्नमें उसने राजलीला-विलास देखा। मानो वह राजा है। सुंदर कामिनीयोंके साथ काम-क्रीडा कर रहा है। निहामनपर बैठा है और उसपर चमर डुलाये जा रहे हैं। हाथी, घोड़े, घोड़ा आदि सनी सामग्री है और राजद्वारपर प्रतिहार पहरा दे रहा है, आदि। इतनेमें क्षुधासे पीड़ित उसकी क्रुद्ध पत्नीने आकर उसे जगा दिया। उसने फठोर बचनोंको गहन न कर, लकड़हारेने उसे पीटकर भगा दिया और पुन मों गया, तो अक्की वार स्वप्नमें देखा कि उसके सिरपर भार लदा है, और सारे शरीरसे मलिन दुर्गंधयुक्त पत्तीना बह रहा है। यह स्वप्न देखकर दुःखसे तड़फ कर वह जाग उठा। अब यदि लकड़हारेको स्वप्नमें एक बार राज्य मिल भी गया, तो वह भी बार-बार कैसे मिल सकता है? अब यदि मैं एक बार मनुष्य जन्म खो बैठा, तो फिर मरकोके दुःखोंसे ग्रस्त होकर पड़ा रहूँगा।'

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान लकड़हारेकी पत्नी-द्वारा जगा दिये जानेपर समाप्त हो जाता है। वसु० हिंरी, उ० पु० और गुणपाल तथा हेमचंद्र कृत चरित्रोंमें यह नहीं है। परंतु संपूर्ण जैन साहित्यमें 'स्वप्नमें लकड़हारेको राज्य प्राप्ति' कहावतके रूपमें प्रसिद्ध और प्रचलित है।

[१५] जंबूसामीके उपर्युक्त आख्यानके उत्तर स्वरूप विद्युच्चरने यह कथा सुनायी—'एक बार नटोंका एक बड़ा दश वर्षकालमें आजीविका हेतु नगरमें आया। रात्रिमें बोड नामक एक जरा जीर्ण नटको वृद्धोंसे संकीर्ण उद्यानके समीप अपने निवास (तंबू) की रखा हेतु छोड़कर, नट समूह नृत्य दिखलानेके लिए राजाके पास गया। इसर अपनी साससे भर्त्सना पाकर आभरणोंने लदी हुई एक बहू उसी उद्यानमें एक वृक्षके नीचे आकर ठहरी और मरनेके उद्देश्यसे अपने गलेमें फंदा लगाया। यह देखकर वृद्ध बोडने सोचा, अरे, इसके मरनेसे मुझे यहाँ बैठे-बैठे स्वर्ण लाभ हो गया। परंतु यह मरना नहीं जानती। मैं इसे ठीकसे मरनेकी शिक्षा देता हूँ, और मरनेपर इसके आभूषणादि ले लूँगा। पृष्ठनेपर स्त्री बोली, हे भाई! मुझे शिक्षा दो, और सुख-मृत्युसे यमपुरी भेज दो। तब नटने स्त्रीके हाथसे फंदा ले लिया और एक मुरज लाकर वृद्धके नीचे रखा। उसपर स्वयं चढ़कर उस फंदेको एक पटसे वृक्षकी शाखामें बांधकर, अपने गलेमें डाल लिया। 'हे सुंदरी! मुरजको लुढ़काकर सुदृढ़ फंदेसे सुखपूर्वक मरना चाहिए' इस प्रकार उत्साहपूर्वक उस स्त्रीको यह दिखलाते समय वेगके कारण दैव संयोगसे मुरज लुढ़क गया, फंदेकी सुदृढ़ गाँठ वृद्ध बोडके गलेमें पड़ गयी और वह तड़फडाता हुआ मर गया। वह स्त्री बोडको इस तरह मरता हुआ देखकर, लज्जा और भयपूर्वक वहाँसे भाग गयी। इसी प्रकार जो व्यक्ति असिद्ध (अनुपलब्ध) कार्यकी इच्छा करता है, और उसका परिणाम न जानते हुए इस बोडका अनुसरण करता है, वह स्वयंकी ही दुर्बुद्धिसे सुख त्याग कर मृत्युकी प्राप्ति होता है।'

बसु० हिंदो और गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें उपर्युक्त आख्यान नहीं है। २० पु० में ईपत् परिवर्तित संक्षिप्त रूपमें है—“एक वधू सासकी भर्त्सना पाकर एक उद्यानमें वृक्षके निकट आयी और मरनेके लिए गलेमें फंदा लगाया। इतनेमें स्वर्णकारक नामका एक मृदंगवादक वहाँ आ पहुँचा और स्त्रीका अमिश्रित आनंद सुनकर सुवर्णलाभके लोभमें उसे मरनेकी रीति दिखाने लगा।” आगे कथा पूर्वोक्त प्रकार है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूवामीचरित्रमें यह कथानक बिलकुल भिन्न रूपमें है—“एक कुशल नटने अनेक नर्तकियोंके साथ राजभवनमें नृत्यादिका सुंदर प्रदर्शन किया। उससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसके दलको प्रचुर सुवर्ण-वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य पुरस्कार प्रदान किये। धके हुए ये सब लोग रात्रिमें वही सो गये। नट जागता रह गया। सबको सोते देख नटको लोभ आ गया। सोचा, ‘सब सोये हैं, मैं यह सब प्राप्त धन लेकर यहाँसे चंपत हो जाऊँ।’ यह मोचकर सब धनकी गठरी बाँधकर वह जैसे ही चला, जागती हुई नर्तकियोंने उसे वही पकड़ लिया और प्रातःकाल राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने उसे चोरीका उचित दंड दिया। इस प्रकार अतिशय लोभके कारण जो उचित पुरस्कारोंका था वह भी लोया और उलटे दंडका भागी बना। और कृत कथानकका आशय भी ऐसा ही है। विद्युच्चरका तात्पर्य यह है कि, ‘हे जंबूवामी, शिव सुखकी उपलब्धि के लिए इनने अघोर मत होओ। कुछ दिन उपलब्ध अनुपम सुंदरी स्त्रियों और अन्य भोगोंको स्वेच्छासे भोगो फिर गोल प्राप्तिके लिए साधना करना। अत्यधिक उतावलापन करनेमें दोनो ही प्रकारके मुँहोंसे बर्चित होनेकी संभावना अधिक है। हो सकता है सहसा इन मुँहोंकी त्याग कर पीछे पड़ना पड़े। तब न इस लोकके रहोगे न परलोकके।’

[१६] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूवामीने अपने निश्चयकी दृढ़ता और विवेकशीलता व्यक्त करनेके हेतुसे चंग नामक सुनार पुत्र (अन्य ललितान्त, कही सुनार पुत्र, कही श्रेष्ठ पुत्र) का आस्थान सुनाया, जो इस कथा-प्रतिकथाओंकी इस शृंखलामें सबसे अंतिम है। बनारसका लोकपाल नामक राजा शत्रुको जीतनेके लिए देशांतरको गया। युद्धमें पाँच वर्ष लग गये। पीछे उसकी विभ्रमा नामक महादेवी पुरुष संयोगके बिना कामपीडासे व्याकुल हो उठी। एक बार अपने राजप्रभावकी छतसे उसने चंग नामक अति सुंदर, युवा एवं हृष्ट-पुष्ट सुनार पुत्रको देखकर दासीसे कहा कि किसी प्रकार इस युवकसे मिला और मेरा काम-बाह शांत कर। दासी गयी और चतुराईसे उस सुनार पुत्रको बुला लायी। जानेपर दोनोंने दृष्टिसे एक दूसरेको पहचाना और कामराग-भरी महादेवीने उसे अपनी शैल्यापर बैठाया। उसी समय विजयी होकर राजा समस्त सैन्य साधन, परिजन, परिवारके साथ लौट आया। रानीने चंगको पीछेके कोठेमें छिपा दिया। परंतु किसी कारण उसी कोठेमें राजाके आगमनका समाचार जानकर भयसे उछावली रानीने चंगको पुरीप कूपमें डाल दिया। उसीमें प्राण टिकने-भरको आहार पहुँचाती रही। चंग छह मास तक कूपमें पड़ा रहा। उसका सारा शरीर दुर्गंध पूर्ण और पांडुरवर्ण हो गया। पुरीप कूपके बहुत सख्त जानेपर कर्मकरोने जलसे कूपका शोधन किया, भूमिस्थ द्वारसे मलयुक्त गंदे पानीके साथ चंग भी वहकर निकल गया, और गंगाके प्रवाहमें जाकर गिरा। गंगाके तीरपर लोगोंने उसे पहचाना और पूछा कि तेरा शरीर दुर्गंधयुक्त और पांडुरवर्ण क्यों हो गया? चतुर चंगने उत्तर दिया कि मुझे रूपासक नाग सुंदरियाँ पाताल स्वर्गमें ले गयी और वहाँ एक दिन मुझे घरका स्मरण करते हुए आनंद रोपमें कुल्लभ करके छोड़ दिया। घर जाकर जलसेवन और दिव्य सुरमिश्र द्रव्य तथा तैलोंके प्रयोगसे बहुत दिनोंमें चंग पुनः पूर्ववत् स्वस्थ, सुंदर हो गया। किसी समय राजा पुनः बाहर गया। रानीको पुनः पुरुष बिरह उत्पन्न हुआ, उसने चंगको पुनः बुलवाया, पर वह नहीं गया, और दासीसे बोला—“सौंदर्यका जो फल मैंने माँगा उसके कारण शरीरकी दुर्गंध अब तक शांत नहीं हुई। पुण्यसे एक बार संकटसे छूट गया तो क्या कोई बार-बार उम संकटमें पड़ने जाता है?” इसी प्रकार हे मामा! तिर्यं और नरक गतिथोका अनुभव करके यदि किसी प्रकार मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हो गया, तो अब मैं लेख मात्र रति सुखके बशीभूत होकर पुनः नरक गतिमें पड़ने नहीं जाऊँगा।’

यह आख्यान कुछ अंतरसे सभी चरितोंमें उपलब्ध है। बसु० हिंदीमें संक्षेपमें यह कथा इस प्रकार है—‘वसंतपुरके शतायुध नामक राजाकी ललिता नामक रानी एक दिन छज्जेपर चढ़ी थी। तब उसने राजः



मागसे जाते हुए थोड़े पुत्र ललितान्गको देखा और उसपर मुग्ध हो गयी तथा अपनी चतुर दानीके हाथ उसके पास प्रेमपत्र पहुँचाया । पूर्णिमाका दिन आनेपर रानीकी अस्वस्थताका बहाना करके चतुरदासी वैद्यके रूपमें ललितान्गको रानीके भवनमें ले गयी । इस प्रकार दोनों निशंक रति सुख भोगने लगे । अंत पुरके वृद्ध रक्षकोंको इसका पता चल गया । उन्होंने राजाको सूचना दी और राजाने ललितान्गको पकड़नेके आदेश दे दिये । तब राजीने भयभीत होकर ललितान्गको पुरीप कूपमें डाल दिया । आगेकी कथा लगभग पूर्वोक्त प्रकार है ।

गुणपाल कृत जंबूचरियमें इतना अंतर है कि 'कौमुदी' महोत्सव आनेपर राजाने रानीसे उद्यान-क्रीडा हेतु चलनेको कहा । रानी शिरोवेदनाका बहाना करके नहीं गयी । राजाके जानेपर एकांत पाकर चतुर धायने ललितान्गको अंत पुरमें प्रवेश करा दिया । इसर अकेले होने व रानीकी शिरोवेदनाकी कितासे राजाका मन उद्यान-क्रीडामें नहीं लगा और वह शीघ्र लौट आया । भयभीत रानीने ललितान्गको पुरीप कूपमें डाल दिया । आगे कथा पूर्वोक्त प्रकार है और अंतमें यह कि ललितान्गके साप बार-बार ऐसा हुआ, तथापि वह सचेत नहीं हुआ ।

हेमचंद्रके चरितमें इतना अल्प अंतर है कि कौमुदी उत्सवके समय राजा शिकारपर गया, पीछे यश मूर्तिके बहाने धायने ललितान्गको अंतःपुरमें प्रवेश करा दिया तथा दोनोंने अपनी कामवासनापूर्ण की । रक्षकोंको संदेह हो गया कि यश मूर्तिके रूपमें पर-पुरुषको प्रवेश कराया गया है । राजाको इसकी सूचना दी गयी । शेष वसु० हिंडीके समान ।

उपयुक्त चारों ग्रंथोंमें इसका धार्मिक प्रतीकार्य यह निकाला गया है कि ललितान्ग जीव है, रानी विषय भोगोंका प्रतीक है और पुरीप कूप गर्भवासका; तथा अंधद्वारसे निष्क्रमण भाताके गर्भद्वारसे निकलनेके समान है, आदि ।

उ० पु० में कथा बहुत संक्षेपमें है—एक राजाकी रानी ललितान्ग नामक भूतपर मुग्ध हो गयी और चतुराईसे बासी-द्वारा उसे अंतःपुरमें बुलवा लिया, तथा यथेच्छ रमण किया । राजाको इसका पता लग गया । भयसे रानीने ललितान्गको शीघ्रालयमें छिपा दिया और वही दुर्गवसे दस घुटकर उसकी मृत्यु हो गयी ।

हरिभद्रकृत 'समराहन्वचह'के नीचे भवमें प्रबुद्ध राजाकी रति नामक रानी तथा शुभंकर कुमारकी परस्पर आसक्तिकी कथा भी गुणपालके आख्यानके समान है और वही कथानक गुणपालकी रचनाका आधार है । राजमल्लने लगभग वीर कृत 'जंबूसामिचरिउ'का ही अनुकरण किया है, केवल इतने अंतरसे कि राजा शिकारको गया था, युद्धके लिए नहीं । यहाँ एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि वसु० हिंडी, उ० पु० तथा हेमचंद्र वर्णित कथानकमें रानी और ललितान्गका मिलन होता है और वे अपनी वासना पूर्ति करते हैं । परंतु वीर कवि तथा हरिभद्र और गुणपालके अनुसार चंग या ललितान्ग अंतःपुरमें पहुँचा ही था, कि राजा आ गया अथवा रक्षकोंको खबर लग गयी और बस । ललितान्ग गूब कूपमें फँक दिया गया । उनकी काम-वासना अतृप्त ही रही । ऐसा कहनेमें तीनों ग्रंथकारोंका आशय यह रहा है कि संसारमें जीव चाहे कितने ही भोग भोगे तथापि उसकी भोगवासना सदैव अतृप्त ही रहती है ।

### अन्य अंतर्कथाएँ

जं० सा० च० की उपयुक्त अंतर्कथाओंके अतिरिक्त वसु० हिंडी, जंबूचरिय ( प्राकृत ) परि० पर्व तथा ३० जिन० एवं पं० राज० कृत जंबूस्वामीचरित्रोंमें निम्नलिखित अंतर्कथाएँ और भी उपलब्ध होती हैं । लोककथा-सत्त्वों, एवं मूलकथाको रोचक बनाने, तथा उसे गति प्रदान करने आदिकी दृष्टिसे ये कथाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं । उन्हें गुणपाल कृत जंबूचरियके कथा-क्रमानुसार यहाँ दिया जा रहा है ।

### [१] राजपि प्रसन्नचंद्र एवं वल्कलचोरी

अ० महावीर अपने संघसहित राजगृहके निकट पयारे । लोग उनके दर्शनको गये । राजा श्रेणिकके दो सिपाहियोंने भगवान्के दर्शनको जाते हुए रास्तेमें मृनि प्रसन्नचंद्रको खड़े होकर ध्यान करते देखा । उन्हें

देख उनमें-से एक बोला—इसकी तपस्याका कोई लाभ नहीं। यह राजा दीक्षा लेते समय अपनी रानियों और बालक राजकुमारको मंत्रियोंके भरोसे छोड़ आया है। वे राजकुमारका वध कर देना चाहते हैं। इस प्रकार इसकी प्रव्रज्या इसके कुल नाशका कारण होगी। इतना कहकर वे चले गये। इधर यह सब सुनकर मुनिको बड़ा विक्षोभ उत्पन्न हुआ। वे मनसे ही मंत्रियोंसे युद्ध करने लगे और उनके मुख-मंडलपर तीव्र गतिसे विविध-भावोका उत्तार-चढ़ाव प्रकट होने लगा। पीछेसे भगवान्‌के दर्शनोंको आते राजा श्रेणिकने मुनिको इस अवस्थामें देखा और समवसरणमें पहुँचकर भगवान्‌से उनके संवत्समें प्रश्न किया। भगवान्‌ने मुनिका पूर्ण वृत्तांत इस प्रकार सुनाया—

‘पोतनपुरका राजा सोमचंद्र शिरके श्वेत बालका निमित्त पाकर अपने पुत्र प्रसन्नचंद्रको राज्य दे दीक्षित हो गया। गर्भवती रानी धारिणीने भी पतिका अनुगमन किया। समयपर वनमें ही धारिणीने पुत्रको जन्म दिया, और स्वयं सूतिका रोगसे चल बसी। पिता सोमचंद्र साधु अब स्वयं पुत्रका पालन करने लगे और उसका नाम बल्कलचारी रखा। उधर नगरीमें राजा प्रसन्नचंद्रको किसी प्रकार अपने भाईके जन्म लेने आदिसे समाचार मिले। उसने बड़ो युक्तिपूर्वक ( देखें : परि० पर्व ) पिता सोमचंद्रको पता लगै बिना ही बल्कलचारीको अपने पास बुलवाकर उसका विवाहादि करा दिया। इधर सोमचंद्र साधु होनेपर भी पुत्रके मोहवश पुत्र वियोगमें रोते-रोते अवा हो गया। एक बार दोनों भाई पितासे मिलने वनमें आये। पुत्रमिलनके आनंदामुग्धोंसे सोमचंद्रको पुनः दृष्टि प्राप्त हो गयी। पिताकी कुटोमें अपने चौरसे उनके पाशोंको साज़ करते-करते बल्कलचारी ध्यानमें लीन हो गया कि कभी मैं भी इसी अवस्थामें ( साधु ) था, उसी अवस्थामें चित्तन करते-करते उसे वहाँ पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। एकाग्रतासे ध्यानमें ऊँचे और ऊँचे चढ़ते हुए बल्कलचारीको वहाँ केवलज्ञान प्राप्त हो गया, तथा वे प्रत्येकबुद्ध हो गये। पिताको भ० महावीरको सौंप दे प्रत्येकबुद्ध अन्त्यज विहार कर गये। प्रसन्नचंद्रको भी इस घटनासे वैराग्य हो गया, और घर आकर बालक राजकुमार तथा रानियोंको मंत्रियोंकी देख-रेखमें छोड़ वह दीक्षित हो गया। भ० महावीरके यह कथा कहते-कहते मुनि प्रसन्नचंद्रको भी इसी बीच आत्मचेतना जाग्रत हुई। उनके विचार बदले। उन्होंने तीव्र पश्चात्ताप किया, और उसी समय ध्यान बलसे ऊपर चढ़ते-चढ़ते उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

यह कथा जंबूचरित्रके अतिरिक्त बसु० हिंवी, उ० पु० ( संक्षिप्त ) तथा परि० पर्वमें भी प्राप्त होती है। इसी प्रसंगमें अंतिम केवली कौन होगा, यह पूछनेपर भगवान्‌ ने विष्णुमाली देवका नाम लिया और जंबूस्वामीके भवदेव नामक प्रथम अवसे कथा प्रारंभ की।

[२] भोग-वासनाग्रस्त ब्राह्मण-पुत्र

भवदेवके दीक्षीपरांत भोगकी इच्छासे पुनः नागिलासे मिलने आनेपर नागिला ( जं० सा० च० नागवसू ) ने उसे प्रतिबोध देनेके लिए कथा सुनायी।

नागिला : रे भवदेव, साधुत्वको छोड़कर तू वासना-ग्रस्त ब्राह्मण-पुत्रके समान पशु होकर दुःख पावैगा।

भवदेव : कौन-सा ब्राह्मण-पुत्र ?

नागिला : सुन ! मैं तुझसे कहती हूँ—‘लाटदेशके भस्मक नगरमें रेवादित्य नामक अति शक्तिशाली ब्राह्मण हुआ। उसकी अत्यंत विभूत व कुरुपाकृति तथा स्वभावसे महादुष्ट तथा नाम तथा गुण आपदा नामक पत्नी थी। उसे पाँच लड़कियाँ हुईं और एक सबसे छोटा लड़का। महान्‌ कष्टमय जीवन व्यतीत करते-करते आपदा तो कुछ काल बाद मर गयी, और ब्राह्मण अत्यंत दुःखी व क्लिप्तचित्तव्यमूढ होकर लड़कियोंको ब्राह्मण लड़कोंके हाथोंमें सौंप पुत्र सहित घरसे निकल गया। तीर्थटनमें साधुओंके सत्संगसे वे दोनों साधु बन गये। पुत्र साधु जीवनके कष्टोंको सह नहीं सका, अतः संघसे निकाल दिया गया और गृहकार्योंमें प्रवृत्त हो गया। गालोंके साथ पशु चराने, लोगोंका लकड़ी, पानी, भूसा आदि ढँकेला धम करके भी कठिनाईसे वह उदरपूर्ति कर पाता, फिर भी घरमें स्त्री लानेकी तीव्र इच्छा रखता। इस प्रकार महान्‌ कष्टमय जीवन व्यतीत करते हुए अतृप्त भोगवासनाओंसे पीड़ित वह ब्राह्मण पुनः एक बार सर्प काट लेनेसे भरकर एक

महिपके रूपमें जन्मा और उस जातिमें भी वध-बन्धन आदि सहता हुआ असह्य भार ढोने लगा ( उसके पिताने, जो संन्यासपूर्वक भरकर देव हुआ था, स्वर्गसे आकर उसे बोन दिया )। इसी प्रकार तू भी भोग-वासनाके बशीभूत हो दुर्गतिको प्राप्त होगा ।'

### [३] वमन-भक्षणच्छुक ब्राह्मण-पुत्र

इसी बीच नागिलके साथकी ब्राह्मणीका पुत्र वहाँ आ गया और माँपे बोला—'माँ एक थाली लाओ, मैं बहुत स्वादिष्ट दूध-पाक बीमकर आया हूँ, उसका वमन करूँगा। उसे तू संभालकर रख लेना, जब मुझे पुनः भूख लगेगी तो मैं उसे खाऊँगा। अभी मुझे दूसरे घर बीमने जाना है।' उसका यह कथन सुनकर माँने उसे धिक्कारा—'छि. बेटा ! वमन करके भी कही पुनः खाया जाता है ?' भवदेवसे भी न रहा गया और उसने भी ब्राह्मण-पुत्रका बड़ा धिक्कार किया। यह सुनकर नागिलाने कहा—'रे भवदेव ! दूसरेको क्या धिक्कारता है, तू अपनी ओर तो देख ! तू भी अपने वमन ( त्यक्त ) किये हुए ( बिपय भोगो ) को फिरसे खाने ( भोगने ) की इच्छा कर रहा है।' नागिलके इन कथनसे भवदेवको सच्चा बोध हो गया।

यह कथा जदुचरियके अतिरिक्त बसु० हिंडी और परि० पर्वमें भी मिलती है।

इस स्थल-पर गुणभद्र कृत उ० पु० में निम्नरीतिसे तीन कथाएँ कही गयी हैं जो अन्यत्र नहीं मिलती।

### [४] दासी-पुत्र

दोसाके बारह वर्ष पश्चात् गाँवमें आने-पर मुनि भवदेवकी भेंट सुवता नामक गणिनी (साध्वियोके संघकी अध्यक्ष) से हुई। भवदेवने गणिनीसे अपनी स्त्री नागश्री (जं० सा० व० नागधसू) के संबंधमें पूछा। गणिनी उसका अभिप्राय समझ गयी, और उसे संयममें स्थिर करनेके आशयसे 'मैं नागश्रीके संबंधमें अच्छी तरह नहीं जानती', ऐसा उत्तर देकर, अपने साथकी दूसरी आशिकाकी निम्नलिखित कथा सुनाने लगी—  
'एक सर्व समृद्ध नामक वैश्य था। उसका दारुक नामका सरल-हृदय दासी-पुत्र था। एक दिन दासीने सेठका जूठा स्वादिष्ट भोजन जबरदस्ती अपने पुत्रको खिला दिया। वह खा सो गया, पर उलानिके कारण ससने वह सब भोजन वमन कर दिया। उसकी माँ ने वह वमन किसकी थालीमें ले लिया, और भूख लगनेपर पुन उसके सामने रख दिया। भूखसे अत्यंत पीड़ित होनेपर भी दारुकने अपना वमन नहीं खाया। तब मुनि अपने छोटे हुए पदार्थको किस तरह चाहते हैं।

### [५] राज-स्वान

इसके उपरांत सुवता दूसरी कथा कहने लगी—'नरपाल नामक राजाने कीमुकवश एक कुत्ता पाल रखा था। राजा उसे अच्छे अच्छे भोजन देता, सुवर्णके आभूषण पहनाता और वनविहारदिके समय उसे सोनेकी पालकीमें साथ बैठाकर ले जाता। एक दिन पालकीमें जाते समय कुत्तेकी दृष्टि अकस्मात् एक बालककी विष्टापर पड़ गयी, और उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वह झट उसपर कूद पड़ा। यह देख राजाने उसे डंडेसे पीटकर भगा दिया। इसी प्रकार जो मुनि पहले सबके पूजनीय होते हैं, वे ही छोटी हुई वस्तुको इच्छा कर फिर अनादरके पात्र बन जाते हैं।

### [६] दुर्बुद्धि पथिक

इसके बाद सुवता यह कथा कहने लगी—'एक पथिक वनमें-से सुबंघित फल-पुष्प तोड़कर लानेकी इच्छासे चला, परंतु सुमार्ग छोड़कर महा संकीर्ण वनमें जा पहुँचा। वहाँ उसने उसे मारनेकी इच्छासे सामने आता-हुआ एक व्याघ्र देखा। उसके भयसे भागते-भागते वह दुर्बुद्धि पथिक एक अश्वंकर कुएँमें जा पड़ा। वहाँ उसे बाढ-पिस्तादि सब दोष उत्पन्न हो गये, और सब इंद्रियाँ जडीभूत होने लगीं। सर्पादि का भय भी वहाँ, था, और कुएँमें-से निकलनेका कोई उपाय भी उसे शात नहीं था। पुण्यसे एक सद्बोध वहति आ निकला, और दयाद्रं होकर उसे ठोक प्रकारसे कुएँसे बाहर निकलवाया। औपयोपचारके द्वारा उसके सब रोग नष्ट कर दिये। उसकी सब इंद्रियाँ पूर्ववत् क्रियाशील हो गयीं। सब वैद्यने उसे सर्वरमणीय नगर ( मोक्ष ) की

और रवाना कर दिया। कुछ काल बाद वह पथिक पुनः विषयोंमें आसक्त हो गया, और दिशा भ्रान्त होकर पुनः उसी कुपमें जा गिरा। इस कथामें पथिक मिथ्यादृष्टि जीव है, वैद्य सद्गुरु है, कुयी संसार-रूप है, व्याधियाँ सांसारिक व्याधि-व्याधि दुःख, रोग, शोक है। सद्गुरु रूपी वैद्य जीवोंके सम्म्यग्दृष्टि रूपी नेत्रों एवं सम्म्यक् ज्ञान रूपी कानोंको खोल सम्म्यचारित्र्य प्रदान कर मोक्ष रूपी सर्वगमणीय नगरकी ओर जीवोंको रवाना करते हैं। सद्बुद्धि पुण्यवान् जीव एक बार उस मार्गको प्राप्त कर फिर मुक्ति प्राप्त किये बिना उसे नहीं छोड़ते। पर दुर्बुद्धि भ्रमपुण्य भ्रमार्थ मूर्ख बार-बार सत्संयोग पाकर भी विषयोंमें भंगे और मूढ़ बने रहकर उस मार्गसे फिर-फिरकर लौट आते हैं। गणिनीकी ये सब बातें सुनकर भवदेवको सच्चा वैराग्य हो गया।

तीसरे भवमें शिवकुमार कनकवतीका प्रेमाख्यान बहुत बड़ा है, और मूल कथासे उसका कोई वास्तविक संबंध नहीं। अतः उसे यहाँ नहीं दिया जाता। यहाँसे हम विद्युन्मालीके स्वप्नमें देवामु पूर्ण करके जंबूवामीके जन्म और १६ वर्षकी आयुमें सुवर्मस्वामीके दर्शन-धर्मोपदेशके उपरांत जंबूवामीको वैराग्य होनेसे आगेको कथाओपर आते हैं। जंबूवामी आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर घर आये, और उनमें तथा उनके माता-पितामें इस प्रकार वार्तालाप होने लगा—

[७] इम्यपुत्र

जंबू—माँ सुवर्मस्वामीके दर्शन और धर्मोपदेशसे मुझे अपने चार पूर्वजन्मों (भवदेव, देव, शिवकुमार, विद्युन्मालीदेव) का स्मरण हुआ है। इससे मैं संसारसे पूर्णतः विरक्त हो गया हूँ और मुनि दीक्षा-लेना चाहता हूँ। आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।

माँ—धर्मोपदेश तो हमने भी अनेक बार सुना है, पर तेरे जैसा निश्चय तो कभी नहीं हुआ!

जंबू—माँ किसीको अनेक बार सुनकर भी धर्मबोध और श्रद्धा नहीं होती, और किसीको एक बार सुनकर ही हो जाती है। इस संबंधमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ, उसे ध्यानसे सुनो—

‘वसंतपुरमें लावण्यवती नामकी एक अति रूपवान् और धनवान् गणिका रहती थी। अनेक समृद्धि-शाली राजपुत्र उसके पास भोग करनेको आते थे। कुछ काल ठहरकर जब वे जाने लगते तो लावण्यवती अपनेको स्मरण रखनेके लिए उन राजपुत्रोंको उनके मना करनेपर भी अपने बहुमूल्य कङ्के-कुंडलादि आभूषण भेंट किया करती थी। एक बार रत्नोका पारखी एक चतुर वणिक् पुत्र उसके पास आया। लावण्यवतीके पाँच अमूल्यरत्नोंसे जटित पाद-पीठको, कोई पहचान न सके इस हेतुसे, अन्य गणिकाओं-द्वारा अनादरपूर्वक यहाँ-वहाँ फेंके जाते देख उस रत्न-पारखी वणिक् पुत्रने तुरंत पहचान लिया। कुछ दिन वहाँ रहकर जब उसने घर जानेकी इच्छा प्रकट की तो लावण्यवतीने उससे भी अपनी स्मृतिकी रक्षाके लिए कोई वस्तु ले लेनेका आग्रह किया। उसने उत्तर दिया, ‘यदि कुछ लेना ही है तो तुम्हारे निरंतर चरणस्पर्शसे सौभाग्य-शाली यह पादपीठ ही मुझे मिले।’ लावण्यवतीने उसे वहकानेका बहुतेरा प्रयास किया, पर वह अपने आग्रह-पर अटल रहा। तब लावण्यवतीने उसके रत्नपरीक्षाके क्रौशलपर मुग्ध होकर अपना वह महार्घ्य पादपीठ उस वणिक् पुत्रको अर्पित कर दिया। हे माँ! यही बात वर्म श्रवणके संबंधमें है। इस दृष्टांतमें गणिका धर्मवृत्तिका प्रतीक है, राजपुत्र श्रोता, कङ्के-कुंडलादि आभूषण धार्मिक अणुव्रत, पादपीठ सम्यग्दर्शन, पञ्चरत्न पाँच महाव्रत, और वणिक्पुत्र सम्यग्ज्ञानका प्रतीक है। साधारण श्रोता छोटे-छोटे व्रतोंको लेकर संतुष्ट हो जाते हैं, और सम्यग्ज्ञानी पुरुष सम्यग्दृष्टि ग्रहण कर पञ्च-महाव्रतोंको धारण करके मोक्षको अपना लक्ष्य बनाता है। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।’

यह कथा जंबूचरित्रके अतिरिक्त केवल वसु० हिंडीमें मिलती है।

[८] पाँच मित्र

माता-पिता—जब पुनः सुधर्म गणवर आये तब सुधर्म चले जाना!

जंबू—इस संबंधमें आपलोग एक पुरानी कथा सुनें—कंचनपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पाँच मित्र

रहते थे ! एक बार कुटुम्बाय भगवान् का बर्णोद्देश सुनकर उनमेंसे एकने कहा—भगवान् के मुखसे धर्मश्रवण करना अति दुर्लभ होता है । अतः हमलोग उनके चरणोंमें दीक्षा ले लें । दूसरेने कहा इन या किसी अन्य भगवान् के पुनः यहाँ आनेपर हम लोग दीक्षा लेंगे । ऐसी संका आनेपर वे पाँचों स्वयं भगवान् के पास गये और अपने भगवान् के दर्शन तथा वर्ण श्रवणकी अति दुर्लभ जानकर वहाँ दीक्षा ले ली । यही बात मेरे संबंधमें है ।’

यह कथा भी संवृत्तरिक्त अतिरिक्त केवल अमुं द्विडीमें प्राप्त होती है ।

### [ ९ ] मधु-विद्रु दृष्टांत

संज्ञा विनाश हो गया और वह घर आकर बधुओंके बीच निर्विकार भावसे बैठ गया । सब धी गये, संज्ञा जागता रहा । इतनेमें प्रथम चोर वहाँ चोरने करने आया । संज्ञाके जागते देख, और उसकी दीक्षा लेनेकी इच्छा जान इतने इस प्रकार वार्तालाप हुआ ( अथि वीर, इ० विन० एवं पं० राज०के अनुसार यह वार्तालाप बधुओं और संज्ञाके बीच हुआ )—

प्रमद : संज्ञा तुम्हारा यह ठेक दुर्लभ अद्वितीय रुच, योग्य, अथार संपत्ति तथा ये अपूर्व-अनिष्ट मुंबरी बधुएँ, इन सबका अलम्ब मानवोप मुख नोगकर परिपक्व बय आनेपर तब तुम दीक्षा लेना ।

संज्ञा : हे प्रमद ! यह समस्त सांसारिक मुख नुच्छ मधु-विद्रुके आस्थाके समान है ! सो कैसे ? इसका दृष्टांत तुझसे सुनो—

‘एक बार एक जनवान् बणिक् वाणिज्यके लिए निकला और राहमें बड़े दुर्गम वनमें फँस गया । वहाँ दन्ते समान एक दुर्घात हाथी उसके पीछे लग गया । जान रक्षाके लिए नागवा-नागता बणिक् एक बड़ बृक्षके प्ररोहोंकी ओर दृष्ट कर उसके नीचे स्थित कुएँमें गटक गया, जिसके चार कोनोंमें चार त्रिपैले सर्प और बीचमें एक भयानक अडगर सूँह खोले पड़े थे । डबर एक रवेत और एक काळा ऐसे दो बूढ़े अश्विराम गतिसे उसी प्ररोहकी छाट रहे थे, जिससे वह छटका था । इतनेमें हाथी भी आ गया और क्रुद्ध होकर उछाड़नेके लिए उस बड़काकी छकसोर फाला । बृक्षके हिलनेसे उसपर लगा मधुनखिर्बोना छत्ता उड़ गया और उसनेसे एक-एक बूँद टपकर भागसे बणिक्के मुखमें आकर गिरने लगी । बणिक् उसका आस्थाव लेने लगा । वे सापे मधु-नखिर्बोना भी आकर बणिक्के चिन्ट गयीं और तीक्ष्णतासे काटने लगीं । आकाश-नागसे जाते एक विद्यावरने बणिक्को इस नारणांतिक भयावह स्थितिमें देखा और अनुकंठ पूर्णक वहाँसे उसका उद्धार करनेको उत्तर हुआ । पर उस महान् संकटमें भी वह बणिक् उन सुत्र मधु-विद्रुओंके स्वादको नहीं छोड़ सका । वहाँसे उसकी अवलंब—डाल काट दी । उसका प्राणांत हो गया और वह रूपमें उन नयनक सन्तके मुखमें आकर गिरा । इस दृष्टांतमें बणिक् संसारी बीव है; इन संसार हैं, वाणिज्य सांसारिक मृत्पाएँ हैं, हाथी मृत्पाका प्रतीक है । बधुव्रत मोक्ष है, जिसपर वह सब नहीं चम्कता । ब्रह्म आधु है और स्वयं व काल बूढ़े दिन और रात हैं जो अश्विराम गतिसे मानवीय आयुष्यको काटते रहते हैं । मधु-नखिर्बोना बनिष्प्राधिर्ग हैं, जिससे मनुष्य पीड़ित रहता है । वह कून मृत्कूज है और चार सर्प गरज, तिरिब, मनुष्य व देव ये चार गतिर्था तथा अडगर सुत्र-मूकन जोब योनि ( निगोड ) का प्रतीक है । इन परिस्थितियोंमें सांसारिक इन्द्रिय मुख उस सुत्र मधु-विद्रुके आस्थाके समान है । विद्यावर सदगुरु है । पर मोहांध जीव सदगुरुका संदेश और अवलंब पाकर भी इन्द्रिय मुक्तोको त्याग नहीं करता तथा मृत्युपर्यंत भयानक दुर्घातिको भ्रान होता है ।’

यह कथा सं० सा० च० के अतिरिक्त सम्युञ्ज सगी चरितोंमें पायी जाती है !

प्रमद : यदि ऐसा हो, तो भी हे संज्ञा ! अपने नाश-निवा, बंधु-बांधव, पत्नियोंके प्रति अपने कर्तव्योंको पूर्ण करने सब तुम दीक्षा लेना ।

संज्ञा : प्रमद ! सांसारिक संबंध जिन्हने असत्य और अथार होते हैं, इस संबंधमें यह काटनाय ध्याते सुनो—

## [ १० ] कुवेरदत्त-कुवेरदत्ता ( अठारह नाते )

मथुराकी एक वैद्या कुवेरसेना एक बार जुड़वाँ भाई-बहनोकी माँ बनी । उसने उनके नाम कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता रखकर उनकी अँगुलियोमें नामांकित मुद्रिकाएँ पहनाकर एक मंजूषामें रख उन दोनोंको जमुनामें प्रवाहित कर दिया । वही हुई वह मंजूषा शौर्यनगरके किनारे दो बणिकोके हाथ लगी । उनमें-से एकने पुत्रीको ले लिया, दूसरेने पुत्र । युवा होनेपर समान रूप गुणोको देख उनका परस्पर विवाह कर दिया गया । विवाहोपरांत द्यूत-क्रीडामें कुवेरदत्ताने कुवेरदत्तको जीत लिया । सखियोने कुवेरदत्तकी अँगूठी निकालकर कुवेरदत्ताकी गोदीमें डाल दी । अँगूठीको देखते ही कुवेरदत्ताको सहसा ऐसा हुआ कि हो न हो हम दोनों भाई-बहन हैं ? माता-पितासे वृत्त पूछनेपर बात सत्य सिद्ध हुई । इससे कुवेरदत्ताको बड़ी विरक्ति हुई और वह जैन साध्वी बन गयी । कुवेरदत्त व्यापारादिमें लग गया । एक बार व्यापारके ही प्रसंगमें वह मथुरा पहुँचा और कुवेरसेनाके रूप गुणोकी ख्याति सुन उससे आकृष्ट हुआ और अंततः उसीके यहाँ रहने लगा । कुवेरसेनासे उसे एक पुत्र हुआ । कुवेरदत्ता साध्वी भी धूमते-वामते मथुरा पहुँची और वहाँ भाईको माँके साथ भोग भोगते जान उसे अतिशय क्लेश हुआ । दोनोंको ( माँ कुवेरसेना, भाई कुवेरदत्त ) प्रतिबोध देनेकी इच्छासे वह कुवेरसेनाके ही घर जाकर ठहरी । भाई व माँ ( अब पति-पत्नी ) दोनोंने उसे नहीं पहचाना । उनके पास खेलते ( कहीं पालनेमें झुकाते ) बालकको देख वह बोली—तू मेरा भाई, पुत्र, देवर, भतीजा, चाचा और पौत्र है । तेरा पिता मेरा भाई, पिता, बाबा, पति, लड़का और बचसुर है; और तेरी माँ, मेरी माँ, दादी, मामी, पुत्रवधू, सास और सौत हैं । कुवेरदत्त-कुवेरसेना साध्वीके इस प्रलापसे बड़े क्षुब्ध हुए और उसका वास्तविक अर्थ पूछा । तब कुवेरदत्ताने जन्मसे लेकर अवतककी सारी कहानी उन्हें सुनायी और उन्हें अपने संबंध बतलाये कि जैसे उसने कहे थे, वे सही सच हैं । कुवेरदत्ताके इस व्याख्यानसे कुवेर-दत्तकी भी तीव्र वैराग्य हो गया और वह भी दीक्षित हो गया तथा कुवेरसेना भी सच्ची श्रद्धालु धर्मान्ध आश्रिता बन गयी । तो हे प्रभव ! ये सांसारिक संबंध तो ऐसे ही भिथ्था हैं, इनमें कोई सार नहीं है । जब एक ही जन्ममें इतने नाते ( अठारह ) संभव हैं, तो फिर जन्म-जन्मकी तो बात ही क्या ? न जाने कौन किसका क्या-क्या बना है ? और क्या-क्या बनता रहेगा ? अतः इन झूठे संबंधोके लिए मैं आत्मकल्याणकी हाति-क्यो करूँ ?

यह कथा जंबूवरियके अतिरिक्त वसु० हिंदी और परि० पर्वमें उपलब्ध होती है ।

## [ ११ ] गोपयुवक दृष्टांत : अर्थ विनियोगकी विरूपता :

प्रभव : हे जंबू ! तुम्हारे सातिशय बचनोसे किसकी बोध नहीं होगी ? तथापि मैं कहता हूँ कि जिस अर्थ ( धन ) की उपलब्धि बड़े महान् प्रयत्नसे होती है, और वह धन तुम्हारे पास विपुल परिमाणमें है, उसके परिभोगके लिए वर्ष-भर धरमें रहो, फिर प्रव्रज्या ले लेना ।

जंबू : सत्पुत्र उत्तम पात्रोके लिए धनके परिश्रमागकी प्रशंसा करते हैं, न कि कामभोगमें । उसके विनियोगकी । कामभोगोंमें धनके विनियोगके संबंधमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ । उसे ध्यान देकर सुनो—

‘अंग जनपदमें प्रभूव गो-महिष संपत्तिके स्वामी गोप रहते थे । एकद्वार चोरोने उनके घोष (वस्ती) पर आक्रमण किया, और एक सद्यःप्रसूता रूपस्त्रिनी तरुणीको, उसके लडकेको वहाँ छोड़कर, अपहरण करके ले गये । उन्होंने चंपानगरमें उसे वैद्याओके हाटमें ले जाकर बेच दिया । वहाँ वसन-विरेचनादि परिकर्म, परिचर्या और उपचार किये जानेसे उसका मूल्य लक्ष-मुद्राओके बराबर हो गया । उबर उसका वह लड़का भी बड़ा होकर जवान हो गया और धीकी गाड़ियाँ भरकर चंपा नगरीको गया । वहाँ उसने धी बेचा, और तरुण पुरुषोंकी गणिकाके घरमें स्वच्छंद क्रीडा करते हुए देखकर सोचा, ‘भूखे इस घनसे क्या काम ? यदि इस प्रकार इच्छित युवतीके साथ विहार न करूँ,’ और देखते-देखते वही गणिका उसे अच्छी लगी जो उसकी माँ थी । उसने उसे श्रेष्ठ शूल दिया । संज्याके समय स्नानादि करके अपनी माँ-गणिकाके घरकी ओर चला । रास्तेमें एक अनुकंपावान् देवताने बछड़े-सहित गायका रूप बनाकर अपने को उस युवकके समक्ष प्रकट किया ।

‘पैर अशुचि (विष्टा) में पड़ गया’ करके वह गोप युवक अपना पैर बछड़ेके शरीरसे पोंछने लगा। तब बछड़ा मनुष्य वाणीमें बोला—‘माँ यह कैसा व्यक्ति है, जो अमेध्यमें भरे हुए अपने पैरको मेरे शरीरसे पोछता है।’ माँ बोली—‘पुत्र ! दुखी मत हो, यह अभाग्य अपनी माँके साथ अकार्य करने जा रहा है, इस गोपयुवकके लिए तेरे साथ ऐसा व्यवहार कोई बड़ी बात नहीं’, ऐसा कहकर देवताने अपनेको अपृश्य कर लिया। गोपयुवकने सोचा, ‘सुना है मेरी माँ चोरीके द्वारा अपहरण कर ली गयी थी। क्या वह गणिका तो नहीं हो गयी?’ ऐसा विचारकर पहले तो वहीसे लौटने लगा। फिर सत्य शोधकी जिज्ञासासे वहाँ गया, और अज्ञानमें माँके गणिका सुलभ व्यापारोको उपेक्षा कर, आग्रहपूर्वक उससे उसका पूर्व वृत्त विलकुल सच-सच पूछा। वास्तविकता जान उसे तीव्र क्लेश हुआ—‘तो प्रभव ! मैं तुमसे पूछता हूँ यदि देवताने अनुकंपा न की होती, तब उस गोपयुवकके अनका भोग और विनियम कैसा होता?’

यह कथा केवल वसु० हिंडीमें ही प्राप्त होती है।

### [१२] महेश्वरदत्तका पिंडदान

प्रभव : जंबू ! तुम्हारा कथन सत्य है, फिर भी पुत्रके नाते, लोकवर्मकी रक्षा हेतु पितरको पिंडदान करके जाना तुम्हारा कर्तव्य है।

जंबू : प्रभव ! पिंडदानकी बात बिलकुल व्यर्थ है। इस विषयमें मैं एक कथा कहता हूँ, उसे दत्तचित्त होकर सुनी—

ताम्रलितिमें महेश्वरदत्त नामका वणिक् रहता था। उसके माँ-बाप ( बहुला व समुद्र ) बड़े धूर्त और लोभी थे। मरकर उसकी माँ कुतिया व पिता भैंसके रूपमें उत्पन्न हुए। महेश्वरदत्त बाणिज्य हेतु प्रायः दीर्घकालीन प्रवासमें रहता था। पीछे उसकी अकेली, सुंदर-युवा पत्नी व्यभिचारिणी हो गयी। एक बार महेश्वरदत्त अचानक प्रवाससे लौट आया और उसने पत्नीको अपनी आँखों व्यभिचार करते देख लिया। उस जारको क्रोधवश महेश्वरदत्तने तत्क्षण मौतके घाट उतार दिया। मरकर वह जार अपने ही शुकसे महेश्वरदत्तकी पत्नीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया। वणिक् फिर सुखसे पत्नीके साथ रहने लगा। उचित समयपर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे उस मूढ़ने अपना ही समझा। माता-पिताके वार्षिक आढके दिन उसने भैंसा खरीदा और बच करके, उसका मास पकाया। पिंडदान किया, स्वयं खाया, गोदीमें बिठा पुत्रको दिया, और एक कुतिया बा गयी उसे भी फेंका। इसी बीच एक साधु वहाँ आये और यह देख, आह दुष्प्राप ! आह क्लेश ! ऐसा शोकपूर्वक उच्चारण कर लौट चले। महेश्वरदत्त उनके पीछे भागा और उनके शोकोद्गार का कारण पूछा। साधुने सब कुछ बतलाया—यह भैंसा जिसे तुमने काटा, तुम्हारा ही पिता है और यह कुतिया तुम्हारी माँ है, तथा प्रमाणके लिए कुतियोंको घरमें ले जा उससे गड़े घनका स्थान बतलाया। बात सत्य निकली। हे प्रभव, पिंडदानकी बात बड़ी व्यर्थ है। कहाँ पितर और कहाँ पिंडदान ?

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त वसु० हिंडी तथा परि० पर्वमें मिलती है।

### [१३] कौडीके लिए करोड़ खोनेवाला बनिया :

जंबूके ये वचन सुनकर प्रभवको बोध हो गया और उसने पूछा—स्वामी ! सिद्धिमुख और विषय-सुखोंमें कितना अंतर है ?

जंबू . सिद्धि मुख अनन्त-अव्यावाह और निरुपम है। ऐसे सुखको छोड़, क्षुद्र इन्द्रियसुखोंके लालची जीव उस वणिक्के समान हैं जो एक कौडीके लिए करोड़की संपत्ति खो बैठे ! सुनो कैसे—

‘एक बनिया करोड़ोंके भाड ( पदार्थ ) गाडियोंमें भरकर सार्थ ( कारवा ) के साथ एक अठवीमें प्रविष्ट हुआ। उसका एक पात्र फुट-रुट व्ययके लिए पणो ( कौडीके मोल बराबर सिक्के ) से भरा था। उन्मागमें पड़ जानेसे एका जगह उसका भार ( पात्र ) फूट गया और पण बिखर गये। उसने अपनी सय गाडियाँ रकबा दी, और सब आदमियोंको पण ढूँढनेमें लगा दिया। इतनेमें सार्थके दूसरे लोग भी आ गये और बोले, ‘अरे गाडियोंको जाने दो ! क्या एक काकिणोके लिए करोड़ोंसे हाथ धोना चाहते हो ? क्या चोरीसे

नही डरते ?' वह बोला—'भविष्यत्में लग्न होना तो संदिग्ध है; जो है उसे कैसे छोड़ दूँ ?' सार्थक रोप लोग चले गये, और उसका सारा मान चोरीने छूट लिया।

यह कथा मात्र वसुदेव हिंडीमें उपलब्ध है।

इस प्रकार संवाद होते-होते बहुत रात बीत गयी और वधुओंकी नीद खुल गयी, तथा प्रनवके निरंतर हो जानेसे कथोपकथन अब वधुओं और जंबूस्वामीके बीच होने लगे।

समुद्रश्री : सखियो ! हमारे इस भर्त्ताको प्राप्त सुखोंको छोड़, अप्राप्त सुखोंकी धुनमें उस मूर्ख किसानके समान पछताना पड़ेगा, जिसकी कथा निम्न प्रकार है, सुनो :

[१४] बक नामक मूर्ख कृषक

'सुसीमन नामक गाँवमें बक नामक एक किसान रहता था। उसने खेतमें काँगू और कोदों नामक धान बोया। धानके पौधे समय पाकर खूब बड़े बड़े हो गये। इसी बीचवह एक बार दूर गाँवमें अपने संबंधियोंके यहाँ गया। वहाँ उसे गुड-मंडग खिलाये गये, जो उसे बहुत अच्छे लगे। गुड-मंडग बनानेकी विधि पूछनेपर उसे बताया गया कि पहले गेहूँ बोना। गेहूँ पक जानेपर उन्हें पिसाकर उस आटेको भट्टीमें लोहेकी कढाईमें भूनना। इसी प्रकार ईख बोना और गन्नोंका रस पकाकर गुड बनाना। भुना हुआ आटा और गुड मिलानेसे गुड-मंडग तैयार होगा। यह कहकर संबंधियोंने उसे गेहूँ और ईखके बीज भी दिये। उन बीजोंको लेकर वह खुशो-खुशी घर आया, और पड़ोसके बहुत मना करनेपर भी हरी-भरी खेतीमें हल चलाकर उसे उजाड़कर उसमें गेहूँ और ईखके बीज बोये और पानी देनेके लिए वही कुआँ खोदा, जिसमें पानी नहीं निकला। इस प्रकार मूर्ख बक गेहूँ और ईख ही नही उगा सका, फिर गुड-मंडग खानेका सुख तो उसे मिलता ही कैसे ? अपने जो काँगू और कोदो धान तैयार थे, उनमें भी हाथ धो बैठा। इसी प्रकार हमारा पति जंबू भी दिव्य सुखोंकी आशामें वर्तमान उपलब्ध सुखोंको छोड़ दोनोसे ही बंचित होकर पछतायेगा।'

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें प्राप्त होती है।

कथा सूत्रको जोड़नेवाली बीचकी कथाएँ पहले दी जा चुकी हैं। आगेकी कथाएँ सभी चरितोंमें जंबूस्वामी तथा वधुओंके संवादके रूपमें आयी हैं। उसी क्रमसे वे यहाँ प्रस्तुत हैं।

दत्तश्री : हे नाथ, हम लोगोको छोड़कर तुम उस वानरके समान पश्चात्ताप करोगे जिसकी कथा इस प्रकार है, सुनिये—

[१५] मूर्ख वानर

'भागीरथीके तटपर एक अति स्नेही वानर-युगल एक वृक्षपर रहता था। एक बार बंदर कुछ प्रमादसे कूबा, तो सीधा भागीरथीमें कूब गयी तथा एक सुंदर स्तोका रूप पाया व दोनो सुखसे रहने लगे। एक बार पुरुषके मनमें आया कि अब यदि फिर कूबू तो मनुष्यसे देव हो जाऊँगा। स्त्रीने बहुत मना किया, और रोयी, पर वह दुर्बुद्धि नही माना और फिरसे भागीरथीमें कूब पड़ा व पुनः लाल मुँह वाला बंदर बन गया। स्त्री वनमें अकेली रह गयी। सुंदर नारीके रूपमें वह एक दिन निकटस्थ नगरके राजपुरुषोंकी दृष्टिमें पड़ी। वे उसे राजाके पास ले गये। राजाने उसके अग्रतिम शोदयसे आकृष्ट हो, उसे अपनी पटरानी बना लिया।' इवर उस वानरको एक मदारीने अपने जालमें फँसा लिया और उसे भार-भारकर नाचना व खेल दिखाना सिखलाया। एक दिन मदारी वंदरके करतब दिखलाने उसी राजाके राजमहलमें ले गया। बंदरके खेलसे सब बहुत प्रसन्न हुए। अंतमें बंदर हाथ फँसाकर सबसे पैसा माँगने चला और राजाकी पटरानीके सामने पहुँचा। उसे देखकर वह पहचान गया और त्रिकल होकर रो पड़ा। तब पटरानी बोली— उस समय किन्तु ससम्पत्ता पर माने नही, अब क्यों रोते-पछताते हो ! इसी प्रकार हे नाथ, तुम भी उपलब्ध मनुष्य सुखोंको छोड़ दिव्य सुखोंके लालचमें दोनोको गँवाकर पछतावोगे।'

१. 'जंबूचरियं'में यहाँ कथा समाप्त।



यह कथा जंबूचरित्रके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वमें तथा ज० सा० च० (संक्षिप्त), ब्रह्म जिनदास और राज-मल्लके चरितोमें भी प्राप्त होती है। संक्षिप्त रूपमें इसका उत्तर जंबूने इंगाल दाहकके आस्थानसे दिया।

### [१६] नूपुर-पंडिता

इंगाल दाहकका आस्थान सुन पद्मश्री बोली (परि० पर्व - पद्मसेना)—स्वामिन्, शरीरधारियोका परिणाम (फल) कर्माधीन होता है। अतः तुम युक्तिपूर्वक भोगोको भोगो। इसके दृष्टांत अनेक हैं, पर मैं नूपुरपंडिता विलासवतीका आस्थान कहती हूँ उसे सुनो—

‘अंगदेशके वसंतपुर नगरमें जितशत्रु राजा था, सागरदत्त श्रेष्ठि, उसकी श्रीसेना नामक सेठानी, वसुपाल नामक पुत्र और विलासवती नामक पुत्रवधू। एक बार विलासवती नदीमें स्नान करने गयी। वहाँ एक घूर्त युवक उसे देख उसपर आसक्त हो गया, और विलासवती उस युवकपर। एक परिप्लविकाकी सहायतासे युवक उसके घरके पीछेके उद्यानमें रातिमें उससे अभिसार करनेमें सफल हुआ। इसी समय सागरदत्त लघुशकादि निवारणार्थ उठकर वहाँ आया तो उसने पुत्रवधूको घूर्तके साथ सोते देखा, और प्रातःकाल पुत्रको प्रमाण सहित बतलानेके लिए वधूके पैरका नूपुर निकालकर अंदर चला गया। विलासवती अंगी तो थी ही, तुरंत घूर्तको तो वहाँसे भगा दिया और पतिको बुलाकर उसी स्थानपर उसके साथ आकर सो रही, तथा कुछ ही देर बाद हड़बड़ाकर उठी और बोली, देखो! देखो! तुम्हारे पिता अभी-अभी मेरे पैरका नूपुर निकालकर ले गये हैं, सबेरे भुक्षपर कलक लगायेंगे कि मैं किसी पर-पुरुषके साथ सोयी थी। अब तुम जानो! ‘तुम निश्चित रहो’ कहकर श्रेष्ठिपुत्र सो गया।

प्रातःकाल होनेपर पिताने पुत्रसे वह बात कही। पर पुत्र नहीं माना और बोला, ‘बुद्धावस्थामें आपको भ्रम हुआ है। मेरी पत्नी वही सती-साध्वी है। मैं ही उसके पास सोया था। आपको वहाँ जानेमें लज्जा आती चाहिए थी, उलटे आप वधूपर कलक लगा रहे हैं। सागरदत्त कुछ नहीं कह सका, पर जो कुछ उसने आँखों देखा वह झूठ नहीं था। विलासवतीने अपने स्वमुरके द्वारा लोगोमें होनेवाली बदनामीसे बचने और अपने सतीत्वको सबके समक्ष प्रमाणित करनेका उपाय निकाला। उस नगरमें एक साक्षात् प्रभावशाली पवित्र यक्षका आश्रय था। कोई अपराधी उस यक्षके पैरोंके बीचसे जीवित नहीं निकल सकता था। नगरमें घोषणा करा, नहा-धोकर सब नागरिकोंके झुलूसके साथ वह यक्षके मंदिरमें पहुँची, इधर उसने उस घूर्त युवकको कहलवा दिया कि तुम पागलका रूप बनाकर यक्ष मंदिरमें सबके सामने मेरा आश्रितन कर लेना। घूर्तने ठीक समय वहाँ पहुँचकर बैठा ही किया। विलासवतीने उसे दुत्कार दिया और यक्षसे निवेदन किया कि मेरे पति और सबके सामने इस पागलको छोड़कर यदि किसी पर-पुरुषने मेरा स्पर्श किया हो तो तुम मुझे दंड देना। इतना कह, जबतक यक्ष कुछ निर्णय ले, वह छाटसे उसके पैरोंके बीचसे होकर साफ-साफ निकल गयी। लोगोंने उसका बड़ा जय-जयकार किया और श्रेष्ठिकी अर्त्सना।

यह सब स्त्री-चरित्र देख चिंता, शोक व ग्लानिके कारण श्रेष्ठिकी नींद उड़ गयी। राजा जितशत्रुके पास भी श्रेष्ठिके निरंतर जागते रहनेकी बात पहुँची। राजाने उसे बुलवाकर अपने अंतःपुरका रक्षक नियुक्त कर दिया।

श्रेष्ठि रात्रिमें जागता हुआ पहरा देने लगा। इसी बीच उसने एक रानीको बार-बार प्रासादके वातायनसे जाँकते देखा। उसे कुछ सदेह हुआ और वह सोनेका बहाना करके पड़ रहा। तब उसने देखा कि राजाका पट्ट हाथी महावतखानेसे निकला, उसी वातायनके नीचे पहुँचा। उसने अपनी सूँढ़ ऊपर उठा दी और वह रानी उसकी सूँढ़के सहारे नीचे उत्तर महावतखानेमें आयी। वहाँ आनेपर महावत उसपर बहुत रष्ट हुआ और उसे हाथीकी साकलोसे पीटा व देरसे आनेका कारण पूछा। रानीने नये रक्षककी नियुक्तिकी बात कहकर उससे हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और फिर उसके साथ भोग करके हाथीके सूँढ़पर चढ़कर उसी

१. परि० पर्व, राजगृह नगर, देवदत्त सुनार, देवद्विज पुत्र, दुर्गिला पुत्रवधू।

२. तुलना : जातकद्वयका अंशभूत जातक क्र० २२।

वातायनके मागसे वापिस प्रासादमें जाकर सो रही । यह घटना देख श्रेष्ठिको हुआ—आह ! जब राजमहलों तकमें ऐसा होता है तो हम साधारण लोगोंकी स्त्रियोंकी क्या बात ? इस विचारसे उसे जो निर्वेद-भाव आया, उससे उसकी चित्ता मिट गयी और वह प्रगाढ़ निद्रामें लीन हो गया, तथा सात रात-दिनों तक निरंतर सोता रहा । राजाने उसे बीचमें जगाया नहीं, जागनेपर निद्रा जानेका कारण पूछा । श्रेष्ठिने आक्षेप-पात अपनी पुत्रवधूसे लगाकर जो कुछ प्रासादमें देखा वह सब कह सुनाया । कुशलतासे उस रानीकी पट्ट-चान भी गयी और राजाने अपनी उम पटरानीको महावतके साथ उसी पट्टहस्तिपर चढाकर हस्ति सहित ऊँचे पर्वतकी चोटीसे गिराकर मार डालनेकी आज्ञा दे दी । हाथीकी अद्वितीय दक्षताके कारण लोगोंने राजासे उसके प्राण न लेनेका आग्रह किया और उसीके साथ रानी और महावतकी भी प्राण-मिक्षाके बदले देश-निकालेका आदेश प्राप्त हुआ ।

महावत रानी ( अब उसकी स्त्री ) के साथ वहाँमें निकल किसी दिन कहीं दूसरे राज्यमें किसी ग्राम-के बाहर एक रात-भरके लिए एक धूम्य देवालयमें जाकर ठहरा । रात्रिमें जब ये दोनों सो रहे थे, नगरसे एक चोर चोरी करके वहाँ आया और अंधेरेमें स्त्रीसे टकरा गया । स्त्री चोरको देखते ही उसपर मुग्न्य हो गयी और उससे कहा—यदि तू मेरा भर्तार बनना स्वीकार करे, तो मैं तेरी प्राण-रक्षा करूँगी । चोरने स्वीकार किया । इतनेमें रक्षक राजपुरुष चोरको खोजते हुए वहाँ पहुँचे । स्त्रीने चोरको अपना पति बतला दिया, वह बच गया, और उसके बदले सोता हुआ निरपराध महावत पकड़ लिया गया । उसे फाँसीका बँध मिला, और मारनेके पूर्व एक पावकसे भणोकार मंत्र प्राप्त कर, उसका जाप करते हुए, अपने दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त करके मरकर स्वर्गमें देव हुआ ।

इधर चोर स्त्रीको लेकर वहाँसे भागा और एक विशाल नदीके तीरपर पहुँचा । भागे क्या जं० सा० च०के समान, अंतर केवल यह कि महावतके जीवनमें स्वर्गमें देव होकर अवधिज्ञानके बलसे स्त्रीकी दशाको देखा और उसे चोर-द्वारा ठगी जाकर नदीके इस तीरपर झाड़ोंके बीच नंगी रोती खड़ी देखकर, उसपर अनुकंपा करके अपनी देवमायासे मांसका टुकड़ा मुँहमें क्रिये हुए शृगाल, बाज पक्षी और मत्स्यके रूप बनाये, और शृगालके रूपमें मनुष्यवाणीमें उसपर व्यंग्य करके उसे अपना देव-रूप दिखाया, महावतका स्मरण दिलाकर प्रतिबोध दिया और हीन दुश्चरित्रमय जीवनसे छुटकारा दिलाकर उसे वर्मकी सावनामें प्रवृत्त किया ।

इस प्रकार है जंबू ! विलासवती अपनी चतुराईसे मानवीय भोग भोगनेमें सफल रही, और दूसरी ओर रानी महावनके सुखको छोड़, चोरके सुखकी लालचमें दोनोंको खो बैठी । अतः तुम भी युक्ति-पूर्वक मनुष्य सुखोंको भोगो, व दिव्य सुखोंकी लालसासे इन्हें छोड़ दोनोंसे वंचित मत होओ ।

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वमें पूर्ण तथा जं० सा० च०, ब्रह्म जिनदास तथा पं० राजमल्लके चरितोंमें संक्षेपमें पायी जाती है ।

### [ १७ ] मेघरथ-विद्युन्माली

जंबू : ओ पद्मश्री ! मैं विषयसुखोंके लोभमें अर्वा होकर अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट होना नहीं चाहता ।

पद्मश्री : स्वामिन् ! यह सब ठीक है, पर आप एक वर्ष हम लोगोंके साथ भोग करें, उसके उपरांत हम लोग भी आपके साथ गुल्फे पादमूलमें दीक्षा ले लेंगी ।

जंबू : हे पद्मश्री ! जो भोगेच्छा अनेक जन्मोंमें भोग-भोगकर तृप्त नहीं हुई, भला वह एक वर्षमें कैसे तृप्त हो सकेगी ? इस संवत्समें मैं एक दृष्टांत देता हूँ, उसे तुम ध्यानसे सुनो ! वैताढ्य पर्वतपर देवताओंके गगनवत्सल नामक नगरमें दो विद्याधर भाई मेघरथ, विद्युन्माली रहते थे । एक बार कुछ विद्यासाधनके लिए, जिसमें उन्हें चाँडाल कन्याओंसे विवाह कर एक वर्ष तक उनके साथ ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहकर विद्या सिद्ध

१. तुलना : कथासरित्सागर, दोनै कृत अनुवाद, भाग १, पृ० १६१ की कथा ।

२. तुलना—जातकट्टकथा : सुल्लधनुग्गह जातक; तथा चीनी भाषासे अंगरेज़ीमें एस० जूकियन-द्वारा अनुदित अवदान, भाग २, पृ० ११ की कथा ।

करनी थी, वे दोनों चांडाल देशको गये। वहाँ पहुँचकर अपने बुद्धि-कौशलसे उन्होंने दो चांडाल कन्याओंसे विवाह कर लिया, और विद्यासाधन करने लगे। मेघरथ चांडाल कन्याके मोह-पाशमें नहीं पड़ा, और नियमानुसार वर्ष-भरमें विद्या सिद्ध कर ली। पर विद्युन्माली भयानक विलप-क्रूरुप और विकृत आकृतिवाली चांडाल कन्याके बाहु-पाशमें फँस गया, और स्वयं चांडालोंके समान रहने लगा, तथा विद्यासाधनके बदले उसे प्राप्त हुआ चांडाल-कन्यासे एक पुत्र। वर्ष भर बाद जब मेघरथने उसका यह हाल देखा, तो उसे बहुत समझाया, और एक वर्ष बाद जानेको कहकर अपने नगरको चला गया, तथा वहाँ प्रभुत्व, सत्ता, संपत्ति, अनेक अपूर्व सुंदरी विद्याधर कन्याएँ, यज्ञ, सम्मान आदि प्राप्त कर देवोपम सुखसे रहने लगा। वर्ष-भर बाद पुन विद्युन्मालीको देखने गया, तो पाया अब वह बाँ पुत्रोका पिता बन चुका था। फिर उसे समझाया। पर विद्युन्मालीको बोध नहीं हुआ। वह चांडालोंके विषय-सुखको छोड़ नहीं सका और उसीमें अथाह होकर अपना सब कुछ विद्याधरपना खोकर वही अधम चांडाल होकर रह गया। तो हे पद्मश्री ! मैं विद्युन्मालीके समान इंद्रिय भोगोंमें पड़कर अपने मोक्षरूपी लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होऊँगा !'

यह कथा जंबूचरित्रके अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पवमें उपलब्ध होती है।

### [ १८ ] शंखधमक

पद्मसेना (परि० पर्व • कनकसेना) : देखो स्वामिन् ! उपलब्ध सुखोंको छोड़ अनुपलब्ध मोक्ष सुखके लिए अतिशय उत्कण्ठित मत होओ ! अन्यथा तुम्हारी दशा शंखधमक किसान जैसी होगी।

जंबू : कैसे पद्मसेना ?

पद्मसेना : सुनिये नाथ ! मैं उसकी कथा सुनाती हूँ—'शालिशामका एक कुपक ऊँचे मचानपर बैठ पशु-पक्षियोंसे खेतकी रक्षाके लिए रात्रिमें खूब चोरसे शंख बजाया करता था। एक रातको चोरीका एक दल चोरीके पशुओंका एक झुंड हाँककर ले जाते हुए किसानके खेतके पाससे निकल रहा था। उसी समय किसानने खेतपर पशुओंका आक्रमण समझ उच्च-ध्वनिसे शंख फूँका। 'बहुत लोग हमारा पीछा कर रहे हैं', ऐसा समझ चोरीका दल पशुओंको वही छोड़ भाग गया। प्रातःकाल किसानने बिना ग्वालेके पशुओंके उस झुंडको वहीं चरते देखा। वह उन पशुओंको हाँककर गाँवमें ले गया। 'एक देवताने मुझे ये पशु भेंट किये हैं,' ऐसा कहकर उन्हें सब गाँववालोंको बाँट दिया।<sup>१</sup> दूसरे-दूसरे चोर भी इसी तरह अपना चुराया हुआ सब धन आदि छोड़कर भाग जाते रहे। पर इस सस्ती प्रसिद्धि और चोरीकी संपत्तिका कड़वा फल उसे दीप्त हो मिल गया। एक रातमें चोरोंका वही दल पुन उसी मार्गसे निकला, और फिर वही ही शंख-ध्वनि सुन, उसे पहचान, अपनी पुरानी भूलको समझ खेतमें घुस गये, तथा उस मचानको उखाड़कर किसान सहित नाँचे पटक दिया। किसानको बहुत मारा-पीटा, यातना दी और नगा करके अंधेले राते छोड़, उसके पद्म व अन्य जमा पूँजी सब-कुछ लेकर चले गये। इसी प्रकार मोक्ष सुखकी अति उत्कण्ठावश कहीं तुम अपने प्राप्त सुखोंको भी मत छोड़ देना !'

यह कथा जंबूचरित्रके अतिरिक्त परि० पर्वमें इयो रूपमें तथा इसके स्थानपर जं० मा० च०, ब्रह्म जिनशम एवं पं० राजमल्लके चरित्रोंमें शंख नामक कवाटीका आख्यान मिलता है। इसके उत्तरमें जंबूने पामातुर युवति वानरका आख्यान सुनाया।

### [ १९ ] बुद्धि-सिद्धि

तय हाय जोत्तर बननेना (परि० पर्व नवसेना) बोली—नाथ ! कहीं दिव्य-सुरोंके अति लोभके कारण नुनूंगी अदम्य बुद्धि नामक वृद्धा जंगी न हो, जिनगी क्लेशनी इस प्रकार सुनो जाती है—

'मान धर्मनं भावंदानगमे बुद्धि-मिद्धि नामरी दो वृद्धाएँ रहनी थी। ये परस्पर वृद्ध ही पतिव्रत मित्र थी, और दोनों ही दाम्निधमे अत्यंत युग्मी। बुद्धि दोष कालसे मचने मक्ति भावने मोक्ष

१. बिम्बा ग्रन्थके अनुसार अन्यत्र जाकर बेच दिया।

नामक यक्षकी पूजा कर नैवेद्य और पुष्प चढाया करती थी। उसकी सच्ची भक्तिसे प्रसन्न हो यक्ष बुद्धिकी इच्छानुसार सुखपूर्वक जीवन-यापन हेतु प्रतिदिन उसे एक दीनार प्रदान करने लगा। इससे बुद्धि शीघ्र ही पड़ोसियोंमें सबसे धनवान् बन गयी। सिद्धिकी यह रहस्य ज्ञात होनेपर वह भी यक्षको प्रसन्न कर बुद्धिसे दुगुना प्राप्त करनेमें सफल हुई। अब दन दोनोंमें कुस्पर्द्धा प्रारंभ हो गयी, और बार-बार यक्षको भेंट देकर एक-दूसरेसे दुगुना मांगती रहती। यक्ष भी देता चला गया। एक बार सिद्धिने अत्यंत दूषित चित्त हो, यक्षसे अपनी एक बाँख फोड़ देनेको कहा, यक्षने वैसा ही किया। बुद्धिने पुनः यक्षको प्रसन्न करके सदाकी तरह जो कुछ सिद्धिकी दिया उससे दुगुना मांगा और दोनों बाँखें गँवा बँठी। इसी प्रकार तुम भी दिव्यसुखोके अतिशोभमें पड़कर कहीं दोनों लोकोंके सुखोंको न खो बँटो !

यह कथा जंबूचरित्रके अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

## [ २० ] जात्यश्व

जंबू : कनकसेना ! मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। मैं तो श्रेष्ठ कुलीन अश्वके समान कभी भी सत्यका मार्ग नहीं छोड़ूँगा। सुनो कैसे ?

वर्मतपुरके राजा जितशत्रुकी घुडसालमें एक बड़ा भाग्यवान् और श्रेष्ठ लक्षणोंसे संपन्न घोड़ा था। उसके पुण्य प्रभावसे राजा दिनों-दिन बलवान् एवं दुर्जेय होता गया। राजाने वह घोड़ा सुरक्षा एवं लालन-पालन हेतु अपने नगरके पवित्र हृदय और विश्वसनीय जिनदास नामक श्रावकको सौंप दिया। जिनदास बहुत ध्यानासे घोड़ेकी देख-रेख करने लगा। वह उसपर बैठकर उसे एक पुष्करिणीमें ले जाता, स्नान कराता और रास्तेमें एक जिनमंदिरकी तीन प्रशिक्षणा देकर वापस ले आता। यही उसका दैनिक मार्ग और क्रम था। पड़ोसी राजा, जितशत्रुकी दुर्जेयतामें घोड़ेके प्रभावका रहस्य जान, घोड़ेको मारने या चुरानेका उपक्रम करने लगे, पर जिनदासकी सावधानीके कारण कोई कुछ कर नहीं पाया। एक प्रतिद्वंद्वी राजाके मंत्रीने घोड़ा चुरानेके लिए छह महीनेको अवधि मांगी। वह जैन श्रावक बनकर बसंतपुर गया, और जिनदासका विश्वासपात्र बनकर उसके घर रहने लगा। किसी समय जिनदासको आवश्यक गृहकार्यसे दूर गाँवमें अपने संबंधियोंके घर जाना पड़ा। वह अपना घर-बार और घोड़ा, सब कुछ उस कपटी श्रावकके भरोसे छोड़ गया। रातमें उस कपटीने घोड़ेको खोल अपने राज्यमें भगा ले जानेका प्रयास किया, पर घोड़ा घरसे पुष्करिणी, वहाँसे मंदिर और मंदिरसे वापिस घर, इस मार्गके सिवाय कितनी भी मार-पीट और कुछ भी करने पर, अन्य मार्गपर एक पग भी नहीं गया। इस तरह जब सारी रात बीत गयी और सबेर हो गया तो वह कपटी मंत्री घोड़ेको छोड़ भाग निकला। लौटनेपर जिनदासको सब पता चल गया, पर घोड़ा सुरक्षित था, इससे जिनदासको परम आनंद हुआ। इसी प्रकार हे कनकसेना ! ये ईश्रियोंरूपी चोर मुझे कितना भी बहकायें, फुसलायें या यातना दें, पर मैं इनका वशवर्त्ता हो अपना मोक्षका मार्ग नहीं छोड़ूँगा !

यह कथा जंबूचरित्र तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

## [ २१ ] ग्रामवोड-पुत्र

कनकश्री ( परि० पर्व : कनकसेना ) : स्वामिन् ! ऐसा कदाग्रह करके ग्रामवोड ( या गाँवकूट—गाँवका सबसे उदार व्यक्ति ) पुत्रके समान मूर्ख मत बनिये ! सुनिये—

भारतके वंग प्रदेशमें मट्टालंद नामक गाँवमें ग्रामवोडकी विषवा पत्नी अपने अत्यधिक आलसी पुत्रके साथ रहती थी। एक बार उसने कुछ भी न करनेके लिए पुत्रकी बहुत भर्त्सना की। तब पुत्रने कहा—माँ, अबसे मैं जीनेके साधन जुटानेके लिए अपनी शक्ति-भर सब कुछ कहेगा। एक दिन जब गाँवके लोग एक गोष्ठीमें बैठकर मप्-शप् कर रहे थे, तभी गाँवके कुम्हारका एक दुष्ट गधा रस्सा टुड़ाकर भाग निकला। कुम्हार, पकड़ो ! पकड़ो ! बिस्लाटा हुआ उमके पीछे दौड़ा। कोई उस दुष्ट गधेको पकड़ने आगे नहीं बढ़ा। तब उस ग्रामकूट पुत्रको लगा कि अपना पुण्याय दिखाकर यह कुछ अर्थ-प्राप्तिका अवसर है, ऐसा सोच उसने दौड़कर उस गधेकी पूँछ पकड़ ली। गधा उसे द्रुतगतिमें मारने लगा, लोगोंने भी उसे बहुत कहा,

पर उसने पूँछ नहीं छोड़ी। अंततः गवने जोरसे उसके मुँहपर लात मारी, उसके सारे दाँत टूट गये, और वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा। इसी प्रकार 'स्वामिन् ! मोक्षके लिए दुराग्रह करने मूर्ख मत बनिये !'

यह कथा भी अंबूचरिय, तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

### [ २२ ] घोड़ीपालक

चंबू : कनकश्री ! नारीमें प्रेम करनेका परिणाम बड़ा बुरा होता है। कैसे ? इसे मुझसे सुनो—

'भारतके कलिंग प्रदेशमें सिंहनिवास नामक ग्राममें किसी एक भुक्तिमार्गके पास बहुत उत्तम घोड़ी थी। उसने उसे सोल्लक नामक एक व्यक्तिके पास देख-रेखके लिए रख दिया। पर सोल्लक घोड़ीको खानेके लिए दो जानेवाली अच्छी-अच्छी वस्तुओंमें-से थोड़ी-सी ही उसे देता, शेष कुछ स्वयं खा लेता और कुछ बेव देता। क्रमशः क्षीणकाय होते-होते घोड़ी अंततः चल बयो। अपने समयपर सोल्लक भी मर गया। पर अपने दुष्कृत्यके परिणाम स्वरूप वह बार-बार पशु जातिमें जन्मा। बहुत जन्मोंके बाद एक दरिद्र ब्राह्मणके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम सोमदत्त रखा गया। लगभग उसी समय कई जन्मांतरोके उपरांत घोड़ी भी उसी नगरकी एक वैश्याकी पुत्री होकर, नगरमें सर्वोच्च सुंदरी कन्या हुई। युवकोंमें उसकी कृपा प्राप्त करनेकी होड़ लग गयी। सोमदत्त भी उसपर अत्यंत आसक्त था, पर दरिद्र होनेके कारण वैश्यापुत्री उसकी ओर अच्छी प्रकार देखती तक नहीं थी। फिर भी कमसे कम उसके सान्निध्यमें रहने हेतु अत्यासक्तिवशात् सोमदत्त उसका सेवक बन गया। पर कोई उसे चाहता नहीं था। अतः जब उसे घरसे निकाला जाने लगा तो उसने कठोरसे कठोर बंड, यातना, भूख-प्यास सब कुछ सहना स्वीकार किया, परंतु अपनी प्यारी वैश्यापुत्रीका घर नहीं छोड़ा। तो हे कनकश्री ! मैं तुम लोगोंके प्रेमाधीन होकर, उस ब्राह्मण पुत्रके समान यातनाओंमें नहीं पड़ूँगा।'

यह कथा भी अंबूचरिय तथा परिशिष्ट पर्वमें पायी जाती है।

### [ २३ ] मा-साहस पक्षी

कमलवती : हे नाथ ! मा-साहस पक्षीके समान तु साहसी मत होइये ! सुनिये—

'किती जंगलमें एक पक्षी सोते व्याघ्रके मुखमें घुसकर उसके जबड़ोंमें लगा मांस नोच-नोचकर खाता, बार-बार उड़कर पेड़की डालपर जा बैठता। मा साहस ! ( तु-साहस मत करो ) मा साहस ! कहता और फिर व्याघ्रके मुखमें प्रवेश कर मांस नोचने लगता। सोचो ! उस पक्षीकी कयनी क्या ? और करनी क्या ? तथा उसका परिणाम क्या हुआ होगा ? स्वामिन्, तुम भी उस मा-साहस पक्षीके समान बन रहे हो !' तुम चाहते मुक्त हो, पर सुखके साधनोंकी निंदा करते हो, और साक्षात्सुखकी छोड़ अदृष्ट सुखकी चाहसे तप करनेकी उद्यत हुए हो। हे मोले नाथ ! तुम्हारे कथन और कर्ममें मा-साहस शुकुनि जैसा साक्षात् विरोध दिखाई देता है।'

यह कथा भी अंबूचरिय और परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

### [ २४ ] तीन-मित्र

चंबू : हे कमलवती ! मैं सच्चा मित्र, संवन्धी, प्रेमी और हितैषी कौन होता है, उसे जानता हूँ। अतः तुम लोगोंकी बातोंमें पड़कर अपने स्वार्थ ( परस्वार्थ ) से वंचित नहीं होऊँगा। सुनो ! मैं तुम लोगोंके तीन ( प्रकारके ) मित्रोंका एक आख्यान सुनता हूँ—

'क्षितिप्रतिष्ठ नगरमें अपराजित नामक राजा था। उसका सुबुद्धि नामक मंत्री था, जिसके तीन मित्र थे—सहमित्र, पूर्वमित्र, जोहार ( प्रणाम ) मित्र। सहमित्र निरंतर बुद्धि मंत्रीके साथ रहता। खाना,

१. तुलना : महाभारत २, १५४८।

२. परि० पर्व : जितशत्रु राजा; सोमदत्त ब्राह्मण—कृष्ण पुरोहित व प्रधान अमात्य।

पीना, सोना, उठना, बैठना सब कुछ साथ ही करता, और सुबुद्धि भी दिन-रात उसकी देख-भाल रखता । ये दोनों घनिष्ठतम मित्र थे । पर्व-मित्रसे जब कभी विशिष्ट प्रसंगों-पर भेंट हुआ करती, तब दोनों प्रेमसे एक साथ मिलकर उठते-बैठते, खाते-पीते । जोहार मित्रसे यदा-कदा भेंट हो जानेपर आपसमें केवल प्रणाम भर हुआ करता और बस । एक बार किसी कारण राजा अमात्य पर अत्यधिक क्रुद्ध हो गया । अमात्य अपने प्राण बचाने हेतु राजाके पाससे भाग निकला और सहमित्रके घर पहुँचा । ऐसी स्थितिमें भी सुबुद्धि मंत्रीने सहमित्रको शरण नहीं मागी, केवल दूसरे देशको चले जानेमें सहायताकी अपेक्षा की । सहमित्रने उत्तर दिया— 'तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? मैं तुम्हें नहीं जानता । तुम मेरे घरसे तत्क्षण निकल जाओ ! मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता ।'

अमात्य अत्यंत निराश हो पर्व-मित्रके घर पहुँचा । उसने अनादर तो नहीं किया, बल्कि सम्मान किया, परदेश जानेमें कोई सहायता नहीं दी । हाँ परंतु चौराहे तक जाकर छोड़ आया और कहा—'इस रास्तेसे चले जाओ ।

अब विलकुल निराश हो, सहायताकी कोई अपेक्षा न कर वह बड़े संकोच और संभ्रमके साथ जोहार मित्रके घर पहुँचा । उसने बिना कुछ कहे-सुने-सब जान लिया । सुबुद्धि मंत्रीका अपनी आत्माके समान सम्मान-सत्कार किया । आत्मीयतापूर्वक अपने घरमें रखा और परदेशमें भी उसके साथ गया । वहाँ दोनों सुखसे साथ-साथ रहने लगे ।'

इस दृष्टांतमें सुबुद्धि-मंत्री आत्मा है, सहमित्र देह, पर्व-मित्र स्वजन-संबंधी, और जोहार मित्र है धर्म । राजाका क्रोध यमदंडका पतन (मृत्यु) है, चौराहा इमशान है, जहाँ तक स्वजन संबंधी साथ देते हैं और परदेश है परलोक, जहाँ केवल धर्म ही साथ जाता है, अन्य कोई नहीं ।

यह कथा जंबूधरियं तथा परिलिण्ट पर्वमें पायी जाती है ।

## [२५] चतुर ब्राह्मण कन्या

यह सब सुनकर सबसे अंतमें आठवीं विजयश्री ( परि० पर्व जयश्री ) नामक बधू जंबूस्वामीसे इस प्रकार कहने लगी—हे स्वामिन् ! माना कि तुम अतिशय बुद्धिमान्, चतुर और भट्ठान् प्रतिभावान् हो, पर चतुर भट्टपुत्रीके समान ये सब झूठे कथानक कहकर तुम दूसरोंको बहका सकते हो, हम लोगोंको नहीं ! सुनिये । मैं सुनाती हूँ कि उस भट्टपुत्रीके चतुराईकी कथा—

'बाराणसी ( वाराणसी ) नगरमें अपराजित राजा था ।<sup>१</sup> उसे प्रसिद्धि कहानियाँ सुननेका व्यसन था । नगरके ब्राह्मणोंकी यही उपजीविका थी । इसी नगरमें नागधर्म ब्राह्मण, सोमश्री ब्राह्मणी व उनकी एक चतुर कन्या थी ।<sup>२</sup> ब्राह्मण था अशिक्षित । सो एक दिन राजाको कहानी सुनानेकी उसकी पारी आ गयी । उस दिन ब्राह्मण घरमें बड़ा दुःखी, दुर्मना, चिंतित दिखाई-दिखा । यह देख पुत्रीसे न रहा गया, बोली—'पिताजी ! आज आप ऐसे व्याकुल क्यों लग रहे हैं ? क्या कारण है ? कहिये भी तो,' और पितासे इसका कारण जान, कन्याने कहा—पिताजी आप चिंतित न हों, आज आपके बदले मैं राजाको कहानी सुनाने जाऊँगी ।' यह कहकर कन्या राजदरबारमें पहुँच निर्भीक भावसे राजासे बोली—'राजन् ! मुझे बालक समझकर मेरा अपमान न किया जाय ! आज अपने पिताके बदले, मैं आपको कहानी सुनाऊँगी ।' राजाने कहा—सुनाओ ! तब कन्या कहने लगी—

एक बार मेरे माता-पिता एक समागत ब्राह्मण पुत्रके साथ मेरा वाग्दान करके; उसे व मुझे घरमें छोड़; विवाहके लिए सामग्री माँगने चले गये । रात्रिमें मैं भी उसके साथ सो रही, और अपने हाव-भाव विकारोंसे उसे उत्तेजित कर दिया । इससे वह मेरे साथ बलात्कारको उद्यत हो गया । मैं चित्ला पड़ी ! आस-पासके लोग झुकते हो गये । वह भयभीत हो मेरी खाटके नीचे छिप गया । मैंने आगे हुए लोगोंसे कहा यह मेरा स्वामी है । मैंने आज ही इसका वरण किया है । अब यह अचानक अस्वस्थ हो

१-२. परि० पर्वः रमणीय नामक नगर, नागश्री नामक ब्राह्मण कन्या; शेष कोई नाम नहीं ।

गया है। तब, 'इसको-सेवा करो, मलो, मर्दन करो' ऐसा कहकर लोग चले गये। मैं फिर उसके साथ सो गयी। अब मेरे साथ सुरत क्रीडाकी तीव्र अभिलाषा आदि कामविकारोको दवानेसे उसे अचानक असह्य शूल वेदना उत्पन्न हो गयी और उसीसे उसका प्राणांत हो गया। मैंने रो-धोकर, गड़ड़ा खोदकर उसे वही गाड़ दिया। ऊपरसे लीप दिया और घुप दे दी। इतनेमें सवेरा हो गया। माता-पिता लौटकर आ गये। मैंने उनसे सब वृत्तांत कह दिया। यही मेरी कहानी है।' इतना कह वह चतुर ब्राह्मण-कन्या चुप हो गयी। राजाने पूछा, 'यह सब सच है या झूठ?' कन्याने उत्तर दिया—'आपने अब तक जो अन्त्य कहानियाँ सुनीं, यदि वे सब सच हैं, तो यह भी सच है; आदि।' इस प्रकार, हे स्वामिन्! ब्राह्मण कन्याके सपान झूठी कथाएँ सुनाकर तुम हम लोगोको बहकानेमें सफल नहीं होगे।

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

इसपर जंबूस्वामीने कहा—'मैं ललितांग ( ज० सा० च० : चंग, अंतर्कथा क्र० १६ ) के समान विषयाद्य नहीं हूँ। इन सब आख्यानोंके उपरांत सबको निश्चय हो गया कि जंबूस्वामी किसी भी प्रकार दीक्षा लेनेके निश्चयसे नहीं डिगेंगे, तो सभीने उनके साथ प्रव्रज्या लेनेका निर्णय किया। अंतमें जंबुने निम्नलिखित दो दृष्टांत और सुनाये। पहला दृष्टांत सम्यग्दृष्टि ( सच्चा-श्रद्धावान् ) सम्यग्मिथ्यादृष्टि ( मिथित श्रद्धावान् ) और मिथ्यादृष्टि पुरुषोंके संबंधमें प्रतीक रूपसे है।

[ २६ ] तीन वणिक् और खदानें

तीन पुरुष बारिग्रह पीडित हो अर्थोपाजनके निमित्त परदेशको चले। राहमें चलते जाते वे एक भयंकर अटवीमें फँस गये। पर उनके भाग्यसे अटवीमें आगे चलकर उन्हें लोहेकी एक खदान मिली। तीनोंने जितना हो सका, उतना लोहा ले लिया। और आगे चलनेपर उन्हें चाँदीकी खान मिली। एकने सब लोहा फेंककर चाँदी ले ली, दूसरेने 'इतनी दूरसे डोकर ला रहा हूँ, इसलिए सब लोहा कैसे फेंकूँ', ऐसा कहकर आधा लोहा छोड़ा, उतनी चाँदी ले ली। तीसरा यही कहकर लोहा ही लिये रहा। पहलेने दोनोंको बहुत समझाया कि भाई लोहेकी अपेक्षा चाँदी अधिक बहुमूल्य है, अतः सब लोहा फेंककर चाँदी ले लो ? पर वे दोनों अपनी-अपनी बातपर अड़े रहे, उसका कहना नहीं माना। और आगे जानेपर सोनेकी खान मिली। पहलेने चाँदी भी सब फेंक दी और पूरा सोना ले लिया। दूसरेने अपने तर्कके अनुसार तीनों वस्तुएँ बराबर परिमाणमें ले ली। तीसरा अपने कदाग्रहके कारण लोहा ही लिये रहा। पहले व्यक्तिके समझानेको फिर भी दोनों नहीं माने। इसके बाद वे घर लौट आये। पहला सर्वसुखी हो गया। दूसरा मध्यम, और तीसरा वैसा दरिद्रका दरिद्र रह गया।

ये तीन व्यक्ति क्रमशः ( १ ) सम्यग्दृष्टि ( २ ) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और ( ३ ) मिथ्यादृष्टि व्यक्तियोंके प्रतीक हैं। प्रथम प्रकारके व्यक्ति सब सतोको छोड़, सच्चा मार्ग ग्रहण कर मोक्ष पाते हैं। दूसरे नाना सतोके बखेडेमें आगे नहीं बढ़ते। उनकी नीचे गिरनेकी संभावना बनी रहती है। और तीसरे अनंत दुखोंसे परिपूर्ण इस अंतर-अथाह अपार संसार-सागरमें जन्म-जन्मांतरोंमें भटकते रहते हैं।

यह कथा केवल जंबूचरियंमें पायी जाती है।

१. परिशिष्ट पर्वमें कहानी कुछ प्रकारांतरसे है। नागभीने राजासे कहा—'एक बार मेरे माता-पिता यात्रापर गये थे। पीछे जिससे मेरा वाग्दान किया था, वह घर आ गया। मैंने यथासंभव उसका उचित सम्मान-सत्कार किया। रात्रिमें घरमें एक मात्र शैट्या होनेके कारण, गंदी भूमिपर न लेटकर मैं भी सुपचाप उसके पास लेट गयी। स्वर्णसे उसे मेरी उपस्थितिका पता लग गया, और एकाएक उठी हुई अपनी तीव्र कामवासनाको दवानेके प्रयास व आत्मलज्जा जनित क्षोभके कारण उसकी उत्पन्न शूल हो गयी। 'इन परिस्थितियोंमें मैं ही इसकी शूल-की अपराधिनी मानी जाऊँगी' इस भयसे मैंने उसके शूल देहके टुकड़े-टुकड़े काट, प्रसंस्थान-में गड़ड़ा खोदकर गाड़ दिया, और घटनाके सारे चिह्नोंको मिटा दिया। तब माता-पिता आये।

[ २७ ] आख्यान—चिंतामणि ( द्रव्याटवी-भवाटवी )

उपर्युक्त दृष्टांत सुनानेके पश्चात् जंबूस्वामीने सबको धार्मिक आशयों-प्रतीकोसे परिपूर्ण निम्नलिखित धर्मकथा सुनायी । यह कथा बड़ी होनेसे लौकिक व्यक्तियों साथ-उनके आध्यात्मिक आशयोंको साथ-के-साथ कोष्ठकोंमें दिया जा रहा है । गुग्गलने इस दृष्टांतको चिंतामणि रत्नके समान सर्वोत्कृष्ट फलदायी आख्यान कहा है—

अवन्ति देशकी उज्जयिनी नामक नगरीमें धन नामक सार्यवाह रहता था । कदाचित् वह नाना भांड भर कर रत्नद्वीपको प्रस्थान करनेके लिए उद्यन हुआ । नगरके दुःखी लोगोंपर अनुकंपा करके, यह सोचकर कि इन्हें रत्नद्वीपमें शिवपुरीमें स्थापित कर दूँगा, जहाँ ये सब सुखसे रह सकेंगे; उसने नगरमें आने रत्नद्वीपको गमनकी घोषणा करा दी, और कहला दिया कि जो भी लोग उसके साथ चलना चाहें प्रसन्नतासे चल सकते हैं । बहुत लोग ( जीव ) आये । सार्यवाह ( सद्गुरु, केवलज्ञानी अर्हत् ) ने कहा—शिवपुरी ( मोक्ष ) के मार्गमें एक भयानक अटवी ( भव—जन्म-परंपरा ) पड़ती है । उसमें-से दो रास्ते जाते हैं, एक सीधा ( साधु-धर्म ) दूसरा टेढ़ा ( गृहस्थ-धर्म ) । टेढ़ा रास्ता बहुत लंबा है । उससे बहुत देरसे, पर सुखसे शिवपुरी पहुँचते हैं । सीधा रास्ता छोटा है । उससे शीघ्र पहुँचते हैं, पर वह बहुत कष्टकर है । उस रास्तेमें बहुत काँटे ( बाधाएँ ) हैं और महा भयानक सिंह, व्याघ्र, ( राग-द्वेष ) आदि भी मरुते हैं । प्राय दोनों मार्गोंमें चरनेवाले पुष्प ( आत्माएँ ) प्रमादवश भटक कर उन्मार्गमें लग जाते हैं, और जीवन पर्यंत चलनेपर भी फिर उन्हें सच्ची राह नहीं मिलती । शिवपुरीके मार्गमें आगे बढ़नेपर खूब घने हरे-भरे सुगंधित पत्र-पुष्प फलोसे लदे हुए शीतल छाया-वाले बड़े आकर्षक मनोरम वृक्ष ( देव-मनुष्य गतिधर्मों सुंदर-सुंदर युवा सुखदायक रमणियोंसे पूर्ण वसतिर्था ) हैं । पर उनको छायाके नीचे कभी विश्राम नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनको छाया बड़ी मारक होती है । बलिक पीले, सुखे, सड़े हुए पत्तोंवाले छायाहीन वृक्षों ( शून्य, स्थग, स्थितीसे रहित, निर्जन गृह, देवकुल, धर्मशान, एकांत वन आदि शुद्ध वसतिर्था ) के नीचे केवल मुहूर्त भर ठहरकर आगे फिर अपने पथपर अविश्रांत भावसे चल देना चाहिए । मार्गमें किनारेपर बैठे हुए बहुत ही रुबान् और मधुर वाचावाले पुष्प ( नाना-धर्ममत्तोवाले पापंडो ) बुलाते हैं, उनके वचन नही सुनने चाहियें । क्षणभरके लिए भी सहायकों ( सहयोगी साधु जन ) को नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि एकाकीकी वहाँ अवश्य भय है । वहाँ मार्गमें भयानक दुरंत दावानल ( क्रोध ) जलता रहता है । यत्न और सावधानी ( आत्मसंयम ) पूर्वक उस दावानलको बुझाना चाहिये । नही बुझानेसे वह प्रचलित होकर पुष्पको जलाये बिना नहीं छोड़ता । उसके आगे बड़ा महान् ऊँचा शूल ( मान, अहंकार ) मिलता है, उसे भी जागरूकता पूर्वक पार करना चाहिये । उसे पार नहीं करनेवालोका नियमसे मरण ( पतन ) होता है । उससे भी आगे बढ़नेपर बहुत कुटिल व घनी उलझी हुई वाँतोकी झाड़ी ( माया ) मिलती है । उसमें-से प्रयत्न पूर्वक निकलना चाहिये, नहीं निकलनेसे अनेक दोष होते हैं, और आगे बढ़ना असंभव ही जाता है । उससे और आगे बढ़नेपर ऊपरसे दीखनेमें बहुत छोटा, परंतु वास्तवमें अपूर ऐसा एक गर्त ( लोम ) मिलता है, जिसके पास मनोरथ ( इच्छाएँ ) नामक विष संदेव बैठा रहता है और कहता है कि इस गड्ढेको भरकर जाओ । पर कभी भी उसको भरनेके व्यर्थ प्रयासमें नहीं पड़ना । उसे जितना भरते हैं, उससे अधिक वह विस्तारको प्राप्त होता जाता है, और पथिक मार्गच्युत होकर वहीं ठहर कर रह जाता है, आगे बढ़ नहीं सकता । अर्थात् आगे बढ़नेपर बहुत दिव्य पके हुए और सुरभिपूर्ण किपाक फल ( विषयभोग ) उपलब्ध होते हैं, परंतु वे महान् प्राणनाशक होते हैं, अतः उन्हें छूना भी नहीं चाहिये । और आगे चलनेपर मार्गमें महा भयंकर व क्रूर वार्ड्स पिशाच ( लुब्धा-लुषादि वार्ड्स परोपह; देखें तं. सू. १.९ ) मिलते हैं, जो हर समय निगलनेको तैयार बैठे रहते हैं, उन्हें भी प्रयत्न-पूर्वक जीतना चाहिये । उस मार्गमें चलते हुए पथिककी सदैव स्वादहीन भोजन-पान करना चाहिये और नित्यप्रति रात्रिके प्रथम व अंतिम दो यामोंमें गमन ( स्वाध्याय ) करना चाहिये, कभी भी अप्रयाण ( ठहरना, संयममें अनुत्साह ) नहीं करना चाहिये । इस विधिसे वह दीर्घ अटवी ( जन्मोंकी अनादि परंपरा ) शीघ्र पार कर ली जाती है और आगे जाकर व्यक्ति सकल दुःख-दुर्गति-जन्म-जरा-मृत्यु-व्याधिसे



रहित, सर्वोत्तम अनंत-अशय-अव्याबाध-अनुपम और स्वाधीन सुखोको श्रेष्ठ वसति शिवपुरी अवश्यमेव उपलब्ध होती है। घन-सार्थवाहकै इस प्रकार कहनेपर अनेक व्यक्ति शिवपुरी राहमें उसके साथ चले। जो सीधे मार्गसे गये, वे शीघ्र उसके साथ शिवपुर पहुँच गये। जो टेढ़े-छंवे मार्गसे चले वे भी पहुँच गये, पर देरसे। यह सब कहकर अंतमें जंबूने कहा कि 'उपर्युक्त कथनके विपरीत जो कोई भूढ-पुरुष शब्द रूप-रस-गंध-स्पर्शसे मोहित होकर इस पथको छोड़कर उन्मार्गमें लग जाते हैं, वे इन सकल दुःखोंके निधान, भयानक, अनोर-पार, सुदुस्तर, दुर्लभ्य, घोर संसार-सागरमें अनंतकाल तक भ्रमण करते रहते हैं। यहाँ जिनवचन-रूपी पीतको छोड़कर दूसरी कोई नाव नहीं है।

यह आख्यान भी केवल जंबूचरित्रमें पाया जाता है।

इस रीतिसे सरोरमें जंबूस्वामीने प्रभव आदिके समस्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र रूपी मोक्ष-मार्गाका निरूपण किया। जंबू, प्रभव, वधुएँ, जंबू और वधुओंके माता-पिता सभीने दीक्षा ली। जंबूके गुरु आर्य सुधर्मा, जंबू और प्रभव मोक्ष गये। शेष अपने-अपने तपके अनुसार विभिन्न स्वर्गोंमें इंद्र, अहमिन्द्र और देव हुए।

वीर कृत जं० सा० च० तथा अन्य चरितोंमें आयी हुई उपर्युक्त अंतर्कथाओंको वसु० हिंडी, उ० पु०, जंबूचरित्रं, जं० सा० च०, परि० पर्व० तथा ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्लकृत चरितोकी कुल कथानक संख्या, परस्पर समान कथानक, क्रम संख्यानुसार स्थिति, तथा इन ग्रंथोंमें जंबूस्वामी कथाके विकासक्रमको निम्नलिखित कथासारिणी-द्वारा समक्षनेत्रमें सरलता होगी :—

### जंबूसामिचरितोकी कथासारिणी

(I) संवदास गणिकृत वसुदेव हिंडी (प्राकृत)	(II) गुणमद्र कृत उत्तर पुराण (संस्कृत)	(III) गुणपाल कृत जंबूचरित्रं(प्राकृत) और (V) हेम० कृत परि० पर्व०	(IV) वीर कृत जंबूसामिचरित्र(अपभ्रंश) (VI) जम्बूस्वामी च० (सं०) जिनदास (VII) „(सं०) राजमल्ल
		(III)	(V) (IV) (VI) (VII)

१ जंबूने कहा :

१ इम्यपुत्र		७	X			
२ पाँचभिन्न		८				
३ दूधपतिवानर प्रभववागमन		२१	१७	७	७	७
४ मधुविंदु	१०	९	५	९	९	
५ ललितार्ग	९	२७	२३	१९ चंग	१९	१७
६ कुबेरदत्त-कुबेरदत्ता		१०	६			
७ गोप युवक						
८ महेश्वरदत्त		११	७			
९ एक कौटीके लिए करोड़ हारनेवाला मूर्ख वणिक्						

(I) संवदास गणिकृत, चतुर्विंशो (प्राकृत)	(II) गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (संस्कृत)	(III) गुणपालकृत जंबूचरित्र (प्राकृत) और (V) हेम० कृत० परि० पर्व	(IV) वीरकृत जंबूपामिचरित (अपभ्रंश) (VI) जम्बूवामि च० (सं०) जिनदास (VII) " (सं०) राजमल्ल (IV) (VI) (VII)
१० प्रसन्नचंद्र- बल्लचारी विद्युन्माली देवागमन चार देवियाँ	१ धर्मरुचि	१	१
११ अणादिप देव वृत्तात्	११	६	२ ३ ३ ३
१२ भवदत्त-भवदेव वृत्तात् नागिलाने कहा :	१२ गणिनीने कहा :	२	३ १ १ १
१३ वासनाप्रस्त ब्राह्मणपुत्र	१३ दासी-पुत्र	३	×
१४ वमनभक्त ब्राह्मणपुत्र	१४ राजश्वान १५ दुर्बुद्धि-पथिक	४	४
१५ सागरदत्त-शिव- कुमार भव		५ सागरदत्त-शिवकुमार भव और शिवकुमार- कनकवती प्रेमाख्यान	[ सा० दत्त-शिवकुमार ] [ वधूने कहा : ] १० सपे व १० १० करकेटा जंबूने कहा : १ अमर १ मधुबिंदुदृष्टांत ११ मृत बैलको ११ ११ खानेवाला वृद्ध बैलको शृगाल खानेवाला शृगाल विद्युच्चरागमन विद्यु०ने कहा : १२ मधुलोभी १२ १२ कंद १४ असती १४ १३ १६ भील १६ × शृगाल (१८) बीड नट (१८) नट और नत्तकियाँ [ जंबूने कहा : ] १३ तृषित १३ × वणिकपुत्र
जंबूने कहा : ४	जंबूने कहा : १०	जंबूने कहा : १	५
चतुर्थनीलयशा लंभक- के अंतर्गत	४		
(८) मृदंग वादक			
१३	१५	११	१३

५ रत्न-राशि और मूर्त्तपथिक		१५ चित्तामणि- १५ १४ रत्न	
७ सोया हुआ वणिक् बीरचोरी		१७ सकलहारे- १७ १५ का स्वप्न	
५ ललित ५	९ ललितान्ग	२७	२३ १९ १७
	गणधरने कहा :		
११	११ अणादिय देव	६	२ ३ ३ १
१२	१२ भवदत्त-भवदेव दीक्षा	२	३ १ १
नागिलाने कहा :	गणिनीने कहा :	[नागिला कथित]	
१३	१३ दासीपुत्र		
१४	१४ राजश्वान	४	४
	१५ दुर्बुद्धि पथिक		
	[बघूने कहा ]		
	१२ मूर्त्त हीलो ट	४	४ ४
	गुहमडककथा		
	१४ वानर-युगल १०	१ वानर	६ ६
	१६ नूपुर-परिता १२	१४	१४ १३
	१८ दाल-धमक १४	८ संदिग्धी ८	संनक-बाढ़ी
	२० बुद्धि-मिद्धि १६		
	२२ ग्रामकूट-पुत्र १८		
	२४ मा-साहस पक्षी २०		
	२६ चतुर शास्त्रण २२		
	कन्या		
	[ जंबूने कहा : ]		
षण्मुषं नीलदशाष्टमके अंतर्गत	१३ बीवा	९ ५	५ ५
	३ दाह उदर पीड़ित	१५ ईशान दाहक ११	१३ सुपित ११ X
			यनिगुन
	१७ मेघरस-	१३	
	विरुग्मात्री		
३	१९ मृगपति वानर १५	७	७ ७
	२१ जाम्बवत १७		
	२३ घोड़ी पागल १९		
	२५ शीत मित्र २१		
५	२७ अग्निशोक २३	१९	१९ १७
	२८ शीत मित्र २५	X	
	बीर शर्म		
	२९ दाहक विनाशक X		

उपर्युक्त सारिणीसे ज्ञात होता है कि वीर कविने अपनी प्रस्तुत काव्य कृतिमें कथानक क्र० ५, ७ और १६ वसु० हिंडीसे संग्रहीत किये हैं। कथा क्र० १, ३ व १९ वसु० हिंडी तथा ८० पु० दोनोंमें समान रूपसे उपलब्ध है। कथा क्र० ४ मुख्हाली, क्र० ६ वानर, क्रमांक ८ संक्षिपी, क्र० ९ भ्रमर एवं क्र० १४ असती, ये पांच कथाएँ गुणपाल कृत जंबूचरियमें कुछ परिवर्तनोंके साथ विस्तृत रूपमें विद्यमान हैं। कथा क्र० २ चार देवियोंका पूर्वभव, क्र० १० सर्प व, करयैटा, क्र० ११ मृत वेल और शृंगाल, क्र० १५ चितामणिरत्न एवं क्र० १७ लकड़हारेका स्वप्न, ये पाँच आख्यान कविने स्वतंत्र रूपसे निबद्ध किये हैं, जिनके मूलस्रोत विविध प्रसिद्ध लोक-कथा साहित्य एवं लोकाख्यानोंमें सरलतासे खोजे जा सकते हैं।

‘जंबूसामिचरिउ’ की अंतर्कथाओंका तुलात्मक अध्ययन करनेपर हम देखते हैं कि अपने कथा-गठनमें जहाँ कविने अनावश्यक कथाओंको सर्वथा छोड़ दिया है—जैसे कि प्रसन्नचंद्र-वल्कलचारी एवं महेश्वरदत्त आदि कथानक; वहीं समस्त आख्यानोंको यथासंभव संक्षिप्त भी कर दिया है। ऐसा करनेमें कविने कथानकके आशयको तो पूर्णतया सुरक्षित रखा है, परंतु उनमें-से अधिकांशमें-से अतिमानवीय, दैवी तत्त्वोंका लोप कर दिया है, और अपने समस्त आख्यानोंको शुद्ध लोककथाओंके रूपमें वर्णित किया है। जहाँ दूसरे गद्य-पद्य चरितकारोंपर उनके अंतर्भूतका उपदेशक रूप हावी रहा है, वहाँ वीर कवि धार्मिक सिद्धांतों, विश्वासों और आइसे अनुप्राणित रहनेपर भी अपने कवि-हृदयको धार्मिक उपदेशछापनेसे अभिभूत नहीं होने देता। इसलिए जहाँ अन्य समस्त चरितकारोंने प्रत्येक कथाको आध्यात्मिक आशयों या प्रतीकोसे ढाद दिया है, वहाँ वीर कवि सब कथानकोंका आशय अधिकसे-अधिक दो-अथवा एकाव पंक्तिमें ही कहकर समाप्त कर देता है; और इस प्रकार कहीं भी अपने आख्यानोंको धार्मिक प्रतीकोसे बोझिल करके उनका काव्य-कथा-रस दबने नहीं देता। यही कारण है कि एक ऐसा सामान्य पाठक भी जिसका जैन धर्म व जैन संप्रदायसे कोई संबंध तथा परिचय न हो, वह भी वहुत थोड़ेसे धार्मिक चर्चावाले अंशको छोड़कर, शेष संपूर्ण रचनाने काव्य-रसका अनुभव ले सकता है, जबकि अन्य चरितोंके साथ साधारणतः ऐसा नहीं है। उनका बहुत सारा अंश सामान्य पाठक विलकुल ही नहीं समझेगा। अतः इनमें प्रचुरतासे विद्यमान साहित्यिक रसका भी वह कोई आस्वाद नहीं ले सकेगा। उदाहरणके लिए गुणपाल कृत ‘जंबूचरिय’का आख्यान-चितामणि नामक अंतिम कथानक देखें। आख्यानके उत्तरार्द्धमें पूर्वार्द्धके प्रत्येक पात्र, घटना, वस्तु सभीका आध्यात्मिक आशय बताया गया है, पूर्वार्द्ध केवल उसका प्रतीक मात्र है। अब कालकाव्य, जीवात्माएँ, मोक्ष और रत्नत्रय आदि तत्त्वोंको सामान्य पाठक क्या समझे? अतः उसके सामने कमसे-कम अमुक-अमुक अंशको छोड़ देनेके सिवाय और क्या उपाय रह जाता है? वीर कवि ऐसी स्थिति कही भी उत्पन्न होने नहीं देता और धार्मिक-दार्शनिक तत्त्वोंकी चर्चा भी पाठकके मनमें जिज्ञासा और कौतूहलकी सुदृढ़ पृष्ठभूमि निर्माण कर चुकनेकी स्थितिमें करता है। अर्थात् किसी भी स्थितिमें रचनाकी साहित्यिकता या काव्यात्मकता अन्य तत्त्वोंसे दबने नहीं पाती।

प्रत्येक महाकाव्यमें अनेक अंतर्कथाओंकी योजना अनिवार्य रूपसे की जाती है। उसमें कविका महान् आशय निहित रहता है। ये अंतर्कथाएँ कहीं काव्यकी मूल कथावस्तुको क्षिप्र गतिधीलता प्रदान करती हैं, तो कहीं उसकी गति-तीव्रताको संशय बनाती हैं; और कहीं कथावस्तुकी मूलधारामें आवश्यक मोड़ लाती हैं, तो कहीं भावी घटनाओंके संकेत भी प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त अंतर्कथाओंका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान नायकके चरित्रके अधिकसे-अधिक सुप्त और अंतर्निहित गुणों तथा उसके सर्वांगीण जीवन-के विविध पक्षोंको प्रकाशमें लानेमें होता है। इनका एक और विशिष्ट आशय आद्योपांत पाठककी जिज्ञासा और कौतूहल वृत्तिको जागृत करते हुए, क्रमशः थोड़ा-थोड़ा शांत करते-करते महाकाव्यकी ‘इति’ तक इस प्रकार ले जाना रहता है कि अंतमें भी पाठकका कौतूहल भले ही शांत हो जाये, पर उसकी यह जिज्ञासा बनी ही रह जाये कि अब इसके आगे और क्या हो सकता है? क्या हुआ होगा? या क्या होनेकी संभावना है? इन्हीं कल्पनाओंमें पाठक काव्यका अध्ययन समाप्त कर चुकनेपर भी मालो उसीका एक अंग, एक पात्र बनकर साधारणीकरणकी स्थितिमें आकर, रसात्मक अवस्थाको प्राप्त होकर उसीके चिंतनमें आनंद-विभोर होकर रह जाता है।

घोर कविने अपने महाकाव्यमें जिन अंतर्कथाओंका जिस प्रकार जिस-जिस स्थल-पर समावेश किया है, वे अपनी-अपनी स्थितिमें मुख्य कथावस्तुको गतिदान बादि करती हुई नायकके चरित्रके विविध गुणों एवं विविध पक्षोंका उद्घाटन कर कथावस्तुको एक निश्चित उद्देश्य अर्थात् नायकको फल-प्राप्तिको और निरंतर रेतो चलती है। इस प्रकार घोर कविने प्रस्तुत महाकाव्यके आध्यात्ममें इन अंतर्कथाओंके समावेशका पूर्ण औचित्य सिद्ध किया है।

### कथा तत्त्व तथा कथानक रुढ़ियाँ

‘जंबूस्वामीचरित’में समाविष्ट अंतर्कथाओंका कथा तत्त्वों तथा कथानक रुढ़ियोंकी दृष्टिसे भी विश्लेषण आवश्यक है।

साहित्यकारोंने लोक कथाओंमें निम्न तत्त्वोंका होना आवश्यक माना है :—

१. लोक-कथाओंका लोक-प्रचलित होना।
२. अप्राकृतिक, अतिप्राकृतिक तथा अमानवीय तत्वोंका समावेश होना।
३. इनका देश-काल आश्चर्यजनक और कल्पना भंडित होना।
४. लोकचर्चाका अनौरजक चित्रण होना।
५. लोकचित्तको आदोलित करना, प्रेरित करना और निश्चित उद्देश्यकी ओर छे जाना।
६. लोकभूतिते प्राप्त लोक कथाओंको लोकभाषामें निबद्ध करना।

इन सातों ही तत्वोंका कुछ-न-कुछ समावेश ‘जंबूसामिचरित’ में अंतर्कथाओंके रूपमें समाविष्ट लोक कथाओं में हुआ है। इनमें निम्न कथा तत्त्व अधिक स्पष्टतासे समाविष्ट पाये जाते हैं :—

१. प्रेमका गंभीर पुट, जैसे भवदत्त-भवदेवके माता-पिता, भवदत्त-भवदेव दोनों माई, भवदेवका अपनी पत्नी नागलाके प्रति भुनि बन जानेपर भी अनन्य अनुराग, भवदत्त-भवदेवका निरंतर पाँच भवोंमें अमिन्न स्नेह, शिवकुमारके जन्ममें उसके मित्र वृद्धवर्म और माता-पिताका उसके प्रति गहरा अनुराग।
२. स्वस्थ शृंगारिकता : जंबूस्वामीकी वधुओंका उनके प्रति शृंगार-भाव प्रदर्शन और गृहस्थ मिथुनोंकी रति-क्रीड़ा।
३. कीर्तुहलका समावेश प्रायः सर्वत्र; विशेष रूपसे इन घटनाओंमें . भगवान् महावीरका समोधारण आनेपर सब श्रुतुओंकी वनस्पतियोंका फूल उठना; विष्णुमाछी देवका महावीरके समोधारणमें आना, जेणिककी समामें गगनगति विद्याधरका आकाश मार्गसे आना।
४. अतिप्राकृतिकताके तत्त्वका प्रकटीकरण : भ० महावीरके समोधारण आनेके समयकी घटनाएँ।
५. उपदेशात्मकता : सभी अंतर्कथाओंमें स्पष्ट रूपसे उपलब्ध।
६. अप्राकृतिकता : असतीके आस्थानमें शृंगारका मनुष्यवाणीमें बोलना।
७. अनुभूतिमूलकता : सभी अंतर्कथाएँ कथा-प्रतिकथाके रूपमें कही गयी है, घटनाओंके रूपमें नहीं।
८. पारिवारिक जीवनका चित्रण : भवदत्त-भवदेवके तीनों मनुष्य जन्मोंकी कथाओंमें, तथा मूर्ख हालीकी कथामें।
९. पूर्वजन्मोंके संस्कार और फलभोग . शिवकुमार जंबूस्वामी तथा चार देवियोंकी कथाओंमें।
१०. साहसका निरूपण : अकेले जंबूस्वामी-द्वारा हस्तिनिग्रह और रत्नखेखर-पराजयके वृत्तान्तमें।
११. जनभाषा : अपभ्रंशका प्रयोग।
१२. सरल अमिथ्याजना : कथानकके सरल स्पष्ट वर्णनमें। जंबूसामिचरितके कुछ कथानकोंमें अस्पष्टता और डुरुहता भी दिखाई देती हैं उदाहरणार्थ संखिणीके आख्यायनमें।

१३. लोक-जीवनका चित्रण : विविध रूपोंमें विस्तारसे उपलब्ध ।<sup>१</sup>

१४. लोक-कल्याणकी भावना : जंबूस्वामी और रत्नशेखरके अकेले-अकेले दृष्ट युद्धमें, जिससे अन्य सैनिकोंका व्यर्थ संहार न हो ।

१५. परंपराको रक्षा : श्रेणिककी वामदत्ता विलासवती, एवं जंबूस्वामीकी वामदत्ता कन्याओंके क्रमशः श्रेणिक व जंबूको ही विवाहे जानें ।

१६. धर्म श्रद्धा : संपूर्ण कथावस्तुका केंद्र भूत तत्त्व ।

उपर्युक्त तत्त्वोंके अतिरिक्त 'जंबूसामिचरित'में समाविष्ट अंतर्कथाएँ वास्तवमें जन-साधारणके सामान्य लौकिक सुख-भोग प्रधान जीवन और मनोदशाको तीव्रतासे आंदोलित कर, उसके अंततत्त्वमें धार्मिक जीवनकी बलवती प्रेरणा उत्पन्न कर, उसे धार्मिक साधनाके पूर्व निश्चित उद्देश्यकी ओर स्वाभाविक रूपसे बहाकर ले जाती हुई दिखाई पड़ती हैं । कविको अपनी ओरसे कोई उपदेश देना-दिलाना नहीं पड़ता ।

ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओंका भी वीर कविने स्थान-स्थानपर कल्पनाके साथ सुंदर सम्मिश्रण किया है, जैसे विष्णुाटवीकी उपमा कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिसे देना, अथवा लंकानगरीसे देना, या कात्यायनी देवीसे करना, अथवा नववसंतागमनकी तुलना सीताका वृत्तांत लेकर आये हनुमान्से करना । और भी अनेक स्थलोपर शंकर-गौरी आदि देव-देवियों और उनसे संबद्ध पौराणिक वर्णनोंका सम्मिश्रण सुंदरतासे कवि-कल्पनाके साथ यथास्थान किया गया है ।

### कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ियाँ लोक-कथाओंका अभिन्न अंग होती हैं । "विभिन्न कथाओंमें बार-बार व्यवहृत होने-वाली एक जैसी घटनाओं अथवा एक जैसे विचारोंको कथानक रूढ़ि कहा जाता है । उक्त प्रकारकी घटनाएँ या विचार संबद्ध कथानकके निर्माण अथवा उसके विकासमें योग देते हैं ।"<sup>२</sup> इस संबंधमें आ० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदीने लिखा है, "हमारे देशके साहित्यमें कथानककी गति और घुमाव देनेके लिए कुछ ऐसे अभि-प्राय दीर्घकालसे व्यवहृत होते आये हैं जो बहुत दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ियोंमें बदल गये हैं ।"<sup>३</sup> आ० हरिभद्रने अपने कथा-साहित्यमें, उनके पूर्व बसुदेव हिंडीमें तथा आगे चलकर गुणपालने अनेक कथानक रूढ़ियोंका प्रयोग किया है ।<sup>४</sup> वीर कवि क्योंकि मूलतः कवि हैं, कथाकार नहीं, अतः उसने अधिक कथानक रूढ़ियोंका प्रयोग नहीं किया । उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ विशेष कथानक रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं :—

१. लोक प्रचलित विश्वासोंसे संबद्ध रूढ़ियाँ : जैसे जंबूस्वामीकी माताके पाँच स्वप्न और मुनि-द्वारा उनका फल-कथन तथा मृगांक पुत्री विलासवतीके श्रेणिकसे विवाहकी भविष्यवाणी ।

२. नागदेवीसे संबद्ध रूढ़ि : जैसे लोगों-द्वारा वृत्तांत पूछनेपर बगंका यह कहना कि 'रूपासक्त नागदेवियाँ मुझे पाताल स्वर्गमें उठा ले गयी थीं ।

३. तंत्र-मन्त्र-औषधियोंसे संबद्ध रूढ़ि : जैसे विद्युज्वरके द्वारा औषधियोंसे पहरेंदारको स्तंभित करके अपने पिताके शयन कक्षमें चोरीके लिए प्रविष्ट होना ।

४. आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक रूढ़ियाँ : इस वर्गकी रूढ़ियोंका वीर कविने सबसे अधिक प्रयोग किया है, जिनमेंसे प्रमुख प्रयुक्त रूढ़ियाँ निम्न लिखित हैं :—

१. प्रस्ता०—१० ।

२. डा० नैमिचंद्र शास्त्री : हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन, पृ० २१० ।

३. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्यका आदिकाल, पृ० ७४ ।

४. हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन, पृ० २६-२२८ ।

- (i) शिवकुमार-सागरदत्त भवमें सागरदत्त मुनिको देखकर शिवकुमारको संसारसे स्वतः वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वह मुनिसे इसका कारण पूछता है। इसी प्रकार सुधर्मा—जंबूस्वामी भवमें भी यही घटना घटित होती है।
- (ii) तीसरे भवमें मुनि सागरदत्तके द्वारा, पाँचवें भवमें सुधर्मा-द्वारा तथा स्वयं जंबूके द्वारा अपने पूर्व-भव-परंपरा कही जाती है।
- (iii) विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ पूर्व भवमें हृदयसे इच्छा करती हैं कि सूरसेन जैसा पति फिर न मिले; और तपस्चरणके फलसे स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी प्रिय देवियाँ होनेपर पुनः इच्छा करती हैं कि आगामी भवमें भी, जब यह देव जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लेगा, तब भी किसी भी प्रकार इससे हमारा संग न छूटे और हम लोग पुनः इसे अपने पतिके रूपमें प्राप्त करें।
- (iv) कथाक्रममें स्थान-स्थानपर धर्मका स्वरूप तथा ज्ञानोपलब्धिकी जिज्ञासा व्यक्त हुई है।
- (v) जंबूस्वामीने सुधर्मसे सम्यक्त्वोपलब्धिका कारण पूछा है।
- (vi) वैराग्य प्राप्तिके निमित्त सागरदत्तको मुनि सुधर्मलोकके धर्मोपदेशसे, शिवकुमारको मुनि सागरदत्तके तथा जंबूस्वामीको मुनि सुधर्मके दर्शनोके निमित्तसे वैराग्य होना।
- (vii) जंबूस्वामीको केवल ज्ञानोपलब्धिके समय देवागमन और अन्य आश्चर्य।
- (viii) मुनि सागरदत्त और सुधर्म गणवरके दर्शनसे क्रमशः शिवकुमार और जंबूको पूर्व भवोंका स्मरण।
- (xi) जन्म-जन्मांतरोकी शृंखला : भवदत्त-भवदेव, देवता, सागरदत्त-शिवकुमार, पुनः देवगति और अंतमें सुधर्म व जंबूस्वामीके जन्म-जन्मांतर।
- (x) विद्युन्चरकी तपस्याके समय चंडमारी व्यंतरी कृत भयानक उपसर्ग और विद्युन्चर-द्वारा उपसर्ग-विजय।

उपर्युक्त सभी कथानक रुढ़ियाँ अधिकांशतया 'जंबूसामिचरिउ'की मुख्य कथावस्तुमें प्रयुक्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त सभी अंतर्कथाओंमें दो आध्यात्मिक रुढ़ियाँ प्रमुख रूपसे उपलब्ध होती हैं। जंबूस्वामीकी वधुओं और विद्युन्चर-द्वारा जो आख्यान कहे गये हैं उन सबका अभिप्राय यह है कि जो कोई उपलब्ध सुखोंको छोड़कर भविष्यमें, लौकिक या पारलौकिक स्वर्गादि अनुपलब्ध सुखोंकी लालसा करता है उसे भविष्यके सुख तो उपलब्ध होते ही नहीं, वह उपलब्ध सुखोंको भी खो बैठता है। जंबू-द्वारा कहे गये आख्यानोंका अभिप्राय इसके सर्वथा विपरीत यह है कि उपलब्ध क्षुद्र-क्षणिक सार्सारिक सुख-भोगोंमें डूबकर मानव स्वर्ग मोक्षके अनुपम शाश्वत सुखोंको भूल जाता है और सदाके लिए खो बैठता है।

प्रस्तुत काव्यमें प्रयुक्त कथानक-रुढ़ियोंके विस्लेषणसे यह तथ्य भलीभाँति प्रकट होता है कि गीर कविने अपने काव्यके उद्देश्यानुकूल आध्यात्मिक-धार्मिक रुढ़ियोंका आद्योपाद्य सर्वाधिक प्रयोग उचित रीतिसे किया है। अन्य रुढ़ियोंका प्रयोग भी यथास्थान पाया जाता है।

## ६. जंबूसामिचरिका काव्यात्मक मूल्यांकन

अन्य प्रसिद्ध महाकवियोंके समान कवि गीरने भी अपनी काव्य-संवादी निम्नलिखित मान्यताएँ प्रकट की हैं :—

१. व्याकरण समत भाषा ( १.२.७ )।
२. ललित पद सन्निवेश ( १.२.७ एवं ७.१.४ )।
३. श्रुति-मयूर वर्ण ( सुहस्रहृत् १.२ ११ )।
४. अर्थ-गामोर्थ ( कन्वत्यु निवेसह ( १.२.११ अर्थि अर्थ; ८.१.८ )।
५. अर्थ स्पष्टता एवं अर्थसौंदर्य ( ७.१.४ )।

६. काव्यके विविध अंग तथा रस-भाव युक्तता ( रसभावहिं १.२.१२; कण्ठपुडएहिं पिज्जइ जणेहिं रसमउल्लिख्छेहिं ३.१.२; सरसकवसवस्स ६.१.१; कव्वंगरससमिद्धं ८.१.३; कव्वस्स इमस्स मए विरइयवण्णस्स रससमुद्दस्स ८.१.७; रसदित्तं १.१.४; गव्वं रसंतरं १०.१.४ ) ।

७. संवियुक्तता : ( पयडव्वंसंघाणहिं ( १.२.१४ ) ।

८. छंदोबद्धता : ( सच्छवु १.३.३; चारित्तुवित्तु १.३.७ ) ।

९. गुणयुक्तता : ( १.२.४ ) ।

१०. दोष-युक्तता : ( १.२.४ ) ।

११. अलंकार-नियोजन : ( अलंकारसलक्षणहिं ३.१.२; सालंकारं कव्वं ८.१.९ ) ।

'जंबूसामिचरित' गद्यरह संघियोंमें रचित है । अर्थ-नांभीय, अर्थस्पष्टता एवं अर्थ-सौंदर्य तथा ललित पदरचना एवं धृति-मधुरता आदि गुण काव्य रचनाके अध्ययनसे स्वतः प्रकट हो जाते हैं । काव्यगुणों, रीतियों तथा भाषात्मक एवं व्याकरणात्मक स्वरूपका विश्लेषण आगे ( प्रस्तावना ७-८ ) किया गया है । शेष काव्यात्मक तत्त्वोंपर निम्नलिखित शीर्षकोके अंतर्गत विचार किया जाता है :—

(क) चरित काव्यकी दृष्टिसे समीक्षा (ख) महाकाव्यात्मकता (ग) वस्तु-व्यापार वर्णन : देश, नगर, ग्राम, शैल, अटवी, उपवन-उद्यान, सरित्; ऋतुवर्णन वसंत शीष्म, वर्षा, दिन-विभाग : उपः, सूर्योदय, मध्याह्न, संध्या, प्रदोष, रात्रि, अंधकार और चंद्रोदय; क्रोडाएँ : उपवन-क्रोडा, जल क्रोडा मिथुनोंकी सुरत क्रोडा, वैश्याओंके काम-व्यापार एवं हस्तिकृत उपद्रव, सैन्य प्रयाण और पडाव; एवं विविध रूपोंमें प्रकृति-चित्रण । (घ) शील-विश्लेषण (ङ) रस-भाव योजना (च) अलंकार योजना (छ) विंव योजना (ज) छंद-योजना ।

## (क) चरितकाव्यकी दृष्टिसे समीक्षा

जंबूस्वामीके जीवन-चरित और कथावस्तुके स्त्रोतोके अध्ययनमें हमने देखा है कि प्राचीन-साहित्यमें जंबूस्वामीचरितकी ऐतिहासिक सामग्री अत्यंत सज्जित है । उसीके आधारसे सर्वप्रथम संघदास गणिते बहुदेव द्विहीके 'कथा-उत्तरति' नामक प्रथम प्रकरणमें जंबूस्वामी चरितकी बृहद् कथा कल्पित की । उत्तर पुराण (गुणभद्र)की परंपरासे वह कथा और कविको प्राप्त हुई और उसी शोधपर उसने अपनी कल्पना और काव्य-प्रतिभाके सामर्थ्यसे 'जंबूसामिचरित' नामक प्रस्तुत महाकाव्यकी रचना की ।

अपभ्रंश साहित्य अतर्वाह्य सर्वतः प्राकृत-साहित्यको परंपरासे अविच्छिन्न-अभिन्न रूपसे संबद्ध है । अतः प्राकृत चरितकाव्योकी जो विशेषताएँ बिद्वानोंने निर्धारित की हैं वे पूर्णरूपसे अपभ्रंश चरित काव्योंमें भी उपलब्ध होती हैं । उनके परिप्रेक्ष्यमें जंबूसामिचरितका परिशीलन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं :—

कथावस्तुकी व्यापक और गहन अन्विति : कथावस्तुके प्रवाह एवं उसकी हृदयस्पर्शताके निर्वाहके लिए संघियोंका प्रगाढ़ संश्लिष्ट संयोजन, कथानकमें चमत्कार उत्पन्न करनेके लिए परिस्थितियोंका नियोजन; तथा जीवन और जगत् संबंधी उपदेश, कथावस्तुमें रोचकता वनाये रखनेके लिए मूल कथानकसे संबद्ध और असंबद्ध देशकाल, समाज एवं व्यक्तियोंके रोचकवर्णन; पात्रोंके चरित्रोका द्वंदात्मक विकास; सहृदय सामाजिक अथवा पाठको रसानुभूतिकी दृष्टिसे साधारणीकरणकी स्थितिमें लानेके लिए पात्रोका शील वैविध्य; चरितवर्णनमें अस्वाभाविकता और पाठकमें सज्जन्म नीरसतासे काव्यको वचानेके हेतु सर्वशुद्ध साधारण मानवोंकी भाँति पात्रोंके चरितोंमें उत्तार-चढावरूप तरतमता, जीवनके विविध व्यापारों, परिस्थितियों, जैसे प्रेम, विवाह, वियोग, मिलन सैनिक-अभियान, नगरकी धीरेवदी, युद्ध, जय-पराजय, का चित्रण; नाना विधनों एवं

१. डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री : प्रा० मा० और सा० का आलो० इतिहास, अध्याय ३ ।

२. हिन्दी साहित्य कोश

११



उपनयनोंका निरूपण, परिस्थितियोंके कोयलपूर्ण नियोजनसे नायकके चरित्रका क्रमशः उद्घाटन; कथात्मक घटना और काव्यात्मक वर्णनोंमें समन्वय; पात्रों और परिस्थितियोंके संपर्क-संघर्षसे नामाजिकीके हृदयमें रस निष्पत्ति, धार्मिक वृत्तियों, पौराणिक विष्वासों और आश्चर्य तथा औत्सुक्यपूर्ण सहज प्रवृत्तियोंका मद्भाव; जीवनकी समग्रताका चित्रण तथा पात्रोंके चरित्र-विकासके हेतु जीवनके विविध रूपों और पक्षोंका उद्घाटन करते हुए मूलकथा और अन्ततः कथाओंके अतिरिक्त विविध वस्तुओं, पात्रों और भाव अनुभावोंका निरूपण; तथा शैलीमें रोचकता, गंभीरता और उदात्तता। प्रस्तावनामें आगे यथास्थान इन विशेषताओंपर योजित प्रकाश डाला गया है।

### (ख) महाकाव्यात्मकता

प्रस्तुत कृतिमें शास्त्रीय महाकाव्यके सभी लक्षण पाये जाते हैं। महाकाव्यके इतिवृत्त, वस्तु व्यापार-वर्णन, संवाद एवं भावाभिव्यंजन, ये चारों अवयव संतुलित रूपमें यहाँ घटित हुए हैं। कविने जीवनकी समग्रताका चित्रण कई जगहोंकी कथाका अवलम्बन लेकर किया है।

नामकरण—महाकाव्योंके नामकरणके निम्नलिखित प्रमुख आधार हैं—(१) काव्यमें वर्णित किसी प्रमुख घटनाके नामसे, जैसे 'सेतुबंध' (२) प्रमुख पात्रके नामसे, जैसे 'गडडहवा'; (३) नायक या नायिकाके नामसे, जैसे 'पद्मचरित'; (४) वर्णित वस्तु विशेषके नामसे, जैसे महाकवि कालिदासकृत 'रघुवंशम्'; (५) प्राप्त संकेत या उपदेशके आधारसे, जैसे 'मयणपराजयचरित' एवं (६) कविके नामसे, जैसे 'भाषकाव्य'। स्पष्ट है कि कविने नायकके नामपर काव्यका नामकरण किया है। अतः यह अपभ्रंश काव्यकी वह विधा है जिसे चरितनामात् महाकाव्य कहा जा सकता है।

ये तो पुराण और महाकाव्यका उद्भव और विकास समानांतर रूपमें होता है। आरंभमें इन दोनोंका रूप भी हमें एकमें घुलमिल दिखाई देता है, जिसके उदाहरणस्वरूप स्वयम्भू कृत 'हरिवंशपुराण' या 'रिटुनेमिचरित'का नाम लिया जा सकता है। परंतु जब अलंकरणकी प्रवृत्ति और सौंदर्य बोधकी चेतना विस्तृत होती है, तो महाकाव्योका संगठन पुराणोंसे पृथक् शैलीमें होने लगता है। यही कारण है कि अपभ्रंश काव्योंमें पौराणिक तत्वोंके साथ सौंदर्यचेतनाका विस्तार पाया जाता है। इस दृष्टिसे 'जंजूसामिचरित' एक चरितनामात् महाकाव्य है। इसमें निम्नलिखित तत्त्व समाहित हैं—(१) शास्त्रीय नियमोंके आधारपर श्रवित जंबूत्वामीका इतिवृत्त; (२) वस्तु व्यापारोका संयोजन; (३) अन्ततः कथाओं और घटनाओंमें वैविध्यके साथ अलौकिक व अप्राकृतिक तत्वोंका सन्निवेश, (४) दर्शन और आचार संबंधी सिद्धांतोंका समावेश, (५) व्यापक और समस्पर्शी कथानकका एक ही नायकके जीवनके साथ संबंध; (६) रस-भाव योजनाके हेतु रोमांटिक तत्वोंकी समाहिती, (७) कथा-वस्तुमें विस्तारकी अपेक्षा गहनता; (८) सर्ग विभाजनके स्थानपर सवि विभाजनके रूपमें सानुबंध-कथाकी योजना, (९) कर्म सत्कारोंके विस्लेषण, उद्घाटन हेतु कई जन्मोंकी कथाका ग्रंथन; (१०) प्रमुखपात्रोंके चरित्रका क्रमिक उद्घाटन एवं विभिन्न अवस्थाओंके माध्यमसे मोक्षप्राप्तिका उल्लेख; तथा (११) काव्यत्व उत्पन्न करने हेतु यथास्थान अलंकारों, गुणों एवं रीतियोंका संयोजन।

'जंजूसामिचरित' में इन महाकाव्य गुणोंके समावेश-संयोजनसे यह स्पष्ट प्रमाणित है कि यह एक सच्चकोटिका अपभ्रंश महाकाव्य है। कविने इसमें सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा, संघ्या, प्रभाव, मध्याह्न, रात्रि, चंद्र, सूर्य, वन, पर्वत, नदी, सरोवर एवं ऋतु आदि वस्तुओंका सागोपाग चित्रण किया है। प्रबंध कल्पना भी महाकाव्यकी है। कथाकी अन्विति, सवि विभाजन, छंद परिवर्तन, प्रकृति चित्रण, भावाभिव्यंजन आदि महाकाव्यके सभी उपकरण प्रस्तुत काव्यकृतिमें समवेत हैं।

### (ग) वस्तु-व्यापार-वर्णन

ज० सा० च०में तीन देशों, पाँच नगरों, एक ग्राम, एक वन, एक पर्वत तथा एक नदीका वर्णन उपलब्ध होता है। ग्राम आदिके वर्णनमें सरोवर आदिके भी उल्लेख हैं। कविने ऋतुओं, दिन-रात्रिके विभिन्न

प्रहरो, और अनेक विष क्रीडाओंके सुंदर, स्वाभाविक, सजीव एवं मार्मिक वर्णन किये हैं। यह सामग्री विविध दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। ससेपमें जानकारी इस प्रकार है :—

**देश वर्णन**—वीर कविने अपनी रचनामें तीन देशोंका विस्तारसे वर्णन किया है—मगध, पूर्व-विदेह तथा विध्य। इनमें मगध देशका वर्णन सर्वप्रथम तथा सबसे विस्तारसे और संगोपांग रीतिसे किया गया है ( १.६. १६से १.८.१-८ )। इस संदर्भमें मगधकी समृद्धि, वहाँके नर-नारी, गृह-प्रासाद, नदी-सरोवर और उद्यान तथा ग्राम, उपवन, और खेतोंका अत्यंत सजीव वर्णन उपलब्ध होता है।

**नगर वर्णन**—‘जंबूसामिचरिउ’में क्रमशः राजगृह, पुंडरीकिणी, वीतशोका, नर्मपुरपत्तन और संवाहन नामक नगरोंका वर्णन किया गया है। पुंडरीकिणी नगरीका वर्णन विस्तारसे उपलब्ध होता है ( ३.१.२०से ३.१.१ तक ), जिसमें नगरकी बाह्याभ्यन्तर रचना और नागरिकोंके सुखद जीवनका आकर्षक वर्णन है। अग्नय राजगृहकी नारियोंकी सुंदरता और नागरिकोंकी समृद्धि, नर्मपुरके लोगोंका धार्मिक जीवन और संवाहन नगरके व्यापारिक कारोबारका मनोहारी वर्णन उपलब्ध होता है।

**ग्राम वर्णन**—ग्रामों और खेतोंका बहुत कुछ चित्र कविने बहुधा देश वर्णन करते समय खींच दिया है, जो मगधदेशके वर्णनमें भी देखा जा सकता है। काव्यमें ब्राह्मणोंके एक अग्रहार ग्रामका सुंदर वर्णन किया गया है ( २.४.७-१२ )।

**शैल वर्णन**—श्रेणिक राजाकी केरल देशकी और ससैन्य यात्राके प्रसंगमें वीर कविने कुलपर्वतका सजीव वर्णन किया है ( ५.१०.११-१५ )। कविने पर्वतके उन्मुक्त एवं स्वच्छंद पशु-पक्षी और वनस्पति जगतका चित्रण करते हुए, राजा श्रेणिकके स्वागत भावका आरोपण कर प्रकृतिका मानवीकरण किया है। कालिदासके हिमालय वर्णनकी तरह वीर कविने विध्य पर्वतको पूर्व और पश्चिम समुद्रोंका अवगाहन करके पृथ्वीके मापबंदके समान कहा है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।

पूर्वापरी तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ कुमार० १-१

गिरिविंशु दुग्गमसिंहव सरलवंसपव्वहिं अहिहिउ ।

पुब्बावरोवहिं चरवि घरपमाणवंडु व परिहिउ ॥ ( ५.८.२-३ )

हिमालयकी अपेक्षा विध्यके प्रति यह कथन अधिक उपयुक्त माना जा सकता है।

**अटवी वर्णन**—उपयुक्त संदर्भमें ही विध्य महाटवीका परिपूर्ण संगोपांग वर्णन निम्नलिखित दो पंक्तियोंमें पाया जाता है :—

गिरिनिष्कारकंदरविसम-सद्वरनियरवरिट्ट ।

रववहिरियवणयरसमिर विंज्जमहाइ दिट्ट ॥ ( ५.८.४-५ )

इसके उपरान्त ५.८.६ से १४ तक ती पंक्तियोंमें विध्यटवीके वृक्ष वनस्पतियोंका विशद उल्लेख है। ५.८.१५से २३ तक व्याघ्र, कोल, वन महिष, वानर, घूषड, बायस, शृगाल और शृगालीके फेत्कारसे आह्वान कर उनका पकड़े जाना, वन्य झरने और पत्तोंसे ढके हुए सर्प और भयानक विपरीते सर्पोंके फेत्कारसे प्रतीत होनेवाले वातानल, इस प्रकारके वन्य वातावरणका अति सटीक वर्णन है। इसके आगेकी पंक्तियोंमें कविका वर्णन इतना सजीव बन पड़ा है मानो अपने वर्णनके माध्यमसे उसने हमें सखरीर वहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया हो। अटवीके मोलोंका जीवन साकार रूपमें प्रदर्शित कर कविने श्लेष शैलीमें उसकी सुलना महाभारतकी युद्धभूमि, छंकानगरी, कात्यायनीदेवी और गौरी सहित महादेवके साथ सटीक रीतिसे की है ( ५.८.२५-३६ )।

१. जं० सा० ख० १.६.१६से १-८; ३.१.१३-१९ एवं ५.९.१-११ ।

२. जं० सा० ख० १.८.९ से १.१० राजगृह वर्णन; ३.२ पुंडरीकिणी वर्णन; ३.३.६-१० वीतशोका वर्णन; ५.९.१२-१७ नर्मपुर वर्णन और ८.३.५-१४ संवाहन नगर वर्णन ।

उपवन-उद्यान—बीर कवि-द्वारा किया हुआ मगधके उद्यानोका वर्णन आज भी सारे उत्तर और दक्षिण विहार प्रांतको सोमा और प्राकृतिक समृद्धिके सूचक विविध उच्चकोटिके आभोद्यानो, जंबू और मधुव वृक्ष पंक्तिभे, द्राक्षा लतामंडपों और मिथिला प्रदेशके चारों ओर आभवाटिकाओंसे घिरे हुए कमल सरोवरोक स्मृतिको नवीन कर देता है। एक समय था जब इस प्रांतके पश्चिम वास्तवमें अपने घरोंसे पायेय लेकर नहं चलते थे। राजमागोंके दोनों पार्श्वोंमें स्थित विविध फलोपवन तथा जामुन और महुएके वृक्षोंको फलोसे लदे लंबी कतारें उनके लिए सदैव पर्याप्त पायेय प्रदान किया करती थीं ( १.७.३-८ ) ।

वसंतागमन एवं नागरिकोंके उद्यान क्रीडार्थ गमनके संदर्भमें ( ४.१६ १-९ ) किया हुआ उद्यानवर्णन वहाँ अवतीर्ण साधव-श्री अर्थात् वसंतशोभा और उसके मदभाते वातावरणको पाठकके मनोमंडलमें अवतरित करता-सा प्रतीत होता है ।

नदी-सरिता—श्रेणिकके सैन्य प्रयाणके संदर्भमें ( ५. १०. ४-९ ) रेवा नदीका वर्णन पठनीय है इसमें कविवे रेवा नदीका सजीव चित्र खोचा है—कहीं सूर्यकी किरणोंसे तप्त हस्तिमूह उसमें स्नान का रहा होता है, कहीं टूट-टूटकर गिरते हुए जामुनके गुच्छे उसमें क्षुद्र लहरें उत्पन्न करते रहते हैं, तो कहीं उसमें गिरे हुए अकोल पुष्पोंकी गंधसे आच्छादित और गुंजार करते हुए दिखाई देते हैं। कहीं उसका प्रवा तटवर्ती प्रदेशमें बड़ी-बड़ी खदानें ( खड्डे ) खोद डालता है, तो कहीं उसमें क्रीडा करती हुई भीलनियों उत्तुंग, कठोर, सुपुष्ट स्तनोसे आहत होकर उसकी लहरें मानो टूक-टूक हो जाती हैं ।

ऋतु वर्णन—उहो ऋतुओंके वर्णनका विशिष्ट अवसर बीर कविको अपनी रचनामें उपलब्ध नहीं हो सका। अतः वसंत, श्राद्ध और वर्षाका वर्णन करके ही उसे सतोष करना पड़ा है ।

जं० सा० च० में वसंत ऋतुका सागोपाग वर्णन पाया जाता है। वसंत आनेपर रात्रिका क्षीण हो और दिनका बढ़ना, आसोपर और आना और कोकिलका कूकना, क्षुद्र जलाशयोंमें जलका घटना और गुलार पुष्पोंका खिलना, अतिमुक्तक, विचकिल तथा पलाश और किशुक वृक्षोंका फूल उठना तथा इनके साथ प्रोषित-वसिका, मानिनी नारी, कामुकजन, प्रवासी पक्षिक, मिथुनोका भूषण परिस्थाय, प्रियसंगमकी लालस तथा कामीजनोकी मतवाली अवस्था आदि मानवीय भावनाओंके साथ वसंतागमनका एकीकरण एक अपूर्व, अलौकिक आनदानुभूति प्रदान करता है ( ३. १२. १-१३ ) ।

श्रीष्म—बीर कविवे श्रीष्म ऋतुका सीधे-सीधे वर्णन न करके, जंबूके विवाहके संदर्भमें श्रीष्मकालीन जन-जीवनका एक दिवस प्रस्तुत किया है ( १८. १३. १-७ ) । तीव्र धूपमें पसीनेसे तर कामिनिशेके कपोलों, पर स्वेदकण झलकने लगते हैं। वे अपने सारे शरीरमें चंदनका गाढा लेप करती हैं। वैवाहिक-भोज आदिके अवसरपर लोच तिनकोके आसनोपर बैठकर जलकण चुघाते हुए चंबरो तथा सुगंधित जलसे भिगोये हुए बीजनोंसे शीतल सुगंधित पवनका सेवन करते हैं। सरोवरोका जल ईषत् उष्ण हो जाता है और तटवर्ती शिलाएँ सूर्यके तीव्रतापसे अग्निके समान गरम हो जाती हैं। द्रुंरु कंदनमें लोट-पोट होते हैं। भ्रमर, हृदीवरोमें छिप जाते हैं। असोके यूथ कीचडयुक्त जलमें लेट जाते हैं तथा मोमडल वृक्षोंकी छायामें जा बैठता है। यह वर्णन कितना सजीव और वास्तविक है ।

वर्षा—करुंटे और सर्पको अंतर्कथाके संदर्भमें ( ९. ९. ६ से ९. १०. ५ ) वर्षा ऋतुका यथार्थ चित्रण किया गया है। इस प्रसंगमें वर्षा ऋतुके आगमनपर आकाशमें घने बादलोंका लटक जाना, धूलिका घात हो जाना और ऐसी घनघोर वर्षा जिसमें जल-थल सब एक हो जाते हैं, एक वृद्धासे वर्षाऋतुकी तुलना कर उसका मानवीकरण, तालावोंकी मेंढ फोड़कर पानीका वह निकलना तथा सात दिनों तक निरंतर वृष्टिसे दग्ध ग्रामीणोंकी दशा आदिका अत्यंत मार्मिक व हृदयस्पर्शी वर्णन पाया जाता है ।

जं० सा० च० में उप-काल एवं सूर्योदय ( १०. १८. ७-१२ ), मध्याह्न ( ८ १३. १-७ ), तथा संध्या, सूर्यास्त, प्रदोषकाल रात्र्यागमन, अंधकार एवं चंद्रोदय ( ८. १४. ४-२१, ८. १५. १-१५ ) आदिके भी दोषक वर्णन उपलब्ध होते हैं ।

उषःकाल एवं सूर्योदय—कर्म-रज और मोहविचारके नाशसे वैराग्य एवं आत्मबोधका जो अदृष्टपूर्व प्रकाशमय सूर्य विद्युच्चरके मनमें उदित हुआ है, उसीके प्रतीक और विव-प्रतिविवभाक्से किया हुआ वर्णन विशेष पठनीय है। अपराद्ध संख्या-सूर्यास्त और रात्र्यागमनके वर्णनकी विशेषता यह है कि संख्याकाल और रात्र्यागमनके अवसरपर कामियोके मनमें कामराग बढ जाता है और प्रिया मिलनकी आकांक्षा तीव्र हो उठती है; पर इस संदर्भमें इससे सर्वथा विपरीत घटना घटती हुई दिखाई देती है। जंबूत्वामोने विवाह किया, पर अपनी अप्रतिम सुंदरी बधुओंमें आसक्त न होकर, उसने मुक्तिरूपी अलौकिक बधूमें अपना ध्यान लगाये रखा। अतः मानी संख्याका आना निष्फल हुआ और उसकी बधुओंके हाथ लगी निराशा तथा चिर वियोग। इन कोमल भावनाओंके परिप्रेक्ष्यमें उपर्युक्त संदर्भ दृष्टव्य है।

रात्रि और चंद्रोदय—का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण शैली तथा मानवीय भावनाओंके उद्दीपनकारक रूपसे पाया जाता है (८.१५.१-१५.५)। रात्रिके आगमनपर अभिसारिकाएँ काले वस्त्राभूषण पहनकर निकलती हैं। इतिकाओंका गमनागमन प्रारंभ होता है। दीपक जलाये जाते हैं और चंद्रोदय होनेपर प्रोपित-यतिकाओंके हृदय विरहानिसे जल उठते हैं, अतः वे कंचुकियाँ चारण कर लेती हैं। सारा जगत् मानों चाँदनीसे नहा जाता है, अथवा मानों क्षीरसागरमें तैरने लगता है और क्रमुद खिल जाते हैं। यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण होनेपर भी यथार्थ है। अतः सजीव और मञ्जुर है।

अवतक जिन वस्तु व्यापार वर्णनोंका विवेचन किया गया है, उनमें प्रकृति प्रवाह है और उसे विविध मानवीय भावनाओंके प्रतीक रूपमें चित्रित किया गया है तथा मनुष्यके वास्तविक क्रिया-कलापोंको केवल संकेत रूपमें ही ग्रहण किया गया दिखाई देता है। अब हम उन वस्तु व्यापारोंको देखें, जिनमें यथार्थ मानवीय क्रिया-कलापोंका वर्णन उपलब्ध होता है। इस वर्गमें नागरिकोंकी उद्यान-क्रीडा, जल-क्रीडा, रात्रिमें अपने-अपने शयनकक्षोंमें मिथुनोंको सुरत-क्रीडा, वैश्याओंके काम-व्यापार, हस्त्युपद्रव और तज्जन्य संक्षोभ, साधुओंके वर्षाओंके लिए राजाका सपरिवार, ससैन्य गमन एवं युद्धार्थ सेना सहित प्रयाण, सैन्यपड़ाव या छावनी तथा सेनाके-द्वारा नगर विध्वंस आदिके वर्णन रखे जा सकते हैं।

उद्यान क्रीडा—वसंत आ गया, मंदार आदि पुष्पोंकी मादक मंद मकरंदने संपूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लिया और नागरिकोंके जोड़े मस्तीके साथ उद्यान क्रीडाको निकले। इस संदर्भमें मिथुनोंकी पूर्ण स्तब्धता क्रीडाका साधुर्धन-गुण एवं वक्रोक्तिपूर्ण वर्णन ४.१७ एवं ४.१८ में पाया जाता है।

जल क्रीडा—इसी प्रसंगमें मिथुनोंकी जलक्रीडाका संभोग शृङ्गार एवं प्रसाद गुण पूर्ण वर्णन अत्यंत मनोहारी है (४.१९)।

वैश्याओंके काम-व्यापार—अर्द्धरात्रिका समय, सर्व प्रकारका कोलाहल श्रांत, प्रकृति स्तब्ध-नीरव-पहरेबारीकी 'जागते रहो' को पुकारें मौन, ऐसी घोर निःशब्दताकी बड़ीमें विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे वैश्या-वादमें से नगर भ्रमणको निकला। इस संदर्भमें वैश्याओंकी विविध चेष्टाओं, काम-व्यापारों एवं वैश्या जीवन-का अत्यंत यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है (९.१२.५-१९ एवं ९.१३.१-७)।

मिथुनोंकी सुरत-क्रीडा—वैश्यावाटसे निकलकर आगे चलनेपर विद्युच्चरने नागरिकोंके शयनकक्षोंमें मिथुनों-द्वारा पूर्ण विध्वंस भावसे की जाती हुई विविध प्रकारकी रतिक्रीडाको देखा। इसका अतिशय संभोग शृंगारपूर्ण वर्णन यहाँ देखा जा सकता है (९.१३.८-११)।

हस्त्युपद्रव—नागरिकोंके जोड़े अत्यानंद पूर्वक उद्यानक्रीडा (४.१७-१८) और जलक्रीडा (४.१९) पूर्ण करके शोघ्रतासे नगरको लौटनेकी तैयारी कर रहे थे कि श्रेष्ठ राजाका हाथी महावतकी मारकर भाग निकला और उसने चारों ओर महाविनाश, विध्वंस एवं यमलौलाका दृश्य उपस्थित कर दिया। इसका रोमांचकारी वर्णन जं० सा० १० में पढ़ा जा सकता है (४.२०-७ से ४.२१.६)।

हस्त्युपद्रव जनित जनसंक्षोभ—जं० सा० १० में हाथीकी विनाश-क्रीडासे भयस्त नागरिक संक्षोभ-

का भयावह दृश्य वर्णित है। मयानक भाग-दौड़ और कोलाहलकी स्थितिमें भी साहसी घूर्त कामुक अपना काम बना लेते हैं। कविका यह कथन बढ़ा ही मनोरञ्जक है ( ४.२१.७-१७ )।

( भगवद्दर्शनार्थ ) सैन्य प्रयाणकी तैयारी—एक जवानके द्वारा विमुलाचलपर समोशरण सहित भ० महावीरके शुभाभिनयकी आनन्ददायक सूचना पाकर श्रेणिकने अत्यंत प्रसन्न होकर भगवान्के दर्शनार्थके लिए चलनेकी तैयारी की और आनन्दभेरी बजवायी। इस भुज अवसरपर सैन्यप्रयाणकी तैयारीका सुंदर वर्णन है ( १.१४.५-१० )।

प्रयाण—इसी संलग्नमें पौरजनों सहित चतुरगिणी सेनाके भस्तीसे भरे प्रस्थानका दृश्य प्रस्तुत किया गया है ( १.१५.१-७ )। युद्धार्थ सैन्यप्रयाणकी तैयारीके वर्णनमें अविकान्ततया विविध सैन्य वाद्य-वादनका वर्णन किया गया है ( ५.६ )। उसमें बहुत कुछ वर्णन इसी विषयके पूर्वोक्त वर्णनके समान है। फिर भी एक अंतर देखा जा सकता है कि पूर्वोक्त ( १.१४.५-१० ) वर्णनको पलकर प्रसाद, प्रसन्नता एवं अल्पक माधुर्यको भावभूमि और वातावरण निर्माण होते हैं। यहाँ उसी वर्णनमें ओजकी प्रबल ध्वनि सुनायी देती है।

( युद्धार्थ ) सैन्य प्रयाण—गमिन्वक्ता मुनिके आदेशानुसार अपनी वाग्दत्ता विलासवतीके पिता केरलराज मृगाककी, विद्याधर रत्नशेखरके विरुद्ध, जो विलासवतीको बलात्कारपूर्वक अपनी बनाया चाहता था, सहायताार्थ श्रेणिकने सैन्य केरलकी ओर प्रस्थान किया ( ५.७.१-२५ )। ये पंक्तियाँ केवल सैन्य-प्रयाण नहीं बल्कि इस माध्यमसे ग्रामीण व नागरिक जीवन और साधारण लोगोंकी आजीविकाके साधनों पर भी बड़ा भर्त्सकीय प्रकाश डालती है।

सैन्य पड़ाव—विध्य देशमें पहुँचकर रेवा नदीके बूझोसे आच्छादित विस्तीर्ण तटवर्ती प्रदेशमें श्रेणिककी सेनाने पड़ाव डाला। जं० सा० च० में उसका संक्षिप्त वर्णन पाया जाता है ( ५.११.१-५ )। दूसरी ओर केरलके बाहर शत्रु राजा विद्याधर रत्नशेखरकी सैन्य पड़ावका दृश्य वर्णित किया गया है ( ५.११.१०-१३ )।

प्रकृति वर्णन—प्रकृतिके अधिकांश अंग जैसे—खेत, उद्यान, सरोवर, सरिताएँ, अटवी और पर्वत तथा वनंत ग्रीष्म आदि ऋतुएँ और उषः, सूर्योदय, सूर्यास्त, रात्रि एवं चंद्रोदय आदि सबके वर्णन ऊपर दिये हुए संदर्भोंमें आ चुके हैं। यहाँ केवल खेतोंके दृश्य और सैन्य-प्रयाण आदिके समय उड़नेवाली झूलिके संदर्भ दिये जा रहे हैं।

खेतोंका वर्णन—जं० सा० च० में मगध देशके वर्णनके प्रसंगमें वहाँकी अतिसमृद्धता-सूचक शब्द संपत्तिका बिलकुल यथार्थ हृदयकर्षक एवं आनन्ददायक वर्णन प्रस्तुत किया गया है ( १.८.१-७ )।

झूलिका प्रसार—जं० सा० च०में श्रेणिककी सेनाके प्रयाणसे जो झूल उड़ी उसका ( ५.७.१-५ ), तथा युद्धके समय उड़ती हुई झूलिका सुंदर चित्र खींचा गया है ( ६.४.१०-११, ६.५.१-४ एवं ६.६.१-२ )। इन संदर्भोंमें आकाशमें उड़ती हुई झूलिका वर्णन उसके प्राकृतिक, मानवीकृत एवं अलंकार विधानके आलवन रूपोंमें किया गया है।

झूलि शात होनेका वर्णन—जं० सा० च० ६.५.१०-११ में मानवीकरण करके किया गया है।

प्रकृति चित्रणके विविध रूप—इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविने प्रकृतिके विभिन्नअंगोंका नाना रूपोंमें विस्तारसे चित्रण किया है, जिनमें प्रकृतिके उपदेशिका, आलंबन, उद्दीपन और अलंकारविधान, इन सभी रूपोंमें प्रकृतिका अत्यंत मनोहारी चित्रण उपलब्ध होता है। इन रूपोंमें प्रकृति चित्रणके कुछ संदर्भ यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) प्रकृतिका उपदेशिका रूपमें चित्रण—इसके प्रमुख संदर्भ ये हैं—जं० सा० च० १.६.११, २४-२५, १.७.१-३ ( भगवदेन वर्णन ) एवं ६.५.१०-११ ( झूलि शात होना )।

आलंबन रूपमें—प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में पाये जाते हैं जिनमेंमें कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :—१.७ ४-१४ (मगध), १.७ १-१० (राजगृह), ३.१.१३-२१ (पुष्कलावती), ३.२ (पुडरिकिणीनगरी), ३.३ ६-१० (वोतशोकानगरी), ४.१६ (उद्यान), ५.८ (विद्यावती), ५ ७ (विद्यप्रदेश), ५ १० ४-७ (रेवानती), ८.१३.१-७ (ग्रोष्म), ९.९.१-१४ तथा ९ १० १-५ (वर्षा वर्णन)। इन सब सदर्भोंमें प्रकृतिके आलंबन रूपका चित्रण किया गया है।

उद्दीपन रूपमें—प्रकृतिके उद्दीपन रूपमें चित्रणके उदाहरण अपेक्षाकृत अल्प हैं। इस विषयके शैली प्रसंग (३ १२.४.१६.७-१६) वसंतागमनसे संबद्ध है। इनमें प्रवासी पक्षियों और प्रोपित-पतिकाओं आदिके विरह, प्रिय मिलनकी तीव्रकामना, मानिनी प्रियाओका मानसंग, कामक्रीड़ाशिलाप आदि भाव-भावोंके उद्दीपनका हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है।

अलंकार विधान रूपमें—प्रकृतिका चित्रण द्विविध रीतिसे किया गया है—(१) मानवीकरण, जिसमें प्रकृतिके विविध अंगोंका सचेतन, संवेदनशील मानव रूपमें वर्णन पाया जाता है। उदाहरण हैं :—मगधदेश (१ ८ १-७), तथा कुरल पर्वतका समान मानवीकृत चित्रण (५.१०.१०-१५), एवं अस्तंगमनशील सूर्यका नायक रूपमें तथा पश्चिम दिशा और दिवसलक्ष्मीका नायिका रूपमें (८ १४ ८ व १३-१५), एवं समुद्रका मानव रूपमें चित्रण (८, १४ १०-११)।

उपमा व उत्प्रेक्षाकारिके उपमान-उपमेय रूपोंमें प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में उपलब्ध होते हैं, जिनके संदर्भ ये हैं—तरुणिके स्तन मंडलके सुखद संस्पर्शके समान मगध देशकी सुखदता, (१.६.१८), संवाह्य नगरका उपमाजोसे पूर्ण वर्णन, (८.३.५-१४), अंधकार (८.१४.१६-२१), तथा चंद्रोदय और ज्योत्स्नाके उपमा व उत्प्रेक्षाकार युक्त वर्णन, (८ १५.५-१४), वर्षागमनकी वृद्धा स्त्री से उपमा (९ ९.७-८) एवं उषा तथा सूर्योदयके रूपकालंकारसे अलंकारसे अलंकृत वर्णन (१०.१८.७-१२)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बीर कविने उपयुक्त नामा रूपोंमें प्रकृति चित्रण करनेमें अपना भरपूर कला-कौशल प्रदर्शित किया है।

## (घ) शैली-विश्लेषण

‘जंबूसामिचरिउ’ में अनेक पात्र आये हैं, पर चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे चरितनायक जंबूके भवदेव, शिवकुमार और जंबू तथा सुचमके भवदत्त, सागरदत्त और सुचर्मा ये तीन-तीन जन्म, भवदेवकी पत्नी मागवसू, जंबूके माता-पिता और उसकी चार बधुएँ तथा उसके साथ दीक्षा लेनेवाला विद्युच्चर एवं कल्पित प्रतिनायकके रूपमें हंसद्वीपका राजा रत्नसेखर, इन पात्रोंके चरित्र महत्त्वपूर्ण हैं।

नायक जंबूस्वामी—इनका चरित्र-चित्रण पाँच जन्मोंकी कथा द्वारा किया गया है। इनसेसे दो बार स्वर्गमें देवताके रूपमें अन्य इस दृष्टिसे निरर्थक हैं। अतः प्रस्तुत कृतिमें भवदेव, शिवकुमार और जंबूके रूपमें नायकके चरित्रका क्रमशः उद्घाटन और विकास किया गया है।

भवदेव, भवदत्त और नागवसु—एक वेदपाठी ब्राह्मणपुत्रके रूपमें भवदेव एक साधारण व्यक्तिके वेशमें हमारे सामने आता है। अत्यंत सुंदरी-भरपूर नवयौवना नागवसुसे उसका विवाह हो ही रहा था कि बड़े भाई भवदत्त, जो बारह वर्षकी अवस्थामें ही भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर द्रोक्षित हो गये थे वे उसे प्रव्रजित करनेकी सुनिश्चित मनोभावनासे उसके घर आये। भवदेवने मुनिका उचित स्वागत उत्कार किया और नगरके बाहर तक उन्हें छोड़नेके निमित्तसे उनके पीछे-पीछे चला। अन्य लोग लौट आये। भवदेव भी मनमें शेष वैवाहिक रीतियों और नागवसुकी अधूरी शृङ्गार-सज्जाको पूर्ण करनेकी कल्पना करता हुआ घर लौट चलनेकी सोचता रहा। पर अग्रजके स्वयं अनुमति न देनेसे सज्जा और सम्मान वश लौटा नहीं। मुनिसंघमें जाकर भाईकी सम्मान रक्षा हेतु उसने वेमनसे दीक्षा ले ली और बारह वर्षों तक एक ओर सुंदर पत्नीके साथ नामा प्रकारके कामयोगीकी मुखद कल्पनाएँ और दूसरी ओर ऊपरी रीतिसे व्रतोंका

पूर्ण निर्वाह करते हुए जीवन व्यतीत करता रहा। मुनि संवके दुबारा भ्रमके निकट आने पर उसके द्विविध अंतर्द्वेषमें इन्द्रिय सुखोंकी वासनासे उसे पराभूत कर दिया और वह पत्नीसे मिलने घरकी ओर चल दिया। राहमें चलते हुए बारह वर्षोंकी दीर्घ अवधिमें पतिके बिना पत्नीका क्या हुआ होगा?, क्या वह कुल-धर्ममें स्थित रही होगी अथवा जीवनके वर्षाभूत होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा?, आदि अनेक विकल्प उसके मनमें आते रहे। गाँवके बाहर एक मंदिरमें ही नागवसूसे भेंट हो गयी। परन्तु इवर भवदेवका बारह वर्षोंका मुनि जीवन, और उघर नागवसूकी घरमें रहते हुए व्रतोंकी साधना। इससे उनका दैहिक सौंदर्य और जीवन न जाने कहाँ चिलीन हो गये थे। नागवसू एक जरा-जीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत होने लगी थी। अतः वे दोनों परस्परको पहचान नहीं पाये। भवदेव मुनिके द्वारा अपने माता-पिता व पत्नीके संबंधमें जिज्ञासा करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया। उसने मुनि चरित्रसे डिगते हुए भवदेवको धर्ममें स्थिर करने हेतु सङ्गुपदेश दिया, जिससे भवदेवकी आत्म-विवेक उत्पन्न हो गया। उसने मुनि संघमें आकर आचार्यसे सब कुछ निवेदन कर दिया और अपनी आलोचना की व प्रायश्चित्त किया। इसके पश्चात् उसने कठोर तप किया और मृत्युके उपरांत दोनों साईं स्वर्गमें देव हुए। इवर नागवसू भी आर्याका (साध्वी) हो गयी और तपोमय जीवन व्यतीत करने लगी।

भवदेवके इस जीवन चरित्रमेंसे हम देख सकते हैं कि यद्यपि मुनि होनेके पश्चात् भी दीर्घकाल तक वह इन्द्रिय सुखोंका चिंतन करता रहा, तथापि उसने धर्मका परित्याग नहीं किया, और मुनि जीवनकी भर्मावायोंका ऊपरी तौरसे ही क्यों न हो, पूर्ण पालन करता रहा और जब वह धर्मसे डिगनेको हुआ तथा ऐसा आभास होने लगा कि अब उसकी जीवनधारा सदाके लिए बदलकर ही रहेगी, तब उसकी पत्नीने ही उसे हस्तावर्लंबन देकर डूबनेसे बचा लिया। जिन परिस्थितियोंमें भवदेवने मुनि धोखा ली, वे प्रत्येक सहृदय सामाजिककी संपूर्ण सहानुभूति भवदेवकी ओर अनायास खींच लेती हैं, और अग्रज भवदत्तके इस कार्यसे कुछ क्षणोंके लिए ही सही, उसके मनमें एक वितृष्णा-सी उत्पन्न हो जाती है। भवदत्तका यह कार्य अवधौषके सौंदर्यमय काव्यमें बुद्धके द्वारा नंदकी धोखाके प्रसंगसे पूर्णतः भेल रखता है।

भवदत्त—ठीक विवाहके समय ही वैवाहिक जीवनका रंचमात्र भी सुख देखे बिना अनुजको 'उसकी इच्छाके सर्वथा विपरीत मुनि बना लेनेमें पाठकको पहले पहल भवदत्तकी परम कठोरताका आभास होता है। पर जब हम धार्मिक विद्वानोंकी पूंछभूमिमें भवदत्तके इस कार्यको वीलकर देखते हैं, तो अनुजको संसारके अनंत आवागमनके चक्रसे छुड़ाकर उसके शाश्वत-कल्याण (भोक्ष-प्राप्ति) की दृष्टिसे भवदत्तका यह कार्य उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न किये बिना नहीं रहता।

भवदेवको बोध देनेका एकमात्र प्रसंग जो कि काव्यकी संपूर्ण कथावस्तु और नायकके चरित्रोत्कर्षकी सबसे सहृदयपूर्ण घटना है, नागवसूके चरित्रका एकाएक उद्घाटन कर देता है। नागवसूका यह कार्य भारतीय नारीके चरित्रकी युग-युगोंके लिए सर्वोच्च स्थानपर प्रतिष्ठित कर देता है। नागवसूके इस कार्यने अव.पतनके गर्तमें गिरते हुए एक सामान्य विषय लोलुप व्यक्तिकी त्रिलोकपूज्य ऋषि बना दिया। इसी प्रकारकी एक घटना हमें उत्तराव्ययनमें पढ़नेको मिलती है, जिसके अनुसार साध्वी राजीमतीने अरिष्टनेयिके चचेरे भाई रघुनेमिकी पतनके भ्रान्त गर्तमें गिरनेसे बचाया। नागवसूका यह चरित्र भारतीय नारीके जीवनका सर्वोच्च आदर्श रहा है। भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जबकि नारीने न केवल गृहस्थ जीवन, जो मनुष्यके वृहत्तर जीवन एक अंग मात्र है, बल्कि युद्ध और मृत्यु एवं तप-साधना तक सभी क्षेत्रोंमें सदैव पुरुषकी अनुगामिनी-सहयोगिनी बनकर भोक्ष प्राप्ति पर्यंत स्वयंके और पतिके जीवनको उठाया है। तुलसीको संत कवि तुलसी बनानेमें नारीकी ही प्रेरणा निहित है, यह विदित तथ्य है। इसी लिए 'यशोधरा'के कविकी पीठा यह नहीं कि बुद्धने स्त्री-पुंशको छोड़कर संन्यास क्यों लिया? बल्कि उसकी

वास्तविक वेदना तो यह है कि बूढ़ने यशोधराके अनजाने यह क्यों किया ? यदि वे यशोधरासे कहकर जाते तो क्या यशोधरा उनके पथकी बाधा बनकर खड़ी होती ? नहीं ! वल्कि निज मनके इस दीर्घल्यने कि कहीं मैं न फँस जाऊँ, उन्हें ऐसा करनेको प्रेरित किया होगा । इस प्रकार नागवसूका जीवन चरित्त गारी जीवनके उच्चतम आदर्शका प्रतीक है ।

सागरदत्त-शिवकुमार—भवदत्त और भवदेवके स्वर्गिक जीवनके संबंधमें कुछ विशेष कथ्य नहीं है । जब वे दोनों स्वर्गसे आकर दो राजाओंके सागरदत्त और शिवकुमार नामक पुत्र हुए, तो सागरदत्त एक भुनिका उपदेश भुनकर दीक्षित हो गया और बीताशोक नगरोंमें जहाँ शिवकुमार उत्पन्न हुआ था, उसे दोष देने गया । शिवकुमारको इस बार मुनिके दर्शन करते ही अपना पूर्वमन्त्र स्मरण हो आया और वैराग्य हो हो गया । फिर भी माता-पिताके आग्रहसे घरमें ही रहकर बारह वर्षों तक नाचना करके वह पुनः स्वर्ग गया और विद्युन्माली नामक देव हुआ । मुनि सागरदत्त भी समाधिमरण करके स्वर्ग गये । यहाँ शिवकुमारके जीवनमें अंतर्द्वंद्वका अभाव पाया जाता है । युवावस्था तक निर्द्वंद्व भावसे सारे राजमुख और इन्द्रिय नोग भोग कर मुनिदर्शन माग्यसे सहवा उसे दोष हो जाता है और वह घमंसावनामें लग जाता है ।

सुधर्मा और जंबू—स्वर्गसे आकर सुधर्मा एक विद्वान् ब्राह्मणपुत्र हुए और मंहावीरके दर्शनसे बोध प्राप्त कर उनके शिष्य बन गये तथा उनके निर्वाणोत्पत्ति बारह वर्ष तक मधके प्रधान रहे । उबर विद्युन्माली देवने राजगृहीमें अर्हद्वास सेठके घरमें जन्म लिया और उसका नाम जंबूस्वामी रखा गया । बाल्यकालसे लेकर मोक्षगमन पर्यंत जंबूस्वामीके जीवन-चरित्तमें वे सारे गुण उपलब्ध होते हैं जो महाकाव्यों और नाटकोंके धीरोदात्त नायकोंमें कहे गये हैं । सर्वसम्पन्न घगनेमें उत्तमन्न अग्रतिम और अपूर्व रूपलक्ष्मीके जन्मजात धनी, लोगके अनुराग और कामिनियोंकी अनयायान आसक्तिके अद्वितीय आलंबन, गंभीर स्वभावी, महासत्त्व, स्थिर प्रकृति, दुर्बलता और अत्यंत विनयशील तथा कृतज्ञ होनेपर भी अदम्य स्वाभिमान ! ऐसा वर्णित किया है धीर कविने जंबूके जीवनको । वसंत ऋतु आनेपर अनेक मिश्रोंके साथ सरोवरमें कामिनियोंके मध्य जंबूकी जलक्रीडाके वर्णनसे उसके जीवनमें युवावस्था सुलभ रसिकताकी प्रतीति होती है और वचपनसे ही बूढ़के समान एकांतप्रिय वैरागी न दिखला कर, कवि सहृदय पाठकों को नायकके जीवनके साथ समरस होनेका अवसर प्रदान कर उसे साधारणीकरणकी रगारमक अनुभूति करानेमें सफल हुआ है । जलक्रीडाके अवसरपर राजहस्ति-के उपब्रवका वर्णन कर कविने अत्यंत कुशलतासे जंबूके धीर्य गुणको प्रकट किया है । दिलासवतीके राजा श्रेणिकसे परिणयकी भविष्यवाणी, हंसद्वीपके विद्याधर राजा रत्नशेखरका उसके लिए दुराग्रह और कन्याके पिता भृंगक-द्वारा उसके आग्रहको ठुकरानेके प्रसंगोंकी स्व-कल्पना प्रसूत सृष्टि करके कवि एक प्रतिनायककी योजना करनेमें सफल हुआ । इसी प्रसंगकी लेकर कविने केरलमें राजा भृंगक तथा विद्याधर रत्नशेखरकी सेनाओंमें युद्ध होनेका विस्तारसे वर्णन करते हुए अंतमें जंबूस्वामी और रत्नशेखर, और राजा श्रेणिकका सेना सहित केरलकी ओर प्रयाण, रास्तेमें सैन्य पडाव तथा युद्धमें जंबूकी विजय दिखलाकर नायकके चरित्तमें लौकिक दृष्टिसे भी परमोत्कर्ष दिखलाया है, और उनके शूरीवृत्ता और क्षमाशीलता इन दोनों गुणोंका पूर्ण उद्घाटन किया है । युद्ध-विजयके उपरांत केरलसे वापिस लौटते समय राजगृहीके बाहर ही उद्यानमें सुधर्मा मुनिके दर्शन, धर्मोपदेश और पूर्वभक्तयनसे जंबूको एकदम वैराग्य हो जाता है । माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं मिलती, प्रत्युत जंबूको चार कन्याओंसे विवाह करना पड़ता है । परंतु यहाँ कवि नायकके मनमें किसी प्रकारका अंतर्द्वंद्व नहीं दिखलाता क्योंकि पूर्व संस्कारोंके कारण प्रव्रज्या लेनेका उसका निश्चय अटल होता है । फिर भी विवाह होता है और कामदेवकी रतिके समान अपूर्व रूप-यौवन संपन्न वयुर्षे अपने हाव-भाव विलास और अंग-प्रत्यंग प्रदर्शन, गीत, हास्य आदिके द्वारा जंबूकी रतिमुखमें डूबनेका भरपूर प्रयास करती है । कथनोपकथन होते हैं, पर जंबू अविद्य रहता है । यद्यपि लेकर जंबूके मोक्षगमन पर्यंत कथावस्तु सीधे-सीधे तीव्रतासे फलागमकी ओर बढ़ती हुई नायकको फलप्राप्ति होनेपर पूर्ण होती है ।

विद्युच्चर—यह एक प्रकारसे जंबूस्वामीका सहयोगी पात्र तथा रचनाका उपनायक है । जन्मः



राजपुत्र, कर्मसे चोर और वेद्यान्यसनी, इस रूपमें विद्युच्चर पाठकों सामने आता है और चोर बनकर जंबूस्वामीके घरमें प्रवेश करता है। वहाँ बर और वधुओंके बीच होते हुए कथा वार्तालापको सुनकर ठहर जाता है और उसे सुनते-सुनते उसका चित्त बदल जाता है। जंबूकी जाग्रत तथा चिंताविवृत भाँ उसे देख लेती है। दोनोंकी वार्ता होती है। विद्युच्चरको जंबूका मामा बनकर जंबूकी भाँ उसे पुत्रके सामने उपस्थित करती है। एक चोर, दूसरी भविष्यत् केवली, ऐसे अद्भुत मामा-मानजोके मध्य कथा संवाद प्रारंभ होता है। पहले दार्शनिक चर्चा और फिर वही लोक कथाओंका सिलसिला। विजय होती है जंबूकी। विद्युच्चर अपने असली रूपको प्रकट कर जंबूका चिर अनुगामी गिष्य बन जाता है। विद्युच्चरके हृदय परिवर्तनकी यह घटना अनायास एक ओर हमें महर्षि वाल्मीकिके जीवन चरितका स्मरण कराती है, दूसरी ओर अपने द्वारा हत्य किये हुए मनुष्योंकी गिनतीके लिए उनकी एक-एक अगुली काटकर, उसकी माला पहिननेवाले भयानक दस्यु अंगुलिमाल एवं महात्मा बुद्धकी भेंटका, जिसकी परिणति उस नर-पिशाच अंगुलिमालके लोकपूज्य अर्हत् अंगुलिमाल बननेमें होती है। जंबूके साथ दीक्षा लेनेके उपरांत विद्युच्चर जैन सघके एक प्रमुख अर्हत् बने और इन्हीं परंपराानुसार जंबूके पश्चात् ग्यारह वर्षों तक संघके प्रधान भी रहे। साधु जीवनमें उन्होंने अनेक भयानक उपसर्गोंको अविचल भावसे सहन किया और दीर्घ तपस्या कर स्वर्गमें देव रूपसे उत्पन्न हुए। विद्युच्चरका यह जीवन इस बातकी उच्चतम स्वरसे घोषणा करता हुआ प्रतीत होता है कि महापुत्रवोकी संगति वह दिव्य पारस है जो निकृष्टतम लोहेके समान नराधमोंको भी अपने स्पर्श मात्रसे त्रिलोक पूज्य महात्मा बना देता है।

रत्नशेखर—प्रतिनायकके रूपमें कीर कविने रत्नशेखरको धीरोद्धत नायकके गुणोंसे संपन्न व्यक्ति वर्णित किया है। वह अन्यायसे बलपूर्वक श्रेणिकके निमित्त प्रदत्त कन्याको प्राप्त करना चाहता है और साम, दाम आदिसे उपलब्ध न होनेपर युद्ध ठान देता है। शस्त्र युद्धमें भृगाकको जीत न पानेपर माया युद्ध-द्वारा भृगाकको बाधकर कैद कर लेता है। यह समाचार मिलनेपर जंबूस्वामी उसे ललकारते हैं और उसे सब प्रकारके युद्धमें पराजित कर अंतमें बांध लेते हैं और नगरमें ले जाकर क्षमा कर देते हैं। रत्नशेखर भी सारे वैर विरोधको भूलकर जंबूस्वामीका भक्त और भृगाकका मित्र बन जाता है। रत्नशेखरका यही संक्षिप्त चरित हमें प्रस्तुत काव्यमें उपलब्ध होता है।

जंबूस्वामीकी चार वधुएँ—विवाहके पूर्व ही यह जान लेनेपर भी कि जंबूस्वामीको वैराग्य हुआ है और वह दीक्षा लेनेवाला है, चारो वधुओंने भारतीय आदर्शके अनुकूल उसीसे विवाह किया। उन्हें विदवास था कि हमारा यह अप्सराओं-जैसा दिव्य और अनुपम रूप-यौवन जंबूको आकृष्ट करके अपने पाशमें बांधनेमें अवश्य सफल होगा और यदि हम लोग जंबूस्वामीको न जीत सकें तो भी हम उन्हींकी अनुगामिनी बनकर उन्हींके साथ दीक्षा लेंगी। विवाह हुआ और चारो वधुओंने नारी सुलभ जो-जो हाव-भाव-विलास आदि काम चेष्टाएँ हो सकती हैं, सभी कुछ किया। इन सबका जंबूपर कोई प्रभाव न पड़ता देख अंतमें अपने कथा-कौशलके द्वारा उसे वैराग्यसे पराङ्मुख करनेका मनोवैज्ञानिक यत्न किये। पर जब इसमें भी जंबूने उन्हें प्रतिक्रियानकोके द्वारा निरस्त और मूक कर दिया, तो वे शांत होकर बैठ रही और प्रातःकाल होनेपर जंबूके प्रतिक्रियानकोके द्वारा निरस्त और मूक कर दिया, तो वे शांत होकर बैठ रही और प्रातःकाल होनेपर जंबूके साथ ही दीक्षा ले ली। इस प्रकार उन्होंने जीवनपर्यंत पतिके मार्गका अनुसरण-अनुगमन किया। भगवद्देवके जन्ममें उन परिस्थितियोंमें नागवधूने जिस आदर्शकी स्थापना की थी, उससे कुछ भिन्न परिस्थितियोंमें जबकि एक लीन संभावना यह अवश्य थी कि जंबूस्वामी गृहस्थीमें रह सकें, युवावस्थाकी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंके अनुसार इन्द्रियसुखकी भावनाओंसे प्रेरित हो चेष्टाएँ भी, वे सब करके जब वे हार गयीं, तब अंतमें उन वधुओंने जो उसी आदर्शका पालन किया। फिर वे जंबूके मोक्षमार्गको यात्रामें बाधक बनकर खड़ी नहीं हुईं। भारतीय नारीके इसी सर्वोच्च आदर्शकी वीर कविने पाठकोंके हृदयपर बार-बार अधिकाधिक दृढ़तासे छाप लगाने चाही है, अक्षित करना चाहा है और हृदयकी अधिकतम गहराइयोंमें अमिट रेखाओं-द्वारा उत्कीर्ण कर देनेका सत्प्रयास किया है।

शिवकुमारके माता-पिता—ने उसे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं दी थी और मोहवश उसे घरमें ही रहकर तप-साधना करनेकी पूर्ण सुविधा प्रदान की। माँ-बापका अपने इकतीने पुत्रके प्रति न जाने कितना मोह, असीम वास्तव्य और अनंत मनोभावनाएँ आवद्ध रहती हैं। परन्तु फिर भी जब पुत्रको अलौकिक मोक्ष-साधनाके मार्गपर चलना हो तो वे उनमें बाधा तो नहीं देते, लेकिन पुत्र बाँवोंके सामने रहे यह भावना और तज्जग्य संतोष कितना महान् होता है इसे प्रत्येक माता-पिताका हृदय समझ सकता है। वही शिवकुमारके माँ-बापने किया। इससे वे हमारी सङ्ग अनुमति समवेदना आरुह करते हैं।

जँवूके माता-पिता—शिवकुमारको वैराग्य हुआ था तब, जबकि वह एक प्रकारसे राज्यवैभव और यौवन, संपत्तिके सारे सुख भोग चुका था। जँवूने यौवन सुप किसे कहते हैं, यह जाना तो अवश्य था, पर भोगा नहीं, तभी उसे ससारसे विरक्ति हो गयी। चार कन्याओंसे विवाह वचनसे ही निश्चित किया जा चुका था। फिर भी जँवूके समझानेसे उनके माता-पिताने धैर्य धारण कर लिया और कन्याओंके घर जँवूको वैराग्य उत्पन्न होनेका समाचार भिजवा दिया, जिससे कन्याओंका संबंध अन्य योग्य वरसे किया जा सके। पर यह नहीं हो सका। कन्याओंके स्वयंके आग्रहके कारण जँवूके माता-पिताको उसे विवाह कर लेनेका कहना पड़ा। जँवूने प्रव्रज्या लेनेके अपने पूर्ण निश्चयपर अटल रहते हुए भी विवाह करना स्वीकार किया। विवाह हुआ जँवू अङ्गि रहे।

जँवूकी वधुओंके बीच कथोपकथनके अंतरालमें उसको माँकी मनोदशाका कविने अत्यंत मनोवैज्ञानिक और मार्मिक चित्रण किया है। प्रातःकाल जँवूने दीक्षा ली, सायंमें वधुओं तथा माता-पिताने भी। यह पढ़कर अनुभव होता है, मानो जँवूके चरितके क्रमिक उत्थानके साथ-साथ उससे संबद्ध अन्य ध्यक्तियों अर्थात् माता-पिता एवं वधुओंके चरितमें भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष जाता गया है। शिवकुमारने घरमें रहकर ही तप-साधना की थी, पर उसकी पत्नियों, माता-पिता किसीकी धार्मिक साधनाओंका कोई उल्लेख हमें नहीं मिलता। परन्तु जब शिवकुमारने अंतिमकेवली होनेवाले जँवूस्वामीके रूपमें जन्म लिया, तब उसके माता-पिता और वधुएँ भी मानो उसीके साथ उन्नत हो गये और जँवूके साथ इन सवने भी जिनदीक्षा स्वीकार कर ली। सब है पुत्र और पत्नीकी भौतिक आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ माता-पिता-पत्नीका भी सर्वतोमुखी उत्थान, उन्नति, विकास स्वाभाविक और अनिवार्य है। यही वह संदेश है जिसे कवि अपनी संपूर्ण रचना और चरित-चित्रणके माध्यमसे देना चाहता है।

इन प्रमुख पात्रोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में कुछ और भी पात्र आये हैं—जैसे राजा श्रेणिक, विद्याधर गगनगति, राजा भृंगक व उसकी विलासवती कन्या तथा अणादिय नामक यक्ष। इनके चरित-विवलेपणके संवधमें बहुत अल्प सामग्री जं० सा० च० में उपलब्ध होती है, अतः इनके विषयमें कोई विवेक कथ्य नहीं है।

अथ यदि चरितचित्रणकी दृष्टिसे जं० सा० च० के विषय-वर्णनका विवलेपण किया जाये तो हम देखेंगे कि जँवूस्वामीके विवाह और वधुओंके जँवूस्वामीको वधमें करनेके प्रयत्नोपर आकर जं० सा० च० की आठवीं सवि समाप्त होती है और वास्तवमें इतना ही इस रचनाका श्रेष्ठ काव्य रसात्मक अंश है। सवि ९ और १० में अनेक अंतर्कथाओंके द्वारा जँवूके विवेक और वैराग्य-भावकी दृढ़ता प्रकट की गयी है और १०वीं सविके १९ से २४ तक कुल पाँच कडवकोंमें जँवूका दीक्षासे लेकर मोक्षगमन पर्यंतका सारा वृत्तांत कह दिया गया है। सवि १०, कडवक २५ से लगाकर, ११वीं सविके अंत तक मुनि विद्युच्चरपर घोर उपसर्ग, आरह भावनाओं-द्वारा उपसर्ग-विजय और समाधिभरण करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्गगमनका वृत्त कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बीर कविने अपने कथ-पात्रोंका चरित्र-चित्रण रचनाके उत्कृष्ट भागमें किया है, और धर्मसंबंधी चर्चाओं व तप-साधना आदि जो कि सर्वमाधारण पाठककी तबिके विषय नहीं है, उन्हें बहुत अल्प स्थान दिया है। इस कारण इनकी रचनामें आखोपात कही भी शुष्कता व नीरसता नहीं आ पाती और संभवतः "पायवधुवत्तल्लु जणहो विरइज्जत्त कि इयरे" ( १४.१० ) तथा "सरिसर-निवाणठिउ वहु वि जलु सरमु नु तिह मणिज्जइ। योवत्त करयत्तु विमलु जणिण अहिलासें जिह पिज्जइ।"

( १५१०-११ ) वीर कविकी इन पंक्तियों तथा 'काव्यं यद्यनेऽर्ज्वरते व्यवहारविदे निवेतरक्षतये । कान्ता सम्मितयोपदेनयुजे' मम्मटाचार्यकी इस कारिकाका यही हेतु था जिसे सफ़लीभूत करनेमें हमारा कवि बहुत दूर तक सफल हुआ है ।

### (ङ) रस-भाव योजना

जंबूसामिचरितके परिशालनसे जात होता है कि यह एक प्रेमाट्गानक महाकाव्य है । अन्वयोपकृत सीदरमंद महाकाव्यके समान इन काव्यका प्रारंभ भी बड़े भाईके द्वारा छोटे भाई भवदेवके अतिच्छापूर्वक दीक्षित कर लिये जानेसे प्रिया-वियोगजन्य विप्रलम्भ शृंगारमे होता है । काव्यमें विप्रलम्भशृंगार रस-योजनाकी दृष्टिमें उच्चकोटिका माना जाता है । भवदेवके प्रेमकी प्रकृता और महत्ता इसमें है कि जैन संघके कठोर अनुशासनमें दिगंबर मुनिके वेपथे बड़े भाईको देखनेमें नहने हुए भी तब जैन मुनिके अतिठोरे आचारका पालन करते हुए भी उसने बारह वर्षोंका दीर्घम्भ अपना पत्नी नागवसूके रूप चित्त सदा उसीके ध्यानमें बिता दिये । उपाध्यायो-द्वारा पढाये जानेपर उसे एक अक्षर नहीं आता था, और वह निरंतर अपनी सुंदर पत्नी नागवसूके अंग-प्रत्यंगोका स्मरण-विवतन करते हुए यही मोत्रता रहता कि अब वह कैसी होगी ? और वह धन्य-दिवस कौन-सा होगा जब मैं प्रियाका गाढ आलिंगन करके उसके साथ यथेच्छ सुरत-मुख भोगूंगा ? इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये और मुनिबंध पुनः उसके गाँवमें आया । उस समय एक और भवदेवका पत्नीसे मिलकर विषय-भोग करनेका अदम्य उत्साह न भूषी और अपनी मुनि अवस्था, और तीसरे मुनि जीवनको कलंकित करनेवाले उसके कु-आचरणसे उसके अग्रज भवदत्तको कैसी महान् लज्जा उत्पन्न होगी, इसका विचार, इन प्रेय और श्रेय-वृत्तियोंका द्वंद्व काव्यमें अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है । अंततः भवदेव गाँव की ओर चला दिया । गाँवके बाहर मंदिरमें ही पत्नीसे भेंट हो गयी, परंतु वयोपासनासे क्षीणकाय होनेसे वह उसे पहचान नहीं सका । नागवसूने अपने माता-पिता दोनों साईं, और अपनी पत्नीके विषयमें पूछताछ करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया कि यह मुनिवर्मसे विचलित भवदेव है । उसने तुरंत निश्चय किया कि मैं इसे बोध देकर धर्ममार्गमें स्थिर करूँगी । अपने इस निश्चयमें वह पूर्णतया सफल रही, और भवदेव बोध प्राप्त कर उसी क्षणसे सच्ची तप-साधनामें लग गया । इसी स्थलसे भवदेवके श्रद्धा उत्थान प्रारंभ होता है, जो क्रमशः जंबूसामीके रूपमें जन्म लेकर अंतिम कैवल्यज्ञानी हुआ, और मोक्ष लाभ कर परमात्म-पदको प्राप्त हुआ । नागवसूका यह कार्य इस चरितमें एवं भारतीय नारीके इतिहासमें उसे अतंत्र महान् पद प्रदान कराता है कि वह एक पतनोन्मुख सामान्य विपयलोभुनी मानवकी विलोकपूज्य परमात्मा अवस्था तक उठानेमें हेतुभूत हुई । वासनामय होनेपर भी परमप्रेमकी परम वैराग्यमें यह परिणति, परिवर्तन व स्थानांतरण और उदात्तीकरण एक ऐसी मन-वैज्ञानिक घटना है जो अनेक भारतीय ऋषियों, मुनियों संतों व तुलसी जैसे महाकवियोंके जीवनमें घटित हुई है, जिसके कारण ही उन्हें वह पद प्राप्त हुआ है, जिसपर वे आज विराजमान हैं । जब प्रेमपात्रसे निराशा होती है, तो वह व्यक्तिके वैराग्योन्मुख करती है, ऐसा आधुनिक मन-वैज्ञानिकोंका भी अभिमत है । इस काव्यका प्रारंभ प्रेमसे होकर उसकी चरम परिणति परम वैराग्यमें हुई है । इस दृष्टिसे इसमें नागवसूका महत्त्व सर्वोपरि है, और उसका जीवनवृत्त अत्यल्प होते हुए भी उसके इस एक ही कारणसे उसे इस चरितकाव्यकी नायिकाका पद प्रदान कराया है ।

इस प्रकार विप्रलम्भ शृंगारसे काव्यका प्रारंभ होकर, शातरसमें पाठकोंको शांति प्रदान करता हुआ यह चरित-काव्य अमृतपयस्विनी गंगाकी धाराके समान विभिन्न रसों रूपी घुमावो और मोड़ोंमें होता हुआ अंतमें शांतरसके सुधा-सागरमें परिणत हो जाता है ।

वीर कविने अपनी इस रचनामें प्रमुख रूपसे वीर, वीरत्स, रौद्र, भयानक एवं शांत रसोंकी योजना की है । अद्भुत, करुण एवं हास्य रसात्मक अंश भी काव्यमें विद्यमान हैं, परंतु वे बहुत अल्प हैं, और उनमें रस अपने पूर्ण उत्कर्षको प्राप्त नहीं हो सके हैं । उन अंशोंमें रसकी अपेक्षा उनके स्थायी और संचारी भावोंका ही प्राधान्य दिखाई देता है । कविने स्वयं भी अपनी रचनाको 'शृंगारवीर-रसात्मक महाकाव्य'

कहा है। भयानक, रौद्र एवं वीरस्य रक्षोकी योजनापर यदि गहराईसे विचार किया जाये तो प्रतीत होगा कि वे वीर-रसके पोषक-रस रूपसे यहाँ नियोजित हुए हैं। 'घातरस' काव्यका केंद्रीभूत रस है। इस प्रकार शृंगार, वीर और शान्त तीनों समान रूपसे काव्यके प्रधान रस माने जा सकते हैं। संदर्भोंके परिप्रेक्ष्यमें सहज संक्षेपमें इस प्रकार देखा जा सकता है :—

**शृंगार रस**—महाकवि वीरने प्रेमियोंके हृदयमें संस्कार रूपसे वर्तमान रति या प्रेमको रसावस्था तक पहुँचाकर उसमें आस्वाद योग्यता उत्पन्न की है। कविने शृंगार रसकी पूर्णता संयोग या संभोग शृंगारमें न मानकर विप्रलम्भ शृंगारमें मानी है। अस्तुतः वियोगाग्निमें तपनेपर ही प्रेममें उत्कटता और उत्कर्ष आते हैं। अतएव वियोगावस्थामें पात्रके जैसे उद्गार अभिव्यक्त होते हैं, वैसे संयोगावस्थामें नहीं। अस्तुतः काव्यमें कविने भवदेवकी दाम्पत्यविषयक रतिका सजीव चित्रण किया है। विरक्त होनेपर भी भवदेव अपनी पत्नीके आकर्षणको भूल नहीं सका। साधना करते समय भी उसका मन नागवसूके लंग-प्रत्यंगकी रूप-मुष्पमके चित्तनमें लगा रहता है। वीर कविने इस प्रसंगमें विप्रलम्भ शृंगारके अभिलाष, चिंता, स्मृति आदि अंगोंका सरस वर्णन किया है (२-१४-१५)।

जंबूस्वामी युवा होनेपर नगर भ्रमणके लिए निकलते हैं। इस प्रसंगमें वीरने जंबूस्वामीको देखकर काम विह्वल होती हुई नगरकी नारियोका रोचक वर्णन किया है (४.११)। यहाँ दर्शन अन्य पूर्वराग नामक शृंगार रस है, तथा कुमारके अनुपलब्ध होनेसे इसमें विप्रलम्भका भाव घनीभूत हो उठा है।

जंबूस्वामीकी भावी वधुओं—चार श्रेष्ठि-कन्याओंके सौंदर्यका शृंगार पूर्ण वर्णन भी रस परिपाककी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है (४.१३)।

बसंत ऋतुका आगमन हुआ। नागरिकोंके जोड़े उद्यान-क्रीडाके निमित्त बाहर निकले और रस विभोर हो क्रीडाभोगमें डूब गये (४.१७-१८)। उद्यान क्रीडाके उपरांत जलक्रीडाका वर्णन है (४.१९)। इन दोनों प्रसंगोंमें संभोग शृंगारका परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार सूर्यास्त एवं संध्याके आगमनपर (४.१४) विप्रलम्भ शृंगार, एव विवाहके उपरांत वधुओंकी काम चेंप्राओं (८.१६) और वैश्यावाटके वर्णनमें (९.१२) वीरने संभोग शृंगारका सविशेष वर्णन किया है।

**वीर रस**—वसंतोत्सव मनाकर जब लोग अपने-अपने घरोंको लौटनेकी तैयारी कर रहे थे, उसी समय राजाका पट्टहासी मेंढकी मारकर भाग निकला और उसने चारों ओर सहाविनाश तथा मृत्युका दृश्य उपस्थित कर दिया। जंबूस्वामीने अपने पौरुषसे उस दुष्ट हाथीको अपने वशमें कर लिया। नायककी वीरताका वर्णन इस हस्तिविजयके प्रसंगमें वीर रसके अनुरूप हुआ है (४.२१)। इस संदर्भमें हस्ति आलंबन है उसके द्वारा कुमार-पर प्रहार उद्दीपन है, कुमारका युद्धार्थ उद्यम अनुभाव है और अमर्ष-आदि संचारी है। त्यागो भाव कुमारका हस्तिविजय विषयक उत्साह है।

इसी प्रकार रत्नशेखरकी राजसमामें उत्तेजक और अपमानकारक बातें कहनेके कारण राजाके आदेशसे जब विद्याधर भटोने जंबूकुमारको चारों ओरसे घेर लिया उस प्रसंगमें (५.१४.१२.२४) भी वीर रसकी सुंदर योजना की गयी है। संधि ६ और ७ में प्रचुरतासे वीर, रौद्र एवं वीरस्य रसोंका समावेश हुआ है। जं० सा० च० ६.४.४—९; १५.५—१०; ६.६३—८, ६ एव ६.९, में केरलमुप मुगांक और रत्नशेखर विद्याधरकी सेनाओंके बीच युद्ध वर्णन, तथा ६.१०.५-१४ एव ६.१३ में रत्नशेखर एव गमनगति विद्याधरोंके बीच युद्ध; ७.७ में जंबूस्वामी और रत्नशेखरका परस्पर आह्वान, ७.९ व ७.१० में इन दोनोंका युद्ध इत्यादि सारे वर्णन वीर रस पूर्ण हैं। ७.६ में दडक रूपमें वीर, वीरस्य एवं भयानक रसोंका एक साथ बहुत अच्छा संयोजन हुआ है।

**रौद्र रस**—केरलराज मुगाकने जब विद्याधर रत्नशेखरको अपनी विलासवती नामक कन्या देनेसे सर्वथा अस्वीकार कर दिया, तो रत्नशेखरने क्रुद्ध होकर केरल पुरीको घेर लिया और वहाँ सर्वनाश एव

महाप्रलय जैसा दृश्य उपस्थित कर दिया (५३)। चीरने यह वर्णन रौद्र रस युक्त किया है। यहाँ स्थायी-भाव रत्नशेखरका क्रोध है, आलंबन विभाव कन्याका प्राप्त न होना है, उद्दीपन विभाव मृगांक-द्वारा उसका अपमान आदि है; सेनाकी उग्रता, आवेग, मद एवं गर्व आदि अनुभाव हैं, तथा अमर्ष इत्यादि संचारी भाव हैं।

रौद्र रसका एक और उदाहरण वहाँ उपलब्ध होता है, जब जंवृस्वामी दूतके सहाने रत्नशेखरकी छावनीमें घुसकर उसके समक्ष पहुँचे और जाते ही नाना प्रकारसे उसे बुरा-भला कहा, निंदा व भर्त्सना की और अपमान करने लगे। यहाँ प्रतिनायक रत्नशेखरका रौद्ररस-मय वर्णन दर्शनीय है (५१३-१४-१५)। यहाँ भी स्थायी भाव क्रोधके साथ आलंबन विभावके रूपमें जंवृस्वामी है। उद्दीपन विभाव जंवृकी वप एवं अपमान पूर्ण कटु उक्तियों हैं। बाँझोका लाल होना, बोट काँपना, मुल लाल हो जाना, कंठका स्तम्भ होना, स्नेह जाना, बोट काटना, नासपुटोंका भयानक रूपसे फड़कना आदि अनेक अनुभाव हैं; और अमर्ष आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार ५१४-६-११ में भी इसी संदर्भमें रौद्र रसकी सुंदर योजना बन पड़ी है।

भयानक रस—और और रौद्र रसोका पोषक रस है भयानक। ज० सा० च० में युद्ध वर्णनके प्रसंगमें भयानक रसके संयोजनके कई उदाहरण हैं, जैसे ६७४-७; ६१०-१-४, ७१४-१०-१४, ७१४-१०-२२; ७१५-१४; एवं ७८७-१२। आगे चलकर असती विषयक अंतर्कथ्यके संदर्भमें (१०-९१-३) भी भयानक रसकी आश्रित्य पूर्ण योजना हुई है। इन संदर्भोंमें स्थायी-भाव भय है। आश्रयपात्र कायर सैनिक एवं नीच पुरुष आदि हैं। आलंबन-विभाव शत्रु सैनिक हैं, और उद्दीपन विभाव उनके द्वारा किया जाता हुआ भयानक शत्रु संहार है। शत्रुओं और कायरोंका झवर-ठवर बिखर जाना, पलायन करना आदि अनुभाव हैं; एवं श्रास, शंका, संभ्रम तथा मृत्यु आदि संचारी भाव हैं।

वीररस रस—ज० सा० च० में वीररस रसके बहुत थोड़े-से उदाहरण पाये जाते हैं। विद्युच्चक्र महा मुनिके ऊपर बैठी उपसर्गका वर्णन (१०-२६-१-४) वीररस रस पूर्ण है। चंग नामक सुनार-पुत्र रानीके द्वारा बुलाये जाने पर उसकी शीघ्रता पर जाकर बैठा ही था कि राजा युद्ध विजय करके लौट आया और चंगको निकालनेके सब मार्ग अवरोध जानकर रानीने भयके मारे चंगको गृह कूर्ममें डाल दिया (१०-१७४, ६-८)। यह वर्णन भी वीररस रसात्मक है। इन संदर्भोंमें स्थायी भाव जुगुप्सा; दुर्गंध युक्त विषा, मौस, चर्बी आदि आलंबन तथा उद्दीपन विभाव हैं; आँखें बंद कर लेना आदि अव्यक्त अनुभाव हैं, एवं मोह, व्याधि, आवेग, मरण आदि संचारी भाव हैं।

करुण रस—ज० सा० च० में करुण रसकी योजना कई स्थानोंपर योग्य रीतिसे हुई है। नवदत्त-भवदेवके पिताकी मृत्यु और उनकी माँ के जीवित ही पिताने जलकर सती होनेका प्रसंग अत्यधिक कारुणिक है। उसमें करुण रसका पूर्ण परिष्कार हुआ है (२५-११-१७)। इस संदर्भमें स्थायी भाव शोक है, आलंबन विभाव माता-पिता, उद्दीपन उनका विर वियोग, रोदन आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार शिशुमारकी मुनिदर्शनके निमित्तसे पूर्व-भद्रका स्मरण होने पर, उसके सहना मूर्च्छित हो जानेसे, उसके अंतर्मुखी अवस्था (३७४-७) एवं माता-पिताकी अवस्थाका वर्णन (३८१-४) भी करुण रसात्मक है। सुप्रसंगिक दर्शन एवं धर्मोद्देशको सुनकर जंवृजो मंथारसे वैराग्य हो गया और उसने नकि समझ अपनी दोषा लेनेको इच्छा प्रकट की। इस प्रसंगमें मंथी अवस्थाका वर्णन अत्यंत करुण रस पूर्ण हुआ है (८७-११-१४)। जंवृके दोषा लेनेसे निश्चयको जानकर पंचमी आदि कन्याओंके पिताओं तथा स्वजनोकी जैसी अवस्था हुई, उसका विप्रण (८१०-१५); तथा एन और, प्रतापकाल होनेपर जंवृके दोषा लेनेकी प्रभावना एवं दूसरी ओर, वधुशोक प्रसिद्ध बाह्य होनेको धीरे धीरे, इन अंतर्द्वंद्वमें पड़ी हुई जंवृस्वामीकी नाकी अवस्था (९१४-६-१०, ९१५-१५) और जंवृके दोषा लेनेपर उनके माता-पिता दोनोंकी दुःख अवस्थाका अत्यंत दर्शनपूर्ण वर्णन पाया जाता है (९१८-६)।

अद्भुत रस—ज० सा० च० में अद्भुत रस, जैसे भगवान् के दर्शनपर जे विष्णुनामो देवता लागन

(२.३ २-४) एवं श्रेणिककी राज सभामें गगनगति विद्यावरका आकाश भागसे अकस्मात् प्रवेग (५.२.१-५), ये वर्णन अद्भुत रसके उदाहरण रूप रहे जा सकते हैं ।

वात्सल्य रस—वात्सल्य या वत्सल रसके संबंधमें साहित्याचार्योंमें पर्याप्त मतभेद है । भोजराज (११ श० ई० पूर्वार्द्ध) ने स्पष्टतः वात्सल्यको एक स्वतंत्र रस माना है । उद्भट (८-९ श० ई०) तथा वट्ट (९ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नामसे तो नहीं गिनाया, पर उनके 'प्रियस' भावकी मायत्ता वात्सल्य रसकी स्वीकृतिका आभास देती है । मम्मट (१२ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नहीं माना, पर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथने उसे स्वतंत्र रसका स्थान दिया है । जं० सा० च० से ऐसा प्रतीत होता है कि और कवि भी संभवतः वात्सल्यको स्वतंत्र रस स्वीकार करते थे । जं० सा० च० २९ १९-२०; ६ ११ ९-११ ६ १२.१-२, ४, एवं ७ १३ ६-७के वर्णन वात्सल्य रससे ओत-प्रोत है । इन प्रसंगोंमें स्थायी भाव है स्नेह, आलस्य है अग्रज भाई एवं अपने स्नेही संबंधीजन, उद्दीपन अपने इन स्नेहीजनकी प्रति गुणानुराग; अनुभाव रोमांच आदि, एवं संचारी भाव है हर्षोद्भागर । केरलमें रत्नशेखर विद्यावरको परास्त कर, उसके तथा मुर्गाक उसकी रानी व कन्या विलासवती एवं विद्यावर गगनगति आदिके साथ जंजूस्वामी कुहल-पर्वतके पास छावनीमें महाराज श्रेणिकसे आकर मिले । श्रेणिकने भरपूर वात्सल्य भावसे जंजूस्वामीका स्वागत किया (७ १३ ६-७) । यह प्रसंग वात्सल्य-रसका सागोपांग उदाहरण है । इसमें वात्सल्य-रसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभीकी अभिव्यक्ति अत्यंत स्पष्टतासे हुई है ।

शांत रस—प्राचीनकालके सभी प्रमुख संस्कृत-प्राकृत महाकाव्यों, नाटकों, व चरित्तोके समान जं० सा० च० की चरम-परिणति भृंगार, और आदि रसोंकी सरिताओसे होती हुई शांत रसके महासागरमें हुई है । इस दृष्टिसे विचार करनेपर हम देखते हैं कि आद्योपात्त संपूर्ण रचना शांतरससे ओत-प्रोत है, और समस्त रसोंके पीछे कहीं दूर, कहीं सन्निकट नैपथ्यमें-से शांतरसको अव्यक्त मधुर ध्वनि मानी बार-बार पाठकके कर्णपटोपर आकर झंझट होती रहती है । अतः स्वाभाविक रीतिसे शांत रसात्मक वर्णन रचनाके आदिसे अंत तक व्याप्त है ।

शांतरसका प्रथम सांगोपांग उदाहरण हमें इस संदर्भमें मिलता है कि सीधर्म नामक मुनि बर्द्धमान ग्राममें आये और उनका उपदेश सुनकर भववत्तकी वैराग्य हो गया और उसने गुरुके पास दीक्षा ले ली (२७) । अग्रजके द्वारा दीक्षित होनेके बारह वर्ष उपरांत जब कामवासनासे पीडित भवदेव पुन अपने गाँव आया, तब वहाँ स्वयं उसकी पत्नीने उसे बोध दिया । वह प्रसंग शांतरसका अत्यंत भासिक उदाहरण है (२.१७-१९) । इसमें भवदेवाश्रित शांत रसकी अत्यंत सुंदर अभिव्यक्ति हुई है । भवदेव १२ वर्षसे दीक्षित होकर तनसे योगी, पर मनसे भोगी था । नागवसुसे मिलन और वार्त्ता होनेपर उसने भवदेवकी वृत्तियोंको पहचान कर, उसे प्रतिबोध दिया । नागवसु-द्वारा निज रूप-योग्यकी दुरवस्था एवं विनश्वरता भवदेवके वास्तविक धाम ( शांत-निष्काम भाव ) का कारण बनी । नागवसुकी उद्बोधक उक्तिओने उपशम भावके उद्दीपनका कार्य किया । किसी मुनि या साधुके दर्शन उपदेश आदिने नहीं । १२ वर्षों तक मुनिसंघमें मुनि जीवनकी कठोर चर्याका पालन करते रहकर, आचार्योंके दिन-रातके उपदेश-संगति एवं सहवास आदिका जिस भवदेवके ऊपर रचमात्र भी प्रभाव नहीं पडा था, और ये सब निमित्त जो कार्य करनेमें सर्वथा असमर्थ रहे थे, भवदेवके कामरागको शांत कर, उसके ब्राह्मण्यमूल शम-भाव या शांत-भावको जाग्रत करनेका वह महान् कार्य धर्म-साधनामें रत, सच्ची धर्मपत्नीकी तप-पूत, सत्यपूत वाणीने कुछ ही क्षणोंमें कर दिखाया । इस प्रसंगमें (२.९) स्थायी भाव वैराग्य; आलस्य नागवसुका तप-कृत्य जरीर, उद्दीपन उसका सदुपदेश, रोमांच आदि अनुभाव तथा निर्वेद, ग्लानि, लज्जा आदि संचारी भाव हैं ।

आगे चलकर शिवकुमारकी वैराग्य ( ३८ ) जबूकी वैराग्य (८.७ ५-१०); वधुओंकी कामचेष्टाओसे जंजूके शम-भावका और अधिक उद्दीपन ( ९१ ), विद्युच्चरकी वैराग्य ( १० १८ १-२ ) एवं विद्युच्चरका

अनित्य, अशरण आदि १२ भावनाशोक चिंतन ( संवि ११ पूर्ण ), ये सब प्रसंग पाठकोको शांत रसका हृदयावर्जक वर्णन कराते हैं ।

रसोके उपर्युक्त विवेचनसे हमारा ध्यान स्वयं इस तथ्यपर आकृष्ट होता है कि वीर कविते जं० सा० च०में सभी रसोकी योजना सफलतापूर्वक की है, जिनमें शृंगार, वीर एवं शांत ये तीन रस प्रधान हैं । किसी रसका अतिरेक भी किसी काव्य-कृतिको रस हीन आस्वादहीन बना देता है । कवि वीरकी इस रचनामें कही भी यह रसातिरेक नहीं दिखाई देता । यही कारण है कि जं० सा० च०का पाठक विविध रसोकी मदाकित्तिमें अभिषिक्त होता हुआ स्वयमेव अपने संपूर्ण अहंको छोड़कर अपनी संपूर्ण आत्म-सत्ताको शांत रसके महासागरमें समर्पित होते हुए देखता है ।

रसाभास एवं भावाभास—रस-योजनाके साथ जं० सा० च०में रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशांति, भाव-संधि एवं भावशबलताके भी कुछ प्रसंग-उपलब्ध होते हैं ।

रसाभास—जल-श्रीडाके प्रसंगमें कामिनियोके द्वारा निर्जिव जलमें सुभग नायकके समान रति भावका आरोप ( ४.१९ २०-२१ ) होनेसे अनौचित्य है । अतः शृंगारभास है ।

विवाहोपरांत चारो वधुओके साथ जंबूस्वामी एकांत वासगृहमें परलग्नपर बैठे । वधुओंने उन्हें वैराग्यसे विमुख कर, भोगोन्मुख करनेके उद्देश्यसे नाना कामचैष्टाएँ करनी प्रारंभ की ( ८.१६.६-१५ ) । इस प्रसंगमें स्थायी, आलवन, उद्दीपन, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभी कुछ हैं, परंतु नायकके वैराग्योन्मुख होनेसे यहाँ अनुभयनिष्ठ रति रूपी अनौचित्य है, अतः शृंगार रसाभास है । रसकी दृष्टिसे उपर्युक्त दोनों संदर्भ काव्य-दोषोके समकक्ष हैं । परंतु एकमें प्रकृतिका भाववीकरण और दूसरेमें अत्यंत कामोत्तेजक वातावरणमें नायकके चरित्रकी दृढताका धोतन होनेसे ये प्रसंग दोषके बदले काव्यके अलंकार बनकर अभिव्यक्त हुए हैं ।

भावाभास—जंबूस्वामीका दीक्षा लेनेका दृढ निश्चय जानकर भी पद्मश्री आदि चार कन्याओंने अपने अद्वितीय अनुपम रूप-सौंदर्य और काम-कला-विलासके द्वारा जंबूको अपने बधुमें कर लेनेके विश्वाससे उसे एक दिन विवाह करके प्रातःकाल दीक्षा ले लेनेका प्रस्ताव किया । इस अवसरपर उन्होंने अपने पिताओके समक्ष कामवासनापूर्ण उद्गार व्यक्त किये । ( ८.१२.१-१५ ) । इस संदर्भमें पितृजनोके समक्ष रति भावका इस प्रकारका प्रदर्शन सर्वथा अनुचित है ।

यहाँ उद्दीपन-विभाव, अनुभाव एवं संचारियोके अभावके कारण शृंगाररसका भी परिपाक नहीं हो पाया है, और पितृजनोके समक्ष यह सब कहलवाना निश्चित रूपसे रति-भावाभास है । आलंकारिक या चरित्र विकासकी दृष्टिसे भी इस प्रसंगका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता ।

भावोदय—वनारसके राजाकी विरहिणी काम-पीडित रानीने चंग नामक सुंदर सुनार पुत्रको राजमार्गसे जाते देखा । उसे देख रानीका रतिभाव सहसा उद्दीपित हो उठा । उसी समय राजा युद्ध विजय कर लौट आया, अतः रानीका रति भाव रसावस्थाको प्राप्त नहीं कर सका । इसे भावोदयका दृष्टांत माना जा सकता है; और उपनायक निष्ठ होनेसे इसमें भावाभास भी है ।

भावशांतिका—उल्लूख उदाहरण है—नागवसूके बोधपरक मार्मिक कथनको सुनकर भवदेवके रति-का शांत होना ( २१ १८-१९ ) ।

अपनी सारी कामोत्तेजक चैष्टाओके उपरांत जंबूकुमारको सर्वथा निर्विकार देखकर वधुओके रति-भावकी शांति और दुःख एवं लज्जाका बोध ( ९ २.१-२ ) भी भाव-शांति एवं भावोदयका सुंदर दृष्टांत है ।

भावसंधि—इसी संदर्भमें जंबूस्वामीकी माँकी अवस्थाका चित्रण भाव-संधिका दृष्टांत है । जंबूस्वामी वासगृहके भीतर वधुओके साथ निर्विकार भावसे कथा सलाप करते हुए बैठे हैं । बाहर माँ व्यग्र है । पुत्रके प्रातःकाल दीक्षा लेनेकी प्रबल संभावनाके उद्बेगसे उसकी आँखोंमें नींद कहीं ? वह बार-बार घरके भीतर जाती, बाहर आती और कपाटोके छिद्रमें-से झाँककर देखती कि क्या कुमार अभी भी दृढ-प्रतिज है, क्या वधुओंको कुछ विद्या उपर चक्क पायो, क्या अभी भी वह मोक्ष-नाश चाहता है कि उसके गलेमें प्रियशब्द-बाहुपास पट गया ( ९ १४ ६-१२ ) ।

इस प्रसंगमें माँके हृदयकी परम निराशा प्रकट होनेपर भी उसमें आशाकी जो अतिशय, अव्यक्त शक्ति विद्यमान है, उससे इसे आशा-निराशा भावोंकी संधिका दृष्टात कहा जा सकता है।

**भावशयलता**—इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण १२ वर्षोंके उपरांत अवसर पाकर काम भोगकी इच्छासे मुनि भवदेवके घरकी ओर चलनेके प्रसंग ( २.१५ ७—१७ ) में मिलता है। उस समयकी उसकी मानसिक अवस्था और अंतर्द्वंद्व भावशयलताका सुंदर उदाहरण है। इस प्रसंगमें एक ओर भवदेवकी प्रबल भोगाभिलाषा तथा दूसरी ओर लज्जा, आत्मस्लानि, अग्रश्रेष्ठ गौरवके नष्ट होनेकी शंका, आत्मालोचन, पत्नीकी वर्तमान अवस्था, और १२ वर्षोंके पति-विहीन दीर्घकालके सर्वप्रथम यह आशंका कि न जाने इस बीच उसका आचरण कैसा रहा होगा ?, और इस दिगंबर मुनिके वेपमें नागवसू मुझे पहचानेगी भी या नहीं, यह सबेह, आदि अनेक संचारी भावोंकी एकत्र शयलताका यह अत्यंत सुंदर सटीक उदाहरण है।

**भावयोजना**—जं० सा० च० में भक्ति, प्रीति, प्रणय, रति एवं निवेदादि अनेक भावोंकी अभिव्यक्ति स्थान-स्थान-पर हुई है। काव्यका प्रारंभ मंगलाचरणके रूपमें देवता विषयक रति या भक्ति-भावसे होता है ( १. मं० १-१४ )। बीच-बीचमें भी कई स्थलों ( एवं ४.४ १०—१३ देव भक्ति; ८ ६ ४—१० गुरु भक्ति आदि ) पर भक्ति-भावकी अभिव्यक्ति पायी जाती है। राजा श्रेणिक-द्वारा भ० महावीरकी स्तुति ( १.१८ ) देवविषयक रतिका सुंदर उदाहरण है।

**पतिविषयक शुद्ध रति**—कुछ रोगसे आक्रांत होकर भवदत्त-भवदेवके पिता आर्यवसूने जीवित ही अपनेको अग्निको समर्पित कर दिया। एकनिष्ठ परम-पतिव्रता और पति-सर्वस्व, पति-प्राणा उनकी माँ सोमशर्माने भी अपने पतिको चित्तामें जीवित ही जलकर परलोकमें भी पत्निका अनुगमन किया ( २.५.४, ६, १५ )। यह प्रसंग पतिविषयक शुद्ध रतिका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। गिवन्नुमारके प्रति उसकी पतियोंके अनुरागका चित्रण भी इसीका एक और दृष्टांत है ( ३.७.५—६ )।

**भ्रातृविषयक रति**—भवदत्त और भवदेव दोनोंके रग-रगमें परस्परके प्रति-अनुराग भरा था, तथा उनमें शब्द और अर्थके समान अभिन्नता, असह एवं अविच्छेद्य संबन्ध था ( २.५.९ ), यह तथा आगेके दो और प्रसंग ( २.९ १९—२०, २.१०.९—१० ) भ्रातृविषयक रतिके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

**अन्य भाव**—अब तक चर्चित भावोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में अन्य भी अनेक भावोंकी अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरणार्थ—विस्मय ( २.३ २—३ एवं ३.६ ६—७ ), आशंका ( २.१३ ४ ) अत्यंत करुणापूर्ण दीनता-विवशता ( २.१३ ९ ); पतिविषयक निष्काम स्नेह ( २.१९ ३ ); खेद ( ३.३.१६ ); करुणाजनक जुगुप्सा ( ३.११ ३-४ ); सुंदर, युवा पतियोंके प्रति लुण्ण पतिकी ईर्ष्या व शंका ( ३.११.५—११ ), पत्नियोंका क्षोभ व खेद ( ३.११ १२-१३ ); देवभक्ति, श्रद्धा और दैन्य ( ३.१३.३-४ ); पद्मसाक्षात् ( ४.३ ४-५ ), उपहास ( ५.४ १२-१३ ), चित्ताका उतावलापन ( ५.५ १६-१७, ५.७.१६-२७ ); उत्साह ( ५.६ १६-१७ ) तथा वीरभाव पूर्ण गर्व ( ५.१२ २३-२५, ५.१३ १-८; ५.१४.१-५ ) आदि अनेक स्थायी एवं संचारी भावोंकी जं० सा० च० में आद्योपाद्य सुंदर रीतिसे योजना की गयी है।

### (च) अलंकार-योजना

जंबूतामिचरित्तमें प्रमुख रूपसे निम्नलिखित अलंकारोंका प्रयोग पाया जाता है :—अनुप्रास ( १ ), यमक ( २ ), श्लेष ( ३ ), उपमा ( ४ ), उत्प्रेक्षा ( ५ ), रूपक ( ६ ), निदर्शना ( ७ ), दृष्टांत ( ८ ), वक्रोक्ति ( ९ ), विभावना ( १० ), विरोधाभास ( ११ ), व्यतिरेक ( १२ ), सबेह ( १३ ), आतिशाय ( १४ ), सहोक्ति ( १५ ) एवं अतिशयोक्ति ( १६ )।

शब्दालंकारोंमें अनुप्रास और यमक अलंकारोंका प्रयोग पूरी रचनामें प्रारंभसे अंत तक हुआ है। मगधदेव ( १.६ १-७ ) तथा पुंडरिकिणी नगरी ( ३.२ ४-९ ) के वर्णन इस दृष्टिसे विशेष उल्लेखनीय हैं। पादांत यमकोंमें आन्धिक्य श्लेषके उदाहरण अत्यधिक संख्यामें उपलब्ध हैं।



अर्थालंकारोंमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकोसे रचना आद्योपात विभूषित है। कुछ विशेष संदर्भ इस प्रकार हैं—

उपमा—नाणम्मि फुरइ भुअणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे । (१ मं० १०); विजयंतु जए कइणो जाण वाणी भइट्ठुपुवत्थे । उज्जोइयवरणिगला साहयवट्ठि ज्व निव्वडइ (१ ६ ७-८) ।

मालोपमा—नीलकमलदल कोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीळा ललिए पत्तलिए (२ १५ ३) । अन्य संदर्भ : विघ्नाटवी वर्णन (५ ८ ३०-३५); भोजन वर्णन (८ १३ ९-१३, श्लेषगमित मालोपमा) । इन दोनों संदर्भोंमें एक ही उपमेयका विविध रीतिसे नाना उपमानों-द्वारा वर्णन किया गया है ।

उत्प्रेक्षा—डोल्लहरि व लग्गो कंठहें लग्गो वल्लहमुहचुंवणु करइ ।

थणरमणविडविणि का विनियविणि निव्वअणकेलिहि अणुहरइ ।

(वसंत ऋतुमें मिथुनकी उद्यान-क्रोडा ४ १६.११-१२)

अन्य प्रमुख संदर्भ हैं—कामिनिशोकी विह्वलता (४ ११ ४-५), नारी सौंदर्य वर्णन (४ १२ १५-१६; ४.१३.१-१६, तथा ४-१४ ७-८ (रूपक गमित उत्प्रेक्षा), मलयपवनका (उत्प्रेक्षाशोकी निरंतर-शृंखलाओं द्वारा) वर्णन (४.१५ १-५, ७-१६); फूला पलाश (४ १५ १५-१६) अलकावली (५ २ १७), धूलिका उडना (६ ४ १०-११, ६ ५ १०.१० एवं ६ ६ १-२), सवाहन नगर (८ ३ ६-१३); वर्षा ऋतु एवं वर्षा (९ ९ ६-१२); सध्या सूर्यास्त एवं रात्रि-आगमन और अघकार वर्णन, (८ १४ १०-२१); तथा चादनी (८ १५ ६-१४) । ये सब वर्णन उत्प्रेक्षालंकारके प्रयोगकी दृष्टिसे पठनीय हैं । इनके अतिरिक्त कामिनियोंकी जल-क्रीडाका उत्प्रेक्षामाला सदृश शृंखलामें पिरोया हुआ वर्णन (४ १९.८-१७, २१-२२) भी अवश्य पठनीय है ।

मालोत्प्रेक्षा—मालोपमाके समान मालोत्प्रेक्षाके भी अनेक प्रयोग ज० छा० च० में प्राप्त होते हैं । जंबूस्वामीका दीक्षा लेनेका निश्चय जानकर पद्मश्री आदि चार वाग्दत्त कन्याओंके माता-पिता-स्वजनोकी अवस्थाका मर्मस्पर्शी वर्णन (८ १० १-५) मालोत्प्रेक्षाके प्रयोगका बहुत सुंदर उदाहरण है ।

फलोत्प्रेक्षा—मालोत्प्रेक्षाकी तरह फलोत्प्रेक्षाका प्रयोग भी दर्शनीय है । (४ १४ ३-६)

रूपक—काव्यमें रूपकालंकारका प्रयोग आद्योपात सख्यातीत परिमाणमें हुआ है । इसके कुछ छोटे-छोटे उदाहरण हैं—नहमणि (१ मं० ५), क्षाणगि (१ १ ८) ससारसमुदुत्तारसेज (१ १ ४), भववयणकमल-कंदोद वधु (१ १ ८) एवं माणुसपसु, सम्मतनिधि, सिरकमलु, वयणसुहा, ससारतरणिणी, चरणजुयल-पंकयभसलु, जिणवरगरुड, विरहाणल, आदि ।

रूपकमाला—रूपककी तरह रूपकमालाके उदाहरण भी उपलब्ध हैं (३ ७ १२-१४) ।

निदर्शना—महाकवि कालिदासके अनुकरणपर कविका विनय प्रदर्शन (१ ३ ७-१०), नागवन्तुकी बोधप्रद वार्ता, (२-१८ ५-७) बालककी वृद्धि (४ ९ १-३), बालक (जंबूस्वामी) की कीर्ति (४ ९ १-१०) एवं जंबूस्वामी द्वारा रत्नपोखरकी आह्वान (५ १४ १-३) आदि स्थलोंमें निदर्शनाके उदाहरण दृश्य हैं ।

दृष्टांत—कविके आत्मनिवेदनकी निम्न पक्तियोंमें इस अलंकारका सुंदर प्रयोग हुआ है :—

कट्ठुजे कइ विरयइ एक्कमुणु अण्णेकट्टु पत्तजिब्वड निउणु ।

एकट्टु जे पाहाणु हेमू जणइ अण्णेकट्टु परिकमा तामु कुणइ । (१ २ ८-९)

वक्रोक्ति—वसंत महीनेमें मिथुनकी उद्यान क्रीडाके अवसरपर जंबूस्वामी और किसी कामिनीके मध्य वक्रोक्ति पूर्ण मवाद वटा हो चित्कार्पक और मधुर है (४ १८ १-३) ।

विभावना—जंबूस्वामीका जन्म हुआ तो कात्तिक न होनेपर भी आगवा निश्च हो गया, वर्षा न होने पर भी पृथि नान और वसंत न होनेपर भी मंगूर वनस्पति स्वयं फूल उठी (४ ८.१७-१८) ।

भ० महावीरका समोशरण राजगृहके विपुलांचल पर्वतपर आया और वनमालीने राजा श्रेणिकको आकर समाचार दिया—‘महाराज, आज असमयमें ही वनस्पति सब फल-फूलोसे समृद्ध हो उठी है, तालाबोंमें तटों तक भर आया जल हिलोरें भार रहा है, बिना बोये ही खेत नाना प्रकारके पके धान्यसे भरपूर हो गये हैं और बिना दुहे ही गायें प्रचुर दूध क्षरण कर रही हैं ( १.१३ ३-७ ) ।’ इन प्रसंगोंमें विभावना अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है ।

विरोधाभास—विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे कामलतावेद्याके घरसे वेद्यावाट छोड़कर निकला । इस प्रसंगमें वेद्यावाटका वर्णन विरोधाभासका एक विशिष्ट उदाहरण है ( १.१२ ७-८, १२ ) ।

व्यतिरेक—इस अलंकारके बहुत-से प्रयोग काव्यमें उपलब्ध हैं—जंबूस्वामीकी जीवन प्राप्ति ( ४ १ ७-८ ) नारी सौंदर्यका वर्णन ( ४ १७ १९-२२ ) पुनः नारी सौंदर्य ( ५ २ २०-२१, ८.५ ५-६ ); रत्न-शेखरकी वीरता ( ५ ११-१६-१७ ) तथा जंबूस्वामीके त्याग संनवी वर्णन ( १० १.९ ) ।

संदेह—जलक्रीडाके समय तैरती हुई किसी कामिनीके मुखको देखकर एक भ्रमर संदेहमें पड़ा रहा कि यह मुख है या कमल ( ४.१९.९ ) इसी प्रकारके मंगलाचरणकी निम्न पंक्तियाँ शुद्ध संदेहालंकारके उदाहरण हैं :—

सो जयठ जस्स जम्माहिसेयपयपूरपंडुरिज्जंतो ।

जणियहिमसिहरिसंको कणयगिरी राइओ सइया ॥

भमिरभुअवेयभामियजोइसगणजणियरयणि-दिणसंकं ।

इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं चार सुरवइणा ॥ ( १ सं० ३-६ )

भ्रातिमान—भृगाकराजाकी पुत्री और अपनी भागिनिया विलासवतीके सौंदर्यका संक्षिप्त वर्णन करते हुए गगनगति विधाचर कहता है—‘वह कन्या अपने विवाधरोके अपनी शुद्ध धवल दंतपंक्तिमें प्रतिबिंबित होती हुई कांतिको पहचान नहीं पाती । अतः उन्हें धवल बनानेके लिए बार-बार छीलती रहती है—न मुणइ रत्ताहर रंगगुणु जा छोलइ सुद्ध वि दंत पुणु ( ५ २ १८ ) ।

उद्यानक्रीडा करते समय किसी धूर्त नायकने अपनी भुग्धा नायिकाका प्रणयकोप दूर करनेके लिए कहा, ‘तउ सुइहो जणियसयवत्तभंति आवति निहालहि भमरपंति ।’ ( ४.१७ ६ )

सहोक्ति—चन्द्रोदयका सहोक्त्यलंकारमय वर्णन—‘जालियाउ गयवइहिययहिं सहुं उइउ नहंगण मयलंछणु लहु ।’

अतिशयोक्ति—काव्य रचनाओंमें अतिशयोक्ति एक सहज, सामान्य और सर्वाधिक प्रचलित अलंकार रहा है । वीर कविने भी जं० सा० च० में अनेक स्थलोपर प्रचुरतासे इस अलंकारका प्रयोग किया है । काव्यका आदि मंगलाचरण आद्योपात अतिशयोक्तिके भरपूर है । इसके कुछ अन्य संक्षिप्त उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—

समोशरणमें स्थित महावीरके विषयमें एक पंक्ति है :—

अलिउलकेसुब्भासियवरसिख दंतदित्तधवलियजयमंदिर । ( १ १७ ७ )

नारी सौंदर्य—निहिं आवरंछणु चंगइ दुक्कर पुज्जइ वियडनियंवइ ।

मसिणोरुयहिं जगु जि वसि किज्जइ नहदितिए महियलु कवलिज्जइ । ( २ १४.९-१० )

इसी प्रकार वीताशोक नगरीका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन पठनीय है ( ३.४ ७-१० ) ।

## (छ) विंब-योजना

काव्यालोचनमें विंब-योजना शाब्दिक दृष्टिसे आधुनिक है । परंतु कल्पनाकी अपेक्षा किसी भी काव्य-सिद्धांतके समान प्राचीन है । विंब-योजनाका अर्थ है कवि किसी वस्तुका नख-सिख, या द्रव्यगत भौतिक वर्णन न करके उसका एक भाव-चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है, जिसे ‘विंब’ नामसे अभिहित किया जाता है ।

विंव दो प्रकारके होते हैं, (१) एक तो स्मृति-जन्य जो पूर्वकालिक अनुभूतिका पुनरुत्पाद मात्र होते हैं, जैसे अपने किसी पूर्व-मित्रकी साक्षात् चित्रवत् स्मृति, जो उसकी गाल्बिक भावमय प्रतिमा हमारे मनमें निमित्त कर देती है, अथवा किसी नायक-द्वारा अपनी प्रियतमा नायिका और उसके विविध अङ्ग एवं भाव-भंगिमाओकी तीव्र स्मृति । (२) दूसरे प्रकारके विंव पूर्वानुभूत नहीं होते । वे कवि यो साहित्यकार-की निज नवनिमित्त और भौलिक कृति होते हैं । महाकवि कालिदास कृत मेघदूत इनका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है । यह नूतन प्रतिमा निर्माण या विंव विधान-समस्त काव्य-कला संगीत और नवनिमित्तका मूलाधार है । भाषा और चिंतनके मूल उपादान विंव ही हैं ।<sup>१</sup> 'जंबूसामिचरित' में ऐसे अनेक वर्णन उपलब्ध हैं, जिन्हें विंव-योजनाके अंतर्गत रखा जा सकता है ।

(१) ज० सा० च० १११ में कविने राजा श्रेणिकका नख-शिल्प वर्णन न करके उसकी शूरवीरता एवं प्रचंड प्रताप आदिके वर्णन द्वारा उसका एक भावात्मक विंव खींचा है ।

(२) इसी प्रकार आगे चलकर राजा श्रेणिकके सुंदर, सौम्य, रमणियोंके हृदयहारी एवं धर्म और न्याय-नीति परक रूपको जन्मोंमें प्रकट कर उसके कोमल एवं उदार व्यक्तित्वको प्रकट किया गया है ।

(३) इसी प्रकार केरलराज मृगाकके जंबू-राजा विद्याधर रत्नगोखरके प्रचंड तेजस्वी, कालके समान भयानक, महान् ब्रिक्काशकारी एवं अपराजेय व्यक्तित्वका भी यथार्थ विंव पाठकोके समक्ष खींचा गया है (५४.२०-२१, तथा ५-५.१-५) ।

(४) भवदेवने अग्रजकी लाज रखनेके लिए दीक्षा ले तो स्त्री, पर क्षण-भरके लिए भी प्रियतमा नागवसूका रूप उसके मानसपटले ओझल नहीं हुआ, और वह निरंतर नागवसूका जो भावात्मक विंव उसके हृदयमें दब गया था, उसीका स्मरण करता रहा (२.१४ ६-११) ।

(५) भवदेवके हृदयपर बने हुए नागवसूके एक और विंवका वर्णन (२.१५ १-२) ।

(६) 'बारह वर्षोंकी दीर्घ-अवधिमें मेरे वियोगमें नागवसूकी अवस्था कैसी हो गयी होगी' भवदेवकी इस चिंताका विंवात्मक वर्णन (२.१५ ३-४) ।

(७) श्रेष्ठिकी चार-भल्लियोंका अत्यंत सुंदर विंवमय वर्णन, कुल दो पंक्तियोंमें (३.१० १४-१५) ।

(८) गर्भवती माँकी अवस्था दिनोदिन कैसी होती जाती है, इसका सातिशय यथार्थ विंव (४.७.३-९) ।

(९) द्वितीयाके चंद्रमा, चलते-चलते महानदीके विस्तार, और पिंगल शास्त्रके फैलाव और व्याकरण-की व्याख्याओके समान दिन-प्रतिदिन बालक जंबूस्वामीके बढ़नेका विंवात्मक वर्णन । (४.९ १-३)

(१०) 'जंबूस्वामीके युवावस्थाके प्राप्त होनेके साथ-साथ उनके रूपगुणोंका यशोगान हर गली-कूचे, घर और बाहर, एवं चौक-चौरस्तेपर सर्वत्र गाया जाने लगा । उनके धवल-यशसे सारा-भुवन ऐसा धवलित हो उठा मानो पूर्ण चंद्रमाके ज्योत्स्ना रससे लीप दिया गया हो । सारे हाथो ऐरावतके समान, सब नदियाँ गंगाके समान, सभी पर्वत हिमालयके समान, सबके सब पक्षी हंसोके समान और सारी मणियाँ (ज्वेत) मणियोंके समान दिखलायी पड़ने लगी', बालककी यशोवृद्धिका यह मनोहारी विंवात्मक वर्णन (४.१०.३-७) ।

(११) जंबूस्वामीको देखकर पुर-नारियोंकी काम-विह्वल अवस्थाका विंव (४.११ १-१३)

(१२) इसी प्रकार जंबूस्वामीकी चार भावी बहुव्री पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री एवं लक्ष्मीका नख-शिल्प वर्णन विषयगत होते हुए भी उनके वर्ण्य अंगोंका कोई अपूर्व विंव पाठकोके हृदय-पटलपर चित्रित करता प्रतीत होता है (जं० सा० च० ४.१४.१-८) ।

(१३) केरल विजयसे लौटनेके उपरांत जंबुस्वामीके साथ अपनी कन्याओंका विवाह करनेकी उत्साह एवं आवुरता पूर्वक प्रतीक्षा करते हुए श्रेष्ठियोंने जब समाचारवाहकसे जंबुस्वामीके बोझा लेनेका निश्चय जाना, तो उनके हृदय करीतसे विदीर्ण किये-जैसे, अथवा विष-मग्नणसे मूर्च्छित-जैसे हो गये। सब लोग इस प्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे, जैसे इद्रके बच्चायुधसे भग्न किये हुए पर्वत, गरुडसे क्षपेटा हुआ सर्पकुल, सिंहके द्वारा विदीर्ण कुंभस्वल हरित-समूह अथवा तीक्ष्ण-परजुके द्वारा छिन्न की हुई गावाशोवाला वृक्ष हो जाता है। यह वर्णन भी विपद्यगत है, तथापि इतना अधिक भावमय है कि वह पाठकके हृदयपर ऐसा गहरा विष निर्माण करता है, जिससे पाठक स्वतः उन श्रेष्ठियोंके साथ एकाकार हो जाता है, और वह सहानुभूतिकी रसात्मक अवस्थाको प्राप्त हो जाता है (८१० १-५)। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि जं० सा० च० की रचनामें और कविने विष-योजनामें भी अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

### (ज) छंद-योजना

जंबुसामिचरिउकी रचना प्रमूख रूपसे १६ मात्रिक अलिखलह एवं पञ्चदशिका छंदोंमें हुई है। इनके उपरांत १५ मात्रिक पारणक-अथवा विसिलोय छंदका स्थान है। इनके साथ बीच-बीचमें अन्य छंदोंका भी प्रयोग हुआ है। अधिकांशतया वीर कविने समवृत्त मात्रिक छंदोंका उपयोग किया है। बाणिक छंदोंमें कुल पाँच समवृत्त छंदोंका प्रयोग मिलता है। विषमवृत्त मात्रिक छंदोंमें गायत्री छंदके विविध प्रकार, दोहा, रत्नमालिका, वस्तु एवं मणिखर केवल ये पाँच छंद पाये जाते हैं। पाँच स्थलोंपर इंडक-छंद भी उपलब्ध होता है। काव्यमें प्रयुक्त छंदोंका मात्रा तथा वर्णोंकी संख्यानुसार पहले समवृत्त, फिर विषमवृत्त, इस क्रमसे यहाँ विरलेपण किया जा रहा है :-

#### समवृत्त : मात्रिक

१. करिंकरभुजा ८ मात्रिक अंत ल ल ७-१०

(क) उदा०—विहडफडु अरि करिखंडोवरि।  
कडिडु विसहड थाहर न लहड। (७-१०-२०-११)  
अपवाद : (पंक्ति ५, १६, १७ में अंत ग ग)

(ख) ८ मात्रिक अंत ग ग २-९

उदा०—ता भवएओ कयसंखेओ।  
विणयविमीसो पणवियसीसो।  
घोसिरवत्थो जोडियहत्थो।  
सुषणसहाओ वाहिरि आओ। (२९ १५-१८)

अपवाद . पंक्ति १, ४, ६, १२ अंत ल ग।

२. दीपक १० मात्रिक अंत ग ल ४-२२

उदा०—संतेण ता मुक्कु वसि होवि पुणु थक्कु।  
जो नटु सुनरिडु पडिमिलिउ जणविटु। (४-२२-२३-२४)  
अपवाद . (पंक्ति १४, १८, १९, २१ व २२ अंत ल ल)

३. (?) १० मात्रिक त्रिपदी अंत रणि (-प-) १०-१९

उदा०—एम नदनवर्ण फुल्लफुल्लदलवर्ण वदियुव्वंतवो।  
खसंसपण्णयं मुणिगणाइण्णयं आसमं पत्तवो। (१०-१९ १५-१६)

४. खड्यं १३ मात्रिक अंत रण (-प-) ८-१-२

( सवि ८, कडवक २ से प्रत्येक कडवकका आदि छंद )।

उदा०—गृह तउ दंसणकारणं लहिवि वियप्पह मे मणं ।

सहं तुम्हेहिं समुच्चयं चिरमवि कहि मि परिच्छयं । (८.२-१२)

५. पारणक या विसिलोय (पद्धट्टिया) १५ मात्रिक अंत नगण (uuu)

१, २, ४, १२; २ ६—८, १०, १६—१८, २०; ३ १, ३, ७, ९, ५, २, ४; ८, ३—  
४, ९; ९, ३, ६—७, १८, १० १६.

उदा०—रसमार्वाहि रंजियविसयणु सो मुयवि सयभु अण्णु कवणु ।

सो चय गम्बु जइ नउ करइ तहा कज्ज पवणु तिहुयणु वरइ । (१ २.१२-१३)

अपवाद : ८ ९ ९—११ अंत जगण ।

६. (?) १५ मात्रिक अंत रगण (—u—) ४ ८.१२—१५

उदा०—अयालरुक्संतई तई पट्टिल्लिया वणासई सई ।

सुवण्णविट्ठोभासुरासुरा मुजति तत्थ सामुरासुरा । (४ ८.१४-१५)

७. पद्धट्टिया (पञ्चट्टिका) १६ मात्रिक अंत जगण (u—u)

१. ८, १४, २, ५, १३; २. ११; ४ ११-१२, १५, १७-२०, ५, ३, ७-८ (२४—२९, ३१—३६),  
११-१२, ६, २, ४—५, ८, ११—१३, ७, ७—९, १२, ८, ८, १०; ९. २, ९, १४, १०. १, ३,  
६-८, १०, १२-१३, १७, २१, २४-२५

उदा०—सरलंगुलि उम्भिवि जंपिएहिं पयदेइ व रिद्धिक्कुंविएहिं ।

देउलहिं विहूसिय सहहिं गाम सग व अवहण्ण विचित्तवाम । (१.८ ७-८)

अपवाद : उपर्युक्त अधिकांश कवकोमें एक-एक पंक्ति व किन्हीं-किन्हींमें २, ३ या ४ पंक्तियोंमें अंतमें सर्व लघु नगण (uuu) पाया जाता है ।

८. अलिल्लह १६ मात्रिक अंत ल ल १.६ (१५-२३), ७, १०—११, १३, १७, २. २, ४, १३—१५, ३. २, ६, ८, १२—१४; ४. १-४, १०, १३—१४; ५. १३; ६. १, १, ३, ९, १४, ७. १—३, ११, १३; ८. २, ७, ११—१६; ९. १, ४—५, ८, १०—१३, १५, १०. २, ४-५, ११, १४-१५, २०, २२-२३; ११ १-१५, (पूर्णसवि) ।

उदा०—जलगयकुंमथोरयणहारउ केणाविसोहियसियहारउ ।

उहयकूलट्टुमनियसियवसणउ जलखलह्लरवसज्जिय रसणउ । (१ ६ २२-२३)

अपवाद : अलिल्लहके अधिकांश कवकोमें एक-एक व किसी किसीमें २, ३, पंक्तियोंमें अंतमें दो गुरु (ग ग) पाये जाते हैं ।

९. सिंहावलोक १६ मात्रिक अंत मगण (u u-) ३ ५, ६. ६; ९ १६

उदा०—विधंति जोह जलहरसरिसा वाबल्लमल्लकण्णियवरिसा ।

फारक्क परोप्पह ओवडिया कोताउह कोतकरहिं सिडिया । (६ ६ ७-८)

१०. त्रोटनक १६ मात्रिक अंत ल ग १ ५; ४ ७, ८. ६

उदा०—पंचमिहिं वसंते पक्खे ववले रोहिणिट्ठि मयल्लणं विमले ।

पच्चूसे पसुय सलक्खणउ कुलमंगलु जयवल्लह तणउ । (४ ७.१०-११)

११. पादाकुलक १६ मात्रिक (क) अंत ग ल १.१; १ ३, २ १

उदा०—वरकमलालिगियचास्मुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति ।

तड्लोयसामि-समभित्तसत्तु वयणसुहासासियसयसत्तु । (१ १ ९-१०)

अपवाद : १. १ ७, १ ३ ३; २ १. ६, ७, १३ पंक्तियोंमें अंत ल ल ।

(ख) अंत ग ग ४. ६; ८. ५

उदा०—दिट्ठे जलणे जालइ कम्मं सालीछेत्तं लच्छीहम्मं ।  
सरवरदंसणे रयणाहारो उवहिष्ठ भवसमुद्दयपारो । ( ४.६.१२-१३ )

अपवाद : ४.६.९ अंत ल ग

(ग) अंत × १.१६; २.११; ३.१०; ४.९; ५.१०

उदा०—बहुकालेण थिराष्ठ सदस्तिष्ठ तिव्वयणभमि गमु सज्जित कित्तिष्ठ ।

नरसंकमणपरंपरचवलष्ठ किच्च वीसामयामु थिरु कमलष्ठ ।

१२. उर्वशी २० मात्रिक अंत रगण (-५-) ३.४; ५.६, ९; ७.४

उदा०—जम्मदिवसम्मि पुत्तस्स बहुपरियणो चक्कवट्ठी-कयणंदवद्वावणो ।

नियवि पुत्ताणं गहिरसरवाहणा सिक्कुमाराहिहाणं कयं राइणा । ( ३.४.३-४ )

अपवाद : पंक्ति ५.६.८ अंत सगण (५५-) ।

१३. सारीय २० मात्रिक अंत ग ल ५.१४; १०.१८

उदा०—तो महितलप्पंतविज्जाहरिदेण उक्खित्तहत्थेण णं वणकरिदेण ।

नवमिसियपहरणफडाडोयनाएण पंचमुद्दगुंजारसन्निहनिनाएण ( ५.१४.६-७ )

अपवाद : ५.१४.१९ व १०.१८.९ पंक्तियोर्म अंत ल ल ।

१४. सगिणी (सगिणी) २० मात्रिक अंत ल ग १.९, १५; ४.१६

उदा०—कसणमणिखंडच्चिच्चइयधरणीयलं सप्पसंकाइचलवलियकिरपुज्जलं ।

पयहिं चपेवि आहणइ जा फिर थिरं धुणइ कुंचइय-चचूमऊरो सिरं ।

सगिणीनामछंदो ।

१५. मवनावतार २० मात्रिक अंत यगण (-५-) १.१८; २.१९; ६.७; १०.९, २६

उदा०—सुमं देव सव्वण्ह लच्छीविसालो अहं वण्णिऊणं न सक्केमि वालो ।

समुज्जोइयासोह वा तेयपूरो न पुज्जिऊए किं पईवेण सूरु । ( १.१८.१-२ )

१६. ? २० मात्रिक अंत × ६.१०

उदा०—एरिसम्मि बुद्धरम्मि भीसणे रणे गइयनाय-दिण्णाय-सुट्टपहरणे ।

सुहइसंड-बाहुदंडमुडंभडिरे लुणियटंक-जणियसंक-बाहुहिडिरे ( ६.१०.१-२ )

### समवृत्त : वार्णिक

१७. त्रिपदो शंखनारी ( या सोमराजी ) ६ + ६ + ६ वर्ण गणः य य + य य + य य ४.५

उदा०—नमंसेवि धीरं महामेरुधीरं तिलोयगयधकं ।

विलीणासुहार्णं जणंभीरुहार्णं पबोहिककयकं । ( ४.५.१-२ )

१८. समानिका ८ + ८ वर्ण गण र ज ग ल + र ज ग ल ९.१७

उदा०—मे कणिट्ठु भाइ एककु मंडलंतरम्मि थक्कु ।

वच्छरेसु आउ अज्जु जाणिऊण तुज्ज कज्जु । ( ९.१७.८-९ )

१९. भुजंगप्रयात १२ + १२ वर्ण गण य य य य + य य य य ४.२१.१३-१७, ५.५

उदा०—तवो पेल्लियं क्षत्ति जाणेण जाणं गइदेण अण्णं गइदं सदाणं ।

सुरंगेण भग्गम्मि तुंगं सुरंगं भुयंगं भुयंगेण वेसासु रंगं । ( ४.२१.१३-१४ )

२०. ? १४ + १४ वर्ण गण ज र ज र ल ग + ज र ज र ल ग २.३

उदा०—इमं कहुंसरं जिणसरे कहुंसए नरामरे विसुद्धमावणं वहुंसए ।

तवो नियच्छियं नहुंगणाउ एंतयं फुरंततेयवारिपूरियादियंतयं । ( २.३.१-२ )

२१. धवला अथवा दिनमणि १९ + १९ वर्ण गण ६ × न गण + ग ७.५

उदा०—उहयवलमिलणपडिबुहियजलयरवलं ।

समय-तडफिडवि झलझलइ जलनिहिजलं ।

तुरय-करि-सुहड-रह-फुरियरुहपहरणं ।

गिलइ तिहुवणु व कलयलण पुणरवि रणं (७ ५.११-१४)

### विषमवृत्त : मात्रिक

२२ गाथा (क) गाहू (उपगीति) : मात्राएँ १२, + १५; १२ + १५ प्रथम, तृतीय यतिर्यां शब्दके बीच, ९ १ ५-६ तथा संधिके प्रत्येक कडवकका घत्ता ।

उदा०—मयरद्वयनच्छु नडंतिड जंबुकुमारें भेल्लियउ ।

बहुवाउ ताउ ण विटुड कट्टमयउ बाउल्लियउ ॥ (९ १ ५-६)

(ख) ? मात्राएँ १२ + १६; १२ + १४ प्रथ० १३-१४

उदा०—जस्स य पसणवियणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिणिण ।

सीहल्ल-लमखणका जसइ नामेत्ति विवखाया ॥

(ग) पथ्या : मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ १ मं० ९-१०, १ ६.१-८;  
१.११.१५—१८, ४ १४.३-४, ७-८, ५ १ १-४, ७ १.५-६, ८.१.१-१०;  
प्रथ० १-४, ११-१२, १५-१८

उदा०—सो जयउ महावीरो ज्ञानानलहुणियरइसुहो जस्स ।

नाणमि फुरइ भुअणं एकं नवखत्तमिव ययणे ॥ (१ म० ९-१०)

(घ) परपथ्या (१) . मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ प्रथम चरणकी यति शब्दके मध्य १ मं० ७-८, १.६ ९-१०, १ ११.१३-१४, ३.१ १-४, ७ ४ ४-७;  
७ ६ १६-१७, २२-२५; १० १ १—२, प्रथ० ५-१०

उदा०—जाणं समगसहोहज्जेण्डुउ रमइ महफडवकम्मि ।

ताणं पि हू उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिफुरइ ॥ (१ ६ ९-१०)

परपथ्या (२) . मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ तृतीय चरणकी यति शब्दके बीच

उदा०—मा वण्णउ असमत्थो धारेउ सव्वकव्वरसपूरं ।

नियसत्तिस्सगहियरसकणो द्वाउ तुण्हिवको ॥ (८ १ ५—६)

(ङ) विपुला मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ प्रथम, तृतीय चरणकी यति पद या शब्दके मध्य १ मं० ११-१२, ४ १४ १-२, ७ ६ २८-२९ ।

उदा०—रहविप्यओयसतत्तमयणसयणं व कुसुमसवलियं ।

धारंति ताउ विट्टुमहीरयकइतुर अहर ॥ (४ १४ १-२)

(च) उग्गाहा ( उद्गाथा या गीति ) (१) : मात्राएँ १२ + १८, १२ + १८,  
७ १ ३-४, ८ १ १-४

उदा०—अत्थाणुस्सभाओ हियए पडिफुरइ जस्स वरकडयो ।

अत्थं फुडु गिरइ निरा ललियववरनेम्मिएहिं तम्म नयो ॥ (७ १ ३-४)

उग्गाहा (२) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम चरणकी यति पदके बीच  
१ मं० १-४

उदा०—विजयंतु वीरचरणगवपिए मंदग्ग्मि यरहरिए ।

यन्मुच्छंततोए मुतरणिलगसविट्ठं नारा ॥ (१ मं० १-२)

उग्गाहा (३) मात्राएँ १२ + १८, १२ + १८ तृतीय चरणकी यति पदके बीच

उदा०—जयत् सिरिपासणाहो रेहृद् जस्संगनीलिमामित्रो ।

फणिणो तडिछहियनवधणो व्व मणिगन्मिणो फणकडप्पो ॥

उग्गाहा (४) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम, तृतीय चरणोको यतियाँ पदोके  
वोच १. मं० ५-६; १ ११.९-१२

उदा०—चंडभुजदंडखंडियपयंडमंडलियमंडलोविसडे ।

घाराखंडणभोय व्व जयसिरिवसइ जस्स खगंके ॥ (१.११.९-१०)

(छ) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १६

(१) यति सामान्य ४.१ १-२; ७ ६.२०-२१

उदा०—घवलेण तेण विसमे धुयकंवरडंतकसरमुक्कभरो ।

लीलाप्र कडिद्वो तह जह फुट्टइ कुसामिणो हिययं ॥ (७.६.२०-२१)

(२) प्रथम चरणको यति पदके वोच ४.१४.५-६

उदा०—चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहिं सूरकरसहणं ।

चिज्जइ तवं व सलिले निययं चित्तूण गलपमाणम्मि ॥

(ज) मात्राएँ १४ + ११, १२ + १५ ७.१.१-२

उदा०—चिरकइक्वामयमुहाण रुइमंगरसणाणं ।

सुयणाण मए वि कयं अल्लयकसरक्कउक्कव्वं ॥

(झ) मात्राएँ १६ + १२, १६ + १२ ६.१.३-६

उदा०—हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण सीसे ।

सच्चावाणो वयणकमलए वच्छे सच्छापवित्ती ॥ (६.१.३-४)

(ञ) मात्राएँ १८ + १२; १२ + १५ ६-१ १-२,

उदा०—देंत दरिहं परवसणहुम्मणं सरसकव्वसव्वस्सं ।

कइवीरसरिसपुरिसं घरणि वरंसी कयत्थासि ॥

२३. दोहः : मात्राएँ १३ + ११; १३ + ११ ४.१४.९-१०; ७ ६.३०-३१

उदा०—जाणमि एककुजि विहि घडइ सयलु वि जगु सामण्णु ।

जें पुणु आयउ निम्मविउ को वि पयावइ अण्णु ॥ (४.१४.९-१०)

२४. रत्नमालिका (चतुष्पदी) : मात्राएँ १४ + ६; १४ + ६ प्रत्येक पदके अंतमें सयण (u u-)

उदा०—नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीलालिए पत्तलिए ।

रुवरिद्विमणहारिणिए मारिणिए हा मई विणु मयणें नडिए मुद्धडिए ॥

(२ १५.३-४)

२५. वस्तु : मात्राएँ १५ + २५ + २७ + दोहा ५ १ ७-११ तथा सविके प्रत्येक कदवकका आदि छंद

उदा०—ताम राए दिण्णु अत्थाणु

सिहासणु विहि मि ठिउ एककु पासि कामिणि जणावलि ।

पज्जलियमणिमउडसिर पुणु निविट्ट मडलियमडलि ।

पुणु सामत महंत धियं सेणिउ इयराउत्त ।

मडयड थक्क विणोयकर नरनाणाविहवुत्त ॥ (५ १ ७-११)

२६. मणिशेखर : मात्राएँ २२ + १० दोनो पदोंमें अत रयण (-u-) ५ ८ ६-२३

उदा०—कहिं मि महिपडियतरुपणसच्छन्नया संठिया पन्नया ।

कहिं मि फणिमुक्कफुक्कारविससामला जलिय दावानला । (५-८.२२-२३)

२७. मालागाहो : मात्राएँ ४० + ३० + २६

१४



उदा०—महकुलिसदलियमायंगतुंगकुंगयलियकीलालित्तमुत्ताहलोह—

विष्फुरियकविलवेसरकलावघोलंतकंधग्हेमा ।

रुजंति ताम सीहा जाम न सरहं पलयति ॥ (७४१-३)

२८. दंडक : ४.८.१-११; ४.२१.१-१२; ५.१.१२—२९; ७.६.१-१५; ९ १९

उदा०—भल्लकियनिरांतेण तरुणारुणदित्ततेण वालेण पसरेण वा तेण भूयाहरे दिण्णदीवोहदित्ती-

निहित्ता सुदूरे किया निप्पहा । विद्धिचद्धावणावंतलोएहि वज्जंतपडुपडहपरतरडसर-

मदवहुमहलुहागकलवेणुवीणापुणीसालकंसालतालानुसारेण आणददरमतधुम्मंततर-

लच्छिनचतत्तणीमहायट्टु सघट्टुट्टंतआहरणमणिमडिया चउत्पहा ।

### ( घ ) ध्रुवक एवं घत्ता

संघि	कडवकोके आदिमे ध्रुवक-प्रकार	कडवकोके अतमें घत्ता-प्रकार
१.	चतुष्पदी १५ + १२ ( केवल कडवक १ के आदिमें )	चतुष्पदी १५ + १२
२.	चतुष्पदी १८ + १३ ( केवल कडवक १ के आदिमें )	चतुष्पदी १८ + १३
३.	द्वुर्द्ध १६ + १२ ( १.७ - ८ ) ( प्रत्येक कडवकके आदिमें )	पदपदी ६ + ८ + १३
४.	पदपदी १० + ८ + १३ ( १.३ - ४ ) ( केवल कडवक १ के आदिमें )	पदपदी १० + ८ + १३
५.	वस्तु ( १.७ - ११ ) ( प्रत्येक कडवकके आदिमें )	पदपदी १२ + ८ + १२
६.	पदपदी ९ + ७ + १४ ( १.७ - ८ ) ( केवल कडवक १ के आदिमें )	पदपदी ९ + ७ + १४ ( कडवक १ की पदपदीमें १० + ८ + १४ मायाएँ हैं । )
७.	पदपदी ९ + ७ + १४ ( १.७ - ८ ) ( केवल कडवक १ के आदिमें )	पदपदी ९ + ७ + १४
८.	खडयं १३ + ११ ( २ से १६ प्रत्येक कडवकके आदिमें )	पदपदी १३ + ७ + १४
९.	चतुष्पदी १४ + १३ ( १.५ - ६ ) ( केवल कडवक १ के आदिमें )	चतुष्पदी १४ + १३
१०.	सम-चतुष्पदी १५ + १५ ( १.५ - ६ ) ( केवल कडवक १ के आदिमें )	सम-चतुष्पदी १५ + १५
११.	चतुष्पदी १३ + १६ ( १.३ - ४ ) ( केवल कडवक १ के आदिमें )	चतुष्पदी १३ + १६

### पाठक्रमानुसार छंद-योजना

संघि

१. १, ३, १६ पादाकुलक ( ११ ); २, ४, १२ पारणक ( ५ ), ५ त्रोटनक ( १० ); ६, ७, १०—११, १३,  
१७ अलिल्लह ( ८ ); ८, १४ पद्धडिया ( ७ ), ९, १५ सलिंगी ( १४ ), १८ मदनवातार ( १५ ) ।

२. १,११ पादाकुलक (११); २,४,१३-१५ अलिल्लह (८); ३ : १४ वर्णिक (ज रं ज र ल ग) छंद (२०); ५,१२ पदडिया (७); ६-८,१०,१६-१८,२० पारणक (५), ९ करिमकरभुजा (१); १९ मदनावतार (१५)।
३. १,३,७,९ पारणक (५); २,६,८,१२-१४ अलिल्लह (८); ४ उर्वशी (१२); ५ सिंहावलोक (९); १० पादाकुलक (११); ११ पदडिया (७)।
४. १-४,१०,१३-१४ अलिल्लह (८); ५ त्रिपदी खंखनारी (१७); ६,९ पादाकुलक (११); ७ त्रोटनक (१०); ८ १-११ दंडक (२८); ८ १२-१५ : १५ मात्रिक (अंत रगण) छंद (६); ११-१२,१५,१७-२० पदडिया (७); १६ समिणी (१४); २१.१-१२ दंडक (२८); २१.१३-१७ भुजंगप्रयात (१९); २२ दीपक (२)।
५. १.१२-२९, दंडक (२८), २,४ पारणक (५), ३,७,८ (२४-२९, ३१-३६), ११,१२ पदडिया (७); ५ भुजंगप्रयात (१९); ६,९ उर्वशी (१२); ८-६-२३ मणिखर (२६); १० पादाकुलक (११); १३ अलिल्लह (८); १४ सारीय (१३)।
६. १,३,९,१४ अलिल्लह (८); २,४,५,८,११-१३ पदडिया (७); ६ सिंहावलोक (९); ७ मदनावतार (१५), १० : २० मात्रिक (अंत ×) छंद (१६)।
७. १-३,११,१३ अलिल्लह (८); ४.१-३ मालागाहो (२७); ४ उर्वशी (१२), ५ बबला या दिनमणि (२१), ६.१-१५ दंडक (२८), ७-९,१२ पदडिया (७), १० करिमकरभुजा (१)।
८. २,७,११-१६ अलिल्लह (८), ३,४,९ पारणक (५); ५ पादाकुलक (११), ६ त्रोटनक (१०); ८,१० पदडिया (७)।
९. १,४-५,८,१०-१३,१५ अलिल्लह (८); २,९,१४ पदडिया (७); ३,६,७,१८ पारणक (५) १६ सिंहावलोक (९); १७ समानिका (१८); १९ दंडक (२८)।
१०. १,३,६-८,१०,१२-१३,१७,२१,२४-२५ पदडिया (७); २,४-५,११,१४-१५,२०,२२-२३ अलिल्लह (८), ९,२६ मदनावतार (१५), १६ पारणक (५); १८ सारीय (१३); १९ : १० मात्रिक (अंत रगण) त्रिपदी (३)।
११. १-१५ अलिल्लह (८)।

## ७. 'जंबूसामिचरित' की गुण और रीति युक्तता

(माधुर्य, आज, प्रसाद); रचनाशैली (वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी) एवं सुभाषित और लोकोक्तियाँ

साहित्य शास्त्रमें गुणके प्रथम प्रस्तुत कर्ता आचार्य भरत मुनि ( ४ श० ई० ) ने दोषोके विपर्ययोको ही गुण माना है ( नाट्य १७.९५ ), जिनमें कुछ गुण तो दोषोके अभाव रूप हैं, पर अधिकान भावात्मक गुण हैं। दंडी ( ७ श० ई० काव्या० २.३ ) एवं गुणोके प्रतिष्ठाता आचार्य वामन ( ९ वीं शतीका मध्य काव्या० ३,१,१ ) के अनुसार गुण काव्यको शोभा प्रदान करनेवाले तत्त्व हैं। तथा ध्वनिसिद्धांतके प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्द्धन ( ९ श० ई० ) एवं उनके अनुवर्ती आचार्य मम्मट ( ११ श० ई० ) ने गुणोका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार न कर उन्हें रसाश्रित माना है, और परवर्ती विश्वनाथ ( १४ श० ई० पूर्वार्द्ध ) आदि आचार्योंने इन्हीका अनुकरण किया है। इस प्रकार काव्यको शोभाको संपादित करनेवाले या काव्यकी आत्माको प्रकाशित करनेवाले तत्त्व या विशेषताएँ गुण हैं। ये गुण शब्द और अर्थके घर्म हैं और वर्ण-संघटन, शब्दयोजना, शब्दचमत्कार, शब्दप्रभाव तथा अर्थकी दीप्तिपर आश्रित हैं।

गुणोंकी संख्याके संबंधमें भी विद्वानोंमें मतभेद है। आचार्य भरतने (१) श्लेष (२) प्रसाद (३) समता (४) समाधि (५) माधुर्य (६) ओज (७) पदवीकुमार्य (८) अर्थ व्यक्ति (९) उदारता और (१०) कावि, इन प्रसिद्ध दस गुणोंको स्वीकार किया; अग्निपुराणमें १८; एवं भोजने २४, तथा प्रत्येकके बाह्य आन्तर और वैशेषिक तीन-तीन भेद, इस प्रकार यह संख्या बढ़कर ७२ तक जा पहुँची। अंततः आनंद-वर्द्धन आचार्यने उसके धर्मरूपमें गुणको मानकर, चित्तकी तीन अवस्थाओं द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्वके आधारपर केवल तीन गुणों माधुर्य, ओज और प्रसादको स्वीकार किया। मम्मटाचार्यने भी दसगुणवादका खंडन कर दसोंका इन्ही तीन गुणों माधुर्य, ओज एवं प्रसादके अंतर्गत समावेश किया है<sup>१</sup> और गुणोंकी यह सामान्य परिभाषा दी है—“जिस प्रकार बीरता आदि आत्माके गुण हैं, देहके नहीं, उसी प्रकार माधुर्य, ओज आदिक भी उसके ही गुण हैं, पदसमुदायके नहीं।”<sup>२</sup> जंबूस्वामिचरित्र माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणोंसे सर्वत्र ओत-ओत है।

माधुर्य—जिसमें अंतःकरण द्रुत<sup>३</sup> (गलित) हो जाये ऐसा आनंद-विशेष माधुर्य कहलाता है।<sup>४</sup> सा० को० के अनुसार ‘माधुर्यका अर्थ है श्रुति सुखदता, समासरहितता, उक्ति वैचित्र्य, आद्रीता, चित्तको द्रवित करनेकी विघेयता, भावमयता और आह्लासता। ट ठ ड ढ को छोड़कर क से म तकके स्पर्श वर्ण, मूर्धन्य वर्ण और अंत्य (पंचम) वर्णों तथा समासोंके अभाव एवं छोटे-छोटे समस्त पदोंके प्रयोगसे माधुर्य गुणका संपादन होता है। इस प्रकारका वर्ण प्रयोग संयोग, वियोग, कर्ण एवं शात रसोंमें क्रमसे आविश्यके साथ पौष्प होता है, अर्थात् संभोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार तथा कर्ण एवं शात रसोंकी स्थितिमें माधुर्य गुण क्रमसे बढ़े हुए उत्कर्षके साथ प्रकट होता है। इस प्रकारकी रचना समास रहित या अल्प समास होनी चाहिए, तभी माधुर्यगुण युक्तता कही जा सकती है”<sup>५</sup>।

जंबूस्वामिचरित्रमें माधुर्य गुणयुक्तताके निम्न उदाहरण प्रमुख हैं—भगवद्देवका पत्नी स्मरण-(२.१४), रस-विप्रलंभ शृंगार, मिथुनीकी उद्यान-झीड़ा (४.१७—१८), रस-संभोग शृंगार, जंबूके प्रज्ज्या लेनेकी इच्छा जानकर मौकी अवस्था (८.७९—१४), रस-वात्सल्य, नागवसू-द्वारा भगवद्देवको बोध-प्रदान (२.१८), रस-शात, भगवद्देवका अंतर्द्व (२.१६) भाव—रतिभावमें परिणत होती हुई भावशबलता। अन्य सर्वत्र हैं :—भ० महावीरका उपदेश (२.१); संधि ३ लगभग संपूर्ण, जंबूस्वामीको देखकर नारियोजी काम-विल्ललता ४.११; संधि ८ और ११ लगभग संपूर्ण, एवं ९.१, ३; १०.२, ६, १८, २० एवं २९।

इन सब उदाहरणों एवं संदर्भोंके अतिरिक्त एक अनिवर्चनीय माधुर्यकी ध्वनि और आस्वादन संपूर्ण रचनामें विद्यमान है, और यही रचनाका सर्वप्रधान गुण है। माधुर्यके साथ प्रसादगुणका भी घनिष्ठ संबंध है। जहाँ-जहाँ श्लेषादि अलंकारोंका विशेष प्रयोग हुआ है, जैसे कि उपर्युक्त उदा० २ में, और अर्थ सुनते ही

१. हि० सा० कोश ‘गुण’।

२. मम्मट काव्य प्र० ‘गुण’।

३. द्रवीभाव : रसकी भावनाके समय चित्तकी चार अवस्थाएँ होती हैं—काठिन्य, दीप्त्य, विक्षेप और द्रुति। किसी प्रकारका आवेश न होनेपर अनाविष्ट चित्तकी स्वभावसिद्ध कठिनता और आदि रसोंमें होती है। क्रोध और मन्यु (अनुताप) आदिके कारण चित्तका दीप्त्य रौद्र आदि रसोंमें होता है। विस्मय और हास्य आदि उपाधियोंसे चित्तका विक्षेप अद्भुत और हास्यादि रसोंमें होता है। इन तीनों दशाओं काठिन्य, दीप्त्य और विक्षेपके न होनेपर रति आदिके स्वरूपसे अलगव आनंदके उद्भूत होनेके कारण सहृदय पुरुषोंके चित्तका पिघल-सा जाना (आर्द्रप्रायत्व) द्रवीभाव या द्रुति कहलाता है। (सा० द० अष्टम परि० ‘गुण’)।

४. मम्मट का० प्र० ‘गुण’।

५. हि० सा० कोश; मम्मट का० प्र०।

तुरंत पूर्ण रूपसे स्फुट नहीं होता, कुछ चिंतनकी आवश्यकता जिसमें होती है, ऐसे स्थलोंको छोड़कर माधुर्यके साथ प्रसाद गुणका सहभाव स्वीकरणीय है।

ओज गुण—ओजका शाब्दिक अर्थ है तेज, प्रताप, दीप्ति। काव्यके अंतर्गत जो गुण सुननेवालोंके मनमें उत्साह, वीरता, आवेग आदि जाग्रत करनेकी क्षमता रखता है वह ओज कहलाता है।<sup>१</sup> ध्वनि अनुयायी आचार्योंके मतसे चित्ताकार विस्तारक या दीप्तिकारक गुण 'ओज' है; अबवा दूसरे शब्दोंमें चित्तको फड़क उठने रूप भडकानेवाले गुणका नाम ओज है।<sup>२</sup> वीर, वीरत्स और रौद्ररसोंमें क्रमसे इसकी स्थितिमें उत्कर्ष और प्रखरता बढ़ते जाते हैं। इसके लिए वर्णोंके आद्य और तृतीय (प्राकृत, अपभ्रंशमें तृतीय-चतुर्थ) वर्णोंकी समुत्ताक्षरता; ट,ठ,ड,झ,प (प्राकृत अपभ्रंशमें स) आदिका प्रयोग, लँवे-लँवे समास और विकट या उद्धत पदरचना आवश्यक मानी गयी है। इस प्रकार ओज गुणमें उदात्त भाव तथा कर्कश, विलट वर्ण सघटन और संयुक्त अक्षरोका प्रयोग होता है।<sup>३</sup> जंबूसामिचरितमें इस गुणके प्रयोगके कुछ प्रमुख संदर्भ निम्न हैं :—

हस्तिका उपद्रव (४ २१), रस-भयानक; युद्ध वर्णन (५ १४, १११), रस-वीर, युद्धवर्णन (६.७.५-७; ६.१० १-४; ७ १.१-२२) रस-भयानक एवं वीरत्स, तथा अन्य रौद्र रसात्मक वर्णन ५ १३ १-११; (५.१४ १-१४); संधि ६ का घोषाव; संधि ७ १-११ एवं १०.२६।

प्रसाद गुण—प्रसादका शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित हो जाना। सभी रसोंमें और सभी रचनाओंमें ऐसा चर्म या प्रसिद्ध अर्थोंमें शब्दका ऐसा प्रयोग जिसे सुनते ही सामाजिकके हृदयमें भाव या अर्थ क्षण-भरमें व्याप्त हो जाय, वह प्रसाद गुण है। जैसे सुखे ईधनमें अग्नि और जैसे स्वच्छवस्त्रमें जल तुरंत फैल जाता है, उसी प्रकार चित्तको रसोंमें और रचनामें जो तुरंत व्याप्त कर दे, वह गुण प्रसाद है। अर्थात् प्रसाद गुण वहाँ होता है जहाँ सरल, सहज, भावव्यंजक शब्दावलीका प्रयोग किया जाता है। अर्थकी स्वच्छता या निर्मलता इसकी विशेषता है और यह सभीमें व्याप्त रहता है।<sup>४</sup>

जं० सा० च० में इस गुणके प्रयोगके अतिशय उदाहरण हैं; जिनके कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :— कविका विनयप्रदर्शन (१ २); मगध देश वर्णन (१ ८), रानियोका सौंदर्य (१ १२); सागरचंद्रका मुनिदर्शना को जाना (३ ५), कन्याओंका सौंदर्य (४ १३), वसंतागमन (४ १५ ७-१६); जंबूका आत्मचिंतन (९ १); अंतर्कथाएँ (९ २-११ एवं १० ७-१७)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि वीरने अपनी रचनामें माधुर्य, ओज एवं प्रसाद तीनों गुणोंका प्रचुर समावेश किया है। इनमें माधुर्यका प्राधान्य है, इसके उपरांत ओज एवं प्रसाद गुणोंका।

रचना-शैली—जंबूसामिचरितकी रचना-शैली या रीतिकी दृष्टिसे विश्लेषण करनेके प्रसंगमें 'शैली' शब्द और उसके स्वरूप, सख्या आदिपर प्रकाश डालना आवश्यक है। संस्कृत साहित्यमें शैलीके स्थानपर 'रीति' शब्दका प्रयोग हुआ है। हिंदी साहित्यकोशमें साहित्य शास्त्रके प्राचीन ग्रंथोंके आचारपर शैलीकी परिभाषा इन शब्दोंमें दी गयी है—“शैली अनुसूत विषयवस्तुकी सजानेके उन तरीकोंका नाम है जो उस विषयवस्तुकी अभिव्यक्तिको सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।” अर्थात् शैली किसी भी काव्यादि साहित्यिक कृतिके रस-शोषण संवर्द्धन एवं प्रेषण अर्थात् सहृदय सामाजिकको पूर्ण रसानुभूति आदि विविध रूपोंमें रसोपकारक उपादान है। इसी हेतुसे संस्कृत साहित्यमें रीति (शैली) को काव्यकी आत्मा माना गया है। संस्कृतके साहित्यप्रणेत आचार्योंने रीतिके स्वरूपपर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं। उन सबका सारांश यह है कि रीतिका सर्वथ 'विशिष्ट पदरचना' अर्थात् गुणों एवं 'पदरचना' जो कि समासपर निर्भर

१. हिन्दी साहित्य कोश 'गुण'।

२. सा० द० अष्टम परिच्छेद।

३. हि० सा० कोश एवं सा० द० ८.४.६।

४. हि० सा० कोश; तथा सा० द० अष्टम परिच्छेद।

है, तथा वर्ण संघटनसे है। अतः कुछ आचार्यों ने 'समासहीनता' 'स्वल्पसमासता' व दीर्घ समासताके रूपमें शैलीको देखा है, और मातृह तथा दंडी (७-८ व ० ई० काव्यालंकार, काव्यादर्श) ने भरतके प्रदेशानुसार आर्वती, दाक्षिणात्यादि (ना० शा० १४.३६ ४९) प्रवृत्ति विभाजनके अनुकरणपर, रीतिका भी देशोसे संबंध स्थापित किया है। जैसे वैदर्भी अर्थात् विदर्भदेशमें प्रचलित शैली, गौडी गौड़ देशमें, पांचाली पांचाल जन-पदसे और लाटी अर्थात् (गुजरात) प्रदेशमें प्रचलित शैली। उपर्युक्त चारो रीतियोंके अलग-अलग स्वरूपके संबंधमें भी साहित्यशास्त्राचार्योंमें पर्याप्त मत विभिन्नता दिखलायी देती है।<sup>१</sup> पर वैदर्भी और गौडी रीतियोंके स्वरूपपर जो कुछ मतैक्य प्रकट होता है, उसपरसे यह कहा जा सकता है कि 'वैदर्भी वह रीति है जिसमें माधुर्य गुणका उसको समस्त विशेषताओं श्रुति सुखदता, चित्तको द्रवित करनेकी क्षमता भावमयता एवं आह्लादता आदि सहित प्राधान्य हो, जो संयोग एवं विप्रलम्भ-शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शातरसोकी उपकारक हो; जिसमें समास-साहित्य अथवा अल्पसमासता हो, जिसमें ट, ठ, ड, ढ वर्णोंको छोड़कर बगैरे पंचमाक्षरोसे युक्त क से म तकके स्पर्श वर्णोंका प्रयोग हो तथा झ, ष, एवं अन्य कठोर महाप्राण ध्वनियोंका अभाव पाया जाता हो; और इस प्रकार जिसको संपूर्ण रचना सुकुमार एवं मधुर हो।' गुणोंकी अपेक्षासे माधुर्यके समान प्रसाद गुणका भी इसमें पूर्ण समावेश होता है। इस संबंधमें एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि दंडी और वामनके अनुसार वैदर्भी रीतिका काव्यके श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कांति, और समाधि इन दसो गुणोंसे युक्त होना कहा गया है, वह समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि श्लेष, समाधि, उदारता एवं ओज, जिन्हें मम्मटादि सब आचार्यों ने ओजगुणके अंतर्गत माना है, तथा ओजगुणके जो लक्षण किये हैं, वे वास्तवमें वैदर्भीके स्वरूपमें घटित नहीं होते। खट्ट इस संबंधमें मौन है। लगता है कि प्राचीन आचार्योंके इस मतको स्वीकार न करते हुए भी उन्होंने इसका स्पष्ट खंडन नहीं किया और यदि ओज गुणोंकी भी वैदर्भीके अंतर्गत मानना हो, तब या तो ओजगुणकी परिभाषा ही बदलनी होगी, जिससे उसमें कठोरता एवं पल्लववर्णताकी अपेक्षा माधुर्य और सुकुमारताका प्रवेश हो, अथवा फिर सभी रीतियोंको वैदर्भीमें ही समाहित करना होगा, या फिर अल्पसमासता एवं बहुलसमासता, यही रीतिविभाजनका एक मात्र निर्बल आधार शेष रहेगा। यदि वैदर्भीमें दसो या तीनों गुणोंका समावेश होता है, तो एक ओर खट्ट एवं दूसरी ओर विश्वनाथ, इन दोनोंने ही वैदर्भी रीतिमें, विशेष रूपसे, शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शातरसोका ही अस्तित्व क्यों स्वीकार किया? और, रौद्र, बीभत्स एवं भयानक इन उन्नतरसोंकी भी उसमें समाहित क्यों नहीं माना? इस विषयपर अधिक चर्चा करना इस प्रबंधकी सीमाओंके बाहर है, फिर भी प्रसंगोपात् होनेसे इतना लिखना आवश्यक हुआ। इस चर्चाका तात्पर्य यह है कि वीर कविने इस विषयमें जैसे ही अन्य रीतियोंके संबंधमें भी खट्टके मतको ही स्वीकार किया है तथा ऐसा लगता है कि वैदर्भी रीतिकी सुकुमारता एवं माधुर्य के वैशिष्ट्यके निमित्तसे काव्यरचनानामें सर्वाधिक उपयुक्त होनेके कारण इसे जो महत्ता प्रदान हुई, उससे प्रभावित होकर आचार्योंने अतिसंयोजितपूर्वक इसे सर्वगुण संपन्न लिल डाला है।

गौडी रीतिके स्वरूपके संबंधमें कुछ अधिक स्पष्टता और मतैक्य है : जिसके अनुसार ओजको प्रकाशित करनेवाले कठिन वर्णोंसे बनाये हुए, बड़े-बड़े महाप्राण प्रयत्नवाले अक्षरोंसे युक्त, शब्दादंबरसे पूर्ण एवं दीर्घसमासोंसे रचित सज्जट बंध अर्थात् ओजपूर्ण शैली, मधुरता, सुकुमारताका अभाव और लवे-लवे समासोंसे पूर्ण रचनाको गौडी शैली कहना चाहिए। पर 'जंबूसामिचरिड'के अध्ययनके परिप्रेक्ष्यमें यहाँ भी यह अवश्य कथनीय है कि यहाँ ओजगुणका प्रचुर सद्भाव होनेपर भी अधिक लवे समासोंका प्रयोग गिने-गुने आठ-दस कदवकोंमें ही हुआ है तथापि अन्य लक्षणोंसे वहाँ गौडी रीति ही सिद्ध होती है। अतः वीरके मतसे गौडी रीतिमें लवे समासोंके प्रयोगकी अनिवार्यता प्रतीत नहीं होती।

पांचाली और लाटी रीतियोंको लेकर आचार्योंमें अत्यधिक मत विभिन्नता है। इस कारण इनका

१. हिंदी-साहित्य कोश : 'रीति'।

२. वही, एवं साहित्यदर्पण : विमला (हिंदी) न्यायया परि० ३।

अलग-अलग स्वरूप और उनकी विभाजक रेखा या तत्त्व भी स्पष्ट नहीं है। परन्तु सब मतोपर कुछ गहराईसे विचार करनेसे पांचालीका स्वरूप कुछ इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—‘पांचाली वह रीति है जो माधुर्य एवं सुकुमारतासे संपन्न हो और जिसमें पाँच-छह पदों तकके लघुसमास हो। भोजने इसे भोज एवं क्रांति गुणोसे संपन्न माना है, और उसीसे किसी अन्य आचार्यने इस रीतिको वैदर्भी एवं गौड़ीके बीचकी रीति भी कहा है। परन्तु रुद्रटकी परिभाषा और वीरकी प्रस्तुत कृतिको ध्यानमें रखकर व अन्य भी साहित्यिक उल्लेखोंसे यह मत समाचीन प्रतीत नहीं होता। अपने भाव और भाषा संघटन दोनों दृष्टियोंसे पांचाली रीति वैदर्भीके बहुत निकट प्रतीत होती है, और इसकी प्रवृत्ति वैदर्भीकी ओर ही मुकने की है। पांचाली श्रेष्ठ वैदर्भी रीतिकी अपेक्षा एक मध्यम रीति है।

अब हम लाटी रीतिको लें। रुद्रटके अनुसार यह मध्यम समासवाली उग्र रसोके वर्णनके लिए उपयुक्त है और विश्वनाथ ( १४ श० उक्त०, सा० द० ) ने इसे वैदर्भी तथा पांचालीके बीच स्थापित किया है। इस कथनसे लाटीका स्वरूप और भी अधिक अवृक्ष व अस्पष्ट हो जाता है। इसी कारण साहित्य कोशमें भी इसके संबंधमें कहा गया है कि ‘लाटीको कोई अलग विशेषता ज्ञात नहीं होती’। पर इससे तो हम और भी भटक जाते हैं तथा लाटीको समझनेका कोई मार्ग ही हमारे सामने नहीं रह जाता। यहाँ भी हमें वीरकी यह कृति कुछ आलोक प्रदान करती है और रुद्रटकी परिभाषाके प्रकाशमें इसका अध्ययन करनेपर हमें ज्ञात होता है कि ‘मध्यम समासरचना, वर्ण-संघटन, ओजगुणात्मकता ( प्रभाव ) एवं भावोकी अभिव्यक्ति इन सभी दृष्टियोंसे लाटीरीति गौड़ीके सबसे निकट है, तथा इसकी प्रवृत्ति निरंतर उसीकी ओर झुकने की है।’

उपर्युक्त चर्चासे पांचाली एवं लाटीका स्वरूप भी कुछ स्पष्टतर हो जाता है, और उनकी विभाजक रेखाका भी कुछ संकेत उपलब्ध होता है जिसके अनुसार इन चार रीतियोंके दो वर्ग बनाये जा सकते हैं— (१) वैदर्भी एवं पांचाली और (२) गौड़ी तथा लाटी। वीरकी प्रस्तुत अपभ्रंश रचनाकी आलोचनाकी दृष्टिसे यह कहना भी आवश्यक है कि संस्कृत भाषाकी अपेक्षा प्राकृत-अपभ्रंशके अनिवार्य वर्णपरिवर्तनोंकी दृष्टिगत रखकर प्रस्तुत रचनामें वैदर्भी रीतिमें भी ट, ठ, ड, ढ मूर्धन्य एवं ष, झ, ञ भ, ह महाप्राण वर्णोंका प्रयोग बहुधा उपलब्ध होता है।

उपरकी आलोचनासे यह भी प्रकट होता है कि ‘जंबूसामिचरित’ की संपूर्ण रचना किसी एक ही शैलीमें नहीं बल्कि चारो शैलियोंमें मिश्रितरूपा है। नीचेके विश्लेषणसे यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट होगा। निम्न पंक्तियोंमें जं० सा० च०में चारो रीतियोंके प्रयोगके कुछ सर्वमं प्रस्तुत हैं—

वैदर्भी रीतिके उदाहरण :

कविके प्रेरणा-दायकका बंध परिचय (१.५), सवि २ का अधिकांश भाग, विशेष रूपसे भ० महावीर-का उपदेश (२.१); भवदेवकी दीक्षा और पत्नी-स्मरण (२.१४); भवदेवका अंतर्द्वंद्व (२.१६); एवं नागवसू द्वारा भवदेवको बोध प्रदान (२.१८); मिथुनोकी उद्यानक्रीड़ा (४.१७-१८), अंगिककी सभामें गगनगति-द्वारा विलासवतीका बंध आदि परिचय (५.२.१२-२०); रत्नशेखरकी सेना-द्वारा केरलपुरीकी घेराबंदी और लूट-पाट (५.३.४-१३); रत्नशेखरको पराजित करके जंबूस्वामी आदिका राजगृहकी ओर वापिस प्रस्थानसे लगाकर सुचर्म स्वामीके दर्शनो तकका वृत्त (७.१३); सधियाँ ८ व ९ लगभग संपूर्ण, अंतर्कथाएँ (१०.१-१७); जंबूस्वामीकी दीक्षासे लेकर विद्युच्चर मुनिपर उपसर्ग तकका वृत्तांत (१०.२०-२६); एवं मुनि विद्युच्चर-द्वारा बारह भावनाओंका चिंतन तथा मरकर सर्वार्थसिद्धिको गमन (११.१-१५)। माधुर्य गुणके प्रसंगमें दिये हुए शेष संदर्भ भी इस रीतिके अंतर्गत आते हैं।

पांचाली रीतिके उदाहरण :

भ० महावीरके दर्शनोके लिए आनंदमेरी आदिका वज्रवाया जाना ( १.१४ ), भवदेवके घरमें मुनि भवदत्तका आगमन ( ३.१२ ), पूर्वविदेहमें पुष्कलावती प्रदेश, पुंडरिकागिरी नगरी एवं बीताशोक नगरी तथा

सागरदत्त, शिवकुमारके जन्मके वृत्तांत ( ३ १-४ ), मुनि सागरदत्तका वीताशोक नगरीमें आगमन ( ३.६ ); अणादियदेवका वृत्त ( ४.२ ), जंबूकी माँके स्वप्न ( ४.६ ), वसंतके आनेपर उद्यानका सौंदर्य ( ४.१६ ), सैन्य प्रयाण ( ५.७ ), विध्यदेश वर्णन ( ५.९ ); रेवा नदी वर्णन ( ५.१० ), जंबूस्वामीका दूत बनकर रत्नखेखरसे वाद-विवाद ( ५.१२ ) आदि । तीसरी संधि अधिकांशमें वैदर्भीकी ओर झुकती हुई पांचाली शैलीमें रचित है ।

गौड़ी रीतिके उदाहरण :

जंबूस्वामीका जन्म ( ४.८ ), हस्तिका उपद्रव ( ४.२१ ), श्रेणिककी राजसभा ( ५.१ ); गगनगति-द्वारा रत्नखेखरकी वीरताका प्रतीकात्मक वर्णन ( ५.५१-५ ), सैन्य प्रयाणकी तैयारी ( ५.६ ), युद्ध ( ५.१४, संधि ६; संधि ७ १ से १२ ), एवं विद्युच्चरका देश-दर्शन ( ९.१९ ) ।

लाटी रीतिके उदाहरण :

जंबूस्वामीकी माँकी गर्भावस्था ( ४.७ ), बालक जंबूका दिनोदिन बढ़ना ( ४.९.१-४ ); विध्याटवीका वर्णन ( ५.८.६-३६ ) आदि ।

उपर्युक्त विश्लेषणसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि वीर कविने अपनी संपूर्ण रचनामें सबसे अधिक प्रयोग किया है वैदर्भीका, जो कि इसके प्रधान रसों शृंगार एवं शातके सर्वथा अनुकूल तथा पोषक है । आरंभकी संधि २ व ३ का अधिकांश भाग, और संधि ८, ९, १० व ११ लगभग संपूर्ण वैदर्भी शैलीमें रचित है । माधुर्य एवं प्रसाद गुणोका प्राधान्य होनेसे ऐसा होना स्वाभाविक है । वैदर्भीके उपरांत पांचालीका प्रयोग है । परंतु वीर-रस रचनाका एक प्रमुखरस होनेसे परिमाणमें गौड़ीका प्रयोग अधिक हुआ है । संधि ६ और ७ लगभग संपूर्ण गौड़ी शैलीमें रचित है और लाटीका प्रयोग सबसे कम किया गया है, जो कि लाटीकी अपनी अनि-विशत-सी स्थितिके कारण स्वाभाविक है ।

‘जंबूसामिचरित’ में प्रयुक्त सुभाषित और लोकोक्तियाँ

वीर कविने अन्य महाकवियोंके समान अपनी रचनामें सुभाषित और लोकोक्तियोंका भी प्रचुर प्रयोग किया है । उनका हिंदी रूपांतर यहाँ प्रस्तुत है ।—

सज्जन-दुर्जन—

सज्जन व्यक्ति दूसरेके गुणग्रहणके लिए ही जीता है । वह स्वप्नमें भी किसीका लेशमात्र दोष नहीं देखता । इसे यू भी रख सकते हैं—दूसरेके गुण ग्रहण मात्रकी ओर लगी हुई सज्जन पुखकी दृष्टि कभी किसीके लेशमात्र दोषको नहीं देखती ( १ २२ ) ।

( ऐसा ) स्वभावसे पवित्र हृदय सज्जन किसीके गुण दोषोकी परीक्षाके पचहमें नहीं पड़ता ( १ २.३ ) ।

दुर्जन व्यक्ति अपने स्वभावसे ही जानते हुए भी दूसरेके गुणोंको तो झपाता है और झूठे दोषोंकी प्रकट करता है ( अस-द्वृतदोषोद्भावन ) ( १ २४ ) ।

सच्चा मित्र—

जिसके पास अपने ही दूसरे हृदयके समान मित्र न हो, उसके लिए राज्य एक रज्जुबंधनका निमित्त-मात्र है, अर्थात् राजाके लिए सच्चे मित्रकी सर्वोच्च सहाता है ( ६ १२-४ ) ।

फलहीन होनेपर भी अपनी घनी छायासे युक्त महान् वृक्ष विटके कार्यके लिए तो सफल होता ही है ( ६ १२-३ ), अर्थात् जो हृदयसे महान् है, उसके पास कुछ भी न रहे तो भी वह अनेकोंका आश्रयभूत बनता है ।

सुभटोका खिर, हाथियोंका भद, और घोड़ोंके फेनके प्रवाहसे ( युद्ध भूमिमें ) घूल उसी प्रकार शाव हो जाती है जिस प्रकार सुहृदों ( सज्जनमित्रों ) का रक्त ( वन एवं यज्ञ ) पीकर दुर्जन शाव हो जाता है । ( ६ ५-१०-११ ) ।

सच्चा वधु—

जो महान् विपत्तिमें सहाय देता है उसके समान और कोई वधु नहीं होता; अथवा वधु वही जो महान् विपत्तिमें सहाय दे ( ६.१२.२ ) ।

दरिद्रोंको दान देने वाले, परदुःख कातर और सरस काव्य रचनाके धनी पुरुषोंको धारण करनेसे ही यह धरित्री कृतार्थ होती है (६१ गाथा १)।

हाथमें धनुष, साधुशील पुरुषोंके चरणोंको गिरना प्रणाम, मुखमें सच्चोवापी, हृदयमें स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए (सच्चे) श्रुतका ग्रहण तथा दो भुजलताओंमें विक्रम, यह चौरपुरुषका सहज (वास्तविक) परिकर होता है, नेप तो बाह्य-साधन मात्र होते हैं (६१ गाथा २-३)।

विद्याधरकी छोड़ी हुई बाणावली जवूस्वामीके पास डम प्रकार गयी, जैसे कोई असती किसी सत्पुरुषके पास जाये, अर्थात् निरर्थक लौट गयी। सात्पर्य यह कि किसी सत्पुरुषके प्रति शत्रु-द्वारा की गयी कोई बुराई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती (१.२)। हिंदीमें—‘बदन बिप व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग’।

गुणहीन लोग गुणोंको समझते नहीं और गुणवान लोग दूसरोंके गुणोंको देखना तक नहीं सह सकते। स्वयंगुणी और परगुण-प्रिय ऐसे लोग तो कोई बिरले ही होते हैं (४.११-२)।

कवि और काव्य—किसीमें कैवल काव्य रचनेकी शक्ति होती है, और कोई उसका व्याख्यान, आलोचना या अभिनय करनेमें ही निपुण होता है। (१.२.८)

एक पापाण (आकर) सोनेको जन्म देता है, दूसरा (कसौटी, पर्यर) उसकी परीक्षा करता है (१२२)। दोनों प्रकारकी प्रतिभासे संगन्त व्यक्ति बिरले ही होते हैं; अर्थात् सवमें सब गुण नहीं होते। किसीमें कोई गुण होता है, और किसीमें कोई। जिसमें जो गुण हो, उसे उस गुणका पूरा लाभ उठाना चाहिए (१२-१०)।

दूसरोंकी काव्यरचनाओंमें वर्ण या शब्दपरिवर्तन करके काव्यरचना करनेवाला कवि दिना कहें ही अपने काव्य संगठनमें, बुधजनोके द्वारा पहचान लिया जाता है कि यह चौर कवि है (१.२.१४-१५)।

अपने भोलपनसे ऐसा मान कर कि मैं काव्य रच सकूँगा कवि कर्ममें प्रवृत्त होना भुजाओंसे सागर तर जानेकी कल्पनाके समान है। ऐसे प्रयास लोगोंमें उसी प्रकार उपहासके पात्र बनते हैं, जिस प्रकार ऊँचे वृक्षके फलोंकी ओर हाथ बढ़ानेवाला कोई श्रृद्धावान् पगु (१.३.७.८)।

जिस प्रकार हीरेसे बीजे हुए मणिमें कच्चे सूतका वागा भी सरलतासे प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार किसी विषयपर महाकवियों-द्वारा रचित प्रबंधोंको देखकर अल्पमति कवि भी उस विषयपर काव्य रचना कर सकता है (१३९-१०)।

सरिता, सरोवर और चरहियो (खड्डों)में जो बहुत-सा (अस्वच्छ, अपथ्य) जल है, वह किस कामका। उससे तो मिट्टीके करवेंमें रखा हुआ थोड़ा-सा निर्मल, शीतल एवं सुम्बादु जल कहीं अच्छा, जो लोगोंके द्वारा अभिलाषा पूर्वक लिया जाता है; अर्थात् किसी विषय पर ऐसे ठड़े-बड़े महाकाव्योंसे क्या?, जो साधारणजनकी समझके बाहर हो। उनसे तो वह लघुकाव्य अच्छा जिसका सर्व साधारण लोग भी पूर्ण स्वाद (आनंद) ले सकें (१५, ११, ११८, २०-२१); अथवा किसी धनिकका वह अपार धन किंतु कामका जिसका उपयोग कोई भी न कर सके, इससे तो किसी साधारण व्यक्तिकी वह तुच्छ संपदा भली जो सबके काम आये।

जिनके मुख प्राचीन कवियोंके काव्यामृतपानसे भरे होनेसे उनकी (काव्य) रसनाका स्वाद बिगड़ गया है, वे अदरकके फूलकी कलीके समान भिन्न व बढाटे स्वादवाले (जंवुसामिचरिज सद्ग) काव्योंको रसपान करें (७१ गाथा १)।

चित्तनशील कवियोंके-द्वारा काव्यके (अलंकारादि) अंगों व रसोंसे समृद्ध जो कुछ युक्ति-युक्त कहें जाता है, वह सब (चाहे वास्तवमें घटित हुआ हो या न हुआ हो) सच्चरित्रमें घटित (ममाहित और उचित) होता है (८१ गाथा २)।

जिनमें समस्त काव्यरसोंके पूरको धारण करने (और व्यक्त करने) की शक्ति नहीं है, उन्हें निज शक्तिके अनुसार (काव्य रचनाकी अपेक्षा) काव्योंके अध्ययनके द्वारा उनका यथासंभव रसाभ्यास लेकर ही चुप बैठना चाहिए; अर्थात् निकृष्ट काव्य रचनाका व्यर्थ प्रयास नहीं करना चाहिए। (८१ गाथा ३)



जसोटी, राप और छैनोसे परोलित युद्ध मुक्पके सनान सज्जनके द्वारा मुगरोक्ति शचीन काथ्योंको तुलापर तौले हुए तथा बुद्धिगके जसोटीपर कचे हुए काथ्य-रसोसे देवोपनान एवं मुंदर शब्दसमूहसे युक्त काथ्योंको ही ग्रहण करना चाहिये: ( मुक्प नाथ या काथ्य नाथके ) स्पेहसे नहीं (५.१. गाथा १) ।

वैनवसे, राजाके नैष्ठिक (साक्षिण्य या आश्रय) से अथवा जलह (दुष्टवर्जन) से ही, निम्नमें काथ्यगुण सत्यता होता है ऐसे काथ्योंको विवकार है (१०.१ गाथा १) ।

ओजपूर्ण उक्तियाँ—

चंद्रमाकी किरणोंको कौन छू सकता है ? (५.४.१२)

मूर्ख ( के घोड़ों ) को गति और रोक सकता है ? (५.५.१)

धनराजके सैन्धवे सींग कौन उखाड़ सकता है ? (३.५.२)

गरुड़के नखों कौन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.२)

क्रूरगृह ( राहु, केतु, शनि आदि ) का मित्र कौन कर सकता है ? ( ५.५.३)

कलते हुए अनिमित्त कौन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.३)

शेषनागके जन्मगिको बलात् कौन छपहरा कर सकता है ? (५.५.४)

प्रसन्नकालमें मर्मांशोत्प्लवित ऊंगर उठती हुई अयंकर लहरोंसे युक्त समुद्रको भुजाओंसे कौन छेद सकता है ? (५.५.४); अर्थात् ऐसे असंभव कार्योंका संग्रह कौन कर सकता है ?

दर्प-दुर्निति—

युक्त, सूर्य और चंद्रमाको कौन देनेवाले राक्षसका सीताके कारण मरण हुआ (५.१३.६) ।

भूते दर्पसे वीरित मर्त्यव दुर्योधनका द्रौपदीके कारण सर्वनाश हुआ (५.१३.७); अर्थात् दर्प और दुर्नितिकारीका निश्चित नाश होता है ।

कौवेके (शरीरके) आकाशमें उड़ सकने मात्रसे ही वह गुपी नहीं हो जाता (५.१३.३०); अर्थात् शारीरिक गुण या अप्रता नाम किसीके गुपी या धनित्याली होनेके धोखे नहीं हैं ।

हस्ति समूहका संहार करने सिंह पक्षत कंदराओंमें जाकर सोता है, यह उसकी प्रवृत्ति या स्वभाव ही है, न कि गीदड़ोंके भयसे वह ऐसा करता है (५.१३.३२.३३) अर्थात् सोते हुए या सोते हुए शत्रुको आपर अपना दुर्बल नहीं मान लेना चाहिये ।

हाथके पंजरे कुंभीके कुंभस्थलको विदीर्ण करके जानेवाले सिंहेके नखोंसे गिरे हुए गरुडगुर्जोंको देखकर जो उस सिंहेको नारकर उल्टे प्राप्त करना चाहे, वह अवश्य पनपणका वंधु (मौतका व्याग) है (५.१४.२-३) ।

जो सैनिक हृदय सहित अपना सिर तो म्बानीके लिए दे देता है, नांस चौरी-री टुकड़े करके गंध मोजी धूम्र-गंधियों एवं राक्षसोंको दे देता है, अपना जीवन सम्यंजकर्म; मुरारनज्जिके लिए त्याग देता है, और शेष भी भग्न रहता है, उसे भी पृथ्वीको अग्नि कर देता है, उस शक्तिसे सनान और कौन क्या हो सकता है ? (६.८५-११) ।

वीर-प्रशंसा—

श्रेष्ठ नखोंसे युक्त एक केसरी अच्छा, महागर्जन करनेवाला हस्तिगोत्रा जैसा नहीं (७.१.११)। आकाशमें धावमान एक ऊँचेका दिनमणि (मूर्ति) अच्छा; सद्योदक (कुगर्भ) कीडोका समूह नहीं (७.१.१२) । बड़ा हुआ विजयल अच्छा बड़गानक अच्छा गन करना उन्नतगृह नहीं (७.२.१३) ।

अष्ट नारनेवाला एक गरुड़ अच्छा; महान् जनघाती विपदर समूह नहीं (७.२.१४) । अर्थात् दुर्जित शत्रुओंको जीतनेवाला अच्छा वीर पुनः सहस्राधिक सैन्यसमूहसे नहीं अच्छा ।

अपने नखोंसे अच्छे हाथियोंके विदीर्ण किए हुए सन्तुंग कुंभस्थलोंसे गलित होनेवाले रज्जुवाहने कपिलधर्म हुए केदार जलाप शिखर स्वर्ध प्रवेशपर मरता है, ऐसे सिंह सम्यंजक कहावते हैं, जबकि वे

धारमको नहीं देख लेते (७४ १-३); अर्थात् श्रेष्ठ नरसिंह भी नरशादूलोसे निश्चित रूपसे भय खाते हैं, परास्त होते हैं ।

अपनी पत्नीके धासगृहमें बँटकर बृहत् लोग भटजनोचित समुल्लास अर्थात् अपनी बहादुरीका विशद बखान करते रहते हैं, पर भिन्नका कार्य सम्पन्न करनेवाले ( सच्चे वीर ) पुष्प बृहत् बिरले होते हैं (७४ ४-५) । हिंदी : अपने घर कुत्ता भी खोर होता है ।

दूसरेके कार्यभारकी धुराकी धारण करनेसे उसके गुरुतर धर्पणसे जिनके कंधोपर चिह्न बन गये हैं, ऐसे लोग अगत्तम दो ही तीन होते हैं या कोई एक ही होता है (७४. ६-७) ।

अपने धवल (श्रेष्ठ) वृषभ (प्रतीक-श्रेष्ठपुरुष) का अपमान करके गरें (अधम) बैल (प्रतीकार्थ अधम पुरुष) पर अनुराग करनेवाले स्वामीका परिचारक वर्ग भी उसकी भार (कार्य) निर्वह करनेकी क्षमताको न जानते हुए उस श्रेष्ठवृषभको हृदयसे सर्वथा भुलाकर गरें बैलके ही प्रतिपालनमें लग जाता है । परन्तु चिक-चिक-चिकने कीचड़ (प्रतीकार्थ महान् सकट) में चक्का फँस जानेसे गाडोके रुक जानेपर जब अधम बैल कंधेको गिराकर मुक्त हो जाता है (भाग जाता) है, तब वही श्रेष्ठ वृषभ गाड़ीको क्षणभरमें इस प्रकार निकाल देता है कि कुस्वामी (पृथ्वीपति, प्रतीकार्थ कुराजा) का हृदय प्रसन्नता (या पदचात्तापकी अग्नि) से फूट पड़ता है (७६ गाथा १-३) ।

अत्यंत अधम बैलके प्रतिपालनमें लगे हुए स्वामीके द्वारा अपने अपमानको भी जो नहीं गिनता, और आपत्तिमें धुराको धारण करता है, उस श्रेष्ठ वृषभको धार-वार नमस्कार (प्रतीकार्थ वही, ७६ गाथा ४) । गरें बैलके साथ जोते जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने पार्श्वमें देखता है कि गुरुभार खींचनेमें यह गरें बैल मेरा अतिरिक्त भार मात्र होगा (प्रतीकार्थ वही, ७६ गाथा ५) । गरें बैलवाला एक चक्का रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने हृदयमें इस प्रकार झुरता है, हाय ! मुझे ही काटकर दोनो दिशाओ (पार्श्वों) में क्यों नहीं जोत दिया गया, अर्थात् मैं अकेला ही भार भली भाँति खींच लेता (प्रतीकार्थ वही, ७६ गाथा ६)

जिसके धुरा धारण करके खुरोसे आहत मार्गमें प्रवेश करनेसे समूह भी घाका (भय) करता है (कि उसमें जानेसे मुझे भी पादाक्रांत होना होगा), वैसे श्रेष्ठ वृषभके साथ स्पर्द्धा करने या जुलनेसे गरें बैल निश्चित भरेगा (प्रतीकार्थ वही, ७६ गाथा ७) ।

राजप्रते भृगुशिष्यके स्थानमें यदि सिंहावाकको अपने अकमें धारण किया होता, तो उस सिंहावाक-के जीते भी राहुके लिए चद्रमाका मर्दन करना दुष्कर होता, अर्थात् कार्यरकी अपेक्षा वीर पुरुषको आश्रय देना निश्चित अच्छा होता है (७-६ दोहा) ।

सन्निधका एक यही परम धर्म है कि युद्धमें कभी आश्रयमें भंग न हो, विजय और पराजय तो बैबा-धीन होती है, पर पीठ दिखानेसे तो लोगोमें लज्जा व निंदाका पात्र बनना पड़ता है (७१२ १३-१४) ।

ऐसा कोई घर नहीं जिसमें पाप न हो (सुंदर एव युवा पत्नियोंके प्रति शंकाग्रस्त ईर्ष्यालु तथा व्याधि-ग्रस्त सेठकी उक्ति ३ ११६) । हिंदी : कोई दूधका घोया नहीं ।

पुत्र ही वक्की सत्तानोकी धारण करनेवाला आशावृक्ष होता है । वही कुलके गुरुभारको अपने कंधो-पर उठाता है और पुत्र ही कुलका शाश करनेवाली आपदा-रूपी बल्लरीकी विघ्नस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति होता है (७७. १५-१६) ।

सत्पुत्र लक्षण—

जो कुलको उज्ज्वल करे, गुणियोंकी गणनामें प्रथम हो, और आचारवान हो वही (सच्चा) पुत्र है (८.८४) ।

कुपुत्र लक्षण—

जिसके पैदा होनेसे शत्रु क्रोध न करने लगे, सज्जन सदा सुखसे आनंद न करें (८.८५) और जिसके दान देनेसे अथवा युद्ध अथ करनेसे, सुकवित्वसे अथवा जिन (देव) कीर्तनसे (८.८६), जिसका यशो-इस इस ससारके पित्रदेवों न समाकर सारे ब्रह्मांडका अतिक्रमण न करे (८.८७), उस सत्सिपायकी वृद्धि

करनेवाले और निजमाताके जीवनको लूटनेवाले पुत्रसे क्या (लाम) ? (८८८)

दुर्व्यसनसे भोगा हुआ पुत्र कुलरूपी अकुरको समूल उखाड़नेवाला और धनके लिए निजके मां-बाप को मार डालनेवाला होता है (८८४-९) ।

माँके लिए पुत्रके दीक्षा लेने विषयक वचन पर्वत शिखरपर वज्रपतनके समान कठोर होते हैं (८७१३) ।

द्वसुरके लिए जामाताका गृहत्याग विषयक समाचार हृदयको करीतसे चीर देनेके समान अथवा विपक्षण-द्वारा भूच्छित कर देनेके समान दुःखद होता है (८१०१२), और संवधोजन—

वज्रपातसे बिध्वस्त पर्वतराजके समान (८१०-३) अथवा गरुडसे क्षपेते हुए सर्पसमूहके समान (८१०४) अथवा सिंहके द्वारा विदीर्ण-कुम्भस्थल-हस्तिपूथके समान (८१०-४) एवं तीक्ष्ण परशुसे काटी हुई शाखाओंवाले (ठूठ) वृक्षके समान अधोमुख होकर बैठ रहते हैं (८१०-५) ।

पुत्र विधोषके कुठारसे माँका हृदय इस प्रकार विदीर्ण कर दिया जाता है, जिस प्रकार अग्निपुजमें बाला हुआ लवण टूक-टूक हो जाता है (९१५-१४१५) ।

उच्चकुलीन कन्या—

निर्मलगुण और उच्चगोत्रवाली कन्याओंका एक ही पति होता है, एक ही माँ, एक ही पिता, एक ही देव (वीतराग) जिन, एक श्रेष्ठ (वीतराग) साधु ही गुरु, और एक ही (सखा) जिससे धर्मका लाभ हो (८१०-१३१४) ।

तपकी निरर्थकता—

यदि मनमें राग-द्वेष नहीं है तो फिर वनमें तप लेकर ही क्या करमा है; अर्थात् उमकी कोई आवश्यकता नहीं (३९-३) ।

यदि मन कषायो (राग-द्वेषादि) से रमा है तो फिर तपश्चरणसे ही क्या सिद्ध होनेवाला है, अर्थात् ऐसी स्थितिमें तपश्चरण निरर्थक है (३९४) ।

अद्भुत घटना—

कातिक आये बिना अबरका निरभ्र होना (४८९) ।

बिना वर्षाके धूलि छात होना (४८१०) ।

बिना वसतके वनस्पतिका फूल उठना (४८-११) ।

हिंदी—(विन वसत बहार), लक्ष्मणान् अकारण धुन कार्योंका गंगल गीना ।

मनोहर देशोंको छोड़कर भी नदियाँ (नदियाँ) जलपूर्ण नागरका अनुगमन करती हैं । हमसे तो यही मित्र होता है कि जनमयी (नदियों) एवं जलमति स्थितियोंमें विवेक नहीं होता, उनका आदेश मगुण (गुण मगुण) के प्रति मंत्री, मन्त्रोने (मन्त्रवण अर्थात् मागर, पद्ममें—सुदृश पृथ्वी) के प्रति होता है (१६०८-२५) ।

बुद्धिमान् लोग ममान (हुल, वयन् आदि) विचारकी प्रमत्ता करते हैं (२११-३) ।

जीवमें कोई म्ल नहीं पण्डिता और धीतवने जिह् तोई स्वर्ग नहीं वैचना (२१८-५) ।

मोरीता जन ला-आकर पर भरना (३१८००) ।

धमकी : यदि धर्ममें एव पण भी आगे रग तो सी मैं अपना (मार्ग) नाम छोड़ दे (८०१८-१५) ।

दूरके नाँवने ममान बालमता घटना (८९१) ।

एक शिस्तका मारे मोर नामगवनी घटना है, पर मुदर पन्थाशोर, मन्त्रियाता तो कई हमरा ।

प्रशान्ति गीता है (८१८१-२०) ।

माता दमर्ग (मार्ग) उन्नीसो उन्नीस मागमें क्या मृदि ? (४१८१०) ।

मुदर मीन छवि मन्त्र नामके मोर तो तो मीन मीन (५८४) ।

मिरदर मीन, मी मोरमदर देव (मोम मीन, मीन मीन) (५८१२) ।

शत्रुको देखते ही बिना प्रतीक्षा किये तुरत पढ़के स्वयं भिड़ जाना चाहिए, अर्थात् शत्रुको देखते ही, उसे अवसर दिये बिना, जो अनुपर प्रथम आक्रमण करता है, उसको विजय निश्चित है (६.५ ८)।

**कहावतोंकी कहानियाँ—**

वर्तमानमें उपलब्ध सुत्रोंको त्याग कर जो भविष्यत् सुत्रोंकी अभिलाषा करता है वह दोनोंसे हाथ धो बैठता है जैसे—(१) मूर्ख किसान (९ ४); (२) विद्यावर (९ ६) एवं (४) सर्प (९ १०)।

विषयलोलुप जीव नर्वनाशको प्राप्त होता है जैसे (१) माम लोनी कीड़ा (९ ५), (२) कामातुर दानर (९ ७); (३) कमलगधलोभी भ्रमर (९ ९), (४) माँग लोभी शृगाल (९ ११), द्वितीयः मीनका मारा शृगाल गाँवकी ओर दौड़ता है, (५) मधु लोभी ऊँट (१० ७) एवं (६) विषम लोलुप बघ।

अति लोभी शृगाल मृत्युको प्राप्त हुआ (१० १२)। जो सोवे सो सोवे (१०.११)।

लकड़हारेको स्वप्नमें राज्यप्राप्ति (१० १३)।

मुँहका नासछण्ड छोड़कर मच्छको पकड़नेका असफल प्रयत्न करनेवाला शृगाल मास (जिसे बाज उड़ा ले गया) और मच्छ (जो पानीमें कूद गया) दोनोंसे गया (१० १६); द्वितीयः आधी छोड़ सारीको धावे, धावी रहै न सारी पावे।

धूर्त शयीका कपटभरा प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है (८ १३ १४ १५)।

पतितो त्याग, जाँरको भी मरवा डालनेवाली असत्ती चोरसे भी गयी और धन तथा वस्त्रोंसे भी हाथ धो बैठी (१० ८-१०)।

बेव्यापै धन, वैभव संपन्न पुरुषको चिरकाल तक आदरपूर्वक आतिथ्यादिके द्वारा मधुके छनेके समान पूर्णतया चूस कर छोड़ देती है, और नये क्षुद्र पुरुषोंको धूमने (चूमने)में लग जाती है (९ १२ १८-१९)।

‘जंबूसामिचरिड’में प्रयुक्त सुभाषितों एवं लोकोक्तियोंका विषय क्रमसे अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कविने जिस प्रकार अपनी संपूर्ण रचनाओं और उसकी अंतर्कथाओंमें समाज जीवनके विविध पक्षोंका सर्वांगीण उद्घाटन किया है, उसी प्रकार सुभाषितोंमें भी उन्होंने उसका कोई पक्ष छोड़ा नहीं। कविसमयके अनुसार सज्जन और दुर्जनोकी प्रकृतिका प्रथम उल्लेख, गुण-दोषोंकी चर्चा; कवि और काव्य-विषयक स्थापनाएँ, जोजपूर्ण उक्तियाँ, जिनके आलवन सुर, नर, पशु सभी हैं; पारिवारिक जीवन, सुख-दुःख दोनों प्रकारका, माता-पिता, सर्वविधोका वात्सल्य, कुलीन कन्या व कुलपुत्रोंके सज्जन; साध्यात्मिक-धार्मिक विश्वासोंसे संबद्ध उक्तियाँ, सामान्य लोक प्रचलित उक्तियाँ और कहावतोंकी कहानियाँ, यह सब कुछ कविने अपने काव्यमें प्रयुक्त सुभाषितोंके आयाममें पिरोया है। इन सबके कारण ‘जंबूसामिचरिड’ के महा-काव्यत्वमें और भी अधिक निखार आ गया है।

## ८. जंबूसामिचरिका भाषा एवं व्याकरणात्मक विश्लेषण

गत-पचास वर्षोंमें अपभ्रंश भाषा और साहित्यके क्षेत्रमें पर्याप्त कार्य हुआ है। इस बीच दलाल और गुण-द्वारा ‘भविष्यत्कहा’; लालदास भगवानदास गाधी-द्वारा अपभ्रंश काव्यत्रयी, डॉ० उपाध्ये-द्वारा परमात्मप्रकाश और योगसार, पं० ल० वैद्य-द्वारा पुण्यदंत कृत अपभ्रंश महापुराणके तीन भाग और ‘जसहृद चरिड’, डॉ० ही० लालू जैन-द्वारा सावयवम् बोहा, पाहुडदोहा, नायकुमारचरिड, करकंडचरिड, भयणपराजयचरिड, सुगवदशमीकथा और सुदंशचरिड तथा छिरिचंद कृत अपभ्रंश कहकोसु, डॉ० ह० व० नायाणी-द्वारा स्वयंभू कृत पद्मचरिड (तीन भाग), स्वर्गीय राहुल-द्वारा अपभ्रंश दोहाकानु तथा अजु-रहमान कृत सदेशरासक आदि अनेक अपभ्रंश रचनाएँ प्राकृत-अपभ्रंशके उपयुक्त मूर्द्धन्य विद्वानों-द्वारा

सुसंपादित होकर प्रकाशित हुई है। इनके संपादको-द्वारा इन ग्रंथोंकी भूमिकामें प्रत्येक ग्रंथकी भाषापर विशेष और अपभ्रंश सामान्यके स्वरूपपर बहुत विस्तार और सूक्ष्मतासे प्रकाश डाला गया है। इन रचनाओंके अतिरिक्त स्व० पिशल महोदयके व्याकरण, डॉ० तयारे कृत अपभ्रंशका ऐतिहासिक व्याकरण, डॉ० देवेन्द्र कृत अपभ्रंशप्रवेश, डॉ० नेमिचंद शास्त्री कृत अभिनव-प्राकृत व्याकरण, मधुसूदन चिमनलाल मोदी-द्वारा संपादित अपभ्रंशपाठावलीकी भूमिका, डॉ० नामवरसिंह कृत 'हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान'; डॉ० देवेन्द्र कुमार कृत 'अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य', डॉ० हरिवंश कोळड कृत 'अपभ्रंश साहित्य' डॉ० सोमर कृत 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य' प्रभृति ग्रंथोंमें भी अपभ्रंश भाषाके स्वरूपपर बहुत ही गहराई और सूक्ष्मतासे विवेचन किया गया है। सामान्यतः 'जंबूसामिचरिउ'की भाषा वही नागर अपभ्रंश है, जिसमें स्वयंभू और पुरुषदत्त जैसे खेळ अपभ्रंश महाकवियोंकी काव्य कृतियां हैं। इसकी भाषामें इन कवियोंकी रचनाओंसे जो विशिष्ट भेद है, वह प्रारंभिक और मध्यवर्ती संयुक्त न, ख के प्रयोग विषयक है। इस विषयमें 'पाठ संपादन पद्धतिके अंतर्गत विवेचन किया गया है। भाषा और व्याकरणका स्वरूप संक्षेपमें निम्नप्रकार है—

§ १ प्रयुक्त स्वर : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, — (अनुस्वार) एव ँ (अनुनासिक)।

§ २ व्यंजन : क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म्, य र ल व श् ह,

### स्वर विकार

§ ३ अ > इ अकहिञ्जमाण (१२) उट्टिड (५१०)।

अ > उ मुणइ (५.१३) अरुहयास (४.३) अरुहणाइ (३१३)

अ > ए एण्णतरे (१.५) एण्णु (२११) वेत्ति (५१३)

§ ४ आ > अ सीय ३१२ मालिइल्लय ५२

आ > उ उल्लिय ९१५

§ ५ इ > अ सिरस ८९

इ > उ उल्लु ५९

इ > ए उत्तेडिय ५७, जि > जे, विष > वेंष

§ ६ ई > आ आरिस ९१६

ई > ए एरिस ८१०

§ ७ उ > अ कथ ७१, कुर > करि ८१, गरुयारउ १५, मउड, कुसम ८९

उ > इ कुर > करि ८१०, किगुरिस ९१२

उ > ई सुणी ११५, डुहिवा > घीय ११३

उ > ओ सुकुमारिका > सोमालिया ८१०, पोग्गल १०५, मोग्गर ६१०, कोत ५१४

§ ८ ऊ > उ अउव्व ९२, फुक्कार ५८

ऊ > ए नेउर ८९

ऊ > ओ बहुमोल्ल १०२१, थोर ८११, तवोल ८९

§ ९ ऋ > अ कय ९४, कयत ३७

ऋ > इ किण्ड ४१३, अलकिय ३८, अत्ति ११०, अमिय ८२; किउ ४९ आदि

ऋ > उ पुहह १०११, अपाउस ४८

ऋ > ए स्वगृह > संगेह ४५

ऋ > रि रिद्धि ३६

ऋ > अरि उद्भूत > उव्वरिय ३७

- § १० ए > इ अणिमिस ८-९; अमरिद ४.१  
 ए > ई लोह ५.१४  
 ए > ऐ जंति; जर्ग १.१; कर्ज १ २; जर्ण १.३ आदि
- § ११ ओ > उ अवस्यस ५ २; अण्णुण २ ५, सट्ठवम्म ९ १  
 ओ > ऊ ऊमारिय ७.७  
 ओ > आ तर्हा १.३; वीरर्हा १.२; विउसर्हा १ २  
 ओ > ऐ करोमि > करेमि १.३
- § १२ ऐ > ए अवरेवक ९ १६  
 ऐ > इ अवरिवक ९ ६  
 ऐ > अइ कइलास ९ ६; कइरव ८ १५; दइव ५.१३
- § १३ ओ > ओ जोव्वणु ४ १३; अवमोयस १०.२१; ओसही ३.१४  
 ओ > अउ पउरजण १ १५
- § १४. ह्रस्वस्वरका दीर्घीकरण : जहाँ किसी मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनमें-से एकका अथवा प्रथम स्वरके अनुस्वारका अथवा अंत्य व्यंजनका लोप कर दिया जाता है, वहाँ पूर्वका ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है—  
 अइवाइय ११.११, वीसमण ४ ९, वीया ४ ९, सीस (शिष्य) ७ १३, वीसोवहि ११ १२; सिहो २ ५८
- § १५. दीर्घस्वरका ह्रस्वीकरण : संयुक्त व्यंजनके पूर्वका दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—  
 अफ्फालिय १ १५; अच्छेरअ ९.१०; अज्ज (आर्य) १ ५, चरणम १.१; तित्तु १.७; परिक्खा १ २, रज्ज ३ १४ आदि । अन्यत्र भी जैसे - वित्थर १.५; अइइ १० १३; विण ७ ३, कुमर ५ ७; गहिय १ १ मं०, गहिर ४ १९, यविय ११ ६ आदि । छंदार्थ—महकइ १.३, संतुव १ ४
- § १६. ह्रस्वस्वरका अनुस्वारत्व : अंसु ४ ११, संट १० ७, संवर ५.८, कंचाइणी ७ ६; करफंसण ५ ४, दंसण ८ २
- § १७. स्वरलोप  
 (क) आदि स्वरलोपः हउं ३ ७; हेड्डामुह २ १८, हेड्डिल ११ १०  
 (ख) मध्य स्वरलोप : उविह १०.२, देवदत्त १ ५, पत्ति ४ २१, पोफल १ ८  
 (ग) अंत्य स्वरलोप . अमामें १ २, इयें १.४, चलणमों १ १, सहावें १.२ आदि ।
- § १८ आदि स्वरागम : इत्थिरज्ज ९ १९
- § १९. स्वरभक्ति . आयरिय २.८, वीहुर १ ३, सलह्ज्ज ४ ९, सिविण १ ३; दरिसिय ३ १२, किलेस १० १२
- § २०. स्वरव्यत्यय . आइचर्य > अच्छरिय > अच्छेर ९ १०, ब्रह्मचर्य > वंमचरिय > वंमचेर ३ ९;
- § २१. स्वरागम . जब किसी शब्दमें पहले आया हुआ कोई स्वर उसीके पीछे आनेवाले स्वरसे प्रभावित होता है, तो उसे स्वरराग कहा जाता है । जैसे —इक्षु—इच्छु > उच्छु ५ ९; कृत्वा—करवि, करेवि, करिवि इसी प्रकार अप्पिवि, आयणिवि ९ ७; पइसिवि ९ १०; पेक्खिवि, मेल्लिवि, मेल्लेवि, मिक्खिवि ६ १३ ८ १०, आदि ।

### व्यंजन विकार

- § २२. (क) आदि असंयुक्त व्यंजन साधारणतः यथास्थित सुगठित रहते हैं पर कुछ विशिष्ट शब्दोंमें उनमें परिवर्तन या व्यत्यय हो जाता है, जैसे —धृति > दिही १ ६, दुहिता > वीय ११ ३, दग्ध-डज्ज २ १४, डहण ७ ९, डाढ ३ ८, निलाड ४ १३ ।

(ख) आदि 'य' को 'ज' : जमल १० १६; जयुल १.१ मं०; जत्तुल्लव ३.१३; जहा १०.१, जपति ५ ६ ।

(ग) आदिमें मंयुक्त व्यंजन रहनेपर एकका लोप हो जाता है : पडिवयण, पडिवया-  
वोयड; धंम, खंम, छुह, कणिर; फार ४ ५ इत्यादि ।

§ २३. मध्यवर्ती असंयुक्त व्यंजनोंमें क् ग् च् ज् त् द् प् व् य् व् का प्रायः लोप होता है, उनके स्थानमें  
कही तो केवल उद्बृत्त स्वर ही ग्रेप रहता है, और कही 'य' श्रुति या 'व' श्रुति होती है ।

§ २४. 'य' और 'व' श्रुतिका नियम : हेमचन्द्रके अनुसार उद्बृत्त 'अ' और 'आ' स्वरोंके बीच  
'य' श्रुति होती है, कानी नहीं भी होती है । परंतु 'जंजूसाभिचरिउ' में ऐसे उदाहरण नहीं  
मिलते जिनमें 'अ', 'आ' स्वरोंके बीच इन्हीं शुद्ध स्वरोंका प्रयोग ही अर्थात् अ-आ स्वरोंके  
बीच यहाँ सर्वत्र य श्रुति होती ही है । अन्य स्वरोंके बीचमें अधिकान्ततया य श्रुतिका  
सद्भाव दिखाई देता है, जैसे :—इ-ई और अ-आके बीच, उ और, अ-आ के बीच, ए और  
अ-आ के बीच तथा ओ एवं अ-आ के बीच इन सबके उदाहरण नीचे दिये गये हैं ।

'व' श्रुतिकी स्थिति बहुत अनिश्चित है । सामान्य रूपसे उ और जो के बीच 'व' श्रुति होती है,  
ऐसा माना जाता है । परंतु प्रस्तुत रचनामें स्थिति इससे भिन्न है । विशेष बात यह है कि अनेक स्थलोंपर  
'य' और 'व' श्रुतिके प्रयोगमें कोई भेद दिखलायी नहीं देता । वल्कि यह वास्तवमें लेखकके स्वच्छंद अर्थात्  
स्वेच्छापर निर्भर करता है कि अ-आ स्वरोंके बीचको स्थितिको छोड़कर इनमेंसे किसी भी श्रुतिका प्रयोग  
करे अथवा केवल उद्बृत्त स्वर ही रहने दे । मूल लेखको-द्वारा श्रुतियोंके प्रयोगमें यह स्वच्छंदता देखकर ही  
प्रतिकारने कुछ स्वच्छंदताका वर्तन किया है, यह प्रतियोगे पाठभेदोपर-से स्पष्ट प्रतीत होता है । जहाँ एक  
प्रतिमें 'य' श्रुति है तो दूसरीमें 'व' श्रुति और तीसरीमें केवल उद्बृत्त स्वर । पाठभेदोपर ध्यान देनेसे ऐसे  
अनेक उदाहरण दृष्टिगत होंगे । अब कुछ जुने हुए उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

'य' श्रुतिके उदाहरण

(क) अ-आ के बीच : अरुह्यास ४ १; भाय १०.२५; कयकणिय ६.३; कयावि ३ ६; कायरी  
९ १७; नायणु १४.४, पायार ४.१४, भवयत्त ३ ३, मायरी ९ १७; लयड ९.१३; लायण्यु  
४.१४, वयणुल्लड ५.२, सयल ७ १३ ।

(ख) इ-ई एवं अ-आ के बीच : कणिय ६ ३; तावीयड ९.९; परिणायवि ७.१३, पाहरिय;  
वीयड २ ५; मियंक ७ १३- लइयं ८.१५- वहरियाण ६ १२- वियार ९ १३; सोयल १ १३;  
सम्माणिय ७ १३ इणिय १ १ म० ।

(ग) उ-ऊ एवं अ-आ के बीच : गरयारड १५, जुयलुल्लड ८ १६- मुयण ६.२, भुयदंड ६ २,  
जुय ४ ३, जूयार ४ २, दूय ५ १३ दूयडिया ८ १५- घूयविलंबण ११ ६, पूण १-१८,  
रुयकमु ९ १८ सूयाहर ४-८ ।

(घ) ए एवं अ-आ के बीच : केयार ५ ९; तेयमाल १० १ तेयचारि २ ३- पेयलड ५ ४४,  
मेय ५ ३, सेय ३ ८; हेमेयड ८ १५ ।

(च) ओ एवं अ-आ के बीच : कोयड १०.१२, खोयणु ९ ८ भोय १.१०; भोयण ८ १३ भोदा-  
वर ५ २; भोयण ६ ३; लोयाण ९-८, लोयवार ८ ७; लोयग ११ १२, लोय ३ १; लोयाहाण  
५ ४. सोयाडर ३ ७ ।

'व' श्रुतिके उदाहरण

(अ) अ-आ के मध्य : भवयत्त २ ५

(ब) आ-इ के मध्य : परिणायवि ३ ४

(स) उ-ऊ एवं अ-आ के मध्य : उवव ११.९, उवयागड ९ १, उवहि ४ १६, छुवहि ५ १३,  
ज्वार ८.२, मुवडाणिग ५ ९, लहवारड ३.५, विरुवड ५ १३; मसिगोरव ८ १६

(द) ओ एवं अ-आ के बीच : जोवद् ९.१४

इन उदाहरणों पर-से 'य' और 'व' श्रुतियों का इस रचना में प्रयोग बाहुल्य तो स्पष्ट होता ही है, उनकी अनियमितता भी प्रकट होती है। और साथ ही 'व' श्रुतिका एक भी ऐसा दृष्टांत उपलब्ध नहीं होता जहाँ 'उ' और 'ओ' स्वरों के बीच 'व' श्रुतिका प्रयोग हुआ हो।

§ २५ 'य' और 'व' से सबद्ध एक और नियमका यही उल्लेख करना उचित है। वह है सप्रसारण-का नियम। इसका अर्थ है 'य' के स्थान पर 'ह्', एवं 'व' के स्थान पर 'उ' होना। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हूँ—

(क) कात्यायनी—कंचाङ्गी ७ ६, उष्पाङ्गि ४.३; विज्ज् १.२

(ख) 'ह्' के स्थान पर 'य' और 'उ' के स्थान पर 'व' का प्रयोग संप्रसारण के ही समीपवर्ती स्थिति है। जैसे—देवालय—देउल ४ १०, देवल १० ८, पङ्गु ४.२; पयङ्गु ५ ११।

§ २६ व्यंजन परिवर्तनों के व्यवस्थित उदाहरण प्रस्तुत करने के पूर्व एक और विशेष नियम उल्लेखनीय है, जिसे वर्णप्रक्षेप कहा जाता है। जिसका अर्थ है किसी शब्द में किसी वर्ण के स्थान पर किसी अन्य अविद्यमान वर्णका आना जैसे—आम्र—अंभ ४.२; ताम्राक्षर—तंवाहर ४ १८, तंविह ५.१२, ललाट—निलाट ४.१३, चिकुर-चिहुर ४ १३।

व्यंजन परिवर्तन और विकारों के उदाहरण

(क) क् और ग् आउंचिय ४ १३, आउल ५.६, आय (अगता) ८ ४, आयम ३.९ आदि

(ख) च् और ज् आयरिय २ ८, आयार ८ ८; परिच्य—परिचय ८ १, भुयंग ३ ८

(ग) त् और द् आगया ९ १७, आह्य ८.७, आसाइय १०.१, आइहु ५ ६, आएस १ १६, आसाइय १० १; उवयाण ५ ३

त् > इ उप्पिड ५ १०, पडिय ५ १०, पडियार ७.८

त् > ह भरह (भरत) १.५, भारह १ ६

द् > ड डज्ज, डहुण, डाड

(घ) प > व आउण ४ ६, आऊरिय १०.२४

प > व आवण ५ १, आवणअ, ४.२, उवभुजइ २.१३, यवइ (स्यपति) ३.४; मवइ (मापयति) ४ १९

प > फ फुल्ल १० १९, फोफल १ ८

(च) ट > ड आरडिअ ७ ८; उग्पाडइ ९ ८, उप्पाडण १० २०, कण्णाड ६ ६

(छ) ह्, र् > ल कामकील १० २३, चलण ६.१४

(ज) त् > न् ज्ञाणानल १ १ म०, महानल ३ ८

न लोप स्थान > ठाय ५ ४

म् > व् कहविय ४ २२, दवण ४.२०, रवण ३.१३, सवण २.१९

(झ) व् > म् एवमेव > एमहँ २ १८

व लोप कइ, कइत्त आदि

(ट) म् > व नअ > नउर ४ ६

(ठ) र् > ह् आडविय (आरव्व) ३ ९

(ड) श् > ह् दहलक्खण ११-१३; दहविह ११ २

(ढ) श् > ष (सर्वत्र) दसमए ८ ५; सरीर ८ ७

§ २७ अघोष महाप्राण वर्णों ख् घ् थ् फ् म् के स्थान पर शुद्ध महाप्राण ह् का आदेश :—

(क) ख् > ह् : अहिमुह ७ १०, आहडल, २ ४, सिहडि ५ ८; सिहि (शिखि) ९ ९

(ख) घ् > ह् विहडंठ १०.१८

(ग) थ् > ह् अहव १० २३; आरिसकहा ८ १, जहा, तहा आदि



(घ) घ > ह, अहरत्त ११.६; अहृत्तल २.१४, अहिउ ९.१०

(च) फ > ह, अहल ८.१४

(छ) भ > ह, अविहत्त २ ५, अहिणंदिउ ४.४, अहिमुह, अहिराम १०.१, अहिसारिआ ८.५

§ २८. मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनोके विषयमें असवर्ण संयोगके स्थानपर सवर्णसंयोगके द्वारा समीकरणकी विधि सर्वप्रधान है। इस समीकरणमें सदैव प्रबलतर ध्वनि दुर्बल ध्वनिकी अपनेमें समीकृत कर लेती है, चाहे वह संयुक्त व्यंजनमें पूर्व हो या पीछे। जब पीछे आनेवाला व्यंजन अपनेसे पूर्ववर्ती व्यंजनको समीकृत कर लेता तो उसे पुरोगामी समीकरण कहते हैं—

(क) पुरोगामी समीकरण—आरुहु ७.६; उक्कठिय ७.१२, उक्कत्तिय ५.८; उक्कथ ५.११ उक्कठिय ९.१८, कम्म, जम्म, वम्म आदि।

(ख) पश्चयामी समीकरण जब पुरोगामी व्यंजन अपने पश्चवर्ती व्यंजनको अपने रूपमें समीकृत करता है, जैसे, अज्ज, अग्गि, आयुक्क, कत्थ, जोग आदि।

(ग) जब ऊष्मोका समीकरण होता है तो वे दूसरे व्यंजनको सप्राण कर देते हैं। जैसे—अत्थइरि ६.१०, अत्थाण ५.१, कुच्छिय २.२, खंघ ६.११, थम ५.१२, पासत्थ २.५ आदि।

(घ) स्वरभक्तिये विसंयोजन : आयरिय २.८, आरिसकहा ( आर्षकथा ) ८.२ उग्गरिय ३.७; किलेस १०.२२, दरिसिय ३.१२

(च) संयुक्त व्यंजनका सरलीकरण करके अनुनासिकीकरण : कंचाहणि ७.६, पडिजपइ ८.१६; जिणवंसण २.१८, विमिय ३.१ आदि।

§ २९. कुछ विशिष्ट संयुक्तव्यंजनोके परिवर्तनके उदाहरण

ख्य > ह, लोयाहाणउ ५.४

वव > क्, कणिर ४.१५

क्ष > कख उमिस्त ९.१२, दहलक्खण ८.३; म्हालिय १.३

क्ष > ख खयकर ३.७, खज्जोयय ७.२, खतञ्जु ७.१२, खति ११.८; खोणिमडल ४.२१

क्ष > ह, छुह १.८, छत्त ५.९

क्ष > क्ष क्षर ६.९

ग्व > ज्ञ्, ज्ञ्ज्जमाण ४.१४

ज्ञ > न्, नाणावरण १०.२४

> ण्, आणत्त ४.१६

> ण्, विण्णमाण ८.४, अण्णानुवएस ८.३

रम् > र्म्, अप्पण १०.५, अप्पत्त ९.११

र्य > र्, कचाहणि ७.६, कचायणि १०.२५

> ञ्, सच्चवाणी ६.१

रस् > र्स्, उच्छव ४.८, उच्छाह ७.१२, उच्छेह ३.१

र् > ज्ञ्, उज्जण-३.१२, उज्जोद्ध १.१५, विज्जुमालि २.३

ध्य, ध्व > ज्ञ्, उज्झात्त १०.५, वुज्झइ ८.९, अज्झाण (अज्जान) २.८

क्व > क्, चिकुर > चिकुर > चिहुर ४.१३

व् > व्, अहरोहु ९.१८, आरुहु ७.६, दिहु ६.१

व् > व्, वेडिउ ६.१

व् > व्, मसिदाढ ६.१

> द, उट

ध > ह, अहिट्टिउ ४.१३

ष्ण् > ह्र, ॰ह्र	विट्ठ २६; उण्ह १० १५
स्क् > ख्	खंघ ६ ११
स्व् > ख	खलइ
स्त् > ख्	खंम ४.१३
> थ्	थंम ५.१२
> त्व्	कत्थूरिय ८ १४; विगेप : सस्त > ल्हसिय ४ १९
स्व् > थ्	अयाम ४.११, थवइ ४ २; थाण ७.१०, थिउ ५.१४, थोत्त १ २९, थोर ८ ११
> द्	ठविय ४ १४, ठाण ५.१०; ठाय (स्थान) ५ ४
स्क् > फ्	फाडिय ७ १; फलिह्वण्णु १.१७, फार ४.५
स्म् > म्, मु, म्ह	विभिय २ १३, विमउ ३.६, सरिअ ६.९; अम्हइ ५.१३
ह् > व्	संघरेवि ६ १
ह् > ह	विहलंघल ८.११; विहलफड ३ ८

कारक रूप

संज्ञाए : अकारांत पुल्लिङ्ग व नपुं० लिङ्ग :

एकवचन

प्रथमा : अंतैरु, आउसु, कुंजरो, चोरु, जणो,  
जिणो, तउ, तित्थंकर, तेयं, दिउ, देउ,  
देवदत्तु, नरु, निउणु, परम गुह, बालो,  
मऊरो, मुहं, रउजु राउ, रिसहो, वड्ढमाणु,  
वरइत्तु, वीरु, वेसरो, सुयणु, सेणित्त, सूरो  
द्वितीया : देवसहं, फलुरयणसिहं, (शेष प्रथमानुसार)  
तृतीया : कुमरें, जणेण, जिणसरे, चाएँ, देवें, धम्में,  
नाहें, पाविणं, पियरें, भाविणं, राइणा,  
राएं, राएण, सुत्तेण, सेणिएण, होरेण

इकारांत-उकारांत पुं० व नपुं० लिङ्ग :

एकवचन

प्रथमा : कइ, नरवइ, नराहिवइ, परिमिट्ठि  
द्वितीया : मेरु, रवि, रिसि, सामी

तृतीया : मुणिणा, सट्ठिणा, हत्थिणा  
पंचमी : कुगइपहं, चराउ, ठायहो तत्थहो, वहिं,  
नियडउ, नयारहो, मुहहो, वामहो  
चतुर्थी } अज्जेणप्प, कज्जे, कज्जहो, केवल्लिहि,  
एव } जणेरहु, तेल्लियहो, दइयहो, देवत्तहो,  
पण्ठी } देपहो, निवहो, पाएसहो, रज्जहो,  
राउलउ, रायहो, वोरहो, सामिहि,  
हत्थिहो, नरस्स, पुरिसस्स, पुस्सोत्त-  
भस्स, वीरस्स, समुद्धस्स

बहुवचन

गामार, गोवाल, जणु, नायरा, बाला,  
पहरणा, रिउणो, विरला, सवा (शवाः)

उज्जाणहें, गयउलाहें, जणाहें, तलायहें,  
तीरहें, देसहें, धणहें (प्र० द्वि० दोनोमें)

बहुवचन

अयाणा, कइदा, गुणिणा  
वइरिणो, अहारहिं, उरुयहिं, कुडुविएहिं,  
जूयारहिं, तेहिं, विस्सिएहिं, धण्हिं,  
मारइयहिं, पहियहिं, भावहिं मिल्लेहिं,  
मुहेहिं, सत्थहिं  
सेवयहिं । कहहिं, पाइहिं

कामुयाण, खयरण, चदसूराण, भग्वाण,  
मुणिदाण, रायाण, तियसहु, मिहुणहें,  
कळ्हें (पष्ठयार्थे ससमी)

इका-उका : नरवइणो, पट्टणो, विहिणा

सप्तमी : अहरप्प, खग्गके, गोठुंगणे, तरवरे  
पच्चूसे, मग्ग, रयणि, रज्जे

रमणीये, रवणइ, सल्लोणप्प, सिहरि  
सुयणे, सोत्ते, हत्थि (हस्ते), हियवइ  
घरम्मि, दारम्मि, नाणम्मि, फडक्कम्मि

संबोधन : केवलनाणघस, ताय, तित्थंकरु, देउ, देव,  
परमेसर, पुत्त, पुरंदर, भवएव, राय

निर्विभक्तिक : सेणिउ (पष्ठ्यायें), पट्टिहारय (तृतीयायें)

स्त्रीलिङ्ग : आकारात्, ईकारात्

एकवचन

प्रथमा : अच्छर, कुमारी, खोणी,

द्वितीया : तिय, पियारी, पुहवि, वसुमइ  
सत्तुव, सिवएवि

तृतीया : अहिलासैं, उत्तालियाप्प, ओसहीप्प  
कट्टणियइ, °ओईप्प, ताप्प, दित्तिप्प  
दिट्ठिए, पट्टाए, भत्तिए, भित्तिए  
मुट्ठियए, °रिट्ठिए, लच्छीए, वाणिए  
संकप्प, सुहाए

पञ्चमी

चतुर्थी } अवादेवयहिं, कतहं, कोइलाप्प,  
एवं } धम्मियहं, पुट्ठिहं, महिलहं, मुट्ठहं,  
षष्ठी } वणमालहं, विट्ठइहं, सरिहं, सुट्ठिहं

सप्तमी : आउसि, कण्णप्प, सेणिण, निसहिं

संबोधन : कंठ, मुट्ठडिए, मुट्ठि, मुट्ठ, सुंदरि.

सर्वनाम : पुल्लिङ्ग-नपुंसकलिङ्ग :

एकवचन

प्रथमा : हज्जे, तुमं, तुहं, सो, जं, तं, इहु  
एहु, काइं, किं

द्वितीया : मइं, तउ, तुमं, तं

तृतीया : मइं, मइ, पइं, तेण, आए, एण, हजेण

चतुर्थी } मज्झु, मम, महु, महु तणउ, मे, मोर

एवं } तउ, तव, तुह, तुहार, तोर

षष्ठी } तस्स, तहो, तासु, आयहो, इयस्स,  
एयहो, कस्स, कहां, कहां, कासु,  
जस्स, जसु, जासु, तस्स, तहो, तासु

संबोधन : तुम

घरहिं, दक्खहिं, नयणेहिं

नारइयहिं, पाठलियहिं

भूमंगहिं, °भोयणहिं

लोयणहिं, विमाणहिं

घरेसुं, वणेसुं

बहुवचन

अज्जियाउ, कवोला, कामिणिउ

कुमारियाउ, गोरिउ, ताउ, देविउ, वाविउ,  
साहउ, सणाहउ, सुरमणिउ, दालियाहं,

राणियणु

अतेउरिहिं, अच्छिहिं

गोविहिं, वरणिहिं, विट्ठिहिं

नियवणोहिं, पायारहिं

वाहहिं, वैल्लिहिं

घरिणिहं, पउसियवइयहं, रमणिहं, वणोच्चत्थ-  
णोणं, °लोयणीण, दूरपियाण

करिणिहं, जडमइयहिं, तियहिं, °पालंबहिं,  
भुएहिं, मंडुरहिं, कीलासु

बहुवचन

तु० पु० जे

जाइं ताइं

अम्हारिसिहिं, इयरहिं

अम्हहं, तुम्ह

तुम्हहं, उहु (तेषां)

ताणं, जाणं, जाणं

स्त्रीलिंग :

प्र० एह, क (का), जा (या)

द्वि० क (काम्)

तृ०

तेहिं ( ता मिः )

च० प० : तह, तहे, ताह, तिह, कहे, काहि, जाहे

तहुं ( तासाम् ), एयाण

सर्वनाम, विधेय और अव्यय :

[१] (अ) परिमाण वाचक विधेयण एत्तिउ, केत्तिउ, जेत्तउ, तेत्तउ एतडउ, तेत्तडउ, एवडा ।

(ब) गुणवाचक विशेषण . एहुउ, जेहुउ, तेहुउ, अम्हारिस, ऐरिस, केरिस, केरिसी (स्त्री०) जारिस, तुम्हारिस ।

[२] अव्यय : (क) स्थल वाचक : एत्थु, केत्थु, जित्थु, जेत्थु, तत्थु, तित्थु, तेत्थु, केत्थुहा, जेत्तह, तेत्थहा; इह, कहिं, जहिं, तहिं, कउ (कुतः) तउ (ततः); अण्णेतह, एत्तहिं, एत्तह, जेत्तह ।

(ख) समय वाचक जा, ता, जाम, ताम, जाव, ताव, एमहि, एवहिं, जामहिं, तामहिं, तावहि, जइयहु, तइयहु, तइया ।

(ग) रीतिवाचक अह, किह, जह, जिहा, जिह, तह, तहा, तिह, जिम, जेम, तेम

(घ) अस्मद् और युष्मद् के पञ्जी रूपों में 'आर' प्रत्यय युक्त अव्यय : अम्हारउ, तुम्हारउ, महारउ

(च) संज्ञा और सर्वनामों के पञ्जी रूपों के साथ 'केरउ' और 'तणउ' प्रत्यय लगाकर भी अव्यय बनते हैं : अम्हकेरउ, करवालकेरउ, महुतणउ ।

(छ) संबंधवाचक अव्यय : सह (सार्द्धम्) ।

संख्यावाचक शब्द :

एक, एकु, दो, वे, बिणि, तिउ, तिणि, चयारि, पंच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, दह, एयारस, एयारह, बारह, तेरह, चउदह, चउदस, पण्णारह, सोलह, सत्तारह, अट्ठारह, बीस, बावीस, पंचवीस, तीस, तेतीस, चउसट्ठि, सय, सहस, लख ।

संख्यावाचक विशेषण पडमु, पहिलउ, पहिलारउ, बीयउ, तइयउ, चउत्थु, चउत्थउ, पंचमु, अट्ठम, सत्तम, अट्ठम, नवम, दसम, एयारसम ।

तृतीया बहुवचन—तिहिं ।

सप्तमी एकवचन—एकहिं, तइयइ, चउयइ, पंचमे, छट्ठे, सत्तमे, अट्ठमि, नवमइ, दसमइ, एयारसमइ, एयारहमे, बारहमे ।

सप्तमी बहुवचन—तिहिं, पंचहिं । अन्य रूप- चउक्क, चउक्कउ (चतुष्क) ।

तद्धित प्रत्यय :

अल्ल : एकल्ल, नवल्ल (स्वा० प्र०) । आर : गरुआर (स्वा० प्र०) लहुवार । आल : सांहालिया (नामसे विशेषण) । आवण : भयावण, सुहावण, सुहाविणि (विशेषण) । इक्क : तिडिक्किय, पाइक्क (स्वा० प्र०) । इण : अज्जेणअ । हर : उब्बेहरि, कंखिर, कणिर, कोक्किर, नमिर, विच्छिट्ठिर, विवरेर (क्रियासे विशेषण) । इल्ल : जइल्ल, रसिल्ल, (नामसे विशेष०) । उल्ल : अहल्ल, फलिहल्ल, गुवणुल्लउ, रमणुल्लउ । एर : जणेर । डिय : चारहडिय (स्वा० प्र०) । तण : नरतण, वुहत्तण (भाववाचक संज्ञा) ल : अंघलउ, जमल, विज्जुल (स्वा० प्र०)

## क्रिया रूप

अपभ्रंशमे वर्तमान, भूत और भविष्य, कुल ये तीन 'लकार' हैं। इनमे भी वास्तवमें कुल दो, वर्तमान और भविष्यके ही रूप उपलब्ध होते हैं। भूतकाल वाचक बहुवचन थोड़े गिने-चुने शब्द उपलब्ध हैं। शेष भूतकालका सारा कार्य कृदंतोसे लिया जाता है और केवल वर्तमान तथा भविष्यके ही अधिक रूप अपभ्रंश काव्योमे उपलब्ध होते हैं। आत्मनेपद और परस्मैपदका भेद भी अपभ्रंशमे नहीं है और वृत्तियोमे प्रमुख रूपसे विध्यर्थ और कुछ थोड़े-से आज्ञार्थकरूप प्राप्त होते हैं। इच्छार्थक और आज्ञार्थकके रूप समान ही हैं। इनके अतिरिक्त कर्मणि-प्रयोगके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। इन सर्वोसे ही अपभ्रंशका दिया संबंधी संघटन-संविधान और प्रयोगोका प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हो जाता है।

## वर्तमान काल

## एकवचन

## बहुवचन

प्र० पु० : अणुसरमि, उदकीरमि, जामि, भणमि, भुजमि, लेमि, होमि।

द्वि० पु० : जाणसि, मुणहि, होसि।

तृ० पु० : अणुणइ, अचिमट्टइ, आउच्छइ, ईहइ, उप्पज्जइ, करइ, उप्पज्जंति, फंडहिं, कीलहिं, गुडंति  
कुणइ, गच्छइ, जाइ, पढइ, सि (अस्ति), होइ जुप्पंति, दोसंति दणरणहिं, रमति

## भूतकाल

आसि (आसीत्)

तृ० पु० : अच्छोड्डिस, अब्भसियउ पइट्ठु आय—आगता (स्त्री०) गय—गता (स्त्री०)

## भविष्यत् काल

प्र० पु० : जाएसमि, लेसमि

द्वि० पु० : .

तृ० पु० : उप्पज्जेयइ, करेसइ, जाएसइ, पडिहहि, भवेसइ, लेसइ, विज्जाएसइ, होसइ।  
बहुवचन . होएसहिं, होसति।

## आज्ञार्थ

द्वि० पु० . करउ, करहु, करि, करु, कह, जाणाहि, जाहि, भणु।

## विध्यर्थ

उ० पु०

द्वि० पु० . करिज्जहि, दिखंरुहि, दिज्जहि, देहि देहु, पव्वज्जहि, पेक्खु, पेक्खहु, भणहि, भविष्यज्जउ।  
बहुवचन . करहु

तृ० पु० . किज्जउ, जयउ, दिज्जउ विजयतु, होउ।

## कर्मणि प्रयोग

विध्यर्थ कृदन्त—अच्छेवउ, अगुचेट्टेवउ, करिव्वउ, जाएव्वउ, होएव्वउ, खंचेवाइ, वंचेवाइ ।  
 हेत्वर्थ कृदन्त—अणुसासिउं, अहिलेउं, गंतु, गंतूण ( गतमर्थ ) जिलेवण्ठ, पवोत्तुं ।  
 संबंधक या पूर्व कृदन्त—अंचवि, अडोहिय, अणुमणिवि, संरेवि, अप्पिवि, आयणवि, आयणिवि;  
 उप्पाइवि, करवि, करिवि, खंचवि, गंपि, जणवि, तरवि, नमंसेवि, पइसरेवि पइसिवि, पेव्ववि,  
 पेक्खिवि; वइसरेवि, वच्चिवि भणवि, मेल्लवि, मेल्लिवि, मेल्लेवि  
 ऊणः तल्लिऊण, मुत्तूण; प्पिणुः आउच्छेप्पिणु करेप्पिणु, जाएप्पिणु, देप्पिणु, पणवेप्पिणु मरेप्पिणु,  
 हरेप्पिणु, होएप्पिणु; विणुः उट्टेविणु, देविणु, लएविणु ।

### धातुएँ

प्रे० धातु—कारियं, नञ्चावइ, नञ्चाविय (विशे०) वुज्झाविउ (विशे०) पइसारइ, पाविज्जइ ।  
 पीन'पुन्यदर्शक धा०ः—पेक्खु पेक्खु, बल-बल, वल्लु-वल्लु ।  
 नामधातुः कुक्कारइ, सहावइ, हक्कारइ ।  
 ध्वनिधातु—करयइ, कसमसइ, कुलकुलइ, गहयइ, गुमगुमइ, घवघवइ, छमछमइ, रणरणइ,  
 डमडमिय, तडतडिय, धुमधुमिय, सलसलिय

उपर्युक्त प्रकारसे प्रस्तुत काव्यमे प्रयुक्त स्वरो, व्यंजनो, उनके परिवर्तनों, विकाशो, 'य' 'व' श्रुति  
 आदि नियमों, कारक व क्रिया रूपो, तथा तद्धित और कृदन्त प्रत्ययो आदिका विश्लेषण 'जंबूसामिचरिउ'  
 की भाषा और व्याकरणका स्वरूप स्पष्ट कर देता है ।

### ९. वीर तथा अन्य कवि

- ( क ) 'जंबूसामिचरिउ' पर पूर्वकालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवि तथा साहित्यकारोंका  
 प्रभाव : अश्वघोष, कालिदास, प्रवरसेन, वाण, भवभूति, स्वयंभू(७००ई०), सोमदेव, पुष्प-  
 दंत, और गुणपाल ।  
 ( ख ) 'जंबूसामिचरिउ' का पश्चात्कालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंपर प्रभाव :  
 नयनदि, रङ्ग, जह्म जिनदास और राजमल्ल ।

प्रामः उच्चकोटिका प्रत्येक कवि-साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती महाकवि एवं साहित्यकारोंसे अपनी  
 रचनामे अनेक प्रभावोंकी ग्रहण करता है । ये प्रभाव काव्यके शरीर जैसे शब्द-संघय, पद संघटन और  
 अलंकार योजना आदिपर भी कार्य करते हैं; और काव्यकी आत्मा, जो उसकी झेली गुण, रस, भाव,  
 कथावस्तु एवं काव्यात्मक कल्पनाएँ हैं, उनपर भी । और इस प्रकारसे धीरे-धीरे काव्यके शरीर और  
 उसकी आत्माका अलंकरण-उन्नोत्तन करनेके हेतु जिन तत्त्वोंका बार-बार अनेक महाकवियों-द्वारा प्रयोग  
 किया जाता है, वे ही तत्त्व काव्य-साहित्य-भवनके मूल आधार स्तंभ बन जाते हैं । उन्हींको हम 'साहित्य-  
 शास्त्रके सिद्धांत' रूपसे स्वीकार करने लगते हैं । हिंदीके रीतिकालीन साहित्य तक प्राचीन एवं मध्यकालीन  
 संपूर्ण भारतीय साहित्य इन्हीं सिद्धांतोंकी भित्तिपर खड़ा हुआ है । 'जंबूसामिचरिउ'का रचयिता कवि वीर  
 सब अर्थोंमें रीतिवद्ध कवि है । अतः हमने अपनी रचनामे रीति अर्थात् साहित्यशास्त्रके सिद्धांतों विषयक  
 उन सभी आदर्शोंका ग्रहण और पालन किया है जो उसके पूर्वकालीन महाकवियोंने स्थापित और पोषित  
 किये थे । इसीलिए वीर कविकी रचनामे जहाँ सभी प्रमुख रसों, भावों, माधुर्यदि गुणों, वैदर्भी आदि  
 रीतियों एवं उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंके सुंदरसे सुंदर प्रयोग व उदाहरण  
 उपलब्ध होते हैं, वही ऐसी अनेक काव्य कल्पनाएँ, भावनाएँ एवं वर्णन भी मिलते हैं, जो प्रमुख प्राचीन  
 साहित्यकारोंकी रचनाओंसे कहीं शब्दतः, कहीं अर्थतः और कहीं भावात्मक दृष्टिसे समानता रखते हैं ।

‘जंबूसामिचरित’ पर प्राचीन साहित्यकारोंके इस प्रभावको तुलनात्मक संदर्भोंके साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है—

### अश्वघोष ( प्र० श० ई० पू० ) और वीर-

यह पहले कहा जा चुका है कि ‘जंबूसामिचरित’की मुख्य कथावस्तुमें भवदत्त-भवदेवकी कथापर सौंदर्य नंदके भगवान् बुद्ध और नंदकी कथाका प्रभाव बहुत गहरा और स्पष्ट है। नंदकी घर वापस न लौटने देनेके लिए बुद्धके द्वारा उसके हाथमें अपना रक्त मिश्रा-पात्र देने और ठीक उसी प्रकार जंबूसामिचरितमें ‘भवदेवके विवाहके समय ही मुनि भवदत्तका उसके घर आना एवं मिश्रा ग्रहण करनेके उपरांत मुनिके आदर एवं लोकमयवादि के रक्षार्थ भवदेवका अत्यंत अनिच्छापूर्वक, प्रतिक्षण घर लौट चलनेको सोचते-सोचते मुनि भवदत्तके पीछे चलना’, इस प्रसंगसे लेकर एक और भवदेव तथा दूसरी और नंदकी सच्चा बोध एवं वैराग्य प्राप्त होने तकके वृत्तांतका मिलान निम्न संदर्भोंके अनुसार किया जा सकता है :—

#### जंबूसामिचरित

#### सौंदर्यनंद -

अग्रजके	२ १२.४	५ २ पूर्वाह्न
साथ	२.१२.५	५ ११ पूर्वाह्न एवं ५ १९
जाना	२.१२.१२	५ २०
भवदेवकी दीक्षा :	२ १४ १-३	५ १५, ३४, ५१ नंदकी दीक्षा
अंतर्द्वंद्व व	२.१३ ५-६, ९-११; २ १४.५-१२;	
	२.१५.१-४ १०-१९, २.	४ ४२, ४५, ५ १९, ५, ५०; ५ १६, १७, ४७, ५२;
पत्नीका ध्यान :	१६ १-९, २.१७ ८-९	नंदका अंतर्द्वंद्व
भवदेवको नागवसूका उपदेश—	२.१८ ४-१६	नंदको भिक्षुका उपदेश ८ २१, ४७, ४८, ५२, ५४;
		९.६.२६, २९, ४८

इन संदर्भों और संदर्भगत भावनाओं एवं वातावरणपर जितनी ही गहराईसे विचार किया जाय उतना ही यह विचार पुष्टतर होता चला जाता है कि भवदत्त-भवदेवका कथानक सारी जैन-परंपरामें और भवदेवका अंतर्द्वंद्व वीर कविने अवश्यमेव सौंदर्यनंद काव्यसे ही ग्रहण किया है।

### कालिदास और वीर

वीरकी रचनामें आत्मनिवेदन, जंबूका जन्म, जंबूको देखकर पुरनारियोंकी काम-विह्वल अवस्था और वीक्षीभ, सेनाके प्रयाणके समय धूलिका उड़ना और घात होना तथा युद्ध-वर्णन इन-विषयोंपर कालिदासके रघुवंश एवं कुमारसंभव महाकाव्योंका प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उनके तुलनात्मक संदर्भ निम्न-प्रकार हैं :—

#### जंबूसामिचरित

#### कालिदास . रघुवंश तथा कु० म०

आत्मनिवेदन	१ ३ ७-१०	वही : १ २-४ रघुवंश
भवदत्त-भवदेवका परस्पर स्नेह	२ ५ ९	शिवपार्वती संयोग, रघुवंश १ १
जंबूका जन्म	४.८ १-२, १२-१४	रघुका जन्म, रघु० ३.१५; एवं कालिदासका जन्म
		कु० म० ११ ३८-३८
जंबूसामीने दर्शनमें पुरनारियोंकी विह्वलता		रघुवर्णन (रघु० ७ ५-९; ७ १२) तथा कार्तिकेयके
४.११.८-११		दर्शनमें नारियोंकी अवस्था, कु० म० ७ ५७

सेना प्रयाण और धूलि उड़ना ५ ७.१-५.६.५.४-८ रघुकी दिग्विजय यात्रामे युद्धके समय उड़ी धूलि :  
 रघु० ७ ३९.४१, ४२, ४३  
 वंसतवर्णन ४ १.५.१४ वही : कु० स० ३.३२  
 श्रेणिककी राजवभाका वर्णन ५.१.१६-१८ रघुके प्रभावका वर्णन रघु० ९.१३  
 श्रेणिक राजाका वर्णन १ ११ १७-१८ गाथा ५ सुदर्शन राजाका वर्णन रघु० १८.४४  
 युद्धवर्णन ६.५ से ६.१०; ७.१; ७.६ वही : कु० स० १६.२; २९, ३०, ३२, ३९, ४९; १७,  
 माया युद्ध ६.१४.१-४, ७ ९ ५-११ १ १६, १९, २२, १६.२६, ३५, ३७, ३९, ४१-४५  
 युद्धवर्णनमे कुमारसंभवके १६वें और १७वें सर्गों-  
 की सर्वत्र छाया तथा उल्लिखित संदर्भमे बहुत  
 अधिक साम्य है ।

### प्रवरसेन (लगभग ४५० ई०) और वीर

वीर कविने अपनी रचनामे जिन थोड़ी सी कृतियोंके नामोल्लेख ( जं० सा० स० १.३ ) किये हैं, उनमें प्रवरसेन कृष्ण मेतुवंश भी एक है, और उसके रचयिताको महाकवि कहकर वीरने प्रवरसेनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया है । प्रभावकी दृष्टिसे निम्न संदर्भ उल्लेख्य हैं :—

#### जंबूसामिचरित

#### सेतुवंश

१.१२.१-२ वसंत वर्णन १ ३५-३६ हनुमानागमन  
 ५.७.१-५ सेनाके प्रयाणसे उड़ती हुई धूलिसे १३ ३९, १३.६१ युद्धमे उड़ती हुई धूलिका दृश्य  
 मध्याह्नमें ही सूर्यास्तका दृश्य  
 ७ १२ विद्याधर सैन्यके पराजयका दृश्य । इन १३.७५ राक्षस सैन्यके पराजयका दृश्य  
 उल्लिखित संदर्भोंके अतिरिक्त ६वीं और ७वीं  
 संघियोंमे युद्ध-पुनर्युद्धके वर्णनपर सेतुवंशके १३वें  
 आश्वासका प्रभाव परिलक्षित होता है ।

### बाण ( ७वीं शती ई० ) और वीर

हर्षचरितकार महाकवि बाणका भी कुछ प्रभाव 'जंबूसामिचरित' की रचनामे दृष्टिगोचर होता है । निम्नलिखित प्रसंग विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं :—

#### जंबूसामिचरित

#### हर्षचरित

१.२.१४-१२ चोर कवि १ ६ चोर कवि'  
 १.११ १५-१८ श्रेणिकका प्रताप वर्णन उच्छवास ४, हिं० अनु० पृ० १५५, हर्षका प्रताप वर्णन  
 ५ १३ १६-२१ क्रोध और क्रोधीकी निंदा उच्छवास १, हिंदी अनु० पृ० ११-१२, दुर्वासके क्रोध-  
 की निंदा ।

### भवभूति ( ८वीं श० ई० पूर्वार्द्ध, लगभग ७००-७३३ ई० ) और वीर

भवभूतिकृष्ण उत्तररामचरितके पांचवें अंकमे चंद्रकेतु और लवके युद्ध वर्णनका भी कुछ प्रभाव जंबूसामिचरितपर दिखाई देता है । निम्न उद्धरण मित्राकर देखिए :—



## जंबूसामिचरित

जंबू और रत्नशेखरकी वात्ता

## उत्तररामचरित

चद्रकेतु और लवकी वात्ता

ज अट्टसहस्रपहरणकराहँ

भाराविय वरविज्जाहराहँ ।

हेवाइउ इय सुदुवत्तणेण

चारहडि न मण्णमि एत्तडेण ।

णइ अत्थि अंगि तउ जुज्झ गम्बु

तो अच्चउ सेणु नित्यु सच्चु ।

तुज्झु वि मज्झु वि सगामु होउ

अज्झु वि मा मरउ वराउ लोउ । ७.७ ५-७

भो भो लव महाबाहो किमेभिस्तव सेनिकैः ।

एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु ॥ (५.७)

तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि

मन्वेष दर्पेनिकषस्तव चन्द्रकेतुः ॥ ५.९ अंतके दो वरण

इन उद्धरणोंमें परिस्थिति और वातावरण एवं प्राज्ञोंके अनुसार जो परिवर्तन किये गये हैं वे सरलतासे समझे जा सकते हैं। जंबूसामिचरितमें पक्षमें जंबू हैं, और विपक्षमें रत्नशेखर नामक दक्षिण व द्रुह रत्नशेखर । उत्तररामचरितमें पक्षमें हैं चद्रकेतु और विपक्षमें अवतक अज्ञात स्वयं रामपुत्र लव । अतः प्राज्ञोंके स्वभाव, प्रकृति तथा परिस्थितिके अनुरूप वीर कविने अपनी रचनामें संबद्ध प्रसंगमें उचित परिवर्तन कर उसके भावको ग्रहण कर लिया है; और वह यह है कि 'सामान्य सैनिक हमारे-तुम्हारे बल परीक्षाकी वास्तविक कसौटी नहीं हैं। अतः ये बेचारे व्यर्थ क्यों मरें? केवल हमारा तुम्हारा युद्ध हो जाय। उसमें हम लोगोकी वास्तविक शक्तिपरीक्षा हो सकेगी।' जंबूसामिचरित (७.९) में जंबू और विद्याधरके आग्नेयास्त्र और वासुनास्त्र युद्धमें भी ७० १०० च० (६६ के उपरांत गद्य) की कुछ छाया देखी जा सकती है।

## स्वयंभू ( लगभग ७०० ई० ) और वीर

वीरने महाकवि स्वयंभूका उल्लेख (ज० सा० च० १२; ५१) अत्यंत आदरपूर्वक और अपभ्रंशके प्रथम श्रेष्ठ कविके रूपमें किया है। जंबूसामिचरितपर उनके पद्यमंचरितका प्रभाव निम्न दो स्थलोंपर अत्यधिक स्पष्ट है। स्वयंभू कृत राजगृह वर्णनकी वीर कविने पर्याप्त विस्तार करके मगध देशके वर्णनके रूपमें अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है। मिलाने योग्य प्रसंग हैं —

वीरका आत्मनिवेदन १३१-६

स्वयंभूका आत्मनिवेदन ५० च० १३, २३ १२-५,

९-१०

वीरकृत मगधवर्णन १६-७-८

स्वयंभू कृत राजगृह एवं मगध वर्णन (५० च० १४-५)

इनके अतिरिक्त सैनिक वाद्यो (ज० सा० च० ५६; ५० च० ६३ १) तथा अनेक देश नामोंमें भी साम्य है। ५० च० (६५ १ और ६६ ९) के युद्धदर्शनोंमें १, २ पक्षियोंकी छाया भी वीरके युद्धवर्णनमें दिखलाई पड़ती है।

## सोमदेवसूरि ( वि० स० १०वीं शती ) और वीर

सोमदेव कृत यशतिलकचम्पू (रचनाकाल वि० सं० १०१६) भारतीय साहित्यका एक अनमोल एवं अनुपम रत्न है। 'गद्य कवीना निकप वदन्ति' यह उक्ति इस रचनामें उसी प्रकार चरितार्थ होती है, जिस प्रकार कि बाणकृत हर्षचरित और कादंबरीमें। अपभ्रंश महाकवि पुष्पदंत इनके लगभग समकालीन रहे हैं। पुष्पदंत कृत महापुराणकी रचना सोमदेव कृत यशतिलकचम्पूसे, छह-मात वर्ष बादकी तथा जसहरचरित एवं णायकुमारचरित और भी पीछेकी रचनाएँ हैं। अतः प्रतीत होता है कि पुष्पदंतने अपने

‘जसहरचरित’ की संपूर्ण कथावस्तु यशस्तिलकसे ली है। हाँ, पुष्पदंतकी काव्यप्रतिभा अपनी अद्वितीय है, यह निर्विवाद तथ्य है। वीर कृत ‘जंबूसामिचरित’ की रचनामें यशस्तिलकका प्रभाव निम्न-संदर्भमें विशेष रूपसे दिखाई पड़ता है —

### जंबूसामिचरित

### यशस्तिलकचंपू

चोरकवि १२ १४ २५

वही : १.१३

कथ अणवण परियत्तणु वि ..

कृत्वा कृतीः पूर्वकृताः पुरस्तात् प्रत्यक्षरं ता. पुनरीक्षमाणः ।

तथैव जल्पेदथ सोऽन्यथा वा स काव्यचोरोऽस्ति स पातकी च ।

कवि और काव्य : कव्वु जे कइविरयइ एक्कगुणु\*\*\* १.२.८

१.१६

वही . चिरकइकवामयमुहाण \*\*\*

७.१ गाथा १

१.३३

वही : विजयंतु जए कइणो\*\*\*

१ ६.७-८

१.२५

१.५ १०-१५ एवं १ १८ २०-२१ संस्कृत पद्य

आत्मनिवेदन . एक्क जे पाहाणु हेमु जणइ\*\*\* १.२ ९

१.२८

कवि और काव्य तुम्हेहिं वीर कव्वं \*\*\*चिरकव्वतुलातुलियं

९.१ गाथा १-२

१.२९

वही : विह्वेण रामनियडसणेण\*\*\* १०.१ गाथा १-२

१.३०

आत्मनिवेदन - करजोडि विउसहो अणुसरमि\*\*\* ।

अवसद्धु निववि मा मणि धरउ\*\*\* । १.२.६-७

१.३६

वसंत वर्णन : मलयपवनके पक्षमें :

राजाके पक्षमें : कुन्तलकान्तालकभङ्गनिरत

कुन्तलि कुन्तलभरपत्तखलणु ४.१५ ११

१.२११

### पुष्पदंत ( ११वीं शती विक्रम पूर्वार्द्ध ) और वीर

अपभ्रंश महापुराण ( रचनाकाल वि० सं० १०२२ ), जसहरचरित एवं णायकुमारचरितके रचयिता महाकवि पुष्पदंत अपभ्रंशके मूर्धन्य कवि है। ये ही दूसरे व्यक्ति हैं, जिनका नाम स्वयंभूके पद्यचतुर्वितीय-कवि ( जं० सा० च० ५.१ ) के रूपमें वीर कविने अत्यंत आदरपूर्वक लिया है। और यह सच भी है कि अपभ्रंश साहित्यके इतिहासमें रचनाओंकी साहित्यिक उत्कृष्टताकी अपेक्षासे स्वयंभूके उपरांत स्वतः पुष्पदंतका नाम मुखपर आ जाता है। जंबूसामिचरितकी रचनामें पुष्पदंतके महापुराण और णायकुमारचरितका प्रभाव अत्यंत व्यापक और गहरा परिलक्षित होता है। देश-ग्राम अटवी एवं नारीका नख-शिल वर्णन, सुंदर नायकके दर्शनसे पुरनारियोंकी विह्वलता, युद्ध, नायकका गृहत्याग आदि सभी प्रकारके वर्णनोंपर पुष्पदंतके ऐसे वर्णनोंकी गंभीर छाप सर्वत्र अलक्ष्यता है। उदाहरणार्थ निम्न संदर्भ प्रस्तुत हैं:—

### जंबूसामिचरित

### पुष्पदंत

१ ६.१६-१ ८ ८ मगध देश वर्णन

वही : पा० कु० च० १ ६ ४-११

५.९ १, ३-१० विन्ध्य देश वर्णन

जस० च० संधि १ योधेयशुभि वर्णन

१ मगध देशका वर्णन स्वयंभू, पुष्पदंत और वीर तीनोंने लगभग एक समान, पर एकसे दूसरेसे बढ़ते हुए क्रमसे किया है।

तथा ३ ११८-१९ पुष्पलावती विषय वर्णन

'मंवररोमषणचलिय ... 'से लगाकर

जहि उच्छ्रवणई रससदिराई

... ....

जहि जणषणकणपरिपुष्पनाम

पुर-णयर-सुखीसाराय-साम', तक

तथा ज० च० सालव-नाम वर्णन :

'जहि हाणिणिरुवणिवद्धचनसु'... से लगाकर

जगज दक्खालिवि वयणचंदु' तक

पा० कु० च० ८.३८ विजय नगरके समीप नंदनवन

पा० कु० च० १.१७८ से १२, १५-१६ कथा-सौवर्य वर्णन

महापुराण ८.३.२-३ वसुदेवके दर्शनसे नारियोका कामोन्माद एवं पा० कु० च० ५-८ नामकुमारके दर्शनसे काश्यीरकी नारियोकी भवनोन्मात्तता

जस० च० बही

तहि अवसरि पडिहारें बरेण कणममयवंडभंडियकरेण ।

५८ ३१-३४ विद्याटंवी वर्णन

१ १२.१-५ श्रेणिककी रानियोका सौवर्य वर्णन

तथा ४.१२ १५-१६ एवं ४.१३ कथा सौवर्य वर्णन

४.१०.८ से ४.११.१३ जंबूके दर्शनसे पुरनारियोकी विह्वलता

५-१.१९ राजवरवारका प्रतिहार

युद्धवर्णन '—

५.१३ १-७ जंबूका दौत्य और रत्नशेखरको

विलासवतीके लिए दुराग्रह एवं दुर्नीतिको

छोड़नेके लिए प्रेरणा तथा उसकी भर्त्सना

पा० कु० च० ७३१३-५-६ नामकुमार-द्वारा अलप-

नगरके राजाकी भर्त्सना

अग्रियं कुमारेण कयतियसतीसेण

पाविट्ट खडो सि एएण बोसेण ।

परवरणि परतवणि परदविण कखाए

परिहिसि दुक्खार-खलचोरमिक्खाए ।

पा० कु० च० ७.७ गिरिनगरमें युद्ध

अडमुहमुक्क.....

भोडियछत्तवडयसंडह.....

मुडखडखाविय चामुंडह.....

खा० कु० च० ४१०; ४१५१-८ युद्ध एवं युद्ध-

भूमिका इत्य

पा० कु० ५.४ नामकुमार-दुर्वचन युद्ध

,, ७१५७-१० नामकुमारके जन्मकी सार्थकता

म० पु० ८३.७ वसुदेवके गृहत्यागसे भाभी शिवदेवी-

की विकलता

सिवएवि जेम दुहवियलपाण .....

६-९. ३-९, ७-५. १-१४, ७-६ युद्ध

६.८.५-७, ६.१० १—४, ७ १ १०-२२ युद्ध

भूमिका इत्य

७.१० जंबू-रत्नशेखर युद्ध

८. ४ ५-८ सत्युत्पलक्षण

९ १४.६-७ पुत्रके वैराग्य लेनेको संभावनासे

माँकी विकलता

रावेत्ताहि जंबूकुमारनणसि ... ..

१ इस प्रसंगको बीरने परिवर्तित रूपमें लिखा है । महापुराण ( ८६.२ ) में जहाँ नेमिके गृह-त्यागपर माता शिवदेवीके दुःखसे विकल होनेका प्रसंग आता था, उसे पुनर्दंतने पूर्णरूपसे ढाल दिया है । यहिक म० पु० ८३.७ में अपने देवर वसुदेवके गृहत्यागपर शिवदेवीकी शोकविह्वलताका सामिक वर्णन किया है । वहींसे संकेत ग्रहण कर घीर कजिने उद घहाँसे उठाकर नेमिनाथके गृहत्यागके साथ संयुक्त कर दिया है, जो इस प्रसंगमें अधिक उचित भी है ।

गुणपाल ( वि० की ११वीं शती या उससे पूर्व ) और वीर

'जंवूसामिचरिउ' की कथाकी पूर्वकालीन दीर्घ परंपरा और कथास्रोतोंके अध्ययन (प्रस्ता०— ३ पृ० ३५-३७) में यह कहा जा चुका है कि मूल कथावस्तुके गठन एवं अंतर्कथाओंके चयन इन दोनों ही तत्त्वोंमें वीर कथिकों प्रस्तुत रचनापर गुणपाल कृत प्राकृत 'जंवूचरिय'का अत्यधिक प्रभाव है, और यही 'जंवूसामिचरिउ'का आदर्श आधार ग्रंथ है। इसी प्रकार काव्य-रचनामें भी अनेक स्थलोंपर ज० सा० च० पर 'जंवूचरिय'का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। मूल्य हाली (अंतर्कथा क्र० १); कामातुर वानर (कथा क्र० ४) तृपित वणिक् पुत्र (कथा क्र० १०; जंवूचरिय में इंगालदाहक) एवं व्यभिचारिणी वणिक् वधू (कथा क्र० ११; जंवूचरियमें व्यभिचारिणी रानी, कथा क्र० १६) के आख्यानोंकी काव्यात्मक रचनामें भी वीर कविने गुणपालसे बहुत अधिक प्रभाव ग्रहण किया है। इनके अतिरिक्त इन रचनाओंके निम्न संदर्भ तुलनीय हैं :—

जंवूसामिचरिउ

जंवूचरिय

सज्जन स्तुति १.२.३.

वही : १.१८

कविका आत्म-निवेदन, रचनाकी पूर्वपरंपरा : महाकवि-रचित ग्रंथ

वही : १.४१

संघावरणं ८.१४.१३-१५; २१; एवं १०.२५.१०-११ आदि ।

वही : ७.११-१२

वीर और नयनंदि

ज० सा० च० की प्रस्ता०—२, पृ० १३ पर यह लिखा गया है कि "वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० होनेवाले मुनि नयनंदिके 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंवूसामिचरिउ'का अत्यंत गंभीर और प्रचुर प्रभाव इष्टिमोचर होता है।" वही इस कथनकी परीक्षाका स्थान न होनेसे इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती थी। यहाँ नयनंदिकी रचना-पर 'जंवूसामिचरिउ' के प्रभावकी जाँच विस्तारसे की जा सकती है।

मुनि नयनदिने अपने 'सुदंसणचरिउ' की रचना, भोजराजके समयमें, वि० सं० ११०० व्यतीत होनेपर धारा नगरीमें रहकर पूर्ण की थी। 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंवूसामिचरिउ'के प्रभावकी जाँच करने हेतु सु० च० की कथावस्तुकी संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। वह इस प्रकार है—

भ० महावीरकी स्तुति और विनय प्रदर्शनके उपरान्त मुनि नयनंदि कथा प्रारंभ करते हैं। सगव-वैशके राजगृह नामक नगरमें राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी महादेवीका नाम चेलना था। एक दिन एक पुरुषने दरबारमें आकर विपुलाचल पर्वतपर भ० महावीरके समोशरण सहित शुभागमनकी सूचना दी। राजाने सेना व प्रजासहित भगवान्की वंदनाके निमित्त प्रस्थान किया। उन्हें विपुलाचलके दर्शन हुए और वे सब भ० महावीरके समोशरणमें पहुँचे। भगवान्की स्तुति-वंदनाके पश्चात् राजा श्रेणिकने गीतम गणधरसे पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावके संबंधमें प्रश्न किया। इस प्रश्नके उत्तरमें गीतमने निम्न-लिखित कथा कहनी प्रारंभ की :—

अगदेशकी चंपानगरीमें धार्दवाहण नामका राजा था। उसकी महादेवीका नाम अभया था। इसी नगरमें ऋषभदास नामक सेठ अपनी अर्द्धासी नामक सेठानीके साथ सुखपूर्वक रहता था। उनके घर सुभग नामक एक सरल हृदय ग्वाल युवक रहता था। एक दिन सुभग गोपने वनमें एक महान् मुनिराजसे पैंतीस अक्षरीवाला पंच नमस्कार मंत्र सुन लिया और मुनिराजकी तेजस्वितासे प्रभावित होकर हर समय सोते, उठते, बैठते, चलते, जाते, रोते, हँसते दिन-रात उसीका पाठ करने लगा। ऋषभदास सेठने गोपके मुखसे मंत्र सुनकर उसका बड़ा माहात्म्य बतलाया, और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उस मंत्रका पाठ करनेको कहा। एक दिन गंगामें जलक्रीड़ा करते समय सुभग गोप एक हृदय विदारक खूंटमें फँस गया। वह भक्तिपूर्वक णमोकार मंत्रका पाठ करते हुए यह निदान ( इच्छा ) करके श्रुत्युको प्राप्त हुआ 'यदि इस मंत्रका कोई

प्रभाव हो तो मरकर मैं पुनः इसी वणिक् कुलमे जन्म लूँ।' उसका यह निदान सफल हुआ। उसी रातको सेठानी अर्द्धांगी (जिनदासी) ने 'एक विशाल-पर्वत, नया-कल्पवृक्ष, इन्द्रका घर, विशाल समुद्र और जाज्वल्यमान अग्नि', ये पाँच स्वप्न देखे। प्रातःकाल मंदिर बाकर मुनिराजसे स्वप्न-फल पूछनेपर उन्होंने कामदेवके समान सुंदर, यशस्वी और भोक्षगामी (चरम शरीरी) पुत्र होना बतलाया। उचित समयपर शुभ मुहूर्तमें पुत्रजन्म हुआ और उसका बड़ा उत्सव मनाया गया। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। बाल-क्रीडाएँ करता हुआ वह दिन-प्रतिदिन बड़ा होने लगा। समय आनेपर उसे विद्याध्ययनके लिए भेजा गया। उसने नाना विद्याओंमें दक्षता प्राप्त कर ली। उसका शरीर अनेक शुभलक्षणोंसे भंडित था। युवा होनेपर-नगरकी कामिनियाँ उसके दर्शन मात्रसे कामरागसे उत्तेजित, विह्वल और विक्षुब्ध होने लगी। सुदर्शनकी कपिल नामका ब्राह्मणसे मित्रता हो गयी। एक दिन सुदर्शनने सागररक्ष सेठ और सागरसेना सेठानीकी पुत्री मनोरमाको देखा। वह उसपर अत्यंत आसक्त हो गया। मनोरमा भी उसे देखते ही उसपर भुग्ध हो गयी। दोनों एक-दूसरेके विरहमें व्याकुल रहने लगे। सारिधूत खेलते समय की हुई प्रतिज्ञानुसार उनके पिताओंने दोनोंका विवाह-सवध निश्चित कर दिया। दोनों घरोंमें विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। विवाह हुआ, और मध्याह्न कालमें वैवाहिक भोज। उसके उपरांत मुख-मुग्धि आदि। इतनेमें सच्चा हो गयी। वर-वधू घर बाधे। रात्रि हो गयी। वर-वधू दोनोंने यथेच्छ रति-क्रीडा की। समय व्यतीत होनेपर उन्हें एक सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ। सुदर्शनके पिता ऋषभ-दासको समाधिगुप्त भुनिके दर्शन कर, उनके धर्मोपदेशसे वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने पुत्र सुदर्शनको लोक-न्यवहारकी उचित शिक्षा दी और अपना दीक्षा लेनेका निश्चय प्रकट किया। सुदर्शनने भी दीक्षा लेनेकी इच्छा व्यक्त की। 'सपुत्र ही कुलका रक्षक होता है'—आदि रूपसे सुदर्शनको समझाकर, उसे गृहस्थीका भार सौंपकर सेठ ऋषभदासने दीक्षा ले ली। सुदर्शन सुखपूर्वक रहने लगे।

सुदर्शनके मित्र कपिल ब्राह्मणकी स्त्री कपिला उसके रूप-गुणोंकी ख्याति सुनकर उसपर भुग्ध हो गयी। एक दिन कपिलकी अनुपस्थितिमें चतुराईसे उसने सेठ सुदर्शनको अपने घर बुलवाया और उससे अपनी कामेच्छा प्रकट की। 'मैं नपुंसक हूँ' ऐसा कहकर सेठ सुदर्शन वहाँसे बच निकला।

इधर वसंत ऋतुका आगमन हुआ। जनपालने राजाको इसकी सूचना दी। राजाने उद्यान-क्रीडाई नगर-निर्गमनकी तैयारी की। नाना बाद्योका मधुर वादन किया गया। राजा-प्रभा सभी उद्यान-क्रीडाके लिए गये। सुदर्शनकी पत्नी मनोरमा भी उद्यान-क्रीडाके लिए आयी। क्षमया रानीने-उसके सौंदर्य, सौभाग्य एवं पुत्रवती होनेकी अपनी सखी कपिलाके समक्ष बहुत सराहना की। कपिलाने कहा, 'इसका पति तो वद है, ऐसा मैंने किसीसे सुना है। फिर इसे पुत्र कहाँसे हुआ।' कपिलाके यह कहनेसे उसका रहस्य लुल गया। उसने रानीके समक्ष स्वीकारोक्ति की। इसपर रानीने उसकी बुद्धिका बड़ा उपहास किया, और कपिलाके व्यग्य करनेपर यह दुष्प्रतिज्ञा की 'या तो मैं सेठ सुदर्शनसे रमण कहेँगी, या फाँसीमें लटककर प्राण दे दूँगी'। प्रेमियोने खूब उपवन क्रीडा की। परस्पर छलोकियाँ कही गयीं। तदुपरांत सरोवरमें जलक्रीडा की गयी। यथेच्छ क्रीडा करके सब लोग नगरको लौट बाधे।

अभया रानी सुदर्शनके विरहमें दिन-रात झूरने लगी। अतःपुरी पंडिता नामक धायने उसकी यह वृत्ता देख, इसका कारण पूछा, और उसे जानकर क्षमया रानीको अपने कुतिश्चयसे टालनेका बहुत सत्प्रयास किया। क्षमयाने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। हारकर पंडिताने सुदर्शनको महलमें लानेकी योजना बनायी। एक अष्टमीके दिन जब सुदर्शन सेठ रात्रिमें श्मशानमें ध्यानस्थ बैठे थे, पंडिता वहाँ गयी। सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये, पर सुदर्शनने अपना ध्यान नहीं तोड़ा। तब पंडिता उसे सशरीर कनोपर डालकर उठा ले गयी और पुतलेके बहाने रानीके अंतपुरमें एलगपर ले जाकर बैठा दिया। क्षमया रानीने सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये। स्वीसुलभ सभी काम-चेष्टाएँ कीं। डराया धमकाया भी। पर सुदर्शन ध्यानसे नहीं डिया। तब हारकर रानी उसे वापस श्मशानमें पटकनेको चली। इतनेमें सूर्यादय हो गया। अब रानीने अपनी प्राणरक्षाके निमित्त स्त्री-चरित्र किया। अपने सारे शरीरको नखोंसे नोच

हाला, केश विलोपन कर लिये, घट्ट फाड़ लिये और छोर मचा दिया कि यह दुष्ट सुदर्शन न जाने कहाँ से भाकर मुझसे दलात्कार करनेपर तुला हुआ है। राजाको यह समाचार मिलते ही उसने अपने भटोको सुदर्शनको पकड़कर मार डालनेकी आज्ञा दे दी।

इवर सुदर्शनके घर्मेध्यानके प्रभावसे एक व्यंतर उसकी रक्षाको आ गया। उसकी माया-निर्मित सेना और राजाकी सेनामें बड़ा भयानक युद्ध हुआ। भटोकी पत्नियोने वीरतापूर्ण कामनाएँ व्यक्त की। फिर राजा और व्यंतरमें युद्ध हुआ। दोनोंने एक दूसरेको खूब ललकारा। राजाने व्यंतरको एक दो बार घायल और मूर्च्छित भी कर दिया। पर अंतमें अपनी मायासे व्यंतरने राजाको परास्त कर दिया, और सेठ सुदर्शनसे अपनी प्राणरक्षाके निमित्त क्षमा माँगनेको कहा। राजाने सुदर्शनसे क्षमा माँगी। व्यंतरने राजाको अभयाकी सारी सत्य-कथा सुनायी। इसके बाद राजाने सुदर्शनको आधा राज्य आदि देनेके अनेक प्रलोभन दिये, पर सेठ सुदर्शनको वैराग्य हो गया और उसने जीवन तथा संसारकी क्षणभुरता जानकर दीक्षा ले ली। अभया रानीने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली, और भरकर एक व्यंतरी हो गयी।

पड़िता बाघ भागकर पाटलिपुत्र पहुँची और देवदत्ता गणिकाके यहाँ रहने लगी। उसने उसे मुनि सुदर्शनका वृत्तान्त सुनाया। यह सुनकर देवदत्ताने भी सुदर्शन मुनिसे रमण करके दिखलानेकी प्रतिज्ञा की। मुनि सुदर्शन धूमते-धूमते पाटलिपुत्र आये और निक्षार्थ नगरमें गये। देवदत्ता गणिकाने दासीसे कहकर उन्हें घरमें बुलवा लिया। पहले उन्हें स्त्रीसुखके सारे प्रलोभन दिये। फिर तीन दिनो तक उन्हें घरमें बंद करके वेष्टासुख सभी कामचेंष्टाएँ की। अंतमें निष्फल, निराश होकर मुनि सुदर्शनको ध्यान-चित्तनकी अवस्थामें समझानेमें पटकवा दिया।

इस प्रकार जब मुनि सुदर्शन ध्यानमें लीन थे, उसी समय, अभया (रानी) व्यंतरीका विमान आकाशमार्गसे जाते हुए मुनि सुदर्शनके ऊपर आकर ठहर गया। उसने इसका कारण जाननेके लिए सब ओर देखकर नीचे सुदर्शनको ध्यानस्थ देखा। उन्हें देखकर उसे महान् रोष हुआ, और अपना पूर्वभव (रानीका जन्म) स्मरण हो आया। उसने अपने भूत-वैतालो सहित मुनिपर भयानक उपसर्ग करने प्रारंभ कर दिये। यहाँ भी उसी व्यंतरने आकर मुनिकी रक्षा की और उस व्यंतरीको पराजित कर भगा दिया। व्यानावस्थित मुनिको कुछ ही समयमें केवलज्ञान हो गया। ईशादि देवोंने उनकी पूजा-वदना की। मनोरमाने भी दीक्षा ले ली, और तप करके भरकर स्वर्ग गयी। सुदर्शन मुनि आठो कर्मोंका नाश कर मोक्षको प्राप्त हुए।

‘सुदसणचरित’ की इस संक्षिप्त कथावस्तुके अध्ययनसे हमें ज्ञात होता है कि यद्यपि इस कथाका केंद्रीय तत्त्व ‘स्त्रीका किसी पर-पुरुषपर अगुचित अनुराग’ है, तथापि जिस रीतिसे ‘सुदसणचरित’ की कथाका काव्यात्मक वर्णन और विकास किया गया है, ‘जवूसामिचरित’ की कथावस्तुसे मिलान करने-पर उसमें आदिसे अंत तक ‘जवूसामिचरित’ की काव्यात्मक शैली, वर्णनक्रम और वस्तु-व्यापार वर्णनोका अत्यंत स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्हीं समानांतर वर्णनोके संबंधोंमें निम्नप्रकारसे दिखायी जा सकता है—

#### जवूसामिचरित

भ० महावीरकी स्तुति-१. मं० ५-६, ११५  
कवित्व, त्याग और पौरवसे यशकी उपलब्धि ८८. ६-७  
कवि विनय १३.१ ७  
मगधवर्णन १६. २४-२५  
राजगृह वर्णन १.८ ९  
हस्ति-उपद्रवका दृश्य ४ २१ १३-१७

#### सुदसणचरित

वही ११.५-६  
वही ११. १४  
वही १.२ १-३  
वही १.२ १३-१४  
वही १ ३ ९  
अगवद्वर्णनार्थ सैन्यप्रयाण १७ ९-११

श्रेणिका विपुलाचलदर्शन १ १५.१०-१२; १ १६ ३  
 श्रेणिका कुशलपर्वतको देखना ५.१२-१५  
 सवाहन नगर वर्णन ८ ३ ६-९  
 सुद्यवीरकथाका उल्लेख १ ४.४  
 जंबूके दर्शनसे पुर-नारियोजी कामोत्तेजना ४ ११.१२-१३  
 पद्मश्री आदि चार कन्याश्रीका सौंदर्य ४.१४.५-६  
 जंबूके माता-पिता \* सेठ ऋषभदास-जिनमती

जंबूकी पत्नी पद्मश्रीके पिताका नाम : सागरदत्त

ऋषभदास और सागरदत्तादिश्रेष्ठियोजी विवाह सवधी-  
 वात्ता ४ १४.११-२१  
 विवाहकी तैयारी ४ १५ १-५  
 विवाह-आगमन और विवाह ८.१२ ३-४  
 पद्मश्रीकी रागात्मक उक्ति ८.११-१०

मध्याह्नकालमे वैवाहिक भोज ८ १३.८-१५  
 भोजनके उपरांत छोडा हुआ उच्छिष्ट ८ १३. १४-१५  
 भोजनोपरांत मुखमुद्रि ८.१४ १-२  
 सव्या-आगमन ८.१४ ८, ९, १२  
 सूर्यास्त ८ १४.५  
 सत्पुत्र लक्षण ८ ७ १४-१५; ८.८ ९  
 वसंत-आगमन ३.११.१४-१५, ३.१२.५, १०-११  
 वनपालसे सूचना मिलनेपर भगवद्दर्शनार्थ  
 प्रयाणकी तैयारी, नाना बाध-बाधन २.१४  
 उद्यान क्रीडार्थ गमन ४ १६.१  
 उद्यान क्रीडामे प्रेमियोजी वक्रोक्तियाँ ४ १७.४, १७  
 मिथुनोकी जलक्रीडा जलका भुभग युवकके समान  
 आचरण ४.१९.११, २१-२२ एवं ४.१९.१८  
 कामिनीके नख-ग्रन्थ युक्त स्तनोकी शोभा ४.१९.१५  
 लोगोका सरोवरसे निर्गमन ४ २० १  
 वैश्यावाटका चित्र ९ १३ १-२, ३-४, ५  
 वधुओकी कामचेष्टाएँ ८ १६.६-१०  
 रत्नशेखरकी अप्रमाण सेना-द्वारा केरलकी घेरेवदी ५ ३ ७  
 मिथुनोकी युद्धके समान कामक्रीडा ९ १३ १०, ११, १४-१६

युद्धमे धूलिका खात होना ६ ५ २, १०  
 हस्तिओपर स्थित जंबू और रत्नशेखरकी शोभा ७ ८ ६

उन्हीका युद्ध \* चाप आस्फालन आदि ७.८.८, १०, ११-१२

वही १.८.६-१०  
 श्रेणिका विपुलाचल दर्शन १.८.१-५  
 चंपापुर वर्णन २ ३.२, ३, ७  
 सुद्ययकथाका उल्लेख ३ १ ७  
 वही (सुदर्शनके दर्शनसे) ३ ११ २-५  
 मनोरमाका सौंदर्य ४.२ १  
 सुदर्शनके माता-पिता . सेठ ऋषभदास-  
 अर्हदासी (जिनदासी)  
 सुदर्शनकी पत्नी मनोरमाके पिताका नाम :  
 सागरदत्त

वही ५.२.५-६; ५.३ ४-१०

वही ५ ४.७-९  
 वही ५ ५ १-२  
 वर-वधू-मिलन ५ ५ ६; एवं जलक्रीडा  
 ७.१७.१०

वही ५.६  
 वही ५.६ १५-१६  
 वही ५ ७, १-२  
 वही ५ ७.९-१६  
 वही ५.८. १-२  
 वही ६ २०.३-१०  
 वही ७ ५.१-४, ११-१२  
 उसी प्रकार वसंतमे उद्यान कीडार्थ  
 गमनकी तैयारी ७.६  
 वही ७.७.३  
 वही ७.१५ ४

वही ७.१७ ३-७, १०  
 वही ७.१७ ११-१२  
 वही ७ १७.१९  
 वही ८.१९, २, ३, ५,  
 अभयाकी कामचेष्टाएँ ८ २८ ३-५, ८-१०  
 व्यतरकी भायानिमित्त अप्रमाणसेना ९ १.११  
 मिथुनोकी कामक्रीडाके समान युद्ध ९ ४.३,  
 ६, ७, ८  
 वही ९ ६ ९-१०  
 वही (व्यंतर और राजा धार्वाहन) ९.८.  
 ९-१०  
 वही ९ १२ ३, ४, ६-७

विद्युच्चर मुनिपर व्यंतरीका उपसर्ग और मुनिकी दृढ़ता मुनि सुदर्शनपर व्यंतरीका उपसर्ग और सुद-  
१०.२६ र्शनकी दृढ़ता ९.१७-१९  
जंबूको केवल्य और मोक्ष सुदर्शनको केवल्य और मोक्ष

उपर्युक्त संदर्भोंमें इन रचनाओंमें केवल भावात्मक ही नहीं, बल्कि चातावरण, प्रसंग तथा शब्द और अर्थ सभीमें स्पष्ट समानता है।

## धीर और ब्रह्म जिनदास

ब्रह्म जिनदासका कुछ परिचय ऊपर आ चुका है। इनका समय वि० सं० १४५० के लगभग है और इनकी अनेक रचनाओंमें जंबूस्वामीचरित (संस्कृत) तथा जंबूस्वामीरास भी हैं। इनमेंसे जंबूस्वामिचरित (सं०) लगभग शब्दशः 'जंबूसामिचरित' का संस्कृत रूपांतर है। 'जंबूस्वामीरास' के संबंधमें उसके उपलब्ध न हो सकनेसे कुछ कहना कठिन है।

## धीर और राजमल्ल (वि० की १७वीं शती पूर्वार्द्ध)

पं० राजमल्लकी एक रचना 'जंबूस्वामीचरित्रम्' (संस्कृत) है, जिसका रचनाकाल वि० सं० १६३२ है। यह रचना भी कही विस्तारसे, कही संक्षेपमें 'जंबूसामिचरित' का संस्कृत रूपांतर है।

उपर्युक्त दो रचनाओंके अतिरिक्त हेमचंद्र (१३वीं शती ई०) के परिशिष्ट पर्वकी रचना पूर्णतः गुणपालके 'जंबूचरित'के आदर्शपर की गयी है। संभव है हेमचंद्रको 'जंबूसामिचरित' भी उपलब्ध रहा हो। एक महत्वकी बात यह है कि हेमचंद्रके प्रसिद्ध प्राकृत व्याकरणमें जो अनेक दोहे उद्धृत किये गये हैं, उनमेंसे कुछ 'जंबूसामिचरित'की गद्यांशोंसे पूर्ण समानता रखते हैं। इससे हेमचंद्रद्वारा धीरकी इस रचनाको देखने व उसका ऋणी होनेकी संभावनाको कुछ अधिक बल मिलता है। वे दोहे निम्नलिखित हैं:—

धवलु विसूरह सामिअहो गरुआ भर पिक्खेवि ।  
हलं कि न जुत्तवं दुहं विसिहिं खंडइं दोणिण करेवि ॥८५॥  
महं वुत्तवं तुहं धुर धरहि कसरेहिं विगुत्ताहं ।  
पहं विणु धवल न चडह भर एस्वइ वुन्नउ काहं ॥१६१॥  
पाह विलगी अन्नडी सिर ल्हसिउं खन्वस्सु ।  
धो वि कटारह हस्यडउ धलि किज्जउं कंतस्सु ॥१९९॥

—डॉ० नामवर सिंह : ( हिंदीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान, तु० संस्करण )

इन दोहोंका मिलान क्रमशः जं० सा० च० के ७ ६ २६-२७ ( गद्या ६ ), ७ ६ २०-२१ ( गा० ३ ) तथा ६.३ ९-१० से करणीय है।

धीर और रङ्गधूः—अनेक अपभ्रंश ग्रंथोंके वर्त्ता रङ्गधू विक्रमकी १५वीं शतीके हैं। इन्होंने अपनी दो रचनाओंमें धीरकविका उल्लेख किया है। परन्तु उनकी रचनाओंपर धीरकी कृतिका कितना प्रभाव है, इस संबंधमें कुछ कहना शक्य नहीं है, क्योंकि संपादकको रङ्गधूकी रचनाओंका अध्ययन करनेका सुख-सर प्राप्त नहीं हो सका।



## १०. समसामयिक अवस्था

भौगोलिक स्थिति, भारतकी चतुर्दिक् सीमाएँ, पर्वत, वन, वन्य जीवन; ग्राम और ग्रामीण जीवन; नगर और नागरिक जीवन; आर्थिक अवस्था, सामाजिक स्थिति, शिक्षा और साहित्य; एवं धार्मिक स्थिति

प्रत्येक युगका सच्चा साहित्यकार, कवि या महाकवि स्वयं अपने समयकी सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक परिस्थितियोंके परिप्रेक्ष्य एवं पृष्ठभूमिके पटपर ही अपने वर्ण्यविषयके कालकी धमक स्थितिके-चित्रकी रेखाएँ अंकित करता है। वह किसी भी कालकी स्थितियोंका वर्णन करे, परंतु उसके अनुमानका आधार तो उसका वर्तमान ही होता है। इसी वर्तमानके पटपर, उसकी कल्पना रूपी तूलिका मनमाने रंग भर-भरकर नये-नये चित्र बनाती है। उसका सजागरूक यत्न रहता है कि वह पाठकोंके वर्तमानसे उठाकर उसके भानसको अपने वर्ण्य कालके स्तरपर ले जाये और इस यत्नमें उसे जितनी सफलता मिलती है, वही उसके साहित्यिक साफल्यका मापदंड बनती है। पर सम-सामयिक युगकी स्थितियोंका सही-सही चित्रण भी उसके साफल्यकी उतनी ही महत्वपूर्ण कसीटी है जितनी कथा-वस्तुगत वर्ण्य कालके चित्रण की। इस दृष्टिसे और कविने तत्कालीन भारतकी भौगोलिक स्थिति, देश, प्रांत और मंडलोंमें विभाजन, प्रमुख पर्वत, नगर, नदियाँ, वृक्ष-वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी, दक्षिणसे लगाकर उत्तरपूर्व और उत्तर-पश्चिमके दक्षिणापथके मार्ग और विध्यके उत्तरमें उत्तरके प्रमुख महाजनपथोंके सबधमें प्रसूत व प्रामाणिक जानकारी प्रदान की है। देशके तत्कालीन सामाजिक जीवन, व्यापार, कृषि, शिक्षा, साहित्य, सामाजिक रीति-रिवाज एवं धार्मिक विश्वासों तथा ग्रामीण व नागरिक जीवनका सटीक परिचय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे भी यहाँ प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। देशकी राजनीतिक अवस्थाके सबधमें कविने प्रत्यक्ष तो नहीं परंतु अप्रत्यक्ष रूपसे जो संकेत दिये हैं, उनसे तत्कालीन मालवाकी राजनीतिक अवस्थाका अच्छा बोध हो जाता है। परंतु देशके शेष भागोंमें इस दृष्टिसे कैसी अवस्था थी, इस विषयमें जं० सा० च०से कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

## भौगोलिक स्थिति

भारतवर्षके भौगोलिक विभाजनका कविका ज्ञान विशद और प्रामाणिक था। इसकी अनुभूति हमें 'जंबूसामिचरित्र'की नवम अधिके अंतमें विद्युतचक्रके यात्रा-वर्णन अथवा देश-दर्शनके रूपमें उपलब्ध होती है। इस बहाने कविने अपने महाकाव्यमें मात्र 'देशदर्शन' विषयक रूढ़िका पालन ही नहीं किया, अपितु विक्रमकी स्यारहवीं शतीके भारतका भौगोलिक मानचित्र हमारे सामने खींच दिया है। इस विषयमें उसने बृहत्संहिताकार बराहमिहिरका अनुकरण नहीं किया, क्योंकि संपूर्ण देशों, नगरों, पर्वतों, वनों, नदियों और जातियोंका वर्णन करना यहाँ कविका अभीष्ट नहीं था। उसे तो देशकी भौगोलिक स्थितिका सामान्य ज्ञान कराना इष्ट था, और उसमें वह सफल हुआ है।

कविने प्रमुख त्रेपन देशों व मंडलों, तैत्तीस नगरों, दस बंदरगाहों व पत्तनों (तीर्थों), अठारह पर्वतों और पर्वत श्रेणियों, दस नदियों, बाठ उत्तरीय एवं उत्तर-पर्वतीय जातियों, पाँच द्वीपों एवं चार सागरों (पूर्वोदधि, पश्चिमोदधि, क्षीरोदधि एवं लवणसमुद्र)का सल्लेख किया है। इन सबका संक्षिप्त परिचय और पट्टचान अंतमें भौगोलिक नामकोशके अंतर्गत दिये गये हैं।

भारतके दक्षिण समुद्रसे लेकर उत्तर-पश्चिमकी ओर चलते हुए गुजरात तक, फिर पश्चिममें राजस्थानसे लेकर दक्षिण-पूर्वमें ताम्रलिप्ति (तमलुक) तक, उत्तरमें शाक्यरी (अजमेर) से लगाकर सुदूर उत्तरमें काश्मीर और इससे भी ऊपर उत्तर-पश्चिममें फारस देश तक; एवं पूर्व (उ० प्र०) में गोड-गौडा प्राचीन राजधानी ब्रावस्ती) से प्रारंभ करके कामरूप तक जाकर, गंगासागर होते हुए

सप्त-गोदावरी भीमतीर्थ तकके जिन यात्रा-महापथोका संकेत वीर कविने किया है, पाँचवी शती ई० पूर्वसे ग्यारहवी शती ई० तक भारतके ऐतिहासिक व्यापारिक, महाजनपथोसे उनकी तुलना की जा सकती है।

विद्युच्चरके याया वर्णनसे विक्रमकी ग्यारहवी शतीमें वृहत्तर भारतवर्षकी भौगोलिक सीमाएँ, उत्तरमें आधुनिक पश्चिमा (फारस) से लगाकर, हिमालयकी अनेक पहाड़ी जातियोके प्रदेशोको सम्मिलित करते हुए काश्मीरको लेकर, उसके उत्तरसे सिन्धु नदीके किनारे-किनारे चलते हुए कैलाशपर्वत तक; उत्तर-पश्चिममें पूरा सिंध व पंजाब, पश्चिममें द्वारिका एवं प्रभास (सोमनाथ) तीर्थ, और सिंधे दक्षिणमें समुद्र (हिंद महासागर); तथा दक्षिण-पूर्वमें बंगाल सागर (पूर्वोदधि)के तटपर ताम्रलिप्तिसे उत्तर-पूर्वमें कामरूप (आसाम) पर्यंत प्रतीत होती हैं। अर्थात् तीन ओर सागर एवं उत्तरमें हिमालयके सुदूर उत्तरीय प्रदेश।

पर्वत—ऊपर कहा गया है कि जं० सा० च० में देशके लगभग अठारह पर्वतो और पर्वत श्रेणियोंका उल्लेख है, जिनमें मुख्य हैं—हिमालय, कैलाश, मंदारगिरि, विपुलाचल, अर्बुद (आबू) विंध्य, वज्राकर (विंध्यपाद, सतपुड़ा), पारियात्र, सह्याद्रि, श्रीशैल और मलय। कविने अधिकांशतया इन पर्वतोका उल्लेखमात्र करके छोड़ दिया है।

वन—जं० सा० च० में भारतके वन भागोकी बहुत अल्प चर्चा मिलती है। राजगृहके समीप एक प्राचीन नंदनवन नामक उद्यान और विंध्य अटवी इन दोका उल्लेख कुछ विस्तृत वर्णनके साथ उपलब्ध होता है। नंदनवनके वर्णनमें केवल विभिन्न वृक्षों व लताओके नाम मात्र हैं, जैसे ताल, कदली, पयास, आम्र, जंबीर, जंबू, कदंब एवं न्यग्रोध आदि<sup>१</sup>; लताओमें नागलता (पानकी बेल) तथा ब्राह्मण अर्थात् अंगूरकी बेल। ये अधिकांश वृक्ष मगध और विदेहमें आज भी बहुतायतसे मिलते हैं। नागलताकी खेती विहारके उत्तर और दक्षिण दोनों भागोमें कई जगहोंपर व्यापारिक स्तरपर की जाती है। कुछ स्थानोंमें अब अंगूर भी उगाया जाता है। संभव है विहारमें प्राचीन कालमें भी अंगूरका उत्पादन किया जाता रहा हो। और केले तथा आमके उद्यान तो आज भी विहारके कुपकोटी आयके प्रमुख स्रोत हैं।

विंध्यटवीका वर्णन कुछ अधिक विषद है। उसमें खदिर (खैर) और बाँछोके बड़े-बड़े गुल्म, कटीली झाड़ियाँ, घीसम और अजन आदि अनेक वृक्षोंके नामोंके<sup>२</sup> अतिरिक्त विंध्यटवीके बहुतसे पशुओंका भी नामोल्लेख कर आदिवासी भीलोंके जीवनका अत्यंत सजीव और वास्तविक चित्र खींचा गया है। पशुओंमें हाथी, सिंह, गवय (नील गाय), कोल (सूअर), भृगाल, जंगली भैंसे और वानर प्रमुख हैं, पक्षियोंमें कौआ और घूक (उल्लू)। 'जहाँ-जहाँ पानी वहाँ-वहाँ कमल,' इसी प्रकार 'जहाँ-जहाँ वन वहाँ-वहाँ अष्टापद-शरभ या शार्दूल,' इस कविसमयके अनुसार शरभका भी नाम कविने लिया है।

विंध्यटवी और वन्य जीवन—विंध्यटवीमें चोरोके निवास योग्य घने काँटेदार वृक्ष और झाड़ियोंके जंगल थे, जैसा कि आज भी विंध्यकी खंबलवाटी बड़े भयानक डाकुओंका दुर्गम व दुर्भेद्य अड्डा बनी हुई है। अटवीमें भीलोंके एक-सरीखे घर-द्वार थे, जिनमें पशुओंको पकड़नेके जाल और फँस तथा मछली पकड़नेके काँटे और जाल लटके रहते थे। भृगोका मांस सुखता रहता था, और मारे हुए भीतोंके शव या खालें पड़ी रहती थी। उनकी मुछोमें बाल नहीं होते, पर दाढ़ी लंबी रहती और भीलोंकी मंडली आपसमें बैठकर परस्परके जंघादलकी प्रशंसा किया करती। उस विंध्यटवीमें कहीं पर्वत तटोंपर हाथियोंकी विघाट सुनकर सिंह क्रुद्ध होते और कहीं शस्त्रसे आहत, दहाड़ते हुए व्याघ्र नील गायोंको विदीर्ण कर डालते। कहींपर घुर-घुराते हुए कोलोके दाढ़ोसे उखाड़े हुए कंद-मूल सुखते रहते, और कहीं

१. डॉ० मोतीचंद्र : सार्थचाह

२. जं० सा० च० वृक्ष-वनस्पति-कोश

३. वही

हुंकार करते हुए प्रचंड बली भैंसोंके सींगोंसे सखाड़े हुए वृक्ष भूमिपर गिर पड़ते। कहीं दीर्घ हुंकार छोड़ते हुए वानर सागते दिखाई देते और कहीं सैकड़ों घुड़ों (उल्लू) की घु-घु ध्वनिसे क्रुद्ध हुए कौबे कौबे काँव करते रहते। कहीं श्रृगालोंकी फेत्कारसे आक्रुष्ट श्रृगाल पकड़े जाते। कहीं कल-कल कर भरते हुए भरने, तो कहीं काले शरीरवाले मील दिखाई पड़ते। कहीं वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए सर्प पड़े रहते और कहीं फणधारी नागोंके तीक्ष्ण फुत्कारोंसे भयानक दावानल जल उठते। विघ्नाटवी एवं वन्य जीवनका यह चित्रण अपनी सजीवतासे स्वयमेव फटकता हुआ प्रतीत होता है।

देशके वृक्षों और वनस्पतियोंके संबंधमें अधिक कथ्य नहीं है, क्योंकि उनके नाममात्र उल्लिखित हैं, परंतु यह सत्य है कि मगध और विज्यमें आज भी उनमें-के लगभग शत-प्रतिशत वृक्ष-वनस्पतियोंको उपलब्ध किया जा सकता है।

ग्राम और ग्राम्य जीवन—जं० सा० च० में बहुत अधिक ग्रामीणोका उल्लेख नहीं है। गिने चुने दो गाँवोंका नाम मिलता है। एक गुल्लेड जो कविका जन्म स्थान था, इसका भी कोई वर्णन कविने नहीं किया। दूसरा है मगधमें बड़ेमान नामक गाँव। यह ब्राह्मणोंका कुल-क्रमागत अग्रहार (दान-स्वरूप प्राप्त) ग्राम था। यहाँकी रमणियाँ बहुत सुंदर होती थी, और ब्राह्मणोंके समूह मिलकर वेदपाठ किया करते थे। नव-वीक्षित पुरोहित पशुहोम किया करते तथा प्रतिदिन खूब सोमपान किया जाता (दिक्खिएहिं जहिं पसु होमिज्जइ दिवि-दिवि-सोमपाणु जहिं किज्जइ २.४.१०) और किण्ववृद्ध अपनी लंबी-लंबी चोटियोंको पूँछके समान हिचाते हुए वानरोंके समान वृक्षोंपर क्रीडा किया करते। यह एक शुद्ध ब्राह्मण गाँवका पूर्णतः वास्तविक वर्णन है। विज्य देशके ग्रामीणोंके संबंधमें कविने लिखा है कि वहाँके ग्राम नगरोंके समान, तथा ग्रामीण नागरिकोंके समान सर्वसुख साधन सपन्न और श्रद्धालु थे। इन गाँवोंके भाले बड़े-बड़े वृक्षों (गोमडल) का पालन करते थे। वृक्षोंके लिए गाँवोंमें बड़े-बड़े सरोवर थे। महुँके वृक्ष बहुतायतसे थे, और धानकी खेती होती थी। खेतीकी रक्षा कृषक वधुएँ किया करती थी। स्थान-स्थानपर पशुओंके लिए प्याल लगी रहती, जिनमें स्त्रियाँ पानी पिलाया करती। गाँवोंके लोग सुंदरवस्त्र धारण करते और स्थान-स्थानपर गोपियाँ गहरे रंगोंके वस्त्रोंको धारण कर रास रचाया करती।

साधारण दरिद्र ग्रामीणोंके जीवनका एक अति मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कविने लिखा है—चात दिनों तक दिनरात वनघोर वर्षा होती रही। जल-थल सब एक हो गये और मार्ग दुर्लभ। तालावोंकी पाल फोड़कर जलका प्रवाह बह निकला। सब व्यवसाय समाप्त हो गये और आहार अत्यंत दुर्लभ। भूखसे क्रंदन करते हुए बच्चे और बूढ़े सब वृषोंसे निर्मित गलती हुई कुटियोंकी दीवारोंसे चिपककर तड़फते हुए बैठे रहे। पक्षी अपने बोंसलोंमें ही रुके रह गये और बार-बार मूर्च्छित होने-लगे “आदि। वर्षाकालमें भारतके किसी दरिद्र गाँवका यह वर्णन कितना सच्चा, सजीव और समस्पर्शी है।

नगर और नागरिक जीवन—नगरोंका वर्णन बहुत कुछ कवि-स्वभाव और काव्य-रचनाजग्य अतिशयोक्तिसे अतिरंजित होनेपर भी उसमें वास्तविकताका अंश भी प्रचुर परिमाणमें है। कविने मगधमें राजगृह और संवाहन तथा (पौराणिक) पूर्व-विदेहमें पंडारिकिणी और वीतशोका नगरियोंका सुंदर वर्णन किया है। इन वर्णनोंसे ज्ञात होता है कि वडे नगर गुरक्षाकी दृष्टिसे परिष्ठा और आकारसे युक्त होते थे, जिसमें विशाल गोपुर धने रहते। नगरोंमें गवाक्षोंसे युक्त कई-कई तलोंके प्रासाद, ऊँचे-ऊँचे देवालय, चैत्यगृह, दानशालाएँ, (३ ३ ९) घृतगृह (टैंटा ८ ३ १३) वेद्यागृह, (३ २.५-६) एवं बड़े-बड़े हाट होते थे। नगरोंके बाहर वृक्ष-गुल्मों वलता-गुल्मोंसे युक्त बड़े-बड़े उद्यान एवं सरोवरयुक्त वाटिकाएँ रहती थी। नगरोंके बाहर घुड़दौड़के मैदान (बाहियालि ३.२.१०) भी रहते थे। नगरोंके बाहर हरे-भरे खेत रहते और

कृषक-वधुएँ उनकी रक्षा किया करती। बाहर उद्यानों और खेतोंमें हरिण खूब छलांग लगाया करते और बाटिकाओंमें मयूर नाचा करते। नगरके लोगोका जीवन निश्चित रूपसे ग्रामीणोंकी अपेक्षा अधिक घन-समृद्धि-संपन्न, अतः भोग-विलास पूर्ण हुआ करता। नगरकी कामिनियाँ और बालक सुंदर-सुंदर सुवर्ण एवं रत्न-आभूषण धारण करते थे। और घर-घर लोगोको संगीत, वाद्य तथा नृत्यमें प्रगाढ़ रुचि रहती थी। पनिहारिने कुओंसे पानी लाया करती, जैसा कि आज भी गाँवोंमें देखा जाता है। घृत लोगोका एक समाज एवं राजमान्य मनोविनोदका साधन था (८.३.१३) तथा वेश्याएँ भोगकी सर्वसम्मत सामग्री (३.२.६; ९.१२-१३)। स्त्रियाँ प्रसाधनके लिए दर्पणोका, सुगन्धित चंदन द्रव्य आदि लेपोका व कुकुम इत्यादिका प्रयोग किया करती थी, और मुख-गुदिके लिए लोग दातूनका प्रयोग करते थे। बड़े नगरोंमें कवि और जुआड़ी समान रूपसे नगरकी शोभा बढ़ाते थे (८.३.१३)। यही नगरोंका सामान्य जीवन था। सामाजिक जीवन रीति-रिवाज, रूढ़ि, धार्मिक श्रद्धा और अंधविश्वास आदिकी चर्चा आगे की गयी है।

देश—नौवीं सदीके अंतमें बहुतसे देशों, नगरों आदिके जो नाम उल्लिखित हैं, उनमेंसे किसीका भी कुछ विस्तृत वर्णन कविने नहीं किया है। जिन देशोंका थोडा-सा वर्णन मिलता है, वे हैं—भारतमें मगध और विजय तथा पूर्वी विदेहमें पुष्कलावती। राजगृह, संचाहन तथा पृथ्वीरिणी और वीतथोका नगरों तथा विजय देशके गाँवोंके प्रसंगमें वर्णित ग्रामीण जीवनके वर्णनसे ही इन देशोंका भी चित्र उपस्थित हो जाता है। इनमें कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे मगधके लोगोंने धार्मिक श्रद्धाका प्राबल्य; अत्यंत उपजाऊ भूमि, सरोवर, नदियों और उद्यानोंकी प्रचुरता, नागलता, कदली, द्राक्षा, मिर्चि, सन और धानकी खेती (१.६-८)। पुष्कलावती देशकी कोई अलग विशेषता नहीं है। इतना ही है कि वह बहुत समृद्ध देश था। विजय देशके वर्णनमें और कोई विशेषता नहीं है। उसमें भी प्रमुख रूपसे धानकी खेती, महुएके वृक्षोंकी अधिकता आदि कही गयी है। विशेषता है एक बातमें कि इस देशमें प्यासजोंका प्रचलन बहुत था। मगधराज्यके वर्णनमें एक और ध्यान देने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ पथिक पाथेय लेकर नहीं चलते थे (१.७७)। इसका तात्पर्य यह है कि शीघ्रकालमें तीन-चार महीने आम तथा वर्षिके बारहों महीने इतना केला विहारमें होता है कि वास्तवमें वहाँ कभी घरसे पाथेय लेकर चलनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसका पोषक एक और सत्य यह है कि विहार प्रांतमें सदासे ही अतिथिको देवतुल्य मानकर उसका यथासंभव उच्च सम्मान-सत्कार किया जाता रहा है। भोजन, पान और निवासके संबंधमें यह बात विशेष रूपसे सत्य है। और इन सुविधाओंके बदलेमें उस प्रांतमें किसी घरमें कभी कुछ नहीं लिया जाता था। आज भी कुछ अंशोंमें यह स्थिति विद्यमान है।

### आर्थिक अवस्था

'अनुसामिचरिउ'में उपलब्ध सामग्रीपर-से भारतकी तत्कालीन आर्थिक अवस्थाका अध्ययन करने-पर बात होता है कि साधारणतः देशके अधिकांश भागोंमें कृषि ही आजीविकाका सर्व-प्रमुख साधन थी। बड़े-बड़े नगर, राजगृह, संचाहन, सिधुवरिणी और केरल आदि, व्यापारके बड़े केंद्र थे, और उनके विशाल हाट-बाजारोंमें भिन्न-भिन्न स्थानों, व देशोंसे व्यापारार्थ आये हुए लोगोकी भीड़ लगी रहती थी। कभी-कभी व्यापारमें किन्हीं कारणोंसे गिरावट या रुकावट आ जानेपर व्यापारियोंको एक स्थानपर ही रुकना पड़ जाता था। वनिये संभवतः नौकाओंसे भी व्यापार करते थे। मापकी वस्तुओंके लिए द्रोण एवं प्रस्थ नामक माप व्यवहारमें लाये जाते थे (८.३.९)। स्थल मार्गसे कांस्थ व अन्य धातुओंके वस्तुनौका व्यापार बहुत प्रचलित था। राज-सैन्यके मार्ग या पडावमें आ पड़नेपर व्यापारियोंकी बहुत हानि होती थी, क्योंकि शस्त्रोंको चमक-दमक, रथोंकी धर्षराहट और हाथियोंकी चिंघाड़से उनके वाहन, जो अकसर वैल होते थे, वे भूटक उठते थे और उनका सामान पटक देते थे, जिससे कसेरोंके वस्तुन-वासन फूट जाते, सब सामान बिखर जाता और कभी-कभी तो वैल भाग भी जाते (५.७.१४-२३)। तैली और कलाल (मद्यका व्यापार करनेवाले)

का भी इसी प्रसंगमें उल्लेख आया है। कोई-कोई दोन-अनाय स्त्री दूधरोका खाना बनाकर भी आजीविका करती थी (५ ७.१६)। दूत संभवतः व्यसनमात्र ही नहीं बल्कि कुछ लोगोंकी आजीविकाका नियमित साधन था (८ ३ १३)। नट अपना पारिश्रमिक या पुरस्कार लेते और वेव्याएँ अपना भाड़ा (भाडि ९.१३ ५)। वेतनभोगी भृत्योका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। संभवतः सैनिको या परिजनोका वेतन नगद धनके रूपमें नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी सामग्रिके रूपमें दिया जाता था। ब्राह्मणोंके लिए पीरोहित्य और अव्यापन ये दो ही आजीविकाके साधन थे, ऐसा प्रतीत होता है। नगरोका जीवन अधिक साधन-समृद्ध होनेसे ग्रामोंकी अपेक्षा अधिक सुखकर और विलासमय रहा होगा। परंतु ग्रामोंमें भी लोग धर्मपूर्वक अपनी आजीविका करते हुए सुखपूर्वक रहते थे, प्रासाद निर्माण, मंदिर निर्माण, मूर्ति निर्माण और गृह निर्माण भी आजीविकाका एक प्रमुख साधन रहा होगा।

### सामाजिक स्थिति

वर्ण, जाति, आजीविकाके साधन, विवाहकी पद्धति व स्थिति, वरका चुनाव, पारिवारिक व्यवस्था (संयुक्त), कुलपत्तिका स्थान, घर और समाजमें कन्या; वहन, पत्नी व माँके रूपमें नारीकी प्रतिष्ठा, दैनिक उपयोगकी वस्तुएँ, रीति-रिवाज और मनोरंजनके साधन

‘जंबूसामिचरिउ’में उपर्युक्त त्रिपथोपर निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

वर्ण—चार : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण यज्ञ-यागादि करते और वैदिक साहित्यका अध्ययन-अव्यापन करते थे। राजा और धीमंतोका पीरोहित्य भी उनकी आजीविकाका साधन था। सेनाके प्रयाणके साथ भी कुछ विद्वान् पंडित जाते थे, जो स्थानोपरांत टीका लगाकर गलेमें फूलोंकी माला डालकर गरीरपर चंदनका लेप करके दमते संध्यावंदन किया करते थे (५ ११)। तिल और जौ देकर पितरोको पिंडदानकी क्रिया प्रचलित थी (२ ६)। सामाजिक अन्य वर्णोंमें ब्राह्मणोंकी क्या स्थिति थी, इस सबबमें जं० सा० च० से कोई अनुमान नहीं लगता।

क्षत्रिय—क्षत्रियोका प्रमुख कार्य युद्धमें लड़ना था। यही उनकी आजीविका थी। केरलके राजाको क्षत्रिय कहा गया है (५.३)। जं० सा० च० से क्षत्रियोके संबंधमें इतनी ही जानकारी उपलब्ध होती है।

वैश्य—वैश्य जातिके उल्लेख वणिक् गोत्र, वणिक् या वनियेके नामसे जं० सा० च० में अनेक बार आये हैं। स्वयं वीर कवि वणिक् वंशके ही थे। व्यापार-वाणिज्य वनियोका प्रमुख व्यवसाय था। विद्युच्चरके देश-दर्शनके बहानेसे कविने हमें यह बतलाया है कि व्यापारी जल और स्थल दोनों मार्गोंसे व्यापार करते थे। अन्य वर्णोंकी अपेक्षा वैश्योंकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, यह अनुमान लगाना उचित है।

शूद्र—जं० सा० च० में शूद्र ‘शब्द’का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। चणकी अंतर्कथामें (१० १५-१७) मेहतरोके लिए ‘कर्मकर या कर्मकार शब्दका प्रयोग आया है, प्राचीन कालमें उसका प्रयोग सामान्य रूपसे सभी नौकर-चाकरोंके लिए होता था। ‘मेहतर’ अर्थमें इस शब्दका प्रयोग बहुत पुराना नहीं मालूम पड़ता। आजकल उत्तर-प्रदेशके मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुरके जिलोंमें मेहतरोको ‘कमानेवाला’ और उसके कामको ‘कमाना’ कहते हैं। इस ‘कर्मकार’ शब्दसे शूद्रोंकी स्थितिका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

अन्य जातियाँ, एवं आजीविकाके साधन—इन चार वर्णोंके अतिरिक्त कृषको (हावी या कुटुवो) और ग्वालो तथा कृषक वधुया (हालीवयू, पामरी) और गोपियोंके उल्लेख कई बार (१ ७.१ ८, ३ १; ५ २) हुए हैं, वीर इनके सुखी जीवनका सुंदर चित्र खींचा गया है। ‘तेलो’ और ‘कलाल’ (सदका व्यापारी) का उल्लेख (५ ७) इन जातियोंके होनेकी सूचना करता है। भट, नट विट, डोम और कुट्टनियो (४ २१, ५.७; ५ ११)के उल्लेख जातियोंके नहीं बल्कि अमुक-अमुक आजीविकाके साधनके सूचक हैं। भट्ट पहले

राजाओं आदिकी विरुदावली गायन करनेवाले ब्राह्मण होते थे। बादमें अन्य जातियोंने भी इसे अपना लिया।<sup>१</sup> डोम बूढ़ोंकी कोटिमें रखे जा सकते हैं। लेकिन नट, विट और कुट्टुनियोंकी जाति कौन जान सकता है ?

**विवाह संस्था**—भारतवर्षमें बहुत प्राचीन समयसे ही विवाह संस्थाका सम्मान और महत्त्व बहुत अधिक रहा है तथा आज भी है। संस्कृत साहित्यमें आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख है<sup>२</sup>। इन सभीको सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। पर सबसे अधिक प्रचलन और आदर विवाहके उस प्रकारका था जिसमें वर और कन्या दोनोंके माता-पिता एवं परिवारके लोग सब-कुछ सोच-विचारकर विवाह संबंधोंका निर्णय करते थे, और ग्राम या नगरके सब प्रमुख लोग एवं स्वजातीय तथा जातीयेतर विद्याल समाजकी सार्वभौमिक जिसे विवाह रूपमें परिणत किया जाता था। इसी प्रकारके विवाहोंका परिचय हमें 'जंबूसामिचरित्र'से प्राप्त होता है। भवदेवका नागवसूसे विवाह (२९—१०) और जंबूसामिका चार श्रेष्ठि कन्याओंसे विवाह (४१४, एवं ८१२-१४) उसकी समकालीन सामाजिक विवाह पद्धतिके द्योतक हैं। इस प्रकारके विवाहमें वरकी खोजका कार्य कन्याके पिताका ही होता था। कभी ऐसा भी होता था, जैसा कि जंबूसामिका-के संवयमें हुआ (४१४), कि वर और कन्याके पिताओंमें मैत्री-संबंध रहनेसे उन संबंधोंकी स्थायी करने हेतु वे आपसमें एक दूसरेके पुत्र-पुत्रियोंके विवाह संबंध निश्चित कर लेते थे। अभी भी धनिष्ठ मित्रोंमें ऐसे संबंध होते देखे जाते हैं। विवाह संबंधोंकी स्थापनामें दोनों ओरसे पिताका ही महत्त्व सर्वोपरि दिखाई देता है, तथापि माताओंसे भी सलाह अवश्य ली जाती रही होगी, जैसाकि एक अन्य जंबूसामिचरित्रमें उल्लेख है।<sup>३</sup> मित्र, बांधवों, परिजनोंकी सलाहको भी पूर्ण महत्त्व और आदर दिया जाता था।

**वैवाहिक पद्धति**—जं० सा० ४० के रचनाकालमें भी विवाह लगभग इसी रीतिसे, कुलाचारोंके अनुसार संपन्न होते थे, जैसे कि आज वणिक् और ब्राह्मण समाजमें संपन्न होते हैं। घरकी चूनेसे पुताई, गोबरसे लिपाई और घर पर शिखर हो तो उसे गैर(या चूने) से चमकाना, तोरण और बंदनवार बंधि जाना, मंडप बनवाना और सजवाना, स्थान-स्थानपर सुगंधित चूर्ण या द्रव्य छिड़के जाना, विविध रंगोंसे सौंकर पूरना, सुगंधित पुष्पोंकी मालाएँ लटकाना और मेंट करना आदि सारी बातें आज भी उसी प्रकार होती हैं। नामा प्रकारके मंगलोलोचन, मंगलगान, बाद्य एवं संगीत, तथा कामिनीयोंके मनोभिराम नृत्य, ये सब आज भी प्रचलित हैं। वरके घरसे आये हुए समाचार, बाह्यकोके स्वागतकी विधि—आगे जाकर साथ ले जाना और आसन देना; फिर अक्षत, कुसुम, तांबूल आदि औपचारिक स्वागत करनेकी बातें ऐसी वर्णित हैं (८.९) मानो आज्ञा पटित हो रही हो। वरके हाथमें लगामिय कंगन बाँधना, नये कपड़ेका जोड़ा पहनाना, सुगंधित पुष्पोंका मुकुट पहनाना, और घरीरपर चंदनादि सुगंधित द्रव्योंका लेप करके अनेक आभूषणोंसे सजाना, कन्यादानके निमित्त कन्याके पिता-द्वारा जलाजलि दी जाना, और वरको यथासंभव अधिकते अधिक दायज (दहेज) देना। ये सब आज भी समाज-प्रचलित व्यवहार हैं। समूह कन्याओंके पिता अब भी वर-वरकी सेवाके लिए दास-दासी मेंट स्वरूप साथमें भेजते हैं। उस कालमें पाणिग्रहणकी विधि संभवतः प्रातःकालके समय संपन्न की जाती थी।

**वैवाहिक भोज**—कविने लिखा है कि लोग तृणमय आसनोपर बैठे। शीघ्र भृत्य होनेसे तालपत्र निर्मित और सुगंधित जलसे भीगे हुए पंखोंसे हवा की जाने लगी तथा नाना प्रकारके मोठे, खट्टे, चरपरे व मिश्रित व्यंजन परोसे गये। कूर नामक (धानके) चावलसे बनाया हुआ तथा खूब घीसे सिक्त भात; खट्टे खचार, चटनी, तक्र (मट्ठा, पर यह यहाँ दहीके लिए प्रयुक्त मालूम पड़ता है, क्योंकि आजकल भी देशके कई प्रांतोंमें जैसे बिहार, बंगाल एवं महाराष्ट्र आदिमें भोजनके साथ दही परोसा जाता है, मट्ठा अर्थात् छाछ नहीं।)

१ Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 2. bhāt and chāran

२. मनु० अ० ३ क्लो० २१

३. अथ जिनदास कृत संस्कृत : जम्बूसामिचरित्र

और मूंगसे बने हुए नाना व्यंजन बहुत-सी कटोरियोंमें रखकर परोसे गये। मगध, मालवा और उत्तर-प्राचीमें मूंगकी उपज अधिक होनेसे मूंगके मोठे व नमकीन दोनों प्रकारके व्यंजनोका भव भी खूब प्रचलन है। भोजन-से तृप्त होकर जलसे मुख शुद्धि कर लेनेपर सुगन्धित द्रव्य और ताबूल भेंट किये गये। विवाहके उपरांत वर-वधुओंके साथ अपने घर आया। मित्र एवं बाधवोका उचित सम्मान करके, सेंट आदि देकर उन्हें आदर पूर्वक बिदा दी गयी और प्रदोषकाल आ जानेपर वर, वधुओंके साथ सुंदर रूपसे सजे हुए शयनकक्षमें प्रविष्ट हुआ। उपर्युक्त संपूर्ण वर्णन मानो आज ही किसी विवाहका साक्षात् चित्र हमारे सामने खींच देता है। वणिक् परिवारके विवाहमें वणिक्कोका सामाजिक भोज और विप्र विवाहमें विप्रोका भोज जानी-पहचानी बातें हैं।

इन्ही वर्णनोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि उस कालमें संयुक्त परिवार प्रणाली थी। घरमें पिता ही कुलपति होता था और परिवारमें उसका स्थान सर्वोच्च था। विवाह एक साथ एकाधिक कन्याओंसे किये जा सकते थे। पचीस-तीस वर्ष पूर्वतक भारतमें यह प्रथा सुप्रचलित थी, विशेषकर समृद्ध क्षत्रिय एवं राजबंशानोंमें। सूरसेन श्रेष्ठीकी चार पुत्रा सुंदर पत्नियोंकी जो धार्मिक कथा वीर कविने लिखी है ( ३.१०.१३ ) वह एक सत्य घटनाके समान प्रतीत होती है। स्वयं वीर कविने चार विवाह किये थे। परंतु कन्याओंके लिए निरपवाद रूपसे एक बार माता-पिता-द्वारा निर्धारित व्यक्ति ही आजन्म एकमात्र पति, स्वामी सब कुछ होता था। जो कुछ पतिका भाग्य वही पत्नीका। हाँ, कोई कन्या या वधू पतिके साथ जन जानेपर समस्तः दूसरा पति कर सकती थी ( २.१६ ); पर इसे अच्छा नहीं माना जाता था। कभी यदि पिता-द्वारा पूर्व निश्चित व्यक्तिसे संवध होनेकी संभावना न दिखाई दे, तो सुशिक्षित कन्याओंसे दूसरा वर चुननेके सवधमें सलाह ली जाती रही होगी ( ८.१० )। घरमें पिताके पश्चात् माँकी स्थिति सर्वोच्च थी, और फिर बड़े पुत्रकी। छोटा भाई बड़े भाईको पिता तुल्य मानता था ( २.१०.११ ) और बड़ा भाई छोटेकी पुत्रवत् स्नेहसे रखता व उसके साथ गृहस्थीका संचालन करता था ( २.६ )। पुत्री और बहूका स्थान समान अधिकारकी दृष्टिसे बादमें आता था।

अन्य सामाजिक प्रथाएँ, दैनिक जीवन एवं मनोरंजनके साधन

मृत पतिके साथ पत्नीके द्वारा जीवित ही उसकी चितामें जल मरनेकी प्रथा इस देशमें सन् १८२९ में राजा राममोहनरायके जीवनकालमें अंगरेजी सरकारने कानून-द्वारा बंद करायी थी। यद्यपि अथर्व वेदमें पत्तिकी मृत्युके बाद उसकी विधवा पत्नीके लिए मर जाना ही धर्म कहा गया है, परंतु पत्तिकी चितामें एक बार उसके साथ केटनेपर, उसे सतति और संपत्ति रूपी वरदानकी प्राप्ति बतलायी गयी है। ऋग्वेदके समान ही अथर्ववेदमें भी विधवाको चितासे उठकर नये पतिका अनुसरण करनेको कहा गया है। और इस प्रकार मृत पत्तिकी चितामें एकबार उसके साथ केटनेपर विधवा पत्नीको उसमें-से उड़ाकर उसका दूसरा विवाह वही सबकी साक्षीमें कर दिया जाता था। परंतु कुछ अशुभ कारणोंसे इस प्रथामें परिवर्तन आया, तथा विधवा पत्नीको मरे हुए पतिके साथ उसकी चितामें ही जल-मरनेको बाध्य किया जाने लगा। भवदत्त-भवदेवके पिताकी मृत्युके उपरांत उनकी माँ जीवित ही उनके पिताकी चितामें जल मरी ( २.५ )। यह उल्लेख कविके समयकी किसी घटनाकी ओर संकेत करता है। उनके पिता धार्मिक ब्राह्मण होनेसे कुण्ठरोगसे पीडित हो जानेपर विष्णुका स्मरण करते हुए जीवित ही स्वयं अपनी चिता रचकर अग्निमें प्रविष्ट हुए थे। कुछ व्याधिका कोई उपचार न होनेसे एक धार्मिक व्यक्तिके लिए इस जीवनको समाप्त कर देनेके सिद्धांत और श्रेष्ठतर उपाय क्या हो सकता था ? और शायद यह समाजमान्य भी रहा होगा। सती प्रथाके प्रचलनका एक और संकेत युद्ध वर्णनमें ( जं० सा० च० ६८ ) में मिलता है कि प्रियतमके साथ मरनेकी इच्छासे आमी हुई एक सुसंतप्रिया शस्त्रोसे अत्यंत क्षत-विक्षत योद्धाओंके शवोंमें अपने प्रियतमकी पहचान नहीं पायी, और झूती हुई बैठ रही।

दैनिक उपयोगकी वस्तुओंमें जल रखनेके निमित्त (मृत्तिका निमित्त) करवेका प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है (१५, १.१८)। विषय देशकी स्थित्योका कटिवस्त्र (घाँटी, नाडी)में कछोटा लपाना, और लोगोका मोटे वस्त्रसे शिरपर गोलाईदार दुपट्टा (पगड़ी) बाँधना (५७) ये सच्ची बातें हैं। नगरमें हस्ती आदि कृत कोई आकस्मिक उपद्रव खड़ा होनेपर जान रखाको दौड़-धूपमें बिट और कुट्टनियों तथा स्वेच्छाचारिणी कामिनियों द्वारा इस विकट परिस्थितिका लाभ उठा लेना (४२१), जल-क्रोड़ाके समय किसी बितके द्वारा हुक्की लगाकर किसी दासीको पैर पकड़कर घसीट ले जाना और दासीके चिल्लानेपर पास ही खड़ी कुट्टनीका और जोरसे चिल्ला पडना (जिससे कोई दासीकी पुकार सुन न सके, ४.१९) ये सामाजिक जीवनके मनोरंजक चित्र हैं।

सेनाके प्रयाणके समय मार्गके नगरो व ग्रामोंमें संशोभकी स्थिति, सैनिकोंका लोगोंके घरोंमें घुस पडना, कहीं अति साहसी लोगोके द्वारा क्रुद्ध होकर राजसेनाका कोई हाथी पकड़ लिया जाना अथवा खेतोंमें हानि पहुँचानेपर किसी बोडेको पीटना या मार डालना (५.७) तत्कालीन लोकजीवनकी वास्तविक ज्ञांकी प्रस्तुत करते हैं।

मनोरंजनके साधनोंमें जल-क्रोडा, उद्यान-क्रोडा, गोपियोंके रास व चर्चरी नृत्य, कामिनियोंद्वारा गायन, वादन व नृत्यादि सर्व-प्रचलित थे, तथा चूतक्रोडा और वैश्यागमनकी भी शासन व समाज दोनोंसे मान्यता प्राप्त थी, और कुछ लोगोके लिए ये आजोविकाके साधन भी थे (४.२, ८.३, ९.१२-१३)।

## शिक्षा और साहित्य

जं० सा० च० के अध्ययनसे तत्कालीन भारतमें शिक्षा और साहित्यके संबंधमें निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

(क) ब्राह्मणोंकी शिक्षा-दीक्षा : प्राचीन आश्रम पद्धतिपर आधारित थी। परंतु आश्रमोंका कोई उल्लेख नहीं है। विद्यार्थी गुरुके घरपर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। श्रुति, स्मृति, वेद, कथा (पुराण), व्याकरण और ज्योतिष और निधंदु तथा छंदशास्त्रकी पारंपरिक शिक्षा शिष्योंको प्रदान की जाती थी। यज्ञ, पशुबलि और सोमपानका प्रचलन था। चौर्यविद्याका भी संभवतः किसी रूपमें शिक्षण रहा होगा (३.१४), जैसा कि मृच्छकटिककार सूत्रके समय तक होनेके निश्चित संकेत मिलते हैं।

(ख) जैन बालकोंकी शिक्षा गुरुओंके घरपर जैन साहित्यमें होती। परंतु व्याकरण, निधंदु, काव्य और छंद तथा दर्शन शास्त्र और तर्क शास्त्रकी शिक्षा सबके लिए समान रूपसे प्रचलित थी। बड़े घरानोंके युवकोंकी हस्तशिक्षा, अस्वशिक्षा, युद्धकला आदि क्षात्र विद्याओंका भी अभ्यास कराया जाता था। समृद्ध व सुषंस्कृत जैन परिवारोंमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तीनों भाषाओंकी शिक्षा देनेका प्रचलन था (४.१२.११)।

(ग) वनवान् कुलीन घरानोंमें कन्याओंकी भी शिक्षा दी जाती थी और सामान्य शिक्षाके अतिरिक्त उन्हें वाद्य-वादन, गायन, नृत्य एवं कामशास्त्रकी भी शिक्षा प्रदान की जाती थी (४.१२)।

(घ) साधारण समाजमें रास क्रीडा (१७.९-१०) और चर्चरी नृत्योंका प्रचलन था (१४.५)। अर्थात् ११वीं शतीमें प्रचुर परिमाणमें रास एवं चर्चरी साहित्य उपलब्ध था।

(ङ) रामायण, महाभारत, वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण, व्याकरण, निधंदु, छंद, अलंकार, दर्शन, न्याय और तर्क एवं रास और चर्चरीके एकाधिक बार उल्लेख होनेसे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त विषयोंपर प्रभूत साहित्य देशमें उपलब्ध तथा पठन-पाठनमें प्रचलित था। व्याकरणोंमें कविके समय पाणिनीय व्याकरणके पंतजलि कृत महाभाष्यपर कैयट (विक्रम ११वीं शतीके पूर्व) कृत 'महाभाष्य प्रदीप' (प्रचलित नाम प्रदीप) का विशेष प्रचलन रहा ज्ञात होता है, क्योंकि वीर कविने विशेष रूपसे प्रदीपका नामोल्लेख शब्दशास्त्र कहकर किया है (जं० सा० च० १.३.२)। संस्कृत साहित्य एवं संस्कृत व्याकरण साहित्यके इतिहासोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है।

१. वाचस्पति वैरोला—सं० सा० का संक्षिप्त इति०, पृ० ३७६ 'कैयट'; युधिष्ठिर मीमांसक—सं० व्याकरण सा० का इति० सा० १; शाक्यग्राम शास्त्री—साहित्य दर्पण हिन्दी चिमला व्याख्या। (प्रथमावृत्ति) भूमिका पृ० ५



## धार्मिक स्थिति

अत्यंत प्राचीनकालसे ही यह देश धर्मप्राण रहा है, और इस भारतभूमिमें न केवल मानवजगत्, अपितु सृष्टिके जीवमानके हित-सुख-कल्याणकी भावना रखनेवाले महान् धर्मोंको जन्म दिया है। पशुबलि प्रधान यज्ञ-यागादिका धर्म यहाँ अधिक युगो व क्षतियों तक ठहर नहीं सका। बुद्ध और महावीरने एक बार इसके विरुद्ध जो अहिंसाकी ध्वजा उठायी, तो फिर वह निरंतर उन्नत ही होती गयी। दसवी-श्याहूकी शती ई० तक वचिचत् पशुबलि प्रधान यज्ञ होते रहे, पर उनकी संख्या और परिमाण बहुत कम हो गये। इस बाह्य कर्मकांडमय धर्मके विरुद्ध यहाँ आभ्यंतर आचारबुद्धि या भावबुद्धि प्रधान धर्मोंका प्रचार-प्रसार हुआ और वैदिक परंपराके धर्मोंने भी अहिंसा प्रधान आचारको अपनेमें पूर्णतः आत्मसात् कर अपनेको उसके अनुरूप बना लिया। वैदिक सौम्य और वैष्णव धर्म या पाशुपत और भागवत संप्रदाय पूर्ण-रूपसे अहिंसा प्रधान हैं। आधुनिक काल तक योगियों और साधु-संतोंकी परंपरा पूर्ण अहिंसा एवं सर्वलोभ-कल्याणकी भावनासे ओतप्रोत है। आत्मा और पुनर्जन्म, अतः स्वर्ग-नरक एवं मोक्षमें विश्वास इन समस्त अहिंसा प्रधान भारतीय धर्मोंकी आधारभूमि है और इसी विश्वाससे प्रेरित हो यहाँ लौकिक जीवन और सासारिक कर्मोंका नियमन, निर्धारण किया जाता रहा है। इसी विश्वासके अनुरूप दैनिकचर्या और नाना प्रकारके धार्मिक विश्वास यहाँके लोकजीवनमें प्राचीनकालसे अखंड परंपरासे चलते आ रहे हैं, और प्रत्येक संप्रदाय अपने-अपने इष्ट देवताओंकी अपनी-अपनी रीतिसे पूजा-भक्ति करता चला आया है। ज० सा० च० में भी ऐसे अनेक धार्मिक विश्वासों व क्रिया-कलापोंका उल्लेख किया गया है। तीसरी संधिमें जिन-सृष्टियोगोंका मूहव व श्रमणोंकी वंदना आदिके पुण्यप्रभावसे भवदेवका देवगतिमें जाना और बहसि आयु पूर्ण होनेपर बीताशोक नगरीके महापद्म नामक राजाकी महादेवी वनमालाके गर्भमें आना एक ऐसा ही विश्वास है। जंबूकुमारके गर्भमें आनेसे पूर्व उसकी माँ जिनमतीको जंबूफलोका गुच्छा, निक्षुमानि, घानसे लदा हरा-भरा खेत, खिले फूलोंसे परिपूर्ण कमल सरोवर और जलजीवोंसे संकीर्ण सागर, ये स्वप्न होना, ऐसे ही धार्मिक विश्वासोंके प्रतीक हैं। शुभ घटनाएँ, जैसे महापुरुषोंका जन्म आदि, अथवा कोई महान् दुर्घटनाएँ भी काल चक्रमें किसी-न-किसी रीतिसे अपने आगमनके पूर्वसंकेत दे देती हैं। शुभ नक्षत्र और तिथिमें शिशुका जन्म लेना और जन्मके साथ आकाशका स्वच्छ, घवल, निरञ्ज हो जाना, दिशाओंका घूर्णरहित निर्मल हो जाना और समस्त वृक्ष, वनस्पति एवं शस्यका हरा-भरा हो जाना, फूल उठना, इन मान्यताओंमें यही विश्वास है कि महापुरुषोंके पुण्य और धर्मकी शक्ति महान् होती है और वह सारी चराचर सृष्टिको प्रभावित करती है, क्योंकि धर्मका लोकजीवनसे और लोकका समयसे अभिन्न एवं अन्योन्याश्रयी संबंध है। अतः महापुरुषोंकी धार्मिक शक्तिना प्रभाव लौकिक घटनाओंपर पड़ना स्वाभाविक है। पुत्र-जन्म, विवाहादि अवसरोंपर बघाई देनेकी लोकरीतिके पीछे भी यही धार्मिक भावना है कि शुभ भावनाओंकी शक्ति अनंत होती है और उसका प्रभाव शिशु और नये वर-वधू आदिके भविष्य जीवनमें मंगलकारक होता है।

ये ही विश्वास जब आत्मासे बढ़कर परमात्मा और देवोंमें केंद्रित हो जाते हैं, तब ये इष्ट देवताओंकी भक्तिपूर्वक पूजा, उनसे कोई वरदान मिलना या माँगना अथवा पुण्यके प्रभावसे महान् सत्तिका जन्म होना आदि लौकिक मान्यताओंके रूपमें प्रस्फुटित होते हैं। जिनपूजा आदिके प्रभावसे शिवकुमारका जन्म, और सेठकी चार पत्नियोंका नागयज्ञसे यह वर माँगना कि बुरेसंकेत समान पति पुनः न मिले (३.१३), इसी प्रकारके विश्वास हैं। इससे यह भी पता चलता है कि नागपूजा इस देशमें कितनी प्राचीन है।

विद्याधरोका आकाशगमन, आलोकिनी आदि दिव्यविद्याएँ, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, केरलमें जंबूकी विजयपर आकाशमें देवताओंका नृत्य करना और जबूकी केवलज्ञान प्राप्त होनेपर देवोंका आना व हर्ष मनाना ये सब बातें पुण्यकी महत्ताकी चोतक हैं। क्योंकि कहा गया है कि पुण्यवानोंको ही ये विशिष्ट क्षतियाँ, दिव्यास्त्र एवं केवलज्ञान आदि उपलब्ध होते हैं।

साधुओं या गृहस्थोंपर दैवीकृपा या दैवीप्रकोप भी पुण्य या पापके प्रभावसे ही माना जाता है। विद्युच्चरके ऊपर चंडमारीदेवीका अपने गणों सहित उपसर्ग (१० २६), यद्यपि स्वयं चंडमारी देवीकी दूषित भावनासे उत्पन्न नहीं है, तथापि विद्युच्चरके चोरके रूपमें किये हुए महान् क्रुद्धत्व व पाप उसके मूल कारण रूपमें विद्यमान है।

कुछ शुद्ध लौकिक विश्वासोंका भी जं० सा० च०में उल्लेख है, जिनमें तंत्र, मंत्र, अद्भुत ओपवियो आदि विषयक मान्यताएँ हैं। शृगालकी कथामें आता है कि एक कामुकने शृगालका दाँत लेकर उससे अपनी प्रियाको वशमें करनेके लिए उसका दाँत तोड़ डाला (९.११)। विद्युच्चरने ओपधिके प्रभावसे अपने पिताके पहरेदारको स्तंभित कर दिया (३ १४); जागते हुए राजाको भी सोते सरीखा बना दिया (३ १४); जंबूकी माँसे कहा कि मैं ऐसे श्रुति-शास्त्रोंको जानता हूँ जिनसे दूसरोंका चित्त जान लेता हूँ और जिनमें लोगोका वशीकरण, स्तंभन और मोहन, प्रेमो व प्रेमिकाको मिलाने और विघटित करने; जागे हुएको मारने व सोते हुएको स्वप्नमें जागरणका सुख देनेकी शक्ति है (९ १६)। ये सब बातें शुद्ध लौकिक विश्वास हैं। तथापि इनके साथ भी धर्मका संबंध किसी-न-किसी रूपमें जुड़ा हुआ है।

व्रत, उपवास, तप आदिका धार्मिक साधनासे अभिन्न संबंध है। इस देशमें लोग नाना प्रकारके व्रतोपवास आदि धर्मभावनासे करते रहे हैं। जैनोत्तर संप्रदायोंमें चाद्रायण व्रत करनेका प्रचलन रहा है। स्वयं चंद्रमाके द्वारा चाद्रायणव्रत किये जानेके व्याजसे वीर कविने इस व्रतके प्रचलनका उल्लेख किया है (४ १४)।



१. इस व्रतमें कृष्ण प्रतिपदाके दिनसे चंद्रमा घटनेके साथ-साथ प्रतिदिन एक-एक आस भोजन घटाते हुए अमावस्याके दिन पूर्ण निराहार रहा जाता है; और शुक्ल प्रतिपदाको एक आस भोजन लेकर प्रतिदिन एक-एक आस बढ़ाते हुए पूर्णिमाके दिन केवल १५ आस भाहार किया जाता है। इस प्रकार यह व्रत एक मासमें पूर्ण होता है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ एवं संकेत सूची

१. अपभ्रंश कान्यत्रयी, जिनदत्तसूरि, संपा० लालचंद भगवानदास गाधी, गा० ओ० सि० क्र० ३७, १९२७ ई०
२. अपभ्रंश पाठावली; संपा० मधुसूदन चिमनलाल गोदी, गुजरात वनविश्वविद्यालय सोसायटी, अहमदाबाद सन् १९३५ ई०
३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य; डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६५ ई०
४. अपभ्रंश साहित्य; डॉ० हरिवंश कोछड़; भा० सा० मंदिर, दिल्ली, वि० स० २०१३
५. अनुत्तरोपपातिक दशासूत्रं, सुतागमे भाग १, सपा० पुष्पभिक्षु
६. अन्तर्कृद्दशासूत्र; वही
७. अभिनव प्राकृत व्याकरण, डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री; तारा प्रकाशन वाराणसी, सन् १९६३ ई०
८. आख्यानकमणिकोश, नेमिचंद्र सूरि, प्रा० टै० सो० ग्रंथांक ५, सन् १९६२ ई०
९. आचाराङ्गसूत्र; अनु० सौभाग्यमलजी महाराज, जैन साहित्य समिति उज्जैन, वि० स० २००७
१०. उत्तररामचरित; भवभूति, हिंदी अनु० सहित, चौ० स० सिरोज, वाराणसी।
११. उत्तराध्ययन; सपा० जे० चार्लेस्टियर, उपसाल विश्वविद्यालय जर्मनी सन्, १९२२ ई०
१२. उत्तरपुराण ( उ० पु० ); गुणभद्र, सपा० अनु० प० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५४ ई०
१३. उपासकदशाङ्ग सूत्र; सपा० एन० जी० गोरे,
१४. उपासकाध्ययन ( भूमिका ); सोमदेव, सपा० अनु० प० कैलाशचंद्र शास्त्री; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६४ ई०
१५. कथासरित्सागर, सोमदेव ( हिंदी ) अनु० विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
१६. कल्पसूत्र; स्थविरावलीचरित
१७. कहकोसु, ( अपभ्रंश ); श्रीचन्द्र, सपा० डॉ० ही० ला० जैन, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, द्वारा शीघ्र प्रकाश्यमान
१८. कालिदासग्रन्थावली; सपा० अनु० प० सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ़
१९. काव्यप्रकाश; मम्मट, हिंदी अनु० व टीका डा० सत्यव्रत सिंह, चौ० वि० अ० वाराणसी, ग्र० १५, वि० स० २०१२
२०. जंबू अतरगरास अथवा जंबूकुमार विवाहलो, सहजसुंदर, हस्तलिखित प्रति लाल० दल० शोध सं०, अहमदाबाद
२१. जंबूकुमार चौपाई; अथवा जंबूस्वामीरास, पाठक भुवनसुंदरगणि हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, वही
२२. जंबूकुमार रास; वाचक जसविजय हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, वही
२३. जंबूकुमार रास, मुनि भूषर, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
२४. जंबूचरित, अथवा जंबूस्वामि अज्झयण ( प्राकृत ) हस्तलिखित प्रतियाँ, प्राप्तिस्थान, (१) वही, (२) प्राच्य संस्थान बडौदा, (३) मंडारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूना
२५. जंबूचरियं ( प्राकृत ), गुणपाल, सपा० मुनि जिनविजय, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, वंदई
२६. जंबूपृच्छा रास; अथवा कर्मविपाक रास, बोरजी मुनि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद

२७. जंबूसामिचरितं (प्राकृत); पूर्व मुनि जिनविजय; जैन साहित्यवर्द्धक सभा, भावनगर, वि० सं० २००४
२८. जंबूस्वामीकथा; विजयशंकर विद्याराम, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
२९. जंबूस्वामीगीता; उपा० यशोविजय, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३०. जंबूस्वामीगुणरत्नमाला; जेठमल चोरडिया, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३१. जंबूस्वामी चरित; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३२. जंबूस्वामी चरित्र, भावसेपर साह, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३३. जंबूस्वामी चरित्र; धर्ममुनि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३४. जंबूस्वामी चरित्र; काव्य, जयशेखर, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३५. जंबूस्वामी चरित्र; भापा, पाडे जिनदास, हस्तलिखित प्रति, पंचायती दि० जैन मंदिर, सरधना
३६. जम्बूस्वामी चरित्र; ब्रह्म जिनदास, हस्तलिखित प्रतियाँ (१) जयपुर शास्त्रमंडार, (२) ऐलक पन्ना-लाल जैन, सरस्वती भवन न्यावर, (३) भ० ओ० रि० इन्स्टी०, पूना
३७. जम्बूस्वामी चरित; पं० राजमल्ल, संपा० डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला, क्र०, ३५, वि० सं० १९९३
३८. जम्बूस्वामी चरित; मानसिंह, हस्तलिखित प्रति, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना
३९. जम्बूस्वामी चौपाई; जिनप्रभसूरि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद
४०. जम्बूस्वामी चौपाई; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४१. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४२. जम्बूस्वामी रास; उपा० यशोविजय, संपा० डॉ० २० ला० चौ० ला० शाह, प्रकाशित
४३. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान; ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
४४. जसहरचरित, पुष्पदंत, संपा० डॉ० प० ल० वैद्य, अम्बादास चवरे, दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० सं० १९८७
४५. जातक, हिंदी अनुवाद, भाग १-६, अनु० भ० आ० कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९४१ से १९५६ तक
४६. जिनरत्नकोश, संपा० डॉ० एच० डी० वेलणकर, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना १९४४
४७. जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार, फतेहचंद बेलाणी, जै० सं० सशो० मंडल, वाराणसी, सन् १९५०
४८. जैन ग्रन्थावली, जैन स्वे० काम्फरेन्स, मुंबई, वि० सं० १९६५
४९. जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ४, अंक १-२, वि० सं० १९९४
५०. जैन साहित्य और इतिहास ( द्वि० संस्करण ), नाथूराम प्रेमी, संशोधित साहित्यमाला प्रथम पुष्प, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई वि० सं० २०१२
५१. जैन साहित्यका इतिहास, पूर्व पीठिका, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, गणेश० वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला वाराणसी, वीर नि० सं० २४८९
५२. गायकुमार चरित, पुष्पदन्त, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, देवेन्द्रकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० सं० १९८९
५३. सत्त्वार्थसूत्र, ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५७
५४. तिलोपपण्णत्ति, यतिवृषभ, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, ग्रन्थांक १-२, वि० सं० २०००, २००७
५५. तिसट्टिमहापुरिसगुणालंकार, ( महापुराण )—पुष्पदंत, संपा० डॉ० प० ल० वैद्य, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला ३७, ४१, ४४, सन् १९३७, १९४०, १९४१
५६. दशवैकालिक चूर्णि, जिनदासगणि, ऋषभदेव केशरियाजी, स्वे० संस्था० रत्नलाम, वि० सं० १८८९
५७. धर्माभ्युदयमहाकाव्य, उदयप्रभ, सिंधी जैन ग्रन्थमाला ४, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं० २००५
५८. धर्मापदेशमाला विवरण, जयसिंहसूरि, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं०.....

५९. नायाधम्मकहाओ, संपा० एन० द्वी० वैद्य, पूना  
 ६०. नदीसूत्र, आगमोदय समिति प्रकाशन  
 ६१. निरयावलियाओ, सुत्तागमे भाग २, संपा० पुष्पभिक्षु  
 ६२. निबोथचूणि (सभाष्य) भाग १-४, उपा० अमरमुनि, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा, १९५७-६०  
 ६३. पउमचरिउ, स्वयम्भू, संपा० डॉ० ह० व० भायाणी (भाग १-३), सिंधी जैन ग्रन्थमाला ३४-३६, भारतीय विद्याभवन, बंबई १९५३, १९६०  
 ६४. पउमचरिय, विमलसूरि, प्रा० टै० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थाक ६, सन् १९६२ ई०  
 ६५. परिशिष्ट पूर्व, हेमचन्द्राचार्य, सपा० डॉ० हर्मन जैकोबी, एशिया० सोसायटी कलकत्ता, ग्रन्थाक ५७, सन् १८८३ ई०  
 ६६. प्रश्नव्याकरण, सुत्तागमे भाग-१, सपा० पुष्पभिक्षु  
 ६७. प्रभवजबूस्वामिवेलि, अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, ला० द० शो० स० अहमदाबाद  
 ६८. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, डॉ० रामसिंह तोमर  
 ६९. प्राकृत-पैङ्गलम्, भाग १, डॉ० भोलाचंकर व्यास, प्रा० टै० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थाक ९, सन् १९५९ ई०  
 ७०. प्राकृत-प्रकाश, वररुचि, सी० कुन्हन राजा, अडघार लायन्नेरी सिरीज, क्र० ५४, सन् १९४६ ई०  
 ७१. प्राकृत व्याकरण, हेमचन्द्र, सपा० डॉ० प० ल० वैद्य, विलिंग्डन कोलेज सागली, सन् १९२८ ई०  
 ७२. प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० नैमिचन्द्र शास्त्री, तारा प्रकाशन, वाराणसी १९६५  
 ७३. बृहत्कथाकोश, हरिवेण, संपा० डॉ० आ० ने० उपाध्ये, सिंधी जैन सिरीज, भारतीय विद्याभवन, बंबई  
 ७४. भगवती सूत्र, (व्याख्या प्रज्ञप्ति), अभयदेव कृत टीका सहित, आगमोदय समिति प्रकाशन  
 ७५. भट्टारक सम्प्रदाय, डा० विद्याधर जोहरापुरकर, जीवराज जैन ग्रन्थमाला ८, शोलापुर वि० सं० २०१४  
 ७६. भविस्यत्तकहा, घनपाल, सपा० सी० डी० दलाल, पी० डी० गुणे, गा० ओ० सिरीज X X, सन् १९२३ ई०  
 ७७. भारतीय सस्कृतिमे जैनधर्मका योगदान, डॉ० ही० ला० जैन, म० प्र० झां० सा० परिषद्, भोपाल, सन् १९६० ई०  
 ७८. भोजप्रबन्ध, बल्लाल, हिन्दी अनुवाद (भूमिका), पं० जगदीश लाल शास्त्री  
 ७९. मनुस्मृति, संपा० पं० चिन्तामणि शास्त्री, बी० सं० सिरीज ११४, वाराणसी, वि० सं० १९९२  
 ८०. भुद्रित जैन स्वेताम्बर ग्रन्थ नामावली  
 ८१. यशस्तिलक चम्पू, सोमदेव, हिन्दी, अनु० प० सुंदरलाल शास्त्री, महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी सन् १९६० ई०  
 ८२. राजस्थानके जैन भण्डारोकी ग्रन्थसूची, भाग १-४, सपा० डॉ० कस्तूरचन्द्र काशलीवाल, जैन शोध संस्थान, महावीर भवन, जयपुर  
 ८३. वसुदेव हिण्डी, (मूल प्राकृत), सघदासगणि, सपा० मुनि चतुरविजय पुण्यविजय, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३० ई०  
 ८४. वसुदेव हिण्डी, गुजराती अनुवाद, अनु० डॉ० भोगीलाल जे० साडेसरा, बड़ौदा  
 ८५. विपाकसूत्र, सुत्तागमे भाग १, सपा० पुष्पभिक्षु  
 ८६. व्यवहार भाष्य  
 ८७. संस्कृत व्याकरण शास्त्रका इतिहास, युधिष्ठिर मीमांसक, प्रका० पं० भगदत्त वै० सायनाश्रम, देहरादून  
 ८८. संस्कृत साहित्यका इतिहास, वाचस्पति गैरोला चौ० सं० वि० ग्र० २९, सन् १९६०

८९. समराइच्चकहा, हरिभद्रसूरि, संस्कृत छाया, पं० भगवानदास, अहमदाबाद, सन् १९३८  
 ९०. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, हिन्दी विमला व्याख्या, पं० शालिग्राम शास्त्री  
 ९१. सुदसणचरित, मुनि नयनंदि, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली-द्वारा शोध प्रकाशयमान  
 ९२. सूत्रकृताङ्ग, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुष्पभिक्षु  
 ९३. सेतुबंध, प्रवरसेन, काव्यमाला श्र० ४७, निर्णय-सागर प्रेस, मुंबई सन् १९३५ ई०  
 ९४. सेतुबंध; हिन्दी अनुवाद, डॉ० रघुवंश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली  
 ९५. सौन्दरनन्द काव्य, अश्वघोष, हिन्दी अनु०, पं० सूर्यनारायण चौवरी, संस्कृत भवन, कठौतिया, ( जिला पूर्णिया, विहार )  
 ९६. स्थानाङ्गसूत्र, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुष्पभिक्षु  
 ९७. हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान. डॉ० नामवरसिंह (द्वि० संस्करण)  
 ९८. हिन्दी साहित्यकोश, संपा० डॉ० धीरेन्द्रवर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी  
 ९९. हरिभद्रके प्राकृत कथा साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली, १९६५  
 100. Encyclopaedia of Religion and Ethics.  
 101. Historical Geography of Ancient India, B. C. Law.  
 102. Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, N. L. Dey.  
 103. Twentyfive hundred years of Buddhism, P. V. Bapat, Govt. of India 1956 A. D.

## संकेत

अप०—अपभ्रंश	आज्ञा०—आज्ञार्थक	आत्मने०—आत्मनेपदी
उ० पु०—उत्तमपुरुष	एकव०—एकवचन	जं० च०—जंजूचरियं
जं० सा० च०—जंजूसामिचरित	त० सू०—तत्त्वार्थसूत्र	तृ० पु०—तृतीयपुरुष
द्वि० पु०—द्वितीयपुरुष	दे—देशी	पु०—पुल्लिङ्ग
बहुव०—बहुवचन	भवि०—भविष्यत्काल	वसु० हिं०—वसुदेवहिण्डी
विधि०—विधिलिङ्ग	विशे०—विशेषण	स्त्री०—स्त्रीलिङ्ग
हिं०—हिन्दी		



## वीर-विरहऽ जंबूसामिचरिउ

[ संधि—१ ]

विजयंतु वीरचरणगोचं पिप मंदरन्मि श्रग्वरिण ।  
 कलसुच्छलंततोप मुनर्गणिलगंतविदुच्छंकारा ॥ १ ॥  
 मो जयउ जम्म जम्माहिसेयपय<sup>१</sup> - परंपडुरिज्जंतो ।  
 जणियहिमसिह्रिसंकं कणयगिरी राडओ नडया ॥ २ ॥  
 जयउ<sup>२</sup> जिणो जस्सारुणनहमणिपडिलभाचक्खुमहसक्खो ।  
 अणियच्छिथ<sup>३</sup> - मन्वावयव दुत्थपरिकलियलोयणो जाओ ॥ ३ ॥  
 भमिरभुअवेयभामियजोडसरणजणिय रयणि-दिणसंकं ।  
 इय जयउ जम्स पुरओ पणक्किचं चारु सुरवडणा ॥ ४ ॥  
 सो जयउ महावीरो ज्ञाणाणलहुणियरडुसुहो जस्स ।  
 नाणम्मि फुरउ भुअणं एक्कं नक्खवत्तमिव गयणे ॥ ५ ॥

५

१०

संधि—१

[ मंगलाचरण ]

महावीर भगवान्के चरणाग्र ( अंगुष्ठ ) से आक्रान्त होनेपर मंदरावलके कंपायमान होनेसे ( अभिषेक ) कलशसे छत्रकते हुए जलकी सूर्यमे टकराती हुई छिटकारे जयवंत हो ॥ १ ॥  
 उन ( महावीर भगवान् ) की जय हो जिनके जन्माभिषेकनिमित्तक जलके पुरसे पांडुवर्ण होता हुआ कनकाचल ( सुवर्णगिरि मेघ ) हिमगिरिकी शका उत्पन्न करता हुआ गोभायमान हुआ ॥ २ ॥  
 वे जिन भगवान् जयवंत हो जिनके अरुण-नख रूपी मणियोमे ही अपने समस्त चक्षुओको लगा देनेवाला सहस्राक्ष ( इन्द्र ) भगवान्के गोप सब अवयवोको न देख सकनेके कारण दुस्थ अर्थात् दरिद्र व परिसीमित अर्थात् अपर्याप्त नेत्रो वाला हुआ ॥ ३ ॥ घूमती हुई ( स्वच्छद्विनिमित्त सहस्र ) भुजाओके वेगसे समस्त ज्योतिर्गणोको घुमा देने अर्थात् स्वस्थान-भ्रष्ट कर देनेके कारण रात्रि है या दिन ऐसी, अथवा रातमे दिन और दिनमें रात ऐसी; अथवा क्षण-क्षणमे कभी दिन कभी रात, ऐसी गंका उत्पन्न करनेवाले सुरपतिने जिनके सामने अभिराम नृत्य किया, ऐसे जिन भगवान् जयवंत हो ॥ ४ ॥ उन महावीर भगवान् की जय हो जिनके द्वारा अपने ( आत्म ) ध्यानरूपी अनलमे रतिमुख अर्थात् विषयसेवन, अथवा रति अर्थात् निजभार्या, उसके साथ काम-भोगका भाव भस्मसात् कर दिया गया है और जिनके ज्ञानमे समस्त भुवन इस प्रकार स्पष्ट झलकता है जैसे आकाशमे एक नक्षत्र ॥ ५ ॥ अपने दोनों पाव्यों में स्थित नमि तथा विनमिकी कृपाणोमें

[ १ ] १ क ड चल्, ख ग णि । २ क ड पड । ३ क ड ई । ४ ख ग इच्छिय । ५. क व र भुअ । ६ ख ग घ ज्ञाणाणल ।



जयउ जिणो पासडिचनमिबिणमिक्किवाणफुरियपडिर्विओ ।  
 गहियणरूवैजुथलो व्व तिजयमणुसासिउं रिसहो ॥ ६ ॥  
 जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्संगनीलिमाभिन्तो ।  
 फणिणो तडिउडिचनवधणो व्व मणिगन्मिणो फणकडप्पो ॥ ७ ॥

[ १ ]

पंच त्रि पणवेप्पिणु परमगुरु मोक्खमहागइगामिहि ।  
 पारंभिय पच्छिमकेवलहि<sup>१</sup> जिह<sup>२</sup> कह<sup>३</sup> जंबूसामिहि<sup>४</sup> ॥ ध्रुवकं ॥  
 पणमामि जिणेसरु बड्डमाण किउ जेण तित्थु जगे बड्डमाण ।  
 ससुरासुरकयजस्माहिसेउ संसारसमुदुत्तारसेउ ।  
 ५ चलणमो<sup>५</sup> दोलियमेरुधीर<sup>६</sup> निन्नासियसक्कासकीर<sup>७</sup> ।  
 नहकंतिजित्तससिसूरधामु परिणायिलोयालोयधामु ।  
 जयसासणु विहरियसमवसरणु चउगाइदुहपीडियजीवसरणु ।  
 ज्ञाणग्गिभूइकयकम्मबंधु भन्वयणकमलकंदोटुबंधु ।  
 वरकमेलांलिनियचारुमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति ।

जिनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, जिनसे ऐसा लगता है कि मानो तीनों लोकोका धर्मानुशासन करनेके लिए उन्होंने अपने ही अन्य युगल रूप निर्माण किये हैं, उन ऋषभजिनकी जय हो ॥६॥ श्रीपार्श्वनाथकी जय हो जिनके शरीरकी नीलिमासे विलक्षण सर्प ( चरणेन्द्र ) का मणिगन्धित फणाटोप विद्युत्की छटासे युक्त (आषाढ़के) नये मेघके समान शोभायमान है ॥७॥

[ १ ]

पार्ष्वों परमगुरुओं (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु)को प्रणाम करके मोक्षरूपी महागति अर्थात् श्रेष्ठगतिको जानेवाले अन्तिम केवली जंबूस्वामीकी कथा यथा परम्परा प्रारम्भ की जाती है । मैं उन वर्द्धमान् जिनेश्वरको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने लोकमे वर्द्धमान् अर्थात् सर्वोत्कृष्ट धर्मरूपी तीर्थका प्रवर्तन किया व देवताओंसहित असुरों-द्वारा जिनका जन्माभिषेक किया गया और जो संसाररूपी समुद्रसे पार उतारनेके लिए सेतु रूप हैं; जिन्होंने अपने चरणोंके अग्रभाग (अंगुष्ठ) से स्थिर मेहरावतको भी कम्पायमान कर दिया व इस प्रकार अक्रदेवेन्द्रकी शका ( कि यही जिन है या नहीं; अथवा कहीं भगवान्का शिबुशरीर इतने सुदीर्घ प्रमाणवाले एक हजार आठ कलशके जलाभिषेकके पूरमे बह तो नहीं जायेगा-टि० ) को नष्ट कर दिया; तथा जिन्होंने अपने नखोंकी कान्तिसे चन्द्रमा व सूर्यकी प्रभाको जीत लिया है और समस्त लोकालोककी स्थितिको जान लिया है; जगत्को ( धर्मका ) शासन देनेके लिए जिन्होंने समवशरणके साथ विहार किया, एवं जो चतुर्गति ( देव, भनुष्य, तिर्यच व नरक ) के दु खोसे पीडित जीवोंके लिए शरणभूत हैं, तथा जिन्होंने अपने ध्यानरूपी अग्निसे कर्मबंधको भस्मसात् कर दिया है और जो भव्यजनो रूपी कमलसमूहके लिए सूर्यके समान हैं, व जिन्होंने चारुमूर्ति अर्थात् अत्यन्त गोभावती, शुद्धवर्णा व श्रेष्ठ शुद्धात्मस्वरूप लक्ष्मीका आलिंगन किया एवं रत्नत्रय ( सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य ) के द्वारा परममुक्ति अर्थात् सम्यक्त्वादि अष्टगुणोसहित सिद्धावस्थाको प्राप्त

१ क डंरुव । ८ क डंसासिउ । ९ ख गं लिहियं । १०. र डं लिहि । ११ ख ग घ जिह ।  
 १२. क ड कइ । १३. क ख डं हि । १४. क डं णया । १५ क ट जिण्णा । १६ ख गं पीर ।

<sup>१०</sup>तइल्योयसामि-समसित्तसत्तु <sup>१८</sup>वयणसुहासासियसयलसत्तु । १०  
घत्ता—निथंकरु केवलनाणघरु सासयपयपहु सम्मइ<sup>१</sup> ।  
जरमरणजम्मविद्धंसयरु देउ देउ महु सम्मइ<sup>१</sup> ॥ १॥

[ २ ]

वीरहो पय पणविचि मंदमइ	सविणयगिरु जंपइ वोरु कइ ।	
जो परगुणगहणकज्जे जियइ	सिविणे वि न दोसु लेसु नियइ ।	
मो सुयणु सहावे सच्छमइ	गुणदोसपरिक्खहि नारुहइ ।	
गुण जंपइ पयडइ दोसु छलु	अन्भासे जाणंतो वि खलु ।	
परगुणपरिहारपरंपरए	ओसरउ हयामु सो वि परए ।	५
करजोडिचि विउसहो अणुसरमि	अन्भत्थण मज्जत्थहो करमि ।	
अवसद्धु <sup>१</sup> नियवि मा मणि धरउ	परिडंछिवि सुंदर पउ करउ	
कन्नु जे <sup>१</sup> कइ विरयइ एकगुणु	अण्णेक्क पंडजिन्वइ <sup>१</sup> निउणु ।	
एकु जे पाहाणु हेसु जणइ	अण्णेकु परिक्खा तामु कुणइ <sup>१०</sup> ।	
सो विरलु को वि जो उहयमइ	एवं विहो वि पुणु हवइ जइ ।	१०

किया; जो त्रैलोक्यके स्वामी हैं तथा शत्रु व मित्रमें समान भाव रखते हैं व जिन्होंने अपनी वचनसुधासे सभी जीवोको ( सद्गति रूप उपलब्धिका ) आत्वासन दिया है। ऐसे धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्तक होनेसे तीर्थकर, केवलज्ञानके धारक, शाश्वतपद ( मोक्ष ) के स्वामी, जरा, मरण व पुनर्जन्मका विध्वंस करनेवाले सन्मति ( महावीर ) देव मुझे सन्मति अर्थात् सद्बुद्धि प्रदान करे ॥ १॥

[ २ ]

वीर भगवान्के चरणोको प्रणाम करके मंदमति वीर कवि विनयपूर्वक कहते हैं—जो दूसरोके गुणग्रहण करनेके लिए ही जीवित अर्थात् जागृत व उद्यत रहता है और स्वप्नमें भी लेशमात्र दोष नहीं देखता, ऐसा स्वभावसे स्वच्छमति सज्जन ( किसीके ) गुणदोषोंकी परीक्षामें अयोग्य होता है—अर्थात् उस ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं जाती। परन्तु दुर्जन अपने अभ्यास ( आदत ) दोषसे जानता हुआ भी दूसरोके गुणोको तो ढाँकता है और झूठे दोषको प्रकाशित करता है। दूसरेके गुणोंका निराकरण करनेका जिसका स्वभाव है, ऐसा दुर्जन भरे इस निर्दोष काव्यमें दोष न ढूँढ़ सकनेके कारण निराश होगा। मैं हाथ जोड़कर विद्वानो-का अनुस्मरण तथा मव्यस्थ जनोकी अभ्यर्थना करता हूँ। कोई अपशब्द देखकर उसे मनमें धारण न करे। उसे दूरसे ही छोड़कर सुंदर पदरचना कर लेवे। काव्यकृत्तृत्व ही जिसका एकमात्र गुण है, वह काव्यरचना ही करता है; और कोई अन्य उसका व्याख्यान करनेमें निपुण होता है। एक पाषाण स्वर्णको उत्पन्न ही करता है, और एक अन्य पाषाण ( कसीटी ) उसकी परीक्षा ही करता है। ऐसा तो कोई विरला ही होता है जो उभयमति अर्थात् दोनों प्रकारकी ( काव्य-रचना व काव्य-परीक्षा अथवा व्याख्यान करनेकी ) प्रतिभासे सम्पन्न हो।

१७ ख ग<sup>१</sup>लोक । १८ वयणामय<sup>१</sup> । १९ ख ग<sup>१</sup>इ ।

[ २ ] १. ख ग<sup>१</sup>डं । २. व<sup>१</sup>खहि । ३. क व ड दोसि, ख दोस । ४. क ड<sup>१</sup>सह । ५. क ड<sup>१</sup>उच्छिवि; ख ग उछिवि । ६. क वि । ७. ख ग एवकु<sup>१</sup> । ८. ख ग अण्णेकु । ९. ख ग<sup>१</sup>जेवड । १०. प्रतियो में<sup>१</sup>इं ।

सुहसुहयरु पढइ फुरंतु मणे कव्वत्थु निवेसइ नियवयणे ।  
 रसभावहिं रंजियविउसयणु सो मुयवि सयंसु अणु<sup>१</sup> कवणु ।  
 सो चेय<sup>२</sup> गव्वु जइ नउ करइ तहो कज्जे पवणु तिहयणु धरइ  
 घत्ता—<sup>३</sup> कय अण्णवण्णपरियत्तणु वि पयडवंधसंधाणहिं ।

१५ (१) अकहिज्जमाणु कइ चोरु जणे लक्खिज्जइ बहुजाणहिं ॥ २ ॥

[ ३ ]

सुकवित्तकरणि मणवावडेण सामग्गिकवण किय मइ<sup>२</sup> जडेण ।  
 परिकलिउ पईउ जि सइसत्थु सुत्तु वि निपज्जइ जेत्यु वत्थु ।  
 वणगउ सच्छंदु निघंटु सुणिउ गोरसविचार पर तक्कु मुणिउ<sup>३</sup> ।  
 महकइविनिवद्धु<sup>४</sup> न कव्वभेउ रामायणस्मि पर सुणिउ<sup>५</sup> सेउ ।  
 गुणु सुयणे विद्धि सुयनामकरणे चारित्तु<sup>६</sup> वित्तु पयवंधु वरणे ।

ऐसा यदि कोई हो भी जो श्रुति-सुखकर ( कर्णमधुर ) स्वरसे उसे पढ़े और मनमें स्फुरायमान होनैवाले काव्यार्थको अपने वचनमें रखे तथा रस और भावसे विद्वज्जनोका अनुरंजन करे तो वह ( महाकवि ) स्वयम्भूको छोड़कर अन्य कौन हो सकता है ? ऐसा विद्वान् भी यदि ( अपने ज्ञानका ) गर्व नहीं करता, तो उसके लिए ही ये वातवलय त्रिभुवनको धारण करते हैं ( अर्थात् ऐसे विद्वान्से ही यह त्रैलोक्य अलंकृत व सार्थक होता है । ) । जिस प्रकार कोई चोर अपना स्वरूप परिवर्तन ( ब्राह्मणादिका वेष बनाकर ) करनेपर भी प्रकट सैध लगानेके कारण बिना कहे भी विशेषज्ञों-द्वारा पहचान लिया जाता है, उसी प्रकार दूसरोकी काव्यरचनाओमें वर्ण या शब्द-परिवर्तन करने मात्रसे काव्यरचना करनेवाला कवि अपने काव्यगठनमें बिना कहे ही काव्यालोचकों-द्वारा पहचान लिया जाता है ( कि यह चोर कवि है ) ॥ २ ॥

[ ३ ]

सुन्दर काव्यरचनानामे लगे हुए मनवाले मुझ जडबुद्धिने कौन-सी सामग्री एकत्र की है ? क्या मैंने प्रदीप नामक शब्दशास्त्रको प्राप्त कर लिया है जिससे कि वस्तुका शुद्धवचनो-द्वारा वर्णन किया जा सके ? अथवा क्या मैंने वनमें जाकर ( ऋषि-मुनियोसे ) छंदसहित निघट्ट नामकोशको सुना है ? बल्कि वनमें स्वच्छन्द तथा निर्घट्ट—घंटारहित गज होता है, ऐसा मैंने सुना है । अथवा क्या मैंने गो—अर्थात् वाणीमें रसके विचार तथा तर्क ( शुद्धता ) को जाना है ? बल्कि गोरस—अर्थात् दुग्धका विकार तक्र होता है, यही मैंने जाना है । महाकवि-द्वारा रचे गये काव्यभेद ( काव्यविशेष ) सेतुवधको भी मैंने नहीं सुना, केवल रामायणमें सेतु ( वधन ) की बात सुनी है । शास्त्ररचनानामे गुण और वृद्धि ( व्याकरणकी प्रक्रियाएँ ) के नामपर, मैंने सज्जनमें गुण तथा सुतके द्वारा ख्याति-प्राप्त करनेमें वृद्धि ( अर्थात् वगवृद्धि-वशोन्नति ) की बात सुनी है, और वृत्तका अर्थ मैंने केवल चारित्र-अर्थात् आचरणसे समझा है, वृत्त अर्थात् एकाक्षरादि छंदसमूहको मैंने नहीं समझा, उसी प्रकार वरण अर्थात् पाणिग्रहणमें पयःवध अर्थात्

११ क अण्ण, व अणु । १२ क ड वेण । १३ घ अन्नवध ।

[ ३ ] १ ख ग रंरण । २ क ड मइ । ३ क घ ड उ । ४ ख ग बद्धउ । ५ क घ ड मुणिउ ।  
 ६ क घ ड त्ति, ख त्त ।

दुर्वचयणु पिमुणु जाणउ हयागु उवलकिरुल संवच्छरु समासु ।  
 मुहियण कञ्चु मकमि करेमि डच्छमि भुगहिं सायरु तरेमि ।  
 दंहरतरुमलिं दोयंतु हत्थु सद्धादुउ पंगु व जणे निरत्थु ।  
 यत्ता—अह महकडरडउ पवंगु मडं कवणु चोज्जु जं किण्ड ।  
 विद्धड हीरेण महारणु मुत्तेण वि पडमिज्जइ ॥ ३ ॥

१०

[ ४ ]

इह<sup>१</sup> अत्थि परमजिणपयसरणु गुल्लेडैविणिमाउ मुहचरणु ।  
 सिरिलाडवरगु तहिं चिमलजसु कडदेवयत्तु निवुद्धकसु ।  
 बहुभाचहिं<sup>२</sup> जे वरंगचरिउ पद्धडियावंगं उद्धरिउ ।  
 कविगुणरसरंजियविउसह<sup>३</sup> वित्थारिय सुदयवीरकह<sup>४</sup> ।  
 चच्चरियवंधि विगडउ सरसु गाडज्जउ संतिउ तारजसु<sup>५</sup> ।  
 नच्चिज्ज जिणपयसेवयहिं किउ रामउ अवादेवयहिं ।  
 सम्मत्तमहाभरधुरधरहो तहो सरमइदेविलद्धवरहो ।

५

जलापणके द्वारा वर-वधूका सयोग कराया जाता है, यही मैंने जाना है; परन्तु गद्य-पद्यमय पदबंध अर्थात् पदरचना-द्वारा महाकाव्यकी रचना करना मैं नहीं जानता। दुर्वचन अर्थात् (वैयाकरणोंके अनुसार) 'अपगव्'के नामपर मैं दुर्वचन बोलनेवाले दुष्ट-चुगलखोरको ही समझता हूँ व समास (कर्मधारय, तत्पुरुष आदि) के नामपर मासयुक्त संवत्सरको। भोलपनसे ऐसा समझकर कि मैं काव्य रच सकूँगा, मैं कविकर्ममें प्रवृत्त होता हूँ, और इस प्रकार मैं भुजाओ-द्वारा सागरको तर जानेकी इच्छा करता हूँ। दीर्घवृक्षके फलोंकी ओर हाथ बढ़ानेवाले थडालु पंगुके समान ही मैं लोकोमें विकलप्रयास अर्थात् असफल प्रयत्न होऊँगा। अथवा महाकवियों द्वारा इस विषयके प्रबन्ध (महाकाव्य) की रचना की गयी है, तब क्या आश्चर्य जो मैं भी वैसी ही रचना करूँ, क्योंकि हीरेसे बिंधे हुए महारत्नमें धागा भी प्रवेश कर जाता है ॥ ३ ॥

[ ४ ]

इस देशमें अन्तिम तीर्थंकर-महावीरके चरणोंका भक्त, गुल्लेडका निवासी, शुभ आचरणवाला, श्री लाडवर्गंगोत्री, निर्मल यशवाला और (काव्यरचनारूपी) कसौटीपर कसा हुआ महाकवि देवदत्त था, जिसने पद्धडिया छंदमें नाना भावोंसे युक्त वरागचरितका उद्धार किया तथा काव्यगुणों व रसोंसे विद्वत्सभाका मनोरंजन करनेवाली सुदयवीरकथा (?) का विस्तारसे वर्णन किया। उन्होंने सरस चच्चरिया बंधमें शान्तिनाथका महान् यशोगान किया; तथा जिन भगवान्के चरणोंकी सेविका अवादेवीका रास रचा जिसका जिनभगवान्के चरणसेवकों-द्वारा नृत्याभिनय भी किया जाता है। ऐसे सम्यक्त्वरूपी महद्भारकी धुराको

१ क ष ड उ । ८ ख ग वि । ९ ख ग फल । १० क ण । ११ ख ग चोज्ज ।

[ ४ ] १ घ अह । २ ख ग गुड । ३ ख ग निवुद्ध । ४ क भाचहि । ५ क ष ड सहा । ६ क ष ड कहा । ७ ख ग ताह ।

नामेण वीरु हुउ विणयजुउ

संतुव-गम्भुम्भउ<sup>१</sup> पढमसुउ ।

१० ॐ घत्ता—अखलियसर<sup>२</sup>—सकयकइ कलिवि<sup>३</sup> आएसिउ सुउ पियरें ।  
पाययपवंधु<sup>४</sup> वल्लहु जणहो विरइज्जउ किं इयरें ॥ ४ ॥

[ ५ ]

अह मालवम्मि धणकणदरिसी नयरी नामेण सिंधुवरिसी<sup>१</sup> ।  
तहिं धक्कडवग्गे वंसतिलउ महसूयणनंदण<sup>२</sup> गुणनिलउ ।  
नामेण सेट्ठि तक्खडु वसइ जसपडहु जासु तिहुयणे<sup>३</sup> रसइ<sup>४</sup> ।  
महकइदेवत्तहो परमसुही ते भणिउ वीरु कयसुयणदिही ।  
चिरु कइहि<sup>५</sup> बहुलगंधुद्धरिउ संकिल्लहि<sup>६</sup> जंबुसामिचरिउ ।  
५ पडिहाइ न वित्थरु अज्ज<sup>७</sup> जणे पडिभणइ<sup>८</sup> वीरु संकियउ मणे ।  
भो भव्वबंधु किय तुच्छकहा रंजेसइ केम विसिट्टसहा ।  
एत्थंतरे पिसुणसीहसरहु तक्खडकणिहु वोल्लइ भरहु ।  
वित्थरसंखेवहु दिव्वज्जुणी गरुयारउ अंतंर वीर सुणी ।  
घत्ता—सरि-सर-निवाण<sup>१</sup>-ठिउ बहु वि जलु सरसु न तिह मणिज्जइ ।  
१० थोवउ करयत्थु विमलु जणेण अहिलासें जिह पिज्जइ ॥ ५ ॥

धारण करनेवाले और सरस्वती देवीसे वर प्राप्त करनेवाले उस ( देवदत्त ) कविको सतुवा ( भार्या ) के गर्भसे विनयसम्पन्न वीर नामका प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्रको अस्खलितस्वर अर्थात् अव्यावाह सस्कृत कवि जानकर पिताने आदेश दिया—लोकप्रिय प्राकृत प्रबन्ध ( गैली ) में काव्य-रचना करो अन्य रचनासे क्या ? ॥४॥

[ ५ ]

मालवदेशमें धनधान्यसे समृद्ध सिंधुवर्षी नामकी नगरी है । वहाँ धाकडवर्गवशका तिलकभूत, मधुसूदनका गुणनिधान पुत्र तक्खड नामका श्रेष्ठि रहता है, जिसके यशका डका तीनो लोकोमें बजता है । महाकवि देवदत्तके सज्जनोको सुख देनेवाले उस परम सुहृत्ते वीर कविको कहा—चिरकालसे कवियो-द्वारा अनेक ग्रन्थोमें उद्धृत जंबूस्वामीचरित्रका सक्षेपमे कथन करो । तब 'आर्यजनोंको व्यर्थ विस्तार—अर्थात् पुनरुक्ति न मालूम हो' इस प्रकार मनमें शक्ति होकर वीर कविने कहा—हे भव्यवधु ! ( मेरे-द्वारा ) रचित सक्षिप्त कथा विशिष्टरूपा अर्थात् विद्वज्जनोका अनुरजन कैसे कर सकेगी ? इसके अनन्तर पिशुनरूपी सिंहोके लिए अष्टापदके समान, तक्खडके कनिष्ठभ्राता भरतने कहा—हे दिव्यध्वनि ( देवोके समान सुमधुर वाणी ) वाले वीर कवि सुनो, विस्तार और सक्षेपमें बड़ा भारी अन्तर होता है, नदी, सरोवर और चरहियोमें बहुत सा जल है, वह सभी सरस नहीं माना जाता; परन्तु करवे-में रखा हुआ थोडा-सा विमल जल लोगोके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है ॥५॥

म ख ग गंभ<sup>१</sup> । १ क ग व ड<sup>२</sup> सर<sup>३</sup> । १० क ड कलवि । ११. क ड पायव<sup>४</sup> ।

[ ५ ] १ क व ड<sup>१</sup> करिसी । २ क णदण । ३ क ड<sup>३</sup> वणे । ४ ग इ । ५ ख व हि । ६ ख ग<sup>६</sup> हि । ७ ख ग व अज्जु । ८ क व ड<sup>८</sup> इ । ९. ख ग निवाणु ।

[ ६ ]

अवि य-सेट्टिसिरितक्खडेणं भणियं च तओ समत्थमाणेण ।

बड्डइ<sup>१</sup> वीरस्स मणे कइत्तकरणुज्जमो जेण ॥ १ ॥

मा हांतु ते कइद्दा गरुयपवधेहि<sup>२</sup> जाण निव्वुद्धा ।

रसभावमुगिरंती विप्फुरइ<sup>३</sup> न भारइ<sup>४</sup> भुवणे<sup>५</sup> ॥ २ ॥

संति कई वाई विहु वण्णकरिसे सुफुरियविण्णाणां ।

५

रससिद्धिसंचित्थो<sup>६</sup> विरलो वाई कई एको ॥ ३ ॥

विजयंतु जण कइणो जाणं वाणी अट्टेपुव्वत्थे ।

उज्जोइयवरणियला<sup>७</sup> साहय<sup>८</sup>—चट्टि व्व निव्वडइ ॥ ४ ॥

जाणं समग्गसदोहज्जे<sup>९</sup> रमइ मइफडक्खिम् ।

ताणं पि हु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिप्फुरइ<sup>१०</sup> ॥ ५ ॥

१०

किं च स्वकृतमपि वृत्तं न स्मरसि—

स कोऽन्यतर्वेद्यो वचनपरिपाटीं घटयतः<sup>११</sup>

कवेः कस्याप्यर्थः स्फुरति हृदि वाचामविषयः ।

सरस्वत्याग्र्यान् निगदन्विधौ यस्य विषमा-

मनात्मनीयां चेष्टामनुभवति कष्टं च मनुते ॥ ६ ॥

[ ६ ]

और भी—भरतके इस वचनका समर्थन करते हुए श्रेष्ठ श्रौतक्खडने ऐसे वचन कहे जिनसे वीरके मनमें काव्यरचनाका उद्यम ( उत्साह ) बढे । उन्होंने कहा—वे श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकते जिनकी परिपुष्ट भारती महान् प्रबन्धो ( महाकाव्यों )—द्वारा रस व भावोंकी वृष्टि करती हुई लोकमें विस्फुरायमान नहीं होती । वर्णों ( रंगों ) के उत्कर्षमें ( अर्थात् चटकदार रंग चढानेमें ) अत्यन्त चतुर धातुवादी तथा वर्णोंके उत्कर्ष अर्थात् बड़े-बड़े व सुंदर शब्दोंके प्रयोगमें चतुर कवि इस लोकमें बहुत है; परन्तु रस ( धातुरस ) की सिद्धिसे अर्थ अर्थात् सुवर्णका संचय करनेवाला धातुवादी तथा काव्यरसोंकी सिद्धिसहित सुंदर अर्थका संचय करने-वाला कवि कोई एक विरला ही होता है । जगत्में वे कवि विजयी हों जिनकी वाणी अदृष्टपूर्व ( अभूतपूर्व ) अर्थोंके विषयमें धरणीतलकी प्रकाशित करती हुई तथा उपयोग-विशेषके द्वारा गूढ़धनकी प्रकाशित करनेवाली साधकवर्तिकाके समान प्रवृत्त होती है । जिनके मतिरूपी फलक-पर समग्र शब्दसमूह ( संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश ) रूपी कन्दुक नाना अर्थोंमें प्रवृत्त होती हुई क्रीडा करती है, उनके भी ऊपर और किसकी बुद्धि प्रतिस्फुरित हो सकती है । और क्या तुम अपने ही रचे हुए इस वृत्तकी स्मरण नहीं करते—‘ऐसा कोई विरला ही अन्तर्वेदी कवि होता है जिसके हृदयमें वचन-परिपाटीकी घटना करते हुए वाणीके अगोचर कोई अभूतपूर्व ही अर्थ स्फुरित होता है, जिसके अर्थोंको कहनेके प्रयासमें सरस्वती भी बड़ी विषम अनात्मनीय ( असौधारण ) चेष्टाका अनुभव करती है और कष्ट मानती है ।

[ ६ ] १. क ड बड्डइ । २. क ड व । ३. ग वेवि । ४. ख ग विवरइ । ५. क ड व ही ।

६. क ड सुयणे । ७. ख ग णो; व विण्णाणा । ८. क ड उव्व; व संवि । ९. क पुल; व त्थो । १०. प्रतियोगे यलो । ११. ख ग ह । १२. क ड हम्मंहुउ । १३. क ड पडि । १४. ख ग यय ।

- १५ इय निगुणेवि वयणु<sup>१</sup> उल्लाहे पारंभिय कइ जिणवड नाहे ।  
 अत्थि एत्थु<sup>२</sup> ध गकणयममिद्धउ मगहदेसु महियलि सुपसिद्धउ ।  
 धम्मथारजुत्त निहसणु पंडवनाहु व भागहभूसणु ।  
 त्रिसयसारु वणिज्जेइ हंसु व कि न<sup>३</sup> तरुणियणमंडलफंसु व ।  
 कुरुडकवकहववु व वीसरु<sup>४</sup> भावइ नीरसस्स सुमनोहरु ।  
 २० जहि<sup>५</sup> जलवाहिणीउ थिरगमणउ गुरुगंभीरवलाहियरमणउ<sup>६</sup> ।  
 तरलमच्छदीहरचलनयणउ त्रियमियईदीवरवरवयणउ ।  
 जलगयकुंभथोरयणहारउ<sup>७</sup> फेगावलिसोहियसियहारउ ।  
 उइयकूलदुमनियसियवसगउ<sup>८</sup> जलखलहलरवसज्जियरसणउ ।

ये वचन सुनकर जिनमतिके पति ( वीर कवि ) ने उत्साहसे कथा प्रारम्भ की। यहाँ-पर अनकणसे समृद्ध, महीतलमे सुप्रसिद्ध मगध नामका देश है। वह वर्मावारसे युक्त है और द्वषणरहित है, अतः पांडवनाथ युधिष्ठिरके समान भारत ( महाभारत, पक्षमे भारतदेश ) का भूषण है। वह सब देशोमे श्रेष्ठ कहा जाता है, अतएव सैकड़ो पक्षियोमे हंसके समान तथा विषयोमे श्रेष्ठ तरुणजनोके स्तनमण्डलके संस्पर्शके समान नवो न वर्णनीय हो ? अपने उद्यानादिकोमे वह पक्षियोके स्वर ( वी + स्वर ) से सयुक्त तथा जल और वायु ( नीर + वायु ) से अति मनोहर होता हुआ कुकविकृत काव्यकथार्बधके समान स्वरहीन ( विस्वर ) है जो काव्यरसके ज्ञानसे हीन ग्राम्यपुरुषको खूब मनोहर लगता है। जहाँकी जलवाहिनियाँ जलवाहिनी ( पनिहारिन ) कामिनियोके समान है; वहाँकी पनिहारिने मद-मद गमन करने-वाली तथा विशाल, गभीर व सुपुष्ट नितम्बोवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ मद-मद प्रवाहवाली तथा अति विशाल व गभीर हृदो रूपी सुपुष्ट नितम्बोको धारण करनेवाली हैं। वहाँकी पनिहारिने चंचल मत्स्योके समान दीर्घ व चंचल नेत्रोवाली, तथा विकसित इंद्रीवरके समान प्रफुल्लित एव सुंदर मुखवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ चंचल-मत्स्योरूपी दीर्घ व चंचल नेत्रोवाली तथा विकसित इंद्रीवररूपी प्रसन्न व सौम्य मुखवाली हैं; वहाँकी पनिहारिने जलगजोके कुभस्थलोके समान स्थूल स्तनोको धारण करनेवाली तथा फेगावलि के समान शोभायमान श्वेत ( मुक्ता ) हारोको धारण करनेवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ जलहस्तियोके कुभस्थलरूपी स्थूलस्तनोको धारण करनेवाली तथा फेगावलि-रूपी धवलहारोसे शोभायमान हैं; जिस प्रकार पनिहारिने पहने हुए वस्त्रो तथा घडोमे छलकते हुए जलके खल-खलरव एवं कटिमेखला ( की किंकिणियोके मधुर कलरव ) मे सुसज्जित रहती हैं, उसी प्रकार जलवाहिनियाँ उभयतटोके द्रुमोरूपी पहने हुए वस्त्र एव जलके खल-खल रव रूपी कटिमेखला ( की किंकिणियोके मधुर रव ) से सुसज्जित हैं। उस मनोहर देशको छोड़कर नदियाँ अपेय त्रिप ( जल व हालाहल ) के आकर ( सागर ) का अनुसरण करती हैं, अथवा

१५ क ट ण । १६ ग एत्व । १७ र ग किनु । १८ क ट वा । १९ क ड जहि । २० क ट गंभीर ।  
 २१. क घ ड गयकुभिकुभयण २२ र ग णिवमिय । -

घत्ता—तं देसु मणोहर परिहरेवि सरिउ अपेउ विसायरु ।  
जडमइयहिं अहव विवेउ कहिं तियहिं<sup>२३</sup> सलोण<sup>२४</sup> आयरु ॥ ६ ॥

[ ७ ]

जहिं सरवरइ हसियसयवत्तइ<sup>१</sup> कुकलत्ता इव अविणयत्रंतइ<sup>२</sup> ।  
तटतरुछाइयसीयलनीरइ<sup>३</sup> सज्जणहियया इव गंभीरइ<sup>४</sup> ।  
उज्जाणइ<sup>५</sup> परिवडिहयमारइ<sup>६</sup> जोवण इव पियालवणसारइ<sup>७</sup> ।  
दक्खारसु चियलंतु न खिजइ थलकमलिणिदलनिवडिउ पिज्जइ ।  
जहि खजंति कीरमुहसुंविउ परिपक्खउ कयलीफललुंविउ ।  
असुहावियमुहेहिं<sup>८</sup> रुइरहियहिं मिरियवेलि चक्खिज्जइ पडियहिं ।  
इय आहारहिं जहिं छुह<sup>९</sup> छिज्जइ संवलु नियधराउ न वहिज्जइ ।  
ओणामिज्जइ पावियफलभरु नायवेलिवेडिउ फोफलसरु ।

५

जडमति ( पक्षमे जलमयी ) स्त्रियोंमे कही विवेक देखा जाता है ? वे तो केवल सलोने ( सुन्दर, पक्षमे सलवण-बारा ) का आदर करती हैं ॥६॥

[ ७ ]

जहाँके सरोवर कुकलत्रोके समान हैं; कुकलत्र सैकड़ों उपहसनीय मुखों ( या पात्रों अर्थात् उपपतियों ? ) वाली तथा अविनयशील होती है; उसी प्रकार वहाँके सरोवर हसित अर्थात् विकसित शतपत्रोसे युक्त तथा अविनयशील अर्थात् जलके निरन्तर गमनागमनसे युक्त हैं । वे सरोवर तटवर्ती वृक्षोसे छाये रहनेके कारण शीतल जलवाले तथा सज्जनोके हृदयोके समान गंभीर हैं । वहाँके उद्यान यौवनके समान हैं; यौवनमे मार अर्थात् काम खूब बढ़ता है और प्रिय जनोंका कामोद्रेककारी आलाप ही उसमें सार होता है; उसी प्रकार वहाँके उद्यानोमें मार ( हठ ) वृक्ष खूब बढ़ रहे हैं और प्रियाल वृक्षोकी पंक्तियों तथा पानीसे सार युक्त अर्थात् समृद्ध हैं । वहाँ ( पके हुए फलोंके गुच्छोंसे ) निरन्तर गिरता हुआ द्राक्षारस कभी क्षय नहीं होता और स्थल कमलिनियोंके पत्रों पर पड़ा हुआ पिया जाता है । जहाँ शुकोके द्वारा मुख चूबे हुए ( चोच मारे हुए ) लटकते हुए परिपक्व कदली फलोंके गुच्छे ( कंले ) खाये जाते हैं । और जहाँ ( मुधातुल्य मीठा द्राक्षारस पीने व मीठे फल खानेसे जिनका ) मुँह बेस्वाद हो जानेसे जिन्हें और कुछ खानेसे अरुचि उत्पन्न हो गयी है, ऐसे पथिकोके द्वारा मिरिचकी बेल चखी जाती है । ऐसे ( प्राकृतिक ) आहारोसे जहाँ क्षुधा क्षय हो जाती है, वहाँ अपने घरोंसे संवल ( पाथेय ) लेकर नहीं चला जाता । तथा जहाँ नागलता ( पानकी बेल ) से वेष्टित पूगवृक्ष फलोंके भार-रूप पूर्ण सफलताको प्राप्त कर झुक रहा है । उस देशमे गोकुलके आँगनोंमें नीले वस्त्रोंको

२३ क डं हि । २४ क घ ङ णइ ।

[ ७ ] १ क डं जहि सरवरइ हसियसयवत्तइ । २ क ख ग डं वत्तइ । ३ क डं रइ । ४ क ख ग डं णइ । ५ कं सारइ, ख गं वट्टिणं । ६ क ग डं हि । ७ क जिह छुह । ८ कं ज्जइ । ९ क डं वणाविवज्जइ, ख ग उण्णां ।



घत्ता—गोट्टगणे नीलनिधंसणिहिं वणथरणरमणुकंतिहिं<sup>१०</sup> ।

पहिं<sup>११</sup> किज्जइ<sup>१२</sup> गमणविलंबु जहिं गोविहिं रासु रमंतिहिं ॥ ७ ॥

[ ८ ]

जहिं कलमसालिफलेकयसुयंघु

वाचरइ समीरणु भरियरंधु।

हल्लिरमहल्लमंजरिवसेण

धुम्मइ व धरणि रंजियरसेण ।

उद्धूस इव्व वरधूसरेहिं

उच्चलइ व चवलयेवल्लरेहिं ।

हसइ व विसट्टंमुहवणफलेहिं<sup>१३</sup>

नच्चइ व नमंतहिं जो नलेहिं<sup>१४</sup> ।

५ मंडइ व वयणु कुसुमियसणेहिं<sup>१५</sup>

सत्वंगुकरसिय करिसणेहिं<sup>१६</sup> ।

पुंडळुजंतचिकारएहिं<sup>१७</sup>

गाथइ व मुक्कसिकारएहिं ।

सरलंगुलिउडिभिविं<sup>१८</sup> जपिएहिं<sup>१९</sup>

पयडेइ व रिद्धि कुडुंमिएहिं<sup>२०</sup> ।

६ देउलहिं विहूसिय सहहिं गाम

सगा व अवड्डणं विचित्तधाम ।

घत्ता—परिहापायारहिं परियरिउ सुरपुरसिरिदलवट्टणु ।

१० ताहे देसि मणोहर रायगिहु नामे निवसइ पट्टणु ॥ ८ ॥

धारण करनेवाली तथा अत्यन्त घने स्तनों व रमणोंके भारसे आक्रान्त रास खेलती हुई गोपियों के द्वारा ( पथिकोंके लिए ) पथमे गमन करनेमे विलंब कर दिया जाता है ।

[ ८ ]

जहाँ कलम नामक धानकी वालीकी सुगंधिसे युक्त, समस्त रंजनोंको भरनेवाला ( व रोम-रोम पुलकित करनेवाला ) समीर वहता है । जिस देगकी भूमि बड़ी-बड़ी हिलती हुई मंजरियोंके वहाने मानो रसरजित ( मदमत्त ) होकर धूम रही है; श्रेष्ठ मृगकी कोमल सेमयुक्त फलियोंसे मानो रोमांचित हो रही है; चपल कोपलोंके ऊपरके फलियोंके गुच्छोंके द्वारा मानो उछल रही है; विकसित मुख अर्थात् खिले हुए कर्पासफलोंसे मानो हँस रही है और झुकते हुए नलो ( सरकंडे ) के द्वारा मानो नाच रही है; फूले हुए सण से मानो मुखको सजा रही है और फूली हुई खेतीसे मानो सर्वांग उत्कषित अर्थात् उल्लसित हो रही है—ऐसा वह देश इक्षु रस निकालनेके यंत्रोंकी चीत्कारो-द्वारा मानो सीत्कारें छोड़ते हुए नाच रहा है । अपनी सरल अंगुलियोंकी उठा-उठाकर बोलनेवाले अपने कुटुम्बी अर्थात् किसान गृहस्थोंके द्वारा जो अपनी ऋद्धि-समृद्धिको प्रकट करता है । देवकुलोसे विभूषित वहाँके ग्राम ऐसे शोभायमान है मानो विचित्र भवनोवाले स्वर्ग अवतीर्ण हो गये हो । उस देगमे परिखा और प्राकारोसे घिरा हुआ इंद्रपुत्रीकी गोभाकी भी मात करनेवाला अत्यन्त मनोहर राजगृह नामका पत्तन है ॥८॥

१० क व ड रमणं । ११. ख ग पहिं । १२ ख ग ई ।

[ ८ ] १. ग सालिकलं । २ ख ग ड । ३ ख ग लइ । ४ क ड हु । ५ व ण, ड, हि । ६. क ड तिहिं । ७ ड हि । ८. क ड करिसिय । ९ क ड विवकारं । १०. ख उ सियि । ११. क व ड उविं । १२ क ड रेहिं । १३ क हिण्ण; व इय । १४ क वहिं ।

[ ६ ]

गोउरं जत्थ भडरक्खियं दुद्धं  
हट्टमगं पि चल्लंतु नायरज्जो  
कामिणीसियचुयकुंभे खुप्पए  
उवरित्तणभूमिधवलहरअच्चमंतरे  
सासमरुमिलियभमरं मुहं दावए  
फलिहसिलघडियवरपंगणुम्मीसिया  
दित्तरविकंतकिरणेहिं तमु खिज्जए  
कसणमणिखंडंविचइयधरणीयलं  
पयहिं चंपेविं आहणइ जा किर थिरं

कुंभविलयाण जंतोण कयकहमं ।  
एकमेकेसु संघट्टियंगो घणो ।  
लहसियसिरकुसुमदामेहिं तह गुप्पए ।  
कामपंडुरकवोला गवक्खंतरे ।  
राहुससिजोयभंति समुप्पायए ।  
पोमराएहिं रंगावली दीसिया  
जामिणी जत्थ निहाए जाणिज्जए  
सप्पसंकाइ चलवलियकिरणुज्जलं ।  
धुणइ कुंचइयं-चंचूमउरो सिरं ।  
सगिणीनामछंदो ।

५

घटा—घरि घरि गोरिड सीमंतिणिउ सक्कु घणउ<sup>१</sup> ईसरु जणु ।

नियरिद्धिए मण्णड<sup>२</sup> तुच्छसिरि सग्गु वि दुत्थु दयावणु<sup>३</sup> ॥६॥

१०

[ ६ ]

जहाँके गोपुर भटोसे सुरक्षित होनेसे ( शत्रुओंके लिए ) दुर्दम्य अर्थात् दुर्जेय है और जहाँ गमन करती हुई पनिहारिनोंके द्वारा कर्दम कर दिया जाता है; वहाँ हाट-मागोंसे चलता हुआ नागर समुदाय परस्परके अंगोंसे खूब संघट्टित होता है; कामिनियोंके स्वेदसे चूये हुए कुंकुम ( की कीचड़ ) में वह धँस जाता है और शिरसे खिसकी हुई पुष्पमालाओंमें स्खलित होता है । जहाँ ऊपरीतलके प्रासादके भीतरके गवाक्षोंमें कामोद्रेकसे पांडुरवर्ण कपोलवाली कामिनी अपने स्वासकी ( सुगंधित ) मस्तुसे आकृष्ट हुई भ्रमरपंक्तिसे सहित मुखमंडल दिखला रही है और राहु-शशि संयोग अर्थात् चन्द्र-ग्रहणकी भ्रान्ति उत्पन्न करती है वहाँ स्फटिक शिलाओंसे घटित घर-प्रागणमें पद्मरागसे मिश्रित मणियोंकी रंगोली दिखाई देती है । देदीप्यमान रविकांतमणिकी किरणोंसे जहाँ अन्वकार नष्ट हो जाता है, अतः वहाँ यामिनी केवल निद्रासे ही जानी जाती है । उन घरोंके पृथ्वीतल इन्द्रनीलमणियोंसे खचित हैं, जिनकी लहराती हुई किरणें चंचल सर्पोंकी गंका उत्पन्न करती हैं; इसलिए वहाँ मयूर पुनः-पुन अपने चरणोंसे भूमिको आक्रान्त (आहत) करके ( वास्तविक सर्पोंको न पाकर ) अपने चंचुको कुंचित करके सिर धुनता है । ( सगिणी नामक छंद ) । वहाँ घर-घरमें गोरी सीमन्तनिर्या है ( स्वर्गमें एक ही गोरी है ) तथा घर-घरमें शक्र और घनद-कुवेर जैसे धनी लोग हैं ( स्वर्गमें एक ही शक्र और एक ही घनद हैं ) । इस प्रकार अपनी ऋद्धिकी तुलनामें वह नगर स्वर्गको तुच्छ धनवान्, दुःस्थित और दयनीय मानता है ( विवेकके लिए देखो आगे टिप्पण ) ।

[१] १ क सिय । २ क छ भमं । ३ क छ सुह । ४ क ड जोय तहिं भतिमुप्पायए । ५. क घ ड । ६. ख ग ई । ७. ख संड । ८. क छ चपेहि, घ चपेहि । ९. ख ग डं । १०. ख ग कुचड । ११. क घ ड में छद नाम नहीं । १२. ख ग व उ । १३. क घ ड डं, ख ग मल्लइ । १४. ख ग वणउ ।

[ १० ]

घरे घरे तूर मणोहर वज्जइ  
 घरे घरे सुम्मइ सवणसुहावणि  
 घरे घरे जहि<sup>३</sup> नेउरवभामिणि  
 जहि दप्पणकराणं आमत्तिण  
 ४ सुद्धियाणं ईहंतिणं सियगुणु  
 कामिणीउ णं चंदणसाहउ  
 जाहं रुउ<sup>१</sup> पेक्खेवि<sup>२</sup> कलइत्तउ  
 जयकंखिरु तिनयणभयतट्टउ<sup>३</sup>  
 घणथणकलत्तहि<sup>४</sup> सुद्धएप्पिणु<sup>५</sup>  
 १० अहरए महु<sup>६</sup> छुहेवि<sup>७</sup> मयसंगहि<sup>८</sup>  
 कामुअजणमणजगडणदक्खहि<sup>९</sup>  
 ऊरुखंभंसंखियमुवणुल्लण

पुरवरि नं अयालि घणु गज्जइ ।  
 गंधवणुल्लगआलावणि ।  
 दावइ हंसहो गइ गोसामिणि ।  
 अहरोवाहिरंगु अमुणत्तिणं ।  
 दंतपत्तिं छोलिज्जइ पुणु पुणु ।  
 विरइयभोयमुअंगं-सणाहउ ।  
 हेखइ<sup>३</sup> जित्तु<sup>४</sup> महेसरचित्तउ<sup>५</sup> ।  
 सरणउ अंगि अणंगु पइइउ ।  
 नियसव्वसुं सिगारुं ठवेप्पिणु ।  
 धणु सज्जोउ मुक्कुं भूमंगहिं ।  
 बाणसमप्पियं नयणकडक्खहिं ।  
 रइआवासु क्रियउ रमणुल्लण ।

[ १० ]

उस श्रेष्ठ नगरमे घर-घरमे ऐसा मनोहर तूर बजता है, मानो दुर्दिनमे मेघ गरजता हो । घर-घरमे गधवों-जैसा श्रवण सुखद वीणाका संगीत सुनाई पड़ता है । जहाँ घर-घरमे तूपुरध्वनि करती हुई गोस्वामिनियाँ ( गोपियाँ ), ( तूपुर ध्वनिकी हसोकी ध्वनिसे समानताके कारण ) हसोकी भ्रान्ति उत्पन्न करके अपने पीछे-पीछे अनुगमन कराती हुई मानो उन्हें ) चलना सिखलाती है । जहाँ हाथमे लिए हुए दर्पणमे अपनी ही सूरत देखकर आसक्त अर्थात् मत्त हुई मुग्धाके द्वारा अधरोकी उपाधि अर्थात् सामीप्य जन्म ईषत् लालिमाको न समझकर घबल बनाने को इच्छासे अपनी दंतपत्रिको पुन-पुन छोला जाता है । जहाँकी कामिनियाँ सभोग सुख देने वाले ( अथवा विरचित भोग अर्थात् ताना प्रकारके वस्त्राभरणादिसे सजे हुए ) अपने प्रेमीभोसे सनाथ है, अत वे चदनवृक्षोकी उन शाखाओके सदृश है जो विरचित भोग अर्थात् फैलाये हुए फणोवाले भुजगो ( सर्पों ) से युक्त होती है । जिनका सकलकला युक्त रूप देखकर हेलासे अर्थात् अनायास ही महेस्वरका चित्त विजित हो गया, अतः विज्ञयको आकाक्षा करनेवाला अनय उन त्रिनेत्र ( महादेव ) के भयसे त्रस्त हुआ उन कामिनियोंके अगोकी झरणमे प्रविष्ट हो गया । जहाँ कामदेवने घने स्तनोरूपी कलशोमे चूचकोरूपी मुद्रा ( मुहर ) लगाकर उनमे अपना सर्वस्व शृंगार ( सौंदर्य ) स्थापित करके अघरोमे काममदसे भरा, मधु डालकर अपना धनुष चढाकर उनके भ्रूमगोमे छोड दिया है, अर्थात् अपने धनुषको तो भीहोको समर्पित कर दिया और अपने बाण कामोजनोके मनकी कदर्थना करनेवाले उनके नयन-कटाक्षोमे समर्पित कर दिये है, उन रमणियोंका जंबाओरूपो स्तम्भोसे मंडित श्रोणितलरूपी भुवन मानो रतिका

[ १० ] १. क इ । २. घ इ । ३. क जहि । ४. क करए । ५. क ड णुणं । ६. क घ याइ, ड याइ । ७. क ड तिय । ८. क गुण । ९. क दत्ति । १०. क ड भुवण, घ भुयण । ११. ख ग ख । १२. क घ ड पिच्छवि । १३. ग घ इ । १४. ख ग जित्त । १५. ख ग मुराहिव । १६. ख ग षट्ट । १७. क घ सह, ड मह । १८. क ड रएविणु । १९. क सव्वसु, ड सव्वसु । २०. ख ग सें । २१. क रइ मुहु, क ड रइ मह । २२. ख ग छुएवि । २३. क ड मइ । २४. क ड मुक्क । २५. क घ ड कामुय । २६. क ड प्पइ ।

घत्ता—तहि<sup>२७</sup> सेणिउ<sup>२८</sup> नयर<sup>२९</sup> नराहिबइ रुबविणिज्जियरइवर ।

लवणणवकूलावहि—सधरधरमंडल<sup>३०</sup>—पालियकर ॥१०॥

[ ११ ]

जेण वलिय मंडलियअसेस वि

वसिकियलइयकप्पु वलिमंड<sup>३१</sup>

मरगयवण<sup>३२</sup>किवाणुप्पणउ

जासु पयावहुवासु अतित्तउ

विहवीहुयहि<sup>३३</sup> जं जि सुमरिज्जइ

इयकजेण डहनमणु चलियउ

जो निव नोइतरनिणिसायर

अरुहभत्तु सम्मत्तधुरधर

अविय—चंडभुअद<sup>३४</sup>—खंडियपयंडमंडलियमंडलोविसदे<sup>३५</sup> ।

धाराखंडणभीयनव जयसिरि वसइ जस्स खगंके ॥१॥

१०

आवास-भवन ही है । ऐसे नगरमे श्रेणिक नामका राजा रहता है, जो रूपमे रतिपतिको भी जीतनेवाला है, तथा लवणोदधिके कूल तक पर्वतोसहित समस्त धरामंडलका धारक अर्थात् स्वामी व करपालक अर्थात् कर ग्रहण करनेवाला है ॥१०॥

[ ११ ]

जिसने गहन वनों व पर्वतों तथा व्यवधानरहित देशों वाले समस्त माडलीकोको साध लिया है एव देवलोकको भी बलपूर्वक वशमे कर लिया है, तथा जिसके भुजदंडमे जयश्रीका वास है । जिसका यश मरकत ( नील, कृष्ण ) वर्ण कृपाणसे उत्पन्न होनेपर भी अमरगज अर्थात् ऐरावत हाथीके ( धवल ) वर्णका है, अथवा अमरगतवर्ण अर्थात् देवताओं तक भी उसकी स्तुति गायी जाती है । जिसका अतृप्त प्रतापान्नि शत्रुरूपी ईंधनके क्षीण हो जानेपर ( अतिरिक्त ईंधनकी ) खोज करता हुआ—शत्रुओंकी विधवा हुई पत्नियोंके द्वारा अपने हृदय-मे निरन्तर उनका स्मरण किया जाता है, अतः शत्रुपक्ष वहाँ अवश्य प्राप्त होगा, इस हेतुसे उसे दहन करनेकी इच्छासे चला व रिपु-गृहिणियोंके हृदयोंमें ( अपने मृतपतियोंके शोकाग्निके रूपमे ) प्रज्वलित हो उठा । जो नृप नीतिरूपी तरंगिणिके लिए सागर है, वही सज्जनोरूपी कमलसमूहके लिए दिवाकर है । वह अरहंतोका भवत है तथा धर्मरूपी महारथ ( की धुरा ) को कंधेपर उठानेवाला है ।

और भी—जिसके प्रचंड माडलीकोकी मडलीके अति बलशाली भुजदंडोंको काटने-वाले बीमत्स खड्गकी गोदमे जयश्री मानो उसकी धारासे खंड-खंड हो जानेके भयसे निवास करती है ॥१॥

२७. क ड तहि । २८. क ड 'उं । २९. क ड 'मंडल ।

[ ११ ] १ क ड 'मंडइ; घ 'वडए । २. क भुयदडइ; घ ड भुय 'दडइ । ३ क ड 'गइ । ४. ख ग 'वणु, घ 'वत्त । ५ ख ग घ 'हुयासु । ६. क ड खोनु । ७. क ड 'हुयहि । ८ क ड 'णिहि, घ 'णिहि । ९. क ड 'महामर । १० क घ ड 'भुय० । ११. क ड 'विसेटे ।

रे रे<sup>१२</sup> पलाह कायर मुहाई<sup>१३</sup> पेक्खइ न संगरे सायो ।  
इय जस्स पयावधोसणाए विहडंति<sup>१४</sup> वइरिणो दूरे ॥२॥  
जस्स य रमिस्सियगोमंडलस्स पुरुसोत्तमस्स पद्दाए<sup>१५</sup> ।  
के के सवा न जाया समरे गयपहरणा रिउणो ॥३॥

अण्णं च गाहा जुअलं<sup>१६</sup>—

१५

भग्गभूवल्लीसोहो हरियाहरपल्लवारुणच्छाउं ।  
समियालयालिमालो अहलीकयपुप्फपरिणामो ॥४॥  
हयचंदणतिलयरुई-रिउरमणीरम्मजोवणवणेषु ।  
कोहदुव्वायवेउ नरवइणो जस्स निम्बडिओ ॥५॥

घत्ता—जसु तणप्र रज्जे नहमग्गे ठिउ वाउ वइइ रवि तप्पइ<sup>१७</sup> ।

२०

संपुण्णमणोरहु<sup>१८</sup> चउदिसिहिं<sup>१९</sup> सई वसुमई<sup>२०</sup> फलु अप्पई<sup>२१</sup> ॥११॥

रे ! रे ! भाग ( भागकर अपने प्राण बचा ), क्योंकि स्वामी संग्राममें कायरोंके मुख नहीं देखते ( पलके उठनेसे पूर्व ही तत्क्षण भार डालते हैं ), इस प्रकारकी जिसकी प्रताप-घोषणासे ही बैरी दूरसे ही विघटित अर्थात् छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥२॥

उस सरक्षित गोमंडल ( गायोंका सघात अर्थात् ब्रजमंडल, राजाके पक्षमें पृथ्वीमंडल ) वाले पुरुषोत्तम ( विष्णु व पुरुषोमे उत्तम श्रेणिक राजा ) की स्पृहसि ( कि हमारा भी पृथ्वीमंडल अच्छी तरह सरक्षित है ) युद्धमें कौन शत्रु गतप्रहरण अर्थात् शस्त्रहीन होकर, गदाप्रहरण अर्थात् गदाशस्त्रको धारण करनेवाले केशव ( केसवा ) अर्थात् शवमात्र नहीं हो गये ( के सवा = के शवा: न जाता. टि० ) ॥३॥

अन्य और गाथायुगल—जिस नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वतिका वेग रिपुरमणियोंके रम्य-यौवनरूपी वनोमें पड़कर इस प्रकार विनाशकारी हुआ—दुर्वत अर्थात् आधीका वेग रमणीक वनोमें पड़कर भूमिलताओको शोभाको भग्न कर देता है, कोमल पल्लवोंकी अरुण-आभाको हर लेता है, नवाकुरोपर-में अलिमाला ( भ्रमरपक्षि ) को उपशान्त अर्थात् दूर कर देता है, पुष्पो-को गिराकर निष्फल-परिणाम कर देता है, तथा चंदन व तिलकवृक्षोंकी रुचि ( शोभा ) को विनष्ट कर देता है; उसी प्रकार नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वतके वेगने रिपुरमणियोंके रमणीय यौवन कालमें ही उनपर पड़कर ( उन्हें विधवा बनाकर ) शृंगारके अभावमें उनके अधर पल्लवोंकी अरुण कांतिकी हर लिया है, पुष्पसज्जाके अभावमें उनकी अलकोंपर आकृष्ट होनेवाली भ्रमरपक्षिकों दूर कर दिया है, उनके 'पुष्पपरिणाम' अर्थात् ऋतुमती होनेको निष्फल कर दिया है, एव अंग-प्रत्यंगमें चंदन लेप व माथेपर तिलकको शोभाका हरण कर लिया है ॥४-५॥ जिस नरपतिके राज्यके नभोमार्ग व नीतिमार्गमें बाघ व सूर्य मर्यादाका अनतिक्रमण करते हुए बहते व तपते हैं, एवं जहाँ स्वयं वसुमति चारो दिशाओंमें 'सम्पूर्णमनोरथफल' अर्थात् सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेरूपी फल प्रदान करती है ॥११॥

१२ क रे ले । १३ क ड ई । १४ क ड वि हुति । १५ क सद्दाए, ड सड । ए १६ क ड जुवलं, घ जुयल । १७ क घ ड समयालि । १८ ख ग ई । १९ प्रतियो में 'मणोरहु' । २० क ड 'हिसहिं' । २१ ख ग 'मई' । २२ ख ग ई । विशेष—प्रति में छठी पंक्ति के पश्चात् 'ताह तहं मुजमेहि उत्तवियउ समणु विवरे हवइ मकुइयउ' यह पंक्ति अतिरिक्त है ।

[ १२ ]

तहो अट्टसहसदपियमयणु सोहगखनिहिराणिथणु ।  
छणरुदचंदमंडलवयणु उत्तालचालहरिणीनयणु ।  
कलयटिकठकलमहुरसरु वंधूयकुसुमतविरअहुर ।  
कलहोयकलसनिठिमंदयणु अइझीणमञ्जु चकलरमणु ।  
वरकामिणिकरचालियचमरु मुहमरुमिलतगुजियममरु ।  
सहुं तेहिं विलासे संचरइ नरवइ सत्तंगु रज्जु करइ ।  
एकह दिणि सककोले वइइ चामीयरसिहासणि सहइ ।  
सामंतमतिपरिवारसहुं अत्थाणि परिट्टिउ जाम पहु ।  
घत्ता—अह कणयदंडविणिवद्धपहु दुववारियजणपेसिइ ।  
आयउ जुवाणु निह एक जणु नरवइ तेण नमसिउ ॥१२॥

[ १३ ]

अहो रायाहिराय जयसिरिरस चउरयणाथरंतपसरियजस ।  
पेक्खु पेक्खु अब्बंभउ वट्टइ नहयलु दुंदुहिसइ फट्टइ ।

[ १२ ]

उस राजाकी मदनको दर्प पैदा करनेवाली, सौभाग्य व रूपको निधि अष्टसहस्र रानियाँ थीं । वे विशाल पूर्णचन्द्रमाके समान मुख तथा भयस्त बालहरिणीके समान नेत्रोंवाली थीं । उनका स्वर कलकंठी ( कोकिला ) के समान मधुर था, व अधरोष्ठ वंधूक पुष्पके समान ताम्रवर्ण थे । उनके स्तन कलघौत कलशके समान निर्भेद्य अर्थात् कठोर व सुपुष्ट थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण व नितम्ब बड़े-बड़े चक्रोंके आकारके थे । सुंदर कामिनियोंके हाथोंसे उनके ऊपर चमर डुलाये जाते थे, एवं मुखकी सुगन्धित आश्वाससे आकृष्ट होकर एकत्र होते हुए भीरे गुंजार करते थे । उन रानियोंके साथ विलासपूर्वक विहार करता हुआ राजा सप्त-अंगो ( स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल एवं सुहृद् ) से पूर्ण राज्य करता था । इस प्रकार जब एक दिन शक्रके समान क्रीडा ( विलास ) धारण करता हुआ राजा स्वर्णसिंहासनपर विराजमान होता हुआ, सामंत व मंत्रियोंके परिवारसहित सभामंडपमें बैठा था, तब शलाकादंडसे कपड़ेको ( मूठ बनाकर ) बाँधे हुए दौवारिक द्वारा भेजा हुआ एक अत्यन्त जवान व्यक्ति वहाँ आया और उसने नरपतिकी प्रणाम किया ॥१२॥

[ १३ ]

हे जयश्रीमें रस लेने वाले व चारों रत्नाकरोंके अन्त तक प्रसृत यशवाले राजाधिराज देखिए ! देखिए ! एक बड़ा अचंभा हो रहा है कि नभस्तल दुंदुभिके शब्दसे फूटा जा रहा है । आज

[१२] १. ख ग निष्ठिउ । २. व क्षीण । ३. ख ग रइ । ४. ख क्षणु । ५. क रु दुउ । ६. ख ग आद्य । ७. ख ग नह; क रु निह ।

- अञ्जु अयालै<sup>१</sup> वणासई<sup>२</sup> रिद्धो अहिणवदलफलकुसुमसमिद्धो ।  
 अञ्जु सुयंधु एहु सीयलु<sup>३</sup> धणु वाउ वाइ जं पूरियकाणु ।  
 ५ जं जि तलायई<sup>४</sup> वडिदथ नीरई<sup>५</sup> विमलतरंगकखालियतीरई<sup>६</sup> ।  
 अञ्जु अकिट्टपच्चकणधण्णहि<sup>७</sup> छेत्तभूमिपसत्रियवहुवण्णहि<sup>८</sup> ।  
 दीसइ अञ्जु सरसु जं एहउ गात्रिउ खीरु खिरंति अमोहउ ।  
 वड्डुउ कोरुहलु उप्पायमि<sup>९</sup> कारणु एउ देव वद्धावमि<sup>१०</sup> ।  
 घत्ता—इय समवसरणसंपयसहिउ चउगइकम्मस्वर्यकरु ।  
 १० संपाइउ<sup>११</sup> विउलमहासिहरे वड्डमाणे<sup>१२</sup> तित्थंकरु ॥१३॥

[ १४ ]

- आयण्णिज्जि तं मगहेसरेण सिरिकमलविगइयंजलि<sup>१</sup> करेण ।  
 जय-जय-गहिरक्खरभासणेण सहसत्तियुक्कसिंहासणेण ।  
 केऊरकडयमणिकुंडलेहि<sup>२</sup> वद्धावउ पुज्जिउ उज्जलेहि<sup>३</sup> ।  
 सम्मत्तभत्तिकंठइयगत्तु कैइवयपयाई<sup>४</sup> जाण्वि<sup>५</sup> नियत्तु ।  
 ५ वहिरियकण्णंत-दियंतपूरु अफ्फालिउ लहु आणंदतूरु ।  
 थगधुगि-धुगिथगदुगि-पडहसददु<sup>६</sup> धुमुधुमुधुम्माविथमुरयनददु ।

अकाल अर्थात् बिना ऋतुके ही समस्त वनस्पति हरी-भरी हो उठी है और वह अभिनव पत्रो-पुष्पो व फलोसे समृद्ध हो गयी है । आज ऐसा सुगंधिन शीतल व सघन वायु बह रहा है जिसने सारे काननको पूर दिया है । और जो तालाव हैं, सबमे पानी बढ़ गया है, तथा विमल तरंगोसे उनके तीर प्रक्षालित हो रहे हैं । आज बिना कृषि किये हुए ही पके हुए कणवाले अनेक प्रकारके धान्यसे समस्त क्षेत्र भूमि ( कृषि भूमि ) प्रसवित ( निष्पन्न ) हो रही है । आज यह दिखाई देता है कि गाये ( बिना दुहे ही ) प्रचुर मात्रामे अत्यन्त सरस दूध क्षरण कर रही है । हे देव ! मे आपको बड़ा भारी कौतूहल उत्पन्न कर रहा हूँ व इस हेतुसे आपको बधाई देता हूँ कि इस प्रकारसे समस्त समवसरण संपदाके साथ चारों गतियोके कर्मोका क्षय करने-वाले वर्द्धमान तीर्थकर विपुलमहागिखरपर पधारे है ॥१३॥

[ १४ ]

उस शुभ समाचारको सुनकर मगवेश्वरने अपने शिरोकमलपर प्रणामांजलि करके जय ! जय ! का गंभीर घोष करते हुए सहमा सिंहासन छोडकर अपने उज्ज्वल केयूर, कड़े और मणिकुंडलोसे वर्द्धापकका पूजा-सत्कार किया । फिर सम्यक्प्रज्ञायुक्त भक्तिसे रोमांचित गात्र होकर कुछ पद आगे ( भ० के समवसरणकी दिशामें ) जाकर वापिस लौटा । शीघ्र ही कानोंको वधिर करनेवाला तथा समस्त दिगन्तोको पूरनेवाला आनंददुर्यं वजाया गया । थग-धुगि, धुगि-थग-धुगि करते हुए पटहका शब्द होने लगा, व धुम-धुम करते हुए मुरजका नाद [ सब

[१३] १. ख ग लं । २. ख ग वण । ३. क व ड ल । ४. ख व ड थह । ५. ख ग वड्डियं ।  
 ६. क इ । ७. क हं । ८. क ड णयमि । ९. क ड थमि । १०. क ड थइ । ११. क ट वडं ।  
 [१४] १. ख ग अंजलि । २. ख ग कयं । ३. क ड इ । ४. क जायवि । ५. ख ग व यगदुगे

खडतड-तडिखरतडि-तरडखोहु रणझणझणंतकंसालसोहु ।  
 त्रं त्रं त्रं ताडिय ढक्सारुं रं रं रं संजिय रंजफारु ।  
 तडतडणतडिय काहलविलासु हूहुयइ संख पूरतसासु ।  
 जणु चलिउ सयलु परिघुट्ट नाउ वारुअकरिणिहि संचडिउ राउ १०  
 घत्ता—मंडलवइतारापरियरिउ पुणिमचंदु व उगग ।  
 जिणवणहत्तिउ तुडमणु नरवइ नयरहो निगग ॥१४॥

[ १५ ]

ताम चलिउ चलेतेण कियकलयलं पउरजणसंकुलं चाररंगं वलं ।  
 कहिं मि पञ्जरियमयकुंजरो घाविउ दंसियारेहि वीरेहि रोसाविउ ।  
 कहिं मि निवकुमारकसंघासताडियहओ खुँरपहारेण खोणो खणंतं गओ ।  
 कहिं मि घरहरियरहत्तासंमिस्त्रियसरो वियलियासणनरं नासए वेसरो ।  
 कहिं मि कुंतासि-कडिसल्ल-करतकडं धंतखेज्जंतपाडिक्कवडसंकडं ५  
 कहिं मि भूमीकमं छडिरो वारिया दंडधारेहि निरवीरमोसारिया १२ ।

दिशाओंमें ) धूमने लगा । खर-तड, तडि-खर-तडि करते हुए तरड वाद्य ( लोकोंमें ) क्षोभ अर्थात् आश्चर्यपूर्ण हलचल उत्पन्न करने लगा; व रण-झण रण-झण झंकार उत्पन्न करते हुए कोस्य वाद्य सुंदर लगने लगा, त्रं त्रं त्रं करते हुए श्रेष्ठ ढक्का ( डमरु ) बजाया जाने लगा, व रं रं रं करते हुए रंजा वाद्य उच्चस्वरसे रंजायमान हुआ । तड-तड-तड करते हुए काहल वाद्यका विलास हुआ व दीर्घ आश्वाससे आपूर्यमाण शंख हू हू करके बज उठे । सब लोग चल पड़े, बड़े उच्चस्वरका परिधोष हुआ व राजा भी शीघ्रगामी-दृष्टिनी पर सवार हो गया । जिस प्रकार नक्षत्रमंडलका पति पूर्णिमा का चंद्रमा तारोसे परिवारित अर्थात् चारों ओरसे घिरा हुआ उदित होता है, उसी प्रकार पृथ्वीमंडलका स्वामी वह राजा भी परिजन, पौरजन व मंत्रि-सामंत इत्यादिसे परिवरित होकर जिनवदनाकी भक्तितसे प्रसन्न मन होकर नगरसे निकला ॥१४॥

[ १५ ]

तव पौरजनेसे युक्त चतुरग सैन्य चल पड़ा, व उसके चलनेसे बड़ा कलकल हुआ । कहीपर मद्य शराता हुआ हाथी आर दिखानेवाले अर्थात् महावत वीरोसे क्रुद्ध होकर दौड पड़ा । कहीपर नृपकुमारो द्वारा कशघातसे आहत हुआ अश्व खुरप्रहारसे क्षोणी ( पृथ्वी ) को खोदता हुआ गया । कहीपर रथकी घर-घराहटसे त्रस्त हुआ खच्चर हिनहिनाकर सवारको आसनसे गिराता हुआ भाग खड़ा हुआ । कही कुंत, अति व कटिशूल आदि शस्त्रोको धारण करनेवाले समर्थ भुजाओंवाले पदातियोंका समूह खेलता हुआ दौड पड़ा । कही भूमिक्रम अर्थात् पंक्ति

शगडुगे पडपडहसदु । ६. ख ग खरतड तडखर तड टरड वाहु; घ खरतड तडिखर तडि टरडखोहु ।  
 ७. क ड रणण । ८. क ड हंज । ९. क घ ड पडिय । १०. ख ग हूहुय । ११. क ड करणि,  
 ख ग घ णिहि । १२. क ड पडिउरिउ ।

[ १५ ] १. क कुंमिरो । २. क ड यारेहि । ३. क कुस । ४. क खर । ५. क खणंतगग । ख ग खणंतड गओ । ६. क ख ग ड कहिमि । ७. ख ग घ तास । ८. ख ग तल्ल । ९. क घ ड करि । १०. घ पाइलपड । ११. क करेहि । १२. क ड निरवीसमो ।



- कहिं मि मणिखइयचंदोवयाडंबरं सिक्किरीधवलघयलत्तलइयवरं ।  
 ताव<sup>१३</sup> थोवंतरे विलगिरि लक्खिओ हत्थपसरेण अवरोप्परं अक्खिओ ।  
 जो समोसरण<sup>१४</sup> लच्छीप्प उज्जोइओ<sup>१५</sup> उद्धदिट्ठीहिं नियडेहिं<sup>१६</sup> पुणु जोइओ ।  
 १० "नियचंगत्तणाहिट्ठओ गज्जए कणयसेलो इमो केम मइ पुज्जए ।  
 घत्ता—इहु कंचणु<sup>१७</sup> तुंगिम परप्पे कइ<sup>१८</sup> निवसियदेवणिकायहो ।  
 देवाहिदेउ<sup>१९</sup> महु सिहरि ठिउ किम समसीसी<sup>२०</sup> आयहो ॥१५॥

[ १६ ]

- दूरुव्झियहयगयरहपत्ते<sup>१</sup> परियणपउरजुप्पण सकलत्ते ।  
 दोसइ समवसरणु<sup>२</sup> महिनाहें मोक्खदुवार व केवलवाहें ।  
 इदाएसें धणयविणिम्मिउ जोयणेक्कु चउगोउरपरिमिउ ।  
 मणिक्कुहुंतर दिण्णपयाहिणं<sup>३</sup> वारहकोट्टा दिट्ठसुहावण ।  
 ५ गणहरपसुहसवण ठिय एकहिं कप्पवासिदेविउ अण्णेकाहिं ।  
 तइयइ अज्जियाउ चउथइ पुणु फुरियकत्तिजोइसजुंवरइयणु ।  
 पंचमे वित्तैरविलयउ सारिउ छट्ठप्प दिट्ठउ भावणैनारिउ ।

संगठनाका परित्याग करनेवाली अपनी वीर मंडलीको रोककर दंडवारी नायकोने उन्हें पंक्तिमें स्थित रखा; आकाश कहीपर तने हुए मणिखचित चंदोवो व कही पताकाओ तथा धवल ध्वजा और छत्रोंसे छा गया । तब थोड़ी दूरपर विपुलगिरि देखा गया और लोगोंने हाथ पसार पसारकर एक दूसरेको बतलाया । जो ( विपुलगिरि ) समोसरणकी विभूतिसे गोभायमान था, उसे निकट गये हुए लोगोंने आंखें उठाकर देखा । वह अपनी श्रेष्ठतासे हर्षित होकर ( मानो ) गरज रहा था कि यह कनकगोल ( सुवर्णाचल-मेरु ) मेरी तुलना कैसे कर सकता है ? इसका यह सुवर्ण और यह तुंगिमा दूर हटाओ ! नाना देवनिकायोसे बसे हुए इसकी मेरे साथ तुलना ही क्या ? मेरे शिखरपर तो देवाधिदेव ( तीर्थंकर ) विराजमान हैं ॥ १५ ॥

[ १६ ]

हाथी, घोड़े व रथ आदि वाहनोंको दूर ही छोड़कर परिजन, पौरजन एवं रानियोंके साथ भूपतिने समोसरणको देखा, जो केवलज्ञानको बहन करनेवाले तीर्थंकरसे मानो मोक्षका द्वार ही था । वह समोसरण इंद्रके आदेशसे धनदके द्वारा निमित्त किया गया था, तथा एक योजन विस्तार और चार गोपुरोंसे परिमित था, व मणिनिर्मित भित्तियोंके बीचमें प्रदक्षिणा बनी थी, उसमें राजाने बहुत सुहावने वारह कोठे देखे । एक कोठेमें गणधरको प्रमुख करके सब श्रमण बैठे थे, और दूसरेमें कल्पवासी देवियाँ, तीसरे कोठेमें आर्थिकाएँ और चौथेमें स्फुराय-मान् कान्तिवाली ज्योतिष्क-युवतियाँ, पाँचवेंमें सुंदर व्यन्तर नारियाँ थी, तो छठेमें भवनवासी

१३. क घ ङ ताम । १४. क "लच्छीपउज्जोइयो । १५. क ङ "डेहि । १६. क ङ नियरणत्तणा । १७. क ङ "ण । १८. क ङ नियविय । १९. क ङ "देव । २०. क ङ "रीसी ।

[१६] १. क ख ङ "छत्त । २. क ङ "सरण । ३. क ङ "हण । ४. क ङ जुयइ । ५. ख ग ङ । ६. क ङ भाविणु ।

सत्तमै जोइस अट्टमि वितरै  
दसमई कपवासि थिय सुरवर  
मुक्कविरोहतिरियसुहभावण

नवमइ भावण थक्कनिरंतर ।  
एयारहमई मणुयमणोहर ।  
वारहमई संठिय सुत्थियमण ।

१०

घत्ता—मरगयमउ पोमरायकुसुमु इंदनीलदलसुंदर ।

अह कोमलचलपल्लववहलु दिट्ट असोयमहातर ॥१६॥

[ १७ ]

तहो तले कणय रयणहरि विट्टरै  
पत्तपहुत्ततिष्ठत्तालंकिप्र  
चामरकरजक्खेसरभइप्र  
दिव्वप्र सव्ववाणिपरियाणिप्र  
भामंडलमज्झट्टिउ छज्जिउ  
अलिउलकेसुभसिउ वरसिउ  
उगयधम्मचक्कमंडियसहु  
दिट्ट जिणंदु पयाहिणदेते

किरणाहयसुरिदसेहरकरे ।  
देवकुमारभुक्कसुमंकिप्र ।  
दुंदुहिसदनिहयपडिसइप्र ।  
सयलभाससंवलयिप्र वाणिप्र ।  
फलहवणु पडिर्विद्विज्जिउ ।  
इत्तदित्तिधवलियजयमंदिरु ।  
वीयरउ तइलोकपियामहु ।  
पुणु पणविउ उच्चारियथोत्ते ।

५

देवीकी स्त्रियाँ, तथा सातवेंमें ज्योतिषी देव; आठवेंमें व्यन्तर देव और नौवेंमें भवनवासी देव स्थित थे। दसवें कोठेमें कल्पवासी देव तथा ग्यारहवेंमें मनुष्य विराजमान थे। बारहवें कोठेमें परस्पर वैर—विरोधको भूलकर शुभभावनासे स्वस्थमान होकर सब तिर्यच जीव बैठे थे। तब राजाने मरकतमणिथोसे जड़े हुए पद्मरागमणिके समान पुष्पो व मरकतमणिदलोके समान अत्यन्त सुंदर, कोमल व चंचल पत्रोसे प्रचुर अशोक महावृक्षको देखा ॥१६॥

[ १७ ]

उस अशोक वृक्षके नीचे अपनी किरणोसे सुरेंद्रके शोखरकी किरणोंको तिरोहित करनेवाले स्वर्णरत्नमय सिंहासनपर, ( तीनों लोकोके ) प्रभुत्वको प्राप्त व तीन छत्रों ( अथवा तीर्थ-करत्व ) से श्रलंकृत, देवकुमारों द्वारा वर्षाये गये पुष्पोसे सुशोभित, कल्याणप्रद यक्षेश्वरके द्वारा हाथोंमें चवर धारण किये जाते हुए, ( दिव्य ) दुंदुभिके शब्दसे समस्त प्रतिशब्दोके निहृत होते हुए, एवं समस्त बोलियोंका परिज्ञान करानेवाली तथा ( अठारह देशोत्पन्न ) सर्वभाषा समन्वित दिव्यवाणीसे युक्त वे भगवान् भामंडलके मध्यमें बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनका वर्ण स्फटिकके समान था, जिसका कोई प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। उनका उत्तम शिरोभाग भ्रमरकुलके समान काले केशोंसे उद्भासित था, और उनकी दंतपंक्तिकी दीप्तिसे संपूर्ण लोकरूपी मंदिर उज्ज्वल हो रहा था। उत्पन्न हुए धर्मचक्रसे मंडित सर्वशक्तिमान वीतराग और त्रेलोक्यके पितामह उन जिनेन्द्रको राजाने प्रदक्षिणा देते हुए देखा, और फिर स्तोत्रका उच्चारण करके

७. क ऊ दह । ८. व मई । ९. ख ग पोमारयकुसुमु । १०. क व ऊ दलु ।

[ १७ ] १ क छ ररणहरि; ख ग हरे । २ ख ग क तित्यता । ३. क घ क ई । ४. क घ क ई ।

५. क ल सच, ख ग सर्वल्लिए । ६. क छज्जइ; क छज्जउ । ७. क ज्जइ; क ज्जउ । ८. क घ क जिणंदु ।

९. क क दिति; घ दिति ।

घत्ता—संसारनिसिहिं रइतमगहिउ मायानिदु<sup>१०</sup> सुत्तउ ।

१० पई<sup>११</sup> केवलनाणदिवायेण<sup>१२</sup> जगु संबोहिउ सुत्तउ ॥१७॥

[ १८ ]

तुमं देव सव्वणहुं लच्छीविसालो अहं वणिउणं न सकेमि वालो ।  
समुज्जोइयासोह वा तेयपूरो न पुब्बिजए किं पईवेण सूरु ।  
न ते वीयरायस्स पूया<sup>१३</sup> तोसो न वा संत वइरस्सं निदा<sup>१४</sup> रोसो ।  
परं ते समुग्गीरियं देव नामं पवित्तेउ चित्तं महं सुक्खथामं<sup>१५</sup> ।  
५ तुमं पुज्जमाणस्स लोयस्स एसो महापुण्यपुंजम्मि सावज्जलेसो ।  
कणो जेम हाहाहलस्सप्पसत्थो सुहासायरंदूसिचं<sup>१६</sup> नो समत्थो ।  
अविग्घो तई देव सिट्ठो सम्मगो तिलोयग्गामोण भव्वाण मग्गो ।  
पडंतो जणो मोहकालाहिस्सद्धो किओ देव वायासुहाए विसुद्धो ।  
तुमं पत्तसंसारकूवारतीरो तुमं सामि संपुण्णविज्जासरीरो ।  
१० तए नाणजोई<sup>१७</sup> उदित्तेमेयं समुम्भासए चंदसूराण तेयं<sup>१८</sup> ।

प्रणाम किया—इस संसाररूपी निशामे रति ( काम व मोह )रूपी अंधकारसे गहीत और मायारूपी निद्राके वशीभूत होकर सोते हुए ( अर्थात् आत्महितसे विमुख ) जगतको आपने अपने केवलज्ञानरूपी दिवाकरसे प्रतिबुद्ध किया ॥ १७ ॥

[ १८ ]

हे देव ! आप सर्वज्ञ है और ( केवलज्ञानादिरूप ) लक्ष्मीसे विशाल है । मैं अबोध-अज्ञानो आपका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ । आपकी शोभा स्वयं प्रकाशित है, तथापि क्या तेजपूर्ण सूर्य दीपकसे पूजा नहीं जाता ( अर्थात् मेरे द्वारा आपके गुणोंका वर्णन सूर्यको दीपक दिखाने जैसा है ) । वीतराग होनेसे, तुझे न तो पूजासे तोष (आनंद) होता है और न शातवैर अर्थात् वीतद्वेष होनेसे निंदासे रोष । तथापि आपका नाम, जो कि सुखका धाम है, वह उच्चारण करने मात्रसे मेरे चित्तको पवित्र करे ( अर्थात् पवित्र करता है ) । तुम्हारी पूजा करनेवाले लोकके महापुण्य-सचयमे लेशमात्र पाप दूषण उत्पन्न करनेमें उसीप्रकार समर्थ नहीं होता, जिसप्रकार हालाहल विषका एक अमंगलकारी कण अमृतसागरको दूषित करनेमें । देव ! आपने त्रिलोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षको जानेवाले भव्य जीवोंके लिये निर्विघ्न एवं समग्र मार्गका उपदेश किया तथा मोहरूपी कालसर्पसे खाये जाते हुए जीवोंको अपनी दिव्यवाणी रूपी सुधासे, ( उसीप्रकार ) शुद्ध किया ( जिसप्रकार सर्पका विष सुधा अर्थात् अमृत अथवा चूनेसे उतारा जाता है ) । हे स्वामिन् ! आप इस संसार सागरके तीरपर पहुँच गये हैं एवं संपूर्ण विद्यारूपी शरीर अर्थात् केवलज्ञानके धारक हैं । आपकी ही

१० क ड णिदा । ११ क पई । १२ क ड यरिणा ।

[ १८ ] १ ख ग तुम्ह । २ क घ ड ण्हु । ३ ख ञ्जोइयं । ४ ख ग पुज्जाए । ५ क ड वीरस्स ।  
६ क घ ड धामं । ७ क उ, ख ग य । ८ क ड तए । ९ क ड उदित्ठं ख ग भेए । १० ख ग तेयं ।

मुहाभासयं दृपणे पेक्खमाणा सुहं चेवे<sup>१</sup> मण्णंति वाला अयाणा ।  
 तहा वत्थुरुव<sup>२</sup> अहंबुद्धिलुद्धा<sup>३</sup> सरुवं निरुवन्ति ते नाह सुद्धा ।  
 तुमं ज्ञायमाणस्स<sup>४</sup> नाणस्मि लीणं मणं होउ मे नाह<sup>५</sup> संकप्पस्सीणं ।

धत्ता—अतेउरपरियणपलरसहुं<sup>६</sup> योत्तसएहिं नरेसरु ।  
 कोट्टए निविट्ट एयारहमे वंदेवि वीरु जिणेसरु ॥१८॥

१५

जयति मुनिवृन्दं दितपद्युगलविराजमानसत्पद्मः ।  
 वितुघसंघानुशासनविद्यानामाश्रयो वीरः ॥१॥  
 कथेयं पूर्वसिद्धेव भूयो यत्क्रियते मया ।  
 तत्तस्या ग्रंथबाहुल्यात् सांप्रतं सीरवो जनाः ॥२॥  
 न वल्लपि<sup>७</sup> तथा नीरं सरो नद्यादि संस्थितं ।  
 करकस्थं यथा स्तोकमिष्टं स्वादुश्च पीयते ॥३॥

इय जंबूसामिचरिण् सिगारवीरे महाकब्बे महाकइंदेवयत्तसुयवीरविरहए  
 सेणियसमवसरणागमो नाम पढमो संघी समत्तो<sup>८</sup> ॥संघि- ॥

ज्ञानज्योतिसे उद्दीप्त होकर यह चंद्र और सूर्यका तेज उद्भासित होता है । मूर्ख लोग दर्पणमें मुखाभास अर्थात् मुखके प्रतिबिम्बको देखकर यह मुख है, ऐसा मान बैठते हैं । उसीप्रकार अहं बुद्धि ( मैं और मेरा ) से ग्रसित वे भोले लोग अपनी मत्तिके अनुसार वस्तुस्वरूपका [ एकांगी ] निरूपण करते हैं । हे देव ! आपका ध्यान करते हुए सच्चे ज्ञानमें लीन होकर मेरा मन समस्त संकल्प-विकल्प रहित हो जाये । इस प्रकार सैकड़ों स्तोत्रों द्वारा वीर जिनेश्वरकी वंदना करके अन्तःपुर, परिजन, व पीरजनोंके साथ राजा ग्यारहवें कोठेमें बैठ गया ।

मुनिवृन्द जिनके चरणयुगलकी वंदना करते हैं, जो कमलासनपर विराजमान हैं और जो ज्ञानियोके संघका अनुशासन करनेवाले हैं, ऐसे समस्त विद्याओके आश्रय वीर भगवान्की जय हो ! ( यहाँपर श्लेषमें वीर कवि यह भी प्रगट करना चाहता है कि वह ज्ञानीजनोंके संप्रदायका अनुशासन करनेवाली विद्याओका आश्रयभूत था ) । यहाँ यह कथा पूर्वकालसे प्रसिद्ध होनेपर भी, जो मेरे द्वारा पुन रची जा रही है, इसका कारण है—ग्रंथ बाहुल्य होनेके कारण लोग अब उसके पढ़नेसे घबराते हैं । सरोवर और नदी आदिमें स्थित प्रभूत जल भी उस प्रकार नहीं पिया जाता, जिसप्रकार करवेमें रखा हुआ थोड़ा सा, इष्ट अर्थात् स्वास्थ्यकर और स्वादु जल लोगोंके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है ( उसी प्रकार जंबूस्वामीकथाका पहलेसे बड़ा विस्तार होनेपर भी मेरी यह कथा संक्षेपमें होनेसे अभिलाषापूर्वक पढ़ी जायेगी ) ॥ १८ ॥  
 इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीर रसात्मक महाकाव्यमें राजा अणिक्का समीशरण-आगमन नामक प्रथम संधि समाप्त ॥ संघि-१ ॥

११. क ड देव, ख ग चेव । १२. क वत्थुरुव । १३. क उ लुद्धा । १४ ख ग ज्ञाणे । १५. क उ संकाय । १६. क व उ सिद्ध । १७. क व ड नवल्लपि । १८. क घ ड पढमा इमा सवो; ख ग पढमो संघी ।

सन्धि—२

[ १ ]

सुरनरसमवाणं सेणियराणं सविणयललियक्खरगिरिणै।

पुच्छिष्ठ केवलधरु सम्मइज्जिणवरु जीवतत्तु पणवियसिरिणै ॥

गुरुगजिरघणगंभीरवाणि	परमिद्धि पर्यपइ राय जाणि ।
अत्थित्ति निरंजणु जीउ संतु	सन्भावै दंसणनाणवंतु ।
५ संवेइयप्पपरमतत्तु	निरवहिसण्णाणपमाणमेत्तु <sup>१</sup> ।
जाणंतु वि परु न परेण मिलिउ	आथासपमुहदन्वहि <sup>२</sup> न खलिउ ।
नीसेसनिरत्थोवाहि <sup>३</sup> सहइ	जंगमेण अजंगमु जेम वहइ ।
संते <sup>४</sup> गणणे नवभवसमत्थु	पावइ अवथासु धराइअत्थु ।
दिवसयरकिरणकारणु लहंतु <sup>५</sup>	रविकंतु व दीसइ अगिगवंतु <sup>६</sup> ।
१० तिह <sup>७</sup> जोग्गकम्मपरमाणुखंधु <sup>८</sup>	परिवट्ठियअहमियै <sup>९</sup> बुद्धिदंधु ।

[ १ ]

देव और मनुष्य सबके अभिप्रायसे श्रेष्ठिक राजाने विनयसहित ललितवाणी-द्वारा केवलज्ञानके धारक सम्मति जिन भ० महावीरसे शिर नवाकर जीवतत्त्वके विषयमे पूछा । तब महान् गर्जनशील मेघके समान गंभीर वाणीसे परमेश्वरी कहने लगे—हे राजन् ! ऐसा जानो कि स्वभावसे यह जीव निरंजन ( पूर्णतः कर्ममुक्त ), शांत एवं दर्शन-ज्ञानसे युक्त है । यह आत्मा स्वयं और पर दोनोंके परमतत्त्व ( परमार्थ—सत्य ) को संवेदन करनेवाला है तथा ( सत्ताकी अपेक्षा अनादि-अनंत एवं ( विस्तारकी अपेक्षा ) स्वज्ञान-प्रमाण मात्र है । पर-पदार्थको जानते हुए भी यह 'पर' से मिलता नहीं और आकाश प्रमुख द्रव्यो ( पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल ) से इसका स्खलन अर्थात् इसकी किसी क्रियाका विरोध नहीं होता । ( तथापि ) प्रत्येक शरीरीजीव सर्वथा अनात्मस्वरूप कर्मजनित शरीरसे सुख-दुःखात्मक उपाधिको उसीप्रकार सहन करता है, जिसप्रकार जगम ( सजीव ) बलीवदादिक प्राणी अजंगम ( निर्जीव ) शकटादि वस्तुको होता है । आत्म-परिणामोसे प्रादुर्भूत कर्मपरमाणु नया भव ग्रहण करने तथा आत्मप्रदेशोमे अवकाश पानेमे उसी प्रकार समर्थ होते हैं, जिसप्रकार पृथिव्यादि पदार्थ आकाशमे स्थान पाने व स्वकार्य करनेमे समर्थ होते हैं । और जिसप्रकार सूर्यकांतमणि रविकिरणोके सपर्कसे अग्नियुक्त दिखाई देने लगता है, उसीप्रकार अचेतन पुद्गलात्मक कर्म-परमाणुओं-से प्रादुर्भूत शरीर भी सचेतन आत्माके सपर्कसे चेतन व क्रियावान् दिखाई देने लगता है । आत्माके ( भाव ) कर्मसे तदनु रूप कर्मरूप परिणत हुए पुद्गल-परमाणुस्कंध ( से जो इन्द्रियां

[१] १ क व छ<sup>०</sup>सिरिणा । २. क व छ<sup>०</sup>सिरिणा । ३. क छ<sup>०</sup>यप्पु । ४. क व छ<sup>०</sup>मित्तु । ५. ख छ<sup>०</sup>दन्वहि । ६. ख<sup>०</sup>निरत्था<sup>०</sup> । ७. क छ संगे । ८. क छ<sup>०</sup>समत्थ । ९. क दिवसयह<sup>०</sup> । १०. क छ लहंति । ११. ख ग व अग्निवत्तु, छ अगिगवत्ति । १२. क छ तिह, व तिह । १३. क जोगकस्स<sup>०</sup>, छ जोगकम्म<sup>०</sup> । १४. क छ परिवट्ठियअहमिय ।

जीवेण निमित्त<sup>१५</sup> मोहथासु सवियणु विचंभइ करणगासु ।  
 इय जाव<sup>१६</sup> जीव नइमिस्तिओ वि ववहारें भणइ जीउ सो वि ।  
 संसारनिबंधणु तेण जणिउ तं नामु निरामउ मोक्खु भणिउ ।  
 घत्ता—उप्पज्जइ खिज्जइ<sup>१७</sup> गुरु-लहु किज्जइ नरयपमुहगई<sup>१८</sup> अणुहवइ ।  
 कम्मासयवारणु भाविचकारणु<sup>१९</sup> सो च्चिय मोहजालु खवइ ॥१॥ १५

## [ २ ]

नरयगइहि<sup>१</sup> उप्पज्जइ जइयहु करवत्तहि<sup>२</sup> फाडिज्जइ तइयहु ।  
 जलणकटंत<sup>३</sup> तिल्ल तलिज्जइ नारइयहि<sup>४</sup> अवरुप्परु खज्जइ ।  
 पावि वि तिरियजोणि निक्कारणु लहइ निबंधणु ताळणु मारणु ।  
 मणुत्तणं वि धम्म नावज्जइ<sup>५</sup> माणुसु पावपिंडु निप्पज्जइ ।  
 सुरलो<sup>६</sup> वि बालत्तवसाहणु कुच्छियदेउ होइ सुरवाहणु ।  
 अणं वि जे हवति सुरसुंदरं कंदहि<sup>७</sup> चवणसम<sup>८</sup> दुक्खाउर ।  
 छम्मासावहि आउसि दुक्कइ हा विमार्ण-इद्धच्छर मुक्कइ ।

निर्मित होती है उनको वृद्धिसे ही ( आत्म-संबंधके कारण ) 'मैं बढ़ रहा हूँ' ऐसा बुद्धिबंध अर्थात् बुद्धिविकल्प उत्पन्न होता है । जीवके निमित्तसे एवं मोहनीय कर्मके सामर्थ्यसे यह नाना-विकल्पात्मक इन्द्रियसमूह उत्पन्न होता है । इस प्रकार जो भी जीवनिमित्तक ( पर्याय ) है, व्यवहारमे उस वस्तुको जीव ही कहा जाता है । उस जीवके द्वारा ही संसार-निबंधन और पुनर्संघको बाँधनेमे कारणभूत जो कर्म उत्पन्न किया जाता है, उस कर्मका निरामय-निर्व्याधि अर्थात् निःशेष नाश ही मोक्ष कहा जाता है । यह ( व्यावहारिक ) जीव उत्पन्न होता है, क्षीण होता है अर्थात् मरता है; छोटा-बड़ा होता है—अर्थात् छोटी-बड़ी शरीरपर्याय धारण करता है; एवं नरक-प्रधान गतियोंका अनुभव करता है । और वही जीव कर्मास्त्रवको निवारण करने वाले कारण ( सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र ) की भावना करके मोहजालको खपाता है, अर्थात् नष्ट कर डालता है ॥ १ ॥

## [ २ ]

जब जीव नरकगतिमे उत्पन्न होता है, तो उसे कर्मात्से चोरा जाता है, अग्निसे खौलते हुए तेलमे तला जाता है और नारकियोंके द्वारा परस्परको खाया जाता है । तिर्यच-योनिको प्राप्त होकर निष्कारण ही बाँधा, पीटा व मारा जाता है । मनुष्यत्वको पाकर भी मनुष्य धर्म नहीं करता, बल्कि पापके ढेरको ही इकट्ठा किया करता है । बाल-तपकी साधनासे देवलोकमें उत्पन्न होकर भी देवोका वाहनरूप कुत्सित देव होता है । दूसरे भी जो सुंदर देव होते हैं, वे भी देवलोकसे च्युत होते समय दुःखातुर होकर क्रंदन करते हैं । छह मास पर्यंत आयु शेष रहनेपर देवोको ऐसा होता है—हाय ! हमारा यह देवविमान और ये सुंदर अप्सराएँ छूट

१५. क ड निमित्ति, ख न निमित्ति । १६. ख ग घ जाउ । १७. घ निज्जइ । १८. ख ग नरइ ।  
 १९. क उ भवियणकारणु ।

[ २ ] १ क ड गंइहि, घ गंइहि । २ क घ ड विणिवज्जइ । ३ ख ग माणुम । ४. घ बालत्तव ।  
 ५. क उ अणु । ६ क सुरसुंदर; ड सुरसुंदर । ७. ख ग चयण । ८. ख ग विमाणे ।

केम सरीरकंतिपरिमद्धे<sup>१०</sup>      विसहेव्वर्षे<sup>११</sup> अणिह्म मइ कहे ।  
 हा हा रक्खहि<sup>१२</sup> देव पुरंदर      हा पुणु कहि<sup>१३</sup> दीसेसहि मंदर ।  
 घत्ता—इथ जाणिवि नरवड<sup>१४</sup> चउगइपरिणइ<sup>१५</sup> विविहाणंतदुक्खदरिसे<sup>१६</sup> ।  
 १० चारिउ चरिज्जइ ताम हि छिज्जइ संसारिणि वड्ढंति<sup>१७</sup> तिस<sup>१८</sup> ॥२॥

[ ३ ]

इमं कहंतरे<sup>१</sup> जिणेसरे<sup>२</sup> कहंतए      नरामरे विसुद्धभाक्खणं वड्ढंतए ।  
 तओ नियच्छियं नहंगणाउ एतयं<sup>३</sup>      फुरंततथवारिपूरियादियंतयं<sup>४</sup> ।  
 अतिव्वतावयं<sup>५</sup> न सूरगोनिर्जंजयं<sup>६</sup>      अगल्लिरं निरंतरं न विज्जुपुंजयं<sup>७</sup> ।  
 किमेयमेरिसं चियप्पिऊण राइणा<sup>८</sup>      पपुच्छिओ जिणो कहेइ साहुवाइणा ।  
 ५ इमो नरिइ नामविज्जुमालिभासुरो      भमेइ वंदणांसमोहमाणओ सुरो ।  
 सुराळयाउ सत्तमे<sup>९</sup> दिणे चविस्सए      भवेण केवलीह पच्छिओ भजिस्सए ।  
 तओ<sup>१०</sup> रणंतकिंकिणीविरायमाणयं<sup>११</sup>      पराइओ सुरो मुयंतु खे विमाणयं ।  
 पिथाचवक्खपंचमो<sup>१२</sup> सहाप्र दिट्ठओ      नमसिओ जिणेसरो<sup>१३</sup> सकोहे विट्ठओ<sup>१४</sup> ।

रही है; हाय ! हाय ! शरीर ( की दिव्य ) कातिसे परिभ्रष्ट होकर, यह सब अनिष्ट मुझसे अत्यन्त कष्टसे किसप्रकार सहन किया जायेगा ? हाय ! हाय ! हे देव पुरंदर ! रक्षा करो ! हाय ! यह मंदराचल फिर कहाँ दिखाई देगा ? इसप्रकार है नरपति ! यह चारो गतियोंके विविध-अनंत दुःखोको दिखानेवाली ( कर्म ) परिणति जानकर जब ( सम्यक् ) चारित्रका पालन किया जाता है, तभी यह बढती हुई सांसारिक तृष्णा ( भोगाकांक्षा ) नष्ट होती है ॥ २ ॥

[ ३ ]

जिनेश्वरके इस कथानकको कहते समय जब मनुष्य और देव शुद्ध भावनाको धारण कर रहे थे, अपने तेजस्वी जलके पूरसे दिशाओंको पूरता हुआ, अतीव तेजस्वी होते हुए भी जो सूर्यरश्मियों का अत्यन्त तापशुक्त निकुंज नहीं था, तथा निरन्तर ( मेघ ) गर्जना न होनेसे पुंजी-भूत विद्युत्पुंज भी नहीं था, ऐसा ( एक देव ) नभांगनसे आता हुआ देखा गया । यह कौन है ? इस प्रकारका विकल्प करके राजाके पृष्ठपेपर साधुवचनोसे जिन भगवान् बोले—हे नरेंद्र ! यह अत्यन्त भास्वर विद्युन्माली नामका देव है जो ( जिन ) बंदनाकी इच्छासे भ्रमण कर रहा है । यह स्वर्गसे सातवें दिन च्युत होगा और यही मनुष्यभवसे अन्तिम केवली होगा । इसके अनन्तर रण रण करती हुई किंकिणियोंसे शोभायमान विमानको आकाशमे ही छोड़कर वह देव वहाँ आया । अपनी चार प्रियाओंके साथ पाँचवा वह सभामंडपमें बैठे हुए लोगोके द्वारा देखा

१ ख ग विसहेव्वड । १० ख ग रक्खहि । ११ क ड कहि । १२ क ड खणरइ । १३ क घ परिणइ । १४ ख दरिसे, घ दरिखा । १५ क ग उ वट्ठति । १६ घ तिसा ।

[ ३ ] १. क ड जिणेसरो । २ क ड यतये; ख ग एतए, घ इतयं । ३ क ड दिव्यंतये, ख ग दिव्यंतए । ४ क ड तावये । ५ क ड पुंजपुंजजयं, ख पुंजपुंजय । ६ क ड रायणा । ७ घ वंदण । ८ क सत्तम । ९ क घ ड हविस्सए । १० क रओ । ११ क सहापहिट्ठव । १२ ख ग जिणं । १३ प्रतियोमं 'सकोट्टए वड्ढओ' ।

यत्ता—गिन्वाणु कम्मकिसु विमलियदसदिसु<sup>१</sup> रूओहामियदेवसहु ।  
पेक्खिवि सुहत्तित्तं विमियचित्तं पुणु आहासइ मगहपहु ॥३॥

[ ४ ]

परमेसर पई <sup>१</sup> साहिउ तियसहु <sup>२</sup>	थक्कइ आउसंति छम्मासहु ।	
कंतिविणासु सरीरहो दुक्कइ	मत्थइ कुसुममाल परिमुक्कइ ।	
आउसु सत्तदिवसं पुणु आयहो	तणु लावण्णवण्णसच्छायहो ।	
तिल्लु वि न तेयसहावे मेल्लिउ	दीसइ फुरियदेहु पच्चेल्लिउ ।	
कहहि भवतरे केण पयारें	चिण्णु चरित्तु एण वयधारें ।	५
आयण्णइ <sup>३</sup> सेणिउ ससुरासु	अक्खइ चरिउ तासु तिहुवण्णगुरुं ।	
रमणिरुवरजियआहंडलि	अत्थि गासु इह मगहामंडलि ।	
नामं वडुहमाणु विक्खायउ	अग्रहारं <sup>४</sup> दियवरहं कमायउ ।	
वेयघोसु <sup>५</sup> जहि बंभणसत्थहिं	उच्चारियइ <sup>६</sup> भट्टपरमत्थहिं ।	
दिक्खिएहिं <sup>७</sup> जहिं पसु होमिज्जइ	दिविदिवि सोमपाणु <sup>८</sup> जहिं किज्जइ <sup>९</sup> ।	१०
यत्ता—जहिं तरुवरें <sup>१०</sup> तरुवरें सघणलयाहरें	अवरोप्परु <sup>११</sup> कोक्किर-कडुय <sup>१२</sup>	
पालवहिं <sup>१३</sup> अंपिर चलसिहकंपिर बाणरु वव कीलहिं <sup>१४</sup> वडुय <sup>१५</sup>		॥४॥

गया और जिनेश्वरको नमस्कार कर अपने कोठेमें बैठ गया । उस क्षीणकर्मोंवाले, दशों दिशाओं को निमल करनेवाले और अपने रूपसे देवोंकी सभाको भी तिरस्कृत करनेवाले देवको देखकर सुखसे तृप्त होकर, विस्मित मनसे मगधराज पुनः कहने लगे—॥ ३ ॥

[ ४ ]

हे भगवन् ! आपने ( अभी ) कहा है कि अन्तिम छः मास आयु शेष रहने पर देवोंके शरीरकी कांति विनाशको प्राप्त होती है, और मस्तककी कुसुममाला भी सूख जाती है । परंतु इसकी केवल सात दिन आयु शेष है, फिर भी शरीर अत्यन्त कांतिमान् और सुंदरवर्ण है । यह तिलभर भी अपने तेजस्वभावसे रहित नहीं हुआ, प्रत्युत इसकी वेह प्रचुर तेजसे स्फुरायमान दिखाई देती है । तो कहिये कि पूर्वभ्रममें इस व्रतधारीके द्वारा किसप्रकारके चारित्रिका पालन किया गया ? तब श्रेणिक देवों व असुरोंके साथ सुनने लगा और त्रिभुवनगुरु ( जिन भगवाद् ) उसका चारित्र कहने लगे—रमणियोंके रूपसे इंद्रको प्रसन्न करनेवाला, वर्द्धमान नामसे विख्यात ब्राह्मणोंका क्रमागत अग्रहार ग्राम है, जहाँ वड़े-वड़े भट्ट समुदायके विशेषज्ञ ब्राह्मण-समूहों द्वारा वेद घोष किया जाता है, जहाँ दीक्षितोंके द्वारा पशु होम किया जाता है, और जहाँ प्रतिदिन सोमपान किया जाता है । जहाँ वृक्ष-वृक्षमें एवं सघन-लतागूहोंमें एक दूसरेको कर्कश वचनोसे पुकारकर शाखाओंसे कूदते हुए, व अपनी ( पूँछके समान ) चंचल शिखाओंको नचाते हुए वटुक वानरोंके समान क्रोड़ा करते हैं ॥ ४ ॥

१४. क घ ङ लवो ? ।

[४] १. ख ग घ पइ । २. क घ ङ तियसहुं । ३. क मत्थइ । ४. क घ ङ दिणइ । ५. क लावण्णु ; ङ लायण्णु । ६. क तिल । ७. ङ पच्चेल्लउ । ८. घ आयण्णइ ; ङ आयण्णइ । ९. क घ ङ तिहुवण्णु । १०. घ रमणे । ११. क ङ अग्रहार । १२. ख ग ङ वेयघोस । १३. ख ग उच्चारियउ । १४. क घ ङ दिक्खिएहि । १५. ख ग सोमपाणु । १६. ख ग पिउज्जइ । १७. क ङ तरुवर । १८. क घ ङ कोक्किय । १९. घ कडुया । २०. ख ग पालविहि । २१. क ख ग ङ कीलहि । २२. क वडुया ; घ ङ वडुया ।



## [ ५ ]

तहिं<sup>१</sup> गामि वसई जणलद्धसंसु  
 सुइवेयकहालकरियकंठु  
 कमलायरो व्व गोविसनिहाणु  
 तहो पैडवयधारिणि-कयसुकम्म  
 ४ समयणतणुरत्ती<sup>२</sup> ललियकणण  
 वहुनेहवद्ध-पयलग्ग वहइ  
 भयवत्तु जाड तहे<sup>३</sup> पढसु पुत्तु  
 वायरण-वेय<sup>४</sup> जोइसपसत्थ<sup>५</sup>  
 अण्णुण्णनेहपरिपूरियंग  
 १० अट्टारहवरिसपमाणजिट्ठे<sup>६</sup>  
 एत्थत्तरि सो तहो तणड ताड  
 चिरजम्मावज्जिड<sup>७</sup> पावकम्म

गुणवत्तु धणु व्व विसुद्धवंसु ।  
 नामेण अज्जवसु सुत्तकंठु ।  
 मंडलवइ व्व महिसीपहाणु ।  
 पियगेहिणि नामे सोमसम्म ।  
 अइझीणमब्भ-वेणोरवण्ण ।  
 पाणहियकंते को अण्णु लहइ ।  
 वीयड भवएड दिएहि<sup>८</sup> वुत्तु ।  
 परिआणिय दोहिं मि<sup>९</sup> सयलसत्थे<sup>१०</sup> ।  
 सहत्थजेम अविहत्तसंग ।  
 वारहसंचच्छरथिण्ण कणिट्ठे<sup>११</sup> ।  
 परिपीडिड वाहिण्ण भग्गळाड ।  
 कोटेण घत्थु हुड झसियचम्म<sup>१२</sup> ।

## [ ५ ]

उस गाँवमें लोगोमें प्रशंसा-प्राप्त, विशुद्ध-वंश ( बास ) तथा गुण ( प्रत्यंचा ) युक्त धनुषके समान विशुद्ध-वंश ( कुल ) में उत्पन्न और ( शोलादि ) गुणोसे युक्त, एवं श्रुति, वेद और कथाओसे अलंकृत-कंठ अर्थात् समस्त शास्त्रोको कंठमें धारण करनेवाला, आर्यवंसु नामका सूत्रकंठ ( ब्राह्मण ) रहता था । वह जल ( गो ), और पक्षिनी ( विस ) के अकुरोके निधान कमलाकरके समान अनेक गायों ( गो ) और वृषभों ( विस ) का निधान था । ( सब रानियो में ) प्रधान अग्रमहिषीसे युक्त मंडलपति राजाके समान वह ब्राह्मण प्रचुर दूध-धी देनेवाली प्रधान महिषियो ( भैंसो ) से युक्त था । उसकी पतिव्रतको धारण करनेवाली कृतपुण्य-अर्थात् पुण्यवान् सोमशर्मा नामकी गृहिणी थी । उसका शरीर समदन अर्थात् कामोत्तेजक था, और वह अपने पतिमें अत्यन्त अनुरक्त थी : उसके कान बहुत सुंदर थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण तथा वेणी बहुत रमणीक थी और गहरे स्नेहसे बंधी हुई वह पतिके चरणोका अनुगमन करती थी । ऐसी प्राणोसे भी अधिक प्यारी कांता अन्य कौन पा सकता है ? उसे भवदत्त नामका प्रथम पुत्र हुआ, दूसरा द्विजोके द्वारा भवदेव कहलाया । उनका अंग-प्रत्यंग परस्परके स्नेहसे परिपूरित ( ओत-प्रोत ) था और वे शब्द व अर्थके समान सदा एक साथ रहते थे । जब जेठा ( भाई ) अठारह वर्षका हुआ और कनिष्ठ बारह वर्षका उसी समय उनका पिता व्याधिसे पीड़ित हुआ और उसकी कांति नष्ट हो गई । पूर्वजन्ममें अर्जित पापकर्मसे वह कुछग्रस्त हुआ, उसका

[ ५ ] १. क तहि । २. रा ग वसइ । ३. क सुइवय । ४. क ड पयवय । ५. क समयमण्णु ; ड समय-  
 णमण्णु । ६. क वीणी । ७. घ पाणहिय । ८. क तहि, स ग व तह, ड तह । ९. क व ड पढम । १०. घ  
 ड दिएहि । ११. ख ग जोयस । १२. क ड पसत्थु । १३. क ख ग ड दोहिमि । १४. क ड सत्थु ।  
 १५. क ड जिट्ठ । १६. क ड कणिट्ठ ; ख ग कणिट्ठि । १७. रा ग वज्जिय । १८. रा ग छसिय ।

करचरणंगुलि<sup>१</sup> नासाहरेहिं<sup>२</sup> चलिंसावणु परथिउं<sup>३</sup> थाणु तेहि ।  
 जीवासाछिणु<sup>४</sup> सरतुं<sup>५</sup> विडु चिय विरइवि<sup>६</sup> पुणु हुयवहे पइडु ।  
 पियमरणविरहुं<sup>७</sup> असहंति इडु<sup>८</sup> मुय<sup>९</sup> सोमसम्म सा तहि<sup>१०</sup> पइडु । १५

घत्ता—तं मरणु नियंतहिं<sup>२९</sup> घाहमुअंतहिं<sup>३०</sup> दुक्खु-दुक्खु<sup>३१</sup> दुक्खगघविय ।  
 वच्छयलु हणता पुत्त रुअता वेणिण वि सयणहिं संठविय ॥३॥

[ ६ ]

सोयाणलजालादढहियए तिलजव देविणु वंभणकियए ।  
 पाडेवि पिंडु पियरहं तुरिउ बहुदिणहिं दुक्खभर ओसरिउ ।  
 सकणिटुं गिहासमनयपवर भयवत्तुं तत्थ पालेइ घर ।  
 अह तहिं<sup>१</sup> विसयाहिलासरहिउ सोहम्ममहामुणिं मुणिमहिं<sup>२</sup> ।  
 विहरंतु पत्तु गणपरियरिउं<sup>३</sup> बारहपयारतवगुणभरिउं<sup>४</sup> । ५  
 सो मुणिवरिउ सुहदंसणहिं<sup>५</sup> पणविल्लइ संतचित्तजणहिं<sup>६</sup> ।  
 जो जं पुच्छइ तहो दिव्वज्जुणि जीवाइतत्तुं<sup>७</sup> तं कहइ मुणि ।

घर्म गल गया, तथा हाथ व पैरोंकी अंगुलियाँ व नाक और अधर केवल जुगुप्सनीय चिह्न मात्र शेष रह गये । जीनेकी आशा छूट जाने पर वह विष्णुका स्मरण करता हुआ चित्ता रचकर अग्निमें प्रविष्ट हो गया । प्रियके मरणवियोगको न सह पाती हुई उसकी प्रिया सोमशर्मा भी उसी चित्ताग्निमें प्रविष्ट होकर मर गयी । उन दोनोंका मरण देखकर और घाड़ देखकर हा कष्ट ! हा कष्ट ! कहते हुए, छाती पीट-पीटकर रोते हुए उन दोनों पुत्रोंको स्वजनोंने धैर्य बंधाया ॥ ५ ॥

[ ६ ]

शोकानलकी ज्वालासे दग्धहृदय उन दोनोंने ब्राह्मण-क्रिया अर्थात् वेदविहित अनुष्ठानके अनुसार तिल और जौ देकर शीघ्र ही पितरोंको पिंड पाड़ा । बहुत दिनोंमें उनका दुःखभार कुछ कम हुआ, और गृहाश्रमकी नीतिमें कुशल भवदत्त, कनिष्ठ ( भ्राता ) के साथ घरका पालन करने लगा । अथानन्तर विषयोंकी अभिलाषासे रहित, मुनियों-द्वारा पूजित एवं बारह प्रकारके तपोगुणसे भरे हुए सौधर्म नामके महामुनि अपने गण ( संघ ) के साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे । शातचित्त और शुभदर्शन अर्थात् सम्यग्दृष्टि लोगोंने उन मुनिवरको प्रणाम किया । वे मुनि जो कोई जो कुछ पूछता था, उसे अपनी दिव्य वाणीसे जीवादि तत्त्वोंको

१९. क ऊ चरकरणंगुलि । २०. क ऊ परि । २१. क ऊ जीवासाविणु । २२. क ऊ सुमरंतु । २३. ख ग विरयवि । २४. क व ऊ मरणु । २५. ख ग इट्टु । २६. ग मुइ । २७. क ऊ तहि । २८. क णियंतहि । २९. क ऊ भयंतहि ; क भयंतहि । ३०. क ऊ अइवाविय ।

[६] १. क व ऊ दढहियए । २. क ऊ । ३. क व ऊ भयवत्तु । ४. ख ग ऊ तहि । ५. क व ऊ सोहम्म । ६. ख ग सहिउ । ७. ख ग यरियउ । ८. क ऊ पयार । ९. ख ग भरियउ । १०. ख दंसणहि । ११. ख जणेहि । १२. क ऊ तत्तु ।

जगु सयलु वि इंदियचंचलउ मिच्छत्तमोहतिमिरंधलउ<sup>१३</sup> ।  
जीवणनिओयसणालुयउ कामाउरु सुहत्तण्हालुयउ<sup>१४</sup> ।  
रीणउ<sup>१५</sup> दिणकम्महि<sup>१६</sup> खारियउ निसि सोवइ निहय<sup>१७</sup> घारियउ<sup>१८</sup> । १०  
घत्ता—मरणमएणं लुक्कइ<sup>१९</sup> अहव न चुक्कइ वंछइ सिवसुहुं<sup>२०</sup> नउ लहइ ।  
तहवि<sup>२१</sup> हु माणुसपुं<sup>२२</sup> भयकामहु वसु सहियउ<sup>२३</sup> तप्पिवि तणु डहइ ॥६॥

[ ७ ]

अप्पाणु किलेसे<sup>१</sup> जेत्यु थवइ दुक्खेण परिगहु मेलवइ ।  
दुक्करु वि वियाणइ तं सुकरु नीसंगवित्ति<sup>२</sup> पुणु गरुयमरु ।  
संतोसुं न को वि अहव मणहो<sup>३</sup> सुकरु वि दुक्करु भावइ जणहो<sup>४</sup> ।  
बिवरीयविवेउ लोउ जियइ अन्भंतउ देहहो<sup>५</sup> जइ नियइ<sup>६</sup> ।  
बाहिरउ<sup>७</sup> तो वि अहिलासपरु उट्टावइ वायस वंडकरु । ५  
निसुणंतहो<sup>८</sup> इय मुणिजंपियउ भवयत्तहो<sup>९</sup> हियवउ कंपियउ ।  
विण्णत्तु परमगुरु सुहकरु<sup>१०</sup> तउ चरणजुयलु सामिय सरणु<sup>११</sup> ।

बतलाते थे ( और कहते थे )—यह सारा जगत् इंद्रियचंचल है, और मिथ्यात्व-मोहलुपी तिमिरसे अंधा है। जीवनके असि-मसि-कृषि आदि व्यापार व आहारादि संज्ञाओंसे युक्त, कामातुर तथा सुखकी तृष्णावाला है। दिनभरके कामोंसे थककर, श्रान्त होकर, रात्रिमें निद्रासे मूर्च्छित होकर सोता है। मरणभयसे यह लुकता है, परंतु किसी प्रकार उससे चूक नहीं पाता ( बचता नहीं ); शिवसुखको चाहता है, पर पाता नहीं। इसप्रकारका यह मनुष्यरूपी पशु भय और कामके वश होकर अपने हृदयमें ताप अनुभव करता हुआ तनको जलाता है ॥६॥

[ ७ ]

जिस परिग्रहमें मनुष्य अपने आपको बड़े क्लेशसे स्थापित करता है, अर्थात् बड़े कष्टसे जिसका संग्रह करता है, वह परिग्रह बड़े दुःखसे छोड़ा जाता है। यह लोक विपरीतविवेक ( उल्टी मति ) से जीता है, यद्यपि यह देहके भीतर देखता भी है तो भी बाह्याचारणमें शरीरादि परिग्रहके प्रति अभिलाषायुक्त होनेसे हाथमें दंड लेकर कौओंको उड़ाता रहता है। मुनिके इस कथनको सुनकर भवदत्तका हृदय कांप उठा और उसने उन परमगुरुसे विज्ञापना की, 'हे स्वामी! आपके क्षुभ अर्थात् हितकारक चरणयुगल ही मेरी शरण है, मुझ संसाररूपी

१३. ख ग मिच्छत्तं । १४. ग लयउ, उ लुइउ । १५. क घ कामाउरु । १६. क ड सुहु तण्हालुयउ; घ सुहु तण्हालुयउ । १७. क रीणउ, व रीणउ । १८. क ग कम्महि । १९. क णिदइ, घ निहइ, उ णिदइ । २०. ड घारियउ । २१. क घ ड कह व । २२. ख ग सुहु । २३. ख ग तहु वि । २४. ए ग माणुसुं । २५. क ड सुहियइ, ख सुहियए, घ मुहियइ ।

[ ७ ] १. क घ ड किलेसि, ख ग किलेसि । २. ख ग नीसंगुं । ३. क घ ड संकेसु । ४. घ मणहे । ५. घ जणहे । ६. क ड देहहि; व देहहि । ७. घ नियइ । ८. घ वहिरउ । ९. घ भंरु । १०. क में भवयत्तहो...कंपियउ—यह अर्द्धपंक्ति नहीं । ११. घ भवदत्तहो । १२. क घ ड चरणु । १३. ख ग में इस पंक्तिके पश्चात् निम्नपंक्ति अधिक है :—'णिमुणिवि चित्तवइविमुद्धमइ भयवत्तु चतु धरवासरई' ।

भवकदमे खुत्तु<sup>१४</sup> समुद्धरहि<sup>१५</sup>  
संताणे सहोदर परिठवि<sup>१६</sup>

पवजहि<sup>१६</sup> मह पसाउ करहि ।  
दिक्खंकिउ मणकसाय<sup>१८</sup> खवि<sup>१९</sup> ।

घत्ता—दंसणु सलहंतउ विसयचयंतउ<sup>२०</sup> सुद्धचरित्तु<sup>२१</sup> दिगंबर ।

१०

गुरुवयण-सवणरइ दिढमइ<sup>२२</sup> विहरइ कम्मासयकयसंबर ॥७॥

[ ८ ]

हउ<sup>१</sup> परकयत्थु संजणियदिहि,  
जम्मंतरकोडिहि<sup>३</sup> पत्तु न वि  
अणुदिणु सज्झाय-झाणु करइ  
आगमदिदिहि<sup>५</sup> विहरंतु सया  
सो सवणसंघु वयखामियउ  
उवचारुद्धि सम-निय-परहो  
भवएउ अणुउ भवगुरुसरिहि<sup>७</sup>  
मइ संते<sup>९</sup> सावयवउ घरइ<sup>९</sup>  
चित्तिवि<sup>११</sup> आयरियहो विण्णवइ

जं लंदधु दुलहु<sup>२</sup> सम्मत्तनिहि ।  
तं दंसणु पाविउ भवे भमिवि ।  
तवचरणु<sup>४</sup> सुघोरे वीर चरइ ।  
संवच्छर बारह जाम गयो ।  
तहो गामहो नियउदेसे थियउ ।  
तो हुय भयवत्तदिगंबरहो ।  
मा पडउ वराउ दुक्खदरिहि<sup>६</sup> ।  
मिच्छत्तभाउ<sup>८</sup> जइ परिहरइ<sup>१०</sup> ।  
जोयणअज्झाणु<sup>१२</sup> गामुहवइ ।

५

कहममें पड़े हुए व्यक्तिका समुद्धार कीजिए, और प्रव्रज्या देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिए ।<sup>१</sup>  
संतानोंपर ( संरक्षक रूपसे ) सहोदरको स्थापित करके, मनमेंसे कषायोंका क्षय कर भवदत्त  
दीक्षित हो गया । सम्यग्दर्शनकी सहायता करते हुए, विषयोंका त्याग करते हुए, वह दृढमति  
व शुद्धचरित्र-दिगंबर, गुरुवचनको सुननेमें मन लगाता हुआ, कर्मासुरोंका संबर करके विहार  
करने लगा ॥७॥

[ ८ ]

मे परम कृतार्थ हूँ जो कि धैर्य (साहस) धारण करके सम्यक्त्व जैसी दुर्लभनिधि को पा  
गया । कोटि-कोटि जन्मान्तरोंमें भी जो नहीं मिला, वह सम्यक्त्व अब भव-भ्रमण करते-करते पा  
लिया । वह वीर ( भवदत्त ) प्रतिदिन स्वाध्याय और ध्यान करता था, तथा अत्यन्त घोर  
तपश्चरण करता था । सदैव आगम-दृष्टिसे अर्थात् शास्त्रानुसार विहार करते हुए जब बारह  
वर्ष व्यतीत हो गये तो व्रतोसे क्षीण-शरीर वह भ्रमणसंघ उस गाँवके निकट प्रदेशमें ठहरा ।  
स्वयं और परके प्रति समान उपकारबुद्धिवाले उस भवदत्त दिगंबरको ऐसा हुआ—‘मेरा  
अनुज बैचारा भवदेव दुःखकी गर्तस्वरूप ससाररूपी महानदीमें न पड़े, यदि मेरे रहते हुए वह  
आवक व्रतोको धारण कर ले और मिथ्यात्व-भावको छोड़ दे’ । यह सोचकर भवदत्तने आचार्यसे

१४. ख ग खुत्त । १५. क समुद्धरही; ङ समुद्धरही । १६. घ पवजजहि । १७. क घ ङ ठवि ।  
१८. क मणिकसाउ; ङ मणकसाउ । १९. क ङ खवि । २०. क घ ङ चवंतउ । २१. क घ ङ सुद्ध ।  
२२. क विहु; घ विहु ।

[ ८ ] १. ख ग ङ हउ । २. ख लद्धुत्तदुल्लहु; ग लद्धुल्लहु । ३. घ कोडिहि । ४. क ङ चरण ।  
५. क ङ जामि । ६. ख ग भयवत्त; घ भयदत्त । ७. ङ सरिहि । ८. घ दरिहि । ९. क ङ घ संति;  
ग संते । १०. ख ग घरइ । ११. ख ग भाव । १२. ख ग हरइ । १३. क घ ङ चित्तिवि । १४. घ जोयण ।

न पमाउ गमण<sup>१५</sup> जइ संभवइ . उवसामि<sup>१६</sup> जइ कणिट्ठु सवइ<sup>१७</sup> । १०  
 संघाडइ दिज्जउ<sup>१८</sup> एक्कु<sup>१९</sup> रिसि अणुमण्णिउ नत्थि पमाउ दिसि ।  
 घत्ता—गच्छहु आएसिय गुरुसपेसिय विण्णि व मुणिवर नीसरिया<sup>२०</sup> ।  
 दियवरसंपुण्णउ<sup>२१</sup> गामु रवण्णउ वड्ढमाणु खणं पइसरिया<sup>२२</sup> ॥॥

[ ६ ]

दीसइ पवरं	भवएवघरं ।	
गोमयलितं	जुणयसित्तं <sup>१</sup> ।	
गेरुयपिंगं	दिप्पिरसिगं <sup>२</sup> ।	
तोरणकलियं	मंडवल्लियं ।	
वज्जियतूरं	मंगलपूरं ।	५
गुयधयचवलं	गाइयधवलं ।	
मणअहिरामं	नत्थियरामं ।	
पयडियसिप्यं	मुंजियविप्यं ।	
चंदणसालं	घुसिणवमालं ।	
सत्थियबंधं	कुसुमसुयंधं ।	१०
दाचियभोयं	माणियलोयं ।	
तो <sup>३</sup> तवपवलं	मुणिवरजुयलं ।	

विज्ञापना की—‘यहाँसे एक योजनके अन्तरपर ( मेरा ) गाँव है, यदि वहाँ जानेमें कोई प्रमाद ( दोष ) न हो, और यदि कनिष्ठ भ्राता मेरी बात सुने, तो मैं उसे उपशान्त करना चाहता हूँ, ‘तो फिर मेरे साथ एक ऋषि दीजिए ।’ गुरुने अनुमोदन किया और कहा—( वहाँ जानेमें ) लेशमात्र भी दोष नहीं है, अतः तुमलोग वहाँ जाओ; ऐसे गुरुके आदेश व सप्रेषणसे वे दोनों मुनिवर निकलकर चले और क्षणभरमें उत्तम ब्राह्मणोंसे भरे हुए उस रमणीक वड्डमान गाँवमें प्रविष्ट हुए ॥८॥

[ ६ ]

भवदेवका सुंदर घर दिखाई देने लगा, जो कि गोबरसे लिपा और चूनेसे पुता था, ( और कहीपर ) गेरुसे पिंगलवर्ण दिखाई देता था, व जिसका शिखर खूब चमक रहा था, तथा जो तोरणोंसे युक्त और मंडपसे शोभित था; व जहाँ मंगल तूर बज रहा था, चपल ध्वजाएँ फहरा रही थी, मंगलगान गाया जा रहा था और स्त्रियाँ मनोभिराम नृत्य कर रही थी; स्थान-स्थानपर काष्ठचित्र आदि निमित्त थे, विप्रोंको खिलाया जा रहा था; और चंदनकी शालाएँ कुंकुमसे सुगंधित हो रही थी, स्वस्तिक बंधमें बँधे हुए कुसुमोंकी सुगंध फैल रही थी; और दान देकर लोगोका सम्मान किया जा रहा था । उन तपः-प्रवल मुनि-युगलको

१५. क ड समणि । १६. क ड उवसामि । १७. क ख ग ड समई । १८. स ग दिज्जइ । १९. क ड एक्क । २०. क व ड नीसरिय । २१. क दियवरं, ख ग संपण्णउ । २२. क व ड सरिय ।

[९] १. ख ग सेत्तं । २. क ख सिंगं; घ रेंगं । ३. क ड ते ।

जणवयदिहं भाइहिं सिहं ।  
 मुणि भयवत्तो तव घरं पत्तो ।  
 ता भवएओ कयसंखेओ ।  
 विणयविमीसो पणवियसीसो ।  
 घोळिरवत्थो जोडियहत्थो ।  
 सुयणसहाओ वाहिरि आओ ।

१५

घत्ता—भवदेवहो नियमणि वंघवदंसणि रहसमहाभरु नउ धरिउ ।

फुट्टिवि पसरंतउ अंगि न मंतउ पुलयछलेण वं नोसरिउ ॥९॥ २०

[ १० ]

महिवीहं निवेसिवि सिरकमलु  
 मुणिणावि अणुउ संभाविउ  
 करफंसणु पुट्टिहं तहो करेवि  
 बुल्लणहं लणु भयवत्तु मुणि  
 जं वीसइ नवसियवत्थधरु  
 परिणयणलच्छललणिज्जमुहु  
 नववर पमणेइ सवाहनयणु

पणविज्जइ भाइहिं कमजुयलु ।  
 सुय धम्मविद्धि संभवउ तउ ।  
 मंडवि दिण्णासणि वइसरवि ।  
 इउ पयरणु किं भवएव मुणि ।  
 उण्णामयकंकणवद्धकरु ।  
 वरइत्तु जाउ कहि वच्छ तुहु ।  
 उद्धंतमणु गगिरवयणु ।

५

पौरजनोंने देखा और भाईको कहा—मुनि भवदत्त तुम्हारे घर आये हैं । तब भवदेव भीघ्नता करके, विनययुक्त होकर, शिर झुकाये हुए, वस्त्रोंको फहराता हुआ, हाथ जोड़े हुए, स्वजनोंके साथ बाहर आया । भवदेवके मनमें वांघवदर्शनसे होनेवाला उद्वेग रुक नहीं सका, और अंगोंमें न माता हुआ, फूट-फूटकर प्रसृत होता हुआ, मानो पुलक ( रोमांच ) के बहानेसे निकल पड़ा ॥९॥

[ १० ]

अपने शिरकमलको पृथ्वीपर रखकर भवदेवने भाईके पदयुगलको प्रणाम किया । मुनि-ने भी—‘हे वत्स ! तुम्हें धर्मकी वृद्धि हो’, कहकर भाईको आशीर्वाद दिया । उसकी पीठपर हाथ फेरकर, मंडपमें दिये हुए आसनपर बैठकर भवदत्त मुनि बोलने लगे—हे भवदेव ! सुन । यह क्या बात है, जो तू उपयाचितक वस्त्र धारण किये हुए दिखाई देता है, हाथमें ऊनसे बना हुआ कंकण बैधा है, परिणयकी शोभासे तुम्हारा मुख ललनीय ( सलोना ) हो गया है; वत्स ! तू कहीं वर ( दुल्हा ) तो नहीं हो गया ? तब नेत्रोंमें आँसू भरकर, स्नेहाभिमानपूर्वक गद्गद

४. ख ग भाएहि, क घ भाईहि । ५. ख ग भयवत्तो । ६. क घ छ तउ । ७. क घ ङ सयणं । ८. व जाओ । ९. ख ग दंसणे । १०. क घ ड य । ११. ख ग नोसरियउ ।

[ १० ] १. क ङ कमलु । २. ख ग घ भाइहि । ३. क ङ पयं । ४. क पिट्टिहे; ख पिट्टिहि; ङ मिट्टिहे । ५. क करेवो, ख ग तउ करवी, तहो करवो । ६. क संखेवो; ख ग वईसरवी; घ वइसरवी । ७. क ख ग ङ बुल्लणह । ८. क घ ङ भयवत्तु । ९. ख ग पइरणु । १०. क तव एमु सुणी, ङ तवं एव सुणी । ११. क घ ङ दीसहि । १२. ग धर । १३. क ङ उण्णामउ । १४. क ङ ललिणज्जमुहु । १५. क ङ कहि । १६. क ङ पमणेइ; ग घ पमणइ । १७. क संवाहणइणु, ङ सवाहणइणु । १८. क ङ उद्धंतमणु ।

जं जणणि जणेरहु<sup>१९</sup> पिसुण पिथा<sup>२०</sup> पच्चक्ख तुम्ह सा वरण<sup>२१</sup> किया<sup>२२</sup> ।

१० घत्ता—मई<sup>२३</sup> सिसु अगणंतहि<sup>२४</sup> नाह चयंतहि<sup>२५</sup> जो चिर तुम्हहि<sup>२६</sup> मंसियड<sup>२७</sup> ।  
सो अज्जपमाणहि<sup>२८</sup> कयआगमणहि<sup>२९</sup> नेहु पुणुणणत्त दंसियत्त ।

[ ११ ]

एत्थु जि वड्ढमाणे कुलभूसणु जाणहु<sup>१</sup> तुम्हई दिव दुम्मरिसणु ।  
नायएवि तहो भज्जपियारी नायवसू सुय ताहं कुमारी  
सा परिणिय मई<sup>२</sup> एह सुलक्खणं ससु विवाहु सलहंति वियक्खण ।  
तो भवयत्तमुणिदं<sup>३</sup> वुच्चइ किउ सुंदरु जं सयणहं<sup>४</sup> रुच्चइ ।  
५ सयलु<sup>५</sup> पहाउ एहु सुहकम्महो दोसइ फलु<sup>६</sup> पच्चक्खु जि<sup>७</sup> धम्महो ।  
धम्मं<sup>८</sup> चक्कवट्ठि-हरि-हलहर<sup>९</sup> धम्मं<sup>१०</sup> लोयवाल-ससि-दिणयर ।  
धम्मं<sup>११</sup> मणुय महागुणसीला मुजियमोय-पुरंदरलीला ।  
धम्मसु अहिसालक्खणलक्खिउ<sup>१२</sup> किज्जइ आगमेण सुपरिक्खिउ ।  
आगमु<sup>१३</sup> सो जि जिथु<sup>१४</sup> दये<sup>१५</sup> किज्जइ पुंवावरविरोहु न कहिज्जइ ।

जाणीसे वह नव-वर यूँ बोला—तुम्हारे समक्ष ही माताने पितासे जैसा कहा था, उसी प्रियाका आज मैने वरण किया है । हे नाथ ! मुझ शिशुकी परवाह न करके, घर छोड़कर, पूर्वमे जिस स्नेहको तुमने तोड़ दिया था, आज अपने आगमनसे, उसे पुनः नवीन अर्थात् जागृत करके दिखलाया है ॥१०॥

[ ११ ]

इसी वड्ढमान नगरमें तुम्हारा जाना हुआ दुर्मर्षण नामका स्वकुलभूषण द्विज है । उसकी नागदेवी नामकी प्यारी भार्या है, उन दोनोंकी नागवसू नामकी पुत्री है, उसी सुलक्षणाका मैने परिणय किया है । विचक्षण लोग समविवाहकी ही सराहना करते हैं । तब भवदत्त मुनीश्वरने कहा—तुमने स्वजनको रुचनेवाला अच्छा काम किया । यह सब शुभकर्मका प्रभाव है । धर्मका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है । धर्मसे ही चक्रवर्ती, हरि ( वासुदेव ) और बलराम होते हैं, तथा धर्मसे ही लोकपाल, व चंद्रमा और सूर्य । धर्मसे ही मनुष्य महान् गुणोवाली व भोगोंकी प्रदान करनेवाली पुरंदरकी लोला धारण करते हैं । धर्म अहिंसा लक्षणवाला है, और आगमसे अच्छी तरह परीक्षा करके उसे किया जाता है । और आगम वही है जो जीव स्या बताये, तथा जिसमे पूर्वापर विरोध कथन न किया जाये । इसप्रकार अपना हित जानकर

१९. क घ जणेरहु, छ जणेरहु । २०. छ पिय । २१. क ख घ छ वरण । २२. छ किया । २३. क ड मई । २४. छ अगणंतहि । २५. क ड तुम्हहि । २६. क ड भासियत्त । २७. ख ग घ अज्जु ।

[ ११ ] १ क छ जाणहु; ख ग जाणत्त । २. क घ छ तुम्हई । ३. ख ग ड मई । ४. क घ ट सलक्खण । ५. क छ विवाह । ६. ख ग मुणंदं, घ मुणिदि । ७. ख सयणहो; छ सयणह । ८ क ड सयल । ९. घ छ एउ । १० क फल । ११. क घ ड वि; ख ग जे । १२. प्रतियोगं धम्मि । १३. क हलघर । १४ क घ ड धम्मि । १५. ख ग लक्खणु । १६. क ख ड आगम । १७. क ड जीउ, ख जेत्य; ग जेत्यु । १८. ख ग दइ ।

घत्ता—इय जाणिवि नियहिउ जेण न मन्नि किउ घम्मु जिणागमभासियउ<sup>१९</sup> । १०  
धी तं<sup>२०</sup> अवगण्हि<sup>२१</sup> माणुसु मण्हि<sup>२२</sup> अज्ज वि गम्भवासे ठियउ ॥११॥

[ १२ ]

मुणिवयणसुहाभाविमणेण<sup>१</sup>  
विणएण भण्डिउ विण्णवमि कज्ज<sup>२</sup>  
अणुमण्णिउ तं मुणिपुंगवेहिं<sup>३</sup>  
तउ अक्खयदाणु भणैवि चल्लिय<sup>४</sup>  
भवएउ<sup>५</sup> वि निउभरनेहवद्धु<sup>६</sup>  
मंडवि महिलायणु नियइ कोहुं<sup>७</sup>  
चित्तंतु एम वाहुडणसीलु<sup>८</sup>  
पहु पेक्खु पेक्खु पसरंतपाउ<sup>९</sup>  
हल्लिरतरंणु सरवर रवणु<sup>१०</sup>  
आगमविरोहुं<sup>११</sup> रक्खंतु संतु

सावयवयाइ<sup>२</sup> गेणहेवि तेण ।  
सोयणु वरि किज्ज<sup>३</sup> मन्नु अज्जु ।  
आहारु विहाणु लयउ तेहिं ।  
अणुवक्खवि पणविवि लोय वलिय ।  
गच्छइ<sup>४</sup> नियत्तणाए ससद्धु ।  
छोडेवउ<sup>५</sup> कंकणु करि सखेहु ।  
उहेसइ अण्णालावलीलु ।  
नगगोहमहाहुसु वहल्लउ ।  
रुणुरणियभमरसयवत्तणु<sup>६</sup> ।  
वाहुडहि वल्ल न भणइ<sup>७</sup> मंहंतु । १०

जो इस भवमे जिनागममें कहे हुए घर्मका पालन नहीं करता उसे धिक्कार है, उसकी अवहेलना करो और उमे अभी भी गर्भवासमें ही स्थित मानो ॥११॥

[ १२ ]

मुनिकी वचनसुधासे भावित-मन होकर, श्रावकके व्रत धारण करके, उसने विनयपूर्वक कहा—एक कार्य निवेदन करता हूँ, आज मेरे घर भोजन कीजिये । मुनिपुंगवोंने उसको स्वीकार किया, और उन्होंने विधानपूर्वक आहार लिया । 'तुझे अक्षयदान ( का लाभ ) हो' ऐसा कहकर मुनि चल बड़े और लोग उनके पीछे ( कुछ दूर तक ) जाकर प्रणाम करके लौट पड़े । भवदेव भी गाढ-स्नेहसे बंधा हुआ श्रद्धायुक्त भाव से ( तथापि ) लौटाये जानेकी इच्छासे उनके पीछे पीछे चलता रहा । मंडपमें महिलाजन इस कौतुकको देखे, जब मैं क्रीड़ापूर्वक कंकण छुड़ाऊँ । इसप्रकार चिन्तन करते हुए चलते चलते अन्योक्ति आलापकी रीतिसे वह बोला—हे प्रभु ! फैलती हुई शाखाओं तथा बहुत घनी छायावाले इस विशाल न्यग्रोध वृक्षको देखिये ! और इस चंचल तरंगोंवाले रमणीक सरोवरको देखिये, जो गुंजार करते हुए भ्रमरोसे युक्त शतपत्रोंसे आच्छादित है । आगम-विरुद्ध ( वचनसे अपने ) को बचाते हुए बड़े भाईने यह नहीं कहा कि वत्स, ( वापिस ) चले जाओ । वे मुनि बोले यह कोई अपूर्व ( अदृष्ट ) प्रदेश नहीं है,

१९. क ऊ जिणागमिं । २०. क व ड ही त; ख ग धीति । २१. क व ड गण्हि, ख ग गण्हि । २२. क ड मण्हि, घ मण्हि; ख ग मण्हि ।

[ १२ ] १. क व ड सुहासासियं । २. क ड वयाइ । ३. क व ड किज्जइ । ४. क व ड पुंगवेहिं । ५. क व ड ते । ६. ख ग वक्खवि । ७. क ड भयएउ; घ भएएउ । ८. ख ग गच्छए । ९. ख कोहुं । १०. क ख ग ड छोडेवउ, घ छोडेवउ । ११. क याउ । १२. क ड रवणु, घ रवणु । १३. क ड रणिरणियममर । १४. क ड विरोह । १५. घ मण्हं ।



मुणि भणई<sup>१६</sup> अऊत्र न इय<sup>१७</sup> पपम वालत्ते परिर्साळिय असेम ।  
महुं<sup>१८</sup> तेहिं<sup>१९</sup> एम सो विमणगन्तु<sup>२०</sup> रिन्सिंखु जेथ्युं<sup>२१</sup> त<sup>२२</sup> थाणु पत्तु ।

धत्ता—गुरु पणविउ सीसहिं भनिविसीसहिं भवपदेण<sup>२३</sup> वि वंदिउ ।

अगगण आयरियहो बहुगुणभरियहो नववरइत्तु नवरि ठियउ ॥१२॥

[ १३ ]

पेम्निववि वेसु तामु सपसत्थं अहिणंदिउ दिउ सुणिवरमत्थं ।  
एकं मरलसहाविं मीसई आउ प्हु तवचरणु लपसई ।  
साहु साहु उवचारपयत्तं मंवेहिंविं आणिउं भयवत्तं  
विक्खम्भरु सुणंनु मणि डोलई निट्ठरु कैम दिउंवरु डोलई ।  
५. नुरिउ नुरिउ थरि जामि पवन्ति मेसु विवाहकज्जु निट्ठवन्ति ।  
हुल्लहु सुरयविलासुवसुंजमि नववहुवाप ससउ सुहु सुंजमि ।  
एउ ताउ जं सुणिणा लडयउं पणि व जेइ<sup>२४</sup> चिरु निच्छइयउं<sup>२५</sup> ।  
निलयहो जं न नियन्तिउ मवउ<sup>२६</sup> भाई पइज्जहं<sup>२७</sup> प्हु जिं पवउ ।  
कइमि<sup>२८</sup> कामु कइ<sup>२९</sup> करमि महारडि एतहं<sup>३०</sup> वग्गुं पामे इह दोत्तहिं<sup>३१</sup> ।

बालपनेमें हम लोग इस सम्पूर्ण क्षेत्रके नव्व अभ्यस्त थे । इस प्रकार वह भवदेव उन मुनियोंके साथ विमनगात्र अर्थात् अनिच्छापूर्वक चलता हुआ जहाँ ऋषिमेंव था, उस स्थानको प्राप्त हुआ । दोनों शिष्योंने भक्तिपूर्वक गुनको प्रमाण किया, भवदेवने भी गुरुकी वंदना की और वह नव-वर उन अनेक गुणोंके भंडार आचार्यके आगे बैठ गया ॥ १२ ॥

[ १३ ]

प्रधान्त्त वेम देवकर मुनिमंघके द्वारा उस द्विजका अभिनंदन किया गया । एकने मरल स्वभावसे कहा—यह आया है, नपम्भरण लेगा । उपकारमें प्रयत्नवान् वे भवदन धन्य हैं, जो इसको संबोधन- करके यहाँ लाये । इन तीन्हे अक्षरोंको मुनकर वह मनमें काँप गया, यह दिवात्रर कैसी निष्ठुर चाणी बोल रहा है । मैं बहुत त्वरापूर्वक घर जाऊँगा और जेप विवाहकार्य निबटाऊँगा । दूर्लभ मुक्त-क्रीड़ा करूँगा और नववचूके साथ मुख भोगूँगा । मुनिने जो यह ( दीक्षा लेनेका ) नाम लिया, वह व्येष्ट ( नाई ) ने बहुत पहलेसे ही निश्चय कर रखा था, और भूजे जो घर नहीं लौटा दिया, यही नाईकी पंज ( प्रतिज्ञा ) का प्रत्यय है । मैं किसमे कहूँ ? कैसे फूट-फूटकर रोऊँ ? इधर पासमें व्याघ्र है, और इधर ( दूमरी ओर ) दुष्ट नदी ।

१६. क द अणुत्तं । १७. क द महु । १८. द तेहिं । १९. क वि पणय गन्तु, घ द विमणगन् ।  
२०. क द जित्थ; घ जित्थु । २१. क त । २२. क द भवदेवण ।

[ १३ ] क द सीसई । २. क लपसई । ३. ल ग तेवि । ४. क द आणितं । ५. क व भयवत्तं ।  
६. क डोलई, द डोलई । ७. क व द पउंजमि । ८. क द बहुयाइ, घ बहुयाइ । ९. क द जि, ग ग जे ।  
१०. ग लडयउं । ११. क व द जिट्ठि; ल ग जेट्ठि । १२. क द थउ । १३. क द मयउ । १४. ल ग भाए । १५. क द पइज्जहि; घ पइज्जहि । १६. क घ द एउ । १७. ग ग जे । १८. क कइमि ।  
१९. क ल ग व कइहो । २०. क घ एत्तहि; द एतहि । २१. ग वग्गु । २२. क होत्तहि; ग ग दोत्तहि ।

तो बरि नै<sup>३३</sup> करमि पहु अमाणउ<sup>३४</sup>  
पवजेमि अजै<sup>३५</sup> नीसल्लए<sup>३६</sup>

जेठसहोय<sup>३७</sup>रु जणणसमाणउ<sup>३८</sup>  
को वारइ<sup>३९</sup> जाएसमि<sup>४०</sup> कल्लए<sup>४१</sup> ।

१०

घत्ता—इय हिय<sup>४२</sup>ग्र समासइ<sup>४३</sup> पुणु आहासइ<sup>४४</sup> पहु दिक्खह<sup>४५</sup> पसाउ करहि<sup>४६</sup> ।

भवयत्तु वसंतउ मइ<sup>४७</sup> वि पडंतउ भववइतरणिहि<sup>४८</sup> उद्धरहि<sup>४९</sup> ॥१३॥

[ १४ ]

इय वोल्लंतु कलत्तुमाहिउ  
मग्गइ दिक्ख हियइ घरु चाहइ

फुडु आसन्न भवु अकलंकिउ

मुणिसंघाडएहि<sup>५०</sup> लक्खिज्जइ

पाढंतह<sup>५१</sup> अक्खरु नउ आवइ

दिवि दिवि चिंतइ कंत ह<sup>५२</sup> सुंदरि

फारत्तु<sup>५३</sup> नयणेहि<sup>५४</sup> सुहुल्लए<sup>५५</sup>

वट्टइ वट्टल्ल-वणयणमंडलि<sup>५६</sup>

अवहि पउंजिवि गुरुणा चाहिउ ।

लज्जपरव्वसु पर निव्वाहइ ।

इय मण्णंतं पुणु दिक्खंकिउ ।

न लहइ विरुचंतसं रक्खिज्जइ ।

लडहंगउ कलत्तु पर भायइ ।

वट्टइ<sup>५७</sup> का वि अवर जोवणसिरि<sup>५८</sup> ।

विट्ठमरायफुरणु<sup>५९</sup> अहरल्लए<sup>६०</sup> ।

लंघइ तिचलि<sup>६१</sup> कसणरोमावलि ।

५

तो ठीक है, मैं इनकी बात अमान्य नहीं करता, ( क्योकि ) ज्येष्ठ सहोदर पिताके समान होता है। आज निःशय ( निःशंक ) होकर प्रव्रज्या ले लेता हूँ, कल चला जाऊँगा, मुझे कौन रोक सकेगा ? इस प्रकार हृदयमें पर्यालोचन करके फिर बोला—हे प्रभु ! दीक्षा देकर प्रसाद कीजिये । भवदत्तके रहते हुए मुझ गिरते हुए का भी भव-वैतरणीसे उद्धार कीजिये ॥१३॥

[ १४ ]

इस प्रकार बोलते हुए, ( परंतु हृदयमें ) स्त्रीके प्रति उमाह रखते हुए ( भवदेव ) को गुरुने अवधिज्ञानका प्रयोग करके जाना कि यद्यपि यह दीक्षा मांगता है, पर हृदयमें घरको चाहता है, तथापि लज्जावश यह उसका निर्वाह करेगा । 'यह निश्चयसे निष्कलंक आसन्न-भव्य ( शीघ्र मोक्ष जानेवाला ) जीव है, ऐसा मानते हुए गुरुने उसे दीक्षा दे दी । मुनि-युगल उसकी देख-रेख करने लगे, और इस प्रकार उसे रखने लगे कि वह मार्गान्तरको प्राप्त न कर सके अर्थात् भाग न पावे । पढ़ते हुए उसे अक्षर नहीं आता था, वह तो सुंदर अर्गों वाली पत्नीका ही ध्यान करता था । दिन दिन यही सोचता है काता ! हे सुंदरी, तुम्हारी यौवन-श्री कोई अपूर्व ही है । मुख पर नेत्रोकी विचालता है व अघरोमें विट्ठमरागका स्फुरण ( अर्थात् कांति ) है, वनुंलाकर घनी स्तनमंडली है, और कृष्ण रोमावलि त्रिवलिका लंघन करती है ।

२३. क में 'ण' नहीं । २४. ख ग अणमाणउ; घ अपमाणउं । २५. घ समाणउं । २६. घ क ग ऊ अज्जु । २७. घ हलउ । २८. ख ग वारए । २९. ख ग समे । ३०. घ ल्लइ । ३१. क दिक्ख, घ दिक्खहि, ऊ दिक्खइ । ३२. क ड करहि । ३३. क ड मय; ख ग घ मइ । ३४. क वयतरणिहि, घ ड वयतरणिहि । ३५. क घ ड उद्धरहि ।

[ १४ ] १. क ड आसन्नु । २. क ड पुणु वि, ग मंनति न्न पुणु । ३. डिंएहि; ड डिंएहि । ४. क ड विघतउ । ५. क ड पाटुतहं । ६. क भावइ । ७. क ड भावइ । ८. क कंतइ, घ ड कंतहि । ९. क ड वट्टइ । १०. घ अवर का वि । ११. क ड जोवण । १२. क ड फारइत्तु । १३. ड णेहि । १४. क ड उहुल्लइ, घ मुहुल्लइ । १५. क ड अण । १६. क ड ल्लइ, घ ल्लइ । १७. ख ग ले ।

विहिं<sup>१८</sup> बाहहिं<sup>१९</sup> अवसंडणु चंगइ<sup>२०</sup> दुक्कर पुजइ<sup>२१</sup> विचडनियवइ<sup>२२</sup> ।  
 मसिणोरुयहि जगु जि<sup>२३</sup> वसि<sup>२४</sup> किजइ नहदिच्छि मसियलु कवलजिइ<sup>२५</sup> । १०  
 घता—मुद्धइ<sup>२६</sup> संपुण्णउ<sup>२७</sup> तं तारुणउ<sup>२८</sup> किदीसिहइ<sup>२९</sup> पुण्णवउ<sup>३०</sup> ।  
 सो कइयह<sup>३१</sup> होसइ<sup>३२</sup> जो मणु तोसइ कवणु दिवसु सो धणवउ<sup>३३</sup> ॥१४॥

[ १५ ]

लीणिय पडिबिचिय लिहिय उक्कोरिय पडिहाइ ।  
 हियउ<sup>३४</sup> छुहेविणु धण निचिड दइए<sup>३५</sup> खीलिय नाई ॥१५॥

रत्नमालिका:

नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोवणेलीलाललिए पतलिए ।  
 रुवरिद्धिमणहारिणिए मारिणिए हा मइ विणु मयणे नडिए मुद्धिए ।  
 इय सोचचइ<sup>३६</sup> बोलिय देसंतर विहरंतहो बारह<sup>३७</sup> संवच्छर । ५  
 ताम परायउ मुणिगणु धणउ<sup>३८</sup> बड्डमाणगामहो आसणउ<sup>३९</sup> ।  
 उववासिउ भवएउ निएसिउ<sup>४०</sup> पारण्ये<sup>४१</sup> संघाडउ<sup>४२</sup> पेसिउ ।  
 चरियामगे<sup>४३</sup> पइहें वुत्तउ<sup>४४</sup> अंतराउ महु<sup>४५</sup> जाउ निहत्तउ<sup>४६</sup> ।

है । दोनो बाहुओसे आलिंगन करने पर वह अपने सुपुष्ट और विस्तीर्ण नितम्ब-भागमें बहुत दुष्करतासे सेवित होती है । उसके मसृण ऊरुओसे सारा लोक वशमें किया जाता है, और उसके नखोकी दीप्तिमें सपूर्ण महीतल चित्रित होता है । उस मुग्धाका वह भरपूर यौवन क्या ( कभी ) फिर वैसा ही नूतन दिखाई देगा ? ऐसा कब होगा, और वह धन्यदिवस कौन-सा होगा, जो मेरे मनको सतुष्ट कर सके ॥ १४ ॥

[ १५ ]

वह धन्या ( भार्या ) मेरे मनमें लीन है, प्रतिबिम्बित है, लिखित है, और उत्कीर्ण है । अतएव ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो देवने हृदयमें रखकर खूब गहरी कील डोंक दी हो ।

नीलकमलदल जैसी कोमल, श्यामलागी, नवयौवनकी लीलासे ललित और पतली देह वाली ऐसी अर्पनी रूपश्रद्धिसे मनको हरण करनेवाली, और मार डालने वाली, हे मुग्धे ! शोक है कि तू मेरे बिना कामसे पीड़ित हुई होगी ॥ १ ॥

इसी सोच-विचारमें देवान्तरोंमें विहार करते करते वारह संवत्सर व्यतीत हो गये । तब वे धन्य मुनिवृद्ध वर्द्धमान ग्रामके निकट आये । उपवास किये हुए भवदेवको देखकर, उसे पारणाके किये मुनियुगलके साथ भेजा गया । गोचरीके मार्गमें प्रविष्ट होने पर उसने कहा मुखे

१८. क र ग विहि । १९. क ह चंगइ । २०. क ट्टियइ, र ट्टियउ, ग तियओ; ङ ट्टियइ । २१. क ह नियवइ । २२. र ग ग जे । २३. ख ग ह वलि । २४. र ग उजए । २५. क इ मुद्धहि, ग मुद्धे, घ मुद्धहि । २६. क इ णणउ, घ न्णउ । २७. क दीस । २८. क पुण्णु णवउ । २९. क इ । ३०. क ह धणउ, र ग उ, घ धणमउ ।

[ १५ ] १. क इ हाइ । २. क इ हियइ, घ हियइ । ३. क घ इ दइवि । ४. क ट्टणइ । ५. क ह जोवण । ६. क घ इ मारिणिए । ७. क सो उजइ; र मायत, ग सेच्छय, घ सेज्ज, ङ सेज्ज । ८. र ग वाह । ९. घ इ धणउ । १०. घ इ णणउ । ११. क इ निवे, घ निवे । १२. क घ ट्टणु । १३. र ग विघाडइ । १४. क घ इ मणु । १५. क वुत्तउ । १६. र ग महु । १७. क ट्टणित्तउ ।

मुणिणा भणितं जाहि<sup>१९</sup> गुरुनियड<sup>२०</sup> तो गई<sup>२०</sup> पल्लट्टि<sup>२१</sup> वियड<sup>२१</sup> ।  
 चिक्कमंतु चित्तु वि<sup>२२</sup> परिओसइ<sup>२२</sup> एरिसु दिवसु न हुयउ न होसइ । १०  
 तो वरि वरहो जामि पियपेक्खमि<sup>२३</sup> विसयसुक्खु मणवल्लहु चक्खमि ।  
 वंचिवि दिट्ठि कियंतरु जाणवि<sup>२३</sup> चल्लिउ सिंगु दिसउ निज्जाणवि<sup>२४</sup> ।  
 पुणु दूरंतराले सुपसत्थे<sup>२५</sup> चित्तिजइ<sup>२५</sup> संपुण्हियत्थे ।  
 एकसि/अज्जे धणह<sup>२६</sup> रंजमि मणु सरहसुगाहु करमि आलिगणु ।  
 करहहेहिं थणमंडलु मंडमि<sup>२७</sup> अहरविउ दंतमहि<sup>२८</sup> खंडमि । १५  
 बडिह<sup>२८</sup> पेम्मपुंजु<sup>२९</sup> लज्जंकिउ दुल्लहु माणुसु विरह<sup>३०</sup> झुलुकिउ<sup>३०</sup> ।  
 जिह जिह<sup>३१</sup> नियडगामु<sup>३१</sup> परिसकइ<sup>३१</sup> निह तिह<sup>३२</sup> चित्तु मणाउ चमक्कइ ।

धत्ता—जिणसासणु बहुगुणु इउ कारणु पुणु विट्ठिकारिउ आरिसहिं<sup>३३</sup> ।

पयपूरणमत्तहिं<sup>३३</sup> काहें जियंतहिं<sup>३३</sup> काउरिसहिं<sup>३३</sup> अम्हारिसहिं<sup>३३</sup> ॥१५॥

[ १६ ]

लज्जेसइ हा भवयत्तमुणि<sup>३</sup>

वीणोवम धणियह<sup>२</sup> महुइगुणि ।

निश्चित अन्तराय हो गया है । तब एक मुनिने कहा—गुरुके पास चले जाओ । वह शीघ्रगतिसे लौट पड़ा । चलते हुए उसके चित्तमे बड़ा आनंद हुआ कि ऐसा दिन न कभी हुआ और न होगा । तो ठीक ! घर जाकर प्रियाको देखूंगा और मनचाहा विषयसुख भोगूंगा । फिर थोड़ी दूर जाकर ( मुनियुगलकी ) दृष्टि बचाकर ( धरकी ) दिशाका विशेष ध्यान करके शीघ्रतासे चला । और फिर दूरसे ही भलीभांति अपने हृदयमे भरे हुए भावोंके विषयमे सोचने लगा—आज एक बार मैं अपने मनको अपनी धन्यासे प्रसन्न करूंगा, व उक्तंठापूर्वक अतिगाढ-आलिगन करूंगा, नख चिह्नोंसे उसके स्तनमंडलको मडित करूंगा और अघरविदको दांतोंसे काटूंगा । उसका दुर्लभ मनुष्य ( प्रिया ) के विरहसे झुलसा हुआ, व ( अवतक ) लज्जासे दबा हुआ प्रेमपुंज बढ़ गया । जैसे जैसे गांव निकट आता गया, वैसे वैसे उसका चित्त कुछ इसप्रकार चमत्कृत हुआ ( अर्थात् इसप्रकार चिन्तन करने लगा )—यह जिनशासन बहुत गुणवाला है, और आर्ष-ऋषियों द्वारा विषयभोगके लिये इसप्रकारके ( व्रतभंगादि ) कारणको अत्यन्त धिक्कार किया गया है । हम जैसे केवल पदोंको पूर्ण करनेवाले, अर्थात् मुनि-पदका केवल बाह्यतः निर्वाह करने वाले, कापुरुषोंके जीनेसे ही क्या ? ॥ १५ ॥

[ १६ ]

हा शोक ! ( इधर तो ) भवदत्त मुनि ( मेरे इस आचरणसे ) लज्जित होंगे, ( और उधर ) उस धन्याकी धीणाके समान मधुर ध्वनि ( सुननेको मिलेगी ); ( एक ओर तो )

१८ क व ड भणितं । १९. क व जाहि । २०. क गइए, ठ गईइ । २१. क ड पल्लट्टु, ख ग व पल्लट्टु । २२ ख ग में वि नहीं । २३. ख ग जायवि । २४. क ड यवि; व इवि । २५. ग चित्तिजइ । २६ क ग व ड अज्ज । २७ क ग व ड धणहि; व धणहि । २८ ख ग गहि । २९. क ड वट्टिउ । ३०. क ग व ड पेम् । ३१. ख ग पुंज । ३२. ख ग विरह । ३३. ख ग झुलुकिउ । ३४. ग व हं । ३५. ख ग नियडु । ३६ क सक्कइ । ३७. ख ग रिखिहि । ३८ ख ग मित्तिहि । ३९. क त्तिहि ।

[१६] १ ख ग व भवयत्तु । २ क व ड धणियहि; ख ग धुणियहे ।

- रिसिसंघु निवारइ कुगइपहे<sup>३</sup> ऊरुयफंसणु<sup>५</sup> को लहइ तहे<sup>६</sup> ।  
 संसार<sup>४</sup>छेयहो वय भणिया रेहाविय<sup>७</sup> घरकंतहे<sup>८</sup> तणिया ।  
 परिहरहि<sup>९</sup> चित्त मिच्छत्तभरु<sup>१०</sup> सकियथु घरेसइ तहे<sup>११</sup> अहर ।  
 ५ इय हरिस-विसायहि<sup>१२</sup> पहि<sup>१३</sup> वहइ आसंक अण्ण हियवड उहइ ।  
 चरिसहि<sup>१४</sup> धारहहि<sup>१५</sup> विलासपिया तहे<sup>१६</sup> जाणहु<sup>१७</sup> वट्टइ कवण-किया ।  
 जोवणवसि<sup>१८</sup> करइ किमण्णु पइ अह कुलकमु पालइ कह व जइ ।  
 तो महु<sup>१९</sup> लुंघियसिर-मलघरहो दुर्गधसरीरदियंवरहो ।  
 संकेसइ<sup>२०</sup> झत्ति न पइसरमि याहिरि उवलंभु ताम करमि ।  
 १० ता<sup>२१</sup> गामलगु<sup>२२</sup> सियलुहधवलु देवउलु दिट्ठु धुयधयचवलु<sup>२३</sup> ।  
 चितवइ न होतउ एउ चिरु जा पइसइ ता तं चेइहर<sup>२४</sup> ।  
 जिणपडिम लियवि वंदण करिवि जा नियइ विसत्थव वइसरवि<sup>२५</sup> ।

घत्ता—ता एकखणंतरि<sup>२६</sup> तिय कोणंतरि<sup>२७</sup> त्रिष्ठ नियमवयखिण्णतणु ।

अणुहरइ विरुवहो सुलिणिरुवहो सुककवोलहि<sup>२८</sup> तसइ जणु ॥१६॥

अपि संघ कुगतिके पथसे निवारण करता है, ( परंतु दूसरी ओर ) उस जैसी सुंदरीका जंघा-स्पर्श किसे मिलता है; ( इधर तो ) संसारके उच्छेदनके लिए व्रत कहे गये हैं, ( और उधर ) उस श्रेष्ठ कांताकी सौंदर्यसे दीप्तिमान देहयष्टि है; अरे चित्त ! यह मिथ्यात्व वर्तन अर्थात् मिथ्याचरण छोड़ दे ! ( पर ) उसके अधरोका चुवन करके कृतार्थ होगा । इसप्रकार हर्ष-विषादपूर्वक वह भागमें चल रहा था कि एक अन्य आगका उसके हृदयको जलाने लगी— वारह वर्षोंमें रतिक्रीड़ा-प्रिय उस भामिनीकी आजकल कैसी क्रिया है, क्या जानूँ ? क्या जीवनके वश होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा ? अथवा यदि किसी तरह कुलक्रम ( कुलाचार ) का पालन किया भी हो तो लुंचितशिर, मलघारी, तथा दुर्गधयुक्त शरीरवाले भुस दिगंबरको देखकर वह हैरान होगी । इसलिए मैं शीघ्रतासे प्रवेग नहीं करूँगा, बल्कि पहले उसे बाहर ही बुलवा लूँगा । इतनेमें उसने गाँवसे लगा हुआ, ज्वेत चूनेसे धबल, और फहराती हुई चपल ध्वजासे युक्त एक देवकुल देखा । ( और ) सोचने लगा—पहले तो यह नहीं था । जब उसने उस नैत्यघरमें प्रवेग किया, तथा जिनप्रतिमाको देखकर वदना करके जब विग्वस्त होकर बैठा, तो क्षणभरके उपरांत नियमव्रतोसे क्षीणशरीर एक स्त्रीको एक कोनेमें बैठे देखा जो विरुपाकृतिके कारण चंडीके रूपका अनुसरण कर रही थी, और सूखे कपोलोसे लोगोंको त्रास उत्पन्न करती थी ॥१६॥

३. क ड कुमइपहि, ख ग पहे; घ कुमइ । ४ ख ग करयलफ । ५. क ड तहि, ख ग तहो । ६. ग ग संमार । ७. ख विमु (?) ८. क ड हि; ख ग व हि । ९ ख ग घ हरिहि । १० क ख घ ड भरु । ११. क घ ड तहि । १२. ख ग येहे । १३. क पति । १४. प्रतिपामि 'तहि' । १५. ख ग जाणहो । १६. ख ग वस । १७ क संको । १८ ख ग व ड तो । १९ क गवण । २० घ धवलु । २१ क ड चय । २२. घ सरवो । २३. ख ग तरे । २४ ख ग लहे, घ लहि ।

[ १७ ]

तो पणविउ ताप्र भत्तिजणवि  
तुम्हई किर अवे चिराउसई<sup>३</sup>  
भवयत्तु अवरु भवएउ<sup>४</sup> तहि  
जाणमि सा भणई आसिठियहो  
संसारतरंगिणि तेहिं तरिया  
पडिभणई सवणु मणि जणियग्गु  
विणु नाहें किह कुलमग्गो ठिया  
लायणत्तरंगुभासियउ  
बोल्लंतु ताप्र<sup>१</sup> सो परिकलिउ

मुणि पुच्छइ धम्मबुद्धि<sup>१</sup> भणवि ।  
इह वसहु सयलु जाणेहु सई ।  
दियतणय सहोयर वे वि कहि<sup>२</sup> ।  
वे नंदण अज्जवसूदियहो ।  
आयरिय<sup>३</sup> वित्ति-इयंवरिया ।  
भवएवें परिणिय नायवसु ।  
कि वट्टइ तहे<sup>४</sup> विवरीयक्रिया ।  
तारुण्य ताहि<sup>५</sup> केरिसु थियउ ।  
भवएउ एउ<sup>६</sup> फुड्ड<sup>७</sup> वयचलिउ ।

५

यत्ता—राय परमविसायहो परिणइ<sup>८</sup> रायहो पेक्खहु<sup>९</sup> केण<sup>१०</sup> निन्नारियइ<sup>११</sup> । १०  
जहिं अडुवियइ<sup>१२</sup> चम्महो<sup>१३</sup> खडें माणुसु<sup>१४</sup> केम वियारियइ<sup>१५</sup> ॥१७॥

[ १८ ]

निन्नासमि आयहो पावमउ  
धण्णो सि सबण तिहुवणसिलउ

सम्मत्तदिट्ठि पुणु सा चवइ ।  
जिणदंसणु पाविउ सुहनिउ<sup>१</sup> ।

[ १७ ]

तो फिर उस स्त्रीने भक्तिपूर्वक मुनिको प्रणाम किया । 'तुम्हें धर्मवृद्धि हो' कहकर मुनि पूछने लगे—हे अवे तुम्हारी दीर्घ आयु है, यहाँ बसनेवाले सभीको तुम स्वयं जानती होगी । यहाँ एक भवदत्त और दूसरा भवदेव ये दो सहोदर ब्राह्मणपुत्र थे, वे कहाँ हैं ? उसने कहा—जानती हूँ, यहाँ आर्यवसू द्विजके दो पुत्र रहते थे, उन्होंने दिग्बर-वृत्ति ( दीक्षा ) का आचरण करके इस संसार नदीको तर लिया । तब मनमें और दिलचस्पी उत्पन्न होनेसे श्रमणने फिर कहा—भवदेवने नागवसूका परिणय किया था, पतिके बिना क्या वह कुलमार्ग ( पतिव्रत-धर्म ) में स्थित रही, अथवा कुछ विपरीत-क्रिया करके रहती है ? लावण्य-तरंगोसे उद्धासित उसका तावण्य कैसा रहा ? बोलता हुआ वह मुनि उसके द्वारा पहचान लिया गया कि यह निश्चय ही व्रतोसे डिगा हुआ भवदेव है । वह परमविषादको प्राप्त हुई, कि देखो इस रागकी परिणतिका कौन निवारण कर सकता है, जहाँ कि मनुष्य आड़े-टेंढ़े वा गले-सड़े चर्मखंडसे कैसे-कैसे विकारको प्राप्त होता है ॥१७॥

[ १८ ]

'इसकी पापमतिको नष्ट करूँगी', ( मनमें ऐसा निश्चय करके ) वह सम्यग्दृष्टि ( नाग-वसू ) बोली—हे त्रिभुवनतिलक श्रमण तुम धन्य हो, जिसने सुखका घाम, ऐसा जिनदर्शन पा

[१७] १. क ख ग ङ विद्धि । २. क अवि, ख ग, अवि; ङ अवि । ३. क विराउ । ४. क ङ भय । ५. क ङ कहो । ६. प्रतियोगें 'मणइ' । ७. क व ङ आयरिय । ८. क व ङ मणइ । ९. क व ङ तहि, ख ग तहि । १०. क व ताहि । ११. क ताइ । १२. व एहु । १३. ख ग फुड । १४. ख ग णय । १५. ग पेक्खहे । १६. क केसा । १७. ख ग ण वारि, व ङ थई । १८. ख ग वियडें । १९. ख ग चम्महं । २०. ख ग माणुस । २१. व ङ थई ।

[१८] १ क व ङ तिहुवण । २ क सह ।

तरुणत्तणे<sup>१</sup> वि इंदियदवणु  
परिगलिष्ट<sup>२</sup> वयसि सव्वहो वि जइ  
कचे पल्लवइ को रयणु  
सग्गापवग्गसुहु परिहरइ  
को महिलह<sup>३</sup> कारणे लेइ दिसि  
जिह जिह<sup>४</sup> आहासइ सुद्धमइ  
जा पुच्छिय तुम्हहि<sup>५</sup> नायवसु  
नालियरसरिसु<sup>६</sup> मुंडियउ सिरु  
नयणइ<sup>७</sup> जलवुवुयसरिसयइ<sup>८</sup>  
चिरुचुयनिड्डालकवोलतयइ<sup>९</sup>  
निम्मंसु निलोहिउ देहघर  
नीसल्लु अवर<sup>१०</sup> हियवउ जणउ

दीसइ<sup>११</sup> पइ<sup>१२</sup> सुयवि<sup>१३</sup> अण्णु कवणु ।  
विसयाहिलाससिहि<sup>१४</sup> उवसमइ ।  
पित्तलप्र हेसु विकइ कवणु । ५  
को रउरवि नरइ पईसरइ ।  
सज्झायहाणि<sup>१५</sup> को कुणइ<sup>१६</sup> रिसि ।  
हेट्टासुहु<sup>१७</sup> लज्जप्र<sup>१८</sup> सुणि हवइ ।  
सुणु पयडमि तहे<sup>१९</sup> लायण्णरसु<sup>२०</sup> ।  
लालाविलु सुहु<sup>२१</sup> घग्घरियगिरु । १०  
नियथाणु मुअवि<sup>२२</sup> तालु वि गयइ<sup>२३</sup> ।  
रणरणहि<sup>२४</sup> नवरि बायाहयइ ।  
चम्मेण नद्ध<sup>२५</sup> हइह<sup>२६</sup> नियरु ।  
पडिछंदु निहालहि<sup>२७</sup> महु तणउ<sup>२८</sup> ।

घत्ता—इय रूग-सरिच्छउ हियउ तिरिच्छउ सल्लु काइ तुम्ह<sup>२९</sup> थियउ । १५  
परलोउ न साहिउ एमइ<sup>३०</sup> बाहिउ<sup>३१</sup> कालु निरत्थउ पर नियरु<sup>३२</sup> ॥१८॥

लिया । तरुणाईमे भी इन्द्रियोंको दमन करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन दिखाई देता है ? यदि परिगलित वयस्मे सभीका विषयाभिलाषरूपी अग्नि शांत हो जाता है ( तो उससे क्या लाभ ? ) । काँचसे रत्न कौन बदलवाता है ? पीतल के लिए स्वर्ण कौन बेचता है ? स्वर्ण और अपवर्ग ( मोक्ष ) सुखको छोड़कर रौरव नरकमे कौन प्रवेश करता है ? महिलाके कारण व्रतानुष्ठानादि क्रियाओंसे कौन भ्रष्ट होता है व कौन ऋषि अपने स्वाध्याय ( आत्मचिंतन ) की हानि करता है ? जैसे-जैसे वह शुद्धमति बोलती गई, वैसे-वैसे मुनि लज्जासे अधोमुख होते गये । ( उसने फिर कहा )—तुमने जिस नागवसूको पूछा, सुनिये ! उसके लावण्यरस ( सौंदर्य स्वरूप ) को प्रकट करती हूँ—उसका शिर नारियलके समान मुडित है, मुख लारयुक्त हो गया है, और उसमे-से वाणी घरघराती हुई निकलती है । नेत्र जलके बुलबुलेके समान, अपने स्थानको छोड़कर तालु तक चले गये हैं; चिबुक, ललाट, कपोल और त्वचा मानो वाताहत होकर रण-रण शब्द करते हैं ( अर्थात् सारा शरीर शिथिल हो गया है, उसमे क्षुरियाँ पड़ गयी हैं, अतः सदैव किटकिट आदि शब्द करता हुआ काँपता रहता है ) । यह देहरूपी घर निर्मास और निर्लोहित होकर चर्मसे नथा हुआ अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रह गया है । हृदयको और भी निःशल्य करनेवाले मेरे इस प्रतिरूपको देखिए । इस सदृश रूप तुम्हारे हृदयमे कुटिल-शल्यको भाँति कैसे स्थित रहा ? तुमने परलोक नहीं साधा ऐसे ही समय बिताया । तुम्हारा सारा समय निरर्थक ही गया ॥ १८ ॥

३ ख ग तरणं । ४. ख ग ई । ५. क व ऊ मुइवि । ६ क व ऊ मलिय । ७ ख ग हवि । ८ ख ग कुम्महेलहे, क कुमहिलहि । ९ क ड अज्जाय । १० क व ड ई । ११ क व ड जिहं जिह । १२. क ड मुहुं । १३. क ख ग ऊ लज्जइ । १४ क ड तहि, घ तहि । १५. क ड लावणं । १६ घ सरिस । १७ क णाण्णाविट्टलु; घ ड लालाविट्टलु । १८. ख ग व वव्वुव । १९. क व ड सयइ । २०. क व ड मुएवि । २१ क ड गयइ । २२ क व ड कवोलयइ । २३. ख ग रणहि । २४. ख ग चम्मे निवद्ध । २५ ख ग हइइ । २६. ख अहव । २७. क लहि । २८ ख ग तणउ । २९. घ तुम्हइ । ३०. ख ग एम वि; घ एमइ । ३१. क ड । ३२ क ड थियउ ।

[ १९ ]

तओ तम्मि संबोहणावाकाले  
मणं तस्स नीसल्लभावे<sup>१</sup> पवत्तं  
अहं चेय ते गेहिणी नाह सुक्का  
घरे आसि जं संठियं तुम्ह दण्वं  
इमं सुंदरं कारियं चेइगेहं  
सुणेऊण चित्तं तरं लज्जमाणो  
गिरा तुम्ह जाया महं सुद्धभावा  
तओ निग्गओ पुणवसंकेयचत्तो<sup>२</sup>

तडत्तीह तुट्टे महामोहवाले ।  
फुडं जाणिऊणं पुणो तोण वुत्तं ।  
कुलायार-भत्तारधम्मं न चुक्का ।  
मए द्विणयं धम्मकज्जम्मि सव्वं ।  
वयोवासियं सोसियं पेक्खु देहं ।  
पर्यपेइ संलद्धसिक्खापमाणो ।  
पडंतस्स संसारनीरम्मि नावा ।  
खणद्धे<sup>३</sup> मुणिदाण पासम्मि पत्तो ।

४

वत्ता—गुरुचलणइ<sup>४</sup> वंदेवि अप्पउ निंदेवि सयलु वि कज्जु<sup>५</sup> निवेइयउ ।

पहु अज्जु म वंकहि<sup>६</sup> पुणु निक्खंकहि<sup>७</sup> संसारहो उव्वेइयउ ॥१०॥ १०

[ २० ]

संकिट्ठभाव सव्व वि चइया  
अवमसइ निरंजणु परमपर  
रंभइ मणवयणकायपसर

सविसेसद्विक्ख पुणरवि लइया ।  
वे मेलइ<sup>१</sup> रायदोस अवरु ।  
नासइ इंदियविसया अवरु<sup>२</sup>

[ १९ ]

तव ( नागवसूके ) उस संबोधनात्मक वार्तालाप करते-करते ही उसका मोहजाल तड़से टूट गया; और उसका मन निःशाल्य भाव ( गृद्धात्मपरिणाम ) में लग गया, ऐसा स्पष्टरूपसे जानकर उस नागवसूने पुनः कहा—हे नाथ ! मैं ही तुम्हारी परित्यक्ता गृहिणी हूँ । मैं पतिधर्म-रूपी अपने कुलाचारसे च्युत नहीं हुई । घरमें तुम्हारा जो द्रव्य रखा था, वह सब मैंने धर्मकार्यमें दे दिया, और यह सुंदर चैत्यघर बनवा दिया । मेरा यह व्रतोपवाससे शोषित शरीर देखिए ! यह मुनकर चित्तमें लज्जित होता हुआ प्रामाणिक धर्मशिक्षा पाकर वह बोला—हे जाया ! मैं जो संसार सागरमें डूबा जा रहा था, तुम्हारी वाणीसे मेरी नावकी चेष्टा ( गति ) अब निर्दोष हो गयी है । और फिर पूर्व-संकेत अर्थात् विषय-सेवाके संकल्पको छोड़कर वह वहाँसे निकला व अतिशोघ्र मुनीन्द्रोके पास जा पहुँचा । गुरुचरणोंकी वंदना करके व आत्मनिंदा करके संपूर्ण घटनाका निवेदन किया, ( और प्रार्थना की ) हे प्रभु ! आज मेरी प्रार्थनाको मत ठुकराइए, मुझे पुनः दीक्षा दीजिए, मैं संसारसे उद्भिन्न हो गया हूँ ॥ १९ ॥

[ २० ]

उसने सभी सविल्लभावोंको त्याग दिया और पुनः विशेष-दीक्षा ग्रहण की । वह निरंजन परमात्माका अभ्यास ( ध्यान ) करने लगा, और राग व द्वेष इन दोनोंका त्याग कर दिया । मन, वचन, कायके प्रसारको अवरुद्ध कर लिया, और इंद्रियविषयों ( अर्थात् भोगवासना ) का नाश कर

[ १९ ] १ क घ ङ णिस्सल्ल<sup>१</sup> । २ क वत्तो । ३ क खणद्धं, घ ण्दि । ४ क घ ङ वरणइ ।  
५ ख कज्ज । ६ ख म वंकहि । ७ क ख ग कंहि ।

[ २० ] १ क ङ मेलइ, घ मिल्लइ । २ क ङ विसरु; घ वसर ।



अग्नि-मित्तु <sup>३</sup> सरिसु समकणयतिणुं ।	सुहृदुहसमु समजीवियमरणु ।	
निंदापसंससमसु वयविमलु	भुंजेइ अजिन्नु व करि कवलु ।	५
अंधो व्व रुचदंसणु <sup>४</sup> कुणइ	वहिरो व्व निरोहु सदुहु सुणइ ।	
पाहणु व परसु वेयइ <sup>५</sup> विससु	वावीसपरीसहसहणससु ।	
भययत्तसहिइ इउ <sup>६</sup> तउ करइ <sup>७</sup>	पुव्वासियकम्मइ <sup>८</sup> निज्जरइ <sup>९</sup> ।	
अवसाणे विमलगिरि आसरिवि <sup>१०</sup>	अणसणे पंडियमरणे मरिवि <sup>११</sup> ।	
विणिण वि उप्पण सग्गे नइए	सायरइ <sup>१२</sup> सत्त आउसमइए ।	१०

अन्ता—विउवच्छरलक्खिय नयणकडन्निखय कडयमउडकेउरधर ।

हियइच्छियमोणहिं<sup>१३</sup> रमहिं<sup>१४</sup> विमाणहिं<sup>१५</sup> अतुलवीर<sup>१६</sup> विणिण वि अमर ॥२०॥

इय जंबूसामिचरिण सिंगारवीरे महाकव्ये महाकहदेवयत्तसुयवीरविरहण भवणवस्त  
सणकुमारमग्ग-गमणं नाम<sup>१७</sup> दुइज्जो मंघी सम्मत्तो<sup>१८</sup> ॥संधि-२॥

२०

दिया । उसके लिए व शत्रु व मित्र एक समान हो गये और स्वर्ग व तृण बराबर ; सुख-दुःख, जीवन-मरण सब एक-सा; तथा निंदा व प्रशंसा सबमे समान बुद्धि । वह शुद्ध व्रतोवाला हुआ । वह हाथमे श्वास लेकर जिह्वा-रहितके समान भोजन करता, अंधेके समान रूप-दर्शन करता, तथा वहिरेके समान निरोहभावसे शब्द सुनता । कठोर स्पर्शको वह पत्थरके समान वेदन करने और क्षुधा-तृपादि वाईस परीपहोको सहन करनेमे समर्थ हुआ । इसप्रकार भववृत्तके साथ तप करते हुए उसने पूर्वोपाजित कर्मोंकी निर्जरा की । जीवनके अन्तिम समयमे विमलगिरिका आश्रय लेकर अनशनपूर्वक पंडितमरण करके दोनों ही भाई सात सागर आयुवाले तृतीय स्वर्गमे उत्पन्न हुए । वहाँ दिव्य अप्सराओके नयनकटाक्षो-द्वारा लक्षित, कंकण, मुकुट, व कैयूरोके धारक, हृदयेच्छित आकार धारण करते हुए, वे दोनों अतुल वीर्यवान देव स्वर्गविमानोमे रमण करने लगे ॥ २० ॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित नामक इस शृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमे भवदेवका मनस्कुमार स्वर्गगमन नामक द्वितीय संधि समाप्त ॥ २ ॥

३ छ<sup>३</sup>मित्त । ४ घ तणु । ५ क एव । ६ ड कुणइ । ७ क ड सुणइ । ८ क ड पाहणु, ख ग पाहणु । ९ क ख ग ड वेयइ । १० क वीवीस । ११ ख ग इय । १२ ख ग इ । १३ क ख ग इ । १४ क व ड रवी । १५ क ड रवी । १६ ख ग रइ । १७ क ड इच्छिय । १८ क रमहि । १९ क वीर । २० क दुइज्जो इमा संघी; ख ग दुइज्जो परिच्छेउ सम्मत्तो, घ ड दुइज्जो इमा संघी ।

[ १ ]

वालकीलासु वि वीरवयणपसरंतकव्वपोऊसं ।  
कण्णपुडएहि<sup>२</sup> पिज्जइ जणेहि<sup>३</sup> रसमउलियच्छेहि ॥१॥  
भरहालंकारसलक्खणाई लक्खेपयाई विरयंती ।  
वीरस्स वयणरंगे सरस्सेइ जयउ नच्चंती ॥२॥  
सुविसालए तहि<sup>४</sup> अमरालए<sup>५</sup> विविहपयार विलासु किउ ।  
अच्छंतहि<sup>६</sup> सुहुं भुंजंतहि आउसु सायरसत्त निउ ॥३॥

५

दुवई—यहु मण्णंति सर्गे देवाउसु जे नर-किविणमाणसा ।  
सन्नु वि कालदव्वु तहुं तिणसमुं जे संपन्ननाणसा ।

अह मंदराउ जणनयणपिउ	पुत्वासग पुव्वविदेहु थिउ ।
ओछपिणी <sup>७</sup> अवसपिणि न तहि	लोयाहिव <sup>८</sup> उपज्जंति जहि ।
नाहेय <sup>९</sup> बाहुवलि-भरह-जया	अरहंत-सिद्ध-चक्रवइ सया ।
धनुसयई <sup>१०</sup> पंच-उच्छेहतणु	पुत्वाण कोडि जीवेइ जणु ।
तत्स्थि असुणियंविचक्खभउ	नामेण पुक्खलावइ विसउ ।

१०

[ १ ]

वालकीलाओमे भी वीर ( कवि ) के मुखसे प्रसृत होते हुए काव्य-पीयूषको लोगोके द्वारा आनंदसे निमीलित नेत्र होकर कणपुटोसे पिया जाता है ॥ १ ॥ भरतके अलंकार और काव्यलक्षणासे युक्त लक्ष्य पदो अर्थात् काव्यपदोकी रचना करती हुई, वीर कविके मुखरूपी रगमचपर नृत्य करती हुई सरस्वती जयवत होवे ॥ २ ॥

उस विशाल स्वर्गमें दोनो देवोने विविधप्रकारका विलास किया । इसप्रकार वहाँ रहकर सुख भोगते हुए सात सागरकी आयु बीत गयी ॥ ३ ॥ जो स्वर्गमें देवायुको बहुत मानते हैं, वे लोग कृपण-मानस अर्थात् अल्पबुद्धि हैं । परन्तु जो ज्ञानलक्ष्मीसम्पन्न हैं, उनके लिए तो समस्त कालद्रव्य ( काल परिमाण ) भी एक दिनके समान है ॥ ५ ॥

मंदराचलसे पूर्व दिशामें लोगोके नेत्रोको प्यारा पूर्वविदेह स्थित है । वहाँ उत्सपिणी-अवसपिणी रूपसे कालचक्रके आरे नहीं बदलते, तथा वहाँ लोकके नाथ तोर्थकर ( सदैव ) उत्पन्न होते रहते हैं । वहाँ नामेय जिन ( ऋषभनाथ ), बाहुवलि, तथा भरत और भेषेश्वर ये अरहंत सिद्ध एवं चक्रवर्ती सदैव विद्यमान रहते हैं । वहाँ शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है । और जोव पूर्व-कोटि वर्षों तक जीता है । वहाँ शत्रुके भयको न जाननेवाला पुष्कलावती

[ १ ] १ क घ ङ ऐ ओ अं । २ ख एहि; व कर्त्त । ३ घ लई । ४ तिहि । ५ ख ग घ सुहुं ।  
६ क घ ङ गउ । ७ क खं घ ङ तहु । ८ क घ ङ दिणं । ९ क ख ग ङ सण्णं । १० ख ग ओसं ।  
११ क ख ग ङ हिय । १२ क णाणयं । १३ ख गं सयइ ।

- जो जलनिहि वर रयणुद्धरणु  
 १५ धननंदणवणसंछइयदिसु  
 कणकणिरदसणसीयलसल्लु  
 विलसंतपवणकंथियसरलु  
 तरलच्छिच्छेत्तठियहलियवहु  
 पहसंतरमियगामोणजणु  
 २० लता—मणिसारहि तिहि<sup>१९</sup> पायारहि परिहामंडलि<sup>२०</sup> जलपयारि ।  
 बहुभोयहि मंडियलोयहि अत्थि पुंडरिक्किणि<sup>२१</sup> नयरि ॥१॥

[ २ ]

दुवई—बारहजोयणाई वीहत्ते नवजोयण सुविथरा ।

सगु वि वीसरंति सा पेक्खवि मोहियमाणसामरा ॥१॥

- नयरिमणोरमभुअणपइवहो<sup>१</sup> तिलयभूय आ जंबूदीवहो ।  
 मंडालक्कियाई<sup>२</sup> उज्जाणई वाहिरि अच्चंतरी निवथाणई ।  
 ५ जहिं वाहिरे वाडोउ सतालउ अच्चंतरी पुणु नच्चणतालउ ।  
 सरपालिउ विडंगनहवणियउ<sup>३</sup> वाहिरि अच्चंतरी पुणु गणियउ ।

नामका देश है, जो जलनिधिके समान रत्नोको धारण करनेवाला है, व जहाँ धरोके शिखरोसे टकराकर बादल झरने लगते हैं। धने नंदनवनसे वहाँको दिशाएँ आच्छादित हैं तथा धस्यके कंपनबोल तीक्ष्ण-अग्रभागोंसे उसकी समृद्धि दृश्यमान है। जहाँ दातोंको कपायमान करनेवाला शीतल पवन बहता है और कोकिलाके सुमधुर स्वरसे सब कंदर-विवर भर जाते हैं, क्रोड़ापूर्वक बहता हुआ वायु सरल नामक वृक्षोंको कपित कर देता है, चंचल हरिणिया सीधो छलाग लगाती है, और जहाँ खेतोमे खड़ी हुई चंचल आखोवालो हासिल (कृषक) वधुओंको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए पथिकोंसे मार्ग अवरोध हो जाता है, तथा जहाँ ग्रामीणजन अत्यन्त प्रमादपूर्वक रमण करते हैं, और जो नागरिकोंके जोड़ोको (वहाँ रहनेको) अभिलाषा उत्पन्न करता है, उस देशमे मणिजटित-प्राकार व जलप्रचारसे युक्त परिखामंडल सहित तथा अनेकप्रकारके भोग भोगनेवाले लोगोंसे मंडित पुंडरिक्किणी तामकी नगरी है ॥ १ ॥

[ २ ]

बारह योजन लंबी और नव योजन विस्तृत उस नगरीको देखकर मोहित हुए मनुष्य व देव स्वर्गको भी भूल जाते हैं। वह मनोरम नगरी भुवनके प्रदोप रूप जंबूदीपकी तिलकभूत है। उस नगरीके बाहर अनेक वृक्षगुल्मो व लतामंडपोंसे अलंकृत उद्यान हैं, व भीतर सर्वत्र नाना प्रासादो (मंड) से अलंकृत राजकुल हैं। वहाँ बाहर तालाबोंसहित वाटिकाएँ हैं, व भीतर ताल-मजीर इत्यादि वाद्यवादनसे युक्त नृत्यशालाएँ। बाहर विडग वृक्षोंसे ललित सरपाली अर्थात् सरोवर-परितयाँ हैं, व भीतर विदग्ध-जनोके नखोंसे व्रणित स्मरपालित (कामयन्त)

१४ घ वरं । १५ क ड णियत, घ फल्ल । १६ घ करिणी । १७ क घ ड व द्वाभिम । १८ ख ग नायरि । १९ क ड तहि । २० क क घ ड मंडल । २१ ख ग णिणि ।

[ २ ] १ घ भुण्णं । २ घ महुं । ३ ख ग यड ।

मुनिवरमंडियकीलामहिहर  
वाविउ सुपओहरउ सुरमणिउ<sup>४</sup>  
सहलसुपत्तइ मंडवथाणइ<sup>५</sup>  
वाहिरि वाहियालि हरिसंगय<sup>६</sup>  
वाहिरि गयउलाइ<sup>७</sup> रयणरुयइ<sup>८</sup>

वाहिरि अचमंतरि चेईहर ।  
वाहिरि अचमंतरि वररमणिउ<sup>४</sup> ।  
वाहिरि अचमंतरि जणदाणइ<sup>५</sup> ।  
अचमंतरि वसंति नायरपय<sup>६</sup> ।  
अचमंतरि सहंति डिमरुयइ<sup>८</sup> ।

१०

घत्ता—गुणमंदिरु नयणाणंदिरु वज्जयंतु तहिं रज्जधरु ।

रणसूरहो<sup>१</sup> परवलु<sup>२</sup> दूरहो जसु नामेण वि वहइ डरु ॥२॥

[ ३ ]

दुवई—तहो महएवि बिमलकमलाणण कमलदलच्छिनेत्तिया ।

कमलुज्जलसरिीर कमला इव नाम जसोहणा पिया ॥१॥

भवयत्तु<sup>१</sup> जेहु जो अमरु हुओ  
सायरगभीरु<sup>२</sup> चंदवयणु  
परिकलियसयलबिज्जाकुसलु  
अह तहिं जि जणमणाणंदयरि

तहे<sup>२</sup> जाउ पुत्तु सो सग्गचुओ ।  
सायरचंदु जि वाहरइ जणु ।  
जिणचरगजुयलपंकयभसलु ।  
नामेण बीयसोयानयरि ।

५

गणिकाएँ है। बाहर मुनिवरोसे शोभायमान क्रीडापर्वत हैं और भीतर चैत्यगृह। बाहर स्वच्छ जलवाली अत्यन्त रमणीय वापिया है, व भीतर मनोहर पयोधरों ( स्तनो ) वाली अति-रमणशील सुंदर रमणिया। बाहर ( उद्यानोमें ) सुंदर फलों व पत्रोंसे युक्त मंडपस्थान हैं, तथा भीतर मनोवांछित फल देनेवाला सुपात्र दान किया जाता है। बाहर अश्वों सहित अश्व-क्रीडास्थल हैं, और भीतर नागरिक प्रजा रहती है। बाहर गजकुल अपने दातोकी दीप्तिसे, व भीतर बालक अपने रत्नाभरणोंकी कातिसे शोभायमान हैं। वहाँ गुणोका निवास तथा नयनों-को आनंद देनेवाला वज्रदंत नामका राजा था, जिस रणनूरके नामसे ही शत्रुबल दूरसे ही भयभीत हो जाता था ॥ २ ॥

[ ३ ]

उसकी यशोधना नामकी महादेवी स्वच्छकमल जैसे मुखवाली, कमलदलके समान नेत्रोंवाली, कमलसदृश उज्ज्वल शरीरवाली और स्वयं कमला ( लक्ष्मी ) के समान थी, जो उसे बहुत प्रिय थी। ज्येष्ठ भाई भवदत्त जो देव हुआ था, वह स्वर्गसे च्युत होकर उसका पुत्र हुआ। वह सागर जैसा गभीर और चंद्रमाके समान मुखवाला था, इसलिए लोग उसे सागरचंद्र कहने लगे। सत्र विद्याओंको सीखकर वह उनमें कुशल हो गया था और जिन भगवान्‌के पदयुगलरूपी कमलोका भ्रमर ( भक्त ) था। और वहीपर लोगोके मनको आनंद देनेवाली वीताशोक नामकी

४ क<sup>१</sup>जिओ । ५ क<sup>२</sup>सगण । ६ क ड<sup>३</sup>जण । ७ क ख ग ड रयणुं, व<sup>४</sup>रयइ । ८ व<sup>५</sup>रयइ । ९ ग रज्जु । १० ख ग रणुं । ११ क ख ग ड<sup>६</sup>बल ।

[ ३ ] १. ड भय<sup>१</sup> । २. क ख ग ड तहिं, घ तहे । ३ क सायर<sup>२</sup> । ४ ख ग जे । ५. ख ग<sup>३</sup>जुयल<sup>३</sup> ।

	जहि <sup>६</sup> सूरकंति संभूयै <sup>७</sup> हवि	चावरइ महाणसि पयणछवि ।
	पिज्जइ सुसाउ सीयलु विमलु	मणिचंदकतिपञ्जरियजलु ।
	जहि <sup>८</sup> मरगयभित्तिप्र सामलिय	गोरंगी नाहें नउ कलिये ।
१०	जहि <sup>९</sup> इंदनीलमहि <sup>१०</sup> मणि <sup>११</sup> घरइ	चिरु छलित न दूव-वि मिगुत्तरइ ।
	तहि <sup>१२</sup> अत्थि अत्थिजणकप्पदुमु	पउमालंकरिउ महापउमु ।
	नवनिहिरयणाहिउ चक्कधरु	छक्खंडवसुंधरि धरियकरु ।
	वत्तीससहसमणिमउडधरा	सेवति नराहिवआणकरा <sup>१३</sup> ।
	छणवइसहसअतेउरहो <sup>१४</sup>	कडिहारदोरकुंडलधरहो ।
१५	वणमाल तिल्लु <sup>१५</sup> महएवि ठिय	सुहकंतिजित्तहरिणंकसिय ।
	चक्कवइविहूइह <sup>१६</sup> सव्वगुणु	ज नत्थि पुत्तु तं डहइ मणु ।

घत्ता—जिणहवणहि<sup>१७</sup> वंदिउसवणहि<sup>१८</sup> पुण्णपहावे<sup>१९</sup> सरगचुओ ।

वणमालहे<sup>२०</sup> नयणविसालहे<sup>२१</sup> भवएवामरु जाउ सुओ ॥३॥

नगरी थी, जहाँपर कि महानस ( रसोई ) में हविष (खाद्यसामग्री) को एकत्र करके सूर्यकात मणियोको पाकाग्नि के काममें लाया जाता था, अथवा जहाँ सूर्यकातमणिसे उत्पन्न अग्निसे महानसमें भोजन पकाया जाता था । जहाँ चद्रकातमणियोसे द्वारा हुआ सुस्वादु, शीतल और विमल-जल पिया जाता था, जहाँ मरकतमय भित्तियोकी कृष्णछाया पडनेसे, अपनी गौरागी प्रियाओको भी श्यामवर्ण हो जानेसे उनके स्वामी पहचान नहीं पाते थे, जहाँ इन्द्रनीलमणियोसे निर्मित व ( हरित ) मणियोसे जडी हुई भूमिसे कभी पहले ठगा हुआ मृग अब दूबको भी ( हरित मणि समझकर ) नहीं चरता, वहाँ याचकजनोके लिए कल्पद्रुमके समान, व ( राज्य ) लक्ष्मीसे अलंकृत महापद्म नामका राजा था । वह मंत्री आदि नौ निधियोका रत्नाकर तथा बटखंड वसुंधरासे कर लेनेवाला चक्रवर्ती था । मणिमय मुकुटोके धारक वत्तीस सहस्र आज्ञापालक राजा उसकी सेवा करते थे । कटिहार, कटिसूत्र एव ( कर्ण ) कुंडलोको धारण करनेवाली उसकी छयानवे हजार रानिया थी, जिनमें वनमाला महादेवी थी, जो अपनी मुखकान्तिसे हरिणाक ( चद्रमा ) की शोभाको जीतनेवाली थी । इस प्रकार चक्रवर्तीकी विभूतिके सभी गुण ( सर्व साधन ) उसके पास थे, एक पुत्र ही नहीं था, यह बात सदैव हृदयको दु खसे जलाती रहती थी । जिन भगवातृका न्हवन और श्रमणोकी वदनाके पुण्यप्रभावसे भवदेव देवताका जीव विशालनेत्रोवाली वनमालाका पुत्र हुआ ॥ ३ ॥

६. ख ग जहि । ७. ख ग उ । ८. ख ग मरगइ । ९. क घ ङ मणि । १०. क घ ङ महि । ११. क घ घरा, घ मरा । १२. घ छवइ । १३. ते । १४. क ट थहि । १५. घ इहवणहि । १६. घ पुत्तु । १७. क घ लहि, ख ग ङ लहि । १८. ङ लहि ।

[ ४ ]

दुवई—सुह्रनखत्तजो<sup>१</sup> तिहिवार<sup>२</sup> पुणि<sup>३</sup>मंडवयण<sup>४</sup> ।

वरवत्तीसदेहलखधर<sup>५</sup> कुवलयदीहनयण<sup>६</sup> ।

जन्मदिवसस्मि पुत्तस्स बहुपरियणो <sup>७</sup>	चक्रवट्टी-कयाणंदवद्वावणो ।	
नियवि पुत्ताणणं गहिरसरवाइणा	सिचकुमाराहिहाणं कयं राइणा ।	
वालुं वडहुं <sup>८</sup> सो कहि मि नउ सुच्चप	हत्थहत्थाउं रायाणं न पहुच्चप ।	५
अट्टवरिसो वि सिसुभावपरिचत्तओ	सचलविज्जाकलाथाणु संपत्तओ ।	
चक्किणा कोउहल्लेण संथाविओ	रायक्कणाणं सयपंचपरिणाविओ ।	
मंति <sup>९</sup> -सामंतकुमरेहि <sup>१०</sup> परिवारिओ	देहि आपसु जीव <sup>११</sup> त्ति जयकारिओ ।	
रायघरवाहिरं जेम नउ निज्जए	अंगरक्खाण कोउहिं <sup>१२</sup> गम्भिरज्जए ।	
हरिणनयणीहिं <sup>१३</sup> सरिसं सुहं माणए	जामिणी नेव <sup>१४</sup> दिवसं गयं जाणए ।	१०

यत्ता—ता एत्तह<sup>१५</sup> अच्छड जित्तह<sup>१६</sup> सायरचंदु विसुद्धगुणि ।

बिहरनउ दमदयवंतउ पत्तु पुंडरिगिणिहिं सुणि ॥४॥

[ ४ ]

शुभ नक्षत्र, योग, तिथि और वारको पूर्णचंद्रमाके समान मुखवाले, वत्तीस उत्तम अगलक्षणके धारक तथा कुवलयेके समान दीर्घ नेत्रवाले उस पुत्रके जन्मदिन पर बहुत-से परिजनाने चक्रवर्तीको आनंद-वधाई दी । पुत्रके मुखको देखकर गंभीर स्वरसे बोलनेवाले उस राजाने उसका नाम शिवकुमार रख दिया । बड़ा होता हुआ वह बालक कही भी ( पृथ्वीपर ) छोड़ा नहीं जाता था, तथा सब राजाओंके हाथोंसे हाथों तक भी नहीं पहुँच पाता था । आठ वर्षका होते-ही वह शिशुभावको छोड़कर सकल विद्याओं व कलाओंका धाम बन गया । चक्रवर्तीने कौतूहल पूर्वक उसे युवराज पदपर संस्थापित ( अभिषिक्त ) कर दिया और पांच सौ राजकन्याओं-के साथ परिणय करा दिया । वह, आदेश दीजिए, जीवंत होइए आदि वचनपूर्वक जयजयकार करनेवाले मंत्री व सामंतकुमारोंसे घिरा रहता था । जिसप्रकार उसे राजप्रासादसे बाहर न ले जाया जा सके, इसप्रकार अंगरक्षकोंकी बहुत बड़ी सेना द्वारा उसकी रक्षा की जाती थी । वह भृगनयनी रानियोंके साथ मुख भोगता था, और रात्रि व दिन कब गये यह नहीं जान पाता था । तबतक इधर जहाँ वह विगुद्धगुणोका धारक सागरचंद्र रहता था, वहाँ, उस पुंडरि-किणी नगरीमे इद्रियोंका दमन करनेवाले दयावान मुनि विहार करते हुए पधारे ॥ ४ ॥

[ ४ ] १. ख ग तिहिं । २. क पुण्णमं । ३. प्रतिगोमे णयणत्त । ४. क यणे । ५. क बाल । ६. क ड वट्टु । ७. क व ड हत्थाण । ८. क व ड रायाउ । ९. ख ग व ड कयाण । १०. ख मंत । ११. रेहि । १२. क जीवि । १३. ख ग उ; व ए । १४. ख ग णेहि । १५. क ड पेव, ख ग गेय । १६. क ठावित्तहि; व ठावित्तहि । १७. क व ड हि ।

[ ५ ]

दुवई—मई—सुइ—अवहि—विमलमणपञ्जयनार्णवचक्रसामिउ ।

नाम सुवंधुतिलउ<sup>५</sup> उववणे ठिउ चारणरिद्धिगामिउ ॥ १ ॥

- रिसिचलणवंदणुच्छाहमणु<sup>१</sup> चह्लंतु नियच्छवि<sup>२</sup> पत्तरयणु ।  
 गउ सायरचंदु कुमार वहि<sup>३</sup> उज्जाणे परममुणि थकु जहिं ।  
 ५ भत्तिप्र पणवेवि परंपरए<sup>४</sup> आउच्छइ निय जम्मंतरए ।  
 मुणि भणइ भरहे सुविसुद्धमणा<sup>५</sup> दियनंदण तुम्हई<sup>६</sup> वे वि<sup>७</sup> जणा ।  
 भवयत्तु जेहु तुहु<sup>८</sup> पवरमुओ लहुवारउ तहिं भवएउ हुओ ।  
 तवचरणु<sup>९</sup> करिवि आउसि खइए<sup>१०</sup> उप्पण मरेवि सगे तइए ।  
 तहिं चयवि जाउ सम्भत्तधरु तुहुं वज्जयंतसुउ निवकुमर ।  
 १० तुहु<sup>११</sup> अणुउ आसि जो सो वि तुहु<sup>१२</sup> चक्कइमहापउमंगरुहु ।  
 अहिहारेणं सिवकुमार अभउ इय कहिउ भवंतर<sup>१३</sup> सिगघु तउ ।

वत्ता—आयणिणवि<sup>१४</sup> भवगइ मणिणवि<sup>१५</sup> विज्जुलचल आसंक्रियउ ।नयजुत्तहिं सहुं<sup>१६</sup> राउत्तहिं उयहिचंदु<sup>१७</sup> दिक्खंक्रियउ ॥५॥

[ ५ ]

मति, श्रुत, अवधि और विमल-मनःपर्यय इन चार ज्ञानोंके स्वामी सुवंधुतिलक नामके चारणश्रद्धिधारी मुनि उपवनमें ठहरे । श्रद्धिचरणोंकी वंदनाका उत्साह मनमें लिये हुए पौरजनोको बलते हुए देखकर कुमार सागरचंद्र भी वहाँ गया जहाँ उद्यानमें वे परममुनि ठहरे थे । परंपरानुसार भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने जन्मान्तरोको पूछा । मुनिने कहा—तुम दोनों भारतखंडमें पवित्र मनवाले ब्राह्मणपुत्र थे । तू जेठा भाई भवदत्त था और तेरा छोटा भाई उत्तम भुजाओंवाला भवदेव था । तपश्चरण करके आयुष्य क्षय होनेपर मरकर तीसरे स्वर्गमें उत्पन्न हुए । वहीसे च्युत होकर तुम वज्रदंतके पुत्र, सम्यक्त्वधारी राजकुमार हुए हो, और वह जो तुम्हारा अनुज था, वह महात्मा महापद्म-चक्रवर्तीका शिवकुमार नामका ज्ञानवान् पुत्र हुआ है । इस प्रकार सखेपमे तुम्हारा भवांतर कह दिया गया । यह सुनकर व भवगति अर्थात् भवस्थितिको विद्युत्के समान चंचल मानकर जन्म-मरणसे भयभीत वह सागरचंद्र नीति-सदाचार युक्त राजपुत्रोंके साथ दीक्षित हो गया ॥ ५ ॥

[ ५ ] १ क ड मई । २ प्रतिगोमें णाणं । ३ क ड सामिउं । ४ क ड सुवंधं, घ सुवंधतिलय । ५ क घ ड रिसिचरणं । ६ क घ ड क्खिवि । ७ क ड पमणइ, घ मणइ । ८ क ड विसुद्धिं । ९ क ख ग छ इं । १० ख ग वेण्णे । ११ घ तुहुं । १२ क णं । १३ ख ग आउसे खइ । १४ ग तुहुं । १५ क ख ग तहु, ड बुहो । १६ क घ ड कहत्तर । १७ घ विवि । १८ ख ग सहु । १९ क घ ड उवहिं ।

[ ६ ]

दुवई—तवसिरिभूसियंगु गुणपरिमिउं रायपमायताडणो ।

खमदमसीलनियसवयविग्गहु ईन्द्रियदप्पमाडणो ॥१॥

वारहविहु तवचरणुं चरंतहो

उवरि उवरि गुणथाणु सरंतहो ।

सायरचंदु मुणिहिं संपुणउं

चारणाइरिद्धिउं उप्पणउं ।

अह कयावि सासयसुहरत्तउ

वीयसोयनयरिहिं संपत्तउ । ५

मज्झणहो चरियाप्र पईसइ

विभियचित्तिहिं लोयहिं दीसइ ।

पणि व मुणिवरवेसकयायरु

अवस तवइ तउ वालादवायरु ।

अण्हो कहो पयाउ इह निम्मलु

देहदित्तीपिगीकयनहयलु ।

राउलनियडघरेण वणीसे

ठाहु भणतें पणवियसीसे ।

विहिणा पारावियउ दिथयरु

पूरइ रयणविट्ठि सिट्ठिहिं घरु । १०

तं अच्छरिउ नियचि सुविहोयहिं

उट्ठिउ कोलाहलु किउ लोयहिं

तं कलयलु सुणतुं मणि भिण्णउं

सिक्कमारु धवलहरि चट्ठिणउं ।

तो अण्णेक्के वइयरु सीसइ

सेट्ठिघराउ जंतुं मुणि दीसइ ।

घत्ता—उहुं मुणिवरु मइ<sup>१</sup> दिट्ठउ चिरु इउं<sup>२</sup> कुमरु<sup>३</sup> विभव धरिउ ।मुणिदंसणि दुक्खिभंसणि<sup>४</sup> नियजम्मंतुरु संभरिउ<sup>५</sup> ॥६॥ १५

[ ६ ]

तपःश्रीसे भूपित अंग, गुणोसे वेष्टित, राग व ( पंद्रह प्रकारके ) प्रमादका नाश करनेवाले, क्षम-दमशील, नियम और व्रतोंरूपी गरीरवाले, तथा इंद्रियोंके दर्पको गलित करनेवाले उन सागरचंद्र मुनिको वारह प्रकारका तपञ्चरण करते हुए, तथा ऊपर-ऊपरके गुणस्थानोंका अनुसरण (आरोहण) करते हुए चारण ( ऋद्धि ) आवि सभी ऋद्धियां उत्पन्न हो गयीं । पश्चात् किसी समय स्वाश्रय सुख ( अर्थात् आत्म-सुख ) में लीन रहते हुए वीताशोक नगरीमें पधारे । मध्याह्नमें उगहोने चयाने लिए नगरमें प्रवेश किया, और विस्मितचित्त लोगोंने उन्हें ऐसे देखा मानो पहलेसे ही मुनिके उत्तम वेशके प्रति आदरयुक्त होकर वालदिवार कर ही तप करता हो ; ( अन्यथा ) अन्य किसका ऐसा निर्मल प्रताप हो सकता है, जिसने अपनी दोस्तिसे नभस्तलको पिगलवर्ण कर दिया हो ? राजकुलके निकट ही एक घरसे एक वणिक्पतिने शिरसा प्रणाम करके, ठहरिए ! ऐसा निवेदन करते हुए, विधिपूर्वक उन दिगंबर-को पारणा करायी । इस आहारदान ( के प्रभाव ) से रत्नोंकी वपनि श्रेष्ठीके घरको पूर दिया । उस आश्चर्यको देखकर वैभवसंपन्न लोगोंके द्वारा किया हुआ बड़ा भारी कोलाहल उठा । उस कलकलको सुनकर, मनमें आश्चर्यचकित होकर गिवकुमार अपने प्रासादपर चढ़ गया । तब किसी एकने ( राजकुमार से ) वृत्तांत कहा, और श्रेष्ठीके घरसे मुनि जाते हुए दिखाई दिये । 'इन मुनिवरको मैंने चिरकाल पूर्व देखा है', इसप्रकार कुमार मनमें

[ ६ ] १ क ख चरण । २. क व ड णउं । ३. क ड चारणाइ । ४. क ड णउं । ५. व रिहि । ६. ख ग ण्हो ; व धहो । ७. ग चित्तिहि । ८. क ड अण्हि ; व अण्हि । ९. प्रतियोगे 'कहि' । १०. ख इ । ११. क व हि, ख ग सेट्ठिहि । १२. ख ग सु । १३. व न्नउ । १४. व अन्निके । १५. क ड १६. व इंतु । १७. क व ड इह । १८. ख विरु, व विरु । १९. ख ग मइ । २०. क ड एम, व इमु । २१. क ड रि । २२. प्रतियोगे 'फंसणि' । २३. व रिउं ।



[ ७ ]

दुवई—आयहो लहुउ आसि हई<sup>१</sup> वंधउ पहु महंतु थाविच ।एण वि हुंतएण सुपसाए<sup>२</sup> मई सम्मत्तु पाविच ॥१॥

तउ करिवि सुरालई वे वि हुया

सुमरंतु भवंतरु<sup>३</sup> मुच्छगओधाहाविउ बालेतउरिहिं<sup>४</sup>

रोवंति मंति-सामंतसुया

चमराणिल-चंदणसिचियउ<sup>५</sup>

जम्भंतरसुमरण कहिउ तहो

निविण्णु<sup>६</sup> मित्तु हउ इह भवहोचक्रेसरु महु वयणे<sup>७</sup> भणहिं<sup>८</sup>गउ रायत्थाणे<sup>९</sup> पइसरेवि<sup>१०</sup>तउ तणउ<sup>११</sup> देव पइ<sup>१२</sup> विण्णवइ<sup>१३</sup>

ईदियफडालु चउगइवयणु

रइदाहु<sup>१४</sup> विसयजीहातरलुपणु एत्थ<sup>१५</sup> जाय फुडु तत्थ चुया ।

हा हा रउ चट्ठिउ गरुउ तओ ।

भत्तारदुक्खसोयाउरिहिं<sup>१६</sup> ।हियउल्लउ फुट्टिवि<sup>१७</sup> कि न सुया ।कह-कह व दुक्खउम्मुच्छियउ<sup>१८</sup> ।

दिट्ठधम्महो मंतिणुम्भवहो ।

संदरसिय<sup>१९</sup>-जरमरणुम्भवहो ।तउ लंतहो महु म विग्घु करहिं<sup>२०</sup> ।पहु पणविचि जंपइ वइसरेवि<sup>२१</sup> ।

भवकालसणु जगु परिहवइ ।

मिच्छत्तमोहविसरिसनयणु ।

उमरियसुहासुहफलगरलु ।

विस्मित हुआ, तथा मुनिदर्शनके कारण (पूर्वकृत) अशुभकर्मके क्षय होनेसे उसने अपने जन्मान्तर (अर्थात् पूर्वजन्म) को स्मरण किया ॥६॥

[ ७ ]

मैं इसका छोटा भाई था, यह मेरा बड़ा । इसीके होनेवाले सुप्रसादसे मैंने सम्यक्त्व पाया था । तप करके हम दोनों स्वर्गमें देव हुए, फिर वहांसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुए, इसप्रकार भवांतरको स्मरण करते ही वह मूर्च्छित हो गया । तब बड़ा भारी हाहाकार मचा । पतिके दुःखसे शोकातुर होकर कुमारका अन्तःपुर घाड़ देने लगा । मंत्रियो व सामंतोकी पुत्रियाँ इस प्रकार रोने लगी—हाय ! हम लोग हृदय फटकर मर क्यों नहीं गयी, चंवरकी वायु और चंदनसे सीचनेपर वह किसी किसी तरह कष्टपूर्वक उन्मूर्छित हुआ । उसने मंत्रीपुत्र दुट्ठधर्मको अपना जन्मान्तर स्मरण होना बतलाया (और कहा)—‘हे मित्र ! मैं जरा-मरण युक्त इस संसारसे उदासीन हो गया हूँ, चक्रेश्वरकी मेरे वचनसे कहना कि तप लेनेसे मुझे विघ्न न करे ।’ वह गया, राजसभामें प्रविष्ट होकर प्रभुको प्रणाम करके बैठा, और कहने लगा—हे देव ! आपका पुत्र आपसे विज्ञापना करता है कि यह भव (अर्थात् पुनः पुनः जन्ममरण) रूपी काला सांप सारे लोकको पराभूत करता है; जो कि ईद्रियोरूपी फणा, चतुर्गतिरूपी मुख, मिथ्यात्व-मोहरूपी विसदृशनेत्र, रतिरूपी दाढ़, तथा विषयभोगरूपी चंचल जिह्वासे युक्त है, और शुभाशुभ कर्मफलरूपी गरलसे भरा हुआ है । उसका क्षय करनेवाला तपरूपी मंत्राक्षर (मंत्र) जिन भगवान्‌रूपी गरुड-

[ ७ ] १. ख ग ड हउ । २. क घ ङ सप । ३. ख ग लय । ४. क एत्थु । ५. क सम । ६. क व ङ तर । ७. उरेण; ख ग चरेहिं । ८. व फुल्लिवि । ९. क ड किण्ण, ख ग घ किन्न । १०. क यउ । ११. ख ओमुं । १२. प्रतियोमं पिण्णिं । १३. क ङ हउ । १४. ड घ ङ संदरिं । १५. क ग णे । १६. क ङ ही । १७. क घ ङ जणही । १८. व ड त्याणु । १९. क घ ड पई । २०. क घ ड सरवी । २१. क घ ङ उं । २२. क ख ग पइ । २३. व विण्णं । २४. ख ग विसई ।

वत्ता—तहो खयकर तबसंतकर खर जिणवरगरुडसमुद्धरिउ ।

१५

मई लेवउ अणुचेढेवउ वारहचिहु बहुगुणमरिउ ॥७॥

[ ८ ]

दुवई—तं<sup>१</sup> तवगहणसद्धु<sup>२</sup> आयणवि<sup>३</sup> पुत्तहो पुत्तवच्छलो ।

विहडफडु नरिदु गउ तित्तिहिं<sup>४</sup> वडिदय<sup>५</sup>दुहमहानलो<sup>६</sup> ॥१॥

रसणखलंतु कणिरपयनेउरु

चणमालालंकिउ अंतेवरु ।

सेयजलोह्लिय नयणार्णदिरु

पत्तु तुरंतु कुमारहो मंदिरु ।

आहासइ चक्रेसर तणुरुहं

कवणु कालु पावज्जहं<sup>७</sup> किर तुहं<sup>८</sup> ।

५

अखयनिहाणं<sup>९</sup> रयणरिद्धिहि

रायलच्छि<sup>१०</sup> तुहं<sup>११</sup> मुंजहिं<sup>१२</sup> भल्लि ।

भणइ कुमार ताय जइ<sup>१३</sup> सुंदर

ता कहिं<sup>१४</sup> चक्रवट्टि<sup>१५</sup> हरि-हलहर ।

सयलकाल-नव-नव-वरइत्ति

वसुमइ<sup>१६</sup> वेस व केण न भुत्ति ।

तो मुंजमि जइ आउ न तुट्टइ<sup>१७</sup>

दुत्तरवाहितरंगिणि खुट्टइ<sup>१८</sup> ।

तो मुंजमि जइ<sup>१९</sup> जर नउ<sup>२०</sup> वंकइ

कालभुयंगदाढं<sup>२१</sup> नउ डंकइ ।

अह कल्लइ<sup>२२</sup> विणासु जइ रज्जहो

तो वरि अज्ज जामि<sup>२३</sup> नियकज्जहो ।

१०

ने उद्धृत किया है। वह मेरे द्वारा लेने और पालन करने योग्य है। वह (तप) बारह प्रकारका है और बहुत गुणोंसे भरा है ॥७॥

[ ८ ]

पुत्रके तपग्रहणकी बात सुनकर वह पुत्रवत्सल राजा वही विह्वल हो गया और उसे दुःखकी महाज्वाला बढ़ गयी। करघनीको स्थलित करती हुई, पगनूपुरोंसे रणरण करती हुई, और स्वेदजलसे आर्द्र रानियाँ (कुमारकी माताएँ) वनमालासे अलंकृत होकर अर्थात् वनमाला देवीको आगे करके तुरंत कुमारके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले आवासमें पहुँची। चक्रेश्वरने कहा—बेटा ! तेरा यह प्रव्रज्या लेनेका अभी कौन-सा काल है ? तू अक्षय घन तथा रत्नश्रद्धिसे युक्त इस भली (अर्थात् सुंदर व सुखदायक) राज्यलक्ष्मीको भोग। तब कुमार कहने लगा—हे तात ! यदि यह सुंदर है तो फिर (इसे भोगनेवाले) चक्रवर्ती, वासुदेव और बलराम आज कहाँ हैं ? सदा नये नये वरोंको वरण करनेवाली यह वसुमती वेश्याके समान किस-किसके द्वारा नहीं भोगी गयी। मैं तब इसे भोगूँ यदि (कभी) आयु न टूटे, और यह दुस्तर व्याधि-तरंगिणी खंडित हो जाये, (अथवा) मैं तब इसका भोग करूँगा यदि जरा शरीर को क्षीण न करे और काल-भुजंगकी दाढ़ इसे कभी डसे नहीं। परंतु यदि कल राज्यका विनाश होना हो, तो मैं आज ही अपने (मोक्ष साधनके) कार्यके लिए

[ ८ ] १. घ भव<sup>१</sup> । २. ख ग गहणु<sup>२</sup> । ३. क ल णिवि; घ जेवि । ४. ख ग हो । ५. क ख ड वट्टिय । ६. क ड णलो । ७. क ड तणुरुह, ख ग तणुरुह । ८. क पवज्जहि; ग पवज्जहे, घ पावज्जहि, ङ पवज्जहि । ९. ख ग तुहु । १०. ख ग णु । ११. क घ ड रिवि । १२. ख ग तुहु । १३. क हिं । १४. ख ग जय । १५. ख ग कहि । १६. मई । १७. क इं । १८. क ल जरउ ण । १९. क ड डाढ । २०. घ इं । २१. क घ ड जामि ।

घत्ता—अजरामर<sup>२२</sup> सासयपुरवरे<sup>२३</sup> ताय करि<sup>२४</sup> नवउ<sup>२५</sup> मइ<sup>२६</sup> निलउ<sup>२७</sup> ।  
चयणिज्जहि<sup>२८</sup> करमि<sup>२९</sup> अविलज्जि<sup>३०</sup> अविलवेण<sup>३१</sup> वि तह<sup>३२</sup> विलउ ॥८॥

[ ६ ]

दुवई—निच्छउ मुणेवि भणई चक्रेसर<sup>३३</sup> हियवउ मज्झु डब्बाए ।  
निग्गहुं इंदियाण तउ तं<sup>३४</sup> किर<sup>३५</sup> सुय निलए वि सिज्जए ॥९॥

जई रायदोस नै वसंति मणे तउ लेवि करेवउ काई<sup>३६</sup> वणे ।  
अह रइउ कसायहि<sup>३७</sup> हियउ<sup>३८</sup> जहि तवचरणुं<sup>३९</sup> सज्झु किर काई तहि ।  
५ तो वरि अउभत्थण महु करहि घरि<sup>४०</sup> संठिउ नियमवयई<sup>४१</sup> धरहि ।  
पडिबज्जिउ कुमरे पिउ<sup>४२</sup> वयणु गउ निय-निय-निलयहो सव्बु<sup>४३</sup> जणु ।  
तदिवसहो लग्गेवि रायसुओ घरसंठिओ वि घरकज्जुओ ।  
मणवयणकायकयसंवरणु<sup>४४</sup> नवविहवरवंमचेरधरणु ।  
पासट्ठिओ<sup>४५</sup> वि तरुणीनियरु मणणइ<sup>४६</sup> वहिपुंजिउ न्व कयरु ।  
१० विट्ठधम्म<sup>४७</sup> संतिमुउ आढविउ आहारु आरणालरघविउ<sup>४८</sup> ।  
नउ कारिउ न किउ न इच्छियउ सावयघरभिकख<sup>४९</sup>-पडिच्छियउ ।

जाता हूँ । हे तात ! मुझे अजर अमर व शाश्वत और श्रेष्ठ, ऐसे मोक्षनगर में निवास बनाना है, और मैं त्यजनीय अविद्यारूपी ( भ्रान्त, असत्य एवं अशाश्वत ) राजलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करूँगा ॥ ८ ॥

[ ६ ]

( पुत्रके ) निश्चयको जानकर चक्रेश्वरने कहा—पुत्र ( दुःखसे ) मेरा हृदय जल रहा है, तथापि मुझे यह कहना है कि इन्द्रियोंका निग्रह ही तप है और वह घरमें भी सिद्ध हो सकता है । यदि मनमें राग-द्वेष निवास नहीं करते तो तप लेकर वनमें ही क्या करोगे ? और यदि हृदय काम-क्रोधादि कषायोंसे रचित है, तो फिर वहाँ तपस्वरण कैसे साधा जा सकेगा ? तो इसलिए मेरी यह अभ्यर्थना मानो कि घरमें रहते हुए ही नियम और ब्रतोंको धारण करो । कुमारने पिताके वचन स्वीकार किये और सब लोग अपने-अपने निवासको चले गये । उस दिनसे लगाकर वह राजपुत्र घरमें रहता हुआ भी घरके कार्योंसे अलग रहने लगा । उसने मन-वचन-कायका सवरण कर लिया और नवविष ब्रह्मचर्य धारण कर लिया । पासमें स्थित तरुणी-समूहको वह रूप बनाये हुए व्याधिपुंजके समान मानने लगा । उसने मन्त्रीपुत्र दृढधर्मसे सम्मान-पूर्वक कहा कि मुझे काजीका ही आहार दिया जाये । न ( तैयार ) कराया हुआ, न स्वयं किया हुआ, न अपनी इच्छा ( अनुमोदन ) से वनवाया हुआ, ऐसा श्रावकोके घरसे भिक्षामें

२२ स ग करेवउ । २३ क स ग घ मइ । २४ क ड ञ । २५ क वयणिज्जहि, घ वयणिज्जहि, ट चयणिज्जहि । २६ क घ ड ञज्जहि । २७. प्रतियोगे अव । २८. क ट तहि; घ तहि ।

[ ९ ] १ क घ ड ञ । २ क ह । ३ क ड कि किर । ४. ग ग जय । ५. क ट निवमति । ६ क वउ । ७. क ड काइ । ८ स ग यहि । ९ क ञ । १० क घ ट षरणुं । ११. क घ ट षर । १२ स ग ञ । १३ क घ ट पिष । १४ क मव । १५ स ग काइकयमय । १६ क ट ट्टिउ । १७ क ट ञ, घ मन्नइ । १८. क ड धम्म । १९. ग ग जारनाल । २० क ट धरि, घ षर ।

एकंतरि<sup>२१</sup> छट्टम<sup>२२</sup> दिने  
जं एम कुमारं तहो कहिउ  
आणहि<sup>२३</sup> परवरहो भिखभमइ<sup>२४</sup>  
तहो तिवमहावयपहरणहो  
पहरण<sup>२५</sup> ठिउ लोहु गंडहु<sup>२६</sup> मउ<sup>२७</sup>  
भोउ वि विलगु मरुभोयणहि<sup>२८</sup>  
आणहि<sup>२९</sup> महु पारणकलु<sup>३०</sup> मुणि ।  
सुविसुद्धमत्तु<sup>३१</sup> कंजियसहिउ ।  
निबनंदणु पाणिपत्ते जिमइ ।  
नासंति विसय उवसममणहो ।  
राउ वि दिण संज्झहे<sup>३२</sup> सरणु<sup>३३</sup> गउ ।  
अंजणु सीमंतिणि लोयणहि<sup>३४</sup> ।

वत्ता—चयनिम्मलु अज्जियतवफु वरिससहसचउसहि थिउ ।

जिणे<sup>३५</sup> दिट्ठउ आगमे<sup>३६</sup> सिट्ठउ<sup>३७</sup> आउसंतं सण्णासु<sup>३८</sup> किउ ॥९॥

[ १० ]

दुवई—एरिसतवफलेण वंभोत्तरे<sup>३९</sup> तणुक्रियसुरहिवाउ सो ।

एहु<sup>४०</sup> सो विज्जुमालि<sup>४१</sup> हुउ सुवररु दससावरयिराउसो ॥१॥

आएं विणयगुणेहि असुक्कं

सुहु<sup>४२</sup> मुंडइ<sup>४३</sup> सहु<sup>४४</sup> देविचउक्कं ।

एत्तई सायरचंडु समाहिउ

हुउ मरेवि सुरु तहि जि<sup>४५</sup> अवाहिउ ।

स्वीकृत आहार मेरी पारणाके लिए छट्टे-आठवे दिन एकान्तरसे ला देना, ऐसा जान लो । जब कुमारने उसको ऐसा कहा तो वह दूसरे-दूसरे धरोसे भिक्षा-भ्रमण करके काजी सहित विशुद्ध भात उसे लाकर देने लगा और राजकुमार उसे अपने करपात्रमे ही जीमने लगा । महाव्रतों-रूपी तीव्र शस्त्रको धारण करनेवाले उस उपशात-मन राजकुमारके विषय ( विषय वासना ) नष्ट हो गये, प्रहार पड़नेसे लोभरूपी गर्जेंद्र मारा गया, और राग भी दिनके समान ( सान्ध्य-वर्णिमाके रूपमें ) सन्ध्याकी क्षरणमे चला गया अर्थात् अस्तंगत हो गया । उसका भोग ( भोगाभिलाष ) महत् भोजी सर्पोंमें भोग अर्थात् फणाटोपके रूपमे जा लगा, और अंजन अर्थात् पापरूपी कलमप सोमन्तिनियोके नेत्रोंमे ( काजलके रूपमें ) लग गया । तपका फल अर्जन करके वह चौसठ हजार वर्षों तक जीवित रहा और आयुष्यके अन्तमें जिन भगवान्‌के द्वारा उपदिष्ट एवं आगममे निर्दिष्ट संन्यासमरण किया ॥ ९ ॥

[ १० ]

ऐसा वह ( शिवकुमार ) तपके फलसे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अपने शरीरकी गंधसे वायुको सुगन्धित करनेवाला, दस सागरकी स्थिर आयुवाला विद्युन्माली नामका श्रेष्ठ देव हुआ है । यह कभी भी विनयगुणको न छोड़नेवाली चार देवियोंके साथ सुख भोगता है । इधर सागरचद्र मुनि भी निर्बाध ( अखंड ) समाधिपूर्वक मरकर उसी स्वर्गमे देव हुआ है । वह इंद्रके समान

२१. ग एकं । २२. क ष डं हि । २३. ख ग कज्ज । २४. क ड सुविसुद्ध । २५. क ष डं इ ।  
२६. क संमई, ख गं भमइ । २७. ख गं ई । २८. क ड रण । २९. प्रतिभोमें गइहि । ३०. क मउ ।  
३१. ख ग सज्झहे, क ष डं उज्झहि । ३२. ख गं ण । ३३. क ष डं णिहि; ख गं णहि । ३४. ख ग सीमंतणे, क डं लोयणहि । ३५. क ष डं जिण । ३६. क ड आयमि । ३७. उ । ३८. व सण्णासु ।  
[१०] १ क ष डं वणुकणं । २. क ष डं इहु । ३. ख ग विज्जं । ४. व सुहु । ५. ख ग ईं ।  
६. ख ग सुहु । ७. ख ग जे ।

- ५ इदं समाणु पडिहु पसंसिउ  
इय तव फलु महंतु इय तणुपह  
एवहि<sup>१</sup> सत्तमदियह<sup>२</sup> चएप्पिणु  
तउ लेसइ विज्जा-चलथामे<sup>३</sup>  
तहिं अवसरि पणवि वि निम्माए<sup>४</sup>  
१० देविचउकहो<sup>५</sup> विहियतवंतरु  
भणइ<sup>६</sup> जिणहु<sup>७</sup> मरहं जणकिण्णी<sup>८</sup>  
इवभसेहि तहिं वसइ सुचित्तउ<sup>९</sup>  
तहो जयभद-सुभदविसत्थी  
करइ विलासु सुरेहिं नमंसिउ ।  
अक्खिय विज्जुमालिं देवहो कह ।  
चरमसरीर मणुउ होएप्पिणु<sup>१०</sup> ।  
सहुं चोरेण<sup>११</sup> विज्जुवरनामे<sup>१२</sup> ।  
वड्डमाणु जिणु पुच्छिउ राएं ।  
कहहि भडारा पुण्वमवंतरु ।  
चंपानयरि अत्थि वित्थिण्णी<sup>१३</sup> ।  
नामे सुरेण धणइत्तउ ।  
धारिणि-जसमइ कंत-चउत्थी ।  
वत्ता—सुहन्तखउ तिकखकडक्खउ सज्जियउच्छु धणुद्धरहो ।  
१५ विषेवण भुअणु जिणेवण<sup>१४</sup> मल्लिचउक्कउ रइवरहो ॥१०॥

[ ११ ]

दुवई—तेहिं समाणु सुक्खु भुंजंतउ सेट्ठि सकम्मभाविणं ।  
वाहिसएहिं<sup>१</sup> छल्लु हुउ निप्पहु अज्जियपुण्वपाविणं ॥१॥  
तहो जाउ जलोयरु कासु सासु खयरोउ भयंदरु जणियत्तासु ।

प्रशंसित प्रतीति हुआ है और देवताओं से नमस्कृत होता हुआ वहाँ विलास करता है। यह तपका महत् फल और इस प्रकार क्षारीर-काति संबंधी विद्युन्माली देवकी कथा कह दी गयी। अब यहाँ से सातवें दिन च्युत होकर, अन्तिमक्षारीरी मनुष्य होकर यह विद्या एव बलके नाम विद्युत्चर नामक चोरके साथ तप लेगा। उस अवसरपर प्रणाम करके (व्यवहार) निपुण श्रेणिक राजाने वर्द्धमान जिनसे पूछा—‘हे भट्टारक! इन चारो देवियोंका विशेष तपानुष्ठानयुक्त पूर्व-भव कहिए।’ (तब) जिनेंद्र कहने लगे—भारतदेशमें जनसकुल और विस्तीर्ण चंपा नामकी नगरी थी। वहाँ एक बहुत धनवान समृद्ध व स्वच्छ चित्तवाला सूर्यसेन नामका श्रेष्ठी रहता था। उसकी जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी व चौथी यशोमतो नामकी विश्वस्त पत्नियाँ थी। वे बहुत सुंदर नखोंवाली तथा कामदेवरूपी धनुर्दरके पैने किये हुए बाणके समान तीक्ष्ण कटाक्षों-वाली थी, जो मानो उस रतिपत्तिकी सारे भुवनको बीचकरे जीतनेवाली चार बरछियाँ ही थी ॥ १० ॥

[ ११ ]

उनके साथ सुख भोगता हुआ श्रेष्ठी अपने कर्मोंके वैसे भाव अर्थात् वैसे कुछ परिणतिते पूर्वोपाजित पापके कारण सैकड़ों व्याधियोंसे ग्रस्त होकर कातिहीन और अदर्शनीय हो गया। उसके जलोदर, काश, स्वास और त्रासोत्पादक क्षयरोग व भगदर हो गया। अस्थिवात उसके

८. ख ग विज्जं । ९. क घ ड णिं । १०. क घ णिं । ११. ख ग विणु । १२. ख ग वल्लु । १३. क ड चोरे । १४. क ड विज्जुवरं १५. क देव । १६. क घ ड णिं । १७. क घ ड जिणहु । १८. क जिणं ; घ किंत्थी । १९. घ णिं । २०. क ड सवि, व सवि । २१. क वड्ड; घ ट वड्ड ।

[११] १. क ड सुक्ख । २. क वाहिं ।

तणु मोडइ फोडइ अट्टिवाच  
 नियकंतह<sup>३</sup> कंति नियंतु रुहु  
 निवसु वि तं नस्थि न<sup>४</sup> जित्थु पाव  
 खरफरुसवयणु<sup>५</sup> वोल्छइ सकूर  
 घर पंगणु<sup>६</sup> कोइ<sup>७</sup> निणहु पासु  
 जइ जाइ कह व वाहिरे स खुदुदु  
 दिहु देविणु रक्खणु<sup>८</sup> विदुपरिसु  
 नियवाहिण्हाणु<sup>९</sup> पुच्छइ सकोहु  
 दोल्लंतं परोप्परु दुक्खियाउ  
 जे<sup>१०</sup> नियहु जंत-आवंतयाइ<sup>११</sup>

विसरिसमणु हुउ विवरीयधाउ ।  
 अणुदिणु ईसालुउ जाउ सुहु ।  
 अच्छइ अ दिंतु गुरुलट्टिवाउ ।  
 परपुरिसचंदु<sup>१२</sup> जइ अह व<sup>१३</sup> सूर ।  
 तो तुम्ह सहुदुव<sup>१४</sup> लुणमि नासु ।  
 उवरण<sup>१५</sup> छुहेवि<sup>१६</sup> तालउ समुदु ।  
 आइउ<sup>१७</sup> पेक्खंतु विमुहसरिसु ।  
 किं कोवि न आयउ<sup>१८</sup> जारु गेहु ।  
 न मरइ हयासु इहु<sup>१९</sup> दुट्टभाउ ।  
 पिय<sup>२०</sup> मायवंपुसयणिज्जयाइ<sup>२१</sup> ।

५

१०

१५

धत्ता—इय संतप्रे काले वहंतप पसियदइयह<sup>२२</sup> देंतु भउ ।

रइथावणु मिहुणसुहावणु भासु वसंतु<sup>२३</sup> पहुत्तु तव<sup>२४</sup> ॥११॥

शरीरको मोड़ने व फोड़ने लगा । उसका मन विसदृग अर्थात् प्रतिकूल हो गया और समस्त बात-पितादि धातुएँ विकृत हो गयी । अपनी पत्नियोंकी कांति देखकर वह रुष्ट होने लगा और प्रतिदिन अधिकाधिक ईर्ष्यालु होता गया । 'ऐसा कोई निवास नहीं है जहाँ पाप न हो, (ऐसा सोचते हुए) वह उनपर लाठीसे भारी आघात करता हुआ रहने लगा । वह बड़ी क्रूरतासे तीखे और कठोर वचन बोलने लगा (कि), परपुरुष चाहे वह चंद्र हो अथवा सूर्य, यदि वह घरके प्रागणमें, या दीवारके पास (कहीं भी) तुम लोगोके साथ देख लिया तो तुम लोगोका ओष्ठसहित नाक काट लूँगा । वह क्षुद्र यदि किसी कारणसे बाहर जाता था, तो उन लोगोको मुद्रांकित तालेमें बंद करके निवृत्त होता । उसने एक वृद्ध पुरुषको उनका कड़ा रक्षक नियुक्त कर दिया । (इस पर भी) जब भी वह लौटकर आता तो इस प्रकार देखता हुआ कि भानो तालोंकी मुद्रा तोड़ दी गयी हो, तथा अपनी शपथ देकर क्रोधपूर्वक पूछता—क्या कोई छार तो घरमें नहीं आया ? वे दुःखित होकर परस्परमें कहती—यह दुष्टभावोंवाला हताश (दुर्जन) मरता भी क्यों नहीं, जो आने जानेवाले पितृ व मातृबन्धुओं (चाचा व मामा) को भी शयनीयोके रूपमें देखता है अर्थात् इन पितृजनोके साथ भी हम लोगोके द्वारा संभोग किये जानेकी नीच शंका करता है । इस प्रकार रहते हुए, व काल व्यतीत होते हुए प्रोपित-पतिकाओंको भय देता हुआ, रतिको स्थापित करनेवाला (अर्थात् रतिभावको बढ़ानेवाला) व मिथुनोके लिए सुखकर वसंत मास आ गया ॥ ११ ॥

३. क तिथि । ४. प्रतियोगे 'ण' । ५. क छर । ६. क छ उ 'पुरिसु' । ७. प्रतियोगे 'कहव' । ८. क छ उ घरपणि । ९. ख ग कोहु । १०. क छ उ सउ । ११. क छ उ उवरइ । १२. उ छुहेवि । १३. क छ उ । १४. क छ उ आयउ । १५. क छ उ हिहाणु । १६. क छ उ जारु गेहु । १७. क छ उ इह । १८. क जे । १९. क छ उ पिउ । २०. ख ग ध पवसिय । २१. क छ उ पहुत्तु ।

[ १२ ]

दुषई—दहसुहहरियसीयचिरहाउररामालोइयंतओ ।

मारुयचुबियासु हणुवतु व बिलसइ नववसंतओ ॥१॥ -

दिणि दिणि रयणिमाणु जिह<sup>२</sup> खिज्जइ दूरपियाण निह<sup>३</sup> तिह<sup>३</sup> खिज्जइ ।  
 दिवि दिवि दिवसपहरु जिह<sup>३</sup> वड्डइ कामुयाण तिह<sup>३</sup> रइरसु वड्डइ ।  
 दिवि दिवि जिह<sup>३</sup> चूयल मचरिज्जइ माणिणिमाणहो तिह<sup>३</sup> मच रिज्जइ<sup>३</sup> ।  
 कलकोइलकलयलु जिह<sup>३</sup> सुम्मइ<sup>३</sup> तिह<sup>३</sup> पंथिय करंति घरे सुम्मइ<sup>३</sup> ।  
 सलिलु निवाणहि जिह<sup>३</sup> परिहिज्जइ<sup>३</sup> तिह<sup>३</sup> भूसणु मिहुणहि परिहिज्जइ<sup>३</sup> ।  
 पाडलियहि जिह<sup>३</sup> भमरु पहावइ पियसंगरि तिह<sup>३</sup> होइ पहावइ<sup>३</sup> ।  
 जिह<sup>३</sup> पियसंगु विरहु निद्धाडइ कुसुमसमिद्ध तेम निद्धाडइ<sup>३</sup> ।  
 १० मालइकुसुमु भमरु जिह<sup>३</sup> वज्जइ<sup>३</sup> घरे घरे गहिरु लूठ तिह<sup>३</sup> वज्जइ ।  
 वियसियकुसुमु जाउ अइमुत्तव घुम्मइ कामिणिणु अइमुत्तव<sup>३</sup> ।

[ १२ ]

रावणके द्वारा हरी गयी सीता तथा विरहातुर कामिनियोके द्वारा निंदा किया जाता हुआ, तथा मारुत अर्थात् दक्षिण पवनके द्वारा दिशाओ ( रूपी वधुओ ) के मुखको चूमनेवाला वसंत, रावणके द्वारा हरी गयी सीताके विरहमे आतुर रामके द्वारा ( सीताका कुशल समाचार लानेके उपरांत आशापूर्वक ) देखे जाते हुए एवं मारुत अर्थात् अपने पिता पवनजय के द्वारा ( स्नेहपूर्वक ) चुंबित मुख हनुमानके समान विलास करने लगा ॥

प्रति दिन, जैसे-जैसे रात्रिका मान घटने लगा, वैसे-वैसे जिनके प्रिय दूर है, ऐसी कामिनियोकी निद्रा भी क्षीण होने लगी । प्रतिदिन जैसे-जैसे दिवस-प्रहर बढ़ने लगा वैसे-वैसे कामियोका रतिरस भी बढ़ने लगा । प्रतिदिन जैसे-जैसे आन्नपर बौर आने लगा, वैसे-वैसे मानिनियोका मान-मद मुकुलित अर्थात् क्षीण होने लगा । जैसे-जैसे कलकंठी कोकिलाका कलरव सुनाई देने लगा, वैसे-वैसे पथिक घरोकी ओर मति ( मन ) करने लगे । जैसे-जैसे गढोमे जल क्षीण होने लगा, वैसे-वैसे मिथुन आभूषण कम करने लगे । जिसप्रकार भ्रमर पाटल पुष्पोंकी ओर दौड़ने लगता है, उसीप्रकार प्रभावती अर्थात् सुंदरी नायिकाएँ अपने प्रियपतियोके संग होने लगी । जिसप्रकार प्रियका संगम विरहको बाहर निकाल देता अर्थात् नष्ट कर देता है, उसीप्रकार कुसुमोकी समृद्धि बाहर निकलने अर्थात् प्रकट होने लगी । जिसप्रकार भ्रमर मालती पुष्पसे भयभीत ( वस्त, निराश ) हो, गुंजार करने लगता है, उसीप्रकार घर-घरमें गंभीर तूर बजने लगा । अतिमुक्तकका फूल जैसे खिलता है, वैसे ही कामिनीजन अत्यन्त

[ १२ ] १. ख ग घ हणवतु । २. ख जहं, ग घ जिहं । ३. क ट तह, घ तह । ४. क घ ट ई । ५. क घ ड वट्टइ । ६. क घ तह, ड तह । ७. क ट वट्टइ । ८. क घ ड वह । ९. घ तिहं । १०. ख ग खिज्जइ । ११. ख ग घ हं । १२. क घ ट ई । १३. क घ ड हं । १४. क ट ई । १५. क घ ई । १६. क हि । १७. घ जिहं । १८. क घ ड महइ । १९. घ संघिरि । २०. ख ग कुसुम । २१. ख ग कुसुमु । २२. क मघ । २३. क वज्जइ; ड वज्जइ । २४. क घ ट गहिर; ग ग गहेइ । २५. ख ग तिह, घ तिहं । २६. क ख ग ट मत्तव । २७. क घ ड ई ।

दरिसिद्ध कुसुमनियरु<sup>३०</sup> वेयल्ले<sup>३०</sup>  
नील पलास रत्न हुय किंसुय  
देवचल्लि<sup>३१</sup> जणु पुज्ज समारइ  
तुरयहि<sup>३१</sup> अल्लहल्लि नच्चिज्जइ  
दावानलु<sup>३१</sup> पुल्लिदजणु लायइ<sup>३०</sup>  
मंदु मंदु<sup>३०</sup> मल्लयानिलु<sup>३१</sup> वायइ<sup>३०</sup>  
अहं<sup>३१</sup> तहि<sup>३१</sup> सियपंचमिहि<sup>३१</sup> वसंतहो  
फणमणितेओहामियजलणहो<sup>३१</sup>

पहिण<sup>३१</sup> घरु गम्मइ<sup>३०</sup> वेयल्ले<sup>३०</sup> ।  
मंतचित्तु जणु<sup>३१</sup> जाणइ<sup>३२</sup> किं सुय ।  
वट्टइ मिहुणहं<sup>३३</sup> हियइ समा रइ<sup>३०</sup> ।  
नववसंतु तरुणिहि नच्चिज्जइ ।  
सरधोरणि अणंगु गुणे लायइ ।  
मधुरसदुदु जणु वल्लइ<sup>३१</sup> वायइ<sup>३०</sup> ।  
नंदणवणे देवचल्ले वसंतहो ।  
करइ जत्त नायहो जणु जलणहो ।

१५

घत्ता—नायरजणु<sup>३०</sup> निवइ सपरियणु पयडोकयनियनियविहइ ।

२०

फणिजक्खहो नयरीरक्खहो जत्तकज्ज उज्जाणे गइ ॥१२॥

[ १३ ]

हुवई—ताम पियाचल्लु रविसेणे विविहाहरणभूसिओ ।

जंपाणाहिरुदु जत्तुच्छवि रक्खणसहिउ पेसिओ ॥१॥

गायड ताड अहिभवणु तुरंतित

तणुकंतिप्र वणु उज्जोयंतिउ ।

पुज्जि पणविचि फणसच्छायहो

हिययदुक्खु विण्णप्पइ नायहो ।

स्वच्छन्द होकर घूमने लगी ( देखिए परिशिष्ट ) । विचकिल्लके वृक्षने जैसे कुसुमसमूहको दर्शाया, वैसे ही पथिक वेगपूर्वक घर जाने लगे । पलाश नीले ( हरित ) हो गये, और किशुक-लाल, परंतु भ्रान्तचित्त ( कामी ) को ( हरित दलोंके ऊपर लाल-लाल पुष्पोंको देखकर ) लगा कि कहीं ये शुक्र पक्षी तो नहीं हैं । लोग देवकुलोंमें पूजा समारने लगे, और मिथुनोंके हृदयमें समान भावसे रति उत्पन्न हो गयी । जिसप्रकार गीले चनोंको ( देखकर ) घोड़े नाचने लगते हैं, उसीप्रकार नववसंतको ( देखकर ) तरुणियां नाचने लगी । पुल्लिद ( भील ) दावानल लगाने लगे और कामदेव धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाने लगा । मंद-मंद मलयपवन बहने लगा । और लोग मधुर स्वरसे वीणा ( वल्लकी ) बजाने लगे । अथानन्तर वहीं वसंतकी शुक्लपंचमीके दिन, नंदनवनके देवालयमें रहनेवाले, अपने फणमणिङ्गे तेजसे अग्निके तेजको तिरस्कृत करने-वाले, उवल्ल नामक नागदेवकी यात्राके लिए लोग चले । नागरिकजन, तथा अपने परिजनो-सहित राजा, अपने-अपने वैभवको प्रगट करते हुए नगरीके रक्षक नाग-यक्षकी यात्राके लिए उद्यानमें गये ॥१२॥

[ १३ ]

तब रविसेनने अपनी चारों प्रियाओंको विविधाभरणसे भूषित करके पालकीमें बैठाकर रक्षकके साथ यात्रोत्सवमें भेजा । वे अपने शरीरकी कात्तिसे वनको प्रकाशित करती हुईं, तुरंत नागमवनको गयीं । फणशोभासे युक्त नागकी पूजा, प्रणाम करके, उसको अपने हृदयका दुःख

२८. क व ड वेइल्ले । २९. क व ड थ । ३०. ख ग वेइल्ले । ३१. क ड जाणइ, व जाणइ । ३२. क व ड जणु । ३३. क ख ग णहु; व ड णहु । ३४. क ड रइ । ३५. ख ग यहि । ३६. क ख ग ड णलु । ३७. क ड लावइ; ख ग व लायइ । ३८. ख ग मंद मंद । ३९. क ड णिलु; ख ग नलु; । ४०. ग व इ । ४१. क ड वु । ४२. व इ । ४३. क ड अहु । ४४. क ख ग तहि । ४५. क व ड मिहि । ४६. क फणिमणि । ४७. क णारयं ।

[ १४ ] १. क व ड पुज्जिबि । २. व विन्नं ।



- ५ परमेसरै एतडउ करिजहिँ  
पुणु नोसरिवि तित्थुँ आसण्णइँ  
अरुहनाहु पणविवि अहिणँदिउ  
पुच्छिउँ ताहिँ<sup>१</sup> विणासियभवनिसि  
माणुसु जं सुहभायणु दीसइ  
१० पावें सल्लतुल्लदुहदुक्खिउ  
पुण्णफलाहिलाससमचित्तउँ<sup>२</sup>  
कइवयदिणहिँ<sup>३</sup> वाहिसंतत्तउँ<sup>४</sup>  
पच्छइ कारिवि केवलवाहहो  
सुववयपासि चयारि वि कंतउ  
१५ वत्ता—तवसाहिँ मरेवि समाहिँ विज्जुमालिदेवहो ठियउ ।  
वंभोत्तरे सोक्खनिरंतरे एउ चयारि वि हुयँ पियउ ॥१३॥

[ १४ ]

दुवई—इह विज्जुवइ नाम विज्जुप्पह इह आइचदंसणा<sup>१</sup> ।

तिहिँ मि चउत्थ अवर दीसइ पिय इह भण्णइ सुदंसणा ॥१॥

एत्थंतरे मगहाहिउ जंपइ

देव तुम्ह चलणहिँ विण्णप्पइ ।

जेण समाणु एहु लेसइ तउ

विज्जुच्चरहिँहाणुँ जायउ कउ ।

कहने लगी—हे परमेश्वर ! बस इतना करना कि सूरसेनके समान कात मत देना । फिर वहसि निकलकर वासुपूज्यके आसन्नवर्ती रमणीक जिनमंदिरमें अर्हत भगवान्को प्रणाम करके प्रसन्न हुई, और वहाँ सुमति नामक मुनिपुंगवको देखकर वंदना की । उन्होंने मुनिसे पूछा और वे भवनिशा अर्थात् मोहान्धकारको नष्ट करनेवाले महर्षि पुण्य-पापका फल कहने लगे—‘मनुष्य जो सुखका भाजन दिखाई देता है, वह सब पुण्यका ही प्रभाव कहा जाता है । पापसे जीव शूल लगनेके समान दुःखसे दुःखी, भारसे आक्रांत, एवं प्यासा और भूखा रहता है ।’ चित्तमे पुण्यफलकी अभिलाषाके साथ वे श्रावकव्रतको लेकर घर आ गयी । कुछ दिनोंमे व्याधि-संतप्त और सत्त्वहीन होकर सूरसेन मर गया । पीछे अपने द्रव्यसे केवलज्ञानके धारक जिनभगवान्का मंदिर बनवाकर वे चारो स्त्रियाँ घरसे निकलकर सुव्रता ( आर्यिका ) के पास आर्यिकाएँ हो गयी । तप साधकर और समाधिपूर्वक मरकर ये चारो निरन्तर सुखवाले ब्रह्मोत्तर स्वर्गमे विद्युन्माली देवकी प्रियाएँ बनी ॥ १३ ॥

[ १४ ] -

यह विद्युत्वती है, यह विद्युत्प्रभा, यह आदित्यदर्शना, तथा इनमे यह जो अन्य चौथी प्रिया दिखाई देती है, वह सुदर्शना कहलाती है । इसके अनन्तर मगधपति कहने लगे—देव ! तुम्हारे चरणोंमे यह विज्जप्ति है कि जिसके साथ यह (विद्युन्माली देव) तप लेगा, वह विद्युत्वर नामका

३ कँसइ । ४. ख ग करेजइहि । ५. ख ग हि । ६. ख तत्थु, ग तत्थु । ७ क ट ण्णइ, घ त्तिइ । ८. क ल वासपुज्ज । ९. क ण्णउँ, व त्तिइ; ङ ण्णइ । १०. स ग इ । ११ ट उ । १२. क र ग ट तेहि । १३. घ पुत्त । १४. क ल पुणु । १५. क र ग ङ कयवय । १६. क तत्त । १७. क ट ववयय ।

१८. ख ग हउ ।

[ १४ ] १. क ट सदा । २. क ट ई, घ त्तिइ । ३. घ त्ति । ४. ख ग हिहाणु ।

संपई कहि वट्टइ मूसियजणु  
भणइ जिणिहुँ अत्थि पुहईवरु  
तहिँ परवलघणपलयमहामरु  
पिय सिरिसेण तासुँ विक्खाइय  
परिवट्टहँ<sup>१</sup> तेण कुमारें  
इह विण्णाणुँ<sup>२</sup> महीयले जं जं  
अणुदिणु विज्जउ परिसीलंतहो  
ओसहीप्र थंभेवि थाणंयरु<sup>३</sup>  
जगंतो वि राउ किउ सुत्तउ  
तो पहाप्र नरवइ चित्ताविउ  
अह व सिविणु जइ ता कहि रयणइँ  
नियनंदणु हक्कारिचि चारिउ  
काइँ<sup>४</sup> न पुजइ तुह किर रज्जं  
तं निसुणेवि कुमारें चुचइँ<sup>५</sup>  
परणु पुणु अणंतु जं दीसइ  
निष् निवारिओ वि मण्णइँ<sup>६</sup> नउ

किं कज्जेण पत्तु चोरत्तणु । ५  
मगहदेसि पट्टणु हथिणाउरु ।  
वसइ नराहिउ नामविसंधरु ।  
सुउ विज्जुचरु नाम चि याइय ।  
पत्तसयलवरविज्जापारं ।  
परियाणिउ नोसेसु वि तं नं । १०  
चोरिय तहो पडिद्दासिय चित्तहो ।  
निसिहिँ पडट्टु निययत्तायहो घरु ।  
हरिउ कडउ कंठउ कडिसुत्तउ ।  
किं मइँ<sup>७</sup> सिविणउ एहु विभाविउ ।  
कंठयकडयपमुहआहरणइँ<sup>८</sup> । १५  
तक्करकम्म सुयणधिकारिउ ।  
चोरिय करहिँ<sup>९</sup> पुत्त कि कज्जं ।  
सावहिरल्लु ताय किम रुचइ ।  
अक्खयनिहिँ<sup>१०</sup> तं महुकरे निवसइ ।  
पच्चेल्लिउ तायहो रुसविँ<sup>११</sup> गउ । २०

चोर कहाँ उत्पन्न हुआ है ? सम्प्रति वह लोगोंको लूटता हुआ कहाँ विद्यमान है ? और किस कारणसे चोरपनेको प्राप्त हुआ ? तब जिनेंद्र कहने लगे—मगधदेशमें पृथ्वीमें श्रेष्ठ हस्तिनापुर नामका नगर है । वहाँ शत्रुबल रूपी वादलोंके लिए प्रलयकी आँधीके समान विश्वंवर नामका राजा रहता है । उसकी श्रोसेना नामसे विख्यात प्रिया है, उसको विद्युत्चर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । वड़े होते हुए उस कुमारने सकल श्रेष्ठ विद्याओंका पार पा लिया, और इस पृथ्वीतलपर जो-जो कुछ भी विज्ञान है, उस सबको उसने निःशेषरूपसे जान लिया । इसप्रकार प्रतिदिन विद्याओंका अनुशीलन करते हुए, उसके चित्तको चोरी भा गयी । औपचिसे पहरेदारको स्तम्भित करके रात्रिमें अपने ही तातके घरमें प्रविष्ट हो गया । जागते हुए राजाको भी सुप्त ( जैसा ) करके उसने कंठा, कड़ा और कटिसूत्र हूर लिये । तो प्रभात होनेपर राजा चितामे पड़ा कि क्या मने यह ( चोरी ) स्वप्नमे देखा ? अथवा यदि स्वप्न है, तो फिर रत्न और कठा व कटक ( कड़ा ) प्रमुख आभरण कहाँ गये ? अपने पुत्रको बुलवाकर इस कार्यसे रोका कि यत्र तस्कर-कर्म सज्जनोसे निन्दित है; तुझे राज्यसे क्या नहीं पुरता ? ( तो फिर ) हे पुत्र ! तू किस कारणसे चोरी करता है ? यह सुनकर कुमारने कहा—तात ! यह सावधि ( सीमित ) राज्य मुझे कैसे रुचे ? यह जो अनन्त पर-वन दिखाई देता है, वह समस्त अक्षय-निधि मेरे हाथोमे वसती है । इसप्रकार नित्य रोकनेपर भी वह नहीं माना, बल्कि तातसे

५ ख ग ई । ६. ड । ७. ख ग जिणेहुँ । ८. क वरु । ९ क ड णाम; घ नाम । १०. क ड वट्टतें । ११. घ विण्णाणु । १२. प्रतियोगे 'थाणंतव' । १३. क ख ग मइ । १४. क घ ड 'कडय-मडड' । १५. ख ग काइ । १६. ख ग ई । १७ क ड ई । १८ क ड णिहिँ । १९. क ड ई; घ मज्जं । २०. क व रु रुसवि ।

पुरे रायगिहे तरुणजणभामिणि<sup>१</sup> कामलय व्व कामलयकामिणि ।  
ताप्र<sup>२२</sup> समाणु विलासुवहुंजइ<sup>२३</sup> मूसिवि नयरु अत्थु घरे पुंजइ ।

घत्ता—विणु नित्तिप्र तक्करवित्तिप्र नयरु तुहारप्र विज्जुचरु ।  
विलसंतउ विज्जावंतउ वीरपुरिसु अच्छइ पवरु ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिए सिगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरहए सिवकुमारस्स  
विज्जुमालीदेवयत्तसंभवो नाम<sup>२४</sup> तइओ सघो समचो<sup>२५</sup> ॥संधि—३॥

रूसकर चला गया । राजगृह नगरमे तरुणोकी प्यारी, व कामकी लताके समान कामलता नामकी कामिनी है, उसके साथ विलास भोगता है और नगरको लूट-लूटकर वन उसके घरमे लाकर भर देता है । न्याय-नीतिसे रहित तस्करवृत्तिसे, वह विद्यावान्, उत्तम वीरपुरुष विद्युत्चर विलास करता हुआ तुम्हारी नगरीमे रहता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूसामीचरित्र नामक इस शृंगार-  
वीर-रसात्मक महाकाव्यमें 'शिवकुमारका विद्युन्माली देव बनना' नामक यह  
तृतीय संधि समाप्त ॥ संधि—३ ॥

२१ स ग भाविणि । २२ क ह ताई; घ ताइ । २३ क भुंजइ । २४ क घ ह ठ इया इमा मंधो, ग ग तईउ सघी ।

संधि—४

[ १ ]

अगुणा न मुणंति गुणं गुणिणो न सहंति परगुणो ददुः ।  
 वल्लहगुणा वि गुणिणो विरला कई वीरसारिच्छा ॥१॥  
 का मायारि को पिउ अक्खहि<sup>१</sup> कहि<sup>२</sup> थिउ गोत्तु कयत्थउ तं कवणु ।  
 भगहाहिउ घोसइ<sup>३</sup> एमहि<sup>४</sup> होसइ<sup>५</sup> विज्जुमालि जहि<sup>६</sup> नररयणु ।  
 नायनरामरेदवदियकमु अक्खइ वड्डमाणु जिणपुंगसु । ५  
 एत्थु जि रायगेहि तउ पुरवरे देउलसिगलभगधाराहरे ।  
 इह जो दीसइ नयणाणंदणु नामे अरुहयासु वणिगिन्दणु ।  
 एयहो पियहो<sup>७</sup> विणयगुणधामहो<sup>८</sup> गम्भे हवेसइ जिणमइनामहो<sup>९</sup> ।  
 तं तित्थयरवयणु निमुणंतउ उट्ठिउ जक्खु एक्खु नञ्जंतउ ।  
 रहसिउ जंपइ किह निव्वणमि<sup>१०</sup> अप्पउ परकयत्थु हइं मणमि<sup>११</sup> । १०  
 जासु गोत्ति विद्धंसियभवकलि उप्पजेसइ पच्छिमकेवलि ।  
 संभवंति तं धणणउ<sup>१२</sup> कुलु पर<sup>१३</sup> जहि<sup>१४</sup> अरहंत-सिद्ध-केवलधर ।  
 यत्ता—पुच्छिज्जइ राए<sup>१५</sup> सविणयवाए<sup>१६</sup> जिणवरिंदु विभियमणे<sup>१७</sup> ।  
 आणंदु पबुच्चइ<sup>१८</sup> जक्खु पणच्चइ कहइ<sup>१९</sup> देव कि कारणेण ॥१॥

[ १ ]

गुणहीन लोग गुणको समझते नहीं हैं; और जो गुणी हैं, वे दूसरोके गुणको देखना भी नहीं सहते । जिन्हें दूसरोके गुण प्रिय हैं, ऐसे कवि वीरके समान गुणी लोग विरले ही होते हैं ।  
 तब भगधराजने पूछा—भगवान् वतलाइए उसकी कौन माता है, और कौन पिता ?  
 वे कहाँ हैं ? तथा कौन-सा वह कृतार्थ गोत्र है जहाँ विद्युन्माली नररत्न इस कालमें जन्म लेगा ?  
 तब नागेन्द्र, नरेंद्र व अमेरेन्द्रो-द्वारा वंदित-चरण जिनश्रेष्ठ वर्द्धमान कहने लगे—यही तुम्हारे इसी राजगृह नामक उत्तम नगरमें, जहाँ देवकुलोके शृंगोसे मेघ टकराते हैं, यहाँ जो नेत्रोंको आनंद देनेवाला अरहदास नामका वणिकपुत्र दिखाई देता है, इसीकी अत्यन्त विनयशील जिनमती नामकी प्रियाके गर्भमें उत्पन्न होगा । तीर्थकरके इस वचन ( कथन )को सुनकर एक यक्ष नाचता हुआ उठा, और हर्षोत्कण्ठित होकर कहने लगा—( अपने वंगकी ) 'कैसे प्रगंसा करूँ ? मैं स्वयंको परमकृतार्थ मानता हूँ जिसके गोत्रमें भवकलि अर्थात् सांसारिक कालुष्य या कर्ममलसे रहित ( अथवा कर्ममलका नाश करनेवाला ) अन्तिम केवली उत्पन्न होगा । वह कुल परम धन्य है, जहाँ अरहंत, सिद्ध, व अन्य केवलज्ञानी जन्म लेते हैं ।' तब विस्मित मनसे राजाने जिनवरसे पूछा—हे देव ! कहिए, आनंदपूर्वक बोलता हुआ यह यक्ष किस कारणसे नाच रहा है ? ॥ १ ॥

[ १ ] १ क परमगुणी, ठ परगुणी । २ ख ग ङ, घ ञ हि । ३ क ड कहि । ४ क ङ । ५ ख ग एवहि । ६ ख ग ङ । ७ ख ग जहि । ८ क हि, घ ड हि । ९ क छ भामहि, ख ग भामहो, घ भामहि । १० क घ ञ हि, ड हि । ११ घ भमि । १२ व ञं, ड ञं । १३ क ड पर । १४ ख ग विभय । १५ क ख ग ड पर । १६ क ड हि, घ ञ हि ।

[ २ ]

आयहो जकखामरहो विरुज्झइ  
भणइ<sup>१</sup> नाहु तउ नयरि सइत्तउ  
पिय गोत्तवइ तासु गुणथामहो  
नंदणु अरुहयासु संजायउ  
५ बीयउ सुउ जिणयासु पवुत्तउ<sup>२</sup>  
अणुदिणु दविणु घराउ हरेप्पिणु  
वज्जियडक्क<sup>३</sup>-हुडुक्क<sup>४</sup>-समाणप्र<sup>५</sup>  
कंकरसर<sup>६</sup>-जुवारविरसक्खरु<sup>७</sup>  
एकदिवसि<sup>८</sup> हारिय वरवणणहो<sup>९</sup>  
१० टेंडमज्झि<sup>१०</sup> दक्खविथनियारे<sup>११</sup>  
पभणइ<sup>१२</sup> कवणु<sup>१३</sup> गहणु मणमि<sup>१४</sup> तणु  
बोल्लइ छलउ तिक्खनिहुरगिरु  
रे जिणदास बोल्लविप्फारहि<sup>१५</sup>  
एह पइज्ज मज्झु जाणिज्जइ<sup>१६</sup>

माणुसु गोत्तु केम संबज्झइ<sup>१</sup>।  
संतप्पिउ वणीसु धणइत्तउ<sup>२</sup>।  
चंदहो रोहिणि व्व रइ रामहो।  
पुण्णपुत्तु<sup>३</sup> नरवेसे आयउ।  
तारुणइ<sup>४</sup> दुज्वसणहि<sup>५</sup> भुत्तउ।  
वेसायणु भुंजइ तं देप्पिणु।  
पियइ मज्झु विरइय<sup>६</sup> आवाणप्र<sup>७</sup>।  
रमइ<sup>८</sup> जूउ मंडियवडुप्फरु<sup>९</sup>।  
जूए सहसवत्तीस सुवण्णहो<sup>१०</sup>।  
धरियउ छलयनामजूयारे<sup>११</sup>।  
जायवि<sup>१२</sup> निलए देमि तउ कंचणु।  
मंदिरु चत्तहो तोडमि सिरु।  
हंवाइउ<sup>१३</sup> इयरहि<sup>१४</sup> जूयारहि<sup>१५</sup>।  
घरु दूरयरु<sup>१६</sup> पउ वि जइ<sup>१७</sup> दिज्झइ<sup>१८</sup>।

[ २ ]

इस यक्ष देवका मनुष्य गोत्रमे संबंध कैसे हो सकता है ? यह बात तो ( सिद्धान्त ) विरुद्ध पडती है । तब भगवान् कहने लगे—तुम्हारी इसी नगरीमे धनदत्त नामका एक धनी व सतोषी वणिक् रहता था । उस गुणवान्को चंद्रकी रोहिणी व रामकी रति अर्थात् सीता जैसी गोत्रवती नामकी पत्नी थी । उसे अरहदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, मानो मनुष्य वेशमे पुण्यका पुंज ही आ गया हो । दूसरा पुत्र जिनदास कहलाया, जो अपनी यौवनावस्थामे दुर्व्यसनोसे भोगा गया ( वशीभूत हुआ ) । वह प्रतिदिन घरसे द्रव्य अपहरण करके, उसे देकर वेश्या-जनका भोग करता, और डिडिम व डक्का बजते हुए सजी हुई दुकानोमे मद्य पीता, तथा जूएका एक बड़ा फलक सजाकर कंकरोके स्वर और जुआडियोकी विरस ध्वनियोके साथ जूआ खेलता । एक दिन वह जूएमे सुवर्णकी बत्तीस सहस्र मुद्राएँ हार गया । बृतगृहमे छलक नामक जुआड़ीने अत्यंत अपमानित करके उसकी पकड़ लिया । इसने कहा—यह क्या भारी बात है ? मैं इसे तृण वरावर समझता हूँ, घर जाकर तुझे सुवर्ण ( मोहरें ) दे दूँगा । तब छलकने ये निष्ठुर वचन कहे—यदि घरको चले तो सिर तोड़ दूँगा । रे जिनदास ! बड़े बोलोसे दूसरे जुआडियोने तुझे बड़ा गर्वित कर दिया है ( बहुत चढ़ा दिया है ) ; परंतु तुम मेरी यह पैज ( प्रतिज्ञा ) जान लेना कि घर तो दूर ही रहे, तू एक पैर भी आगे रख ले तो मैं अपना

[ २ ] १ कंइ । २. प्रतियोमे इ । ३ क घ ट यत्तउ । ४ घ पुत्त । ५ क घ ड पत्तउ ।

६. क ड ण्हि, घंत्तिहि । ७ ख ग णइ । ८ घ विज्जिय । ९ क हुडुक्कु, ख ग हुडुक्कु । १० क घ ड णइ, ख ग णइ । ११ क यइ, ड यइ । १२ क घ ड णइ । १३ क ट वक्करं, घ ककरं । १४ क ड विरसव्वरु । १५ प्रतियोमे इ । १६ क वट्टइ पर, ड वट्टयणइ । १७ घ एत्तु । १८ घंत्तहो । १९ क मज्झि । २० क घ ड सयारि । २१ क घ ट ण । २२ क घ ट ण । २३ ख ग घ मज्जि । २४. क घ ड जाएवि । २५ घ ट र्हि । २६ ख हिवां, ग हिवां, घ देवां । २७ ग ग र्हि । २८ कंज्जइ । २९ क ट यरि । ३०. ख ग मइ ।

तो न वहमि<sup>३१</sup> नियनासु सछायउ पमि व पइजिवि<sup>३२</sup> ईसवि<sup>३३</sup> जायउ । १५  
 घत्ता—इय विहिं मि<sup>३४</sup> निरगलु वडिदउ<sup>३५</sup> कंदलु असिदुहियइ<sup>३६</sup> जिणदासु हउ ।  
 पेक्खवि महिपत्तउ धोलिरअंतउ पाण लएविणु छलउ गउ ॥२॥

[ ३ ]

एत्तहिं <sup>१</sup> आयणिणवि <sup>२</sup> तं वइयरु	निउ जिणदासु अरुहयासे <sup>३</sup> घर ।	
अंतइ <sup>४</sup> धेविवि वणु सीवाविउ	जेठे भणिते जयफलु पाविउ ।	
निम्मलसावयकुलिं उप्पज्जिउ	एक्कु वि वसणु वंधु नउ वज्जिउ ।	
वुवइ जिणदासे जाणंते	कुलमइलणु हउ खदधु कयंते ।	
एवहिं <sup>५</sup> मरणकालिं जं किज्जइ	तं उवएसु किं पि महु दिज्जइ ।	१
सावयवयइ <sup>६</sup> लेवि जिणदासे	पाण विसज्जिय पुणु सण्णासे ।	
इह सो मरिवि जक्खु हुउ सुद्धमणु <sup>७</sup>	कुंडल-कडय-मउडमंडियतणु <sup>८</sup> ।	
मह भाइहिं <sup>९</sup> कियसुरनरवंधु <sup>१०</sup>	चरमसरीरु हवेसइ नंदणु ।	
इय फले नवइ हरिसियमइ <sup>११</sup>	घार-वार नियगोत्तु <sup>१२</sup> पससइ <sup>१३</sup> ।	
विज्जुमालि सुठे <sup>१४</sup> लच्छिपउत्तहो	नंदणु अरुहयासु वणिउत्तहो ।	१०
जंबूसासि नाम उप्पज्जिवि	तउ लेसइ घरवासु विसज्जिवि <sup>१५</sup> ।	

सुख्यात ( सार्थक ) नाम छोड़ हैं । इसप्रकार पहलेसे ही पैज करके वह उसके प्रति ईर्ष्या ( द्वेष ) युक्त हो गया । इसप्रकार दोनोंमे निरगल ( निर्वाध ) झगड़ा बढ़ा, और जुआड़ीने जिनदासको कठारीसे आहत किया । तब जिनदासको भूमिपर पड़े हुए और आँते निकली हुई देखकर 'छलक' अपने प्राण लेकर भाग गया ॥ २ ॥

[ ३ ]

और इधर उस दुःखद वृत्तातको सुनकर अरहदास जिनदासको घर ले गया । आँतोंको धोकर ( अन्दर करके—टि० ) व्रणको सिलवा दिया । तब जेठे भाईने कहा—छूतका फल पा लिया । तू निर्मल श्रावककुलमे उत्पन्न हुआ, परंतु हे वंधु ! तूने एक भी व्यसन नहीं छोड़ा । बड़े भाईकी इस बातको जानकर जिनदासने कहा—कुलको मलिन करनेवाला मैं कृतान्तसे खा लिया गया । अब इस मरण-समयमे जो करना चाहिए, ऐसा ही कुछ उपदेश मुझे दीजिए । फिर जिनदासने श्रावकव्रत लेकर संन्यासपूर्वक प्राणोंका त्याग किया । वही (जिनदासका जीव) मरकर यहाँ शुभमनवाला, कुंडल, कड़े और मौड़ ( मुकुट ) से आभूषित गरीरवाला यक्ष हुआ है । 'मेरे भाईको सुर-नरवंधु चरमसरीरी पुत्र होगा', इस कारणसे हर्षितमन होकर यह वार-बार अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ नाच रहा है । यह विद्युन्माली देव लक्ष्मीवान् ( पत्त ? ) वणिक्पुत्र अरहदासका प्रिय पुत्र होकर, जंबूस्वामी नाम उपाज्जन करके, गृहवासको छोड़कर

३१. क ड हवमि, घ ल्हमि । ३२. क पई, ख ग ०जिव; घ पईजिव । ३३. क घ ड ईसिवि  
 ३४. ख ग विहिं मि । ३५. ख ग वडिय । ३६. घ ०ई ।

[ ३ ] १. ख ग ०हि । २. घ ०वेवि । ३. घ ०दासे । ४. क ख ग ०इ । ५. क घ ड ०उ । ६.  
 ड निम्मल । ७. क ख ग ०हि । ८. ख ग ०वयइ । ९. घ सत्तासि । १०. क ०मई, घ ०गइ, ड ०मइ  
 ११. क ड ०मडियकय; घ ०मंडियच्छइ । १२. क ०हि । १३. ख ग किर । १४. क घ ड ०मणु । १५.  
 घ ड ०भोत्त । १६. क घ ड ०सणु । १७. ख ग सुर । १८. क घ ड विव ।



वत्ता—जय निम्मलसासण जय जयमासण जयहि जिणैसर परमपर ।  
दुत्तरभवतारउ देव तुहारउ चलणजुवलु<sup>१</sup> महु होउ वर ॥१॥

[ ५ ]

नमसेवि <sup>१</sup> वीरं	महामेरुधीर <sup>२</sup>	तिलोयगथकं ।	
विलीणामुहाणं	जणंभोरुहाणं	पत्रोहिकअकं ।	
सहाभासिरीए	थिराए सिरीए	समुदित्तेदहं ।	
पड्डो <sup>३</sup> नरिंदो	मसामंतविंदो	पुरं रायगेहं ।	
जिणुहिद्वधम्मं	सरंतो सुकम्मं	सकंतो ससेणो ।	५
मयालोयणीणं	धणोच्चत्थणीणं	मणत्थाहत्थेणो ।	
हयाणेद्वसंथो	पराणं दुलंबो	फुरंतपयावो ।	
पवज्जंतदक्को	भड्डासुक्कहक्को	समुद्वंनरावो ।	
रमालीदवच्छो	निवायारदच्छो	पयापालणिद्वो ।	
सुमाणिकफारं	महासीहद्वारं	सगेहं पड्डो ।	१०
समग्गे सइत्तो	जिणंद्रम्मं <sup>१०</sup> भत्तो	सदाणो मभोओ ।	

के मनको रजित करनेवाले, आपकी जय हो । जय हो ! हे निर्मल-भासन (पवित्र धर्मपदेन देने-वाले) तथा प्राणियोंको (सद्गतिरूपी) आदवासन देनेवाले देव ! आपकी जय हो ! हे जिनेश्वर ! हे परम + पर—परमात्मा आपकी जय हो ! और हे देव ! दुस्तर भवसागरसे पार उतारनेवाले आपके चरणयुगल मेरे बारक अर्थात् अम्युद्धारक हो ॥ ४ ॥

[ ५ ]

त्रिलोकके अग्रभागपर विराजमान, महामेरुके समान वीर, जिनके अणुभक्तों को पम है, ऐसे भव्यजनोरूपी कमलोंको प्रबुद्ध करनेके लिए एकमात्र सूर्य, ऐसे वीर भगवान्को नमस्कार करके सभाको भास्वर करनेवाली स्थिर गोभासे देदीप्यमान देहवाला नरेंद्र जिनोपदिष्ट धर्म व सुकर्मका अनुस्मरण करता हुआ, सामंतवृंद तथा अपनी रानी एवं-सेना सहित गजगृह नगरमें प्रविष्ट हुआ । वह मृगलोचना तथा घने व ऊँचे स्तनोंवाली प्रमदाओंके मनसमूहरूपी घनको चुरानेवाला था । दूसरोंके लिए दुर्लभ्य ऐसे अनिष्टसंघ अर्थात् शत्रुसंघको उसने नष्ट कर दिया था, एवं उसका प्रताप निरन्तर स्फुरायमान अर्थात् वृद्धिगत हो रहा था । दहकाके बजने व भटोकी छोड़ी हुई हांकोसे बड़ा कोलाहल हो रहा था । उसका वक्षस्थल राज्यलक्ष्मीसे आलिंगित था, और नृपाचार अर्थात् राजनीतिमें वह पूर्ण दक्ष था । इसप्रकार प्रजापालनप्रिय वह राजा सुंदर माणिक्योंसे जगमगाते हुए महा सिहद्वारसे अपने घरसे प्रविष्ट हुआ । स्वमार्ग अर्थात् स्वधर्ममें सावधान, जिनेन्द्रके भक्त दानशील व भोग (साधनों) से युक्त पुरवासी लोग

१२ क घ ट जुयलु ।

[ ५ ] १. क णममेसि । २. घ वीरं । ३. क मृहा । ४. ख ग घ पयदो । ५. क जणु । ६. क ड ससिणो । ७. क ड प्रणुव्वच्छणीणं । ८. घ ट वारं । ९. क ख घ ट समग्गे । १०. क घ ट जिणिदं ।



१५ निपसुं घरेसुं ठिओ<sup>१</sup> सुंदरेसुं पुरावासिलोओ<sup>२</sup> ।  
 तओ सत्तरत्ते<sup>३</sup> कमेण पवत्ते<sup>४</sup> सुहापंडुधामे<sup>५</sup> ।  
 विराथनचित्ते<sup>६</sup> सदित्ते पवित्ते वरे वासधामे<sup>७</sup> ।  
 च उत्थम्मिजामे तर्मांससरागे सिए णं मयंके ।  
 पडावेदल्लण्णे<sup>८</sup> सुअंघे<sup>९</sup> सुवण्णे सुहे तूलियंके<sup>१०</sup> ।  
 घत्ता—सिविणउ<sup>११</sup> निज्जाइउ<sup>१२</sup> मंगलराइउ<sup>१३</sup> पल्लकोवरि सुत्तियए<sup>१४</sup> ।  
 लायणुहामपु<sup>१५</sup> जिणमडनामपु<sup>१६</sup> अरुहंयासकुलउनियए<sup>१७</sup> ॥५॥

[ ६ ]

दीसइ जंबूफलनिउमंवं गंधायडिद्वयभमरकुहंवं ।  
 धगधगतजोडयसन्वासं निद्धमं जल्लसन्वासं ।  
 सहलसालिछेत्तं सुहगंधं महमहंतमरु-पूरियरंवं<sup>३</sup> ।  
 कूडयचकमरालवल्लयं पप्फुल्लियसयवत्तल्लयं ।  
 ५ मयरमच्छकच्छवपायारं रचणावणं<sup>४</sup> पारावारं ।  
 नियमत्तारहो जं जिह् विट्ठं पडिबुद्धपहापु तं सिट्ठं ।  
 तं सोज्जणणंदिथभाओ<sup>५</sup> सेट्ठि समज्जो सचणसहाओ<sup>६</sup> ।  
 गयउ तुरंतउ<sup>७</sup> दुक्कियनासं<sup>८</sup> जिणवरमंदिरि महरिसिपासं<sup>९</sup> ।

अपने-अपने सुंदर घरोंमें स्थित हो गये । तदनन्तर क्रमशः सातवी रात्रि आनेपर घूनेसे पुते हुए; चित्रोंसे सजे हुए व दीप्तिमान और पवित्र श्रेष्ठ निवासगृहमें रात्रिके अवसानमात्र जेप चौथे प्रहरके रमणीय समयमें, मृगांके समान बबल, सुंदर बादरसे ढके हुए, मुगंधित व उत्तम रङ्ग-के गद्देपर पलंगके ऊपर सोती हुई, उद्दाम लावण्यवती जिनमती नामकी अरुहदासकी कुलपुत्री ( कुलवधू ) ने ये मांगलीक स्वप्न देखे ॥५॥

[ ६ ]

उसने अपनी गंधसे भ्रमरकुलको आकर्षित करनेवाले जंबूफलोका गुच्छा देखा । धग-धग करके जलते हुए समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले निर्धूम-अग्निको देखा । फूले हुए शालिक्षेत्रको देखा, जिसकी शुभगंधसेयुक्त पवन समस्त रंघोंको पूरता हुआ सर्वत्र प्रसृत हो रहा था । चक्रवाक, हंस, और बलाकाओंके कूजनसे युक्त फूले हुए कमलसरोवरको देखा, तथा मगरमच्छ और कच्छपोंके संचारसे युक्त एवं रत्नोंसे पूर्ण उदधिको देखा । उसने जो जैसा देखा था, वैसा प्रभातमें जागने पर अपने भर्त्तारको कहा । उसको मुनकर प्रसन्नचित्त होकर श्रेष्ठी तुरन्त अपनी पत्नी तथा स्वजनोके साथ जिनमदिरमें पापोका नाश करनेवाले महर्षिके

११. घ ठिउं । १२. क ड पुरं । १३. क व ड रत्तो । १४. क व ड त्तो । १५. क व ड धामो ।  
 १६. क ड विराणत्तं, क चित्तो । १७. क ड धामे । १८. क व ड पडवेदिं, घ छल्ले । १९. क व ड  
 मुयवे । २०. क ड तल्लिं, ख ग सुहि तूलिं । २१. व णत्तं । २२. क ख ग छ वड । २३. क ड रायव ।  
 २४. ख ग वड । २५. क व ड हामड । २६. क व ड वड्ढामडं । २७. क व षडं, ड मड ।

[ ६ ] १. व कूहुवं । २. क ड जोडलं । ३. घ गवं । ४. ख ग लाए । ५. व उल्लं । ६. क  
 व ड भाओ । ७. क व ड सहाओ । ८. क व ड तुरतो । ९. क ड णामे, ख ग नात्तं । १०. क ख ग ट  
 पासं ।

पणवेपिणु भक्तिए नउर-हियं सुइणालोयं<sup>११</sup> सव्वं कहियं ।  
 भयवँतो<sup>१२</sup> साहइ परमत्थं अरुहयास निमुणहि<sup>१३</sup> सिविणत्थ । १०  
 जंबुफलाणोए गुणजुत्तो रइवइरुयो<sup>१४</sup> होसइ पुत्तो ।  
 दिट्ठे<sup>१५</sup> जलणं<sup>१६</sup> जालइ कम्मं सालीलेत्ते<sup>१७</sup> लच्छीहम्मं ।  
 सरवरदंसणे रयणाहारो उवहिण भवसमुद्दगयपारो ।  
 घत्ता—तव<sup>१८</sup> होसइ नंदणु नयणाणंदणु सोलहवरिसपमाणु पुणु ।  
 घरवासु चएसइ दिक्ख लएसइ चरमसरीरु महंतगुणु<sup>१९</sup> ॥६॥ १५

[ ७ ]

तं निमुणयि हरिसिउ वणिचवह मुणि नविचि सपरियणु गयुउ बह ।  
 तहि काले देउ तडिमालि चुओ गन्धमन्तरे जिणमइहे<sup>२०</sup> हुयो ।  
 गुसहारइ<sup>२१</sup> अंगइ<sup>२२</sup> लालसइ बहुद्विसहिं<sup>२३</sup> जायइ सालसइ ।  
 आपंडुरु<sup>२४</sup> मुहुं निज्जिणइ<sup>२५</sup> ससि सियथण हुय णं मुहे दिणमसि ।  
 णं मरगयकलसहिं<sup>२६</sup> सेहरिया रुपमयकुंभं<sup>२७</sup> लच्छिण धरिया<sup>२८</sup> । ५  
 णं विणिण चडिणण मऊरघरा मयरद्वयधवलगेहसिहरा ।  
 अहवइ वंसु<sup>२९</sup> व सोहंति सुहा चंचुक्खयपंकिलकंदमुहा<sup>३०</sup> ।

पास गया । भक्तिपूर्ण नम्रहृदयसे प्रणाम करके सारे स्वप्नदर्शनको वतलाया । वे भगवत् स्वप्नोका परमार्थ इसप्रकार कहने लगे—अरुहदास ! स्वप्नोका अर्थ सुनो । जंबुफलोके देखनेसे मुझे गुणवान् व कामदेवके समान रूपवाला पुत्र होगा । अग्नि देखनेसे वह कर्मोको जलायेगा और शालिक्षेत्र देखनेसे ( केवलज्ञानरूपी ) श्रेष्ठ लक्ष्मीका धाम होगा । सरोवर देखनेसे वह ( सम्पददर्शन, ज्ञान, चारित्र्यरूप ) रत्नोका धारक होगा, और उदधि देखनेसे भवसमुद्रसे पार होगा । तुझे नेत्रोको आनंद देनेवाला पुत्र होगा, जो गृहवास छोड़कर दीक्षा लेगा, व महान् गुणोंका धारक चरमगरीरी होगा ॥६॥

[ ७ ]

उस स्वप्नफलोको सुनकर वणिक्वर हर्षित हुआ और मुनिको नमस्कार करके परिजनोके साथ घर गया । उसी समय विद्युन्माली देव स्वर्गसे च्युत होकर जिनमतीके गर्भमें आया । उसके गुहमारसे जिनमतीके कोमल अंग कुछ ही दिनोंमें आलस्ययुक्त हो गये । उसका पांडुरवर्ण मुख चद्रको जीतने लगा, और श्वेत स्तनमुख ऐसे काले हो गये मानो उनके मुँहपर स्याही लगा दो गयो हो अथवा मानो लक्ष्मीने मरकत्तमणि कलशोको सबसे ऊपर शिखररूपसे रखकर रजतमय कुंभ धारण किये हो, अथवा मानो मकरवज्रके प्रासादशिखरपर दो मयूर चढ़े हो, अथवा वे ऐसे श्वभ्र हंसोके समान शोभित हो रहे थे, जिनके मुखमें चंचुसे खांडित

११. ख ग सुयणा । १२ क वंता । १३ घ णहि । १४. क ड सुय, घ मुइ । १५ क ड रइवर । १६. घ दिट्ठ । १७ घ ण । १८. क घ ड सालिखित्ति वर । १९ क घ ड तउ । २० क ड मट्ठ ।

[ ७ ] १० क छ देव । २ ख ग वइहे, घ वइहि । ३ ख ग घ ड रड । ४ ख ग ड । ५ क सहि । ६. क घ ड आव । ७ क घ ड णडं । ८. ग तं । ९ कलियहि । १० ख ग नययमय । ११ क ड धरिया । १२ क घ ड हंन । १३. ख ग कट्ठमुहा ।

गन्धेण विराड्य<sup>१४</sup> गन्धमवइ दाणेण व रिद्धि विसुद्धमइ ।  
 १० णं नयपयपुण्णपओहरिया आसन्नजेड<sup>१५</sup> पाउससरिया ।  
 पंचमिह<sup>१६</sup> वसन्ते<sup>१७</sup> पक्खे धवले रोहिणिठिप्प मयलछणे विमले ।  
 पच्चूसे पसूय सलक्खणठ<sup>१८</sup> कुलमंगलु जयवल्लहु तण्ड<sup>१९</sup> ।  
 घत्ता—वद्धावणतूरहिं दसदिसपूरहिं<sup>२०</sup> काई नयरि तहिं<sup>२१</sup> वणिगयइ<sup>२२</sup> ।  
 गायन्त-पढन्तहिं जणहिं नढन्तहिं कण्णपडिउ<sup>२३</sup> नायणिगयइ<sup>२४</sup> ॥७॥

[ ८ ]

अलंकियनिसत्तेण तरुणारुणदित्तेएण बालेण पसरें धा तेण  
 सूयाहरे दिण्णेदीवोहदित्तीनिहिता सुदूरे किया निप्पहा ।  
 विद्धिवद्धावणावंतलोएहिं वज्जंतपहुपडहखरतरडसरमंदधहुमदलुहाम<sup>१</sup> कलवेणुवीणाष्णुणी  
 सालकंसालतालानुसारेण आणंदरमत्तधुम्मंततरलच्छित्तचन्त<sup>२</sup>—  
 ५ तरुणीमहाथट्टसंचट्टतुट्टंतआहरणमणिमंडिया चचप्पहा ।

कीचडयुक्त कमल-कद—कमलाकुर हो । वह विगुद्धमति गर्भवती उस गर्भसे इसप्रकार शोभित  
 हुई जैसे दानसे समृद्धि । पासमे स्थित ज्येष्ठाओ अर्थात् ( प्रसवकर्ममे कुशल ) वृद्ध परिचारि-  
 काओ, व नये दुग्धसे युक्त पयोधरोसे वह ऐसी लगती थी, मानो ज्येष्ठा ( नक्षत्र ) के  
 पासवाली, नये जलसे परिपूर्ण पयोधरोसे युक्त पावस-श्री ही हो । वसतमासमे शुक्लपक्षकी  
 पचमीको निर्मल-चद्रमाके रोहिणी नक्षत्रमे स्थित होने पर उसने प्रत्यूषकालमे रोहिणी नक्षत्रमे  
 शुभलक्षणोसे युक्त, व कुलके लिए कल्याणकारी और जगवल्लभ अर्थात् सर्वलोकप्रिय पुत्रको  
 जन्म दिया । उस नगरीका क्या वर्णन किया जाये जहाँ कि दशो दिशाओको पूरनेवाले बघाईके  
 तूरो और मगलगान गाते व पढते तथा नृत्य करते हुए लोगोके कारण कान पडा कुछ सुनाई  
 नही देता था ॥७॥

[ ८ ]

तरुण, अरुण व दीप्त तेजवाले बालरविने अपने तेजके प्रसारसे निशात अर्थात् उप-  
 कालको अलंकृत किया, अथवा मानो उस शिशुने ही अपने अति आरक्तवर्ण व दीप्तिमान तेजके  
 प्रसारसे निशात अर्थात् राजगृह ( टि० ) को अलंकृत किया, तथा प्रसूति-गृहमे जलाये हुए  
 दीपकसमूहसे उत्पन्न दीप्तिको अपनी देहकातिसे निष्प्रभ करके दूर कर दिया । सुख, समृद्धि  
 एव अभ्युदयको बघाई देनेवाले लोगोके द्वारा बजाये जानेवाले पटुपटह, तीखे तरङ्ग, मदस्वरवाले  
 बहुतसे मर्दल, और उद्दाम व मधुर वेणु तथा बीणाकी ध्वनि एवं साल व कसालकी तालके  
 अनुमार आनन्दसे ईषन्मत हुई, धूमती हुई व नाचती हुई चंचलाक्षी तरुणियोके महासमूहोके

१४ क 'यड' । १५ क स ग ड आसणं । १६ क ड पचमि, घ पचमिहिं । १७ क ड दिवसत,  
 ख ग घ वसत । १८ क घ ड णउ । १९. घ ल उ । २० क घ ड दसदिसिं । २१ ख ग तहिं ।  
 २२. घ वणिगड । २३ क ड 'वडिउ, घ कल' । २४. घ नायणिगड' ।

[ ८ ] १ घ दिस । २ ख ग 'मरमदलुहाम' । ३ ख ग 'नच्चन्ति' ।

छट्टियपडिपट्ट-पट्टोल-पंडीपहावतनेत्तेहिं संछइयंमंडववियाणेसु  
 लंतंतमुत्ताहलादाम-झुल्लंतमाणिक्कुंनुक्सकावहायार-  
 पसरंतकिरणावलीजालचित्तिलियवरपंगणं ।  
 सेट्टिणा कणय-धणरयणवरवत्थविट्ठी<sup>५</sup> सम्माणिण सयल्लोयम्मि  
 छट्टे दिणे राइजायरणपमुहुच्छवे सुरवराणं पि चित्ते चमक्कादिणी १०  
 का त्रि अंवइण<sup>६</sup> अण्णासिरी एव नयरंतरं तत्थ जायं जणाणंदवद्धावणं ।

अवि य-अकत्तिए निरंतरंतरं हुयं निरम्भमंवरंवरं ।  
 अपाउसे असारयं रयं धरायले<sup>७</sup> नव निक्खयं<sup>८</sup> खयं ।  
 अयालरुक्खसंतई तई पडुल्लिया वणासई सई ।  
 सुवण्णविट्ठीभासुरासुरा मुअंति<sup>९</sup> तत्थ सासुरा सुरा । १५  
 घत्ता—कल्लाणपरंपरे इसम<sup>१०</sup> वासरे सवणसुहावणु हिययपिउ ।  
 जंयुहलनिवेसे सिविणुहेसे<sup>११</sup> नामे जंयूसामि किउ<sup>१२</sup> ॥८॥

[ ९ ]

दिणे दिणे देहरिद्धि परिवड्डइ<sup>१</sup> बीयाइंदु व वालु विगड्डइ<sup>२</sup> ।

परस्पर सघट्टनसे टूटते हुए आभरणोके मणियोसे चतुष्पथ मंडित हो गये । लटकाने हुए प्रतिपट्ट व पटोल, पाङ्च देश निमित्त नेत्र नामक वस्त्रोसे छाये हुए मंडपवितानोमे लटकती हुई मुक्ता-फलोकी मालाएँ व झूलते हुए माणिक्यके झूमकोसे फैलते हुए इद्रायुधके समान पंचवर्ण किरण जालसे घर-प्रागण चित्रित जैसे हो गये । श्रेष्ठिके द्वारा धान्य, धन, रत्न व उत्तम वस्त्रोकी वर्षा अर्थात् अपरिमाण भेट द्वारा सब लोगोका सन्मान किये जानेपर छठे दिन रात्रि-जागरण प्रमुख उत्सवके समय देवताओके चित्तको भी चमत्कृत करनेवाली कोई अपूर्व ही शोभा उस नगरमे अवतीर्ण हुई, और इस प्रकार लोगोका आनंद बढ़ा ।

और भी—कार्तिक नहीं होनेपर भी आकाश निरतिशयरूपसे अभ्रमुक्त हो गया; तथा वर्षाकाल नहीं होनेपर भी असार (शुद्ध) रज मानो धरातलमे पूर्ण उपशमको प्राप्त हो गया । उससमय काल (ऋतु) नहीं होनेपर भी न केवल वृक्षसंतति, बल्कि समस्त वनस्पति स्वयं प्रकर्षतासे प्रफुल्लित हो उठी, और असुरकुमारो सहित देवोंने वहाँ सुराके समान भास्वर सुवर्णकी दृष्ट की । इसप्रकार निरंतर मंगल मनाते हुए दसवे दिन स्वप्नमे जवूफलोके दर्शन और उसके फलके कथनानुसार श्रावणसुखद व हृदयको प्यारा जवूस्वामो नाम रखा गया ॥८॥

[ ९ ]

प्रतिदिन बढ़ती हुई देह-ऋद्धि अर्थात् दैहिकसौंदर्यके साथ बालक द्वितीयाके चद्रमाके

४ क इ सल्लवियं । ५ क व ड विट्ठीए । ६ ख ग रायं । ७ घ इड्ड । ८ घ ड एम । ९ घ धरणेवक ।  
 १० क छ ति । ११ ख ग मयपति । १२ क घ ड मड । १३ ख ग घ हेसि । १४ ख ग कियउ ।

[ ९ ] १ क व ड यड्डइ । २ ख ग पवं ।

- जंतु जंतु महणइवित्थारु व सूयमाणपिंगलपत्थारु व ।  
 विचरियंतु<sup>४</sup> विडसहिं वायरणु व वारहविहत्तेण मुणिचरणु व ।  
 अट्टवरिसकपेण कुमारें पुण्णावज्जियविज्जापारे ।  
 ५ गुरुपाठणनिमित्तमंतत्थइ<sup>५</sup> जाणियाई<sup>६</sup> पडियाई<sup>७</sup> व<sup>८</sup> सत्थइ<sup>९</sup> ।  
 संपाइयतिग्वगफल रसियउ नीसेसाउ कलउ अउभसियउ ।  
 जिह् जिह् तरुणभावे संलग्गइ<sup>१०</sup> रुवभिकख<sup>११</sup> तिह रइवइ मग्गइ<sup>१२</sup> ।  
 हउ<sup>१३</sup> भूसिय किर एण कुमारे अप्पउ सलहिज्जइ सिगारे ।  
 बहुकालेण थिराप्प सइत्तिए तिहुअणभमि<sup>१४</sup> गमु सज्जिउ कितिए ।  
 १० नरसंक्रमणपरंवरचवलप्प<sup>१५</sup> किउ वीसामयासु<sup>१६</sup> थिरु कमलप्प<sup>१७</sup> ।  
 घत्ता—सहुं रायकुमारहिं<sup>१८</sup> पेसणयारहिं<sup>१९</sup> परिमिउ<sup>२०</sup> रायलीलधरइ<sup>२१</sup> ।  
 उवहुजियभोयहिं परमविणोयहिं नाणाविह-कीलउ करइ ।

चबुरु तं न तं नै चरु<sup>२</sup> राउलु  
 जेत्थु न जंबुसामि वणिज्जइ

तं न हट्टु बज्जाणु न देउलु ।  
 गिज्जइ नच्चिज्जइ न पडिज्जइ ।

समान इसतरह बढने लगा, जैसे जाते-जाते महानदीका विस्तार, दिन-दिन फूलता हुआ चक्र-वर्तीका क्रोश, अथवा सुनते-सुनते पिंगल-ग्रंथका विस्तार, विद्वानोंके द्वारा व्याख्या किया जाता हुआ व्याकरण, और बारहविध तपसे मुनिका चारित्र्य बढ़ता है आठ वर्ष आयु होनेपर कुमारने सकल विद्याओंका पार पा लिया। गुरुके पढ़ानेके निमित्तसे उसने मंत्रार्थों अर्थात् सूत्रोंके मंतव्योंको और शास्त्रोंको पहलेसे ही पढ़े हुएके समान जान लिया। त्रिवर्गफल अर्थात् धर्म, अर्थ व कामका संपादन करनेवाली और (चित्तमे) रस अर्थात् आनंद उत्पन्न करनेवाली नि शेष कलाओंका अभ्यास कर लिया। जैसे-जैसे वह तरुणावस्थामे प्रवेश करने लगा, वैसे-वैसे रतिपति ( कामदेव ) उससे रूपभिक्षा मागने लगा— इस कुमारसे सचमुच मैं भूषित हो गया, क्योंकि शृंगारसे ही अपनी सराहना होती है। बहुत कालसे स्थिर सोयी हुई उस कामदेवकी कीर्तिने त्रिभुवनमे भ्रमणके लिए गमनकी तैयारी की। परंपरासे ही एकसे दूसरे मनुष्यमे संक्रमण करनेके चंचल स्वभाववाली कमला ( लक्ष्मी ) ने जंबूस्वामीरूपी कमलमे स्थायी विश्राम-स्थान बना लिया। आज्ञाकारी राजकुमारोसे विरा हुआ वह जंबूकुमार राजलीलाको धारण करता हुआ व भोगोंको भोगता हुआ, परम विनोदपूर्वक नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगा ॥ ९ ॥

[ १० ]

ऐसा कोई चौक नहीं था, न घर और न राजकुल, न हाट, उद्यान और न देवकुल जहाँ जंबूस्वामीका वर्णन नहीं किया जाता, तथा उसका नाम ले-लेकर गाया, नाचा व

३. क महणइ<sup>१</sup> । ४ क ड विचरि<sup>२</sup> । ५ ड सुममत्तवड<sup>३</sup> । ६ क याड, ड जाणिया य । ७ क ड पडिया इव, घ प डिया उव । ८ क ड इ । ९ क ड रमि । १० क मग्ग । ११ क रूप । १२ घ ड । १३ ख ग हउ । १४ ख ग सए । १५ क घ ड तिहुयणु । १६ क ड चवलउ, र ग चवलइ । १७ क ड वीसमण, र ग वीसामु थाम । १८ क ड लउ । १९ घ रहिं । २० र ग यारहिं । २१ र ग परमिउ । २२ क ड ।

[ १० ] १. क ख ग ड त ण । २ ख ग घर । ३ घ वति । ४ क ट पडि ।

धवलजसेण भुअणु<sup>५</sup> धवलीकिउ णं छणससिजोण्हारसलिपिउ<sup>६</sup> ।  
 कवणु हत्थि जो अत्थि न सुरकरि<sup>७</sup> सा सरि कवणं न हुय जा सुरसरि<sup>८</sup> ।  
 सो मणि कवणु जो न सुत्ताहलु सो न गिरिदु जो न तुहिणायलु ।  
 सो कहि<sup>९</sup> पक्खि हंसु हुउ जो नहि<sup>१०</sup> कवणु समुददु जो न खोगेवहि ।  
 जो न वि सेसु कवणु सो विसहर पायउ कवणु<sup>११</sup> न लुह-महातरु ।  
 दंसणे खुहिउ<sup>१२</sup> नयरनारीयणु मयरद्वयसरपहर<sup>१३</sup> सवेयणु ।  
 घत्ता—क वि त्रिहं कपड सुणउ<sup>१४</sup> जंपड<sup>१५</sup> नियउ कुमारे हिययधणु<sup>१६</sup>  
 मइ दुक्कवसहावड<sup>१७</sup> विप्रउ भावड<sup>१८</sup> वीयउ अत्थि कि कहि मि मणु ॥१०॥ १०

[ ११ ]

काहि वि विरहाणलु<sup>१</sup> संपलित्तु अंसुजलोहलिउ<sup>२</sup> कयोले<sup>३</sup> खित्तु ।  
 पल्लट्टइ हत्थु करंतु सुणु<sup>४</sup> दंतिसु चूडल्लउ चुणु<sup>५</sup> चुणु<sup>६</sup> ।  
 काहि<sup>७</sup> वि हरियंदणरसु रमेइ लगंतु अंगे छमछमछमेइ ।

( स्तुतिपाठ ) पढ़ा नहीं जाता । उसके धवल यगने भुवनको इसप्रकार धवलीकृत कर दिया, मानो पूर्णचंद्रमाके ज्योत्स्नारूपी रससे लीप दिया गया हो । ऐसा कौनसा हाथी था जो ( उसके धवलयगनसे अभिभूत होकर ) ऐरावत न हो गया हो, ऐसी कौन-सी नदी थी जो सुरसरि गंगा न हो गयी हो; ऐसा कौनसा मणि था जो मुक्ताफल न हो गया हो और ऐसा कोई पर्वत न था जो तुहिनाचल अर्थात् हिमालय न हो गया हो, ऐसा कोई पक्षी कहाँ था जो हंस न हो गया हो, और ऐसा कौनसा समुद्र था जो क्षीरोदधि न बन गया हो; जो गोप ( नाग ) न बन गया हो, ऐसा विपवर कौन रह गया था; और ऐसा पादप कौनसा था जो लोघ्रका महावृक्ष नहीं बन गया था । उसके दर्शनसे नगरकी नारियाँ मकरध्वजके गरप्रहारकी वेदनासे झुग्न हो उठी । कोई विरहसे कांपने लगी; व गून्य भावसे आलाप करने लगी कि मेरा हृदयरूपी धन तो इस कुमारके-द्वारा ले लिया गया, फिर भी जो मुझे दुःखका सहन ( वेदन ) कराता है, उससे मुझे विस्मय होता है, कि कहीं कोई दूसरा भी मन ( हृदय ) है क्या ( जो इस कुमारके साथ नहीं गया ) ? ॥१०॥

[ ११ ]

किसी कामिनीका विरहानल प्रदीप्त हो उठा, और वह अथुजलके पूरके द्वारा कपोलों पर विखर गया । कोई गून्य वनाती हुई हाथको घुमाने लगी जिससे उसका दाँतका वना चूड़ा चूर-चूर हो गया अथवा कोई इस तरहसे हाथ घुमाने लगी जिससे उसका हाथीदाँतका वना चूड़ा हाथको शून्य करके ( अर्थात् हाथसे गिरकर ) चूर-चूर हो गया । किसीने लालचंदनका

५ क व ड भुवणु । ६ व 'जोण्हारस', ख ग 'जोण्हारमि' । ७ क व ड कवणु ण ( व न ) अत्थि हत्थि; ख ग कवणु ण हत्थि अत्थि । ८ ख ग 'णु' । ९ ख ग 'मरे' । १० ख ग कहि । ११ क ड णहि; ख ग नहि । १२ घ ज न्न । १३ क जोदु, घ न गोहं, छ न जोदु । १४ क व ड दंसण । १५. क व ड 'पहर' । १६ व सुत्तउ; ड 'उ' । १७ ख ग 'ड' । १८ ख ग हियउ । १९ क ड 'वड' । २०. ख ग 'ड' ।

[ ११ ] १ व 'नलु' । २. ख ग मे 'लिउ' नहीं । ३. क व ड 'ल' । ४. व 'नु' । ५. घ काहि । ६. क 'छमेइ' ।

- रत्तदणेण क वि सुसइ सित्त नं कामभल्लि-लोहिर्वावलित्त ।  
 ५ क वि कंजपुंजु पथरइ सलील दरिसावइ कामकरेणु कील ।  
 द्वियउल्लउ विरहे<sup>१०</sup> खयहो<sup>११</sup> जंतु नीसासुल्लिखणु<sup>१२</sup> जइ न हंतु ।  
 शुइमुहरवंदिसंदोहसारो<sup>१३</sup> रच्छा<sup>१४</sup> जंतु जाणेवि कुमार ।  
 बाहुलयनिविसियकंचुया<sup>१५</sup> कंठालु न<sup>१६</sup> पारिय देवि ता<sup>१७</sup> ।  
 १० उत्तालिया<sup>१८</sup> गलि न किउ हार अद्धंजिउ एकु जि नयणु फार ।  
 एकु जि बलउल्लउ करि करंति विलुलियकवरीभरथरहरंति<sup>१९</sup> ।  
 असमत्तमंडणुम्मायभग्ग फलिहुल्लयतोरणखंभे लग्ग ।  
 पयडियथण अहरु डसंतिवाल मयजलभरंत जंघंतराल ।  
 वोल्इ कुमार थिरु थाहि ताम तव<sup>२०</sup> रुवे लिहमि अणंगु जाम ।  
 घत्ता—कुलसीलसवणउ<sup>२१</sup> सियलावणउ<sup>२२</sup> कुंदघवल जसु नहे चडइ<sup>२३</sup> ।  
 १५ केवल-तिथ्यरहो नरहो न अवरहो सावणहो<sup>२४</sup> जणे संवडइ<sup>२५</sup> ॥११॥

[ १२ ]

अह तेत्थु जि जिणपयकमलभत्तु पुरि निवसइ सेट्ठि समुद्वत्तु ।

लेप लगाया जो उसके शरीरमें लगते ही ( विरहतापके कारण ) छमछम करके घटक गया । कोई रक्तचदनसे सीची जानेपर भी सूखने लगी, और ऐसी लगी मानो कामदेवकी लोहूसे लिप्त बरछी ही हो । कोई लीलापूर्वक कमलपुंजको बिखेरने लगी, और इसप्रकार कामोन्मत्त हस्तिनीके समान क्रीडा दिखलाने लगी । बेचारा क्षुद्र हृदय तो विरहसे क्षय ही हो जाता यदि विरहानलके तापको बाहर निकालनेके लिए निःश्वास रूपी रहट-यंत्र न होता । स्तुतिमुखर बंदीसमूहसे उस श्रेष्ठकुमारको रास्तेमें जाते हुए जानकर कोई जो कंचुकको बाहुओंमें पहन चुकी थी, वह उसे कठमै नहीं पहन पायी । कोई उतावलेपनके कारण गल्लेमें हार नहीं डाल सकी और अपने एक विनाल नेत्रको भी अबूरा ही अंजन लगा पायी । एक बल्यकी हाथोंमें पहनती हुई, केशपाशको लहराती हुई, तथा ( कमोत्तेजनासे ) कापती हुई, मंडनकर्मकी पूर्ण किये बिना ही कामोन्मादसे पीडित होकर स्फटिकमय तोरणस्तम्भसे जा लगी । कोई बाला जिसके स्तन प्रकट हो रहे थे और जिसकी जवाओका अन्तराल मदजल ( रजसाव ) से भर रहा था, वह कुमारको कहने लगी—जरा तबतक ठहर जा, जबतक मैं तेरे रूपकी अनुकृतिसे अनगको लिख लूं ( चित्रित कर लूं ) । उस कुलशौलसे संपूर्ण कुमारकी सौंदर्यलक्ष्मीका कुंदपुष्पके समान धवलयश आकाशमें चढ़ गया । केवली या तीर्थकरके अतिरिक्त लोगोमें अन्य किसी सामान्य व्यक्तिको ऐसा सौंदर्य प्राप्त नहीं होता ॥११॥

[ १२ ]

उसी नगरीमें जिनभगवान्के चरणकमलोका भक्त समुद्रदत्त नामका श्रेष्ठो रहता था ।

७. क घ ड वियं । ८ ख ग करेण । ९. प्रतियो में 'विरहि' । १०. क ड विलउ । ११. क ड 'ल्लिखणु ।  
 १२. ख ग शुइमुहर' । १३. क घ ड 'इ' । १४ प्रतियो में 'ण' । १५ क ड विउल्लियकवरीभय' ।  
 १६. ख ग घ तउ । १७. क घ ड 'णउ । १८ क 'ड' । १९ घ 'नहो' । २० क ड सचड, ख ग सावडइ ।

पिययम पडमावइ पडमवण<sup>१</sup>  
 वीथउ कुवेरदत्ताहिहाणु  
 उण्णण<sup>२</sup> तासु कणयसिरि दुहिय  
 वडसवणु<sup>३</sup> तइउ वडसवणजुति<sup>४</sup>  
 धणयत्तु<sup>५</sup> चउत्थउ कुवलअच्छि<sup>६</sup>  
 एयाउ चयारि कुमारियाउ  
 गउमे वि ठियउ पडिवणियाउ<sup>७</sup>  
 पइ होसइ जाणिवि भुअणसारु  
 इय कज्जे<sup>८</sup> कोउहलेण<sup>९</sup> ताउ  
 भासातय-लक्खणु-लक्खु मुण्डि<sup>१०</sup>  
 छंदाळंकार-निघंटसत्थु  
 गाएउउ नच्चेवउ सच्चित्तु  
 अवराइ<sup>११</sup> मि मुणियइ जाई जाई  
 यत्ता—तियरयणचउकउ घडिभि विमुकउ अंगरक्खु धणु-घाणकरु<sup>१२</sup>

पडमसिरिनाम<sup>३</sup> तहो पवरकण्ण ।  
 मालंतकणय-कंतासमाणु ।  
 वियसियसयवत्त-ससंकमुहिय ।  
 पिय विणयमाल विणयसिरिपुत्ति ।  
 विणयमइ-भल्ल सुय-रुवलच्छि ।  
 भल्लिउ मयणण व फेरियाउ ।  
 पियरेहिं कुमारहो विणियाउ<sup>७</sup> ।  
 नीसेससत्थसंपत्तापारु ।  
 नाणाविह-विज्जउ सिक्खियाउ ।  
 दंसण-नणहिं सहू तक्कु मुण्डि<sup>१०</sup> ।  
 धम्मत्थ-कामकारणु पसत्थु ।  
 वीणाइवज्जु<sup>११</sup> जाणिउ<sup>१२</sup> विचित्तु ।  
 को लक्खेवि सक्कइ ताइ<sup>१३</sup> ताइ ।

५

१०

१५

रडवइ तहो जडियउ दइवे घडियउ<sup>१४</sup> विद्धइ<sup>१५</sup> अवलोयंतु निरु<sup>१६</sup> ॥१२॥

उसकी पद्मके समान गौरवर्ण पद्मावती नामकी प्रियतमा थी, उसे पद्मश्री नामकी श्रेष्ठ कन्या हुई। दूसरा कुवेरदत्त नामका था, उसको कनक(सुवर्ण)मालाके समान सुंदर कनकमाला नामकी काता थी, उसे कनकश्री नामक दुहिता हुई, जो विकसित वतपत्र व गंगाके समान मुखवाली थी। तीसरा वैश्रवण ( कुवेरके ) समान युक्तिवाला ( अर्थात् धनके सवर्द्धन, संरक्षण एवं संविभाजनमें कुशल ) वैश्रवण नामका श्रेष्ठो था, जिसकी विनयमाला नामक भार्या, व विनयश्री नामकी पुत्री हुई। चौथा धनदत्त था, उसकी कुवलय अर्थात् नीलकमलके समान नेत्रवाली विनयमती नामकी भार्या, व रूपश्री नामकी कन्या हुई। ये चारो कुमारियां मानो मदनके-द्वारा ( लोकोपर ) घुमायी हुईं वरछियां हो थी। जब ये गर्भमें ही थी, तभी इनके पिताभोजे-द्वारा ये कुमारके लिए दे दी गयी और इन्हे स्वीकार कर लिया गया। यह जानकर कि अगेष शास्त्रसंपत्का पारगामी व लोकमें श्रेष्ठ कुमार इन लोगोंका पति होगा, इस हेतुसे इन सबको नाना विद्याएँ सिखायी गयी। इन कन्याओंने तीनों भाषाओं ( संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश—टि० ) को जाना, लक्षणशास्त्र ( व्याकरण ) को जाना और उसके लक्ष्य अर्थात् साहित्यको भी जान लिया। दर्शनशास्त्र व न्यायशास्त्रके साथ तर्कशास्त्रको भी सुना। छंद, अलंकार व निघंटुशास्त्रको भी जाना, और धर्म, अर्थ व कामके प्रगस्त साधनोको भी जान लिया। विविधप्रकारका गाना व नाचना सीखा, और अनेकप्रकारका वीणादि वाद्य भी। और भी उन्होंने जो-जो कुछ सीखा, उस सबको कौन लक्ष्य कर सकता है ( कौन कह सकता है )। विधाताने एक स्त्रीरत्नचतुष्क गढ़कर छोड़ दिया, और धनुष व बाणको अपने हाथमें

[१२] १ घंन । २. ख ग नामे । ३. ख ग वयं । ४. ख-ग वयसवणं । ५. ख ग मेतु  
 ६. क घ ङ यच्छि । ७. घ पडिवन्नि । ८. घ विन्नि । ९. क घ ड कज्ज । १०. क कोहल्लेण,  
 घ उ हल्लेण । ११. घ उ । १२. क ग मु । १३. क घ ङ वीणावज्जु व । १४. प्रतियो मे जाणिउ ।  
 १५. क ख ग ड राड । १६. क ताइ ताइ । १७. क वाणु । १८. क यउ । १९. क घ ड विवड ।  
 २०. क ड णक्, ख ग नर ।



[ १३ ]

- तहुँ<sup>१</sup> नवल्लु जोळणु उम्मीलइ  
 घोळइ चिहुरभारु पठ्भारे  
 आरंचिय बिलुलइ अलयावलि  
 अळेदु व निलाडु<sup>२</sup> संकिणणउ<sup>३</sup>  
 ५ वंकुज्जलु भूजुयलउ भाविउ  
 तिवल्लकडक्खनयणसरलाइय  
 नासावंसु सरलु जगु मोहइ  
 कोमलझुणि<sup>४</sup> वीण व झकारइ<sup>५</sup>  
 अचल्लकवोलजुयलु मुहं तडियउ  
 १० रेहाइदु कंटु कलु छज्जइ<sup>६</sup>  
 बाहुजुयलु मुणि मणु बि विडवइ<sup>७</sup>  
 उकुकरिय<sup>८</sup> -सिहिणपीवरतड  
 मयणवाहु पारद्धि व कीलइ<sup>९</sup>  
 वग्गुरपासु व मंडिउ मारे।  
 नं अणनैअगुलिताणावलि।  
 मुड्डिगाहु धणुमल्लि व दिण्णउ<sup>१०</sup>।  
 णं रइणाहुं चाउ चडाविउ।  
 जण वणयर विद्धंतुद्धाइय<sup>११</sup>।  
 अहरमुइ करमुइ व सोहइ<sup>१२</sup>।  
 धणुगुणु<sup>१३</sup> मयरचिधु टंकारइ<sup>१४</sup>।  
 विहि<sup>१५</sup> भावहिं<sup>१६</sup> ससिखंडु व<sup>१७</sup> घडियउ।  
 विजयसंखु कंदप्पहो<sup>१८</sup> नज्जइ।  
 मालइदामु<sup>१९</sup> व कामहो<sup>२०</sup> लवइ<sup>२१</sup>।  
 रइवइरायहो<sup>२२</sup> नं मज्जणघड।

धारण किये हुए मदनको भी निर्मित करके उसके अगरक्षकरूपसे उसीमे जड़ दिया, जो उसकी ओर देखनेवालेको निश्चित बोध डालता था ॥ १२ ॥

[ १३ ]

उनका नवीन यौवन उन्मीलित होने लगा, मानो मदनके बाहु मृगयाके लिए क्रीड़ा करने लगे। उनका घना चिकुरभार ऐसा लहराता था, मानो मारने (कामोजनरूपी) पशुओंको फँसानेवाला फंदा ही सजाया हो। उनकी घुँघराली अलके इसप्रकार लोट-पोट होती थी, मानो अनंगकी अगुलियोसे उत्पन्न होनेवाली स्वर-लहरी हो। उनका ललाट अर्द्धचंद्रके समान संकीर्ण था, और मध्यभाग (कटि) ऐसा था, जो मुट्ठीमें आ सके, जैसी कि धनुषके मध्यमे मूठ होती है। उनका भ्रूयुगल ऐसा बाँका व उज्ज्वल था, मानो रतिनाथने चाप खींचा हो। उनके सरल तथा तीक्ष्ण कटाक्ष युक्त नेत्र जनसमूहरूपी वन्य-पशुओंको वीक्षते हुए विस्तीर्ण होते थे। उनकी सुंदर नासिका सारे लोकको लुभाती थी, और अधरोकी मुद्रा (रचना) करमुद्रिकाके समान (वर्तुलाकार व अत्यन्त छोटी और पतली) गोभायमान थी। उनकी कोमलध्वनि वीणाके समान ऐसी श्रृंगृत होती थी, मानो मकरध्वज धनुषकी डोरीकी टंकार कर रहा हो। मुख तक फैला हुआ उनका स्वच्छ-सुंदर कपोल-युगल ऐसा था, मानो दोनों ओर एक-एक चंद्रखंड ही निर्मित कर दिया गया हो। रेखाओंसे युक्त उनका कोमल कंठ ऐसा शोभायमान था, जो कंदर्पके (त्रिभुवन-) विजयसूचक शंख जैसा जान पड़ता था। उनका बाहुयुगल मुनियोके मनको भी पीड़ा देता था, और ऐसा लगता था मानो मदनकी मालतीमाला ही लटकी हो। उनके खूब ऊपर उठे हुए स्थूल स्तन ऐसे थे, मानो मदनराजाके

[ १३ ] १ क घ ड तहो। २ क ई। ३ घ अणंत। ४ क घ छ निडालु। ५ क ट ण्णउ, घ ण्णउं। ६ क ड ण्णउं, घउ १७ घ उज्जल। ७ क घ ड विवणु। ८ क ई। ९ क वीणज्जकार। १० क ड ण्णुण, ख ग वणं। ११ क घ रइ। १२ ख ग विहिं। १३ क ई। १४ क घ ट मनि लडियि। १५ क ई। १६ ख ग, ण्णुहो। १७ क मालइ। १८ ख ग कामु व। १९ क ई। २० क ग विकरिय। २१ ख ग रइवइ।

गुलियाधनु विणो<sup>२३</sup> कामे किउ<sup>२४</sup> गुलियाठाणु नाहिमंडलु किउ ।  
 अइकिणह<sup>२५</sup> दोह<sup>२६</sup> उवरि ग<sup>२७</sup> वदधु वलित्तउ वररोमंच<sup>२८</sup> ।  
 जणमणतुरयथट्टभासंतहो<sup>२९</sup> कडियलु बाहियालि रइकंतहो । १५  
 रंभागन्भोदयरइरामहो<sup>३०</sup> तोरणखंभु व वम्महधामहो ।  
 कुम्मायारु चलणजुयलुल्लउ दरवियसियपंकवपडितुल्लउ<sup>३१</sup> ।  
 घत्ता—अह ताह<sup>३२</sup> सउण्ण<sup>३३</sup> तं लायण्ण<sup>३४</sup> जो वण्णइ<sup>३५</sup> सो कवणु कइ ।  
 जहि देसि न दिट्ठउ ताउ अहिट्ठिउ<sup>३६</sup> तहि<sup>३७</sup> उज्जलउ सुवण्णु जइ<sup>३८</sup> ॥१३॥

[ १४ ]

गाहाचउकं—रइविप्पओयैसंतत्तमयणसयणं व कुसुमसंबलियं ।  
 धारंति ताउ विट्टुमहोरयंरुइदंतुरं अहरं ॥ १ ॥  
 एथाण वचणतुल्लो होमि न होमि न्ति पुण्णिमादियहे<sup>३</sup> ।  
 थिरमंडलाहिलासी चरइ व चंद्रायणं चंदो ॥२॥  
 चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहि सूरकरसहणं । ४  
 चिज्जइ तवं वं सलिलं नियथं विसूण गलपमाणम्मि ॥३॥

स्नानघट ही हो । उनका नाभिमंडल ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेवने विनोदपूर्वक गुलिया-धनुष ( गुलेल ) बनाया हो, जिसमें उनका नाभिमंडल तो गुलिया ( गुटिका रखने-का स्थान ) था और वलित्रयरूपी धनुष, जो उसके ऊपर चढ़ी हुई विलकुल काली, दीर्घ एवं सुंदर रोमराजिरूपी प्रत्यंचासे बँधा था । उनका कटितल ( नितम्ब प्रदेश ) लोगोके मनुष्यी अश्वसमूहको भ्रमण करानेवाले रतिकात ( कामदेव ) के अश्व श्रीङ्गास्थलके समान ( अतिविस्तीर्ण ) था । मानो वे रम्भाके गर्भसे उत्पन्न रतिके राम- ( अर्थात् मन्मथ ) के भवनके तोरणस्तम्भ ही थी । उनके कूर्माकार चरणयुगल ईषत् विकसित कमलपत्रके समान थे । उनके उस संपूर्ण लावण्यका जो वर्णन कर सके वह कौन कवि है ? यदि सारे देशमें कहीं उज्ज्वल व सुंदर वर्ण दिखाई नहीं देता, तो ( निश्चयसे ) उसने वहाँ उन कन्याओको अधिष्ठित कर लिया है ॥१३॥

[ १४ ]

रतिके वियोगसे संतप्त ( अतएव अति श्वेतवर्ण ) मदनकी कुसुमोसे व्याप्त गैय्याके समान उन कन्याओके अघर विद्रुम और हीरककी शोभासे विलक्षण थे, अर्थात् विद्रुमवर्णके उनके अधरोष्ठ हीरकके समान धवल दंतपक्वितसे दंतुरित ( स्फुरायमान ) थे । ' पूर्णिमाके दिन भी मैं इनके मुखके समान होऊंगा या नहीं होऊंगा, इस गकासे ही मानो स्थिर ( पूर्ण ) मंडलकी अभिलाषा करनेवाला चंद्रमा मास भर चांद्रायणव्रत करता है । उनकी चरणचलविकी तुल्यता चाहनेवाले कमलोके-द्वारा अपनेको गले तक जलमें डुओकर सूर्यकी किरणोको सहते

२३ क घ ड विलोए । २४ क कामुकिज । २५ ख घ किन्ह । २६ ख ग भाए, व गएं । २७ क घर, ड धरं, ख ग रोमचिए । २८ क ड तुरिय, ख ग तुरियट्टु । २९ ख ग गन्भोद व रवं । ३० क ड पकयदल । ३१ क ख ग ड ण्णउ, घ अउ । ३२ क घ ड ण्णउ । ३३ क घ ड ड । ३४ ख ग घ डउ । ३५ ड तहि । ३६ क जड ।

[ १४ ] १ क ड रइविप्पओय । २ ख ग होरड । ३ व पुणिमा । ४ ख थियं ग पियं । ५ क ड हिलास । ६ क ड वि । ७ क च

सलवट्टिखाइयालं नार्हादुग्गन्मि तिबलिपाचारं ।

हरडञ्जनायकानो रोमावलिधुजिरं<sup>१०</sup> लीणो ॥१॥

दोहउ—जाणमि एकु जि विहि बड्ड सज्जु वि जगु सामणु ।

१० जे पुणु आयउ निम्मविउ<sup>११</sup> को वि पयावइ<sup>१२</sup> अणु ॥१॥

नं लावण्यु नियवि<sup>१३</sup> नं जोन्नणु धरि हासिबल्लवेरसंपयणु ।

सायरवत्तपसुद्धवणिउत्तहिं<sup>१४</sup> मुचइ अरुहयामु नयजुगहिं ।

मित्त कुमारभावे रइवंगहिं<sup>१५</sup> क्रिय पइज पंचहिं<sup>१६</sup> मि रनंतहि ।

एकदो पुत्तु होइ जइ वणगउ<sup>१७</sup> इयरहैं चउहुं<sup>१८</sup> नि जायहिं<sup>१९</sup> कणगउ<sup>२०</sup> ।

१५ तो सहो पियरहिं<sup>२१</sup> दुहियउ देवउ<sup>२२</sup> तेण वि वरेण ताउ परिणवउ ।

पुणवसेग उत्तु तुह<sup>२३</sup> जायउ तिहुयमनियकित्तितिविन्नायउ ।

अरुहैं पुणु मुणालकोनलकरु कणवउत्तु जाउ लम्बवणधरु ।

संगइ पुनवमणिउ<sup>२४</sup> पालिजउ<sup>२५</sup> पाणिगहणु कुमारदो किजउ<sup>२६</sup> ।

पमणइ<sup>२७</sup> अरुहयामु नासंबमि अज्जु कलि किर तुहहैं<sup>२८</sup> संधमि ।

२० एवहिं तुहहैं सई जि पुहु दुत्तउ<sup>२९</sup> लइ किजउ<sup>३०</sup> परिणयणु निरुत्तउ ।

ठविउ विवतल्लगु<sup>३१</sup> वगरासिप्र<sup>३२</sup> अक्खयत्तइयदिवसे जोइसिप्र<sup>३३</sup>

हुए नानो तप संचय किया जाता है । उनके रूपको देखकर कामवाणोस विद्ध होनेसे (उमपर ब्रुद्ध हुए) नहारेके द्वारा भस्म किया जाता हुआ कामदेव मानो उनके, नाभिके नीचेको गहरी रेखादारी छाईसे युक्त त्रिवलीरूपी प्रकारसे घिरे हुए तथा रोमराजिके कारण वृज्वपंके, नाभि-दुर्गमें बिलीन हो गया है । मैं तो ऐसा समझता हूँ कि एक विवि (बह्मा) सारे लोक सामान्यको गढ़ता है, पर जिनने इनको गढ़ा है, वह तो कोई दूसरा ही प्रजापति है ।

(उन कन्याओंके) उस लावण्य और उस यौवनको देखकर घरमें कुवेरको धनपंथिका भी उपहास करनेवाले सागरवत्त प्रनुल न्यायनीतिवात् वणिक्पुत्रोंने अरुहदासको कहा— मित्र ! कुमारवस्थानें परस्पर प्रीतिवत्त हम पाँचोंने क्रीड़ा करते हुए यह पैज (प्रतिज्ञा) की थी, यदि एकको भग्यवात् पुत्र हो, व इतर चारोंको कन्याएँ हो जायें तो कन्याओंके पिताओंके द्वारा वे कन्याएँ उस- (पुत्रके पिता) को दे दी जानी चाहिएँ, व उसके द्वारा उन कन्याओंका अपने पुत्रमें परिणय करा दिया जाना चाहिए । पुण्यवत्त तुम पुत्र हुआ है, जिसकी विख्यात-कीर्ति तीनों भुवनोंमें जमग करती है, और इतर हम लोगोंको मृगालके समान कौनल करवानो, लक्षणसंपन्न चार कन्याएँ हुई हैं । तो अब पहले कहे हुए का पालन किया जाये, और कुमारका पाणिग्रहण कर लिया जाये । अरुहदासने कहा—‘मैं स्वयं तो कुछ निश्चय करता नहीं, आज या कल आप लोगोंकी ही खोज करता । तो लीजिये, इसी मध्य आप लोगोंने प्रकटहृत्से जैसा कहा, तदनुसार परिणय निश्चित कर दीजिये । धनराशिमें सुकल्पय-

८. ख ग टांके । ९. क टो । १०. क घ ड धूनिरो । ११. प्रतिज्ञां हि । १२. क निम्मिउ, घ ड निम्मिउ । १३. क उं । १४. क घ ड ङ्गु । १५. क घ ड निणुहि । १६. घ हि । १७. घ ट उ । १८. ख ग टु । १९. क हि । २०. ख ग टेहे । २१. ख ग वेविउ । २२. न ग नु । २३. प्रतिज्ञां उं । २४. क घ ड उ । २५. क घ ड ङ्गु । २६. घ ड । २७. क घ ड ङ्गुमि । २८. क ट प । २९. ख ग ट । ३०. न ग विवतल्ल । ३१. ख ग टांके, धरालिग । ३२. न ग उगुं । ३३. क ट ङ्गु । न नंइवें घ जोइसिप्र ।

घत्ता—राय नियय-निवासहि<sup>३४</sup> पुणजयासहि<sup>३५</sup> पंच वि बडिहयमाणगिरि<sup>३६</sup>  
तत्त्वखणे अवङ्गणी<sup>३७</sup> जणसंकिणी<sup>३८</sup> सेट्टिचरोहिं विवाहसिरि ॥१४॥

[ १५ ]

पंचहि <sup>३</sup> मि घरहि <sup>३</sup> पंचपयारु	गाइज्जइ मंगलु धवलसारु ।	
पंचहि <sup>३</sup> मि घरहि <sup>३</sup> पंचंगु सज्जु	सुम्मइ <sup>३</sup> बद्धावळ <sup>३</sup> त्रवज्जु ।	
पंचहि <sup>३</sup> मि घरहि <sup>३</sup> पंचसु ज्जुणति	सरभेयहि <sup>३</sup> वज्जइ <sup>३</sup> भडुरतंति ।	
पंचहि <sup>३</sup> मि घरहि <sup>३</sup> रइरसनिहाणु	सज्जियधणु वियरइ <sup>३</sup> पंचवाणु ।	
पंचहि <sup>३</sup> मि घरहि <sup>३</sup> वणुज्जलीळ	दिज्जंति रयणरंगावलीळ ।	५
पंचहि <sup>३</sup> मि घरहि <sup>३</sup> वणुज्जलीळ	वज्जंति सुपल्लवनोरणाइ <sup>३</sup> ।	
इय तहि विवाहसामगि जाम	विलसंतु वसंतु पडुत्तु ताम ।	
संचरइ सुहावणु मलयपवणु	विज्जाहरमाणिमाणदवणु <sup>३</sup> ।	
सरलावियकेरलिकुरुलभंगु <sup>३</sup>	विरहिणितिलंगिनीसासंगु ।	
सज्जइरिणायियसुक्कवंसु <sup>३</sup>	<sup>३</sup> कण्णाडिकणिरकण्णावत्तंसु <sup>३</sup>	१०
कुतलिकुतलभरपत्तखलणु	मरहडिथोरथणवट्टवलणु <sup>३</sup> ।	

को अक्षय तृतीयाके दिन विवाह लग्न स्थापित किया गया । (तदनंतर) वे लोग जग (समस्त पौरजन) की आशाओंको पूर्ण करनेवाले अपने-अपने घरोंको गये । उन पांचोका ही मानपवंत बढ़ गया, और तत्क्षण उन सबके घरोंमें लोगोके आवागमन इत्यादिसे संयुक्त विवाहश्री अवतीर्ण हो गयी ॥१४॥

[ १५ ]

पाँचो ही घरोंमें पाँच-परमेष्ठियोंके ( टि० ) पाँचप्रकारके धवल व श्रेष्ठ मंगल गाये जाने लगे । पाँचो ही घरोंमें पाँच अंगोंसे युक्त बधाईके तूरोका वाद्य सुनाई देने लगा । पाँचों ही घरोंमें पंचमरागकी धुन आलाप करता हुआ, स्वरभेदोंसे युक्त मधुर वीणावादन होने लगा । पाँचो ही घरोंमें धनुषको लिए हुए रतिसका निधान पंचवाण अर्थात् कामदेव विचरण करने लगा । पाचो ही घरोंमें उज्ज्वल वर्णके रत्नोंकी रंगावली ( रंगोली ) दी जाने लगी, तथा पाँचो ही घरोंमें लोगोके मनकी आकृष्ट करनेवाले सुंदर पल्लवोंके तोरण बांधे जाने लगे । इसप्रकार जब वहाँ विवाह सामग्री हो रही थी, इतनेमें विलास करता हुआ वसंत आ पहुँचा । विवाधर मानिनियोंका मानमर्दन करनेवाला सुहावना मलयपवन चलने लगा । केरलियोंकी कुटिल केशरचनाको सरल बनाता हुआ, विरहिणी तैलंगियोंके निःश्वास उत्पन्न करता हुआ, सहादिके सूखे वासोंको रुग्णगता हुआ, कर्णाटियोंके तालपत्र निर्मित कणवत्तंसको कणकणाता हुआ, कुतलियोंके कुतलभारको स्खलित करता (बिखराता) हुआ, मराठिनियोंके स्थूल स्तनवृत्तका

३४ क पिय आवासहि । ३५ क ड वट्टिय । ३६ व सी ।

[१५] १ क घ ड घरहि । २ क ड लु । ३ ख ग हि । ४ क घ ड ह । ५ क घ ड वणु । ६ ख हि । ७ ग रडरु । ८ क घ ड विरयइ, ख विरडय । ९ क ख ग ड हि । १० क घ ड वणु । ११ ख ग कुरुलभगु । १२ क ड विज्जइरि; ख ग सज्जइरि । १३ घ कणाडि । १४ घ कणावत्तंसु । १५ क ड थणभार, घ थणचार

तावियडिवियडचुंविनियंयुं<sup>१०</sup> उदीवियरइरंधीविडंयुं<sup>१०</sup> ।  
 झंकोलिरपरिहणपडिविहाउ पयडियमालविणिदरोरुभाउ ।  
 मजरियसहयारकसाइयंतु वेइलफुल्ल<sup>११</sup> पाडले मिलंतु ।  
 १५ घत्ता—<sup>११</sup> कामहो दीसइ रत्तउ वियसइ<sup>११</sup> फुल्ल<sup>११</sup> पलासहो वंकुडउ ।  
 कडहंतहो<sup>१२</sup> कीवइ<sup>१२</sup> विरहिणि जीवइ<sup>१३</sup> रुहिरलिउ हत्थकुडउ ॥१५॥

[ १६ ]

ताम तहि<sup>१</sup> काले उज्जाणकोलणसणो चलिउ रायाणुमग्गो<sup>१</sup> नायरजणो ।  
 मंदमंदारमयरंदनंणवणं<sup>३</sup> कुंद-करवंद-मचकुंद<sup>३</sup> चंदणवणं ।  
 तरलदलताल-चललवलि-रुयलोसुहं दक्ख-पउमक्ख-रुइक्खलोणीरुहं ।  
 विल्ल-वेइल्ल-चिरिहिल्ल-सल्लइवरं अंवजंवीर-जंवू-कयंवूरं<sup>४</sup> ।  
 ५ करणकणवीर-करमर-करीरायणं नाग-नारंग-नग्गोहंनोल्लवरं ।  
 कुमुमरयपयरपिज्जरियधरणीयलं निक्खनहं<sup>५</sup>चंचुकणडल्ल-खंडियफलं ।  
 भमियभमरउलसंछइयपंकयसरं मत्तकलयठिकलयठमेहिलियसरं<sup>६</sup> ।  
 रुक्खरुक्खम्मि कापयरुसियभासिरो रइवराणत्त<sup>७</sup> अवइणमाहवसिरो ।

मर्दन करनेवाला, ताप्तीतटकी तरुणियोंके विकट अर्थात् विस्तीर्ण नितम्बोंको चूमनेवाला, और रतिशील आन्ध्र युवतियोंकी कामपौड़ाको उदीप्त करनेवाला, हवाके शोकोसे परिधानके उड़नेसे मालविनियोंके अतिमुंदर ऊरभागको ईप्त् प्रकट करनेवाला, वीर लगे हुए सहकारवृक्षोंको कपायला ( रस-युक्त ) बनाता हुआ, तथा विचकिल्लके फूलोंको पाटल पुष्पोंसे मिलाता हुआ बसत आ गया । फूले हुए पलायकी लाल-लाल बोडियाँ ऐसी खिलने लगी मानो कतिर विरहिणियोंके प्राणोंको निकालता हुआ कामके हाथका रुधिरलिप्त, थाका अंगुण ही हो ॥१५॥

[ १६ ]

उस समय उद्यान क्रीडाकी इच्छासे नागरजन राजमार्ग नल पड़े । उग नदनवनमें मंदारकी मद मकरंद फैल रही थी, और वह कुद, करवद, ( करोंदा ? ) मुचमुद तथा चंदन वृक्षोंसे सघन था । वहाँ तरल पत्तीवाले ताल, चंचल लवली और मुंदर कदली तथा द्राक्षा, पद्माक्ष एवं रुद्राक्षके वृक्ष थे । वेल, विचकिल्ल, चिरिहिल्ल, तथा मुंदर गल्लकी और आम, जवीर ( नीबू ), जवू, तथा उत्तम कदव थे । कोमल कर्नर, करमर, करीर ( करीर ? ), राजन ( स० राजादनी ), नाग, नारंगी, व न्यग्रोधके वृक्षोंमें धवर नीला ( ह्रींग ) भी रहा था । कुमुमरजके प्रकर ( समूह ) से वहाँका भूमिभाग विमलवर्ण हो गया था । जकोते नागे नख व चंचुओंमें वहाँके फल खडित थे । घूमने हुए भ्रमरगुल्लोंमें वंरुज-गनेरर आश्रित थी, और मल कलकंठियोंके मधुर कंठमें स्वर छूट रहा था । रतिपतिको आज्ञासे युवा-युवतमें कय-वृक्षकी बोआसे भाम्बर माधवयत्री ( वनन-ओभा ) अवतार्य हई । प्रत्येक वृक्ष की ओर भाग-  
 १६. कट 'कुचिनि' । १७. मय 'मग्गो' । १८. मय 'मग्गो' । १९. 'मग्गो' । २०. 'मग्गो' ।  
 २१. 'कट' । २२. 'कट' । २३. 'कट' ।

[ १६ ] १. मय 'मग्गो' । २. मय 'मग्गो' । ३. 'मग्गो' । ४. 'मग्गो' । ५. 'मग्गो' । ६. 'मग्गो' । ७. 'मग्गो' । ८. 'मग्गो' । ९. 'मग्गो' । १०. 'मग्गो' । ११. 'मग्गो' । १२. 'मग्गो' । १३. 'मग्गो' । १४. 'मग्गो' । १५. 'मग्गो' । १६. 'मग्गो' । १७. 'मग्गो' । १८. 'मग्गो' । १९. 'मग्गो' । २०. 'मग्गो' । २१. 'मग्गो' । २२. 'मग्गो' । २३. 'मग्गो' । २४. 'मग्गो' । २५. 'मग्गो' । २६. 'मग्गो' । २७. 'मग्गो' । २८. 'मग्गो' । २९. 'मग्गो' । ३०. 'मग्गो' । ३१. 'मग्गो' । ३२. 'मग्गो' । ३३. 'मग्गो' । ३४. 'मग्गो' । ३५. 'मग्गो' । ३६. 'मग्गो' । ३७. 'मग्गो' । ३८. 'मग्गो' । ३९. 'मग्गो' । ४०. 'मग्गो' । ४१. 'मग्गो' । ४२. 'मग्गो' । ४३. 'मग्गो' । ४४. 'मग्गो' । ४५. 'मग्गो' । ४६. 'मग्गो' । ४७. 'मग्गो' । ४८. 'मग्गो' । ४९. 'मग्गो' । ५०. 'मग्गो' । ५१. 'मग्गो' । ५२. 'मग्गो' । ५३. 'मग्गो' । ५४. 'मग्गो' । ५५. 'मग्गो' । ५६. 'मग्गो' । ५७. 'मग्गो' । ५८. 'मग्गो' । ५९. 'मग्गो' । ६०. 'मग्गो' । ६१. 'मग्गो' । ६२. 'मग्गो' । ६३. 'मग्गो' । ६४. 'मग्गो' । ६५. 'मग्गो' । ६६. 'मग्गो' । ६७. 'मग्गो' । ६८. 'मग्गो' । ६९. 'मग्गो' । ७०. 'मग्गो' । ७१. 'मग्गो' । ७२. 'मग्गो' । ७३. 'मग्गो' । ७४. 'मग्गो' । ७५. 'मग्गो' । ७६. 'मग्गो' । ७७. 'मग्गो' । ७८. 'मग्गो' । ७९. 'मग्गो' । ८०. 'मग्गो' । ८१. 'मग्गो' । ८२. 'मग्गो' । ८३. 'मग्गो' । ८४. 'मग्गो' । ८५. 'मग्गो' । ८६. 'मग्गो' । ८७. 'मग्गो' । ८८. 'मग्गो' । ८९. 'मग्गो' । ९०. 'मग्गो' । ९१. 'मग्गो' । ९२. 'मग्गो' । ९३. 'मग्गो' । ९४. 'मग्गो' । ९५. 'मग्गो' । ९६. 'मग्गो' । ९७. 'मग्गो' । ९८. 'मग्गो' । ९९. 'मग्गो' । १००. 'मग्गो' ।

रुक्खरुक्खन्मि सविलासमुद्भासिय<sup>१२</sup> हसिय-रइकाम-मिहुण<sup>१३</sup> समावासियं ।  
 जंजुसामी वि कुमारेहिं सहुं लीलए कामिणीमञ्जे कामु व्व तहिं<sup>१३</sup> कीलए । १०  
 घत्ता—डोल्लहारि<sup>१४</sup> व लग्गी कंठहं लग्गी वल्लहमुहचुंवणु<sup>१५</sup> करइ<sup>१६</sup> ।  
 थणरमणविडंविणि का वि नियंविणि निहुअणकेलिहिं<sup>१७</sup> अणुहरइ ॥१६॥

[ १७ ]

क वि कामिणि अणुणइ<sup>१</sup> कंतु केम परिहासापेसल भणइ एम ।  
 कुरओ<sup>२</sup> सि न वल्लह जाणिओ सि साणठु जं न आलिगिओ सि ।  
 निरवेक्खु<sup>३</sup> वयणमइराहं जं जि केसररुक्खो सि न होसि तं जि ।  
 सच्च कलिओ सि असोयरुक्ख लइ पायपहारे समइ मुखल ।  
 विवरीयवयण क वि पणयकुद्धं<sup>४</sup> नियकज्जलुद्धुत्तेण मुद्र । ५  
 तउ मुहहो जणियसयवत्तभंति आवंति निहालहिं भमरपंति ।  
 इय भणिय जं जि सदवक्कभग्ग परियत्तवि दइयहो कंठि लग्ग ।  
 क वि भणिय मुद्धे अच्चिहिं<sup>५</sup> विराइ नीलुपलसंकइ भमरु धाई<sup>६</sup> ।  
 इय मिसिण नयण झंणु करंतु चुंवइ नववहुवहं<sup>७</sup> वयणु कंतु ।  
 तिलएण करमि तउ तिलउ बाले<sup>८</sup> नियभाळु<sup>९</sup> निवेसिवि पियहं<sup>१०</sup> भाले । १०

का उपहास करनेवाले (सुंदर) मिथुनोके सम + आवास अर्थात् सहवाससे समुद्भासित हो गया ।  
 जंजुसामी भी अन्य कुमारोके साथ लीलापूर्वक कामिनियोंके बीच कामदेवके समान क्रीड़ा करने  
 लगे । डोल्लेके समान लटककर कंठसे लग्गी हुई स्तनो व रमणों- ( के भार ) से कदचित्त कोई  
 सुंदरी वल्लभका मुखचुम्बन करते हुए सुरत क्रीड़ाका अनुहरण करने लगी ॥१६॥

कोई कामिनी अपने कान्तको इसप्रकार मनाने लगी, और परिहासपूर्वक ऐसे मधुर  
 वचन बोली—हे वल्लभ मेने जाना नहीं था कि तुम कुरत ( श्लेष-कुसवक वृक्ष ) हो जो  
 कि मुखसे आलिगित होनेपर भी प्रसन्न नहीं हुए ( विरोधाभास ); ( विरोध परिहार ) अथवा  
 तुम-वह ( कुसवक वृक्ष ) भी नहीं हो, क्योंकि तुम तो वदन-मदिराके प्रति भी निरपेक्ष हो  
 ( उसे केवल देखते ही हो, आलिगन-चुंबन द्वारा पीते नहीं, ) अतः तुम केसर-(तिलक)वृक्ष  
 ( के समान ) हो ( जो सुंदरी नवयुवतीके कटाक्ष मात्रसे ही प्रफुल्लित हो उठता है, उसके  
 आलिगन-चुंबनको अपेक्षा नहीं रखता ) । अब मेने सत्यतः तुम्हें जान लिया कि तुम तो ऐसे  
 अशोकवृक्ष ( के समान ) हो जो मूर्ख पादप्रहारको प्राप्त करके शांत ( प्रसन्न-प्रफुल्लित ) होता  
 है । कोई मुग्धा अपने ( प्रणय ) कार्यके लोभी धूर्तसे प्रणयक्रुद्ध होकर मुँह फेर लेती है; ( तब धूर्त  
 कहता है ) तुम्हारे मुखसे शतपत्र ( कमल ) की भ्रांति करके झपटती हुई भ्रमर पंक्तिको तो  
 देखो । ऐसा कहनेसे मग्न-मान होकर वह तुरंत दयिता ( प्रेमी ) के कंठसे लग जाती है । कोई

१२. ख ग सविलासु० । १३. ख ग तह । १४. क ख ग ड डोल । १५. ख ग ह । १६. क घ ङ मुहिं  
 चुं, ख ग चुंवण । १७. क ई । १८. क मिहुवण ।

[ १७ ] १. क णई । २. ख ग कुर । ३. क ख ग ड ज ण । ४. ख ग निरवेक्ख । ५. ख ग हि ।  
 ६. ग पणई । ७. प्रतियो मे 'पिय' । ८. ख ग लहिं । ९. क सदवक्क । १०. ख ग अच्चहिं ।  
 ११. क धाई । १२. क घ ङ वहुवहि । १३. प्रतियोमें 'बालि' । १४. घ तालु । १५. क ङ हि, ख  
 ग घ हि ।

- परिछलवि<sup>१६</sup> कवोलहि<sup>१७</sup> दितु नहर  
आवाणा<sup>१८</sup> क वि पिक्खेवि स-रुड  
पिय पेक्खु पेक्खु किं भणहि<sup>१९</sup> मज्जे  
क वि पियगहियाहरे<sup>२०</sup> वहइ वयणु  
१५ पाणोसरंत मइर<sup>२१</sup> विहाई  
मयनाहितिल्ल<sup>२२</sup> विरएवि वयणे  
क वि पिप्पण<sup>२३</sup> भणिय लइ एउ<sup>२४</sup> संतु<sup>२५</sup>  
उज्जाणे तम्मि जंबूकुमार  
२० अरुमसियउ हंसहि<sup>२६</sup> गमणु तुज्जु  
पडिगाहिउ कमलहि<sup>२७</sup> चलणल्ल<sup>२८</sup> सु  
सिक्खिउ वेरिल्लहि<sup>२९</sup> भूक्कुडत्तु  
अपाणी लइ<sup>३०</sup> वि पवत्तु<sup>३१</sup>  
अपाणी लइ<sup>३२</sup> वि पवत्तु<sup>३३</sup>  
अपाणी लइ<sup>३४</sup> वि पवत्तु<sup>३५</sup>  
अपाणी लइ<sup>३६</sup> वि पवत्तु<sup>३७</sup>  
अपाणी लइ<sup>३८</sup> वि पवत्तु<sup>३९</sup>  
अपाणी लइ<sup>४०</sup> वि पवत्तु<sup>४१</sup>  
अपाणी लइ<sup>४२</sup> वि पवत्तु<sup>४३</sup>  
अपाणी लइ<sup>४४</sup> वि पवत्तु<sup>४५</sup>  
अपाणी लइ<sup>४६</sup> वि पवत्तु<sup>४७</sup>  
अपाणी लइ<sup>४८</sup> वि पवत्तु<sup>४९</sup>  
अपाणी लइ<sup>५०</sup> वि पवत्तु<sup>५१</sup>  
अपाणी लइ<sup>५२</sup> वि पवत्तु<sup>५३</sup>  
अपाणी लइ<sup>५४</sup> वि पवत्तु<sup>५५</sup>  
अपाणी लइ<sup>५६</sup> वि पवत्तु<sup>५७</sup>  
अपाणी लइ<sup>५८</sup> वि पवत्तु<sup>५९</sup>  
अपाणी लइ<sup>६०</sup> वि पवत्तु<sup>६१</sup>  
अपाणी लइ<sup>६२</sup> वि पवत्तु<sup>६३</sup>  
अपाणी लइ<sup>६४</sup> वि पवत्तु<sup>६५</sup>  
अपाणी लइ<sup>६६</sup> वि पवत्तु<sup>६७</sup>  
अपाणी लइ<sup>६८</sup> वि पवत्तु<sup>६९</sup>  
अपाणी लइ<sup>७०</sup> वि पवत्तु<sup>७१</sup>  
अपाणी लइ<sup>७२</sup> वि पवत्तु<sup>७३</sup>  
अपाणी लइ<sup>७४</sup> वि पवत्तु<sup>७५</sup>  
अपाणी लइ<sup>७६</sup> वि पवत्तु<sup>७७</sup>  
अपाणी लइ<sup>७८</sup> वि पवत्तु<sup>७९</sup>  
अपाणी लइ<sup>८०</sup> वि पवत्तु<sup>८१</sup>  
अपाणी लइ<sup>८२</sup> वि पवत्तु<sup>८३</sup>  
अपाणी लइ<sup>८४</sup> वि पवत्तु<sup>८५</sup>  
अपाणी लइ<sup>८६</sup> वि पवत्तु<sup>८७</sup>  
अपाणी लइ<sup>८८</sup> वि पवत्तु<sup>८९</sup>  
अपाणी लइ<sup>९०</sup> वि पवत्तु<sup>९१</sup>  
अपाणी लइ<sup>९२</sup> वि पवत्तु<sup>९३</sup>  
अपाणी लइ<sup>९४</sup> वि पवत्तु<sup>९५</sup>  
अपाणी लइ<sup>९६</sup> वि पवत्तु<sup>९७</sup>  
अपाणी लइ<sup>९८</sup> वि पवत्तु<sup>९९</sup>  
अपाणी लइ<sup>१००</sup> वि पवत्तु<sup>१०१</sup>

धत्ता—दावतहो तं वणु रंजियपियमणु वोल्ह<sup>३६</sup> कुमारहो कलु कलह<sup>३७</sup>।

पयडियवहुभावहि वंकालावहि कामिणि का वि परिच्छलइ<sup>३८</sup> ॥१५॥

कहता है—मुग्धे । तेरी आंखें ऐसी सुंदर हैं कि नीलोत्पलकी शंका करके भ्रमर झपट रहे हैं, इस वजहसे नेत्रोको झांपकर वह नववधूका मुख चूम लेता है । कोई यह कहता हुआ कि हे बाला, अपने तिलकसे तुझे तिलक लगाऊंगा, अपना मस्तक प्रियाके मस्तकपर रखकर, उसे छलकर कपोलोपर नखचिह्न बनाता हुआ काताके अघरोको दांतोंसे काट लेता है । कोई कामिनी आपानक ( मधुशाला ) में रखे हुए मधुघटमें प्रतिविम्बित अपने रूपको देखकर कहती है, प्रिय देखो ! देखो ! भार्या क्या कहती हो ? ( ऐसा पूछनेपर ) वह बतलाती है—मद्यमें तर्पण देवता (?) उतर आयी है । कोई प्रियसे काटे हुए अघरयुक्त मुखको धारण कर रही है, जिसका रोष अय हो रहा है, और मदन बढ रहा है । ( हाथोंमेंसे ) चूती हुई अथवा पी जाती हुई मदिरासे युक्त हाथ ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो ( मदिरा ) पान करनेके स्फटिकमय चशक ( प्याले ) ही हो । किसीने कहा—हे दीर्घनयना तूने ( निष्कलंक ) मुखपर कस्तूरीका तिलक लगाकर उसे चंद्रमाके समान ( सकलंक नयो ) कर दिया ? किसी स्त्रीके प्रिय ने कहा—लो यह सारा ( प्रपंच ) महिलाकृत कूट मंत्र है । उस उद्यानमें ( कामिनीयोंके ) कामको बढ़ाते हुए जंबूकुमार किसी कामिनीको कहने लगे—हंसोने तुझसे गमनका अभ्यास किया, कलकंठोने कोमल आलाप करना जाना, कमलोने चरणोंसे नाचना सीखा, तरुपल्लवोंने तुम्हारी हृथेलियोंका विलास सीखा, तथा वेलोने तुम्हारी भौंहोंसे बाकापन सीखा । इसप्रकार ये सब तुम्हारे शिष्य भावको प्राप्त हुए हैं ।

उस वनको दिखलाते हुए अपने प्रियका मनोरंजन करती हुई कोई कामिनी कुमारके

१६. क व ड छलिवि । १७. क व ड आवी । १८. ख ग हि । १९. क व ड हि । २०. क ड यणु; घ इत्त । २१. ख ग साहरे । २२. क ड जिज्जत, ख ग शिज्जत । २३. क व ड मइरा । २४. क र ग वसज । २५. क ड गाड, ख ग नाइ । २६. प्रतियोगेमें मण्णाहि । २७. र ग महु । २८. क ड णयणि, घ नयणि, ख ग नयणु । २९. क ड यियेण । ३०. क ड एहु । ३१. क ड मण, सरलु । ३२. क ड वट्टु । ३३. क हि, ख ग हंयुहि । ३४. र ग छलिवि । ३५. क ड चरण; घ वलण । ३६. मत्तु, ट मव । ३७. ख ग पवत्तु, घ पवत्तु । ३८. क ड वोल्ह, घ वुल्ल । ३९. क ड परिच्छलइ, र ग घ पविच्छलइ ।

[ १८ ]

नरुचंता मोरा सुद्धि जोइ  
दीसइ सरि कारंडाण पंति  
सरु कोइला<sup>१</sup> कोमलु जि वहइ<sup>२</sup>  
एयं च प्रियालवणं त्रियाण  
सारंगं गय सारंगि दच्छि<sup>३</sup>  
पिय पेक्खु<sup>४</sup> इंदगोवयविरेणु  
जले कंकु व हंसो<sup>५</sup> चैय मंदु  
सुख विलवइ सुंदरि कवण वाह  
माहे सरु सिसरे दडु<sup>६</sup> जाणु

तोरा नरुचंतु न दोसु कोइ<sup>७</sup> ।  
जा तरे रिउ घरिणिहु<sup>८</sup> कवणु भंति ।  
जं मयणु चडाविष्ट<sup>९</sup> चावे<sup>१०</sup> वहइ<sup>११</sup> ।  
दुल्लहउ नवर दूहवज्जणाण ।  
ता नबउ वायहु<sup>१२</sup> पडहु गच्छि<sup>१३</sup> ।  
लइ मग्गि दुदु तो कामवेणु ।  
तुहु<sup>१४</sup> सो चिय कंकु जलमि मंदु ।  
संठवि न परायउ कल्लु<sup>१५</sup> नाह ।  
मरइ जि तिदंडे जसु निचण्हाणु<sup>१६</sup> ।

५

मधुर बोलको सुन लेती है, और अनेक प्रकारकी वक्रोक्तियों द्वारा विविध ( शृंगारादि ) भावों-  
को प्रगट करती हुई इसप्रकार छलना करती है ॥ १७ ॥

[ १८ ]

स्वामीने कहा—मुग्धे, नाचते हुए मयूरोको देखो ! सुंदरीने ( ज्ञेयार्थ मोरा-मेरा ग्रहण  
करके वक्रोक्ति की—तोरा अर्थात् तेरे नाचनेमें कोई दोष नहीं है । स्वामीने कहा—सरोवरमें  
कारंड पक्षियोंकी पंक्ति दिखाई दे रही है; सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे क्या ( रंडा-विधवा )  
विधवाओकी पंक्ति है, तो वह निश्चयसे तुम्हारी शत्रु-गृहिणियोंकी है । स्वामीने कहा—कोकिलाका  
कोमलस्वर प्रवृत्त हो रहा है, सुंदरीने छलोक्तिकी—अरे यह पूछते हो कि वह कोकिलाके स्वर-  
के समान कोमल कौन-सा शर है, जो मार डालता है ? वही जिसको मदन धनुषकी टंकारपूर्वक  
चलाकर मारता है । स्वामीने कहा—अरे इस प्रियालवृक्षोके वन ( उद्यान ) को जानो  
( देखो ) । सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे प्रियाओंका आलाप दुर्भंगजनोंके लिए दुर्लभ है । स्वामीने  
कहा—चतुर हरिणी हरिणके पास चली गयी; सुंदरीने छलोक्ति की—दक्ष सारंगी ( वाद्य )  
सारंग ( वाद्य ) के स्वरमें मिल गयी तो फिर नाचो और पटह बजाओ तो जाने । स्वामीने  
कहा—प्रिये इस विरेणु अर्थात् रजरहित निर्मल इंद्रगोप ( खद्योत ) को देखो, तो सुंदरीने  
व्यंग्योक्तिकी—यदि इंद्रगोपदविरेणु, अर्थात् यदि स्पष्टतः इंद्रकी गायके चरणोंकी धूल देख रहे  
हो तो फिर वह कामधेनु है, ( इससे ) दूध मांगो । स्वामीने कहा—जलमें कंक ( वक ) पक्षी  
हंसके समान मंदगतिसे चल रहा है, सुंदरीने व्यंग्य किया—तू ही बड़ा जल ( क्रीडा ) में मंद  
कंक है । स्वामीने कहा—सुंदरी यह शुक ऐसा विलाप कर रहा है, इसे क्या पीड़ा है ? सुंदरीने  
वक्रोक्ति की—हे नाथ यदि सुत ( पुत्र ) रो रहा है, तो क्या बात है, उसे वैयं दीजिये, यह कोई  
पराया कार्य नहीं है । स्वामीने कहा—माघ मासमें ( कमल ) सरोवर गिशिरसे दग्ध हो गया,  
ऐसा जानो; तो सुंदरीने व्यंग्य किया—यदि कोई माहेश्वर अर्थात् महेश्वरका भक्त तुषारपात-  
से दग्ध हो गया ( अर्थात् मर गया ), तो वह त्रिदंडी तो निश्चय मरेगा, जिसका नित्य ( त्रिसंख्य )

[ १८ ] १ कं इ । २. क व ताउ । ३. क ड णिहु, ख घरणेहु, ग णेहि, व घरणिहि । ४ क ड  
लाड । ५ क हवइ, ड हवइ । ६ क ड विय, घ एवि । ७. ख ग चाए । ८. क ड गहइ । ९ क ड च्छि ।  
१०. क ड हि, घ हि । ११ क ड पिक्खि । १२ ड अ हसो । १३ क ड तुहु । १४. क ख ग ड  
कज्ज । १५. क ड दडु । १६. ख ग निचण्हाणु, घ न्हाणु ।



- १० सुद्धिहि<sup>१०</sup> कारण कं तावसाण<sup>१८</sup> का सुद्धि कंत कंता-वसाण<sup>१८</sup> ।  
 केरिस तुहुं वंकी तणुयदेह<sup>१९</sup> हव<sup>२०</sup> नाह न सा हरिणकदेह<sup>२१</sup> ।  
 दोहउ—गोरी सुद्धि<sup>२३</sup> न सामली<sup>२३</sup> तंवाहरेण सुकंति ।  
 तंवा वसह<sup>२४</sup> हरेण पुणु गोरी रमिय न भंति ॥१॥  
 घत्ता—जइ साहवि<sup>२५</sup> सकइ अहव न सकइ<sup>२६</sup> मयणु वि तं, सिंगाररसु ।  
 १५ दूरंतरे आरिसु कइ<sup>२७</sup> अम्हारिसु<sup>२८</sup> कह<sup>२९</sup> परिआणइ<sup>३०</sup> विसयकसु<sup>३१</sup> ॥१८॥

[ १९ ]

- इय तहिं वणे माणिय कामवेण<sup>३</sup> उप्पणइ<sup>३</sup> मिहुणइ<sup>३</sup> सुरयखेण<sup>३</sup> ।  
 पासेयसित्त मंडणे फुसंति बोलोण<sup>५</sup> छणवासरे वसंति ।  
 खरकिरणतरणिताविशधरम्मि जलकीलहिं सव्व वि गय सरम्मि ।  
 सनियंसणु भूसणु तडि तिपहिं<sup>६</sup> मुच्चतुं नियवि चित्तिड पिणहिं<sup>८</sup> ।  
 ५ खणु अच्छहु तडे विथडाई ताम रमणाइ सुदिट्ठइ<sup>९</sup> करहुं<sup>१०</sup> जाम ।

स्नान होता है । स्वामी ने कहा—तापसोके लिए जल ही शुद्धिका कारण होता है; तो सुंदरीने फिर व्यंग्य किया—काताके वशवर्त्ती बेचारे रागीजनोकी जलस्नान मात्रसे क्या शुद्धि ? स्वामीने कहा—तुम्हारी पतली देह कैसी बाकी है ? तो सुंदरीने छलोकितसे कहा—अरे नाथ वह मैं नहीं हूँ, बांकी तो वह चंद्रकला है । स्वामी ने कहा—हे मुखे आताम्र अधरोंको धारण करनेसे केवल गौरवर्ण नायिका ही सुकाता, अर्थात् सुष्ठुरमणीय नहीं होती, बल्कि उससे सांवली सुंदरी अधिक सुरमणीय होती है; तो सुंदरीने व्यंग्य किया—अरे ! तब अर्थात् गो, के साथ हर ( महादेव ) ने रमण नहीं किया, तंवाका रमण किया वृषभ अर्थात् महादेवके नादीने, और महादेवने रमण किया गोरी ( पार्वती ) से, इसमें कोई भ्रांति नहीं । उस शृंगाररसका यदि ( स्वयं ) मदन ही वर्णन कर सके तो कर सके; अथवा वह भी उसका वर्णन नहीं कर सकता; फिर हम जैसा मंदबुद्धि कवि तो दूर ही रहे; क्योंकि वह शृंगार ( काम-भोगादि ) की विधियोंको क्या जाने ? ॥ १८ ॥

[ १९ ]

इस तरह वहाँ उस वनमें कामदेवको माननेवाले अर्थात् कामशास्त्रके अनुसार संभोग क्रीडा करनेवाले मिथुनोंको मुरतखेद ( थकान ) उत्पन्न हुआ और प्रस्वेदसे सिक्त होनेपर उसे वस्त्रसे पोछा । वसतोत्सवका दिन व्यतीत होनेपर जबकि पर्वत प्रखर किरणोवाले सूर्यसे तप्त हो गया था, सभी जलक्रीडाके लिए सरोवरपर गये । वस्त्रोसहित भूषणोको प्रियाओके-द्वारा तटपर छोड़े जाते हुए देखकर उनके प्रियजनोने सोचा—अरे ! क्षणभर तब तक ( प्रिया ) तटपर खड़ी रहे, जब तक कि उसके विस्तीर्ण रमणोको अच्छी तरह देखा हुआ कर लूँ ।

- १७ क ख ग ड हिं । १८ क ड णु । १९ क ड तणुअं । २० क हउ । २१ क घ ट रेह ।  
 २२ ख ग घ मुड । २३ क ड सामलिय । २४ क ड हिं । २५ क घ ट साहिवि । २६ ख ग घ ।  
 २७ क ड कय । २८ क सिमु, । २९ क किह; ड किह । ३० क घ ड णड । ३१ क ट मयलुं ।

[ १९ ] १. क ड इ । २. क घ ड णणइ । ३. क ड णहिं । ४. क ट णइ । ५ क ड हिं ।  
 ६. घ टिहिं । ७ ड मुचत । ८ ड हिं । ९. ख ग इ । १०. प्रतियोमे 'करहु' ।

तरुणियणु विसई<sup>११</sup> वोलियवरंगु  
 क वि सलिलझलकहि<sup>१३</sup> निययकुंतु  
 चरमण<sup>१५</sup> तरइ कवि पियहो<sup>१७</sup> पुरउ  
 काहि<sup>१९</sup> वि भमरेण<sup>२०</sup> तरंतियाहि<sup>२१</sup>  
 क वि हिल्लिनियंसण<sup>२२</sup> गहिरनीरे<sup>२३</sup>  
 थावंति<sup>२४</sup> संति हल्लिरवरंग<sup>२५</sup>  
 एकेण नवर हत्येण तरइ  
 उडभूसिउ<sup>२६</sup> काहे वि तगु विहाइ<sup>२७</sup>  
 उज्जाण का वि रइखेयभग्ग  
 नहरारुणु<sup>२८</sup> तहे<sup>२९</sup> थणवट्टु भाइ  
 दरहसिउ<sup>३०</sup> चोरु कवि गुञ्जु वइइ  
 रोमावलि तिवलिहि<sup>३१</sup> कहे<sup>३२</sup> बिबसइ<sup>३३</sup>

<sup>३४</sup>थणसिहरखलियलहरीतरंगु ।  
 अहिसिचइ<sup>३५</sup> नयणहिं<sup>३६</sup> हत्थु दितु ।  
 सुमरावइ ण<sup>३७</sup> विवरोयसुरउ ।  
 न उ जाणिउ<sup>३८</sup> कमलु<sup>३९</sup> न वयणु ताहि<sup>४०</sup> ।  
 तलवायहे<sup>४१</sup> हलुयत्तणु<sup>४२</sup> सरीरे ।  
 उरसोल्लिण<sup>४३</sup> धणपेल्लियतरंग<sup>४४</sup> ।  
 वीएण पडंतु कडिल्लु धरइ ।  
 तारुणकंडु<sup>४५</sup> अंकुरिउ नाइ<sup>४६</sup> ।  
 जलमज्जे रमइ<sup>४७</sup> पियखंधे लग्ग ।  
 अंकुसिउ कामकरिकुंमु नाइ ।  
 णं मयणावास्तवंगु सहइ<sup>४८</sup> ।  
 णं कालभुयंगिणि<sup>४९</sup> तरुण डसइ<sup>५०</sup> ।

तरुणियाँ जलमें प्रवेश करने लगीं, तो जलतरंगे उनके नितंबोंको पार करके, स्तन शिखरोंपर आकर ( उन्हें पार न कर पानेसे ) स्खलित हुई । कोई जलमें अपने कात ( की छवि ) को झलकते हुए देखकर, नेत्रोंपर हाथ रखकर अभिपेक करने लगी । कोई चंचल रमणोवाली प्रिया, प्रियके सामने इस प्रकार तैरने लगी, मानो विपरीत सुरतका स्मरण दिला रही हो । एक भ्रमर न तो किसी तैरती हुई सुंदरीके मुखको ही पहचान सका, और न कमलको ( अर्थात् तैरती हुई सुंदरीके मुख. व कमलमें कोई विवेक नहीं कर सका ) । कोई शिथिलवसना गंभीर जलमें तलस्पर्शी गतिसे शरीरमें हलकापन आनेसे, अपने कपनशील नितंबप्रदेशको स्थिर करती हुई, अपने उरस्थलमें छिपे हुए ( स्तनोरूपी ) धनसे तरंगोंको प्रेरित करती हुई, केवल एक हाथसे तैरती हुई, दूसरेसे गिरते हुए कटिवस्त्रको संभाल रही थी । किसीका भूषा ( वस्त्राभूषण-विलेपनादि ) रहित शरीर ऐसा शोभायमान हो रहा था, मानो तारुण्यरूपी वृक्षका नवीन अंकुर ही उदित हुआ हो । उद्यानमें रतिक्रीड़ाके आयाससे थकी हुई कोई कामिनी प्रियके कंधेसे लगकर जलमें रमण कर रही थी तथा नखक्षतसे अरुण हुआ उसका वरतुल-स्तन ऐसा भासित हो रहा था मानो मदन-हस्तिके कुंभस्थलपर अंकुश मारा गया हो । कोई ईषत् खिसके हुए वस्त्र-से ( दोखनेवाले ) गुह्यागको ऐसा धारण कर रही थी, मानो मदनके आवासका तवंग ( छज्जा ? ) शोभायमान हो रहा हो । किसीकी त्रिवलोपर रोमावलि ऐसी बसती थी, मानो तरुणको डंसने-

११. क ड ई । १२. ख ग घ 'दलिय' । १३. घ 'कहि' । १४. क अह । १५. ख ग 'णिहि' । १६. ख ग चंचलरव, क ड 'रवण' । १७. क ड ई; घ चलण, ख ग 'ह' । १८. प्रतियोगे 'ण' । १९. क काहं, क काह । २०. ख ग सयं । २१. ख ग भरंतियाहे । २२. क ड 'उ' । २३. ख ग घ वयणु न कमलु । २४. ख ग ताहि । २५. क कटिल्ल', ख ग हिल्लि' । २६. ख ग गहिय' । २७. क ईहि, घ 'यहि, ड 'इहि' । २८. क ड 'अत्तणु' । २९. ख ग घ वावति । ३०. घ हल्लिय' । ३१. क घ ड 'सेल्लिण' । ३२. क घ ड यण' । ३३. घ उडसियउ । ३४. घ 'ई' । ३५. घ तारुण' । ३६. क ड नाइ, घ नाइ । ३७. क घ ड 'ई' । ३८. क ड णहिं, ख ग 'रारणु' । ३९. क ड तहि, घ तहि । ४०. क ड 'सिय' । ४१. क ड 'ई' । ४२. क ड घ 'लिहि' । ४३. क घ ड 'हि' । ४४. क कालु भुय' ।



सुदंडसुंदकयसलिलविट्टि पयभारकडक्कियकुम्मपिट्टि ।

षत्ता—दुद्धरिउवलहरु णं नवजलहरु<sup>१</sup> गरुवगज्जिरवभरियदरि ।

जणमारणसीलउ वडवसलीलउ<sup>२</sup> सो संपत्तउ तेत्थु<sup>३</sup> करि ॥२०॥

[ २१ ]

कहिं पितेण हत्थिणा विसालसाल-सल्लई-तमालमाल-सुंगताल-जाइजाल-नाथवल्लि-  
मल्लिलिं<sup>४</sup> व<sup>५</sup> जंबुलुवि-उंवरं<sup>६</sup> व-सङ्कयं<sup>७</sup> व-पक्कपिगमाहुलिंग-दालिमालि-चंदणद-रुंद<sup>८</sup> -  
कुंद<sup>९</sup> -मंदमार-सिंदुवार-देवदारु-चारुचार<sup>१०</sup> चूरिया<sup>११</sup> ।

कहिं पि डोहिऊण वीहदीहिया<sup>१२</sup> -दुरुच्छलंतमच्छपुच्छविच्छुरंत<sup>१३</sup> वारिलोलमाण<sup>१४</sup> -  
संचरंतचंचरीयचुंविएहिं<sup>१५</sup> सुंदंडतोडिएहिं<sup>१६</sup> वेल्लिजालजोडिएहिं<sup>१७</sup> भूमिभायसूडिएहिं<sup>१८</sup> ५  
वंकएहिं<sup>१९</sup> पंकएहिं<sup>२०</sup> कइमेल्लकुल्लतल्लपूरिया<sup>२१</sup> ।

कहिं पि मग्गालग्गभग्गआसवार-चम्मजडिट्ठिघायधुम्ममाण<sup>२२</sup> -नीसरंतवाहथदु-  
तिक्खनक्खसुण<sup>२३</sup> -खोणिमंडलाउ उट्टिएण रेणुणा निरुद्धचक्खुथक्कंपिरंग-  
कामिणीकरं करेण धारिऊण धामिरेण कामुएण कुट्टणी<sup>२४</sup> विलुट्टणी<sup>२५</sup> विलोट्टिया ।

झड़पता हुआ नगरीके द्वारपर प्रगट हुआ । मूंड ऊँचा करके जलकी फुहारें छोड़ते हुए उसने अपने पदभारसे ( पृथ्वीको अपने ऊपर धारण करनेवाले ) कूर्मकी पीठको कड़कड़ा दिया । दुर्दृष्ट शत्रुकोके बलको हरण करनेवाला, नये मेघके समान अपने गर्जनरवसे कंदराओंको भरता हुआ व लोगोंको मारनेमें प्रवृत्त वह हाथी नैवस्वत ( यम ) के समान मृत्युलोला करता हुआ वहाँ आ गया ॥ २० ॥

[ २१ ]

कही उस हाथीने विशाल साल और सल्लकी व तमाल वृक्षोंकी पंक्तियाँ, उत्तुंग ताल, परस्पर गुँथकर जालके समान बनी हुई नागलता, मल्लि, निंब, जंबूवृक्षोका कुंज, उंबर, आम्र व सुंदर कंदव, पके हुए पिंगलवर्ण मातुलिंग, दाड़िमकी पंक्तियाँ, हरे चंदनवृक्ष, विशाल कुंद, मंदमार, सिंदुवार, देवदारु तथा सुंदर चिरीजीके वृक्ष चूर-चूर कर डाले । कही बड़ी दीर्घिकाओंमें घुसकर, ईषत् उछलते हुए मच्छोंकी पूँछोंसे छिटकते हुए जलसे क्रोड़ा करते हुए, संचरणशील चंचरीकोसे च्वित व अपने ही गुंडादंडसे तोड़े हुए, लता जालसे संयुक्त, व भंजन करके भूमिभागपर डाले हुए वाके पंकजोंसे छोटी नदी ( अथवा नाले ) के कर्दमयुक्त तलको पूर दिया । ( ऐसी अवस्थामे ) कही मार्गमें पड़नेवाले व जिनके सवार भाग गये थे और जो चर्मयष्टि अर्थात् चावुकके आघातसे चक्कर खा रहे थे, ऐसे घोड़ोंके समूहोंके निकलनेसे उनके तीक्ष्ण खुरोंसे खुदे हुए पृथ्वीमंडलसे उठनेवाले धूलसें आँखें अवरोद्ध हो जानेके कारण थर-थर कांपती हुई कामिनीके हाथको हाथसे पकड़कर किसी गर्वोले कामुकने झूठ बोलनेवाली कुट्टनीको

१० ख ग घ गरुयं । ११. क ड वयवसं । १२. क ड तत्थ, व तित्थु ।

[ २१ ] १. क ड 'मल्लिङ्गव' । २ ख ग सकयव । ३. क ड 'तुंद' । ४. घ 'कंद' । ५. घ 'दार' । ६. क ड 'चार' । ७ ख घूलिया । ८ ख ग दीहिं । ९. क ड 'विच्छरंत' । १०. क घ ड 'लोलोलमाण' । ११ ड 'एहि' । १२ क घ ड कइमल्ल' । १३ क ड 'हम्ममाण' । १४ घ 'सुव' । १५. क ड कुट्टिणी । १६ ख ग मे विलुं नही ।

१० कहिं पि संचरंतहृत्थियारफारनट्टवंठ<sup>१०</sup> -तिक्खनक्खसुण्णखोणि<sup>१०</sup> -कौतकोडि-  
यट्टणेण<sup>११</sup> दोभियंगहृत्थिणीपमुक्कचिक्कराडि<sup>१२</sup> -चंचलुबलंततट्टांठि<sup>१३</sup> पट्टिवाहर<sup>१३</sup>  
अलंभिरा विसट्टवत्थवल्लियानरिंदसंदणीए<sup>२३</sup> उट्टिउं न पारए तरट्टि खोट्टिया<sup>३३</sup> ।

किं च<sup>३४</sup> -तओ पेल्लियं झत्ति जाणेण जाणं गइं देण<sup>३५</sup> अण्णं<sup>३६</sup> गइंदं सदाणं<sup>३७</sup> ।  
तुरंगेण<sup>३८</sup> मग्गम्मि तुंगं तुरंगं सुयंगं सुयंगेण वेसासु रंगं ।  
१५ पई पत्तिणा संदणो संदणेणं पिणं पिणा जंपिया कंदणेणं ।  
वियाणं वियाणेण छत्तेण छत्तं अयामं<sup>३९</sup> बलिट्ठेण पत्तेण पत्तं ।  
पलायंतसत्तेण<sup>४०</sup> दंडेण दंडं धणं धयगां कयं खंड-खंडं ।

घत्ता—सहुं<sup>४१</sup> राए तट्टउ दिसिहिं पणट्टउ सबलु ससाहणु नयरजणु ।

पर एकु जि थक्कउ मिल्लिबिं<sup>४२</sup> हक्कउ जंबुसामि अक्खु हियमणु ॥२१॥

[ २२ ]

तो नवर नाएण मिल्लियनिनाएण ।  
पडिमगरुक्खेण जणदिणहुक्खेण ।

भी झूठला दिया । कही बड़े-बड़े हृथियारोका संचरण देख घूर्त्तं नष्ट हुआ, और तीक्ष्ण खुरोसे पृथ्वी खुदी । कही भालेकी नोकके आघातसे पीड़ितदेह हृथिनीकी चीरकारसे त्रस्त होकर चंचलतापूर्वक जाती हुई, व ( घूर्त्तके ) प्रत्युत्तरको न पा सकनेवाली प्रगल्भ दासी जिसको वस्त्र ( भाग-दौड़ मे ) फट गये थे, धक्का दिये जानेसे ( गिरकर ) राजमार्गसे उठनेमें भी समर्थ न हो सकी ।

और भी—तब झट-पट यानसे यान भिड़ गया, व हाथीसे दूसरा भवमत्त हाथी । मार्ग-से तुरंगसे ढ़ेचा (बलिष्ठ) तुरंग, वेद्याओमें आसक्त जारसे जार, सेवकसे स्वामी, रथसे रथ और भयपूर्वक क्रंदन करती हुई प्रिया अपने प्रियतमसे भिड़ गयी । वितानसे वितान, छत्रसे छत्र, बलवान्से दुर्बल, व पदातिसे पदाति भिड़ गये; तथा भागते हुआके दडसे दंड, और ध्वजसे ध्वजाग्र खंड-खंड कर दिये गये । राजा समेत पौरजन सारे साधनो व सैन्य सहित त्रस्त होकर दिशाओमें भाग गये । परंतु एक अकेला जवूस्वामी हांका मारकर ( अर्थात् उस दुष्ट हाथीको आह्वान करके ) अक्षुब्ध ( शांत ) भावसे वहाँ खड़ा रहा ॥२१॥

[ २२ ]

तब दूझोको तोड़नेवाले, लोभोको दुःख देनेवाले, जलको कीचड़ कर देनेवाले, बीरोको

१७ प्रसियोमें 'गट्ट' । १८. ख ग खोणिम । १९. क छ दोभियंग । २० क ड 'बलव', घ 'ल्ललत' ।  
२१ क ड 'गुट्ट', घ 'गुठ' । २२. क ड यट्टियां, ख ग पट्टियां, घ पट्टियां । २३ क ड उट्टिऊण  
पारपत्तरट्टिखोट्टिया, ख ग उट्टिपुण्ण पारए । २४ क ड वचित् । २५ ख ग गयदेण । २६ घ अन्न ।  
२७ क ड गइंदस्सदाण, ख ग गयद स । २८ ख ग गाण । २९ क स । ३० क घ ड सत्तेहि । ३१. ए  
ग सहु । ३२ ख ग मेल्लिय, घ मिल्लिय ।

कहविशनीरेण <sup>१</sup>	क्रियदूरवीरेण ।	
संगामदमरेण	गुंजंतभमरेण ।	
दाणं वुसंगेण	चूरियमुयंगेण <sup>२</sup> ।	५
दुल्लारवारस्स	जंजूकुमारस्स ।	
थिरथोरकरघाउ	पुणु मुक्कु <sup>३</sup> सकसाउ ।	
तं नियवि तेणावि	जिणवइसुएणावि ।	
विक्रमविसुद्धेण	रणरंगलुद्धेण ।	
करिवरहु <sup>४</sup> रुद्धेण <sup>५</sup>	डसियाहरोद्धेण ।	१०
आरत्तनेत्तेण	भूमंगवत्तेण ।	
सलवट्टिभालेण	नं पल्लकालेण ।	
तिणससु गणतेण	वंधं जणतेण ।	
करु धरिउ परिकलिवि	इत्थेण आवलिवि ।	
आयडिडो <sup>६</sup> जं जि	ओसरइ <sup>७</sup> करि तं जि ।	१५
निनिखल्लकयगत्तु	सकइ न विलमेत्तु <sup>८</sup> ।	
कुं चइय <sup>९</sup> धुयकं धु <sup>१०</sup>	विहडियसिरावंधु ।	
कडुरडियरवच्चणु	निडुरियनियनयणु ।	
मयमुक्कांडयलु	<sup>११</sup> पसरत्तमयवियलु <sup>१२</sup> ।	
अप्पाणु घल्लत्तु <sup>१३</sup>	चिकार मेलत्तु <sup>१४</sup> ।	२०
रलुधुलइ रसमसइ <sup>१५</sup>	अवत्तसइ <sup>१६</sup> कसमसइ <sup>१७</sup> ।	

दूर हटा देनेवाले, संग्राममें भयंकर, मदजलसे युक्त होनेसे भ्रमरोसे गुंजायमान, तथा भुजंग (शेषनाग ?) को भी चूर-चूर कर देनेवाले उस हाथीने बड़ा भारी निनाद छोड़कर, जिसका बार (प्रहार) अत्यन्त दुर्निवार था, ऐसे जवूस्वामीपर अपने बलिष्ठ सृंडसे कषाय सहित अर्थात् क्रोधपूर्वक, आघात किया। यह देखकर उस जिनमतीके पुत्रने भी, जो विशुद्ध विक्रमी एवं रण-रंगका लोभी था, उस हाथीसे रुष्ट होकर, अघरोष्ठ काटकर, आरक्त नेत्र करके, भीहे टेढ़ी करके, मस्तकपर सलवटें ढालकर, प्रलयकालके समान बनकर उसे तृणके समान मानते हुए, निर्यंत्रण करनेके प्रयासमें हाथोंसे ही चारों ओरसे लपेटकर उसके सृंडको पकड़ लिया, व जैसे ही खीचा, तो हाथी पीछे हटने लगा। परंतु उसका सारा शरीर निष्क्रिय हो चुका था, और वह तिलमर भी चल नहीं सका। उसका कांपता हुआ कंधा कुंचित हो गया, व सिराबंध विघटित हो गया (अर्थात् शरीरकी नस-नस टूटने लगी)। मुखसे उसने बड़ा करुण निनाद किया; उसके नेत्र डरे-डरे हो गये; व गंडस्थल मदमुक्त हो गया, बढ़ते हुए भयसे वह अत्यन्त विकल हो गया। वह अपने शरीरको गिराता हुआ-सा चीत्कार छोड़ने लगा, गलगलाने लगा,

[२२] १. क कहमिय<sup>१</sup>। २. क ड<sup>२</sup> भुजंगेण। ३. ख ग वेमुक्क, घ पम्मुक्क। ४. ख ग<sup>४</sup> वरह; घ<sup>४</sup> वरह<sup>५</sup>। ५. ख ग रुद्धेण। ६. क ड करि। ७. ग<sup>७</sup> ह्तिउ। ८. क ड<sup>८</sup> रिउ। ९. क ड<sup>९</sup> मत्तु, घ<sup>९</sup> मित्तु। १०. क ख ग ड<sup>१०</sup> कुं चइय<sup>१०</sup>। ११. क ड<sup>११</sup> धुयकं धु। १२. घ<sup>१२</sup> पसरत्तु। १३. क ड<sup>१३</sup> विहलु। १४. ख ग<sup>१४</sup> मे। १५. ख ग<sup>१५</sup> व<sup>१५</sup>। १६. क<sup>१६</sup> सइं। १७. घ<sup>१७</sup> भसइ।

नीससइ गडयडइ महिवट्टि किर पडइ ।  
 सतेण<sup>८</sup> ता मुकु वसि होवि<sup>१९</sup> पुणु थकु<sup>१९</sup> ।  
 जो नहु सनरिहु पडिमिलिज जणविंदु ।

२५ वत्ता—वण्णइ<sup>२०</sup> मगहाहिउ पई करि साहिउ अण्णहो<sup>२१</sup> छजइ एउ कसु ।  
 जणणिप्र<sup>२२</sup> उत्पण्णउ<sup>२३</sup> तुहु पर-वण्णउ<sup>२३</sup> असरिसु<sup>२४</sup> जसु जसु वीररसु ॥२॥

इय जंबूसामिचरिण लिंगारवीरे महाकव्ये महाकइदेवयत्तसुयवीरविरहण जंबूसामिउपत्ती-  
 कुमारविजउ<sup>२५</sup> नाम<sup>२६</sup> चउत्थो संधी समत्तो ॥ संधि—४ ॥

रसमसाने लगा, पीछेको चलने लगा, कसमसाने लगा, नि.स्वास छोड़ने व गडगड़ाने लगा, और पृथ्वीतलपर गिर पड़ा । तब जंबूस्वामीने भी शांत होकर उसे छोड़ दिया । फिर वह हाथी वशवर्त्ती होकर खड़ा हो गया । उधर राजा सहित जो जनसमूह भाग गया था, वह वापिस एकत्र हो गया । (तब) मगधराज जंबूस्वामीकी इसप्रकार स्तुति करने लगे—तूने जो हाथीको वशमें कर लिया, वह अन्य किसको जोभा देता है, अर्थात् अन्य कौन कर सकता है ? मंसि उत्पन्न तू ही एक परम-धन्य है, जिसका वीर-रसात्मक यग (अर्थात् वीरताका यग) (लोकमें) सर्वथा असदृश ( अद्वितीय ) है ॥२२॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामीचरित्र नामक इम शृंगार-वीररसामक महाकाव्यमें जंबूस्वामी-उत्पत्ति तथा कुमारकी (हस्ति) विजय नामक यह चतुर्थ संधि समाप्त ॥४॥

१८ ख ग नचेण । १९ ख ग पुण एकु, घ पुणु हाकु । २० क ट<sup>०</sup>, घ वन्तः । २१ क ट<sup>०</sup>, घ वन्तः । २२ क ट<sup>०</sup>णिय, ख णिउ । २३ क घ ट<sup>०</sup>उ । २४ क ट<sup>०</sup>णिम । २५ क ट<sup>०</sup>गम । २६ क ट<sup>०</sup> चउत्थो इमा मघो, घ चउत्था उमा मघो ।

संघ—५

[ १ ]

संते सयंभुएवे एक्को य कइत्ति<sup>१</sup> विण्णि<sup>२</sup> पुणु मणिया ।  
जायम्मि पुप्फयंते निणिण तहा देवयत्तम्मि ॥ १॥  
दिवसेहिं<sup>३</sup> इह<sup>४</sup> कवित्तं निलए निलयम्मि दूरमावण्णं<sup>५</sup> ।  
संपइ पुणो नियत्तं जाए कइवल्लहे वीरे ॥ २॥  
घालु करिणिगसु खंचवि<sup>६</sup> रयणहिं<sup>७</sup> अंचवि<sup>८</sup> अद्दासणे वडमारिडं । ५  
नयरुच्छाहरमाउले पुणु नियराउले<sup>९</sup> नरनाहें पइमारिडं<sup>१०</sup> ।

वस्तु—ताम राए<sup>११</sup> दिण्णु<sup>१२</sup> अत्थाणु

सिंहासणु<sup>१३</sup> बिहि मि ठिउ एक्कु पासि कामिणिजणावलि<sup>१४</sup> ।

पज्जलियमणिमडसिर<sup>१५</sup> पुणु निविट्ट मंडलियमंडलि ।

पुणु सामंत महंत थिय सेणिड<sup>१६</sup> इयराउत्त<sup>१७</sup> ।

१०

भडथड थक्क विणोयकर नरनाणाविहधुत्त ॥

केरिसं तं राइणो अत्थाण<sup>१८</sup>—जें तं कसवट्टयनिडवडियकणयघडिय-माणिकजडियदं-  
डियाचउक्कविणिवद्ध<sup>१९</sup> रयणविणिम्मिय<sup>२०</sup> बियाणतलि<sup>२१</sup> संनिवेसियसोहमाणसिंहासणं ।

[ १ ]

स्वयंभूदेवके होनेपर एक ही कवि था, पुष्पदंतके होनेपर दो हो गये और देवदत्तके होनेपर तीन । यहाँ बहुत दिनोंसे यह काव्य घर-घरमें-से दूर चला गया था, अब कविवल्लभ बोरके होनेपर पुनः लौट आया ।

राजाने अपनी नूतन ( तरुण ) हस्तिनीकी चालको रोककर, रत्नोंसे अर्चा करके बालक जंबूस्वामीको अर्द्धासनपर बैठाया, और फिर ( नागरिकोके ) उत्साहरूपी लक्ष्मीसे आकुल अर्थात् उत्साहसे परिपूर्ण नगरमें, तदनंतर अपने राजकुल ( राजप्रासाद ) में प्रवेश कराया । तब राजाने सभा लगायी और वे दोनों सिंहासनपर बैठे । एक पार्श्वमें कामिनियोकी पंक्ति खड़ी हुई, फिर रत्नोंकी दीप्तिसे प्रज्वलित मणिमुकुटोंको सिरपर धारण करनेवाले मांडलीकोकी मंडली बैठी, और फिर बड़े-बड़े सामंत व अमात्य बैठे, तथा फिर अन्य थोणियो ( व्यापारी, स्वर्णकार, चित्रकार आदि लोगोके संघ ) के मुखिया बैठे, फिर भटोके समूह और फिर मनो-विनोद करनेवाले लोग तथा अंतमें नाना प्रकारके चतुर लोग बैठे ।

राजाका वह सभामंडप कैसा था ? वहाँ कसौटीपर कसे हुए खरे सोनेसे गढ़े हुए, माणिक्योसे जड़े हुए एवं चार दंडिकाओसे युक्त रत्नमयो वित्तानके नीचे रखा हुआ सिंहासन

[ १ ] १ क ड कईय । २ ख ग व विन्नि । ३ क ड इय । ४ क ड वण, ख ग पन्न । ५ क घ ङ खचिवि । ६ क ड णिहि । ७ क घ ड अचिवि । ८ ख ग व सारियड । ९ क ड णिउ-  
रावलि । १०. ख ग पयसारियड, व सारियड । ११. घ विन्नु । १२ क व मिधा । १३ क घ ङ उलि । १४. क वर । १५ घ ङ । १६. क ड रावत्त । १७. ड णो । १८ ग विणिवद्ध । १९. ख ग वियणि । २०. ख ग घ तल । २१. क ख ग ड सणि ।



- जं तं सिंहासनपरिसंठियमहारायाहिरायपायत्यवण<sup>२२</sup> -कलिहफलएण चलचमर-  
 १५ धारिचिलसिणोसुहकंतिजित्त<sup>२३</sup> दासत्तणपत्तनक्खत्तसामिणा इव<sup>२४</sup> पडिछित्तनरिंद-  
 कमकमलं । जं तं नरिंदकमकमलपणमणमिलंत<sup>२५</sup> भूवालमवल्लिमाणिकसंकंत<sup>२६</sup> नह-  
 निउरुवपडिबिबल्लेण तिन्नपयावमसंहतेहि<sup>२७</sup> रायाणएहिं मुत्तियसयमिब<sup>२८</sup> पयहु-  
 त्तमंगि<sup>२९</sup> बुज्झंतरायसासन<sup>३०</sup> । जं तं<sup>३१</sup> रायसासनसमीहमाणसयलदेसभासासंवलय-  
 सत्थत्थविच्चित्तकणकणंत<sup>३२</sup> -कंकणदाहिणकराहिद्वियकणयदंडपुरद्विय<sup>३३</sup> -महापादि -  
 २० हारं<sup>३४</sup> । जं तं<sup>३५</sup> पडिहारय नाम<sup>३६</sup> -पथावार्णतर-<sup>३७</sup> समोसारणाळसुपसत्थहत्थ-  
 स्थियपरिममिर<sup>३८</sup> -इंडप्पयंड<sup>३९</sup> -सहासंकियतदलतरचलंतदिहि<sup>४०</sup> -सत्थाणमुवविसंत<sup>४१</sup> -  
 सामंतचक्रं । जं तं सामंतचक्रसेणावइपाइकपमुहपरिगाहवसोकियमंडलवइसेपसिय-  
 दूरमंडलागयरायवारिएहिं<sup>४२</sup> ढोइज्जमाणपाहुडगलंतमुत्ताहलकरं<sup>४३</sup> त्रियभूमिभायं । जं  
 तं भूमिभायसम्मज्जणकुंकुमक<sup>४४</sup> पूरकत्थूरियामोयविक्खिरियकुसुममयरंदमतगुमुगु-  
 २५ मिय<sup>४५</sup> -भमरई<sup>४६</sup> ऋरसहाणुकारियवीणाविलासं । जं तं<sup>४७</sup> वीणाविलास-गिज्जंतगेय-

शोभायमान था । और वह सिंहासन उसके ऊपर बैठे हुए महाराजाधिराजके पैर रखनेके स्फटिकमय फलक ( पादपीठ ) में चंचल चमरोको धारण करनेवाली विलासिनियोंकी मुख-कातिसे विजित होकर मानो दासभावको प्राप्त हुए नक्षत्रोके स्वामी ( चंद्रमा ) के समान नरेंद्रके चरणकमलोके प्रतिबिंबसे युक्त था । और वह सभामंडप नरेंद्रके चरणकमलोको प्रणाम करनेके लिए एकत्र हुए भूपालोके मुकुटमणियोसे सक्तांत होते हुए नखसमूहके प्रतिबिंबोके छलसे, उसके तीव्रप्रतापको सहन न करनेवाले राजाओके उत्तमांग ( मस्तक ) पर सैकड़ो मौक्तिकोके समान प्रगट होकर मानो राजाके शासनको भलीभाँति समझा रहा था । और वह सभामंडप राजाज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाले, सकलदेश भाषाओसे युक्त शास्त्रार्थके समान विचित्र कणकणध्वनि करते हुए ककणको धारण किये हुए, दाहिने हाथमे स्वर्णदंडको लिये हुए द्वारपर अवधित महा-प्रतिहारसे युक्त था । और वह सभामंडप उस महाप्रतिहारके द्वारा नाम-प्रस्ताव ( अभ्यागत परिचय ) के अनंतर राजाके सामने एकत्र हुए सभासदोको दूर करनेके लिए आकुल उसके प्रगस्त हाथोमे स्थित, धूमते हुए प्रचंड दंडके शब्दसे आशंकित, चंचलतर धूमती हुई दृष्टियोवाले, व अपने-अपने स्थानोपर बैठे हुए सामंतवृंदसे युक्त था । और वह सभामंडप सामंतचक्र, सेनापति, पदाति प्रमुख साधन संपत्तिसे वशीकृत मंडलपतियो द्वारा प्रेषित दूरमंडलोसे आनेवाले राजकीय नाइयों द्वारा उपस्थित किये जाते हुए भेटोसे गिरते हुए मुक्ताफलें व मणिरत्नोसे व्याप्त भूमिभाग-वाला हो रहा था । और वह सभामंडप उस भूमिभागके समार्जनसे कुकुम, कर्पूर व कस्तूरीकी आमोदसे व कुमुमोकी विकीर्ण मकरंदसे आकृष्ट हुए गुम-गुम गुंजार करते हुए मत भीरोके झकार शब्दका अनुकरण करनेवाले वीणाविलाससे युक्त था । और वह सभामंडप वीणाविलास-

२२. क व ड 'पायट्ठवण' । २३ क ड दोसत्तण, व दामित्तण । २४. ख ग पडिछित्तं । २५ व ड भूपालं । २६ ख ग 'सक्कत' । २७ क ड 'समहतेहि' । २८ क व ड 'मुत्तियमय' ; ख 'मुत्तियमय' । २९. क व ड 'मंग' । ३० व डुकतरायो । ३१. क व ड 'म' 'राय' पद नहीं । ३२. व 'कणकणंत' । ३३ क ड 'पुरिद्विय' । ३४ ख ग व 'पडिहार' । ३५ क ख घ ट 'पणाम' । ३६ ख ग 'तामणाउल', घ 'मरणाउल' । ३७ व 'परिममिय' । ३८ क ड 'दडगपड' ; ख ग दडगपयंड । ३९ क ट 'यल्लन्तिदिहि' । ४०. ख ग 'भुवविपण्ण' । ४१ ख गुमगुमिय । ४२ घ 'विलासं' ।

वज्रंतवज्रसमवायरइयपेक्खणय-नञिरविलासिणीसञ्चविय-<sup>४३</sup> महकइनिवद्धनाडयर-  
संतं । जं तं रसंतकामिणीचरणनेउरेहिं पढमाणमंगलपाढएहिं महुरक्खरं गायंत-  
गायणेहिं<sup>४४</sup> नियवावसर - अणवरयपविसंत<sup>४५</sup> - जोक्कारमुहरजोहेहिं<sup>४६</sup> सुहपुण्ण<sup>४७</sup> -  
कणजणनिवहं ।

यत्ता—पुहईसरु कणयच्छवि सुहिपंकयरवि जंजुकुमाराहिट्टिउ<sup>४८</sup> । ३०  
अच्छइ विविहविणोयहिं पयडियभोयहिं जावत्थाणे परिट्टिउ ॥१॥

[ २ ]

वस्तु—तामे चउदिसु कयसमुज्जोउ  
कणकणिरंकिणिमुहलु निवसमीवल्लोएहिं दीसइ ।  
अवरुप्परु विभियमणहिं अवयरंतु गयणाउ दीसइ ।  
धुग्विरैधयमालाललिउ मारुयवेयवहुत्तु ।  
दिग्गविमाणु सलक्खणउ<sup>४९</sup> रायत्थाणे<sup>५०</sup> पहुत्तु ॥१॥ ५

तहिं फुरियहरणविराइयउ विज्जाहुरु एक पराइयउ ।  
जयकारिवि नरवइ नविवि सिरु बोल्लणहं<sup>५१</sup> लग्गु पुणु<sup>५२</sup> होवि<sup>५३</sup> थिरु ।  
इह अत्थि खेयरालंकियउ गिरिसहससिगु नामंकियउ ।

सहित गाये जाते हुए गीतो, बजते हुए बाजोके समुदायसे रचित प्रेक्षणक ( दृश्य नाटक व नृत्य आदि ) में नाचती हुई विलासिनीके-द्वारा दिखाये जाते हुए महाकवि-निबद्ध (रचित) नाटकके कोलाहलसे पूर्ण था । और वह सभामंडप गानेवाली कामिनियोके झुनझुनाते हुए चरणनूपुरो से, पाठ करते हुए मंगलपाठकोसे, मधुराक्षरोसे गाये जाते हुए गायनोसे, एवं अपने-अपने अवसरपर प्रवेश करते समय जय-जयकार करनेमें मुखर थोड़ाओके स्वरसे सुखसे पूर्ण हो गये हैं ( भर गये हैं ) कान जिनके, ऐसे जन-समूहसे युक्त था । इसप्रकार जब वह राजा सुवर्णके समान वर्णवाले एवं सुहृज्जन रूपी पंकजोके लिए सूर्यके समान जवूकुमारके साथ विविध प्रकारके विनोद व प्रदर्शन किये जाते हुए गंध, वर्ण व शब्दादि विषयोके साथ सभामंडपमें बैठा था—॥१॥

[ २ ]

—तभी राजाके पासके लोगो-द्वारा अतिविस्मित मनसे, एक दूसरेको आकाशसे उतरता हुआ एक दिग्ग विमान दिखाया गया जो चारो दिशाओको प्रकाशित कर रहा था, कण-कण करती हुई किंकिणियोसे मुखर था; एवं फहराती हुई ध्वजमालाओसे सुंदर, मास्तसे भी अधिक वेगवाला तथा लक्ष्णोसे युक्त था । ऐसा वह विमान ( शीघ्र हो ) राजसभामें प्राप्त हुआ । उसमें-से कातिमान आभरणोसे सुशोभित एक विद्याधर निकला । जय-जयकार करके, नृपतिको शिर नवाकर स्थिर होकर वह बोलने लगा—यही ( इसी भरतक्षेत्रमें ) खेवरोसे अलंकृत सहस्रशृंग नामका एक पर्वत है । मैं गगनगति नामका विद्याधर वहाँ प्रीतिपूर्वक रहता

४३ क ड महाकइ । ४४ ख ग णेहि । ४५ ख ग यणवरयविसत । ४६ क सुहरजो । ४७ घ पुहपुण्ण । ४८ क हिट्टिउ ।

[ २ ] १ क ड ताव । २ क ड कणकणिण । ३ क घुं, ख ग धुग्विर । ४ क घ णउ । ५ एाणु । ६ क ड बोल । ७ घ मुणु । ८ क ड होइ ।

- हृदं वसमि तित्थु संजायरइ विज्जाहरु नामें गयणगइ ।  
 १० अज्जेणप्पं दिणि जं लक्खियउ आलोइणिविज्जप्पं<sup>१०</sup> अक्खियउ<sup>११</sup> ।  
 तं कहमि देव कारणसहिउ<sup>१२</sup> उत्तालु जइ वि किर पंथि थिउ ।  
 दाहिणपहं नयणाणंदयरि मलयाचलम्मि केरलनयरि ।  
 तहिं निवइ मिथंकु नएण सहुं मालइल्यं<sup>१३</sup> परिणिय वहिणिं<sup>१४</sup> महुं<sup>१५</sup> ।  
 तहिं नंदणि जाय विलासवइ<sup>१६</sup> सिगारु अणंगु जाहं<sup>१७</sup> थवइ ।  
 १५ सिक्खियगइसहयरु हंसगणु विहवहो कारणु परिवारजणु ।  
 अंगच्छवि जाहं<sup>१८</sup> पसाहणउं<sup>१९</sup> भोयायरुं<sup>२०</sup> घुसिणविलेवणउं<sup>२१</sup> ।  
 अलयावलि भालुम्मीलणउं<sup>२२</sup> नीलुप्पलमंडणु कोलणउं<sup>२३</sup> ।  
 न मुणइ<sup>२४</sup> रत्ताहररंगगुणुं<sup>२५</sup> जा छोइइ सुद्ध वि दंत पुणु ।  
 कण्णत्तयत्तनयणं<sup>२६</sup> जि धवला सिरभारुं<sup>२७</sup> पुप्फमालां<sup>२८</sup> बिमला ।  
 २० वोल्लंतिहिं कोमल जाहि गिरां<sup>२९</sup> वीणावायणउं<sup>३०</sup> बिणोयपरां<sup>३१</sup> ।  
 वयणुल्लउ निरुवमुं<sup>३२</sup> मणहरउ ससिहरुं<sup>३३</sup> तहं<sup>३४</sup> निवट्टणखप्परउं<sup>३५</sup> ।

हैं। आजके दिन जो मेरे लक्ष्यमें आया, तथा आलोकिनी विद्यासे मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ, उसको, यद्यपि मैं बहुत उतावला हूँ, और बीच यात्रामें ही खड़ा हूँ, (तथापि) कारण सहित कहता हूँ। दक्षिणपथमें मलयाचलमें नेत्रोंके लिए आनंदप्रद केरलपुरी नामकी नगरी है। वहाँ मृगाक नामका राजा न्यायपूर्वक रहता है। उसने मेरी मालतीलता नामक बहनसे परिणय किया। उसको विलासमती नामकी पुत्री हुई, जिसके श्रृंगारका कारीगर स्वयं अंतंग ही है। उसका सहचारी हंसमूह (उसका अनुकरण करनेके कारण) गमन क्रियामें कुशल हो गया है, और परिवार-जन अर्थात् सेवकोंके लिए वह वैभवका कारण है, तथा जिसकी शारीरिक क्रांति स्वयं ऐसी है कि चंदनविलेपनादि प्रसाधनोका प्रयोग केवल उन प्रसाधनोका आदर करनेके लिए ही किया जाता है (उसके शारीरिक सौंदर्यकी वृद्धिके लिए नहीं)। उसके भालपर खुली हुई अलकावली ऐसी लगती है, मानो नीलकमलरचित अलंकार वहाँ झोड़ा करने आया हो, और जो अपने रक्तितम अवरोके गहरे रंगके प्रतिविंबको न समझ सकनेके कारण अपने स्वच्छ दांतोंको बार-बार छीलतो है। उसके नेत्र कानोंके सिरे तक पहुँचे हुए हैं, तथा धवल पुष्पमाला (टि० मुकुट) उसके शिरपर भार मात्र है। बोलते समय उसकी कोमल वाणी वीणावादनको भी उत्कृष्टतासे मात करनेवाली है। उसका मुख ऐसा निरुपम व मनोहारी है कि चंद्रमा उसके समझ क्षणानंतर पड़ी हुई उल्टो खोपड़ी अथवा उल्टे ठीकरेके समान प्रतीत होता

१ क ड णइ । १०. ख घ ङ आलोयणिं; क ड विज्जइ । ११ क यउ । १२ घ गहिउ । १३ क ड मालयं, घ मालयलउ । १४ ख ग ण । १५. क ख ग महुं । १६. क ग घ ड तहिं । १७ क ट मं । १८. क घ जाहि, ङ जाहि । १९ घ जाहि । २०. घ णउ । २१. क घ ट पणउ । २२ प्रतिषेधे णउ । २४ घ ड णउ । २५. क ड ङ । २६. क ड गणु । २७ ख ग लणगं; घ कणत्तं । २८ क ड भार । २९ ख ग घ मुहं । ३० क ड मग । ३१ क घ ट णउ । ३२. ख ग घ विणोउ परा । ३३ ख ग घ वम । ३४ क घ ड पर, ख हर । ३५ क ड नं, घ नं । ३६ क विवडणं, घ ड विवडणं ।

घत्ता—महरिसिनाणुवएसैं कयआएसैं तेण मियकें देवउ<sup>३३</sup> ।  
तं<sup>३४</sup> पयपरिपालियधर नरपरमेसर कण्णरयणुं<sup>३५</sup> परिणेवउ ॥२॥

[ ३ ]

वस्तु—असमसाहसु हंस दीवन्मि

विज्जाहुरु रयणसिहु करइ रज्जु संगरि अचप्पिउ<sup>३६</sup> ।

करितुरंग<sup>३७</sup> रह-सुह-थड<sup>३८</sup> अपमाणवलविसमदप्पउ ।

सामभेयउवयाणयहि मग्गिय तेण कुमरि ।

पुणु पारंभियं दंडकिय जाप्र<sup>३९</sup> पयट्टइ मारि ॥१॥

५

मगांतहो कण्णं न दिण्णं जाम

केरलपुरि वेडिय तेण ताम ।

चउपासिउ पसरिउ वल्लु रउडु

मज्जायसुक्कु नावइ समुह ।

जिणभवण-सवणो-संवट्टणाइ

लाट्टियइ<sup>४०</sup> मियकहो पट्टणाइ ।

नीसेसइ<sup>४१</sup> देसइ नासियाइ

वहुधणइ जणइ<sup>४२</sup> निव्वासियाइ<sup>४३</sup> ।

सुहधामइ गामइ लुडियाइ<sup>४४</sup>

आरामइ रामइ<sup>४५</sup> सूडियाइ ।

१०

संपणइ धणइ भारियाइ

रसवंतइ<sup>४६</sup> छेत्तइ<sup>४७</sup> चारियाइ<sup>४८</sup> ।

असरालइ<sup>४९</sup> बाडइ<sup>५०</sup> खुणियाइ<sup>५१</sup>

कयनीडइ<sup>५२</sup> बीडइ<sup>५३</sup> चुणियाइ<sup>५४</sup> ।

तरुसीरइ<sup>५५</sup> नीरइ<sup>५६</sup> फोडियाइ

भडथट्टइ<sup>५७</sup> कोट्टइ<sup>५८</sup> मोडियाइ ।

है। तो, हे प्रजापालक-वराके समान धीर नरेश्वर ! महर्षिके ज्ञानोपदेश व आदेशानुसार मृगाकके द्वारा वह कन्या-रत्न आपको परिणयके लिए दिया जाना है ॥ २ ॥

[ ३ ]

हंसद्वीपमे अतुल्य साहसवाला, व संग्राममें अपराजेय, रत्नशेखर नामका खेचर राज्य करता है। वह अपने हाथी, घोड़े, रथ, और सुभटसमूहके अप्रमाण बलका अत्यंत अभिमानी है। उसने साम, मेद व दामसे उस कुमारीको मांगा, और तत्पश्चात् दंडक्रिया (युद्ध) प्रारंभ कर दी, जिससे मृत्यु ही प्रवृत्त होती है। जब मांगनेपर भी उसे कन्या नहीं दी गयी तो उसने केरलपुरीको घेर लिया। चारो पाठ्वोंमें रीढ़ सेना इसप्रकार फैल गयी मानो समुद्र मर्यादा मुक्त हो गया हो। मृगाकके जिनमंदिरो व श्रमणोंके संघट्टन अर्थात् बाहुल्यसे युक्त नगर लूट लिये गये, समस्त प्रदेश बर्बाद कर दिये गये, एवं बहुत धनवान लोगोंको निर्वासित कर दिया गया। सुखके धाम गाँव भी लूट लिये गये, रमणीक आरामोंका विनाश कर दिया गया, पके हुए धान्यको भरकर ले जाया गया, एवं हरे-भरे खेतोंको चरा दिया। अधिकांश बाड़ो (सीमावर्धों) को खोद डाला गया, तथा विस्तीर्ण घोंसलोंमे रहनेवाले पक्षियोंको भी भयभीत कर दिया गया। वृक्षस्थित तटोवाले जलाशयोंको फोड़ डाला गया, एवं अनेक भटसमूहोंसे

३७. व देवउ । ३८. क व ड पडं पालियधर । ३९. व कन्न ।

[ ३ ] १. व अह सुसाहसु । २. क ड अवप्पिउं, ग अव । ३. ख ग घ तुरय । ४. क ड भड । ५. व आर । ६. ख ग जाड, घ जाह । ७. ख डडइ, घ ट्टइ । ८. व छ । ९. व मुक्क । १०. क रावण, ख ग व वण । ११. क इ । १२. ख ग जणइ व, घ वणइ जणइ । १३. घ निव्वासियाइ । १४. ख ग लूटि । १५. क ड सीमड । १६. क ख ग ड तइ । १७. व रवे । १८. ड याड । १९. क ख ग ड लड । २०. क व ड मालड । २१. व खुणि । २२. ख ग इ । २३. क ख ड चुणि, घ चुनि ।



फुडु<sup>२२</sup> लोयाहाणउं इयगिरग जोयणसयविजु<sup>२३</sup> सप्पु सिगग्र ।  
 सो थाउ<sup>२४</sup> जेत्यु थिउ वडरिगडु इह<sup>२५</sup> ठायहो<sup>२६</sup> जोयणसउदिउडु<sup>२७</sup> ।  
 भूगोयर तुम्हडें फिर भणउ<sup>२८</sup> अजु जि जाएवउ कहि<sup>२९</sup> तणउं । १५  
 पडिभणउ<sup>३०</sup> कुमार म किं पि भणु तुहुं नेहि तेत्थु मई<sup>३१</sup> एक्कु जणु ।  
 समरंगणु जेम समाणियइ<sup>३२</sup> अणुवलु संपेसिव<sup>३३</sup> जाणियइ<sup>३४</sup> ।  
 समियकु जेम तुहुं<sup>३५</sup> लच्छिफलु अणुहुजहि<sup>३६</sup> निवलु निहयखलु ।  
 सविलाससंलक्खणहंसगइ परिणइ<sup>३७</sup> नरनाहु विलासवइ<sup>३८</sup> ।

वत्ता—मणे विज्जाहुरु कं पिउ पुणु वि पयंपिउ जो समाणु रिउ कालहो । २०

सो मई नीयहो एकहो जइ वि सुसकहो केम सज्जु तुह बालहो ॥१॥

[ ५ ]

वस्तु—को<sup>१</sup> दिवायरगमणु पडिखलइ

जममहिससिगुक्खणइ<sup>२</sup> कवणु गरुडमुहकुहरे पडसइ<sup>३</sup> ।

को क्रूरगहु निग्गहइ को जलते सव्वासे पडसइ ।

को वा सेसमहाफणेहि<sup>४</sup> फणमणि<sup>५</sup> मंड-हरेइ ।

को कपंतुटंतु जलु जलनिहि<sup>६</sup> भुगहि<sup>७</sup> तरेइ<sup>८</sup> ॥१॥ ५

बोला—चाँदकी किरणोंको कौन छू सकता है ? तुम्हारी इस बातसे यह लोकाध्यान (लोकोक्ति) हो प्रकट होता है—सौ योजनपर वैद्य और शिरपर साँप (सीसे साँपो, बिसे वेज्जो) । वह वहाँ स्थित है, जहाँ उस शत्रुका गढ है, और यहाँसे डेढ़सौ योजन दूर है । तुम लोग भूगोचरी हो, तुमसे क्या कहा जाये ? आज ही तुम लोग कहाँ तक जा सकते हो ? तब कुमार फिर बोला—यह सब कुछ मत कहो, तुम मुझ अकेले ही व्यक्तिको वहाँ ले चलो, जिससे यह युद्ध समाप्त किया जा सके, सहायक सैन्य भेजा हुआ समझा जा सके; तू उस दुष्टको मारकर भुगांक राजा सहित निश्चल रूपसे राजलक्ष्मीका भोग कर सके, और राजा श्रेणिक विलासगोल, सुलझणा व हंसगामिनी विलासमतीका परिणय कर ले । यह सुनकर विद्याधर मनमें काँप गया—जो शत्रु यमराजके समान है, वह, मेरे द्वारा अकेले ले जाये गये तुझ बालकके द्वारा कैसे साधा जायेगा ॥ ४ ॥

[ ५ ]

सूर्यकी गतिको कौन अवरुद्ध कर सकता है ? यमराजके भैसेके सींगोंको कौन उखाड़ सकता है ? गरुडके मुखकुदृष्टमें कौन प्रवेश कर सकता है ? क्रूरग्रहका कौन निग्रह कर सकता है ? और जलते हुए अग्निमें कौन प्रवेश कर सकता है ? शेष-महाफणि (शेष नाग) के फणपर स्थित मणिको दलात् अपहरण कौन कर सकता है और कल्पांत अर्थात् प्रलयकालके समय ऊपर उठती हुई भयंकर लहरोसे युक्त जलवाले जलनिषिको भुजाओसे कौन पार कर सकता है ?

२२ ख ग फुडु । २३. क घ ङ सडं, ख ग सय । २४ ख ग बाउं । २५ क ङ डय । २६. क ख ग ङ या । २७. क घ ङ दिवहू । २८ क घ ङ उं । २९. घ कहु । ३० क घ ङ ईं । ३१ ख ग मइ । ३२. क णियए, ङ सम्मा । ३३ क ङ बालु पयमिउ । ३४ क ख ग घ मई । ३५. ख ग तुह । ३६ ख ग जहि । ३७ क ङ मई ।

[ ५ ] १ क को वि । २ क घ ङ णईं । ३. ख ग पयं । ४. क ङ सेमिं । ५ क ङ फणिं । ६ क घ ङ ङतु । ७ ख ग णिहि, घ णिहि । ८ क घ ङ भुगहिं । ९. क ग ईं ।

- तथो जंपियं राह्णा<sup>१०</sup> हासिरेणं समं खेयरेणं सहाभासिरेणं<sup>११</sup> ।  
 किमेण धोल्लेण एको वि वालो समत्थो समत्वस्स काळस्स कालो ।  
 फुरंतप्पयावस्स सूरस्स सूरु इमो खे विडप्पस्स कूरस्स कूरो ।  
 इमो समगयकस्स सकस्स सको इमो पत्तिरायस्स<sup>१२</sup> चकस्स<sup>१३</sup> चको<sup>१४</sup> ।  
 १० इमेणं करत्ताडिओ सोसि सेसो फणामंडलाओ मणिं मुंच एसो ।  
 डमस्स प्पयावेण संडज्जमाणो सिहो सीयलो होइ भूईनिहाणो<sup>१५</sup> ।  
 विवक्खो सखग्गम्मि पयम्मि वाले<sup>१६</sup> पचच्चेइ सिच्चुं अपूरम्मि काले<sup>१७</sup> ।  
 सुणेऊण तं खेयरो रायवाणिं कुमारं समारोवए दिव्वयाणिं<sup>१८</sup> ।  
 नरिट्ठस्स वालो पप्पुं पडिण्णो<sup>१९</sup> समासीसदाणो विमाणं चडिण्णो<sup>२०</sup> ।  
 १५ जवेणं समुद्धाइयं बोसभाए<sup>२१</sup> खणद्धेणं विट्ठीणं विट्ठं सहाए ।

घत्ता—तत्त्वणं वाहुविसालं चित्तुत्ताले तं अत्थाणु विसज्जिड ।

केरलनयरिपपसहो<sup>२२</sup> दक्खिणदेसहो निवेण पथाणव<sup>२३</sup> सज्जिड<sup>२४</sup> ॥५॥

[ ६ ]

वस्तु—सरसनरवइ-सवलसामंत-

सेणावइ-साहणिय-तंतवालदलनिविडभडयड<sup>२५</sup> ।

आइड्डकडियधरहिं<sup>२६</sup> तुरिउं जाड सायमिवावड ।

इसपर हँसते हुए राजाने ( अपनी प्रभासे ) सभाको भास्वर करनेवाले उस खेचरसे कहा—  
 यह सब बोलनेसे क्या ? यह अकेला ही वालक समर्थ यमके लिए यी यम होनेमें समर्थ है ।  
 सूर्यके लिए भी ( सूर्यके तेजको अपने तेजसे पराभूत करनेवाला ) सूर्य है, और आकाशमें  
 क्रूर राहूके लिए भी क्रूर है ! यह स्वर्गस्थ शक्रका भी शक्र, और पत्तिराज ( गवड़ ) के समूह-  
 के लिए भी ( सुदर्शन ) चक्रके समान है । यह जेपके गिरपर हाथसे ताड़न करनेवाला है, और  
 उसके फणामंडलसे मणिको छुड़ा लेनेवाला है । इसके प्रतापमें दग्ध होकर अग्नि भी क्षीतल  
 होकर भस्मराशि मात्र रह जाता है, और इस बालकके खड्ग ग्रहण करनेपर शत्रु अपना समय  
 पूरा होनेसे पहले ही मृत्युको प्राप्त होता है । राजाको इस वाणीको मुनकर खेचर कुमारको  
 दिग्गयानमे चढ़ाने लगा, तो बालक राजाके पैरोंमें पड़कर, राजा द्वारा वाणीवाद देनेके साथ  
 ही विमानमें चढ गया । क्षणार्द्धमें ही सभाके लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक विमानको वेगसे व्योमभाग  
 ( नभोमार्ग ) में भागते हुए देखा । उसी समय विशाल भुजाओंवाले उस राजाने उतावले चित्तसे  
 उस सभाको विसर्जित कर दिया और दक्षिण देशमें केरलनगरी प्रदेशकी ओर प्रयाण करनेकी  
 तैयारी की ॥ ५ ॥

[ ६ ]

तब नरपति वीर भावसे सेना, सामंत सेनापतियो, निज सेनापतियो, राष्ट्रपालोके दल,  
 घने भटसमूह, तथा आदेश किये हुए प्रतीहारोसे कार्य-रत हो गया । रथ जोते जाने लगे, गर्जों  
 १० ग रायणा । ११ क ड महा । १२ क ड पवि । १३ क ड वक्ख, व वक्ख । १४ क ड  
 वको, व वक्को । १५ क ड णिवाणे । १६ क ड ग ड वाणो । १७ क ड ग ड कालो । १८ ख ग देवि  
 पाणो, व देवि पाणि । १९ व णो । २० क ड हाए । २१ क ड केरलि, ख ग नयर । २२ क व ड  
 णलं । २३ ड उ ।

[ ६ ] १ ख ग वय । २ ख ग णिवड । ३ क ड आइड्ड । ४ व तुरिय ।

रह-जुपति गुडति गय पल्लाणिय<sup>१</sup> ह्यथट्ट ।

करह-वल्ह-कहारियहि<sup>२</sup> संवाहिय करकट्ट ॥१॥

५

तो महारायदारम्मि सरलालियं <sup>३</sup>	भरियदरिचिवरतूर <sup>४</sup> समुष्काळियं ।
पहय पडुपडह पडिरडियदडिडवरं <sup>५</sup>	करडतडतडण-तडिवडण-फुरियंवरं <sup>६</sup> ।
धुमुधुसुक <sup>७</sup> -धुमुधुमियमहलवरं	सालकंसालसलसलिय-मुल्लियसरं <sup>८</sup> ।
डकडमडक <sup>९</sup> -डमडमियडमरुडभड	घंट-जयघंट <sup>१०</sup> -टंकाररहसियभडं ।
डक <sup>११</sup> व्रं व्रं हुडुकावलीनाइयं <sup>१२</sup>	रुंजगुंजंत-संदिणसमघाडयं <sup>१३</sup> ।
थगगदुग-थगगदुग-थगगदुग <sup>१४</sup> सजियं	किरिरिकिरि-तट्टिकिरिकिरि किरि <sup>१५</sup> वलियं ।
तखिखितखि-तखिख-तखितत्तासुंदरं <sup>१६</sup>	तदिदिखुदि-खुंदखुद खुंद भाभासुरं ।
थिरिरि <sup>१७</sup> -कटतट्टकट थिरिरि <sup>१८</sup> कटनाडियं	किरिरि तटखुंद <sup>१९</sup> तटकिरिरि-तडताडियं <sup>२०</sup> ।
पहय-समहय <sup>२१</sup> -सुपसत्यवित्थारियं	मंगलं नंदिघांसं मनोहारियं ।
तूरसहेण चलिथं <sup>२२</sup> महाकलयलं	राथराण सह चारुंगं वलं ।

१०

१५

घत्ता—उट्टियरयजल्लोलउ नहयलवोलउ तं<sup>२३</sup> नरबडवलु चलिउ<sup>२४</sup> ।

निवमणे रयणरमाउलु करिमयराउलु णं समुदुड उळ्ळिल्ल ॥२॥

को ह्रीदा लगाकर सजाया जाने लगा, एवं अश्वसमूहपर पलान लगाया जाने लगा । ऊँटो, बैलों व कहारों-द्वारा ले जाने योग्य वस्तुएँ ले जायी जाने लगी । तब महाराजाके द्वारपर ललित स्वरवाला, समस्त दरि-विवर प्रदेशोंको भरनेवाला तूर बजाया गया । पटु-पटह बजाये गये, व दडिडवर उससे प्रतिध्वनित हो उठा । करडकी तड-तडसे आकाश बिद्युत्पतनके समान हिलने लगा । श्रेष्ठ मर्हल धुमधुमूक धुमधुमूक करने लगा, और विशाल कंसाल सुललित स्वरसे सल-सलाने लगा । डक्का डमडक्क, व डमरु डमडमका स्वर करने लगा और घंटो व जयघंटोंकी टंकारसे भट उत्तेजित हो उठे । डक्का व्रं व्रं, व हुडुक्का नामक वाजोका समूह नाद करने लगा, और आघात करनेसे रुंज नामक वाद्य गुंजन करने लगा । थगगदुग, थगगदुग आदि थग-गुग ध्वनियोंका साज सजाया गया और किरिरि-किरि-तट्टिकिरि करते हुए किरिरि नामक वाद्य बजाया गया । तक्का नामक वाद्य तखिखि-तखि-तखिखि इत्यादि ध्वनियाँ करने लगे और खुंद नामक वाद्य तदिदि खुदि खुद खुद खुंद आदि उच्च स्वर करते हुए बजे । थरिरि-कट-तट्ट-कट करते हुए थरिरि नाचने लगा, और तटखुंद नामक वाद्य किरिरि-किरिरि करते हुए ताड़न करके बजाया गया । हलके हाथोंसे सुप्रशस्त एवं मनोहारी मंगलकारक नंदिवेषका विस्तार किया गया; इस प्रकार तूरोके शब्दसे बड़ा भारी कलकल करते हुए चतुरंग सैन्य राजाधिराजके साथ चल पड़ा । उठे हुए चंचल घूलरूपी जलसे आकाशका उल्लंघन करता हुवा उस तरपतिका सैन्य ऐसा चल पड़ा मानो नृपके मनमे रत्नो व रमा (लक्ष्मी) से युक्त तथा हस्तिरूपी मगरोंसे आकुल समुद्र ही उछल पड़ा हो ॥६॥

१ क ड ण्हि । २ ख ग लालय । ३ क घ ड भरियदरं । ४ क ड तडवडिण । ५ क ड फुडिं । ६ ख ग घ धुमु धुमुक्क । ७ ख ग सलं । ८ क ख ग घ डक । ९ ख ग वड । १० ख ग टक्क । ११ क ड यय । १२ व थगगदुगदुग्गे थगगगदुगं । १३ ख ग घ किरि । १४ ख ग तखे खे वि तखे तखि तखे तामुरं त खुदे त खुदे त खुदे भाभुरं । १५ व थरिरि । १६ ख ग घ कट-खुंद । १७ व तटता । १८ क ड सुयं । १९ क व ड वलिणं । २० ख ग तें, व ति । २१ व चलिउड ।



[ ७ ]

वस्तु—समयकरिचडकुंभसिंदूर<sup>१</sup>—पूरेण<sup>२</sup> पवणाहण रत्तकिरणु मज्झण<sup>३</sup> भावइ ।अर्थत<sup>४</sup> संज्ञाविरहु चक्रवायमिहुणाण दावइ ॥हरितुरसुण<sup>५</sup> खमुमाण<sup>६</sup> धूलीरण विहाइ<sup>७</sup> ।

५

भडपहरणछिजंतकर रवि संकिल्लइ नाइ<sup>८</sup> ॥१॥

खंधारु वहइ परवलजइल्लु

रहकरितुरंगभडसंकडिल्लु

गयगंडगालियमयकइमिल्लु

धुव्वंतविंधयसुरडरिल्लु

१० पालिद्वयालिबिहुणियकरिल्लु<sup>९</sup>सामंतकुमारुस<sup>१०</sup> हयहरिल्लु

डोहियजलवाहिणिजलतरिल्लु

कच्छडयदिण<sup>११</sup> कामिणिकडिल्लु<sup>१२</sup>

रहचक्रमुक्कचिकारतट्टु

उड्डीणरेणुपसरणमइल्लु ।

उग्गिमयसिहिसाहुलसयजडिल्लु ।

हयफेणचिलिच्चिलदुग्गमिल्लु ।

तंडचियछत्तपड<sup>१३</sup> पंडुरिल्लु<sup>१४</sup> ।

मंडलियमल्लमणिगणगरिल्लु ।

खेल्लंतपत्तिपयथरहरिल्लु<sup>१५</sup> ।सिरि<sup>१६</sup> जूडवड्ढ-थोरियवरिल्लु ।पयचपणकयचिचिखलतडिल्लु<sup>१७</sup> ।पाडवि<sup>१८</sup> कंठालु<sup>१९</sup> बइल्लु नड्डु ।

[ ७ ]

मदसहित गजसमूहके कुंभस्थलोसे पवनसे आहत होकर उडते हुए सिंदूरके पूरसे सूर्य मध्याह्नकालमें ही ऐसा लाल-लाल किरणोंवाला दीखने लगा, जैसा कि संध्यातमें अस्तगत होता हुआ चक्रवाक मिथुनोको विरह उत्पन्न करता है, तथा घोड़ोके खुरोसे खोदे हुए आकाश-को उडनेवाले धूलिकणोंसे ऐसा लगने लगा मानो भटोंके शस्त्रप्रहारसे अपने किरणोंरूपी हाथ काटे जानेसे संकलेश पा रहा हो । शत्रुसैन्यको जीतनेवाला स्कंधावार उडते हुए रेणुके प्रसारसे मैला हो रहा था, तथा रथो, हाथियो, घोडों व भटोंसे संकुल एवं उठाये हुए सैकड़ो मयूरध्वजोसे मानो जडा हुआ था । वहाँ गजोके गंडस्थलोंसे गलित मदसे कीचड हो रहा था और घोड़ोके फेनसे मार्ग दुर्गम हो रहा था । फहराती हुई भवजा-पताकाओसे देव भी डर रहे थे । तने हुए छत्रपटोसे वह ( स्कंधावार ) पांडुरवर्ण हो रहा था, व बासमें लगी हुई कपड़ेकी छोटी-छोटी झलियोंसे वह करीलके वृक्षोंको कंपायमान कर रहा था, और मांडलीकोके मुकुटमणिसमूहसे महान् गौरव संपन्न था । सामंतकुमारोके कशो ( चावुको ) से आहत होते हुए अश्वो और खेलती हुई पदाति सेनासे उस प्रदेशको थरथराते हुए उरा सेनाने एक जलवाहिनीका अवगाहन करके उसके जलको पार किया । उस प्रदेशके लोग अपने सिरपर जटाजूट बांधे और गोलाईसे शिरोवस्त्र लपेटे हुए थे, वहाँकी कामिनिशं कटिवस्त्रमें कछोटा लगाये हुए थी, एवं लोगोके पदचापसे उस नदीका तटवर्ती प्रदेश कीचड़मय हो रहा था । कहीं

[ ७ ] १. घ कुंभि सिं । २. र ह । ३. र ग णणे; वं नि । ४. क र ट अच्छंत । ५. घ लुव्व । ६. ख ग व समु । ७. क ई । ८. नाइ । ९. क ट उड्डीर । १०. क पय । ११. र ग व पं । १२. क ड पालड । १३. क कुस । १४. र ग व ट नोल्लत । १५. ख धरह । १६. क ट निर । १७. क ड तडिय; ख ग काल । १८. र ग क रिल्लु । १९. र ग व विण्णिल । २०. क ट पाण्डि । २१. पत्तिगेपे कणाल ।

त्रीण बलहं दामिण  
 उल्ललिय बडल्लु<sup>३३</sup> विवंधणी<sup>३४</sup>  
 कर परप झडप्पिर फरयचेट्टु<sup>३५</sup>  
 कंसारवोज्झनिवडणवणाई  
 दोत्तडिहि<sup>३६</sup> धरंतहो<sup>३७</sup> गट ब्रडत्ति  
 विट्मुल्लु बडल्लु<sup>३८</sup> हो मुक्कराडु<sup>३९</sup>  
 कल्लालहो फोडिउ मज्जपट्टु<sup>४०</sup>  
 संकुडउ<sup>४१</sup> नासु हत्थे<sup>४२</sup> धरंतु  
 कल्लहोडवडल्ले<sup>४३</sup> जायरेल्लु  
 कुट्टणियइ<sup>४४</sup> बुच्चइ हत्थिरोहु  
 रे कुल्लु कवणु करि धारिऊण  
 घत्ता—अगणिय निसिदिणु<sup>४५</sup> नरवइ कहिं मि न विरमइ कारणु तउ वि महल्लउ<sup>४६</sup> ।

दुद्धरवइरिमहाहउ<sup>४७</sup> महिलपराहउ वालु गयउ एक्कल्लउ<sup>४८</sup> ॥॥

पडिभरिउ<sup>४९</sup> बोञ्जु गोसामिण । १५  
 पाडकु निवारिउ रंधणी<sup>५०</sup> ।  
 कुंभंडिउ<sup>५१</sup> डिमु पाडिहहि धिट्टु<sup>५२</sup> ।  
 रणरणियइ<sup>५३</sup> फुट्टइ<sup>५४</sup> भायणाई<sup>५५</sup> ।  
 तेल्लियहो सयडुमोडिउ तडत्ति<sup>५६</sup> ।  
 हा मुट्टउ<sup>५७</sup> पुक्कारइ किराडु । २०  
 सुर छंटइ<sup>५८</sup> उत्तेडियइ<sup>५९</sup> मट्टु<sup>६०</sup> ।  
 बिहुणियसिरु नासइ<sup>६१</sup> हुंकरंतु ।  
 संघाडुल्लालिउ गयउ तेल्लु ।  
 ओसरहि करहि मा मगरोहु<sup>६२</sup> ।  
 राउलउ तुरंगमु मारिऊण । २५

रथके चक्केसे छोड़ी हुई श्रीकारसे त्रस्त होकर काठी ( गोण ) को गिराकर वेल भाग गया, दूसरे वशमे किये हुए ( अभ्यस्त ) वेलपर गोस्वामीने पुनः बोझ लादा । रसीई पकानेवाली अर्थात् दूसरोका खाना बनाकर गुजारा करनेवाली एक विवंधनी अर्थात् असहायस्त्रीने ( तेज हाकनेके लिए ) वेलको पीटते हुए पंदाति ( भृत्यसैनिक ) को ( यह कहकर ) रोका—अरे ! अपने इस फलकके समान चेट्टा करनेवाले ( अर्थात् भड़कीले ) वेलको झटपट दूर हटाओ, वरना यह ढीठ, बालकको भी कुम्हड़ेके समान दे पटकेंगा । कंसरोके बोझे गिर जानेसे उनके बहुत घने ( अधिक ) भाजन रण-रण करके फूट गये । रोकते-रोकते भी एक तेलीका शकट दुष्ट नदीमें चला गया, और तड़ाकसे टूट गया । ( हो = ) अरे लोगो ! मेरा वेल कहीं भुला गया, हाथ मै छूट गया, इसप्रकार एक किरात चीख-चीखकर पुकार मचाने लगा । एक कल्लालका मद्यपात्र फोड़ डाला गया, इसपर एक भाट ( भट्ट ) सुराको बूंद-बूंद करके छानने अर्थात् एकत्र करने लगा । संकुचित नाकको हाथसे पकड़ता हुआ, सिर धुनकर एवं नाकसे हुकार करता हुआ ( रातमे ) जागनेवाला एक प्रतिहार बोला—दुष्ट वेलके द्वारा ( तेलवाहक वेलोंकी ) जोड़ीको लात मार देनेसे तेल नष्ट हो गया । एक महावत एक कुट्टनीसे बोला, हट जाओ, मार्गाविरोध मत करो ! ( किसीने कहा ) अरे राजकुलके हाथीको बांधकर और घोड़ेको पीटकर अब तुम्हारी क्या कुशल है ? रात ( को रात ) व दिन ( को दिन ) नहीं गिनते हुए, राजा कहीं भी विराम नहीं लेता था, और इसका कारण भी बहुत बड़ा था कि दुद्धर वैरोसे महान् युद्ध होना था, अपनी ( होने वाली ) महिलाका पराभव हो रहा था, और बालक अकेला ही ( लड़ने ) चला गया था ॥॥

२२ ख ग परिं । २३ प्रतियोमे ल्ल । २४ क ड णीड, घ णीड । २५ ख ग णीड । २६ घ चेट्टु । २७ क घ ड डुव । २८ घ विट्टु । २९ क ड यइ । ३० ख ग इ । ३१ ख भाणियाइ । ३२ क घ ड दोत्तडिहि, ग दोत्तडिहि । ३३ ख ग धरं । ३४ क ड कं । ३५ प्रतियोमे ल्ल । ३६ क ड मुक्कु । ३७ क गुं । ३८ क मज्जु ; ग थट्टु । ३९ क ड लडइ । ४० क घ ड यउ । ४१ ग भट्टु । ४२ क ड इय । ४३ ख ग हत्थे । ४४ व ड इ । ४५ क ल्ले । ४६ क कडडं, ख ग कुट्टणिं, घ कड्डणिण । ४७ क रोट्टुं । ४८ क घ ड अदमकियमणु नरवइ भणइ महल्लउ । ४९ क ड दुद्धरि वं । ५० क ड एक्के, व इक्क ।

[ ८ ]

वस्तु—एम पइसइ निवइ खंधारु

गिरिचिञ्चु<sup>१</sup> दुग्गमसिहरु सरलवंसपव्हि<sup>२</sup> अहिद्विउ<sup>३</sup> ।पुंवावरोवहि धरवि<sup>४</sup> धरपमाणदंडु<sup>५</sup> वः परिद्विउ ॥

गिरिनिञ्चरकंदरविसम तरुवरनियरवरिदु ।

५ रववहिरियवणयरैमिर<sup>६</sup> विञ्जमहाडइ दिदु ॥१॥कहिं मि—अहिमारखर<sup>७</sup> खइर-धवधम्मणा कंटीवोरीघणा<sup>८</sup> ।वंसिञ्जंसी<sup>९</sup> तिरीगिच्छि-अंजणवणा<sup>१०</sup> रोहिणी-रावणा ।विल्ल<sup>११</sup> चिरहिल्ल<sup>१२</sup> अंकोल्लतरु-धायई मल्लि-भल्लाथई ।घोटी<sup>१३</sup> टिबरु-निघण-फणसमहुरूखया हिगुणी-भोक्खया ।१० सिरिसु<sup>१४</sup> सेवणि<sup>१५</sup> सेहालिया<sup>१६</sup> सिसमी<sup>१७</sup> सज्ज-गुंजा-समी ।कडहु-किरिमाल-करहाड<sup>१८</sup> कणियारिया कुडय-गणियारिया<sup>१९</sup> ।कडहु-वड<sup>२०</sup> डडहु-सकरीर-करवंदिया मार-महु-सिदिया ।निव-कोसंब<sup>२१</sup> जंबुइणि-निवुवरा<sup>२२</sup> सगालगं वरा ।कहिं मि गिरिकडणि<sup>२३</sup> गज्जंतकरिकाणणा कुडुपंचाणणा ।

[ ८ ]

इसप्रकार नृपतिका स्कंधावार सीधे बासोकी मेखलाबोसे भरे हुए एव दुर्गम शिखरो-  
वाले विंध्यपर्वतमे प्रविष्ट हुआ, जो पूर्व और अपर ( पश्चिम ) उदधिको धारण करके घराके  
प्रमाणदंडके समान स्थित था । इसके उपरांत पहाड़ी झरनो, विपम कदराओ और सुंदर वृक्षोके  
उत्तम कुंजो तथा अपने शोरसे बह्रा कर देनेवाले वनचरोके भ्रमणसे युक्त विंध्य महाअटवी  
दिखाई दी । कही अहिमार, कठोर खदिर ( खैर ), धव, धम्मण और घने कंटीली बेरीके वृक्ष  
थे । कही बास, क्षसी ( झाड़ ? ) तिरीगिच्छ और अजण तथा रोहिणी ( गुल्म विशेष ) व  
रावण ( औषधि विशेष ) आदिके बड़े-बड़े वन थे । कही बेल, चिरिहिल्ल, अकोल्ल, धातकी  
और मल्ल तथा भल्लातकीके वृक्ष थे । कहीपर मुख्यतया घोटी, टिबर, निघन, फणस व  
हिगुणीके बड़े-बड़े वृक्ष थे । कही सिसोष, सेवणि, जेफालिका, सिसम ( जीवम-विशपा ), सर्ज,  
गुंजा और गमी ( छोकार ) के वृक्ष थे । कही कटयू ( कटहल ? ), किरिमाल, शिफाकद  
( मैनफल ) और कणिकार ( कनेर ) व कुटज और गणिकारके तरु थे । कही ककुभ ( चंपा ? )  
वट, डडहु ( ढौह ? ) करील, करवंदी ( करौदा ) मार व महुआ और सिंदोके वृक्ष थे । कही  
निव, कोशाम्र, जंबूकिनी ( बेतस-बेत ), नीवू व उंवरा ( तदुवर ) के सुंदर वृक्ष मानो स्वर्गको  
छू रहे थे । कही पर्वतमेखलापर हाथी व क्रुद्ध सिंह गर्जन कर रहे थे । कही दड ( शस्त्र ) से

[ ८ ] १ क ड<sup>१</sup> ज्ज। २ क ड<sup>२</sup> डड। ३ क घ ड धरवि। ४ क ड धरहि माणदडु। ५ क ट वि,  
ख नावइ। ६ ख ग व<sup>६</sup> वणयर। ७ ख ग घ<sup>७</sup> भमिय। ८ क ख ग ड ये सर्वत्र 'कहिं मि'। ९ क ड खयर  
१० घ कटि०। ११ क ड वंसज्जस। १२ ख ग व<sup>१२</sup> वरा। १३ क ड विल्लिं। १४ क घ ड चिरिं।  
१५ ख ग व घोटीं। १६ ख ग घ<sup>१६</sup> स। १७ क ग ग ड सेवणि। १८ क ड नेया, ख ग मोहां।  
१९ क ड सिसमी। २० ख ग कडहार; घ करहार। २१ ख ग गणं। २२ ख ग वडं। २३ क ड  
जंबुइणि उवरा, ख ग जंबुइणि निववरा। २४ घ कडिणि।

कहिं मि हयदंडवग्नेहि <sup>२५</sup> गुंजारिया	गवय विहारिया <sup>२६</sup> ।	१५
कहिं मि घुरघुरियकोलउलदादुखया	कंदया सुखया ।	
कहिं मि हुंकरियदिदमहिससिगाहया	रुख भूमि <sup>२७</sup> गया ।	
कहिं मि मेल्लंतु वुकार दीहरसरा	धाबिया वाणरा ।	
कहिं मि घुघुइयघूयडसया <sup>२८</sup> रूसिया	वायसा वासिया ।	
कहिं मि <sup>२९</sup> भल्लुक्किफेकारहकारिया	जंघुया <sup>३०</sup> धारिया ।	२०
कहिं मि पज्जरियखलखलियजलवाहला	कसणतणुनाहला <sup>३१</sup> ।	
कहिं मि <sup>३२</sup> महिपडियत्तरुपणसंछनया <sup>३३</sup>	संठिया पन्नया <sup>३४</sup> ।	
कहिं मि <sup>३५</sup> फणिमुकफुकारविससामला	जलिय दावानला <sup>३६</sup> ।	
अबि य—		
दीसंति जत्थ <sup>३७</sup> पल्लोवणाई	<sup>३८</sup> कंटयतरुविसमई झरिवणाई <sup>३९</sup> ।	
बि-सरिसवरदारविणिम्मियाई	वग्गुरगलजालोलंबियाई ।	२५
सुकंतमयामिस-स-स-घराई	उक्तियचित्तयलवघराई ।	
जहिं <sup>४०</sup> भिल्लुक्कसिर <sup>४१</sup> तणुकराल	निळोमकुंच-गुरुदाडियाल ।	
सलहज्जिह <sup>४२</sup> जहिं भिल्लेहि <sup>४३</sup> नामु	मंडलि उवविट्ठहिं <sup>४४</sup> जंचथायु ।	
क वि पल्लि वहइ हलभूमिली <sup>४५</sup>	संपन्नमाणगोधूमनील <sup>४६</sup> ॥	

आहत व्याघ्रो (की चिघाड़)से वह अटवी गुंजारित हो रही थी, और कहीं नील गाय विदीर्ण कर डाली गयी थी। कहीं घुरघुराते हुए बनेले सूअरोके दाढोसे उछाड़े हुए कंद सूख रहे थे। कहीं हुंकार करते हुए बलवान् महिपोके सींगोसे आहत हुए वृक्ष गिर गये थे। कहीं दीर्घ-स्वरसे वृक्कार छोड़ते हुए वानर दौड़ रहे थे। कहीं घृघू-घृघू करते हुए सैकड़ों घूयडोके स्वरसे रष्ट हुए वायस काव-काव कर रहे थे। कहीं शृगालियोके फेत्कारसे आह्वान किये गये जंवूक पकड़े जा रहे थे। कहीं खल-खल करके झरते हुए जलके छोटे-छोटे प्रवाह थे, और कहीं काले शरीरवाले म्लेच्छ थे। कहीं पृथ्वीपर गिरे हुए पत्तोसे ढके हुए सर्प पड़े थे, और कहीं नागोके छोड़े हुए फूत्कारोसे विषके समान इयाम वर्णके दावानल जल रहे थे।

और भी—वहाँ चोरोके निवासके योग्य ऐसे घने अरण्य दिखाई देते थे जिनमे विषम काटेदार वृक्ष और झाड़ियोके जगल थे। वहाँ पारधियोके घोरोके द्वार बिल्कुल एकसमानरूपसे बने थे, और उनपर पशुओको पकड़नेके जाल और मछली फंसानेके काटे व जाल लटके हुए थे। उन सबके अपने-अपने घोरोमे मृगोका मांस सूख रहा था, तथा काटे हुए चीतोके शव पड़े हुए थे। और भी वहाँ मुंडे हुए शिर व भयानक शरीर तथा लोमरहित कूर्चो कितु बड़ी भारी दाढ़ी वाले भील थे, तथा मडलीमे बैठे हुए भीलो-द्वारा वहाँ जघाबल (दौड़ने व युद्ध करनेकी शक्ति) की श्लाघा (सराहना) की जाती थी। कहीं कोई छोटा गाव हलभूमि (कृषि क्षेत्र) की लीला धारण कर रहा था, और पकते हुए गेहुओसे नीला (हरा) हो रहा था।

२५. ख ग घ हयदंडिं । २६. क ड गयवि विं । २७. क ड भूमी । २८. ख ग घुरघुरियघूयडं; घ घुरघुरियघूयडसरा; क ड सरा । २९. क ड माल्लिकिं । ३०. ख ग आ । ३१. घ नाहणा । ३२. घ तणपणं । ३३. क ड ण्णया । ३४. क ख ग ड पण्णया । ३५. ख ग पुक्कारं । ३६. क ड णला । ३७. क ड जे । ३८. घ कठयं । ३९. ख ग झहं ४०. क ड जहिं । ४१. क ल्हखसिरं, ड ल्हखसिरं । ४२. घ ज्जहिं । ४३. ख ग ण । ४४. ड ठुहिं । ४५. क ड हलिं । ४६. क णाल ।

- ३० पुणु केरिसी विच्छाडई—  
 भारहरणभूमि व सरहूभीस<sup>१०</sup> हरि-अज्जुण-नवल-सिंहडिदीस ।  
 गुरु-आसत्थाम-कलिगचार<sup>१८</sup> गयगजिर-ससर-महीससार ।  
 लंकानयरी व सरावणीय चंदणहिं चार कलहावणीय ।  
 सपलास-सकंचण-अक्खथड<sup>३९</sup> सविहीसण-कइकुलफलरसड<sup>१०</sup> ।  
 ३५ कंचाडिणि व ठिय कसनकाय सद्दूलविहारिणि-मुक्कनाय ।  
 तिणयणतणु व दासवणछंद गिरिसुय-जड-कंदल-खंडयंद ।  
 घत्ता—बोलवि चणु परिसकइ कहिं मि<sup>११</sup> न थकइ जहिं छइलु<sup>१२</sup> जणु निवसइ<sup>३</sup> ।  
 गरुयारमुच्छाहिउ मगहनराहिउ विज्झएसु तं पइसइ<sup>१५</sup> ॥८॥

और फिर वह विध्याटवी कैसी थी ?—वह ( महा ) भारत रणभूमिके समान भयंकर थी; भारत रणभूमि चीत्कार करते हुए रथोंसे भयानक थी, अटवी शरभो ( अष्टापदो ) से, भारत युद्धमे कृष्ण, अर्जुन, नकुल और शिखंडो थे, अटवीमे सिंह, अर्जुन वृक्ष, नेवले और समूर थे; भारत रणभूमि गुरु ( द्रोणाचार्य ), अश्वत्थामा और कलिनगराजके सचरण ( परिभ्रमण ) से युक्त थी, अटवी बड़े-बड़े पीपलके वृक्षो, हरी-हरी लताओ एवं चार ( चिरौजी ) वृक्षोसे; भारत रणभूमि गजोंके गर्जन, तथा बाणधारी राजाओसे समृद्ध थी, और अटवी गजोंके गर्जन, सरोवर, तथा महिषोसे । और भी—वह अटवी लंकानगरीके समान थी, लंकानगरी रावणसे सनाथ थी, और चंद्रनखाके आचरणके कारण वहाँ कलह हुआ था, और विध्याटवी रावण ( फलविशेष ) वृक्षो, चंदनवृक्षो, चारवृक्षो एवं कलभो ( बालहस्तिनयो ) से युक्त थी । लंकानगरी पलाश ( राजस ), काचन ( सुवर्ण ) और अक्ष ( रावणका पुत्र ) सहित होनेसे गर्विष्ठ थी, एवं विभीषण तथा रसिक कवियोंसे परिपूर्ण थी; विध्याटवी पलाश, कंचन ( मदनवृक्ष ), चक्षु-विभीषतक ( बहेड़ा ) के वृक्षोसे गर्विष्ठ, तथा नाना प्रकारकी विभीषिकाओ एवं वानरो व खूब रसभरे फलोसे समृद्ध थीं । वह अटवी कात्यायनी ( चामुडा ) के समान थी; कात्यायनी कृष्ण-शरीरवाली है, तथा शार्दूल ( शरभ ) पर विहार करती हुई फेटकार छोडती रहती है, विध्याटवी काले कौओं, शरभोके विहार व नाना वन्यपशुओके नादसे युक्त थी । वह अटवी महादेवके समान थी, महादेवने गौरीके अभिप्राय ( छंद ) से नाना प्रकारका रीद्र नृत्य किया, तथा वे गिरिसुता ( पार्वती ), जटाओ एवं कपालपर खंडचंद्र ( चद्रकला ) से युक्त है, और विध्याटवी दासवनोसे आच्छादित थी, एवं पर्वतो, श्रुको, नानाप्रकारकी मूलो, विशेष अकुरों एवं खंडकंदो ( कदविशेष ) से युक्त थी । वनको लाषकर, राजा आगे बढ़ गया, व कहीं भी रुका नहीं । इसप्रकार मगधाधिपने बड़े-आरंभ ( कार्य ) के उत्साहसे उस विध्यप्रदेशमे प्रवेश किया जहाँ छेले लोग ( विदग्ध-जन, ज्ञानीपुरुष ) रहते थे ॥८॥

४७ कं लीस । ४८ क छ कलिगचार, वं चार । ४९ क ड अट्ट । ५०. क र ग ड रमट्ट । ५१ ख ग कहि मि । ५२. क ड छयल्लु । ५३. कं सइ । ५४ ख ग पयं ।

[ ९ ]

वस्तु—जेत्थ<sup>१</sup> पैट्टणसरिस-वरगाम<sup>२</sup>गामार वि नायरिय<sup>३</sup> नायरा वि बहुविविहभोइय<sup>४</sup> ।भोइया वि धम्मणुगय<sup>५</sup> धम्मिणो वि जिणसमयजोइय<sup>६</sup> ॥महिसीवद्धसणेह<sup>७</sup> जहि<sup>८</sup> कसलायर-गायसाल ।परिरक्खियगोहण रमहि<sup>९</sup> गोवाल व<sup>१०</sup> गोवाल ॥१॥

५

जत्थ केयारवरसालिफलवंचय<sup>११</sup> नियडतरुगलियमहुकुसुमसमगंधयं ।जत्थ सरवरइ न कयावि ओहट्टइ<sup>१२</sup> मंदमयरंदवियसंतकंदोहट्टइ<sup>१३</sup> ।जत्थ भमरोलि कोरेहि<sup>१४</sup> समहिट्टिया नीलमरगयपवालेहि<sup>१५</sup> णं कंठिया ।

छेतछोकाररवपामरीसल्लिया पहिय-कणइल्ल-मिग पड वि नड चल्लिया ।

थोरथणभारसरुद्धमुवडालिया भरइ जलपाणु पहियाण<sup>१६</sup> पावालिया । १०<sup>१७</sup>वियडकडिडिवाखिन्नाप<sup>१८</sup> थक्किज्जए नीलनेसणयगोवीण गाविज्जए<sup>१९</sup> ।जम्मि देसम्मि जणवेसहासियसुरं पट्टणं वसइ नामेण नम्माळर<sup>२०</sup> ।

[ १० ]

जहाँके ग्राम नगरो जैसे थे, और ग्रामीण नागरिकों जैसे, तथा नागरिक बहुविध भोगोंसे युक्त थे । भोगोंसे युक्त होकर भी वे धर्मानुगत (धर्मपालक) थे, और धर्मानुगत होकर जिनधर्मसे योजित (युक्त) थे । जहाँके गोपाल (ग्वाले) गोपालों (भूमि अथवा प्रजापालक राजा) के समान रमण करते थे; राजा लोग महिषी (महादेवी) के प्रति स्नेहासक्त होते हैं, लक्ष्मीके निधान होते हैं, तथा हस्तिशालाओंके स्वामी होते हैं, और गोधन (पशुधन, पृथ्वी-धन व जनधन) का रक्षण करते हुए आनंद मनाते हैं, उसीप्रकार वहाँके ग्वाले महिषियों-से स्नेह करते थे और कमल सरोवरोंरूपी गजशाला (गवयशाला-गोशाला) से युक्त थे (क्योंकि उनकी भैंस तालाबोंमें ही प्रसन्न रहती हैं), तथा अपने गोधन (पशुधन) की रक्षा करते हुए रमण करते थे । जहाँ श्रेष्ठ क्षालि (धान) के खेत फूले हुए थे, जो पासके वृक्षोंसे गिरे हुए मधु (मधूक-महुआ) के फूलोंको गंधसे सुगंधित थे । जहाँके सरोवर कभी सूखते नहीं थे, और जो मंदमकरंदसे युक्त विकसित होते हुए नीलकमल समूहोंसे पूर्ण थे । जहाँ गुकों-से समाधिष्ठित अमरपंक्ति सरकत व प्रवाल (मृगा) मणियोंसे जड़ी हुई नीलमणिके समान शोभायमान होती थी । जहाँ खेतोंमें कृषक-वधुओंके छोवकार रव (पक्षियोंको डरानेके लिए की जानेवाली ध्वनि) से बिघडकर, पथिक, शूक और मृग एक पग भी आगे नहीं बढ़ते थे । जहाँ स्थूल स्तनोंके भार (उभार) से संरुद्ध-भृकुटि (दृष्टिपथ) वाली प्र-पालिका (प्याऊ वाली) पथिकोंके जलपात्रोंको भरती थी । जहाँ अपने कटितलकी विशालतासे क्लान्त हुई नीले वस्त्रोंवाली गोपी-द्वारा गीत गाये जाते थे । जहाँके लोगोंका वेश अर्थात् पहनावा

[ ९ ] १ क जित्थ; घ ड जित्थु । २. ख ग पट्टण सरिसु बहु । ३. ख ग णाइ । ४. घ ड इया । ५. ख ग गया । ६ क घ ड सिणेह । ७. ख ग जिह । ८. ड हि । ९ ख ग वि । १०. घ रंधयं । ११. क ड णिवड । १२ क ड ट्टइ, ख ग घ ट्टय । १३ क डेहि । १४ ख ग भुयं; घ तुयं । १५. ख ग याणु । १६ क ड वियडि । १७. क घ ग खिण्णाए, व खिन्नाइ । १८ क घ ड गाइ । १९. क ड णामा ।

- मिलियवहुदेसिजणमंडलीसोद्विं चारुनेवत्थरममाण<sup>२०</sup> -सिसुसोहियं ।  
 जत्थ पयडतनचनेहपियलाडिया जिणइ<sup>२२</sup> गिरितणयसोहगु<sup>२३</sup> कुलवालिथा ।  
 १५ जत्थ पुरवासिलोएण बहुवुद्धिणा धम्मकामत्थसेवासु मणसुद्धिणा ।  
 घत्ता—वेसायच कय<sup>२४</sup> थक्क नित्ठुरवंकड गंठिहि<sup>२५</sup> भरिउ सखारउ ।  
 उच्छु व मेहवि<sup>२६</sup> परवसु कोमलु<sup>२७</sup> बहुरसु सेविज्जइ कंतारउ ॥६॥  
 [ १० ]

वस्तु—सुहृद-संदण-नुरय-करिसार

कंपाविय सधर-धर<sup>२८</sup> अडोहिय गहिरनइजलु ।

तं नयर वामरु करिवि सिमिर जाइ जा किर असुजलु ।

दिणमणिकिरणुत्तावियह<sup>२९</sup> वणकरिषडइ<sup>३०</sup> मणिड ।

- ५ जंबुलुंबितोरवियजलु ता रेवानइ दिड<sup>३१</sup> ॥१॥

मज्झमाणलयगलमयसंगिणि

णं मयतरलतरंगतरंगिणि ।

विमलनीरबोलियतरसाही

गरुयसखाणखणंतपवार्ही ।

पुलिणट्ठाणनिवेसियकच्छो

जुयमहुकुसुमुद्धाइयमच्छी ।

देवताओका भी उपहास करनेवाला था, वहाँ नमंपुर नामका पट्टण था, जो बहुत देशों-  
 की मिली-जुली जनमंडलीसे अवरुद्ध ( भरा हुआ ) था, तथा मनोहर वस्त्रोंको पहने हुए  
 क्रीड़ाशील शिशुओंसे सुशोभित था । जहाँकी सदैव अभिनव स्नेहको प्रगट करनेवाले प्रियतमकी  
 लाडली ( प्यारी ) कुलवालि काएं गिरितनया ( पार्वती ) के सौभाग्यको भी जीतती थी; व  
 जहाँके बहुत बुद्धिमान तथा मनःशुद्धिपूर्वक धर्म, अर्थ व कामकी सेवा करनेवाले पुरवासी  
 लोंगोके-द्वारा निष्ठुर छलयुक्त, हृदयसे कुटिलभाव पूर्ण तथा आद्यंत खारे ( अर्थात् दुःखद )  
 और पराधीन व मूल्य देकर प्राप्त होनेवाले वेव्यारत ( वेव्यारमण ) को कठोर, वक्र, व गाँठसे  
 भरे हुए तथा खारे व दूसरोंके आवीन इक्षुके समान त्याग कर, आद्यंत सुकोमल ( स्नेहयुक्त )  
 तथा बहुत रसवाले ( अर्थात् अत्यंत सुखद ) काता ( स्वपत्नी ) रतका सेवन किया  
 जाता था ॥९॥

[ १० ]

सुमत्, स्पंदन तुरग व श्रेष्ठ हाथियोसे घरा-सहित बराघर ( पर्वत ) को कंपायमान करते  
 हुए गहरी नदीके जलको अवगाहन कर, उस नगरको वाये करके जिस राजाका जज्ज्वल यश-  
 प्राप्त सैन्यशिविर चला जा रहा था, उस राजाने सूर्यकी किरणोंसे तप्त, वनगजोंके समूहको  
 बहुत प्रिय, और जंबूफलोके ( गिरते हुए ) गुच्छोंसे हिलते हुए जलवाली रेवानदीको  
 देखा । मज्जन करते हुए भदगजोंसे युक्त वह नदी मानो तरलमद अर्थात् सुरालुपी तरंगवाली  
 तरंगिणी थी । अपने निर्मल जलसे वह वृक्षों और वाटों ( पगडंडियों ) का उल्लंघन करनेवाले  
 एवं बड़े-बड़े खदान खोद देनेवाले प्रवाहसे युक्त थी । वह रेतीले तटप्रदेशरूपी कच्छा ( कटि-  
 २०. क ड चारुणवसरमं । २१ क लसिया । २२ ख ग घ ई । २३. क ड भोहाण । २४. क ड म  
 'कम' नही । २५ ख ग घ ह । २६ क ग घ ड मेहवि । २७ ख ग ल ।

[ १० ] १. क छ 'धर' । २. घ 'ड' । ३. क ट 'किरण' । ४. क ट 'गट्ट' । ५. ग ग घ 'जु' ।  
 ६. ख ग घ 'तो' । ७. ख ग 'वखडकमपलंतप', घ 'उल्लं' ।

पडिंकोल्लफुल्लसयमसरी<sup>१</sup>  
 कीलिरसवरनियंविणिचहरी<sup>११</sup>  
 सा उत्तरि वि महाजलवाहिणि  
 जो फुरंतजिणभवणरवणउ<sup>१४</sup>  
 रायागमणु सुणि वि णं रहसिउ<sup>१७</sup>  
 नचचइ व व नचचंतमऊरहि  
 पणवइ व व फलनामियडालहि  
 पहावइ<sup>१९</sup> जिणपडिमहिं सुरणहवियहि<sup>२०</sup>  
 सो गिरि नियवि नवेवि जिणचलणइ<sup>२१</sup>  
 तहिं आवासु निवेण लइज्जइ  
 रायंतोडरवासु पइणउ<sup>२१</sup>  
 तक्खणे रुद्ध-रत्तसं चारहिं<sup>२१</sup>  
 ३ मत्तमयंग-नियंघणचेट्टहिं<sup>३१</sup>

गंधिधिर<sup>१</sup>-अणुहंदिमसरी ।  
 १२ थडुथोरथणफोडियलहरी ।  
 कुलुल गिरिं दु<sup>१३</sup> नियइ निववाहिणि । १०  
 १४ वंदनभक्तिमिलियसुरलणउ<sup>१४</sup> ।  
 फुल्लकयंवदुमहिं वट्टुसिउ ।  
 गज्जइ व व सुरदुंदुहितूरहिं ।  
 उप्पिडइ व कुरंगसिसुफालहि ।  
 कुलकुलइ व कोइलकुललवियहिं । १५  
 पुणु थोचइ<sup>२२</sup> लवेवि नइवलणइ<sup>२३</sup>  
 सेणावडपमुहहिं<sup>२४</sup> सूइज्जइ<sup>२५</sup> ।  
 अग्गइ सोहवारु<sup>२६</sup> सदिणउ<sup>२७</sup> ।  
 संदण उज्जोत्तिथिं<sup>२८</sup> जोत्तारहिं ।  
 सरलरुक्ख पडिगाहिय मेट्टहिं । २०

वस्त्र) पहने हुए थी, तथा महुएके गिरे हुए कुसुमोंके लिए लपकती हुई मछलियोंसे युक्त थी। उसमे गिरे हुए सैंकड़ों अंकोल्ल पुष्प मानो सैंकड़ों स्त्रीभ्रमर थे, जिनकी गंधसे अत्यंत आसक्त हुए भीरे उनपर मधुर गुंजार कर रहे थे। क्रीड़ा करती हुई श्वर सुंदरियोंसे वह ईष्य मर्दित हो रही थी, और उनके कठोर व स्थूल स्तनोंसे उसकी लहरें टूक-टूक हो रही थी। उस महाजलवाहिनीको उत्तरकर नृपसेनाने कुलपर्वतको देखा, जो (अपने उन्नत शिखरोंसे) चमकते हुए जिनभवनोंसे रमणीक था, और वंदन-भक्तिसे एकत्र हुए देवोंसे आच्छादित था, (अथवा जहाँ वंदनाकी भक्तिसे देवकन्याएँ एकत्र थी)। राजाके आगमनको जान, मानो हर्षित होकर वह फूले हुए कदंबद्रुमोंसे रोमांचित हो गया; नाचते हुए मयूरीसे वह मानो नाचने लगा, और देवदुंदुभियोंके तूरसे मानो (हर्षपूर्वक) गर्जन करने लगा; फलों (के भार) से झुकाये हुए डालोंसे मानो प्रणाम करने लगा, और कुरंग शिशुओंके उछल-कूद करनेके रूपमें, मानो उसने नृपतिको (अर्थ) अर्पण किया, देवों-द्वारा अभिषेक कराया जाती हुई जिनप्रतिमाओंके रूपमें मानो उसने नृपतिका ही अभिषेक कराया, और कोकिलसमूहके आलापसे मानो आनंदसे कुलकुला उठा। उस पर्वतको देखकर, जिनचरणोंको नमन करके, और फिर नदीके और थोड़े-से मोड़ोंको लांघकर नृपने पड़ाव डाला, तथा सेनापति प्रमुख लोगोंसे इसकी सूचना की गयी। राजाका अंत-पुरनिवास विस्तीर्ण किया गया, व उसके आगे सिंहद्वार दिया गया। तत्क्षण पदातिनोंके सचरणको अवरोध करते हुए, योवताओं (रथवालों) ने रथोंके जोत उतार दिये। मत्तमांतोंको बांधनेमे सचेष्ट महावतीने सरलवृक्षोंको ले लिया। गलेमे वेले डालकर बांधी

१. क व ड ससरी । १० ख ग गवदिर०; घ गंध । ११. घ वहरी । १२ क ड थट्ट; ख वट्ट; ग थट्टोरवण । १३ क ड कुरल । १४ क णणउ, च नउ । १५. क ड हति । १६. क ड णणउ; ग कणउ, घ णउ । १७ क व ड हरिमिउ । १८ क ड उप्पलड, ख ग उप्पि । १९ क व ड व, ड व डे व ख ग पहाइ व, घ न्हाइ व । २०. व सुरह । २१. ड णइ । २२ प्रतिघोमे ड । २३. क ड णड । २४, क ड हहि, ख ग हाहि । २५ ख सुवि, ग सुचि । २६. क ड णउ, ख ग पयणउ । २७. क ड सिह । २८ क ड णउ, घ णउ । २९. क ड उज्जो । ३०. घ मत्तगइदनिवणु । ३१. क वेट्टहि ।



दिण्णवल्लीगल<sup>३२</sup> खोडीसंगम<sup>३३</sup> संचारिय मंदुरहिं<sup>३४</sup> तुरंगम ।  
 गुडरूसावासकयमहु नयिठाणहिं ठिउ रायपरिमहु ।  
 घत्ता—तहिं रेवानइ कण्ण<sup>३५</sup> तरुसंछण्ण<sup>३६</sup> कुरलगिरिदहो<sup>३७</sup> नियडव ।  
 सेणियरायहो<sup>३८</sup> वलु कय-सममहियलु<sup>३९</sup> इय आवासिउ वियडव ॥१०॥

[ ११ ]

वस्तु—सीहचारहो पुरउपरि ठविउ  
 सविलासकामिणिललिउ पिंडवासु सहुं पण्णसालहिं<sup>१</sup> ।  
 पुणु त्रिविहकेणयभरिउ हट्टमग्गु किउ कोट्टवालहिं ॥  
 नडविडडोवहिं<sup>२</sup> विट्टलिउ<sup>३</sup> पइसवि<sup>४</sup> रंघणे हट्ट ।  
 दवमहिं<sup>५</sup> गहहचवियहिं<sup>६</sup> संज्झा वंदइ भट्ट ॥१॥  
 ५ आर्या—गलनिहितकुसुममालरचंदनसंचरितः सनिःश्रावः ।  
 भट्टः प्रविशति हृष्टो गुणगणिकां<sup>७</sup> हट्टकुट्टिन्याः ॥१॥  
 आवासिउ मगहनरिंदु तेत्थु कह वट्टइ जंबूसामि जेत्यु ।  
 गयणगइसमाणु<sup>८</sup> बिमाणवंतु निविसेण जि केरलनयिरि पत्तु ।  
 १० ता पट्टणबाहिरि कयवमालु संगामतूरभरियंतरालु ।

हुई गधियोंके संगमके लिए घुडसालोमे घोड़ोका संचार कराया गया । कपडेके तंबुओका आश्रय लेकर राजाका सारा परिग्रह ( सैन्य ) अपने-अपने स्थानोपर स्थित हो गया । वहाँ रेवा नदीके किनारे, वृक्षोंके सायेमे, कुरल गिरिराजके निकट श्रेणिक राजाका सैन्य भूमिको समान करके विस्तारसे बस गया ॥१०॥

[ ११ ]

सिंहद्वारके आगे सेनाके लिए पण्यशालाओं ( दुकानो ) से युक्त एवं विलासपूर्ण कामि-  
 नियोंसे ललित आवास बनाया गया, फिर कोटपालोके द्वारा विविधप्रकारके क्रय (कीनने-योग्य)  
 पदार्थोंसे भरा हुआ हाटमार्ग ( बाजार ) बनाया गया । नदो, विटो व डोमोने रसोइयोमें प्रवेश  
 कर उन्हे बिटाल दिया ( अशुद्ध कर दिया ), और भ्रष्ट ब्राह्मण गधोंके द्वारा चत्राये गये  
 दमसे संध्यावंदन करने लगा । गलेमे पुष्पोंकी माला डाले ( मस्तकपर ) चंदनका लेप किये  
 हुए एवं पसीना चूते हुए एक भ्रष्ट (ब्राह्मण) गुणोंकी गणिका ( अर्थात् गुणोंको लूटनेवाली )  
 बाजारु कुट्टनी ( के डेरे ) मे हर्षित होकर प्रवेश करने लगा ।

इसप्रकार वहाँ मगधराजने पड़ाव डाल लिया । उधर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँकी कथा  
 इसप्रकार हुई—गगनगतिके साथ विमानमे बैठकर निमिषमात्रमें वह केरल नगरीको प्राप्त हुआ ।  
 वहाँ पत्तनके बाहर संग्रामतूरोके द्वारा किया हुआ कोलाहल दिगंतोको भर रहा था । फहराते

३२. ख ग घ दिन्नं, क ड वल्लि । ३३ क ड लोलो । ३४. क रंहि । ३५. घ रंइ । ३६. क ग ट  
 कुरलं, ख ग गिरिदहो । ३७. ख ग व ल सेणियमहरायहो । ३८. ड रंघलु ।

[ ११ ] १. घ पत्तं । २ क घ ड भडडोमहिं । ३. क ट विट्टिलउ, ख ग घ विट्टिलउ । ४. क घ  
 क रंसिनि । ५. क रंहि । ६. क गहहिं चं; ख ग चंचि । ७. ख ग गुणगणिका । ८. घ रंमाण ।

ध्रुवंतमहाधयधवलचिंधु

गज्जंतमत्तमायंगफाख

तिक्खुक्खयपहरणमुहडवंतु

तं नियवि कुमारें तक्खणेण

पहु<sup>१</sup> दीसइ<sup>२</sup> काई सकोउहल्लु

पहु<sup>१</sup> सो जो मगइ वरकुमारि

पहु<sup>१</sup> सो जो विसरिसजमपयाउ

पहु<sup>१</sup> सो जसु रणजयकयपयज्जु<sup>१५</sup>

सहु<sup>१</sup> सेण्णे<sup>१६</sup> सुरहु<sup>१६</sup> मि हिययमूलु<sup>१६</sup>

बोल्लइ कुमार पेक्खहु<sup>२०</sup> पमाणु

यत्ता—ताम विमाणु विलंघिउ महियले लंघिउ जंयुकुमारुत्तिण्णइ<sup>२२</sup> ।

पुणु पइसइ आसंकहो कज्जि मियंकहो रिउखंधार पइण्णइ<sup>२३</sup> ॥११॥

[ १२ ]

वस्तु—नियडनहयले<sup>१</sup> चलइ सविमाणु

विज्जाहुरु गयणगइ जंयुसामि महियट्टे चलइ ।

रणरहसरंजियमणहो<sup>२</sup> जसु चलंत<sup>३</sup> महिबोडु हल्लइ<sup>४</sup> ॥

हुए महाध्वजो तथा धवल पताकाओसे वहाँ ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था, मानो प्रलय-समुद्र ही उन्मार्ग अर्थात् ( अपनी मर्यादा छोड़कर ) आकाशमें जा लगा हो । मत्तमातंग भारी गर्जन कर रहे थे, और श्रेष्ठ तुरंगमोंके समूह हिनहिना रहे थे, तथा म्यानोसि निकाले हुए तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करनेवाले सुभटोंके द्वारा छोड़ी हुई हुंकारोंसे वह कृतांतको भी भयभीत कर रहा था । यह सब देखकर कुमारने तत्क्षण ही विस्मित मन होकर कहा—कौतूहलवर्द्धक यह सब क्या दीख रहा है ? तो खेचरने कहा, यही तो हमारा कौटा है, यही वह है जो उस श्रेष्ठ कुमारीको मांगता है, जो अपने बलसे सूर्यको भी स्तंभित कर देता है, जो यमके समान अद्वितीय प्रतापवाला है, जिसने मृगांकराजाको संतप्त किया है, और जिसको रणमें जय करनेकी प्रतिज्ञा करके तू इस बैरीके शिररूपी पर्वतके लिए वज्र बनकर आया है । अपनी सेनाके साथ यह देवताओंके लिए भी हृदयका बूल बना हुआ है, यही ( वह ) विद्याधर रत्नचूल ( रत्न-शेखर ) है । इसपर कुमारने कहा, मैं इसका ( सैन्य ) प्रमाण देखना चाहता हूँ, अतः विमान-को स्कंधावारके सन्मुख खींच लीजिये । तब गगनगति विद्याधरने विमानको रोककर, पृथ्वीसे मिलाया, जंबूकुमार उसमें-से उतरा, व मृगांकरके कार्यसे, शत्रुके उस फैले हुए स्कंधावारमें आशंकापूर्वक प्रवेश किया ॥११॥

[ १२ ]

नमस्तलके निकट विमानसहित गगनगति चल रहा था, और पृथ्वीपर जंबूस्वामी चल रहे थे । रणकी उत्कर्ठासे भरे हुए मनसे उसके चलते हुए पृथ्वीतल हिल उठा । अनार्य जाति-

१. क ख ग ड इ । १०. क ड । ११. क ड इह । १२. क ड संतविण्ड । १३. क घ ङ इह । १४. क ड रणकयजयपयज्जु, ख ग पयज्ज घ पइज्जु । १५. प्रतियोगे 'तुहु' । १६. ख ग वज्ज । १७. क ड सण्णे, घ तिन्नि । १८. घ 'हि' । १९. क ड हियइ । २०. प्रतियोगि 'हु' । २१. ख ग घ 'हि' । २२. क घ ड ण्णइ । २३. घ 'न्नइ' ।

[ १२ ] १. ख ग घ नियडु नह । २. घ 'रगियम' । ३. क घ ड पयभरण । ४. क ड धरबोडु डोल्लइ ।

- देसल्हसि संवंधियउ<sup>१</sup> वणि ववहार वहुत्तु ।  
 पेक्संतउ दोसइ जणहि<sup>२</sup> राउलवारि पहुत्तु ॥ १ ॥
- तं भणित<sup>३</sup> कुमारें नयपसत्थु पडिहार कणयमयदंडहत्थु ।  
 कह नियत्तरिदहो सारभूव पट्टविउ मिथकें आउ दूउ ।  
 'तो गं पि<sup>४</sup> दंडघारें<sup>५</sup> समत्त<sup>६</sup> अत्थारे<sup>७</sup> निवेइय निवहो<sup>८</sup> वत्त ।  
 परमेसर रत्तखणसुहडसारि अच्छइ मिथकपहुदूव<sup>९</sup> वारि ।  
 १० लहु<sup>१०</sup> पइसउ<sup>११</sup> इय आपसिएण पइसारिउ जंबुकुमार तेण ।  
 आबंतउ रयणसिहेण दिट्ठु सव्वह<sup>१२</sup> मि<sup>१३</sup> चमकउ मणे पइदु ।  
 नहमणिफुरंतपयदिणविक्खु तणुतेयतविश-अरिदुणिणरिक्खु<sup>१४</sup> ।  
 पीवरचामीयरथंभजंजु<sup>१५</sup> थिरदिट्ठि<sup>१६</sup> विलंबियवइरिसंघु ।  
 करजुवळुभासियकमलकंजु<sup>१७</sup> केसरिकिसोर चकलनियंजु<sup>१८</sup> ।  
 १५ दिडसुल्लियनेसियदिवन्नत्थु<sup>१९</sup> मणिफुरियछुरियवंधणपसत्थु<sup>२०</sup> ।  
 हारच्छवि<sup>२१</sup> पयडइ छइयवच्छु<sup>२२</sup> 'संगामसूरकरि-दवणदच्छु<sup>२३</sup> ।  
 दीहरकरिकरसमबाहुदंडु मणिकुंडलमंडियचारुगंडु ।

के उस देशके व्यवहारमे कुशल वह वणिक् ( पुत्र ) लोगोके देखते-देखते राजकुलके द्वारपर पहुँचा हुआ दिखाई दिया । ( वहाँ पहुँचकर ) कुमारने सुवर्णमयदंड हाथमे लिये हुए, और व्यवहार-कुशल प्रतिहारको कहा—अपने नरेन्द्रको यह सहस्त्वपूर्ण बात कहो कि मृगाकका भेजा हुआ दूत आया है । तब सभामंडपमे जाकर दंडधरने राजाको समस्त वार्ता निवेदित की— 'हे श्रेष्ठ सुभट्टोके पालक परमेश्वर, मृगांक राजाका दूत द्वारपर विद्यमान है ।' शीघ्र प्रवेश कराओ, ऐसा आदेश पाकर, उसने जंबुकुमारको प्रवेश कराया । रत्नखणने उसे माते हुए देखा, और सबके मनमें एक चमत्कार उत्पन्न हो गया । उसके नखमणियोसे प्रकाशित चरणोमे जिनकी दृष्टि लगी थी, ऐसे शत्रुओके लिए तेजसे तप्त उसका शरीर अत्यंत दुष्प्रेक्ष्य था । वह पुष्टमुष्णस्तंभके समान जाँघोवाला था, और उसकी स्थिर ( निश्चल ) दृष्टिसे वैरियोका सघ तिरस्कृत हो रहा था । उसके करजुवलमे कमल और गंध ( के चिह्न ) उद्भासित हो रहे थे, और उसके नितंब तरुणसिद्धके समान चक्राकार थे । वह मुदृढ, बहुत सुंदर तथा प्रसस्त एव दिव्यवस्त्रोकी पहने हुए था, जिनके बंधन मणियोकी कातिसे व्याप्त हो रहे थे । उसका वस्त्रोसे आच्छादित वक्षस्थल, जो सग्रामसूर हाथियोका दमन करनेमे दक्ष था, हारकी कातिसे प्रकट हो रहा था । हाथीके दीर्घ सूँडके समान उसके बाहुदंड थे, और सुंदर कपोल

१. ख ग घ तवट्ठि । २. क ल हि । ३. क ख ग ड दिट्ठु । ४. क ड ज ज पि । ५. क ड ददघारेण, घ वारिण । ६. क तु । ७. क छ मे अत्थारेण । ८. वत्त के पूर्व 'तो भणित कुमारें नयपसत्त' यह अर्थ पठित अधिक है । ९. ड णियहो । १०. ख ग ज दूट । ११. वलड । १२. ख ग भड । १३. क ख ग ड ह । १४. क छ वि । १५. घ डुवि । १६. क ड लंभजणु । १७. ख ग थिरदिट्ठु । १८. घ करजुमल्लु । १९. क घ छ किसोव । २०. क ड वत्त । २१. क ड मत्तव, ख ग नमत्तु । २२. ख ग प पपच्छव्य । २३. ख ग, सुह । २४. घ दमणदच्छ ।

तंविरफुरियाह<sup>२</sup> पीणखंधु<sup>३</sup>      सियकुसुमुभासियकेसवंधु ।  
 चितिलइ रयणसिहेण एम<sup>४</sup>      दूयत्तणु आयहो<sup>५</sup> घडइ केम ।  
 ण्हु वालु न माणुसु अण्णु<sup>३१</sup> कोइ      रेहा वि एह दूवहो<sup>३२</sup> न होइ ।      २०.  
 सउ नवइ न वइसइ साहिमाणु      लइ सुणमि<sup>३३</sup> ताम<sup>३४</sup> आयहो<sup>३५</sup> पमाणु ।  
 मण्णते<sup>३६</sup> इय विज्जाहरेण      देवाविउ आसणु मइवरेण<sup>३७</sup> ।  
 वइसरेवि कुमारं न किउ खेउ      रयणसिहु<sup>३८</sup> पुवुवइ सावलेउ ।  
 घत्ता-जइ जाणहि<sup>३९</sup> परमत्थे<sup>४०</sup> भणमि हियत्थे<sup>४१</sup> अणययारु म पवत्तहि<sup>४२</sup> ।  
 दप्पु विलुपि<sup>४३</sup> वुज्झहि<sup>४४</sup> समरे म जुज्झहि<sup>४५</sup> अज्ज वि गयप्प<sup>४६</sup> नियत्तहि<sup>४७</sup> ॥१२॥१५

[ १३ ]

वस्तु— माय-वप्पहि<sup>१</sup> दिण्ण जा कण्ण  
 निन्नासियदुन्नयहो<sup>२</sup> वइरिवीरविइवियछायहो ।  
 सरणाइयपविपंजरहो<sup>३</sup> सेणियस्स महारायरायहो ॥  
 तहि<sup>४</sup> कारणि असगाहु किउ जो सो अज्ज वि मेल्लि ।  
 जानंत वि मा मुहि<sup>५</sup> छुवहि<sup>६</sup> हालाहलविसवेल्लि ॥ १ ॥      ५

मणिकुंडलोसे मंडित थे । उसके अघर तावके समान-लालिमासे प्रकाशित थे, और कंधे बहुत ऊँचे, एवं केशबंध स्वेत कुमुमोसे उद्भासित । ( उसे देखकर ) रत्नशेखर सोचने लगा— 'इसका दूतपना कैसे घटित ( संभव ) हो सकता है ? यह बालक मनुष्य नहीं, कोई अन्य ही है । दूतकी इसमें कोई रेखा तक नहीं है । न तो यह नमस्कार करता है, और न स्वाभिमान-के कारण ( अपने आप बिना कहे ) बैठता ही है । तो फिर अब इसकी बात सुन लेता हूँ ; इसप्रकार मानते हुए उस मतिमान विद्याधरने उसे आसन दिलवाया । बैठकर कुमारने जरा भी कालक्षेप नहीं किया, और वह रत्नशेखरसे अभिमानपूर्वक ऐसा कहने लगा—यदि तू समझे, तो मैं परमार्थसे तेरे हितकी बात कहता हूँ कि अनाचारका प्रवर्तन मत कर ! दर्पका लोप ( त्याग ) करके इस बातको समझ ! युद्धमें मत जूझ, और अभी भी गये ( चले ) हुए ( अनीतिके ) मार्गसे वापिस लौट जा ! ॥१२॥

[ १३ ]

माँ वापने जिस कन्याको दुर्नीतिका नाश करनेवाले, बेरी-बीरोकी कांतिको नष्ट करनेवाले, शरणागतो ( की रक्षा ) के लिए वज्रपंजर एवं महाराजाश्रीके राजा अर्थात् महाराजाधिराज श्रेणिकके लिए दे दी, उसके लिए तूने जो असद् आग्रह किया है, उसे अब भी छोड़ दे । जानते हुए भी हालाहल विषकी बेल मुँहमें मत डाल !

२८ ख ग घ ंहर । २९ क ड एव । ३०. घ ंहि । ३१. घ अणु । ३२ ख ग घ दूयहो । ३३. घ मुं । ३४. क ताइ, ड ताव । ३५. क ड एयहु । ३६. घ मज्जति । ३७. क ड मयं । ३८. क घ ङं सिहु । ३९. क ङं इ, घ ंहि । ४०. क; वत्थे ङं वत्थे । ४१. क त्थे । ४२. घ ंतहि । ४३. क ड वप्पुवमडपवि; ख ग दप्पुविलिपि । ४४ क ख ग ंहि । ४५. क ङं हि । ४६ घ ंइ । ४७ ख ग निवत्तयहि, घ ंतहि ।

[ १३ ] १. क खं हि । २ क ड णिण्णां दुण्णं, ख ग निण्णां दुण्णं । ३ क ड वियपयपजं, घ सरणागयं । ४ क ङ तह, घ तहि । ५ क ङ मुहि । ६ क घ ड छुवहि ।

- अक-सियंक-सककंपावणु  
अलियंदपदपियं-मइमोहणु  
तुञ्छु न दोसु दइवकिउ<sup>१०</sup> धावइ  
जिह जिह<sup>१२</sup> दंडकरत्रिउ जंपइ  
१० थडकंडु-सिरजालु पलित्तउ  
दट्टाहर गुंजुजल्लोयणु  
पेक्खेवि पहु सरोसु सन्नमहि<sup>१०</sup>  
अहो अहो दूय दूय साहसगिर  
अण्णहो<sup>११</sup> जीह एह<sup>१२</sup> कहो वग्ग<sup>१३</sup>  
१५ भणइ<sup>१३</sup> कुमार पहु रइलुद्ध  
रोसं भरिउ<sup>१४</sup> हियत्थु वि न सुणइ<sup>१५</sup>  
रोसु अ दोसु मणुसु नडावइ<sup>१६</sup>  
पहिल्ल गलइ बुद्धि रुसंतइ<sup>१७</sup>  
पढमविवेउ पावरसु रंजइ<sup>१८</sup>
- हा सुउ सीयह<sup>१०</sup> कारणे रावणु ।  
कवणु अणत्थु पत्तु दुज्जोहणु ।  
अणउ<sup>११</sup> करंतु महावइ पावइ ।  
विह विह<sup>१३</sup> खेयर रोसहि<sup>१४</sup> कंपइ<sup>१५</sup> ।  
चंडगंडपासेयपसित्तउ ।  
फुरदुरंतनासउडभयावणु<sup>१६</sup> ।  
उत्तु वओहरु मंतिहिं ताम हिं<sup>१७</sup> ।  
जं पइ<sup>१९</sup> चविउ दंडगट्ठिउ<sup>२०</sup> किर ।  
खयरविसरिसनरेसहो अग्ग<sup>२१</sup> ।  
वसनमहणणव<sup>२२</sup> तुम्हहिं<sup>२३</sup> छुद्धउ ।  
कळाकज्जु वलावल्लु न सुणइ ।  
अयसु<sup>२४</sup> समुच्चयवंसेवडावइ<sup>२५</sup> ।  
पच्छइ सेयसल्लिल्लवसंतइ<sup>२६</sup> ।  
पच्छइ पुणु लोयणइ न वज्जइ<sup>२७</sup> ।

‘अहो ! अर्क ( सूर्य ), मृगांक ( चंद्र ) और शक्र ( इंद्र ) को ( अपने भय से ) कंपने-वाला रावण सीताके कारण मरा । मतिको नष्ट करनेवाले झूठे दर्पसे दूषित दुर्योधन कैसे अनर्थ को प्राप्त हुआ । तेरा कोई दोष नहीं है, तू देवका मारा भागा-भागा फिरता है । इसप्रकारकी अनोत्ति करनेवाला महान् आपत्तिको प्राप्त होता है ।’ जैसे-जैसे जंवूकुमार ऐसे दडगंभित ( दर्पपूर्ण व अभिमानोत्तेजक ) वाक्य बोलता, वैसे-वैसे खैवर अधिकाधिक रोपसे कांपता । ( क्रोधके आवेगसे ) उसका कंठ स्तब्ध हो गया, शिरा-जाल प्रदीप्त हो उठा, और विशाल कपोल प्रस्वेदसे सिक्त हो गये । ओठोंको काटते हुए, गुंजाके समान उज्ज्वल (चमकीले) लोचन, तथा फड़कते हुए नासापुटसे भयानक, ऐसे अपने स्वामीको रूष्ट हुए देखकर, तभी सन्नामधारी मंत्रियोंने दूतसे कहा—अहो ! अतिसाहसपूर्ण वाणी बोलनेवाले दूत ! तूने जो कहा वह निश्चय-से शक्तिके अभिमानसे पूर्ण एवं नाशक कारण है । क्या किसी दूसरेकी जिह्वा है, जिससे तू प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रचंड तेजस्वी इस राजाके आगे ऐसा बोल रहा है ? इसपर कुमारने कहा—रतिके लोभी इस राजाको तुम लोगोने संकटके महासागरमें डाल दिया है । रोपसे भरा होनेसे यह अपने हितार्थको भी सुनता नहीं, और न कार्य-अकार्य व बलावल्लको ही समझता है । रोप व द्वेष मनुष्यको नाना नाच नचाते हैं, एव अति उच्च ( महान् ) वंशमें भी अपयज्ञ लगाते हैं । रूष्ट होनेवालेकी बुद्धि पहले ही भ्रष्ट हो जाती है, पीछे पत्तोनेके जलविदुओंकी धारा ( संतति ) विगलित होती है । पहले तो पाप-रस विवेकको रंग देता है ( दूषित कर देता है ), पीछे नेत्रोंको भी नहीं छोड़ता ( उन्हें भी क्रोधके आवेगसे लाल कर देता है ) ।

७. घं हिं । ८ ख दलियं । ९. क दं दण्डि । १०. घ दडउ । ११. घं उ । १२. घ जिह जिह, क ख जिहं जिह । १३. घ तिहं तिहं । १४. क ड रोसिहिं । १५ क इ । १६ क डं णमिउडं । १७ क रु सण्णा । १८ क घ डं हिं । १९. क ख घ ग ड पइ । २०. ख ग डइं । २१ घ अणहो । २२ क ड एम । २३ घ इं । २४. घं चवि । २५. ख गं हिं । २६ ख वं मरिउ । २७ क मणउ, घ ड सुणउं, । २८ ख गं वइ । २९ ड अजणु । ३० क घ इं । ३१ क डं ।

पहिलउ कालसपु सणु डंकइ<sup>३१</sup> पच्छइ अहरविनु ना संकइ<sup>३१</sup> । २०  
 पहिलउ फुरणु अकत्तिहि<sup>३१</sup> धावइ<sup>३१</sup> पच्छइ पुणु नासउडिहि<sup>३२</sup> पावइ<sup>३१</sup> ।  
 रोसमहाभरु धीरहि<sup>३३</sup> दम्भइ<sup>३४</sup> इयरु<sup>३५</sup> पुणु वि<sup>३५</sup> रोसेण निहम्भइ<sup>३६</sup> ।  
 जित्तु जि एण वि कुमइ न लज्जइ<sup>३७</sup> केम मईतविरोहें गज्जइ ।  
 पभणइ<sup>३७</sup> रयणचूलु<sup>३८</sup> अवमाणहि<sup>३९</sup> दूउ होवि बोझणहें न जाणहि<sup>३९</sup> ।  
 चार चार अम्हइ<sup>४०</sup> अवगणणहि<sup>४०</sup> चार चार सेणित<sup>४१</sup> निव्वणणहि<sup>४२</sup> । २५  
 महु भएण पुरे पइसिवि थकहो चार चार जउ ठवहि मियंकहो ।  
 कहहि<sup>४३</sup> तासु जइ रणे अग्निभट्टइ तेरउ दूउ<sup>४४</sup> गमागमु तुट्टइ ।  
 विज्जाहरहि<sup>४५</sup> अम्ह रणे आयहि<sup>४५</sup> कवणु गहणु भूगोयररायहि<sup>४५</sup> ।  
 भणइ बालु रहुवइ भूगोयर रावणु कि न आसि विज्जाहर ।  
 जइ आयासे<sup>४६</sup> गमणु हुउ कायहो तो किं सो जि<sup>४७</sup> थाणु गुणभावहो<sup>४८</sup> । ३०  
 विरुवउ<sup>४९</sup> तुत्तु मियंकु असक्कउ तउ भएण कि नियपुरि थकउ ।

घत्ता—विद्धसियकरिकाणणु जं पंचाणणु निवसइ सिंहरिखयालहि<sup>५०</sup> ।

पयइ<sup>५१</sup> एह तहो लक्खहि<sup>५२</sup> अह पुणु अक्खहि<sup>५३</sup> किं वीरु<sup>५४</sup> सियालहि<sup>५५</sup> ॥१३॥

पहले तो यह ( क्रोधरूपी ) काला साँप मनको डंस लेता है, पीछे निःशंकरूपसे अधर-बिंबको भी ( क्रोधके आवेशसे व्यक्ति ओठोंको काटने लगता है ) । प्रथम तो अपकीर्तिका स्फुरण होता है, पीछे नासापुटोंका फड़कना । रोषके महान् आवेगका धीरपुरुषों-द्वारा दमन किया जाता है, किंतु इतर ( अधीर ) व्यक्ति स्वयं रोषसे मारा जाता है । इस ( क्रोध ) से विजित होकर भी यह कुमति ( दुर्वृद्धि लेचर ) लज्जित नहीं होता, प्रत्युत कैसे महान् वैरसे गरजता है । ( यह सुनकर ) रत्नचूल कहने लगा—दूत होकर बोलना भी नहीं जानता, और हमारा अपमान करता है । बार-बार हमारी अवगणना ( निंदा ) करता है, और श्रेणिक राजाकी प्रशंसा; तथा मेरे भयसे नगरमें भीतर घुसकर बैठे हुए मृगांकके विजयकी स्थापना । रे दूत ! उससे कहो कि यदि रणमें आकर भिड़े, तो तेरा यह आना-जाना छूट जाये ! हम विद्याधर राजा जहाँ युद्धमें आये हो, वहाँ भूगोचरी राजाओंकी हमसे क्या स्पर्धा ? इसपर बालकने कहा—क्या रघुपति भूगोचरी और रावण विद्याधर नहीं थे ? यदि कौवे ( काक, पक्षमें काय = शरीर ) का आकाशमें गमन हो गया, क्या इसीसे वह गुणोंका पात्र बन गया ? और यह वृत्तांत भी विरूप अर्थात् झूठा है कि मृगांक अशक्य ( असमर्थ ) है । वह क्या तेरे भयसे अपनी नगरीमें स्थित है ? हस्तिनमूहुरूपी काननको विध्वस्त करनेवाला जो सिंह गिरिकंदरामें ( जाकर ) रहता है, यह तो उसकी प्रकृति ही देखी जाती है; कही कही ! वह क्या सियालोसे डरकर ऐसा करता है ? ॥१३॥

३२. क घ ङ डहो । ३३. ख ग वी, घ वीरिहि । ३४. क ग घ डं । ३५. ड वि पुणु । ३६. क घ ङं । ३७. घ ङइ । ३८. क चूल । ३९. प्रतियोमे णहि । ४०. घ अम्हं । ४१. क ख ग ङ णहि, घ णहि । ४२. वंउ । ४३. क ङ णित वण्णहि; ख ग ण्णहि, घ ण्णहि । ४४. ख ग कहइ । ४५. क ड दुय । ४६. क घ ङं । ४७. क घ ड जि, ख ज्जे, ग जे । ४८. क घ ङ गुणु । ४९. ख ग यउ । ५०. डं खयालहि । ५१. क ङं । ५२. प्रतियोमें हि । ५३. क ख ग डं हि । ५४. क घ डं ति ।

[ १४ ]

वस्तु — हत्थतलहयकुंभिकुंभयल —

उक्खित्तमोत्ति य नियवि नहरक्खुत्त<sup>१</sup> सीहहो कमंतहो ।  
अहिलसहि<sup>२</sup> तं हरि हणवि<sup>३</sup> अवसचंधु तुहं तहो कयंतहो<sup>४</sup> ॥  
सो हउ<sup>५</sup> दूच न जो कहमि जायवि धोल्लु निरत्थु ।

५ तच वडिहयदुण्णयदुमहो<sup>६</sup> फलदक्खवणसमत्थु ॥ १ ॥

तो महित्तलपंतविज्जाहरिदेण उक्खित्तहत्थेण ण वणकरिदेण ।  
नवनिसियपहरणफडाडोयनाएण<sup>७</sup> पंचमुहगुंजारसण्णिहनिनाएण<sup>८</sup> ।  
लइ लेहु लेहु त्ति आणत्तभिच्चेण<sup>९</sup> उद्धंतसंतेण संगरदइच्चेण ।  
ता उट्ठिया दुट्ठदप्पिडवललड्ड<sup>१०</sup> हणु हणु भणंताण खयरान सहसट्ठ ।  
१० उग्गिण्णकरवालसंथाणथकेहि<sup>११</sup> नामंतकतेहि<sup>१२</sup> भामंतचकेहि<sup>१३</sup> ।  
धणुगुणनिवेसंत<sup>१४</sup> कडहंतवाणेहि<sup>१५</sup> हंतुं समारद्ध अमुणियपमाणेहि<sup>१६</sup> ।  
तो दिट्ठ वट्ठोड्डरुट्ठारिभावेण<sup>१७</sup> उद्धं कमंतेण जंबूकुमारेण ।  
करि<sup>१८</sup> धरिय असिदुहिय-संदिण्णरणलोह<sup>१९</sup> छुहहुहियकालस्स<sup>२०</sup> लवलविय ण जीह ।  
<sup>२१</sup> इय जुवझमाणेण हयपेयसंडेण पाडेइ विज्जाहरा भीमगयण<sup>२२</sup> ।

[ १४ ]

अपने हाथके पंजेसे आहत हाथीके कुमस्थलसे उखाड़े हुए ( गज ) मुक्ताओंको, जाते हुए सिंहके नखोंसे गिरे हुए देखकर, ( उसका पीछा करके ) तू उस सिंहको मारना चाहता है, तो तू अवश्य ही उस यमराजका वंधु है ( अर्थात् तू बहुत ग्रीध्र यमपुरी जाना चाहता है ) । मैं वह दूत नहीं हूँ, जो आकर निरर्थक बात कहूँ । मैं तेरे बड़े हुए दुर्नीतिरूपी दुमका फल तुझे यही दिखानेमें समर्थ हूँ । तब पृथ्वीपर ठोकर मारते हुए, बनेले हाथीके समान हाथ ( पक्षमें मूँड ) उठाये हुए, नागके फणाटोपके समान नये शान दिये हुए शस्त्रको लिये हुए, सिंहगर्जनके समान निनाद करके उठते हुए, उस-संग्राम दैत्यके द्वारा अपने भृत्योंको यह आज्ञा दी जाने पर कि ले लो ! ले लो ( पकड़ो ! पकड़ो ! ) । बलमें प्रवान ( श्रेष्ठ बलशाली ) अष्टसहस्र वृष्ट व रपिष्ट ( गर्बीले ) खेवर मारो मारो बहते हुए उठे । तलवारोंको निकालकर और वाग करने की स्थितिमें आकर, भालोको झुकाते हुए और चक्रोंको घुमाने हुए, घनुपपर डोगी चढ़ाते हुए एवं वाणोंको निकालते हुए, ऐसे अज्ञात प्रमाण ( सहनो ) भटने उगे मारनेका उपक्रम किया । तो यह देखकर जंबूकुमारने शत्रुओंके ऊपर बड़े भारी क्रोध भावमें ओष्ठ काटने हुए व ऊपरको उछलते हुए, अपने हाथमें वह कटारी धारण की जिसमें युद्धोको रेंगाएँ पड़ी हुई थी, और जो मानो भूखसे दुखी यमराजकी लपलपाती हुई जिह्वा ही थी । इसप्रकार युद्ध करने हुए मारे गये

[ १४ ] १. टं कुंभयड । २. प्रतियोगे कान्तु । ३. व मत्ति । ४. न ग र गित । ५. क उ गित । ६. क र ग ट हउ । ७. क ट वट्ठिव, व दुमय । ८. क ट फड । ९. टं कानोम । १०. क प ग गुंजारि ; व मत्तिह । ११. क ट आनत्ति । १२. न ग लड्ड । १३. व उग्गित । १४. टं वरंति । १५. क ट गामत्ति । १६. क ट नामत्ति । १७. व र ग ट वणुगु । १८. व ट वट्ठ । १९. क र ग ट ना दिण्ण रणि । २०. न ग र । २१. क ट ना दिण्ण रणि । २२. न ग र । २३. न ग र । पंक्ति नहीं ।

तहिं काले संपत्तु गयणगइ सविमाणु तेणपिओ लइउं<sup>२४</sup> वरचम्भुं<sup>२५</sup> सकिवाणुं<sup>२६</sup> । १५  
 इह चडहिं<sup>२७</sup> नउ चडमि किं एत्थुं<sup>२८</sup> चडिएहिं संगामकालमि कोणंतदडिएहिं ।  
 नासंतपट्टीए सिग्घं न धावेवि<sup>२९</sup> अहं<sup>३०</sup> जुञ्जमाणमि एत्थेव पावेवि<sup>३१</sup> ।  
 विज्जाहरा खग्गसल्लिमि बुद्धंत अण्णे<sup>३२</sup> पुणो पेदस्सु<sup>३३</sup> हरिणुं<sup>३४</sup> व्व उइंत ।  
 इय भणिवि एककंभे<sup>३५</sup> रिउसेण्णे उत्थरइ सो कवणु किर खयरु जो दिट्ठि तहो धरइ ।  
 परपहरवंचंतु नियवायमेल्लंतु सझडप्पदिढच्चम्मवट्टीए<sup>३६</sup> पेल्लंतु । २०  
 अवहत्थ-समहत्थ-दढकालवट्टेहिं<sup>३७</sup> करिठाणसंठाण-कुम्मासणट्टेहिं ।  
 पंचाणणालोय-मिगकडगपाएहिं<sup>३८</sup> सविचाससंकोयअवसारपाएहिं ।

प्रेतखंडरूपी भयानक गदासे वह कुमार विद्याधरोको मार-मारकर गिराने लगा । इतनेमे गगन-गति भी विमान-सहित वहाँ आ गया, और कुमारने उसके द्वारा अपित किये हुए उत्तम ढाल व तलवारको ले लिया । गगनगतिने कहा— यहाँ विमानमे चढ़ जाओ; ( कुमारने कहा ) नहीं, मैं नहीं चढ़ूँगा । युद्धके समय इसमें चढ़कर ( आत्मरक्षाके लिए ) डरसे कोनेमे जानेसे क्या लाभ ? भागते हुओके पीछे त्वरापूर्वक न दौड़कर, परंतु युद्ध करते हुए, यही प्राप्त करके ( सामना करके ) इन ( अनेक ) विद्याधरोंको मेरे खड्गकी धारारूपी जलमे डूबते हुए तथा अग्न्य ( अनेकों ) विद्याधरों ( के कटे हुए शिरो ) को ( आकाशमे ) हरिणके समान उड़ते हुए देखो । इसप्रकार कहकर जंबूकुमार शत्रुसेनाके एक अंगपर टूट पड़ा । फिर ऐसा कौन खेवर था, जो उसकी दृष्टिको सह सके ( अर्थात् उसके आगे ठहर सके ) । वह जंबूकुमार शत्रुके प्रहारसे अपनेको बचाता हुआ, अपना घात ( प्रहार ) शत्रुओपर छोड़ता हुआ, झडपपूर्वक शत्रुसेनाको सुदृढ़ चर्मपृष्ठ ( ढाल ) से ( पीछेको ) दबाता हुआ, अतिशय शक्तिशाली काल-पृष्ठ ( धनुष ) के समान हाथोंको मारनेके लिए ऊँचा करके, हस्तिदंतवेषके समान गर्दन काटने-वाली खड्गरूपी नासिका ( सूंड ) से अंधोमुख होकर; बैठकर; तथा कूर्मासनके द्वारा ( शत्रुओंके ) रथ-हाथी व घोड़ोंके कर-चरणोंका घात करते हुए; एवं सिंहावलोकनके समान आगेके शत्रुओपर पादाघात करके शत्रुओंका संहार; तथा मृगके समान पैरोंके आगे करके शत्रु भूमिमे घुसकर क्रम-क्रमसे अग्रिम शत्रुओंका विनाश; फलक ( शस्त्रविशेष ) को वामपार्श्व मे, व खड्गको पीछे छिपाकर शत्रुको यह दिखलाते हुए कि यह असावधान हो गया है, ( ऐसा सोचकर ) मारनेके लिए आगे आये हुए शत्रुको मारना; और शत्रुओंके द्वारा अघात किये जाने-पर वाणमे फलक लगाकर शत्रुओंको मारना; एवं अकस्मात् पीछे हटकर फिर ( सहसा आगे बढ़कर ) शत्रुओंको मारना, इत्यादि अनेक प्रकारके कुमारके दाव-वंचोसे वह विद्याधर सैन्य

२४. क ह लयउ । २५. क छ चम्भ । २६. ख ग सकिमाणु । २७. क वं । २८. ख ग एत्थ, घ एण ।  
 २९. क घ ड वेमि । ३०. घ जह । ३१. घ असे । ३२. ख ग घ पेक्ख । ३३. घ ण । ३४. प्रतियोमे  
 'एकगु' । ३५. क दंढीए, घ ऊ वट्टीए । ३६. ख ग घ वट्टेहि, ड वट्टेहि । ३७. ड पाणेहि ।



थत्ता—तं बिजाहरसाहणु ववगयवाहणु एकहो वासु विसट्टइ<sup>३८</sup> ।  
वीररसंकियअंगहो तरुणपयंगहो तिमिरु जेम नहि फिट्टइ<sup>३९</sup> ॥१४॥

इय जंवूसामिचरिणु सिंगारवीरे महाकव्वे<sup>४०</sup> महाकइदेवयत्तसुयवीररिणु  
सेणियदिसाविजउ नाम<sup>४१</sup> पंचमो संघी समत्तो<sup>४२</sup> ॥ संधि: ५ ॥

अपने समस्त बाहन नष्ट हो जानेसे, उस अकेले ( जंवूकुमार ) से ही इसप्रकार छिन्न-भिन्न होने लगा, जिसप्रकार वीररससे युक्त अंगो अर्थात् अत्यंत तेजस्वी किरणों-वाले सूर्यने आकाशमें तिमिर फट जाता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित 'जंवूसामिचरित्र' नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें श्रेणिकका दिशाविजय नामक यह पंचम संधि समाप्त ॥ संधि ५ ॥

३८. व ग ट्टो । ३९ क फट्ट; ट पट्ट । ४० क ट देवयत्त । ४१ क ग ट पचमो नामा ॥ १०, ११ ग पचमो संधी पच्छिओ सम्मतो ।

संधि—६

[ १ ]

देत दरिद्रं परवसणदुम्भणं सरसकवसवस्सं ।  
कइवीरसरिसपुरिसं धरणि धरंतो कयत्थास्सि ॥  
हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण सीसे<sup>१</sup> ।  
सबावाणी वयणकमलए वच्छे<sup>२</sup> सच्छापवित्ती<sup>३</sup> ॥  
कण्णाणयं सुयसुयंगहणं विक्रमो दोलयाणं ।  
वीरस्सेसो सहजपरियरो संपथा कज्जमण्णं<sup>४</sup> ।  
केरलनिवे<sup>५</sup> धरिण विजयंतरिण विहिवलहिं<sup>६</sup> जुज्झमइ<sup>७</sup> फिट्ठइ<sup>८</sup> ।  
जंबूसामि तहिं हुउ<sup>९</sup> समरु जहिं रयणसिहहो रणे अन्धिभट्टइ<sup>१०</sup> ॥ १ ॥

राजलमज्जे समरकोलाहलु निमुण्णेवि वाहिरि<sup>११</sup> सन्नद्ध वलु ।  
उव्वेचिरु<sup>१२</sup> उम्भरणे<sup>१३</sup> धावइ कहिं<sup>१४</sup> पारकउ<sup>१५</sup> खोज्जु<sup>१६</sup> न पावइ । १०  
कोइ<sup>१७</sup> भण्णइ काइं प्रउ<sup>१८</sup> वट्टइ कहिं<sup>१९</sup> संचरहु धरायलु फट्टइ<sup>२०</sup> ।  
एक्खु मियंकु असकउ विग्गहे<sup>२१</sup> पग्गिव<sup>२२</sup> को वि लग्गु<sup>२३</sup> पारग्गहे<sup>२४</sup> ।

[ १ ]

. दरिद्रको दान देनेवाले, दूसरोंकी विपत्तिमें दु खी, और सरस-काव्यको हो अपना सर्वस्व समझनेवाले कवि वीरके समान पुरुषको धारण करती हुई, हे वरित्री ! तू कृतार्थ है ॥१॥ हाथमें चाप ( धनुष ), सावुशील पुरुषोंके चरणोंको धारिणः प्रणाम, वदनकमलमें सच्ची वाणी, हृदयमें स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोंमें इस सुने हुए श्रुतका ग्रहण, तथा बाहुलताओंमें विक्रम, वीरपुरुष ( श्लेष-वीरकवि ) का यह सहज-स्वाभाविक परिकर ( साधन सामग्री ) है, परंतु इस समय तो कार्य ही दूसरा है ( अर्थात् अब तो वीर कविको युद्धका वर्णन मात्र करना है ) । केरल नरेशके द्वारा धारण किये हुए आश्रय-प्रदेश ( केरल-नगरी ) को छोड़कर ( उसके बाहर ) विधाताके वलसे युद्धमें मीत भी ( भयसे ) पलायन कर रही थी (?) अब जहाँ युद्ध हो रहा था, वही अवस्थ, वही रणमें रतनेखरसे भिड़ गये ।

राजकुलमें समर कोलाहल सुनकर बाहर ( भी ) सैन्य सन्नद्ध होने लगा । कोई उद्दिग्ध होकर उन्मार्गसे भागा, परंतु शत्रुका कहीं कोई चिह्न भी न पा सका । कोई कहने लगा, यह क्या हो रहा है ? कहीं चले—कहीं भागे, घरातल तो फटा जा रहा है । अकेला मृगांक तो युद्ध करनेमें असमर्थ है, प्रायः ( यह ) कोई अज्ञात व्यक्ति ही युद्धमें लगा हुआ है । प्रचंड सैन्यने

[ १ ] १ क सेसे, ख ग ड सीसो । २ क ड सव्वा । ३. क ख ग वच्छि । ४. ख ग सत्था । ५. घ कसा । ६ क ख ग सुय सुं, ड सुय सुय । ७. ख ग गणं । ८ क घ ड मभं । ९ क ड गिव । १० घ विहिं, क वलहि । ११ ख ग डं । १२. क हूव । १३. घ ट्टइ । १४. क ख ग उ सण्ण । १५ घ उव्वि । १६ क ड ओमगहि । १७ ड कहि । १८. घ परं । १९. क ड उज्ज । २० क घ ड को वि । २१. क घ ड इउ । २२ क कहि । २३. ख ग फुं । २४ क हिं । २५. क घ ड लग्गु को वि । २६. क ड पारिगहि, घ पारिगहि ।

वेद्विउ सिमिह धलेण रउहे  
अण्णे<sup>१</sup> वुत्तु न वइरि न विग्गहु  
१५ कहइ को धि कासु वि संतत्तउ<sup>२</sup>  
तेण-स्थाणु असेसु सरायउ  
जंबूदीउ व खारसमुद्धे ।  
भेयभिण्णु हुउ रायपरिग्गहु ।  
कालु व<sup>३</sup> वालु को वि<sup>४</sup> संपत्तउ ।  
वट्ठइ<sup>५</sup> रणे असिघायहि घायउ ।

वत्ता—तो मणि विप्पुरियहि<sup>६</sup> पइसेवि पुरियहि<sup>७</sup> हेरियहि<sup>८</sup> मिथकहो अक्खिउ  
तहि<sup>९</sup>, खणं तेत्तट्ठण सत्तुहुं कडण वित्तु नवरं लं अक्खिउ<sup>१०</sup> ॥ १ ॥

## [ २ ]

देव देव एक्को महाइओ  
सेणिएण कि पेसिओ इमो  
तेण पक्खि संचडवि<sup>१</sup> तेरए  
गलपमाणु जललोलवोडियं  
५ गइयपहरुहिरोहचच्चियं  
"छिअखयरकरचरणमडियं  
तुरिउ तुरिउ सज्जहि वि<sup>२</sup> धावहो  
कुमार को वि रिउसेण<sup>३</sup> आइओ ।  
सयणु<sup>४</sup> तुम्ह कि धा न जाणिमो ।  
वइरिसेणु करवालकेरए ।  
सुयणभारभुयदडि<sup>५</sup> तोलियं ।  
पडियमुंढ-भट्ठहंडनच्चियं<sup>६</sup> ।  
रत्तपोत्तधररामरुडियं<sup>७</sup> ।  
जुज्झमज्जे एवहि<sup>८</sup> जि पावहो ।

(अपने राजाके) शिचिरको इस तरह घेर लिया, जैसे जंबूद्वीप लवणोदधिसे घिरा है। तब किसी दूसरेने कहा—न कही शत्रु है, और न युद्ध, राजाको सेनामे ही फूट पड़ गयी है। कोई सतप्त होकर किसीसे कहता है, कालके समान कोई बालक आ गया है, और उस (अकेले) के द्वारा राजा सहित सारी सभा रणमे उसकी तलवारके आधातोसे घायल हुई है। तब मनमे अत्यंत प्रसन्न होकर पुरीमे प्रवेश करके गुप्तचरोंने मृगाकसे वह अक्षेप वृत्तात कहा जो उन्होंने उस अवसरपर शत्रुकी छावनीमे देखा था ॥१॥

## [ २ ]

हे देव ! हे राजन ! कोई एक महद्धिक कुमार शत्रु-सैन्यमे आया है। क्या इसे श्रेणिकने भेजा है ? अथवा तुम्हारा कोई स्वजन है, यह हम नहीं जानते। उसने तुम्हारे पक्षमे चढ़ाई करके शत्रु सैन्यको अपनी तलवार ( की धारा ) के जलकी लहरीमे गले तक डुबो दिया है, और भुवनके समस्त भारको अपने भुजदंडमें तौल लिया है ( अर्थात् समस्त भुवनको मानो अपनी भुजाओमे उठा लिया है ), 'सहाय प्रहारजन्य रक्तके प्रवाहसे उसे लोप दिया है, भटोके गिरे हुए मुंडो व रंडोसे नचा दिया है, खेचरोके कटे हुए हाथो व पैरोसे संझित कर दिया है; एवं ( सौभाग्य-सूचक ) रक्तवस्त्रोको धारण करनेवाली ( शत्रु ) नारियोंको विधवा बना दिया है। अत्यंत शीघ्रतापूर्वक संनद्ध होकर वेगपूर्वक गमन कीजिए, और युद्धके मध्य अभी उससे

२७ घ अंति । २८. क ड सलत्तउ । २९ रा ग घ को वि वालु । ३० ख ग वट्ठइ । ३१ ख ग भउ । ३२. ड तहि ।

[ २ ] १ ख ग व<sup>१</sup> सेणि । २. क ड आयउ । ३ ख ग ञ । ४ क ड या । ५. क घ ड<sup>२</sup> विवि ।  
६ क घ ड<sup>३</sup> पमाण । ७ क ड भुअणभारभरभुअहि, भारभरभुयहि । ८ क ड गल्लं । ९ घ<sup>४</sup> तुड नं ।  
१०. क ड छिण्णं । ११. घ<sup>५</sup> मडिय १२. क ख ग क सण्णं । १३ घ<sup>६</sup> हि ।

तं सुणेवि रणरसियसूरया पदयवि विहसंगामतूरया ।  
 घत्ता—रहकरितुरयभडु रणरंगपडु<sup>१४</sup> तुष्टकवयगुणनद्ध<sup>१५</sup> ।  
 कलयलकलियवलु<sup>१६</sup> धयचिधचलु चउरंगु सेणु सनद्ध<sup>१७</sup> ॥ २ ॥ १०  
 [ ३ ]

का वि कंत संदेसइ वंतहो चूडल्लयहो हत्थि मणिकंतहो ।  
 कोडु<sup>१</sup> न मणमि एकु जि भल्लउ अरि करिदंतघडिउ वलउल्लउ ।  
 अक्खइ का वि कंत भत्तारहो कयकिणियहो न सोह इह हारहो ।  
 आणहि<sup>२</sup> तिक्खखग्गपहनिम्मल सइ<sup>३</sup> हयकुंभिकुंभमुत्ताहल ।  
 वोल्लइ का वि कण<sup>४</sup> गयखेवहो<sup>५</sup> अवसर अल्लु<sup>६</sup> सामिरिणछेयहो<sup>७</sup> । ५  
 होइ न होइ एण भडभीसे पडुरिणमोयणु एक्के सीसे ।  
 तो वरि हवं मि जामि इउ कारेवि<sup>८</sup> नरखेण खग्गफर धारेवि<sup>९</sup> ।  
 जंपइ का वि कंत म सहिज्जहो<sup>१०</sup> दिट्ठप्र परवल<sup>११</sup> पडयु<sup>१२</sup> भिडिज्जहो<sup>१३</sup> ।  
 घत्ता—वोल्लइ को वि भडु महु कंत घडु पेक्खिज्जहि रणे सल्लंतउ<sup>१४</sup> ।  
 अगलियखग्गफर करिलुणियकर रिउदंतिदंत<sup>१५</sup> झुल्लंतउ ॥ ३ ॥ १०

जा मिलिए । यह सुनकर शूरवीर संग्रामके रसिक हो उठे और विविध प्रकारके युद्धके बाजे बजाये गये । युद्धकालमें पटु रथ, हाथी व घुड़सवार योद्धाओंने अति पौरुषके उद्देगसे उत्पन्न अतिशय रोमाचके कारण दूटती हुई कवचकी डोरियोंको बांध लिया, सारी सेनामें कोलाहल मच गया और ध्वजा-पताकाएं फहराने लगीं; इसप्रकार चतुरंग सैन्य संनद्ध हो गया ॥२॥

[ ३ ]

कोई काता अपने पतिको सदेश देने लगी—अपने हाथमें सुंदर मणियोंसे घटित चूड़ेके लिए मुझे कोई कौतुक नहीं, बल्कि मेरे लिए तो एकमात्र वही चूड़ा भला, जो शत्रुके हाथीके दांतोंसे बना हुआ हो । दूसरी कोई प्रिया अपने भर्तारको बोली—मूल्यसे खरीदे हुए हारकी यहाँ कोई शोभा नहीं है; तीक्ष्ण खड्गकी प्रभाके समान निर्मल गजमुबताओंको तुम स्वयं ( शत्रुके ) हाथीके कुंभस्थलको आहत ( विदीर्ण ) करके लाओ । कोई कन्या कहने लगी—स्वामीके भूतकालके ऋणको काटने ( चुकाने ) का आज ही अवसर है; भटोंसे भयंकर इस संग्राममें एक शिरसे स्वामीका ऋणमोचन हो या न हो, तो फिर मैं भी इस कार्यके लिए पुरुष-वेष बनाकर, तलवार व ढाल लेकर ( रणमें ) चलूंगी । और कोई काता बोली—तुम लोगोको ( दूसरोंको ) आज्ञा नहीं देनी चाहिए, बल्कि शत्रुसैन्यको देखते ही सबसे पहले ( स्वयं ) भिड़ जाना चाहिए । कोई भट बोला—हे कांते ! तू युद्धमें मेरे धड़को बाणों-द्वारा बीधा जानेपर भी, हाथसे खड्ग व ढालको न गिराकर, शत्रुके हाथीके सूंडको काटकर, उसके दांतोंमें झूलते हुए देखना ॥३॥

१४. क ड णहु । १५. ख ग नहुउ । १६. ख ग व गलु । १७ क ख ग ड सण ।

[ ३ ] १ क ख ग ड कोड । २. घ ण्हि । ३. क ख ग ड सइ । ४. क घ ड कंत । ५. क ख ग ड खेयहो । ६ क ड अज्ज । ७ ख ग सामिरण । ८. ख ग कारवि । ९. ख ग धारमि । १०. क ग ञ्जहे, घ ञ्जहि । ११ क ड दिट्ठइ परवलु, घ दिट्ठइ परवलि । १२ क ड म । १३ ज्जहि, ड ञ्जहि । १४. क ड विखल्लंतउ, घ सिल्ल । १५. ख ग दंत ।

[ ४ ]

- नीसरिउ सेण्णु<sup>१</sup> पयडंतखोहु  
 संसोहियरोहियसमरखेतु  
 राउलहो<sup>२</sup> मच्चो जुज्झइ सुधीर<sup>३</sup>  
 एत्तिहि<sup>४</sup> लग्गइ<sup>५</sup> क्रियकलयलाइ<sup>६</sup>  
 ५ कंवाहय-चलहय-संदणइ<sup>७</sup>  
 मणकोविथ-चोइय<sup>८</sup> गायघडाइ<sup>९</sup>  
 सुहसाहिय-त्राहिय-हयथडाइ<sup>१०</sup>  
 १० दप्पहरण-पहरण-थिरकराइ<sup>११</sup>  
 गुणगाहिय-काहिय-धणुहराइ<sup>१२</sup>  
 भडलोहियकोट्टालओहु<sup>१३</sup> ।  
 तं<sup>१४</sup> पेक्खवि<sup>१५</sup> धाइउ<sup>१६</sup> सवलु सत्तु ।  
 सहु<sup>१७</sup> खयरहिं जंबुकुमार वोर<sup>१८</sup> ।  
 विण्णि वि विज्जाहरनरवलाइ<sup>१९</sup> ।  
 बहुसुरवहुनयणाणंढणइ<sup>२०</sup> ।  
 उच्चैडिय-फेडिय-सुहवडाइ<sup>२१</sup> ।  
 रणरंगिय-त्रगिय-भडथडाइ<sup>२२</sup> ।  
 उग्गाभिय-भामिय-असिवराइ<sup>२३</sup> ।  
 एक्केकमेकमेल्लियसराइ<sup>२४</sup> ।  
 १० घत्ता—उट्ठित ताम रउ मइलंतघउ<sup>२५</sup> विहिचलह<sup>२६</sup> भार असहंतिप्र ।  
 निम्भरखिजियप्र<sup>२७</sup> निव्विण्णियप्र नीसासु व मुक्क<sup>२८</sup> धरित्तिप्र<sup>२९</sup> ॥४॥

[ ५ ]

अह सुहडकोवडज्झंतियाह<sup>१</sup>उच्छलइ व धूसुग्गाह ताह<sup>२</sup> ।

[ ४ ]

संभ्रम (भोम) प्रकट करता हुआ सैन्य निकल पड़ा, और भट कोट व अट्टालिकाओंपर (सतर्कतासे) प्रवृत्त हो गये। अच्छी तरह घोड़ा हुआ समरक्षेत्र घेर लिया गया, ऐसा देखकर बाबु अपने सैन्यसहित (उसकी ओर) दौड़ पड़ा। उधर राजकुलके अंदर वह श्रेष्ठ धीर-वीर जंबुकुमार खेचरोके साथ युद्ध कर रहा था, और इधर दोनों विद्याधरोकी सेनाएं कलकल (कोलाहल) करती हुई आपसमें लग गयी। चावुकसे आहत हुए चंचल घोड़ोंवाले रथ अनेक सुरवधुओंके नेत्रोंको आनंद देने लगे। मनाक् (थोड़ा) कुपित करके गजसमूहको प्रेरित किया गया। जिनके मुखपटोको उचाटकर हटा दिया गया था, वेसे अच्छी तरह साधे हुए घोड़ोंके समूह चलाये गये। रणके रंगीले भटोके समूह वर्गमें बंट गये। दपेका नाश करनेवाले आयुधोंको अपने स्थिर हाथोंमें लिये हुए, ध्यानसे निकाले हुए तलवारोंको घुमाते हुए, तथा सुगाह अर्थात् सुदृढ़ एवं खीची हुई प्रत्यंघासे युक्त धनुषोंको धारण करनेवाले योद्धा परस्पर एक दूसरेपर बाण छोड़ने लगे। तब ध्वजाओंको मलिन करता हुआ ऐसा रज उठा, मानो दोनों सेनाओंका भार सहन न कर सकनेवाली धरित्रोने अत्यंत खेदविलस होकर बड़ा निःश्वास छोड़ा हो ॥४॥

[ ५ ]

अथवा सुभटोके कोप-[अग्नि] से दग्ध होते हुए मानो उसका घूमोदगार ही ऊपरको

[ ४ ] १. व सित्तु । २. क ड कोट्टाल । ३. क ड त । ४. क ड पेक्खवि । ५. क ड धायउ । ६. क ड सयलु ; ख ग सयलु खतु । ७. व लहं । ८. क ड सुधीर । ९. ड सहु । १०. क ड धीर । ११. ख ग हे । १२. ख ग इ । १३. ख ग गाय । १४. क ड चोविथ । १५. ड घडाइ । १६. ख ग तडाइ । १७. क ड दप्पहण । १८. ड हराइ । १९. ख ग मइलंतघउ । २०. क ख ग ड वलहि । २१. क ख ग ड विण्णि । २२. ख ग मुक्क । २३. ख ग धर ।

[ ५ ] क याहि, ड याहि । २. क ड ताहि ।

पयछड्डिवि<sup>३</sup> अप्पाणउ<sup>४</sup> तडेइ  
मजइ व महागयमयजलेण  
अंधारियाई<sup>५</sup> निम्मलथलाई<sup>६</sup>  
पर अप्पु न वुज्जतेहि<sup>७</sup> तेहिं  
हत्थिहे<sup>८</sup> गलगज्जि निसामिऊण  
हयहिसप्र<sup>९</sup> जाणिवि आसवारु  
केणावि कलिउ रहु घरहरंतु<sup>१०</sup>  
हकंतहो कासु वि को वि घडइ<sup>११</sup>  
अकुलीणु अवस मत्थप्र चडेइ<sup>१२</sup> ।  
नचइ च चमरचलमरुछलेण<sup>१३</sup> ।  
संरुद्धचक्खु वेणिण वि बलाई<sup>१४</sup> ।  
जुज्झिउ णं जडमइ जोइएहिं<sup>१५</sup> ।  
भडु हणइ किवारणें धाविऊण ।  
को वि मुयइ चक्कु नवनि सियधारु ।  
धाणुके विद्धउ थरहरंतु<sup>१६</sup> ।  
वज्जासणि उव सिरि लउडि<sup>१७</sup> पडइ ।  
यत्ता—सुहडरुहिरपण करिवरभण हयफेणपवाहहिं नामिउ<sup>१८</sup> ।  
परमइलणु पवलु देविणु कवलु<sup>१९</sup> दुज्जणु व रेणु उवसामिउ<sup>२०</sup> ॥ ५ ॥

[ ६ ]

रुहिराणु रणमहि<sup>२१</sup> चहई<sup>२२</sup> संछिन्नमूलु<sup>२३</sup> रउ नहे सहई ।  
अंगारसेसवइसाणरहो पडमुट्टिउ धूमु व भमइ<sup>२४</sup> तहो ।

उछल रहा हो । चरणों ( अर्थात् भूमि ) को छोड़कर वह धूल अपनेको विस्तीर्ण कर रहा था, क्योंकि ( शक्तिसे न दवाया हुआ ) अकुलीन व्यक्ति और पृथ्वीमे लीन ( शांत ) नहीं हुआ धूल अवश्य मस्तकपर चढ़ता है । वह युद्धभूमि मानो महागजोंके मदजलसे मज्जन ( स्नान ) करने लगी, और चंचल चमरोसे प्रसृत मस्तके छलसे मानो नाचने लगी । निर्मल स्थलप्रदेश अंधकारपूर्ण हो गये । दोनों सेनाओंके नेत्र धूलसे अवरुद्ध हो गये । उन्होंने अपने और परायेको न वृत्तते हुए इसप्रकार युद्ध किया जिसप्रकार कोई जड़मति ( मूर्ख ) जुगनुओसे ( ? ) भिड़ जाये । हाथीके ( द्वारा किये हुए ) गलगर्जनको सुनकर किसी मटने दौड़कर बार किया; थोड़ेके हीसनेसे सवारको जानकर किसी योद्धाने पैनी को हुई धारवाले चक्रको छोड़ा । किसी धनुर्धरने घरघराहट करते हुए रथको जान लिया, और उसे ( बाणोसे ) ऐसा बाँध दिया कि वह थरा उठा । किसीको हांक लगाते हुए कोई योद्धा किसी अन्यसे ही जा भिड़ा, और उसके धारपर वज्रदंडके समान लकुटि ( लाठी ) का प्रहार हुआ । सुभटोंके रुधिररूपी पयसे, हाथियोंके मदसे, और थोड़ोके फेनके प्रवाहसे नमाया हुआ ( अर्थात् गीला करके शांत किया हुआ ) धूल, दूसरेको मिला ( कलंकित ) करनेवाला प्रबल शास ( पर्याप्त सामग्री ) देकर किसी दुर्जनके समान उपशांत हो गया ॥ ५ ॥

[ ६ ]

रणभूमिने रुधिरजन्य अरुणत्व अर्थात् लालिमाको धारण किया, और मूल-संछिन्न ( पृथ्वीसे बिल्कुल अलग कटा हुआ ) रज आकाशमें ऐसा शोभायमान हुआ मानो पूर्णतया अंगाररूप हुए ( निर्धूम ) वैस्वानरका प्रारंभमें उठा हुआ धूम्र भ्रमण करता हो । रजका

३ क ऊ छंडिवि । ४ क ऊ णउं । ५ ख ग वि । ६ ख ग वलेण (?) । ७ ख ग वलाई या छलाई (?) । ८ क हिं; व ऊ हिं, ख ग हत्थेहे । ९ क व ऊ हिंसिय ख ग हिंसइ । १०. ख ग परं । ११. क डं । १२ क ड लवडि । १३. क ऊ उं । १४ क णु । १५ क मितं ।

[ ६ ] १. ख ग रणिं । २. ख ग हवई । ३. क व ड संछिण्णं । ४. ऊ तं ।

दूरयरोसारिय रथपसरे <sup>५</sup>	परिकलिप्र <sup>६</sup> परोप्परु अप्प-परे <sup>७</sup> ।
संवाहिय संधण भयरहिया	पचारयंत पहरहि <sup>८</sup> रहिया ।
५ थिरथक्क पच्छिछइ हत्थिहडा	घावतिहि <sup>९</sup> पडिगयघडहि अडा ।
वाहंति हणंति वाह कुमरा	खणखणखणंतकरवालकरा ।
विधंति <sup>१०</sup> जोह जलहरसरिसा	<sup>११</sup> वावल्लभल्लकणियवरिसा ।
फारक्क परोप्परु ओवडिया <sup>१२</sup>	कोतावह कोतकरहि <sup>१३</sup> भिडिया ।

धत्ता—खंडियकयसिरउ रथभरथिरउ दहाहरु<sup>१४</sup> रणु सरसन्वणु<sup>१५</sup> ।

१० यं<sup>१६</sup> नहखयचियउ निट्टुरहियउ कण्णाडविलासिणिजोन्वणु ॥ ६ ॥

[ ७ ]

रण <sup>१</sup> निखिडभडयट्टसंधट्टसूरं	महाकलथलाराववज्जंततूरं ।
रणं सरिय-हुंकरिय-धाणुकवडं	सटंकारकोवडउडुंतकडं ।
रणं वडिय-खडखडिय-तिक्खासिधारं	झडप्पंत-अंपंत-फारक्कफारं ।

प्रसार दूरतर अपसृत हो जानेपर, परस्पर अपने परायेको पहचानकर, (शत्रुपक्षके) रथियोको प्रहारासे आह्वान करते हुए, निर्भय होकर रथ चलाये गये। एक ओरकी हस्तिसेना स्थिरतापूर्वक स्थित रहकर, दौड़कर आते हुए शत्रुगजोसे झड़पकी प्रतीक्षा कर रही थी। खणखण करते हुए करवाल हाथोंमें लेकर, राजकुमार- (अपने) अश्वोको चला रहे, व (शत्रुसेनाके अश्वोको) मार रहे थे। योद्धा लोग जलधरोके समान बल्लम, भालों व बाणोंकी वर्षा करते हुए (परस्परको) वीध रहे थे। फारक्क (घस्त्र) को धारण करनेवाले एक दूसरेपर टूट पड़े, और कुंतवाले कुंत धारण करनेवाले प्रतिपक्षियोसे भिड़ पड़े। (योद्धाओंके) कटे हुए शिर, स्थिर (शांत) रज-भार (धूलि-विस्तार), (योद्धाओं-द्वारा क्रोधसे) दृष्ट-अधर और (योद्धाओंको लगे हुए) सद्य-व्रणों तथा आकाशमें पक्षियोंके समूहसे युक्त एवं निष्ठुर-हृदय(योद्धाओं)वाला वह युद्ध(स्थल)ऐसी कर्णाट-विलासिनोके यौवनके समान हो रहा था (सुरतक्रीडोपरान्त) जिसके शिरपरके केश बिखरे हों, जिसका रजभार (रजसूत्र अथवा रतभार अर्थात् सुरतक्रीडाका आवेग) शांत हो गया हो, एवं रतियुद्ध (अथवा प्रणय-कलह) में जिसके अधर काट लिये गये हों, और उनपर अभी भी सरस-व्रण (ताजे घाव) विद्यमान हो, तथा जिसके कठोर स्तन नखझतसे युक्त हो ॥६॥

[ ७ ]

वह संग्राम संघर्षगूर महान् वीरोके समूहों और वजते हुए तूरोसे वड़े भारी कोलाहलसे युक्त था। उच्चस्वरसे हुंकार छोड़नेवाले धनुर्धरोसे वह बड़ा प्रचंड हो रहा था, और वहाँ टंकार करते हुए धनुषोसे बाण उड़ रहे थे। वह युद्ध आपसमें मिलकर खड़खडाती हुई तीक्ष्ण असिधाराओसे युक्त था, और वहाँ झपटे जाते हुए वड़े-वड़े फारक्क (घस्त्र) टूट रहे थे।

५. क ड 'रथपसरो'। ६ क ड 'लिय'। ७ क ड 'परो'। ८ क ड 'रहि'। ९. ट 'तिहि'। १०. स ग विद्वति। ११. क ड प्रतियोमें 'वावल्ल' वरिसा' के पूर्व 'विहिबल्लहि परोणर नामरिसा' इनती अर्द्धपति अधिक है, ख प्रति में भी यह पाठ है, परन्तु पीछे किसीके द्वारा लिय दिया गया है, और गुद भी नहीं है। १२ क ड उव्व'। १३ क 'करहि'। १४ क 'दिट्ठा'। १५ स ग तह'। १६ क पहे'।

[ ७ ] १ ख ग निवड'।

रणं<sup>२</sup> कुंतकोडोडुलिज्जंतजोहं चिक्कंत<sup>३</sup>-परिचत्त<sup>४</sup>-तणुताणसोहं ।  
 रणं पहरपञ्जरिय-रुहिरप्पवाहं<sup>५</sup> रणं छुणियमुहनालिवियलंतवाहं । ५  
 रणं दंतित्तंभाभिज्जंतगतं रणं रत्तकणसित्तकयरत्तछत्तं ।  
 रणं मासवसगाससंचरियगिद्धं रणं सिरपरिक्खंत-हिंडंतसिद्धं ।  
 भडो को वि रहसुवभडो<sup>६</sup> रहि सखग्गो गिरिदे सईदो व्व उक्कमवि लग्गो<sup>७</sup> ।  
 भडो को वि दंतग्गो दाळण पायं महाकुम्भिकुंभत्थले देड<sup>८</sup> वायं ।  
 भडो को वि जसलंपडो निग्गयंतो वल्लग्गो<sup>९</sup> मयग्गो<sup>१०</sup> गुणक्क<sup>११</sup> कमत्तो । १०  
 भडो को वि निजंतु नो जाइ सग्गो पयपेइ गिब्बाणनारीण मग्गो<sup>१२</sup> ।  
 न तां<sup>१३</sup> जामि ओसारि दूरे विमाणं रणे जा न भग्गं विवक्खस्स भाणं ।  
 यत्ता—मारिय सारिनरु भडु<sup>१४</sup> कौत्तकरु तणुभिन्नदंत<sup>१५</sup> असुणंतउ<sup>१६</sup> ।  
 करिणी मणि गणइ<sup>१७</sup> करिणी<sup>१८</sup> हणइ<sup>१९</sup> रणरक्खसु<sup>२०</sup> छल्लिउ धणुत्तउ<sup>२१</sup> ॥७॥

[ ८ ]

भडु को वि विसूरइ दलियसत्तु बहुपहरविहंडिल भूमिपत्तु ।

वह समर भालोंकी नोकोपर हूले जाते हुए योद्धाओं एवं शूरोके द्वारा परित्यक्त तनुबाणों (रक्षाकवचों) से शोभायमान था । वह संप्राम प्रहारोंसे झरते हुए रुधिरके प्रवाह तथा काटो हुई मुखनाड़ियोंसे निकलती हुई बाणसे युक्त था; और वह युद्ध हाथियोंके दांतोंके अग्रभाग (नोक) से भेदे जाते हुए शरीरों, तथा रक्तकणोंसे सिंचकर रक्तवर्ण हुए छात्रोंसे भरा था । और वह समर मास व चर्बीके आसके लिए संचार करते हुए गूढ़ों, व (शबोंकी) कपाल परीक्षाके लिए भ्रमण करते हुए सिद्धों (औघडों) से व्याप्त था । कोई वेगमे उद्भट अर्थात् अत्यंत वेगवान् (फुर्तीला) योद्धा खड्ग लिये हुए उछलकर इसप्रकार रथपर जा चढ़ता था, जिसप्रकार मृगेन्द्र कूदकर पर्वतराजपर जा चढ़े । किसी भटने दांतोंकी नोकोपर पैर देकर किसी महागजके कुंभस्थलपर आघात किया; कोई यज्ञके लोभसे (सैदानमें) निकलता हुआ योद्धा, प्रत्यक्षाको टंकारता हुआ एक श्रेष्ठ खच्चरसे जा लगा । कोई भट स्वर्गमे ले जाया जानेपर, मार्गमें गीर्वाण नारियोंसे इसप्रकार कहकर नहीं जाता था—मे तबतक नहीं जाऊंगा जबतक रणमे शत्रुका मान भंग नहीं हो जाता; इसलिए (मुझे लेनेके लिए लाये हुए) अपने विमानको दूर हटाओ । कोई योद्धा गजपर्याणपर बैठे हुए सारि-नर (महावत ?) को मारकर हाथमें कुंत लिये हुए दांतोंसे विलक्षण (हस्ति) शरीरपर ध्यान न देते हुए, अपने मनमे (हाथी-को भी) हथिनी समझते हुए हाथीको मारकर एक धनुर्धारी रणराक्षस (युद्धपिशाच, प्रचंड योद्धा) को भी वंचना दे देता है ॥७॥

[ ८ ]

कोई भट शत्रुका दमन करके (स्वयं भी) प्रहारोंसे आहत होकर भूमिपर गिरता

२ क रणे । ३. क चिक्कंत, ख ग विक्तार । ४. क परिपत्तु, ख ग व परिचत्त; ड परिचत्तु । ५ ख ग लुलियं । ६ ख ग व दंतग्गि । ७. क ड हिंडति । ८ क ड युभडे । ९ क व ड मिवलग्गो । १० व देवि । ११ ड भो । १२. क व ड मयगे । १३ क व ड गुणक्क । १४. ड मग्गो । १५ क ख ग ड तो । १६ क भड । १७. क ड मिण्णं । १८ व अणुं । १९ क व ड ड, घ मणइ । २०. क व ड णा । २१. क व ड इ । २२. व स । २३. व ड धुणत्तउ ।



- हा महु वि हणतहो को विसेसु जं बइरि न जावउ वंससेसु ।  
 नीसेण नाभिरिणु किर विमुत्तु महु सुवइ नरणनिहाप्र सुकु ।  
 रिउवाहिं पहु-किंवर-विहत्तु सुच्छंगय वेणि वि भूमिपत्त ।  
 ५ . पम्भानिलेगं उम्मुच्छमाणु पहु पेम्भवि नणइ सुहनिहाणु ।  
 तोडंतु नियंतइ दुहरेण वारिजइ गिदु न किंरेण ।  
 सिह विण्णउ समरिन तो विसकु सानियपसायरिणु ससु थकु ।  
 अनावलि नियलहिं लद्धवंधु डारियनणु निवडइ भडकवंधु ।  
 सिह सामिह सहु हिण्ण विण्णु सयसंडु पडामह पलु पडणु ।  
 १० जीविउ सुररमणिहु महिह वणु पाइकसरिसु को होइ अणु ।

धत्ता— करिकरकलियगलु पयदलियनलु उर-सिर-भरीरसवचूरिउ ।

न मुणइ पिउ कवणु नममरणनणु रणे सुहडकलनु विनुरिउ ॥८॥

हुआ ह्मनरह सोच करता है—अहो ! मेरे नी ( शत्रुओंको ) मारनेका क्या वैशिष्ट्य जबकि  
 वैरी बंध गोप नहीं हुआ। अपने धिरसे ( अर्थात् गिर देकर ) कोई भट स्वामीके ऋणसे निर्मुक्त  
 ( निर्मुक्त ) होकर मरण-नित्रासे सेवित होकर ( निश्चित ) सोता है। शत्रुके आघातसे स्वामी  
 सेवकसे अलग हो गया और भूच्छित होकर दोनों ही भूमिपर गिर पड़े। पंखीका ह्मनसे  
 उम्मुच्छित होने हुए स्वामीको देखकर एक सेवक ऐसा मानता है मानो उसे मुक्का खजाना  
 मिल गया हो। उसको आंतोंको तोड़ता हुआ गूद नी इसप्रकारके दुःखमें लीन सेवकके  
 द्वारा हटाया नहीं जाता कि युद्धमें धिर नी दिया तो नी स्वामीकी कृपाका ऋण गोप  
 ही रह गया। जिसके पेटकी आँतें तक नी सांकनसे जकड़ी गयी हैं, इनप्रकार विदीर्ण  
 शरीर होकर किसी भटका बर्ब ( घड़ ) गिर पड़ा। ( हिस्ने ) हृदयके साथ-साथ अपना धिर  
 नी स्वामीके लिए समर्पित कर दिया, और मांस सीन्सी दुकड़े करके मांसभोजियों अर्थात्  
 राजसोंके लिए दे दिया, जीवन मुररमणिदोंके लिए, तथा पृथिवीके लिए अपना वर्ण अर्थात्  
 यश-गाथा प्रदान कर दी, ऐसे पदातिके समान अन्य कौन हो सकता है ? गर्वन ( स्वयंके द्वारा  
 मारे गये ) हाथीके नूडमें फंसी हुई, पैर हाथीके पांव तले कुचले हुए, उरस्थल, गिर व संपूर्ण  
 शरीर चूर-चूर किण हुआ—ऐसी स्थिति देखकर ( प्रियतमके ) नाथने मरनेकी आवश्यकता आयी  
 हुई मुन्दप्रिया पहचान नहीं पायी कि प्रिय कौन है ? और ओक करती हुई बैठ रही ॥८॥

[ ८ ] १. ध नीसेड । २. ल ग प्र मुणइ । ३. ध मुत्तु । ४. ल ग गहि । ५. क ड वलि व, घ  
 जिलि व । ६. क ड ररकामिपिडेय । ७. क घ ड पेम्भवि । ८. ल ग नणइ; व नणइ । ९. क क व ।  
 १०. ल ग तड । ११. क ड परे । १२. व ड । १३. क ड तो । १४. ध सेवक । १५. घ डारि ।  
 १६. क ग हि; व ड हि । १७. ल ग उह । १८. क ल ग ड तंड । १९. क ड नह । २०. व डणु ।  
 २१. ल ग गहि । २२. क घ ड हि । २३. क घ ड वणु । २४. ल ग गणिमलु । २५. क ड  
 मन्चूरिउ । २६. ल ग व ड हि ।

[ ६ ]

उहयबलई<sup>१</sup> निचभर जुझातई<sup>२</sup>  
 उहयबलई<sup>३</sup> आवडियसूरई<sup>४</sup>  
 उहयबलई मोडियधयलत्तई<sup>५</sup>  
 उहयबलई<sup>६</sup> पहरणनिचिभणई<sup>७</sup>  
 वेणिण वि बार-बार संघट्टई<sup>८</sup>  
 बार-बार जज्जरियमथंगई<sup>९</sup>  
 बार-बार कपियत्तणुसाणई<sup>१०</sup>  
 बार-बार रुहिर्रोहतरंतई<sup>११</sup>  
 बार-बार आसिसवसगासई<sup>१२</sup>

उहयबलई<sup>१</sup> संगरसमसत्तई<sup>२</sup>।  
 उहयबलई<sup>३</sup> भीसदियतूरई<sup>४</sup>।  
 उहयबलई<sup>५</sup> अबलवियसत्तई<sup>६</sup>।  
 रणदेवयह<sup>७</sup> वे वि बलि दिण्णई<sup>८</sup>।  
 बार-बार कायरनर फट्टई<sup>९</sup>।  
 बार-बार तोरवियतुरंगई<sup>१०</sup>।  
 बार-बार दुक्कंतविमाणई<sup>११</sup>।  
 बार-बार मुच्छिरई भरंतई<sup>१२</sup>।  
 बार-बार रसधवियपलासई<sup>१३</sup>।

५

घत्ता—बार-बार झरिहै<sup>१३</sup> लोहियसरिहै<sup>१४</sup> हयकरडिकरंकसिलायडे। १०

बार-बार बलहि<sup>१५</sup> पयडियल्लहि<sup>१६</sup> पक्खालिय पडुपरिहवपडे ॥६॥

[ १० ]

एरिसम्मि दुद्धरम्मि भीसणे रणे  
 सुइडसंड-बाहुदंडमुडुंभंडिरे

गरुयनाय<sup>१</sup> दिण्णवाय-सुट्टपहरणे।  
 लुणियटंक-जणियसंक-बाहुहिंडिरे<sup>२</sup>।

[ ६ ]

दोनों सेनाएं घमासान रूपसे जूझ रही थी। दोनों सेनाएं युद्धमें समान बलवाली थी। दोनों सेनाओंमें शूरवीर परस्परकी ओर बढ़ रहे थे। दोनों सेनाएं तुरोंके रवसे भयानक हो रही थी; एवं दोनों सेनाओंके योद्धा परस्परके ध्वज व छत्रोंको भन कर रहे थे; तथा पौरुषका अवलंबन लिये हुए थे। दोनों पक्ष आयुधोसे विदीर्ण हो रहे थे, और दोनों ही रणदेवताके लिए बलि चढ़ रहे थे। दोनों सैन्य बार-बार परस्पर संघट्टन कर रहे थे, व कायर लोग बार-बार फूट रहे थे, अर्थात् तितर-बितर होकर भाग रहे थे। बार-बार हस्ती जर्जर हो रहे थे, व घोड़े उत्तेजित। बार-बार शरीर-त्राण (रक्षाकवच) काटे जा रहे थे, एवं (मृत वीरोंको स्वर्ग ले जानेके लिए देवोंके) विमान उपस्थित हो रहे थे। बार-बार रुधिरके प्रवाहमें तैरते हुए लोग मरते समय भूच्छित हो रहे थे। बार-बार राक्षस आमिष एवं वसाको निगल रहे, तथा रक्त पी-पीकर प्रसन्न हो रहे थे। पुन-पुनः क्षरती हुई लोहित-सरिताके घोड़ों व हाथियोंके अस्थिनिर्मित शिलास्तंभों पर सेनाओंके द्वारा अनेक प्रकारका चातुर्य प्रकट करते हुए, अपने स्वामीका पराभवपट घोसा जा रहा था ॥६॥

[ १० ]

इसप्रकारके उस दुद्धर व भीषण रणमें जहाँ कि बड़े भारी नादके साथ किये हुए आघातोसे शस्त्र टूट गये थे, और जहाँ कि सुभट-समूहके (कटे हुए) बाहुदंड व तुड बिछे हुए

[ ९ ] १. उभय<sup>१</sup>। २. क संतड, व संतड, छ सगरसमंतड। ३. ख क बलय। ४. घ आवडिय, ड आवडिय। ५. क ख ग नीस। ६. क व ड सत्यड। ७. झड। ८. क ड यधि; घ र्यहि। ९. क ड फुट्टड। १०. क ड भईगड। ११. क वरहि घ झरहि, ज्जरहि। १२. व सरिहि। १३. ख ग करडे। १४. क ड बलहि। १५. ड छलहि। विशेष—इस कडवकमें क ख ग और ड इन चारो प्रतियोंमें अधिककर बहुवचनके ई में अतमें होनेवाले गन्ध 'इ' से अत होते हैं। जैसे जुज्जतड > तड, सूरड > सूरड, बलड > बलड इत्यादि।

[ १० ] १. घ दिन्न<sup>१</sup>। २. क ड तुड<sup>२</sup>। ३. क ड हुडिरे, ख ग बाहुडिडिरे।

- खंडसुंदवेययंडं-चंडमिमले करधरतं-नीसरत-अंतचुंमळे ।  
 रहिरपंकखुत्तचकं-थक्कसंदणे पत्तमोहं-पडियजोह-कडविमहणे ।  
 ५ करि वं घडिय वे वि भिडिय-वद्धमूल दुद्धदवणगवणगमण-रयणचूल ।  
 वे वि खयर विज्जपवर-लच्छिलक्ख इयगयंद णं मयंद खगगनक्ख ।  
 सुप्पमाणवरविमाण-नियडआय वे वि वीर मेरुधीर दिण्णवाय ।  
 जमनिहेण मणिसिहेण घाउ दिण्णुं वइरियाणु वंचमाणु खग्गु छिण्णुं ।  
 रिउ रितरथुं<sup>१</sup> सुण्णहत्थुं<sup>२</sup> नियविताम जउ<sup>३</sup> सुणेइ<sup>४</sup> आहणेइ पुणु वि जाम ।  
 १० खग्गखंडु चयवि<sup>५</sup> चंडु<sup>६</sup> पाविऊण थिरकरेण मोमारेण भामिऊण ।  
 पडउ तासु मणिसिहासु सिग्घजाणु धयसडंतु खडहडंतु गउ विमाणु ।  
 नहे, ठिएण मणिसिहेण वच्छे मिण्णुं<sup>१०</sup> निसियघारु असिपहारु अरिहे<sup>१०</sup> दिण्णुं<sup>१०</sup> ।

घत्ता—चाए<sup>१</sup> गयणगइ हुउ वियलमइ<sup>२</sup> कोलालोहालियदेहउ ।

सहइ विमाणवरे संज्ञावसरे अत्थइरिसिहरे<sup>२</sup> रवि जेहउ<sup>३</sup> ॥१०॥

ये, तथा जहाँ योद्धाओकी कटी हुई जांच व बाहू शका ( भय ) उत्पन्न करते हुए घूम रहे थे, और जहाँ सूंड कटा हुआ कोई हाथी प्रचंडतासे विह्वल एवं भयानक हो रहा था, तथा अपने सूंडको निकली हुई आंतोका खोल बनाये हुए था, और जहाँ कि खरि-पंकमें चक्का फस जाने से रथ ठहर गये थे, तथा मूर्च्छित होकर पड़े हुए योद्धाओका मर्दन हो रहा था; ऐसे उस महा संग्राममें वे दोनों ही विद्याधर, दुष्टोका दमन करनेवाला गगनगति और ( दूसरा ) रत्नचूल ( रत्नखोलर ), मिलकर हाथियोंके समान वद्धमूल होकर अर्थात् जमकर भिड़ गये । वे दोनों ही प्रवर विद्याओके धारक थे, और ( विजय)लक्ष्मीपर इसप्रकार अपना लक्ष्य दिये हुए थे जिसप्रकार नखोलूपी खड्गसे युक्त वह मृगेन्द्र जिसने गर्जंको मार डाला है । फिर सुप्रमाण ( सुनिमित्त ) उत्तम विमानोसे निकट आकर दोनों ही मेरुके समान वीर-वीर परस्पर आघात करने लगे । यमके समान रत्नखोलरने ( गगनगतिपर ) प्रहार किया और शत्रुको वंचना देते हुए उसका खड्ग खंडित कर डाला । इसप्रकार शत्रुको अस्त्ररहित खाली हाथ देखकर, अपनी जय मानते हुए जब तक कि वह पुनः आघात करे, तब तक गगनगतिने उस खड्गके टुकड़ेको छोड़कर, एक प्रचंड मुद्गर पाकर, उसे स्थिर हाथोंसे घुमाकर रत्नखोलरके शीघ्रगान-पर प्रहार कर दिया, तो ध्वजाकी गिराता हुआ वह विमान खड़-खड़ करता हुआ नष्ट हो गया । तब नभस्थित मणिखोलरने पैनी की हुई धारवाले तलवारसे शत्रुके वक्षस्थलको चीरता हुआ प्रहार किया । आघातोसे गगनगति विकलमति अर्थात् विह्वल, और लोहू-लुहान शरीर हो गया, तथा संध्याके समय अपने विमानमें बैठा हुआ वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसा अस्ताचल पर सूर्य ॥१०॥

४ क वेपयडं । ५ ख ग रमले । ६ क खुग्गवक्क । ७ घ घत्तं । ८ ड करिउ । ९ क घ ट दुद्धमणं । १० वं वु । ११ क डंत्थ । १२ घ सुणं । १३ क जइ । १४ क घ ड मं । १५ क ट चइवि । १६ क चड । १७ क घ हि, ड हि । १८ क चाए । १९ क ड विमलं, घ गड । २० क ड अत्थपरिं । २१ वं उ ।

[ ११ ]

सकिवाणु रयणसिहु<sup>१</sup> वणियगत्तु<sup>२</sup>  
 एरुत्तरे पाइहि<sup>३</sup> पहु निएवि<sup>४</sup>  
 करि हुकु<sup>५</sup> सपहरणु<sup>६</sup> सरिउ<sup>७</sup> गुडिउ<sup>८</sup>  
 तहि<sup>९</sup> काले मियके<sup>१०</sup> सुक्खोहु<sup>११</sup>  
 इय कवणु गयण जुज्झिय-सलेव  
 ग्रहु हयविमाणु जो भूमि आउ  
 वीयउ पुणु अवसरु<sup>१२</sup> मुणिय-वत्तु  
 दीसइ विसाणे<sup>१३</sup> सुच्छावसंगु<sup>१४</sup>

गयणंगाउ रणभूमि पत्तु ।  
 पडिगाहिउ नियसेणे<sup>१५</sup> नएवि ।  
 विज्जाहरवइ लहु तेत्थु चडिउ ।  
 पुच्छिज्जइ नियकरिखंघरोहु<sup>१६</sup> ।  
 आरोहु भणइ<sup>१७</sup> विण्णवमि<sup>१८</sup> देव ।  
 सो सत्तु रयणसिहु<sup>१९</sup> खयरराउ ।  
 गयणगाइ तुम्ह मेहुणेउ<sup>२०</sup> पत्तु ।  
 नित्तिसपहारवियारियंगु<sup>२१</sup> ।

५

घत्ता—संभावियसयणु निसुणिवि<sup>२२</sup> वयणु आरोहनरेण संसाहिउ<sup>२३</sup> ।  
 उम्मुहलोयणेण<sup>२४</sup> विभियसेणेण<sup>२५</sup> सविसेसु मियके चाहिउ ॥११॥

१०

[ १२ ]

परियाणवि<sup>१</sup> फुडु मेहुट्टिएण  
 हयरेण<sup>२</sup> सरिसु किर<sup>३</sup> को य<sup>४</sup> वंधु

गयणगाइ पसंसिउ पत्थिवेण ।  
 को बिहुरमहामरे देइ खंधु ।

[ ११ ]

रत्नशेखर धायलशरीर ( व्रणितगात्र ) होकर अपने कृपाणसहित, आकाशसे भूमि-पर आ गया। इसके अनंतर पदातियोने अपने स्वामीको देखकर अपनी सेनामे ले जाकर स्वागत किया। वहाँ स्मरण करनेसे कवच व शस्त्रोंसे युक्त हाथी उपस्थित हुआ, और विद्याधरपति ( रत्नशेखर ) शीघ्र उसपर चढ़ गया। उस समय मृगांक राजाने अपने क्षोभरहित महावतसे पूछा—आकाशसे दर्पपूर्वक युद्ध करके आनेवाला यह कौन है? तब सवार (महावत) ने कहा—देव! विज्ञापन करता हूँ कि यह जो हत-विमान होकर भूमिपर आया है, वही तो हमारा शत्रु खेचरराज रत्नशेखर है; और वह दूसरा अवसर तथा वृत्तांत जानकर तुम्हारा साला गगनगति आया है। वह निर्दय प्रहारीसे विदीर्णशरीर होकर विमानमें मूर्च्छित पड़ा हुआ दिखाई देता है। महावतने जो कहा, उसे सुनकर और स्वजन ( गगनगति ) को जानकर आकाशकी ओर आले उठाये हुए मृगाकने विशेषरूपसे ( उसके लिए शुभ ) कामना की ॥११॥

[ १२ ]

इस बातको जानकर (गाढ)स्नेहवश राजा मृगांकने गगनगतिकी इसप्रकार प्रशंसा की—  
 इसके समान दूसरा कौन मेरा वंधु है? महान् आपत्तिमे कौन कंधा ( सहारा ) देता है, घनी

[ ११ ] १. व<sup>१</sup>सिहु । २. क ख ग ड<sup>२</sup>सत्तु । ३. क घ पायहि, उ पायहि । ४. उ णएवि ।  
 ५. घ<sup>५</sup>सिन्ने । ६. ड हुक्खु । ७. क<sup>७</sup>रण । ८. क ड थारि, घ सारि । ९. ड उडिउ । १०. ग ड तहि ।  
 ११. ड मयके । १२. व<sup>१२</sup>खडरोहु । १३. ख ग घ ड<sup>१३</sup>इ । १४. व विव्व<sup>१४</sup> । १५. ख ग<sup>१५</sup>सिहु । १६. व<sup>१६</sup>सर ।  
 १७. ख ग घ<sup>१७</sup>णउ । १८. क ड<sup>१८</sup>णु । १९. क ख ग ड<sup>१९</sup>यसंगु । २०. क ड<sup>२०</sup>अगु । २१. क ख ग घ<sup>२१</sup>णिय ।  
 २२. ख ग घ<sup>२२</sup>जंसा । २३. क ड जम्मुह<sup>२३</sup>, ख ग ज मुह<sup>२३</sup> । २४. क ड<sup>२४</sup>मणिणा ।

[ १२ ] १. क घ ड<sup>१</sup>णिवि । २. ख ग इयएण । ३. क किय । ४. क के य; ख ग घ कवणु ।

फलहीणु वि<sup>१</sup> वरतर छावबहु<sup>२</sup> मं<sup>३</sup> बिहु<sup>४</sup> कज्जत्थि<sup>५</sup> होइ सहलु ।  
 हियपण सरिसु जसु नत्थि मित्तु<sup>६</sup> तहो रल्लु रज्जुबंधनमित्तु ।  
 सुहिपहरदुक्खु<sup>७</sup> असहवण<sup>८</sup> चोइ<sup>९</sup> गइदु<sup>१०</sup> केरलनिवेण<sup>११</sup> ।  
 वलु-वलु<sup>१२</sup> हकारिच रयणचलु<sup>१३</sup> रे रे बड्डारिच<sup>१४</sup> कलहमूल ।  
 थामेण जेण लंघित<sup>१५</sup> समुद्धु<sup>१६</sup> विद्धसु हेसि दंसित रल्लु<sup>१७</sup> ।  
 आसंधवि<sup>१८</sup> मइ<sup>१९</sup> भगहि<sup>२०</sup> कुमारि लइ पहरु सेण तच करमि मारि ।  
 अट्ठिभट्टु<sup>२१</sup> खयरु कडुवयणविद्धु<sup>२२</sup> चोइ<sup>२३</sup> मयंगु धुव्वतच्चिधु ।  
 १० वत्ता-तक्खणे<sup>२४</sup> ओवडिय<sup>२५</sup> पेक्खिवि मिडिय रहकरितुरंग संकिण्णइ<sup>२६</sup> ।  
 निम्मलु<sup>२७</sup> छलु धरिवि<sup>२८</sup> रणु परिहरिवि ओसरियइ<sup>२९</sup> विणिण वि सेणइ<sup>३०</sup> ॥१२॥

[ १३ ]

तओ करि विणिण वि<sup>३१</sup> मेल्लियधाव<sup>३२</sup> परिट्ठिय<sup>३३</sup> राय-चडावियचाव ।  
 वलुद्धर<sup>३४</sup> केसरिविक्रमसार रसद्धिय-कद्धिय-संगरमार ।  
 रणगणसंगविलासियवच्छ छणिदुसमाणवरणणदच्छ ।

छायासे युक्त उत्तम वृक्ष फलहीन होने पर भी क्या कार्यार्थी विटके लिए सफल नहीं होता ? जिसका अपने हृदयके जैसा मित्र नहीं है, उसके लिए राज्य केवल एक रज्जु बाधनेका ही निमित्त है । सुहृदके ऊपर किये हुए प्रहारके दुःखको नहीं सहते हुए केरलनृपने अपने गजेंद्रको प्रेरित किया; और वापिस आओ ! वापिस आओ ! कहकर रत्नचूलको आह्वान किया । अरे ! अरे ! तूने बड़ा कलहका कारण बढ़ा रखा है । जिस स्थानसे समुद्र पार किया उस स्थानपर तूने देशको विध्वंस करके अपना रौरूप्य दिखलाया । तू अव्यवसाय करके ( अर्थात् बलपूर्वक ) मुझसे राजकुमारीको मांगता है, ले ! मेरा प्रहार ले ! इससे मैं तेरी मृत्यु कर डालता हूँ । ऐसे कटुवचनोंसे बिधक वज्रा उड़ते हुए अपने मातंगको प्रेरित कर वह खेचर ( रत्नखेचर ) (मुगांक राजासे) भिड़ गया । उस समय उन दोनोंको एक दूसरे पर झपटकर भिड़े हुए देखकर, रथ हाथी और तुरंगोंसे संकीर्ण दोनों सेनाएं निर्मल चातुरी करके युद्ध छोड़कर अलग-अलग हट गयी ॥१२॥

[ १३ ]

तब उन दोनों राजाओंने हाथीपर स्थित होकर चाप चढ़ाये हुए (एक दूसरे पर) धावा बोल दिया । वे दोनों ही प्रचंड बलको धारण करनेवाले केजरीके समान विक्रममे श्रेष्ठ, युद्धके रसिक व अनेक संग्रामोंके भारको खींच लेनेवाले थे । उनके वल्लस्थल रणांगन (युद्धभूमि) के साथ विलास करनेवाले थे, और उनके सुंदर मुखोंका तेज पूर्णचंद्रमाके समान था । उन्होंने डोरीकी

५. ख ग जे । ६. क घ ङ बहलु । ७. क घ ऊ त । ८. क बिह । ९. ख ग घ ङुव । १०. ख ग घ ङुव । ११. क ङ चोविउ । १२. क ङ गयदु । १३. क घ ङ केरण । १४. क चलु चलु । १५. घ ङ विउ । १६. क ङ य । १७. क ङ विवि, ङ विवि । १८. क मइ । १९. ख ग गे । २०. क ङ आमिदु । २१. ख ग ङ वणु । २२. घ चोइ । २३. क घ त खणे । २४. घ ओवडिया; ङ उवडिया । २५. क ङ णग, घ ङइ । २६. क ङ ल । २७. ख ग घरवि । २८. ख ग मइ । २९. घ सिद्ध । ३०. घ वलुद्धर ।  
 [ १३ ] १. क ङ मि । २. क मेल्लियइ । ३. ख घरट्ठिय, ग घरट्ठिय । ४. क वलुद्धर ।

टणक्कियदोर-निवेसियकंड  
डसंति नियाहर निटुरचित्त  
तण<sup>५</sup> व्व गणंति<sup>६</sup> परोप्पर कुट्ट  
धसक्किय घायहिं<sup>७</sup> विणिण<sup>८</sup> वि सेण<sup>९</sup> नहंगणि देव वि दूरि पवण्ण ।  
न जाणहुं<sup>१०</sup> संसपु थक्क<sup>११</sup> वरच्छि  
घत्ता—खंड-खंडु<sup>१२</sup> गयइं<sup>१३</sup> पहरणसयइं<sup>१४</sup> धय-चिघ<sup>१५</sup> कवय-सीसकइं<sup>१६</sup> ।  
दोहिं<sup>१७</sup> मि समवलइं<sup>१८</sup> पर-केवलइं<sup>१९</sup> नोसंगइं<sup>२०</sup> अंगइं<sup>२१</sup> थकइं<sup>२२</sup> ॥१३॥ १०

[ १४ ]

खयरें<sup>१</sup> जिणिवि न सक्किड जामहिं<sup>२</sup> मायाजुज्जु पसारिड सामहिं<sup>३</sup> ।  
घणु वाऊलि धूलि दावानलु<sup>४</sup> गज्जइ पलयजलहिं<sup>५</sup> पसरियजलु ।  
विजावलेण तिमिर उप्पायड तिन्वतण<sup>६</sup> भुवणु संताविड ।  
नहु गडयडइ धरणितलु फट्टइं<sup>७</sup> कुम्मकडाडु जेण<sup>८</sup> निव्वट्टइं<sup>९</sup> ।  
करणु देवि सत्यइं<sup>१०</sup> समचाइउ<sup>११</sup> धरिड मियकु राड करि वाइउ<sup>१२</sup> ।  
एम विरंभिचि<sup>१३</sup> भडसद्धलें<sup>१४</sup> वद्धु मियकु<sup>१५</sup> राड मणिचूलें<sup>१६</sup> ।

टंकार की, व उसपर बाण चढ़ाया एवं बैरियोंको डराकर ( वाणोसे ) प्रचंड मार करने लगे । दोनों ही निष्ठुर चित्त होकर अपने अधरोंको (क्रोधसे) काट रहे थे, व सूर्यकी किरणोसे पसीनेसे सिंच गये थे । परस्पर क्रुद्ध हुए वे दोनों एक दूसरेको तुणके समान गिन रहे थे, तथा घराघर अर्थात् पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वतके समान वीर एवं विजयाभिप्राय(अर्थात् विजय प्राप्ति) के लोभी थे । उनके आघात-प्रत्याघातोसे दोनों सेनाएं भयभीत हो गयी, और गगनांगनमें देव भी दूर हट गये । न जाने इनमें-से कौन विजयी होगा, इसप्रकारके संशयमें पड़ी हुई सुंदर आँखोंवाली विजयलक्ष्मी दोनोंके मध्यमें-से किसी एकको भी नहीं छू रही थी । सैकड़ों आयुध, ध्वजा-पताकाएँ, कवच और शिरस्त्राण खंड-खंड हो गये । दोनों ही समान रूपसे बलशाली, विलकुल अकेले-अकेले अपने-अपने शरीरके प्रति विलकुल निःसंग भावसे युद्धमे डटे रहे ॥१३॥

[ १४ ]

जब खेचर जीत नहीं सका तो उसने माया-युद्धका प्रसार कर दिया । बादल, आंधी, धूल और दावानल ( सब एक साथ ) जलके प्रसारयुक्त प्रलयजलधिसे समान गर्जन करने लगे । रत्नशेखरने विद्याबलसे अंधकार उत्पन्न कर दिया, और तीव्र आताप ( दाह ) से सारे भुवनको संतप्त कर डाला । आकाश गड़गड़ाने लगा और धरणीतल फटने लगा, जिससे (पृथ्वीको धारण करनेवाले) कूर्मका पीठरूपी कड़ाह उलटने लगा । पैतरा देकर उसने बलवान् मृगांक राजाको तो पकड़ लिया, और उसके हाथीको घायल कर दिया । इसप्रकार उत्कट साहसके द्वारा उस भटशार्दूल रत्नशेखरने मृगांक राजाको बाँध लिया । फिर उसको उठाकर

५. क ड वैरि । ६. क ख छ त । ७. क ड तिण । ८. क ड त । ९. ख ग वेण । १०. क ड विसण । ११. क ड हु, ख ग हो । १२. क ड थक्कु । १३. क ख डु । १४. घ चिडु । १५. क ड वकइ । १६. क ख ड दोहि । १७. क प खेवलइं । १८. ख इ ।

[ १४ ] १. क रे । २. ख ग वं हि । ३. क ड णलु । ४. ख ग वं जलहिं । ५. क ख ड तिन्वावण । ६. ख ग फु । ७. क ख ड णाड । ८. ड ट्टइं । ९. क ख ड म । १०. क व ड वाइउ । ११. क ख ग ड घायड । १२. ख ग धिय । १३. ख ग लइं । १४. ख म ।

- घञ्जि<sup>१५</sup> नियकरिवरि<sup>१६</sup> च्चाइवि  
 कडयहो बाहिरि इय रणु वट्टइ  
 अवमंतरि<sup>१७</sup> पुणु जंबुकुमारें  
 १० जे अन्निभट्ट<sup>१८</sup> महावहिनियडहो<sup>१९</sup>  
 जुज्झमाण ते दिसिहि<sup>२०</sup> भमाडिय  
 चलणलुलंत-अंतगुप्फाविय<sup>२१</sup>  
 रहिर<sup>२२</sup> कुसुंभग्ग सव्व वि राइय<sup>२३</sup>  
 रणवसुमइसेज्जहि<sup>२४</sup> सोवाविय  
 १५ यत्ता—पडिमडअसिवसेण<sup>२५</sup> खडियाकसेण<sup>२६</sup> रणमहिकडित्त<sup>२७</sup> विथिण्णड<sup>२८</sup> ।  
 अंकनिरंतरओ सकलंतरओ वीरेहिं सामिरिणु दिण्णड<sup>२९</sup> ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिणु सिंगारवीरे महाकब्बे महाकह्वेवयत्तसुयवीरिवरिइए डहय-  
 वलसंगाभो<sup>३०</sup> नाम<sup>३१</sup> छट्ठो संघी समत्तो<sup>३२</sup> ॥ संधिः ६ ॥

(अपने) हाथीपर डाल लिया, और अपने भुजबलकी श्लाघा करके तुरंत (वहासे) चल पड़ा । छावनीके बाहर इसप्रकार युद्ध हो रहा था, फिर भी सुभटोंका चित्त (अपनी-अपनी) विजयकी आशा नहीं तोड़ (छोड़) रहा था । और उधर छावनीके भीतर स्थिर-भुजबलशाली व खड्ग और फलक ( डाल ) को धारण करनेवाले उस कुमारके द्वारा उस महायोद्धा-सुभटके सन्निकट जो अष्टसहस्र विद्याधर आकर भिड़े, वे सबके सब युद्ध करते हुए पैनी तलवारके आघातोंसे आहत करके दिशाओंमें घुमा दिये गये ( अर्थात् चारों ओर भगा दिये गये व तितर-बितर कर दिये गये ) । उनके पैर काट लिये जानेसे ( बाहर निकली हुई ) आंतोंके गुल्फ बन गये, और विद्याधर सैनिक बसा एवं नसोंके कर्द्दममे निमग्न कर दिये गये । सभी रुधिरके रंगसे रंग दिये गये, तथा खेचरोंके कंबध(घड़)रूपी भृत्य नचा दिये गये । वे रणभूमिकी शय्यापर सुला दिये गये, एवं भटोकी सैकड़ों सीमंतिनियां रूला दी गयी । जिसप्रकार हारते जानेसे जूएके फलक-पर निरंतर बढ़ती हुई ऋणसूचक संख्याओंको सब्याज चुकाकर खडियासे मिटा दिया जाता है, उसीप्रकार रणभूमिरूपी फलकके समान विशाल ( महान् ) और निरंतर अंकोंवाले अर्थात् सतत बढ़ते हुए स्वामीके ऋणको वीरोने सब्याज चुकाकर शत्रुभटोकी ( उनको मार-मारकर छोनी हुई ) तलवारोरूपी खडियासे घिस दिया ( अर्थात् मिटा दिया ) ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा चिरचित्त 'जंबूस्वामीचरित्र' नामक इस शृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें दोनों सेनाओंका संग्राम नामक यह पद्य संधि समाप्त ॥ संधि ६ ॥

१५. घ घत्तिउ । १६ क ड पुणु करिवर । १७. घ भुयं । १८ ख ग तं पेविक्खि । १९. र ग ड ड्ह । २०. र ग घ चित्त । २१. ख पिट्ठइ । २२. ख ग अन्निं । २३ र ग व फर । २४. प्रतियोगे 'महावह' । २५. क णिणिवहहि; ख ग नियड्ढे; ड णिणिवहु । २६ क हे । २७. क ड पहारहि । २८. क घ ड गुप्फाविय । २९. घ इय । ३०. क ड रहिए । ३१. क ड राविय । ३२. क ड वसुमइ मेज्जहि, र सेज्जहे, घ सिज्जहि । ३३. ख ग सीमतणि । ३४. क ड पडिमडे अमिवसेण, घ असिवसेण । ३५. क ग ड कंसिण । ३६. क रणमडि; ग रणमज्झि । ३७ क ख ड विच्छिं, घ विच्छिन्नउ । ३८. घ दिन्नउ । ३९. र ग वल-समागमो । ४०. क व ड छट्ठा इमा संघी ॥ मवि. ६ ॥

संधि—७

[ १ ]

चिरकइकवामयमुहाणं<sup>१</sup> रडभंगरसणाणं<sup>२</sup>  
 सुयणाणं<sup>३</sup> मए वि कयं<sup>४</sup> अल्लयकसरकउकव्वं<sup>५</sup> ॥ १ ॥  
 अत्थाणुरुवभावो<sup>६</sup> हियए पडिफुरइ जस्स वरकइणो<sup>७</sup> ।  
 अत्थं फुडु<sup>८</sup> गिरइ निरा<sup>९</sup> ललियक्खरनेम्मिएहिं<sup>१०</sup> तस्स नमो<sup>११</sup> ॥ २ ॥  
 भावो तारो<sup>१२</sup> दूर<sup>१३</sup> अत्थस्स वि लडहमंडणं<sup>१४</sup> दूरे । ४  
 पयडेवि कहाकहणे<sup>१५</sup> अण्णं चिय का वि सा भंगो<sup>१६</sup> ॥ ३ ॥  
 इयं<sup>१७</sup> पाडिय खयरवले निमुणियं<sup>१८</sup> सयले दीसइ न को वि<sup>१९</sup> थिरसत्तउ<sup>२०</sup> ।  
 असिदाढइ<sup>२१</sup> धरेवि<sup>२२</sup> जगु संघरेवि खयकालु व वालु नियत्तउ<sup>२३</sup> ॥ ४ ॥  
 बोलवि<sup>२४</sup> खंधारु न जाइ जाम निज्जीणउ बलु रणे दिट्ठ ताम ।

[ १ ]

जिनके मुख प्राचीन कवियोंके काव्यामृतसे अतिशय भरे होनेसे, उनकी रसनाओंका रुचि भंग हो गया है, ऐसे सज्जनोंके (स्वादको बदलनेके) लिए मेरे द्वारा भी आद्रक (आदी)के फूलकी कलीके समान भिन्न व चटपटे स्वादसे युक्त यह काव्य रचा गया ॥ १ ॥ जिस श्रेष्ठ कविके हृदयमें अर्थानुरूप भाव प्रतिस्फुरित होता है, और जिसकी नितांत ललिताक्षरोंसे परिमित (निर्मित) वाणीसे अर्थ स्फुट होता है (अर्थात् स्पष्टतासे प्रकट होता है), उसके लिए नमस्कार है ॥ २ ॥ (काव्यमें) अति ऊँचा भाव (स्थापित करना) बहुत दूर (दुष्कर) होता है; अर्थका सुंदर (व सुकोमल और चतुर) मंडन और भी दूर (दुष्करतर) होता है; इन दोनोंको प्रकट कर (अर्थात् अति ऊँचा भाव और अर्थका सुंदर कोमलकांतपदावलीसे मंडन करके) कथा कहनेकी वह कोई अन्य ही (अद्भुत) विधा है ॥ ३ ॥

इसप्रकार खेवर सैन्यको मारकर गिरा दिया गया, यह सुनकर सब विद्याधरोंमेंसे वहाँ कोई भी स्थिर-सत्त्व अर्थात् धैर्यको स्थिर रख सकनेवाला दिखाई नहीं दिया । अपनी तलवाररूपी दाढमें पकड़कर, (विद्याधर) लोगोंको मारकर, प्रलयकालके समान वह बालक वापिस लौटा ॥ ४ ॥ जबतक जंबूकुमार स्कंधावारको पार करके जा भी

[ १ ] १. क ड चिरकवि; क ख ग ड कवामयमुहेण; घ कव्वममेयं । २ क रडभंग; घ रडभंगं वि सरसणाणं । ३. क ड सुदण्णेण, ख ग सुण्णेण । ४. क ख ग ड कए । ५. घ अल्लयसकरजियं कव्वं । ६. ख ग ड अत्थाणं । ७ क ख ग ड वीरकइणा, घ वइकइणा । ८. घ पि । ९. घ में 'निरा' नहीं । १०. घ ललियक्खरहिं नेम्मिए । ११. क ख ग ड मणो । १२. क ख ग ड ता, घ तारे । १३. क ख ग ड दूरयर; घ में 'दूर' नहीं । १४ घ वण्णणं । १५ क ड में इस पंक्तिके उपरांत एक अधिक पंक्ति इस प्रकार है—इययरे चले निज्जण सयले दीसइ न को वि थिर थिर मत्त । १६ क ड अणाविय सा भंगी । १७. क घ ड में 'इय' नहीं । १८ ख ग झुणे; घ झुणि । १९. क ड कोइ । २० क ड मत्तउ । २१ क ड दाढइ, घ दाढई । २२ क ड धरेवि । २३. ख ग घ निहं । २४. ख ग वालु वि ।



- १० <sup>२५</sup>रुहिरनइसोत्ते छत्तई<sup>२५</sup> तरंति  
<sup>२७</sup>सं-तिचचित्तभूयई<sup>२७</sup> रमंति  
 सिव-घार<sup>३१</sup>-गिद्ध-वायस<sup>३२</sup> भमंति  
 कथई<sup>३४</sup> भड्ड पडिउ पसारियंगु  
 तं नियवि<sup>३६</sup> गाढठियलउडिहत्थु
- १५ भड्ड को वि पडिउ दिहोकरालु  
 कर<sup>३८</sup> कहिं मि<sup>३८</sup> भड्डो मणिवलयवंतु  
 तं सेवई<sup>४२</sup> डाइणि नरवसाई<sup>४३</sup>  
 फाडियकुंभत्थल<sup>४६</sup> दिण्णसंक<sup>४७</sup>  
 कथई<sup>४८</sup> विहत्थपल्लानसार<sup>४९</sup>
- २० खंडियधुर-संदण-मोडियक्ख  
 घत्ता—चित्तइ चरमतणु किउ केण रणु  
 सइइ भयावणउ<sup>५४</sup> बहुरसघणउ<sup>५५</sup> णं वइवसभोयणमंदिरु ॥ १ ॥
- मत्थिक्कमास-<sup>५६</sup>वसवह झरंति<sup>५७</sup> ।  
 डाइणि<sup>५८</sup>-वेयालसयई<sup>६०</sup> कमंति ।  
 मच्छियसंघायई<sup>६३</sup> लमछमंति ।  
 मुग्गरपहारहउ<sup>६५</sup> अकयवंगु ।  
 आसण्णु न दुक्कइकायसत्थु ।  
 जाणई<sup>६७</sup> जियंतु वीहई सियालु ।  
 चन्वंतिह<sup>६९</sup> भग्गु डसंति<sup>७०</sup> दंतु ।  
 भल्लक्किमुहाणलसम<sup>७२</sup>-रसाई<sup>७५</sup> ।  
 कणियकर दीसहिं करिकरंक ।  
 पल्लहत्थ<sup>७७</sup> तुरंगम सासवार ।  
 निव्वट्ठिय दीसहिं<sup>७९</sup> देउ<sup>८०</sup> लक्ख ।

नही पाया, तबतक उसने रणमें विजित हुए सैन्यको देखा । वहाँ रुहिर नदीके स्रोतमे छत्र तैर रहे थे, तथा मथित हुए मांस और बसाके प्रवाह ( झरने ) झर रहे थे । भूत-पिशाच संतृप्तचित्त होकर आनंद मना रहे थे, और सैकड़ो डाकिनियाँ व वैताल उछल-कूद मचा रहे थे । शृगाली, चील, गिद्ध और वायस(कौवे) भंडरा रहे थे, व मक्खियोंके झुंडके झुंड भिन-भिना रहे थे । कहीं कोई भट अपने शरीरको पसार पड़ा था, जिसके अवयव मुद्गरके प्रहारसे आहत होनेपर भी विकृत नहीं हुए थे । उसके सुदृढ़ लकुटियुक्त हाथको देखकर काकसमूह पासमें नहीं आता था । कोई भट आँखोको भयानकतासे फाड़े हुए पड़ा था, उसे जीवित समझकर सियार भयभीत हो रहा था । कहीं किसी भटके मणिवलय-युक्त हाथको काटकर चबाती हुई शृगालीके दात ही टूट गये थे । वहाँ कोई डाकिनी मनुष्योंको बसा तथा शृगालीके मुखागलके समान लाल-लाल रसावो ( रक्तवाहक घमनियो ) को से रही (अर्थात् खा रही) थी । कहींपर विदीर्ण कुंभस्थलोसे गका (भय) उत्पन्न करनेवाले तथा सूँड़ कटे हुए हाथियोंके धड़ पड़े हुए दिखाई दे रहे थे । कहींपर जिनके श्रेष्ठ पर्याण (पलान) जुदा हो गये थे, ऐसे घोड़े सवारोसहित मरे पड़े थे । कहींपर भग्न-धुरा और टूटे हुए जूएवाले लालों रथ उलटे हुए एवं हेतु नामक शस्त्र पड़े हुए दिखाई दे रहे थे । तब वह चरमवारी ( इसी जन्ममे निश्चयसे मोक्ष जानेवाला ) कुमार सोचने लगा—किसने ऐसा युद्ध किया है, जो हाड़ी व रंडों (धड़ो) के विस्तारसे युक्त होनेसे ऐसा लग रहा है, मानो यह वैवस्वत(यमराज)का हाउं व रंडोंसे वैभवशील, भयानक एवं बहुत अधिक रक्तरूपी रससे युक्त भोजनगृह ही हो ॥ १ ॥

२५ क ड नइसोनिच्छत्तइ । २६ ग वस पज्जरति । २७ क र ग ट मंतत् । २८ क ट नूगद । २९ ड डायणि । ३० क ड वेयालइ सड । ३१ र ग घाय, ट घार । ३२ क ट वाउम । ३३ र ग मघायड । ३४ क ड वि, घ डं । ३५ क ट हूउ । ३६ क ड गाटवियं । ३७ क ड उं । ३८ क ड कहु वि, घ कहो वि । ३९ क ड तिहिं, र ग तिहिं, व तिहिं । ४० ग टमति, घ ट टमति । ४१ घ ति । ४२ क ड सेयइ । ४३ ग ड वनाड, घ वमाए । ४४ व ट मुहाणं, र ग महाणं । ४५ क ड रसाइ । ४६ र पाडियं । ४७ घ दिन्नं । ४८ व डं । ४९ र ग घ त्रित्तं । ५० घ पणप । ५१ र ग हिं । ५२ र ग रहे य । ५३ क घ ट हेव, क ट विच्छत्ति । ५४ घ णउ । ५५ र ग डं ।

[ २ ]

जंतेण रणगणमज्जे तेण  
 बहुपहरणसव्वणवाहणाई  
 एकहि<sup>१</sup> बले सुम्मइ<sup>२</sup> विजयसद्धु  
 एकहि<sup>३</sup> बले मंगलतूरवज्जु  
 एकहि<sup>४</sup> बले छत्तई<sup>५</sup> भावियाई<sup>६</sup>  
 एकहि<sup>७</sup> बले चिंधई<sup>८</sup> उन्मियाई<sup>९</sup>  
 अवलोयई<sup>१०</sup> विभियचित्तु जाम  
 दीसइ कुमार<sup>११</sup> जयसिरिय संगु<sup>१२</sup>  
 सरसवसोहालियमंडलगु  
 अहोअहो कुमार<sup>१३</sup> पई<sup>१४</sup> सुयवि<sup>१५</sup> कवणु  
 बरि एक्कु जि केसरि नहरसार<sup>१६</sup>  
 बरि एक्कु जि दिणमणि गयणपवहु<sup>१७</sup>  
 बरि एक्कु जि बडवानल<sup>१८</sup> विरुहु  
 बरि एक्कु जि गरुड<sup>१९</sup> झडप्पसालु

दिट्ठाई<sup>१</sup> नवर दूरंतरेण ।  
 सुयसेसई<sup>३</sup> वेणिण वि साहणाई ।  
 अण्णेकहि<sup>५</sup> हा-हा-रव-निनद्धु ।  
 अण्णेकहि<sup>७</sup> रोविज्जइ संलज्जु ।  
 अण्णेकहि<sup>९</sup> पुणु मउलावियाई ।  
 अण्णेकहि<sup>११</sup> महिहि<sup>१२</sup> निसुंभियाई<sup>१३</sup> ।  
 सविमाणु गयणगइ आउ ताम ।  
 रिउरुहिरतुसारतिडिकियणु ।  
 विज्जाहुरु तो वण्णणई<sup>१५</sup> लग्गु ।  
 एक्केल्लउ<sup>१६</sup> जि बहुखयरदवणु<sup>१७</sup> ।  
 मं करिमेलावउ गज्जिफार<sup>१८</sup> ।  
 मं सं<sup>१९</sup> खज्जोययकीडनिवहु<sup>२०</sup> ।  
 मं सं<sup>२१</sup> रयणायरजलसमूह ।  
 मं विसहरसंघु<sup>२२</sup> महाफणालु<sup>२३</sup> ।

[ २ ]

जाति हुए उसने समरांगणमें दूरसे ही बहुत प्रहारोसे घायल हुए वाहनो(हाथी, घोड़े आदि) वाली दोनो मृतप्रायः (मृतशेष, मृतकशेष) सेनाओको देखा, (और देखा कि) एक सेना-में विजय (सूचक) शब्द सुनाई पड़ रहे थे, दूसरी ओर हाहाकारका निनाद हो रहा था; एक सेनामें मंगलतूर्य नज रहा था, दूसरी ओर लज्जापूर्वक रोया जा रहा था; एक सेनामें छत्र लगाये जा रहे थे, दूसरी ओर संवलित किये जा रहे थे; एक सेनामें ध्वजचिह्न उड़ रहे थे, व दूसरी ओर पृथ्वीपर गिरे हुए थे; जब तक कि वह विस्मितचित्तसे यह सब देख ही रहा था, तब तक विमानसहित गगनगति आ गया । विजयश्री-समवेत जंबूकुमार रिपुओके रुधिरकर्णोंके छींटोंसे युक्त दिखाई दे रहा था । तब सर्षप ( सरसो ) के समान नील शोभावाले तलवारसे युक्त वह विद्याधर (इसप्रकार) कुमारके वर्णन (स्तुति) में लग गया—धन्य हो कुमार ! तुम धन्य हो ! तुम्हें छोडकर दूसरा कौन अकेला ही अनेक खेचरोका दमन करनेवाला है ? नखोंके पराक्रमसे युक्त एक केशरी ही श्रेष्ठ है, महान् गर्जन करनेवाला हाथियोका मेला (झुंड) नहीं । गगनमें प्रवहमान एक दिनमणि ( सूर्य ) ही श्रेष्ठ है, खद्योतक कीड़ोका बहुत बड़ा समूह नहीं । बड़ा हुआ एक बडवानल ही श्रेष्ठ है, रत्नाकर(सागर)का अतिशय जलसमूह नहीं ।

[ २ ] १ क दिट्ठइ । २ ख ग वार । ३ क सिसइ, ड सुय । ४ घ हिं । ५ ख घ ड । ६ घ अन्निकहिं । ७ क ड रत्त । ८ क ड णिणद्धु । ९ क ड वज्ज । १० घ मामिं । ११. ख ग घ व्हि । १२. क ख ग ई । १३ ड याइ । १४. ख ग घ हिं । १५ क घ ड लोयइ, ख ग लोवइ । १६. ख ग सिरिपसगु । १७. क ड तिरिवकं । १८. ख ग सरसव । १९ ख ग ण्ह; घ वत्तणह । २०. क पइ । २१ क ड मुइवि । २२. क घ ड एक्कं । २३. घ वरखयर, क घ ड दमणु । २४. क गहरे । २५. ग पार । २६ क ड पड्ड, ग प्पवहु । २७. क ख ग घ म । २८. क घ ड खज्जोयय, ग खज्जोयय । २९ क ड णल्लु । ३०. क ड ड । ३१ क ड विसहरइ । ३२ क ड फडालु ।

१५ घत्ता—अट्टसहसपरह<sup>३३</sup> विज्जाहरहं एकल्लएण पइ<sup>३४</sup> रणे पइय ।  
अम्हइ<sup>३५</sup> काउरिस<sup>३६</sup> इय वलसरिस एवडावत्थहे<sup>३७</sup> पुणु गय ॥२॥

[ ३ ]

तउ दूवालावपयट्ट<sup>३८</sup> समइ रिउसहइ<sup>३९</sup> नियच्छवि<sup>४०</sup> पहरडमरु<sup>४१</sup> ।  
हेरियहि<sup>४२</sup> मियंकहो कहिउजाम सन्नहवि<sup>४३</sup> सो वि नीसरिउ ताम ।  
इय जुज्जियाइ<sup>४४</sup> सेण्णइ<sup>४५</sup> सुयाइ<sup>४६</sup> खिण्णइ<sup>४७</sup> मिण्णइ<sup>४८</sup> छिण्णइ<sup>४९</sup> लुयाइ<sup>५०</sup> ।  
अन्निमट्टइ<sup>५१</sup> मइ<sup>५२</sup> रणे मणिसिहासु चूरिउ विमाणु भोगरेण<sup>५३</sup> तासु ।  
५ तेण वि असिधाए<sup>५४</sup> वच्छु मिण्णु<sup>५५</sup> जुज्जंतक हुव<sup>५६</sup> मुच्छाप्र<sup>५७</sup> दिण्णु ।  
आलग्गु<sup>५८</sup> मियंकु वि<sup>५९</sup> तज्जिऊण मायाजुज्जेण परज्जिऊण<sup>६०</sup> ।  
वंदिग्गह<sup>६१</sup> लइउ<sup>६२</sup> महानुभाव ग्रहु दीसइ रिउवल विज्जउसाउ ।  
अम्हान सेणि<sup>६३</sup> पुणु भग्गसोह नायक<sup>६४</sup> विणु कि करहि<sup>६५</sup> जाह ।  
अचभंतरे पइ<sup>६६</sup> जुज्जंतियाहु<sup>६७</sup> इय बाहिरि रणविस्तंतु जाव ।  
१० इह<sup>६८</sup> कालहो थिर-पडिबन्नचित्त<sup>६९</sup> पइ<sup>७०</sup> सुयवि<sup>७१</sup> अम्ह के हियपरित्त ।

झपट मारनेवाला एक गरुड हो श्रेष्ठ है, महाफणाटोपवाला विपधरसमूह नहीं। तुमने अष्ट सहस्र विद्याधरोको रणमें अकेले ही मार डाला। हम लोग कापुरुष है, हमारा ऐसा ही बल है जिससे ऐसी अवस्था (पराजय) को प्राप्त हुए (अथवा हम लोग कापुरुष हैं, जो एतदसदृश बलवां होते हुए भी ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुए) ॥२॥

[ ३ ]

दूतरूपमें तुम्हारे आलाप(कहा-सुनी)से युद्ध प्रारंभ हुआ देख, और रिपुसभामें प्रहारका डंका बजते हुए देखकर जब गुप्तचरोने मृगांको यह बतलाया, तो वह भी संनद्ध होकर निकला। अथानंतर लड़कर सेनाएँ मरी, भोकग्रस्त हुई, छिन्न-भिन्न हुई और काटी गयी। मैंने रणमें रत्नशेखरसे भिड़कर मुद्गरसे उसका विमान तोड़ डाला। उसने भी तलवारके आघातसे मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया और युद्ध करते-करते ही मुझे मूर्च्छित कर दिया। मृगांक भी उसकी भर्त्सना करके उससे भिड़ गया। माया-युद्धसे (उसको) पराजित करके (यह रत्नशेखर) उस महानुभावको बंदीग्रहमें ले गया। यह शत्रु सेनामें विजयका उत्साह दिखाई दे रहा है, और डघर हमारी (सेनाकी) शक्ति घोषाहीन दिखाई देती है। नायकके बिना योद्धा क्या करें? तुम्हारे (छावनी के) भीतर युद्ध करते समय, (छावनीके) बाहर रणमें इसप्रकारका वृत्तांत घटित हुआ। इस अवसरके लिए, हे धीर व हितपरायण

२३. ड पडह । २४. ग पए । २५. क ड ह । २६. क ड कापु । २७. व थयरो ।

[ ३ ] १. र ग व दूवालाव, र ग पयट्ट । २. क घ ड ग । ३. र ग व चिछवि । ४. र ग घ पट्ट । ५. र ग व थिह । ६. क ड मण, र ग मण्णिहि । ७. व नट । ८. घ ड ह । ९. र ग ग ड मट । १०. व भुग । ११. क थिग । १२. र ग व चिछ नि; व वच्छ छिण्ण । १३. र ग ग ग । १४. व ड । १५. क ड मियंकु । १६. क पग्गि । १७. क ड लयड । १८. र ग ग मण, व मा । १९. व नाउविक । २०. क ग घ ड हि । २१. क ग ग ड पट । २२. र ग ग निमाड, व निमाड । २३. क ड टय । २४. क ड पडिबन्न । २५. ड पट । २६. क ड सुयवि ।

जाणिज्झ एवहि<sup>२०</sup> भुवणसार<sup>२०</sup> सुहृदत्तणं अवसरु तत्त कुमार ।  
गुरुआसए<sup>२१</sup> आणिड<sup>२१</sup> कहवि<sup>२१</sup> कज्जु लइ सहलमणोरह<sup>२२</sup> होहु सज्जु<sup>२२</sup> ।

घत्ता—साइय कसर<sup>२३</sup> डरु गरु मुडिर्वि<sup>२४</sup> भरु सो घवल-धुरंधर उद्धरि ।  
कज्ज विणासियए अम्हई<sup>२५</sup> नियए<sup>२५</sup> जं जाणहि<sup>२५</sup> तं वंधव<sup>२६</sup> करि ॥१॥

[ ४ ]

मालागाहो—नहकुलिसदलियमायंगतुंगकुंभयलगलियकीलाललित्तमुत्ताहलोह

विपुलियकविलकेसरकलावधोलंतकंधरुहेसा ।

रुंजंति ताम<sup>२७</sup> सीहा ताम<sup>२७</sup> न सरहं पलोयंति ॥१॥

नियघरिणिवासहरसंठिएहि<sup>२८</sup> कोरंति भडयणुल्लावा ।

ते नवर के वि विरला जे सुहिक्कं समर्पति ॥२॥

५

परकज्जभारधुरधरणगरुयनिहसणकिणंकदिठखंधा ।

दो सिणिण जए पुरिसा अहवा एको तुमं चेव ॥३॥

हृदयवाले कुमार ! तुम्हें छोड़कर ( अब ) हम लोगोंके हृदयका आश्रय और कौन है ? लोकके सारभूत ( लोकमें श्रेष्ठ ) हे कुमार ! अब यह समझिए कि यही तुम्हारे सुभटव(को प्रगट करने )का अवसर है । बड़ी आशासे कार्य( प्रयोजन ) वतलाकर तुम यहाँ लाये गये हो, तो हे सफल मनोरथ (कुमार) ! अब तैयार हो जाओ । अघम वैल डर लेकर (अर्थात् डरकर) भारको भग्न करके( अर्थात् कार्य नष्ट करके ) भाग गया । हे धुरंधर नरवृषभ ! ( अब ) तुम्हीं उसका उद्धार करो, और कार्य विनष्ट हुआ देखकर, हे बांधव ! जैसा समझो वैसा करो ॥ ३ ॥

[ ४ ]

नखरूपी वज्रसे विदीर्ण किये हुए मदमाते हाथियोंके उत्सुग कुंभस्थलोसे गलित रुधिर-लिप्त मुक्ताफलसमूहसे विस्फुरायमान कपिल-केशर-कलाप जिनके स्कंधप्रदेशपर लहरता है ऐसे सिंह तभी तक दहाड़ते हैं जबतक कि शरभको नहीं देखते ॥१॥ अपनी-गृहिणीके वासगृहमें बैठे हुए लोगोंके द्वारा बहुत भटजनोचित संभाषण (कथन) किये जाते हैं (अर्थात् पत्नीके सामने सभी लोग अपनी बहादुरीका बड़ा बखान करते रहते हैं) परंतु ऐसे लोग निश्चयसे अति विरले होते हैं जो सुहृदके कार्यको संपन्न करते हैं ॥२॥ दूसरेके कार्यभारके धुरे अर्थात् जूएको धारण करनेसे उसके गुस्तर धर्षणसे जिनके बलिष्ठ कंधे किणयुक्त ( चिन्हांकित ) हो गये हैं, ऐसे लोग जगतमें

:२७ क ड एमहि; ग<sup>२७</sup>हि । २८. ख भुवण<sup>२८</sup> । २९ क व आसइ, ड आसइ । ३०. ख ग घ ड उं । ३१. ग कहिवि । ३२ क रु हुंनु अं; ख व होतु अं । ३३ ख ग घ ड र । ३४. ख ग मुडिउ । ३५ क इ । ३६ घ इ । ३७ ख ग घ हि । ३८ क वघु ।

[ ४ ] १. ख ग तुंगं । २. क ड ताव । ३. क ड जाव । ४ ख ग नियघरणीं, ग संठियहि; ड संठियहि । ५. ख ग धुरधवलणं, क घ ड गरुअं ।

- ताम तं खेयरालाव कहियवरं  
 रोसतुलियासिहस्थो तयो बोलए<sup>१</sup>  
 १० कवणु सुरदंविदेहिं हिंदोलए  
 को कमतेण संहैण सहुं कोलए<sup>२</sup>  
 नाहिपंकयदलं हरिहिं<sup>३</sup> को तोढए  
 को सिचकं धरेऊण वंदिगहे  
 गज्जमाणे<sup>४</sup> कुमारन्मि केरलवलं  
 १५ जुञ्जभावेण रावेण<sup>५</sup> हुकारियं  
 पहरफुट्टं<sup>६</sup> विहडफढं धावियं  
 जंबूसामी सुणैऊण वित्तंसर<sup>७</sup> ।  
 कालकवलन्मि परिकलिउ को बोलए<sup>८</sup> ।  
 जमतुलाजडे अप्पाणु को तोलए ।  
 विसहलं को वि निचववणि<sup>९</sup> निपीलए ।  
 वसहसिगं वियक्खत्स को मोढए ।  
 केम निविसं<sup>१०</sup> पि जीवेइ महु विगहे ।  
 गयणाइणां<sup>११</sup> भमाडेइ वीरंवलं ।  
 धरियं<sup>१२</sup> पढुपरिहवेण खरंत्वारियं ।  
 जत्थ जंबुलुमारो तहिं पावियं<sup>१३</sup> ।  
 सग्गिणानाम छंदो ॥

धसा—जं संसिय जिउ<sup>१४</sup> मुयउ व थियउ<sup>१५</sup> तं नियवि कुमारुदीविउ<sup>१६</sup> ।

विजयासह नियउ आसासियउ श्लु नावइ पच्छुजीविउ<sup>१७</sup> ॥४॥

[ ५ ]

पुणु वि बले बलिए<sup>१</sup> ससिधवलपसरियजसे ।

दो ही तीन हैं, अथवा अकेला तू ही है ॥३॥ इसप्रकार खेचरके कहे हुए कथांतर ( वृत्तांत ) को चुनकर जंबूस्वामी रोपपूर्वक हाथमें तलवार उठाये हुए बोला—कालके प्राप्त ( मुख ) में आनेपर कौन जा सकता है ? देवताओंके हाथी ( ऐरावत ) के दांतोंसे कौन झूल सकता है ? यमके तुलादंडमें अपनेको कौन तौल सकता है ? आक्रमण करते हुए सिंहके साथ कौन झोड़ा कर सकता है ? विषफलको अपने मुंहमें कौन चबा सकता है ? हरिके नाभिकमलको कौन तोड़ सकता है ? अश्व ( त्रिनेत्र-महादेव ) के वृषभके सीपको कौन भग्न कर सकता है ? ( और ) मृगांको बंदीगृहमें रखकर मुससे युद्ध करके निमेष मात्र भी कौन जी सकता है ? कुमारके इसप्रकार गर्जना करने पर गगनगतिने ( अपनी ) सेनामें चोराबल ( युद्ध सूचक झंडा ) घुमाया और स्वामीके परानवसे वैजैन सेनाके लिए धावपर नमक छिड़कनेके समान तिलमिला-हुट उत्पन्न करते हुए युद्धाशयको प्रकट करनेवाले स्वरसे सेनाको ललकारा, तथा प्रहारांसि विदीर्ण हुआ सारा सैन्य शीघ्र दौड़कर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँ प्राप्त हुआ । जो सैन्य केवल जीवित (श्वासोच्छ्वास) मात्र शेष हुआ मरे जैसा पड़ा था, वह कुनारको देखकर उद्गेषित (उत्साहित) हो गया, और स्वयंकी बिजयासासि आश्वस्त होकर नानो पुनरुज्जीवित हो उठा ॥ ४ ॥

[ ५ ]

चंद्रमाके सनाम बल एवं विस्तीर्ण यद्य बाले सैन्यके पुनः बल पड़नेपर उस संग्राम

६. घ ड चित् । ७. ख ग बोलए । ८. ख डोलए, ग घ बुलए । ९. क ड लीं; ख ग तो । १०. घ नि ए वं । ११. क ख ह हिं । १२. क ड चित्तं; ख ग जेवमं, घ निमित्तं । १३. क ड भाण । १४. ख ग गय्या । १५. ख ग राएण । १६. क ख ग घ धरिय । १७. घ डुट्टव । १८. क ड ज्जा । १९. ख ग नं छंद नाम नह्णिं । २०. क ड भुवट्टियउ, ख ग भुं वि डिं; घ भुवट व थिं । २१. क ड होरियउ । २२. क ड ज्जोवियउ ।

[ ५ ] १. क ड थ ।

समररसभरिय-मडफुरिय-वण-वस-रसे ।  
 करडि-करडयल<sup>१</sup>-परिवडिय<sup>२</sup>-दर-मयजले ।  
 गयणवह-पहय-फरहरिय-धुय-धयवडे<sup>३</sup> ।  
 चलणभरदलण<sup>४</sup>-दमदमिय-रणमहियले<sup>५</sup> ।  
 निविड<sup>६</sup>कडयडिय<sup>७</sup>-मडमड-उर-सिर-नेले ।  
 गुडि<sup>८</sup> करि-पवरि<sup>९</sup> थिरि चडिउ पहरणमुओ<sup>१०</sup> ।  
 समर परियरवि<sup>११</sup> थिउ नवरि<sup>१२</sup> जिणवह सुओ ।  
 नियवि धलु पवलु खयविसम-वइवसनहो ।  
 वलिउ<sup>१३</sup> खयरवइ तड भिडिउ रणे मणिसहो<sup>१४</sup> ।  
 उहयवलमिलणपडिखुहियजलयरवल<sup>१५</sup> ।  
 समय-तडफिडवि<sup>१६</sup> झलझलइ जलनिहिजल<sup>१७</sup> ।  
 दुरय-करि-सुहड-रह<sup>१८</sup>-फुरियरुइपहरण ।  
 गिलइ तिहुवणु व कलयलण<sup>१९</sup> पुणरवि रण ।

चत्ता-सुमारियपहुफलइ<sup>२०</sup> कियकुलछलइ<sup>२१</sup> कलिकालकयंतमरइ<sup>२२</sup> । १५  
 धुनिवरधयवडइ<sup>२३</sup> जयलंपडइ<sup>२४</sup> पुणु उहयवलइ<sup>२५</sup> अविमटइ<sup>२६</sup> ॥५॥

( स्थल )में जहाँ कि वीर रससे भरे हुए भटोंके फूटे हुए व्रणोंसे वसा एवं रस अर्थात् लोह वह रहे थे, और जहाँ कि हाथियोंके गंडस्थलोंसे थोड़ा-थोड़ा मद चूर रहा था, एवं आकाश-पथ-(गामी)अर्थात् वायुसे आहत होकर चंचल ध्वजपट फहरा रहे थे, और जहाँ कि चरणोंके भारसे दलित हुई रणभूमि दम-दमा उठी थी, तथा जहाँ ( वायल ) भटोंके आपसमें टकराते हुए मुकुट, सिर व उरस्थल और पैर कड़कड़ा रहे थे, वहाँ बर्म एवं कवच युक्त श्रेष्ठ हाथीपर बढ़कर, हाथोमे शस्त्र धारण करके युद्ध( स्थल )का पूरा चक्कर लगाकर जिनमतीका पुत्र ( जंबूस्वामी ) ( एक स्थान पर ) खड़ा हो गया । ( युद्धके लिए उद्यत ) प्रबल सेनाको देखकर, प्रलयकर रौद्ररूप वैवस्वत( यमराज )के समान मयानक वह खेचरपति रत्नशेखर वापिस लौटा और रणमें भिड़ गया । दोनों सेनाओंके मिलने ( भिड़ने)से जलचर समूह क्षुब्ध हो उठा और जलनिधिका जल अपने मर्यादा तटका उल्लंघन करके झलझला उठा । तुरग, हस्ति, सुभट, रथ और चमचमाते हुए कांतिमान शस्त्रोंसे कलकल (कोलाहल) युक्त होता हुआ वह युद्ध पुनः त्रिभुवनको लीलने लगा । प्रभुके फलों अर्थात् कृपापूर्वक किये गये उपकारों-का स्मरण करके अपनी कुल परंपरागत चतुराई ( युद्ध कौशल )को प्रकट करते हुए, कलिकाल एवं कृतांतके समान गर्वीले तथा जयलंपट ( विजयलिप्सु ) वे दोनों सैन्य पुनः भिड़ गये ॥५॥

२. क घ णर । ३. ख ग पडि । ४. ख ग घ चले । ५. क ख ग घ ड चरण । ६. घ थले । ७. ख ग निवड । ८. ख पडिय । ९. क ड थ । १०. ख ग र । ११. क ङ भुवो; ग भुवो । १२. क ङ थरिवि । १३. घ र । १४. ख ग च । १५. क ड मण । १६. ख ग घ चले । १७. क ङ तडिफिडिवि; घ तडि । १८. न रड । १९. क ड थलिय । २०. क इ । २१. ख ग घ ठिय; घ छलइ । २२. क ङ कियत । २३. ख ग पुणुचमय; क वलइ ।

[ ६ ]

- तथो य संजायं महादंडजुञ्जं । जुञ्जतपत्ति कौतङ्ग-खग्गो-<sup>१</sup>वावल्ल-भल्ल-सव्वल-  
<sup>२</sup>मुसुंदिविणिहम्ममाण अण्णोण्णं<sup>३</sup> । अण्णोण्णंदं सणारुद्धं<sup>४</sup> निट्ठवियमिट्ठसुण्णा-  
 सणमिलंतमत्तमार्यं<sup>५</sup> । मार्यंगदंतसंधट्ठनिहसणुद्धंतं<sup>६</sup> हुयवहफुल्लिगपिगलियसुर-  
 वहुविमाणं । सुरवहुविमाणसंल्लण्णंगयणदूरप्पयंतपडिल्लगकोडिखडक्खियवीर-  
 ५ करवालं । वीरकरवालफालिज्जमाणं<sup>७</sup> कुंजर-तुरंग-सुहडंग-गारुयकल्लोवाहपज्जरिय-  
 कोलालं<sup>८</sup> । कोलालवाहिणीवेयपवहावियनिज्जंतकंचाडणी<sup>९</sup> -विसालं<sup>१०</sup> -करयल-  
 कवालकुट्टलगां<sup>११</sup> -धावमाणजालामुहकरालवेयाळं । वेयाळविरसमुक्कहाससंत-  
 ट्ठभीसं<sup>१२</sup> -भजंतगयवडाचरणचप्पणोसरियं<sup>१३</sup> -सेण्णकोलाहलपूरियदियंतं । दियं-  
 तपसरंतासवारतरलतरवारितासणासंतं<sup>१४</sup> -कायरदंसणुच्छहियवरसुहडं ।<sup>१५</sup> वर-  
 १० सुहडहत्थपरिभमिरलउडिदंडप्पहारचूरिज्जमाणनरवरकरोडि-<sup>१६</sup> -कडुकडकारसह-  
 जूरंतकावालियसमूहं । कावालियसमूहकरक्तियाकप्पणकडक्खियसुरसुंदरी-  
 संरक्खिय-उच्चंतनयणोल्लियसामंतकुमरं । सामंतकुमरपुज्जसंमाणदाणपरिपूरिय-

[ ६ ]

तब वहाँ महान् सैन्य-युद्ध हुआ । जूझते हुए पदाति कुंत, खड्ग, वावल्ल ( वल्लम ? )  
 भाले, सव्वल, और मुसुंदि नामक वास्त्रोसे एक दूसरेको मारने लगे । एक दूसरेको देख-देखकर  
 खट्ट हुए, एवं (शत्रु-पक्षके) महावर्तोंको मारकर रिकतहीदेवाले मत्तमातंग परस्पर भिड़  
 गये । हाथियोंके दांतोंकी टक्करसे उठते हुए अग्निके स्फूर्तिगोसे सुरवधुओंके विमान पिंगल  
 वर्ण हो गये । सुरवधुओंके विमानोंसे आच्छादित गगनमें दूर जाते हुए विमानोंसे नोक टकराकर  
 वीरोंके करवाल खड़खड़ा उठे । वीरोंके करवालसे विदीर्ण किये जाते हुए हाथी, घोड़े और  
 सुभटोंके शरीरसे बड़ा भारी कल्लोल करता हुआ रक्तका झरना बह निकला । रक्तवाहिनीके  
 वेगसे प्रवाहित होकर ले जायी जाती हुई कात्यायनी-देवीके विशाल करतल-स्थित कपाल  
 कोष्ठ(खोपड़ी)से लगकर एक भयानक अग्निमुख बैताल दौड़ पड़ा । बैतालके छोड़े हुए  
 कठोर व उत्कट अट्टहाससे संत्रस्त होकर भागते हुए भयानक हाथियोंके समूहसे पैरोंसे कुचले  
 जानेसे बचते हुए सैन्यके कोलाहलसे दिगंत भर गये । दिगंतमें फैलते हुए अश्ववारोंके चंचल  
 तलवारोंके त्राससे भागते हुए कायरोंको देखनेके लिए श्रेष्ठ सुभट उत्साहित हो उठे । श्रेष्ठ सुभटों  
 के हाथोंमें घूमते हुए लकुटिदंडके प्रहारसे चूर-चूर होते हुए नर-कपालोंसे बड़ा कटुक डकार  
 शब्द उत्पन्न होनेसे कापालिकोंका समूह धूरने लगा । और कापालिक समूहके हाथोंकी कैची  
 द्वारा ( अपने केशादि ) काटे जानेसे कटाक्षयुक्त सुरसुंदरियों-द्वारा संरक्षित ( मृत ) सामंतकुमार  
 ( मानो स्नेहभरे ) नेत्रोंको लँचा करके सुरसुंदरियोंकी ओर देखने लगे । सामंतकुमारोंके  
 पूर्व दिये हुए सम्मान व दानसे भरपूर, लटकते हुए केशोंवाले और कलौटेपर हाथ देकर स्वामी-

[ ६ ] १. ख ग खग्गि । २. क घ ङ मुमंदि । ३. व अलोण । ४. ड दंणणाळ । ५. घ सुवा-  
 सणमि ; क संत्तमार्यं । ६. क ङ हुयवह ; ख ग हुयवहु । ७. घ संल्लण । ८. घ कंवाडणी । ९. क ङ  
 गवळ । १०. घ पसरिय की । ११. क कंचाडणी । १२. ख ग विवाल । १३. ख ग कवालकुट्ट ; ड  
 कवालपुट्ट । १४. क घ ङ भीर । १५. घ सिण । १६. क ख ग घ ङ कायर । १७. ख ग वरसुहडमत्त  
 १८. क ङ कवकडकार, ख ग घ कडुक ।

लंबंतचूल<sup>१९</sup> - परिहृल्लकल्ल<sup>२०</sup> पडुपंगणवगिरदुल्लभदविहडंतभेडसंघायं । भेड-  
संघायविहडणपरितुद्धअलद्धसम्मानदाणनिम्माणियभिडंतसिखसखविग्रनिसग्ग -  
चारहडिय<sup>२१</sup> - विसेसठकुरनिवेसियहियथ-सल्लं ।

१५

गाथा—चिक्किचिक्किस्ल्लचहुट्टकथके<sup>२२</sup> भरम्मि रे धणिय ।

अवमाणियं पि धवलं विहडियकसरेसु जा निहसि ॥ १ ॥

कसरेसु कवरेसु य<sup>२३</sup> पालणपडिल्लगवग्गगहवडणो<sup>२४</sup>

अमुणियभरनिग्वाहे<sup>२५</sup> धवलो हियए वि बीसरिओ ॥ २ ॥

धवलेण तेण विसमे धुयकंधरडंतकसरमुकभरो ।

२०

लीलाए<sup>२६</sup> कडिडओ<sup>२७</sup> तह जह<sup>२८</sup> फुट्टइ<sup>२९</sup> कुसामिणो हिययं ॥ ३ ॥

अधराणिय<sup>३०</sup> न सण्णइ<sup>३१</sup> पडुणो घणकसरपालणपरस्स ।

जो धरइ धुरं चिहुरे नमो नमो तस्स धवलस्स ॥ ४ ॥

कसरेण समं जुप्पंतपण धवलेण जोइयं पासं ।

गल्लभरकड्डणाए<sup>३२</sup> होसइ मे पडिहरो एसो ॥ ५ ॥

२५

कसरेककथके<sup>३३</sup> धरेण<sup>३४</sup> धवल्लेण<sup>३५</sup> धूरियं<sup>३६</sup> हियए ।

हा किं न खंडिअणं जुत्तोहं दोहि मि दिसाहिं<sup>३७</sup> ॥ ६ ॥

के प्रांगुणमें बड़ी-बड़ी बातें मारनेवाले कायरोंका समूह भाग पड़ा; और कायरसमूहके भागने से परितुष्ट हुए, पहले सम्मान व दान प्राप्त नहीं करनेवाले, तथा अपमानित होकर भी डटकर युद्ध करते हुए मृत्योंके द्वारा अपना विशेष नैसर्गिक शौर्य प्रमाणित किया जाने पर उनके ठाकुरों-के हृदयमें ( पश्चात्ताप रूपी ) शल्य उत्पन्न होने लगा ।

चिक-चिक-चिकने कीचड़में चक्का फंस जानेसे भारसे भरी हुई गाड़ीके रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभका अपमान करके, रे धनिक जबतक तू अधम वैलों पर अनुराग करता है—॥ ॥ (तबतक) अधम और कवरे वैलोंके प्रतिपालनमें लगा हुआ (तुझ जैसे) गृहपति (परिवारक) वर्ग श्रेष्ठ वृषभ (धवल) के द्वारा भार निर्वाह करने (को क्षमता) को न जानता हुआ, उसे हृदयसे भी भुला देता है ॥२॥ परतु आपत्तिके समय अधम वैलके द्वारा चीत्कार करके कंधेको गिराकर भारमुक्त हो जाने पर उसी धवलके द्वारा लीलामात्रमें (क्षणभरमें) इसतरह भार खींच लिया जाता है, जिससे कि-पृथ्वीपति (कु-स्वामी) का हृदय खिल उठता है ॥३॥ जो धवल बिलकुल अधम वैलोंको पालनेवाले प्रभुके-अपमानको नहीं मानता (अर्थात् अपने पूर्वकृत अपमानको ध्यानमें नहीं रखता, और संकटमें घुराको धारण करता है, उसे पुनः-पुनः नमस्कार ॥४॥ अधम वैलके साथ जोड़े जाते हुए धवलने अपने पार्श्वको देखा, और सोचा कि-भारी बोझको खींचनेमें यह अधम वैल वास्तवमें मेरा प्रतिभार (अतिरिक्त बोझ) मात्र होगा ॥५॥ भारसे अधम वैल वाला एक चक्का रुक जाने पर धवल अपने हृदयमें इसप्रकार ध्वनने लगा— हाय ! मैं ही खंडित करके दोनो दिशाओं (पार्श्वों) में क्यो नहीं जोत दिया गया ? ॥६॥

१९. ध<sup>१</sup> धूलि । २०. क परिहृत्य, ख ग पवि । २१. ध पडुपंगण । २२. क ड चारहडि । २३. क थट्टे । २४. क ड आ । २५. ख ग हिंगगहवडणो । २६. क घ ड णिग्वाहो । २७. क घ ड णं । २८. ख ग रु कट्टिओ । २९. ख ग जड, घ जह । ३०. ख ग फुट्टइ, ड पुट्टइ । ३१. ध गणिय । ३२. ख ग घ मग्गइ । ३३. क ड कट्टणाए । ३४. क ड धनको । ३५. ख ग घ भरम्मि । ३६. क धवल्लि, ड धवल्लि । ३७. घ जू । ३८. ख ग घ ए ।





कि बलबलेण मणुसइय मञ्जु कि बलबलेण साहमि असञ्जु<sup>१५</sup> ।  
 मइ कुविप्र<sup>१६</sup> समरे देव वि असार तुहु<sup>१७</sup> कवणु गहणु पुणु किर कुमार । १०  
 घत्ता—तो पेसणकारहि<sup>१८</sup> कट्टियधारहि<sup>१९</sup> अण्णोण्णवडारविणबद्ध<sup>२०</sup> ।  
 दुक्खनिवारियइ<sup>२१</sup> उसारियइ<sup>२२</sup> उइयबलइ<sup>२३</sup> सन्नद्धइ<sup>२४</sup> ॥ ७ ॥

[ ८ ]

सरवंतइ<sup>२५</sup> तोणहि<sup>२६</sup> धारियाइ<sup>२७</sup> धणुचडियगुणइ<sup>२८</sup> उत्तारियाइ<sup>२९</sup> ।  
 पडियारहि<sup>३०</sup> खग्गइ<sup>३१</sup> पोइयाइ<sup>३२</sup> सेल्लइ<sup>३३</sup> सेल्लहरि हिरावियाइ<sup>३४</sup> ।  
 तिक्खं कुससाहिय वरगइ<sup>३५</sup> दिढवग्गोसारिय तुरयविद ।  
 किड कलयलु तुरइ<sup>३६</sup> आहयाइ<sup>३७</sup> महि-गयणइ<sup>३८</sup> णं फुट्टिवि गयाइ<sup>३९</sup> ।  
 दूरट्टियाइ<sup>४०</sup> जोयहि<sup>४१</sup> षणाइ<sup>४२</sup> लिहियाइ<sup>४३</sup> व वेण्णि वि<sup>४४</sup> साहणाइ<sup>४५</sup> । ४  
 उत्तरिय वे वि पेत्तिय गइ<sup>४६</sup> चिहि<sup>४७</sup> गिरिहि<sup>४८</sup> थक्क णं वे<sup>४९</sup> मइद ।  
 टंकारिड धणु खयरे झडत्ति गिरिसिगि पडिय णं तडि तडत्ति ।  
 अण्णालिड बालेणावि<sup>५०</sup> चाड बहिरंतु भुवणु<sup>५१</sup> पसरिड<sup>५२</sup> निनाड<sup>५३</sup> ।  
 संभरियमहणपीडाथरेण आरडिड नाइ<sup>५४</sup> रयणायरेण ।

क्या ? यहाँ मेरा ऐसा प्रताप है कि मैं मनुष्यगति(लोक)में असाध्य साधन कर सकता हूँ । मेरे कुपित होनेपर युद्धमे देव भी तुच्छ हो जाते हैं, फिर तेरी तो गिनती ही क्या ? तू तो अभी कुमार ही है । (इसके)अनंतर आज्ञाकारी प्रतीहारोंके द्वारा परस्पर वैरबद्ध दोनों सनद्ध सेनाओंको बड़ी कठिनाईसे युद्धसे निवारण करके दूर-दूर हटा दिया गया ॥७॥

[ ८ ]

बाणोंको तूणीरोमें रख दिया गया, घनुषोंपर चढ़े हुए गुण(प्रत्यंवा)उतार दिये गये, खड्गोंको म्यानोमें पिरो दिया गया, और कुंत(बल्ले)भालाधरोमें रख दिये गये । तीक्ष्ण अंकुशोसे श्रेष्ठ गजेन्द्र साधे गये, और सुदृढ़ लगामसे( खीचकर )घोड़े हटा दिये गये । ( इन सबसे ) वहाँ ऐसा कोलाहल किया गया और तूर बजाये गये, मानो पृथ्वी और आकाश फूट गये हो । दूरपर स्थित दोनों घनी( विशाल )सेनाएँ चित्रलिखित सरोखी(युद्ध)देखने लगी । दोनो ही ( जंबूकुमार एवं रत्नशेखर ) श्रेष्ठ हाथियोपर चढ़कर, उन्हें प्रेरित करते हुए ऐसे शोभायमान हुए, मानो दो पर्वतोंपर दो सिंह स्थित हों । खेचरने झट घनुषको टंकारा, मानो गिरिश्रृंगपर तडसे बिजली गिर पड़ी हो । बालकने भी चापको हाथसे आस्फालित किया, उससे सारे लोकको बहरा करता हुआ ( ऐसा ) निनाद प्रसृत हुआ, मानो अपने मंथनका

१५ क कंजु । १६ क ड कुदय । १७. क ड तुहु, घ तुह । १८. ख ग र्हि । १९. ख ग बइरिणिगि, घ अलोत्त । २० क ख ग दुक्खु निवा; ड निवारियइ । २१. क उंसारियइ । २२ ख ग सैण्णइ । २३. क ख ग ड सण्ण ।

[ ८ ] १. ख ग वत्तहि । २. प्रतियोमे इ । ३. क ड चडिय गुण; घ चडियइ गुण । ४. क ड र्हि, ख ग र्ह । ५. ख ग इ । ६. ड याइ । ७. क हि, व इ; ड हि । ८. ख ग सेल्लहरं, घ हरहो रीवियाइ । ९. क ड गयवरिड । १०. ख ग घ याइ । ११. ड मि । १२. ड गयद । १३ क घ ड विहि । १४. ख ग दो । १५ ख ग बालेणावि । १६. ख ग घ भुयणु । १७ व रिय । १८. क ख घ ड णिणाड । १९ घ णाड ।

- १० तें<sup>२०</sup> सहे भडहें<sup>२१</sup> पडंति पाण लंवंति दलकिय सुरविमाण ।  
 कंपंति दबकिय सूरचंद<sup>२२</sup> उडंति अलकिय जलहिमंद ।  
 तुटंति कडकिय<sup>२३</sup> सिहरिसिहर फुटंति धवलहर जाय चिहुर<sup>२४</sup> ।  
 घत्ता-गाढवि करेण<sup>२५</sup> धनु<sup>२६</sup> वंकेवि तणु खयरें सपत्त<sup>२७</sup> गुणे<sup>२८</sup> सजिय ।  
 किविणेण व<sup>२९</sup> जिएण अविवेइएण<sup>३०</sup> रणे मग्गण बीस विसजिय ॥ ८ ॥

[ ९ ]

- तं नियचि कुमारे वाणसंडु बीसहि<sup>१</sup> मिं सरहि<sup>२</sup> किउ खंड<sup>३</sup>-खंडु ।  
 बाणावलि खयरे पुणु वि सुक असइ व<sup>४</sup> सप्पुरिसहो नियड<sup>५</sup> डुक ।  
 लोहमय<sup>६</sup>-सिक्ख-विधणसहाव धम्मचुय<sup>७</sup>-परमारणसहाव ।  
 नारायहि<sup>८</sup> वालें नहे पइएण<sup>९</sup> गरुडेण सप्पपंति व्व छिण<sup>१०</sup> ।  
 ५ गुणे<sup>११</sup> संधेवि पेत्तिव<sup>१२</sup> दिढकरेण अग्गेयवाणु विज्जाहरेण ।  
 धाविउ<sup>१३</sup> डहंतु<sup>१४</sup> वेणिण वि वलाइ<sup>१५</sup> धूमाउलजालहि<sup>१६</sup> सामलाइ<sup>१७</sup> ।

स्मरण करनेसे पीड़ित हुए रत्नाकरने ही करुण चीत्कार किया हो । उस शब्दसे भडोके प्राण गिरने(छूटने) लगे, और देवताओंके विमान (स्वर्गसे) डुलककर (आकाशमें) लटकने लगे । सूर्य व चंद्र द्रुतगतिसे कांपने लगे, और मंद(शांत)जलधि झुलसकर ऊपर उठने लगे । पर्वतोंके शिखर कड़ककर टूटने लगे, और प्रासाद विघटित (विस्लिष्ट)होकर फूटने लगे । जिसप्रकार किसी अविचेकी कृपण जीवके द्वारा घनको हाथसे खूब दृढतासे पकड़कर, गुणोसे सज्जित अर्थात् खूब गुणवान् ऐसे बीसियों भिक्षाधिक्योंको भी मुंह बाका करके(विना कुछ दिये, अपने घरसे)विदा कर दिया जाता है, उसीप्रकार उस अविचेकी खेचरने अपने हाथसे घनुपको दृढतासे पकड़कर व शरीरको थोडा झुकाकर, पत्रयुक्त वाणोंको प्रत्येकापर चढाकर रणमें बीस वाण छोड़े ॥८॥

[ ९ ]

उस वाणसमूहको देखकर कुमारने बीस ही वाणोसे उसे खंड-खंड कर दिया । खेचरने पुनः वाणावलि छोड़ी, वह जबूस्वामीके निकट उसीप्रकार गयी, जिसप्रकार कोई असती (कुलटा)स्त्री किसी सत्पुरुषके पास जाये । जिसप्रकार किसी लोभमय (लोभी) और तीक्ष्णतासे ( तीखे वचनोके द्वारा दूसरोंको ) बीघनेके स्वभाववाले तथा धर्मसे च्युत व्यक्तिका दूसरोंको मारना स्वभाव ही होता है, उसीप्रकार उस लोभमय, तीक्ष्णतासे शरीरको बीघनेके स्वभाववाली, घनुपसे च्युत तथा शत्रुको मारनेके स्वभाववाली उस बाणावलिको बालकने स्वभाववाली, घनुपसे च्युत तथा शत्रुको मारनेके स्वभाववाली उस बाणावलिको बालकने आकाशमें छोड़े हुए अपने वाणोसे उसीप्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसप्रकार गरुड़ सप-पंतिनको कर देता है । तदनंतर प्रत्येकापर संधान करके समर्थ भुजावाले उस विद्याधरने आग्नेय बाण छोडा । वह बाण अपनी धूआकुल-श्यामल ज्वालाओंसे दोनों सेनाओंको

२०. ख त । २१. ख ग ह । २२. क ड विजिय । २३. क ख ग ड विहर । २४. क ल णु । २५. ड वणु । २६. ख ग घ ड सुपत्त । २७. क ल गुण । २८. क ग वि । २९. ख ग अविवेएण ।

[ ९ ] १ क ल ग ल ह, घ ह । २ ख ग हि । ३ व ड खडु । ४ क ड सहेणि, ५ ग सप्प-रिस न नि । ६ ग मड । ७ क धम्मह चुण, ल वम्मह चुं, ग प्रम्मह चुं । ८ क थहि । ९. व प । १०. क ड गुण । ११. ख ग घ मेल्लिवि । १२. क ल वाडउ । १३. क द । १४. ग ड । १५. क ड गुण । १६. ख ग घ मेल्लिवि । १७. क ल वाडउ । १८. क द । १९. ग ड ।

तहिं काले गयणगइणा सुहाई  
तो मुक्कु<sup>१५</sup> कुमारे वारुणस्थु  
उन्नइव<sup>१६</sup> गयणे पच्छइयमूर  
वरिसणह<sup>१७</sup> लग्गु<sup>१८</sup> गुरुधारजालु  
नउ थक्कु<sup>१९</sup> ताम बहुसलिलवहणु  
बोलाविउ पुणु वाले विवक्खु  
वत्ता—अरुहयाससुएण करिकरमुएण<sup>२०</sup>  
अरिहे<sup>२१</sup> धरंताहे<sup>२२</sup> पहरंताहे<sup>२३</sup> आरोहंविधु<sup>२४</sup>-घणु पाडिउ ॥ ६ ॥

दिण्णहँ<sup>२५</sup> 'वालहो दिव्वावहाई ।  
तहो सरहो पहावे मेहसल्लु ।  
तडयडियविज्जु<sup>२६</sup> नच्चियसऊर<sup>२७</sup> ।  
आणंदियददुदुर-रववसालु । १०  
गउ खयहो<sup>२८</sup> असेसु वि<sup>२९</sup> जाम डहणु ।  
जइ सत्ति सरासणु रक्खु रक्खु ।  
तोमरघाएण निवाडिउ<sup>३०</sup> ।  
आरोहंविधु<sup>३१</sup>-घणु पाडिउ ॥ ६ ॥

[ १० ]

तो विज्जाहरु 'दिढदट्टाहरु ।  
खंडियकर<sup>३२</sup>-धणु जोइय-पहरणु ।  
चक्कु धरेविणु थाणु रएविणु<sup>३३</sup> ।  
मेल्लइ जामहिं वाले तामहिं ।  
कणियवमाणे<sup>३४</sup> हय-रिउपाणे ।  
मज्झाप्र<sup>३५</sup> खंडिउ अद्धु विहंडिउ ।  
अद्धउ करयले भामवि<sup>३६</sup> नहयले ।

५

जलाता हुआ दौड़ा । उसी समय गगनगतिने बालकको गुप्त व दिव्यशस्त्र प्रदान किये । तब कुमारने वारुणास्त्र छोड़ा । उस शरके प्रभावसे एक बड़ा मेघसार्थ(समूह) आकाशमें उभरत हुआ, जिसने सूर्यको आच्छादित कर लिया, विद्युत् कड़कने लगा, और मयूर नाचने लगा । बहुत भारी जलधारासमूह बरसने लगा और, आनंदित दुर्दुरोका ( टर-टर )रव व्याप्त हो गया । प्रचुर पानीको वहन करनेवाला वह मेघसमूह( वर्षा करनेसे ) तबतक नहीं रुका, जबतक कि अग्नि पूर्णरूपसे शांत नहीं हो गया । तब बालकने पुनः शत्रुको आह्वान किया—यदि शनित है तो अपने शरासन(धनुष)को बचाओ ! अरुहदासके उस पुत्रने, जो हाथीके सूंडके समान भुजाबोवाला था, शत्रुके पकड़ते-पकड़ते और (उनकी रक्षाके लिए जंबूस्वामीपर) प्रहार करते-करते भी, उसके महावत, (ध्वज-)चिह्न एवं धनुषको तोमरके आघातसे भूमिपर गिरा दिया ॥६॥

[ १० ]

तब विद्याधरने दृढ़तासे अधरोंको काटकर, अपने हाथके टूटे हुए धनुषदंड और शस्त्रको देखकर, चक्र हाथमें लेकर, आसन जमाकर ( अर्थात् निशाना साधकर ) उसे जैसे ही छोड़ा, वैसे ही बालकने शत्रुका प्राणहरण करनेवाले कर्णिका नामक दानसे चक्रको बीचसे खंडित कर आघेको तो टुकड़े-टुकड़े कर दिया, और आघेको हथेलीपर रख, नभस्तलमें धुमाकर

१४ ख ग 'ड। १५. ख मुक्कु। १६ क ड उण्ण, ख ग उण्णय। १७. क ड तडिय, ग तडियडिय। १८. ख ग, नच्चिरं। १९ ख ड णह। २० ख ग लग्ग। २१. क ड थक्क। २२. क ड असेसहो। २३. क ड भुवेण। २४ क ड रिउ। २५. क घ ड हिं। २६. क ड तहो, घ ताहो। २७. क ड पर पहरंतहो, ग ताहो, घ पहरताहो। २८ क ड विध।

[ १० ] १. ख दहं। २. व पर। ३. क ड पिणु। ४ घ कन्नियं। ५ क ड मज्झाए; घ इं।  
६ क घ ड भामिवि।

- १० मुकु कुमारहो<sup>१०</sup> वइरि-निवारहो ।  
 मंड धरंतहो पहरु करंतहो ।  
 निवडिउ करिवरे वज्जु<sup>११</sup> व गिरिवरे ।  
 घाय-समाहउ धुलइ महागउ ।  
 विसु रडंतउ नियवि<sup>१२</sup> पडंतउ ।  
 पेल्लिवि<sup>१३</sup> गयवरु कौताउहकर ।  
 खयरुद्धाविउ<sup>१४</sup> वेण पाविउ ।  
 १५ कौतुखेविउ बालहु<sup>१५</sup> डेविउ ।  
 ताम कुमारें विक्रमसारे ।  
 धरिउ समर्थें दाहिणहत्थे ।  
 जं अउओडिउ अहिमुहुं पाडिउ ।  
 २० कौत-विलग्गउ थाणहो भग्गउ ।  
 बिहडप्फहु<sup>१६</sup> अरि करिखंघोवरि<sup>१७</sup> ।  
 कडिउ<sup>१८</sup> विसहइ थाहर<sup>१९</sup> न लहइ ।

घत्ता-कुमारे कमु रयवि नियकरि चयवि अरिकुंभिकुंभ<sup>२०</sup> उड्वेविणु ।

हरिणा नहखइउ हरिणु<sup>२१</sup> व लइउ<sup>२२</sup> रिउ<sup>२३</sup> पहरण-रणु लइविणु<sup>२४</sup> ॥१०॥

[ ११ ]

धरेवि मंड भुअथामगरिल्लें वड्डउ चप्पेवि<sup>२५</sup> खयरु वरिल्ले<sup>२६</sup> ।  
 उच्चायवि<sup>२७</sup> गयसारिहे<sup>२८</sup> वल्लिउ छोडेवि वंघ मियंकु पमेल्लिउ ।

छोड दिया । कुमारके द्वारा वैरोका निवारण करनेके लिए अत्यंत बलपूर्वक प्रहार करनेपर वह चक्र (शत्रुके) हाथीपर ऐसा गिरा, जैसे पर्वतपर वज्र । प्रहारसे आहत होकर वह महागज चक्कर खाने लगा । दाहण चीत्कार करके गिरते हुए देखकर, उस हाथीको- (अंकुश-से) प्रेरित कर, कोत नामक आयुध हाथमे लेकर खेचर दौड़ा, और वेगसे बालकके पास पहुँचा । विद्याधरने कोत फेंका, वह बालकको लाघता हुआ चला गया । तब विक्रमने श्रेष्ठ उस कुमारने अपने समर्थ ( बलिष्ठ ) दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया, और ( एकाएक ) छोड़कर उसे अपने सामने पटक दिया । भालेसहित वह विद्याधर अपने स्थानसे भग्न(भ्रष्ट) हो गया । भयसे विह्वल शत्रु हाथीके कंधोपर खीचा हुआ ऐसा लगता था, मानो उसे ( अन्यत्र ) कही ( शरण- ) स्थान नहीं मिलता । तब कुमारने कूदकर, अपने हाथीको छोड़कर, शत्रुके हाथीके कंधेपर उड़कर ( छलाग लगाकर ), शस्त्र-युद्ध छोड़कर, सिहके नखोंसे खचित ( पजोमे आये हुए ) हरिणके समान शत्रुको पकड़ लिया ॥१०॥

[ ११ ]

अत्यंत बलपूर्वक महान् भुजबलशाली उस कुमारने खेचरको चापकर ( दशकर ) वस्त्रसे बाध लिया, और उचकाकर ( अपने ) हाथीके हीदेमे डाल दिया । मृगोंके वधन छुड़ाकर

७ घ कुमारो । ८ ख र । ९ ख वज्ज, घ विज्जु । १० क डि । ११ ख ग व य । १२ ख ग विव, घ द्वाइउ । १३ ख घ हो, ग ह । १४ क प्फड । १५ ख ग कंघो । १६ क ड कडिउ । १७ क ड ठ । १८ क ड कुभ । १९ क ण । २० क व लयउ । २१ क ड पहरणु छडे, व छरे ।  
 [ ११ ] १. क ड चप्परि । २ ल्ले । ३ ख ग उडा, घ डवि । ४. ख घ रिहि; ग रिहि ।

तं पेक्खेवि किय-नियड-विमाणहि<sup>१</sup> मेल्लिय कुसुमविट्ठि गिज्वाणहिं ।  
जय-जय-सद्दु कुमारहो वोसिड नच्च नारडं नहे परितोसिडं ।  
गयणगइहे<sup>२</sup> आणंदु पवडिडड मिलियिड केरलसेणु<sup>३</sup> रसडिडड । ५  
तूरई हयई गहिरु गाइज्जइ वंदिहू<sup>४</sup> वत्थु कणय-धणु दिज्जइ ।  
भग्ग-मडफरु<sup>५</sup> हुड खयरजणु हेट्ठासुहु अवलंविथ-पहरणु ।  
गयणगइ<sup>६</sup> तहि<sup>७</sup> काले नवेविणु<sup>८</sup> सरह-सुगाढालिगणु देविणु ।  
वडयरु सल्लु<sup>९</sup> मियंकहो सीसइ<sup>१०</sup> जीविड तुम्ह एहु जो दीसइ ।  
मई<sup>११</sup> कहिय<sup>१२</sup> वित्तंतु निएसिडं<sup>१३</sup> अल्लु जि सेणिएण संपेसिड । १०  
पुरि न पइट्ट तुहु<sup>१४</sup> मि<sup>१५</sup> नड दिड्डड दूड होवि<sup>१६</sup> रिडसहहि<sup>१७</sup> पइट्टड ।  
तहि हु<sup>१८</sup> समरे सपहरण<sup>१९</sup> पाइय अट्टसहस खयरह<sup>२०</sup> विणिवाइय ।  
अन्धंतरी रिडसेणु<sup>२१</sup> हणंतहो तुह रणु हुड एयहो<sup>२२</sup> अमुणंतहो ।  
एमहि<sup>२३</sup> पई<sup>२४</sup> जि विट्ठु जुज्जंतड एहु<sup>२५</sup> सो वरकुमारु खयरंतड ।  
घत्ता—सुणिवि पसन्मइ<sup>२६</sup> केरलनिवइ कह पुणु वि पुणु वि वड्डारइ । १५  
पयडियवहुपणड<sup>२७</sup> जिणवइतणड<sup>२८</sup> नियपुरिहि<sup>२९</sup> मन्हे पइसारइ<sup>३०</sup> ॥११॥

उसे मुक्त किया । ऐसा देखकर अपने विमानोंको निकट करके देवोंने पुष्पवृष्टि की और कुमार-  
के जय-जयकार शब्दका घोष किया । परितुष्ट हुए नारद आकाशमें तात्पने लगे । गगनगतिको  
अत्यंत आनंद बढ़ा, और केरल सैन्य स्नेह व प्रीतिपूर्वक मिला । (विजय) तूर बजाये गये, गंभीर  
गान किया जाने लगा, और बंदियोंको वस्त्र, धान्य व घन दिया जाने लगा । खेचरजन (रत्न-  
शेखरके सैनिक) भग्नमान हो, शस्त्रोंका अवलंबन लेकर अधोमुख होकर बैठ रहे । तब गगनगतिने  
प्रणाम करके और उर्कंठा व आवेगपूर्वक गाढ आलिगन करके मृगोंको सब वृत्तांत कहा—  
तुम्हे जीवन देनेवाला यह जो ( कुमार ) दिखाई देता है, मेरे कहे वृत्तांतको निदिष्ट करके  
श्रेणिकने आज ही इसे यहाँ भेजा है । यह नगरमें भी प्रविष्ट नहीं हुआ, और न तेरे द्वारा  
देखा ही गया । दूत होकर शत्रुकी सभामें प्रविष्ट हो गया । वहाँ हुए युद्धमें आठ हजार खेचर  
आक्रमणके लिए शस्त्रोंसहित दौड़े, और मारे गये । भीतर रिपुसैन्यको मारते हुए, इसके  
नहीं जानते हुए ही यहाँ तुम्हाड़ा युद्ध हुआ । अभी तुमने जिसे युद्ध करते देखा, यह वही,  
खेचरोके लिए कालस्वरूप श्रेष्ठ कुमार है । ( यह सब ) सुनकर मनमें प्रसन्न होकर केरल नृप  
कैसे-कैसे पुनः-पुनः बघाई देने लगा, और बहुत प्रणय प्रगट करके जिनमातिका पुत्रको अपनी  
पुरीके मध्य प्रवेश कराया ॥११॥

५. ख ग णहे । ६. घ सुरयणु । ७. क ड जोसिड । ८. क व ड गइहि; गयहे । ९. च सेणु । १०.  
प्रतिपोंमें हु । ११. क ड पसर । १२. क ड गडय । १३. क ड तहि । १४. क व ड ण्णिणु । १५. क  
सल्ल । १६. क ड । १७. क ड मइ । १८. ख ग यड, घ यई । १९. ख ग व निवे । २०. क ड तुहु ।  
२१. क व ड वि । २२. क ख ग ड होइ । २३. ग व हि । २४. क व ड हुइ । २५. क ड सुपह ।  
२६. क खयरह, घ खयरइ । २७. घ सेणु । २८. क ड एहु । २९. क ड हि; घ एवहे । ३०. क ड पड ।  
३१. क ड सु । ३२. क ख ग ड पसण । ३३. व ड पणचं । ३४. क व ड तणचं । ३५. क ड पुरिहि;  
ख ग पुरेहि । ३६. क डारइ ।

[ १२ ]

- मणिमोत्तियमंडणजणियमोह<sup>१</sup>  
 घर घरे कपूरामोयमिण्णु<sup>२</sup>  
 रंगावलिंविट्टमचुण्णएहिं<sup>३</sup>  
 वज्झंति<sup>४</sup> रथणसालाघणाई<sup>५</sup>  
 ५ सियपुण्णकलसु<sup>६</sup> फलपत्तरिद्ध<sup>७</sup>  
 दोसइ कुमारु पीणत्थणीहिं<sup>८</sup>  
 हले हले पर<sup>९</sup> मणमिं<sup>१०</sup> चंदसुहिच  
 जा सरणागय<sup>११</sup> सासणसमत्थे  
 वरइत्तहो वलि किज्जमिं<sup>१२</sup> सुधीरु  
 १० लच्छाहें इय राखले<sup>१३</sup> पइट्ट  
 तो जंबुकुमारें कलहमुल्लु  
 अहो खेरवइ को इत्थ<sup>१४</sup> गन्वु  
 खत्तियहो परम एक्कु जि सुक्कम्मु  
 लज्जिज्जइ अवसारेण लोइ
- दरसाविय<sup>१</sup> पट्टणे हट्टसोह ।  
 सिरिखंडवहलरसछडठ दिण्णु<sup>२</sup> ।  
 पूरिउ चउक्कु मणिवण्णएहिं<sup>३</sup> ।  
 सुरतहनवकिसलयतोरणाई<sup>४</sup> ।  
 दहि-दुव्व-कुसुम-अक्खयसमिद्ध<sup>५</sup> ।  
 साहरणहिं नयरनियंविणीहिं<sup>६</sup> ।  
 वण्णिय<sup>७</sup> विलासवइ रायदुहिय ।  
 लंगोसइ सेणियरायहत्थे ।  
 जसु घरि एरिसु एकल्लवीरु ।  
 विण्णासणेसु<sup>८</sup> सव्व वि<sup>९</sup> वट्टह ।  
 मेलेवि सम्माणिव<sup>१०</sup> रथणचूलु ।  
 जं जुल्लिउ तं खंतव्वु सव्वु ।  
 जं समरे न भज्जइ एहु धम्म<sup>११</sup> ।  
 विजयाजउ दइयायत्तु<sup>१२</sup> होइ ।

[ १२ ]

पत्तनमें मणिमौक्तिकोकी सजावटसे उत्पन्न क्लिणोंसे हाट-शोभा दिखायी गयी। घर-घरमें कपूरकी आभोव प्रस्फुरित हुई, और श्रोखंडके घने रससे छटाएँ दी गयी। विट्ठमके चूर्ण तथा मणिवर्णोंसे चौक पूरकर रंगोली बनायी गयी। प्रचुर रत्नमालाओं और कल्पवृक्षोंके नये किस-ल्योंके तोरण बाँचे गये। धवल व पूर्ण कलश जो फलों व पत्रोंसे ऋद्धिसंपन्न, एवं दधि, दूर्वा, पुष्पों और अक्षतोंसे समृद्ध थे, उन्हें लिये हुए उन्नत स्तनोंवाली तथा आभरणयुक्त नगरकी मुंदरियोंने कुमारको देखा ( स्वागत किया )। ( किसीने अपनी सखीसे कहा )—सखी ! हे सखी ! मैं मानती हूँ कि चंद्रमाके समान मुखवाली राजकन्या विलासवती वन्य है, जो शरणागतके लिए शासन ( अर्थात् शरण व निर्वाहसाधन वादि सब कुछ ) देनेमें ममर्थ श्रेष्ठिक राजाका पाणिग्रहण करेगी। ऐसे वरके लिए बलिहारी है, जिसके घरमें ऐसा धीर-साहसी अद्वितीय वीर पुरुष ( जंबूस्वामी ) विद्यमान है। इसप्रकार उत्साहपूर्वक मव राजकुलमें प्रविष्ट हुए, और दिये हुए आसनोंपर बैठे। तब जंबुकुमारने कलहके कारणभूत रत्नचूलको ( वंदीगृहसे ) छोड़कर, उसका सम्मान किया, ( और कहा )—अहो खेचरपति ! यहाँ ( इस संसारमें ) गर्व किस बातका ? जो आपके साथ युद्ध किया उस सबको क्षमा करें। क्षत्रियका एक ही परम सुकर्म यह है कि युद्धमें भी अपने इस ( क्षात्र )धर्मको नष्ट न होने दे, क्योंकि पीछे हटनेसे लोकमें लज्जित होना पड़ता है; विजय और अजय(पराजय) तो देवाधीन होनी है।

[ १२ ] १. क व ग इ सोह । २. क व ह द रिं । ३. घं भू । ४. घं चूट । ५. कं वट । ६. घ मणिवत्त । ७. क छं त । ८. घं वराडं । ९. ग किमलडं । १०. क ह किज्जम । ११. क वं ल । १२. क ह रावलि । १३. क ट मव्वडं । १४. घ ट उं । १५. घ इत्थु । १६. घ धम्मु । १७. ग पत्तु, घं वत्तु ।

लइ जाहि सपरियणु करहि रज्जु रयणसिहु भणइ<sup>२४</sup> सहगमणु<sup>२५</sup> सज्जु । १५  
 सहु<sup>२६</sup> पइ<sup>२७</sup> जि<sup>२८</sup> जसुज्जल जामि ताम मगहाहिउ नियमि<sup>२९</sup> कुमार जाम ।  
 घत्ता—सज्जनजणियरस<sup>३०</sup> कइवयदिवस<sup>३१</sup> बोलेविणु सुहि-साहारे ।  
 वरविमाणद्विण उक्कट्टिण गमु सज्जिउ जंनुकुमारें ॥१३॥

[ १३ ]

विज्जाहररयणसिहसमाणइ <sup>१</sup>	चलियइ <sup>२</sup> पंचसयाइ <sup>३</sup> विमाणइ <sup>४</sup> ।
चलिउ <sup>५</sup> मियंकु सभज <sup>६</sup> सक्कणउ <sup>७</sup>	गयणगइ <sup>८</sup> वि चलियउ <sup>९</sup> माणुणउ <sup>१०</sup> ।
सयल वि नहि सविमाण पधाइय	नम्मय-कुरलसिहरि <sup>११</sup> संपाइय ।
खंधावार नियवि सुपमाणइ <sup>१२</sup>	लविथाइ <sup>१३</sup> अत्थाणे विमाणइ <sup>१४</sup> ।
उत्तरेवि जयकारिउ राणउ <sup>१५</sup>	मडडवद्धनरनाहपहाणउ <sup>१६</sup> ।
जंनुसामि नियवि मगहेसं	आलिगिउ भुणहिं संतोसे <sup>१७</sup> ।
सिरु <sup>१८</sup> चुवेवि जंघहिं <sup>१९</sup> बइसारिउ <sup>२०</sup>	सुहु <sup>२१</sup> जोयतें साहुकारिउ ।
सवु वि गयणगइ <sup>२२</sup> जं चाहिउ	रणविस्तंतु नरिदहो साहिउ ।
एहु मियंकु देव उवलक्खहि <sup>२३</sup>	कण्णारयणु <sup>२४</sup> एउ तं लक्खहि <sup>२५</sup> ।
ग्रहु सो विज्जाहरवइ आयउ <sup>२६</sup>	नामैं रयणचूळु विक्खायउ ।
ताम नराहिवेण परिआणिय <sup>२७</sup>	कयसंभासण पुणु सम्माणिय ।

१०

तो-लीजिए, अपने परिजनोसहित जाइए और राज्य कीजिए ! इसपर साथमें चलनेको प्रस्तुत रत्नशेखर कहने लगा—हे धवल-यशस्वी-कुमार ! मैं भी तुम्हारे साथ ही जाऊँगा और मगधराज श्रेणिकके दर्शन कहेँगा । सज्जनोके हृदयमें प्रेमरस उत्पन्न कर और कतिपय दिवस कृतज्ञ सुहृत्के साथ व्यतीत कर, सुंदर विमानमें बैठकर, जंबूकुमार गमनके लिए उद्यत हुआ ॥ १२ ॥

[ १३ ]

विद्याधर रत्नशेखरके साथ पांच सौ विमान चले । मृगांक अपनी भार्या व कन्या सहित चला । गगनगति भी उन्नत-मान होकर चला । सभी विमानोंसहित आकाशमें दौड़ने लगे और नर्मदाके निकट कुरल पर्वतपर आये । वहाँ सुप्रमाण स्कंधावार देखकर, समास्थलमें विमान लटकाये गये । (सवने) उतरकर मुकुटबद्ध-राजाओंके प्रधान राजा (श्रेणिक) का जय-जयकार किया । जंबूस्वामीकी देखकर मगधेशने संतोषपूर्वक भुजाओसे आलिगन किया, शिर चूमकर अपनी जांधोपर (गोदीमें) बैठाया, और उसका मुख देखते हुए साधुवाद दिया । गगनगतिने भी जैसा उसने चाहा, वैसा युद्धका समस्त वृत्तांत राजाको कहा—हे देव ! इन मृगांकको देखिए, और यह वह कन्यारत्न है, इसे भी देखिए ! यह वह विद्याधरपति आया है, जो रत्नशेखर नामसे विख्यात है । तब नराविपने सबको जानकर संभाषण करके,

२४. घ लं ड । २५. ख ग घ गमण । २६. क ग सहु । २७. ख ग पइ । २८. व मि । २९. क ड वि । ३०. क ड रसा । ३१. क ड कयवयदिवमा ।

[ १३ ] १. ख ग घ समाणह । २. क ल य । ३. ख ग घ ज्जु । ४. घ नउ । ५. क ख ग ल चलिउ । ६. क णउ । ७. क ड कुरल । ८. क णउ । ९. प्रतियोगें ति । १०. ख ग तिरि । ११. क ल हि । १२. ख ग रिउं । १३. घ मुहुं । १४. घ गइउ । १५. क ख ग व क्खहि । १६. घ कत्ता । १७. क ख ग लक्खहि । १८. क ड आउउ । १९. व णितं ।



- सुहसुहुत्ते जणनयणाणंदणि परिणिय निवेण मिथंकहो नंदणि<sup>२०</sup> ।  
 खयर-मिथंक चिरोहविबल्लिय वेणि वि किंकर करिवि विसज्जिय ।  
 पेसिउ गयणगइ वि सत्थाणउ<sup>२१</sup> अप्पणु<sup>२२</sup> नरवइ देवि<sup>२३</sup> पयाणउ<sup>२४</sup> ।  
 १५ निय-पुरि पत्तउ जाम पईसइ उववणे ताम महारिसि दीसइ ।  
 नाम सुहम्मसामि विहरंतउ पंचहि<sup>२५</sup> सीससयहि<sup>२६</sup> सहुं पत्तउ<sup>२७</sup> ।  
 पविरलकयलोएण महीसे वंदिउ भत्ति<sup>२८</sup> पणविय सीसे ।  
 घत्ता—निवइ-नियउ-चरहिं संथुउ नरहिं तउ<sup>२९</sup> जंबुकुमारें उत्तमु<sup>३०</sup> ।  
 हयतमु<sup>३१</sup> तणु चरमु गणहर<sup>३२</sup> परमु सिरि-वीरजिणदहो<sup>३३</sup> पंचमु ॥१३॥

इय जंबूसामिचरिणु सिंगारवीरे महाकब्बे महाकइदेवयत्तसुयवीरवीरइए रयणसिहसंगामो  
 नाम<sup>३४</sup> सत्तमो संधी समचो<sup>३५</sup> ॥ संधि—७ ॥

फिर संमान किया । शुभसुहृत्तमें सब लोगोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाली मृगांककी पुत्रीको राजाने विवाह लिया । परस्पर शत्रुभावरहित विद्याघर( रत्नचूल ) और मृगांक राजा, इन दोनोंको किंकर(सेवक)बनाकर विसर्जित(विदा) कर दिया । गगनगति भी स्वस्थानको भेज दिया गया, और स्वयं नरपति प्रयाण करके, अपने नगरको पहुंचकर, जब (भीतर)प्रवेश करने लगा, उसी समय उपवनमें महामुनि दिखाई दिये । उनका नाम सुधर्मस्वामी था, और वे पांच सौ शिष्योंके साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे थे । लोगोंके कम हो जानेपर, राजाने (मुनिको) गिरसः प्रणाम कर भक्तिपूर्वक बंदना की । (अज्ञान)अंधकारका नाश करनेवाले, चरमशरीरी, तथा श्री महावीर जिनेंद्रके पांचवें अंतिम व उत्तम गुणधरकी राजाके निकटवर्ती अनुचरोने स्तुति की और फिर जंबुकुमारने ॥१३॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्थामीचरित्र नामक इय गंगार-  
 वीररत्नात्मक महाकाव्यमें 'रत्नक्षेत्र संग्राम' नामक सप्तम संधि समाप्त ॥ संधि—७ ॥

२०. ख ग णदिणि । २१. क णउ । २२. क घ ण पुणु । २३. य ग घ हेड । २४. य ग णि ।  
 २५. ख ग मह पं; घ मंजुत्त । २६. क ड थ । २७. क य ग णउ । २८. क घ ण यणम् । २९. क घ ण  
 मोहिय । ३०. क हर । ३१. क व ण जिणि; य ग दहं । ३२. क घ ण मत्ता इमा गंधो ॥ मयि. ७ ॥

संधि—८

[ १ ]

आरिसकहाष्ट्र अहिंयं महुकोला<sup>१</sup> करि-नरिदपत्थाणं<sup>२</sup> ।  
 संगामो वित्तिमिणं<sup>३</sup> जं दिट्ठं तं खमंतु महुं गुरुणो<sup>४</sup> ॥१॥  
 कव्वंगरससमिद्धं<sup>५</sup> चित्तताणं कईण सव्वं पि<sup>६</sup> ।  
 वित्तमहवा न वित्तं सच्चरिए घडइ जुत्तमुत्तं जं<sup>७</sup> ॥२॥  
 मा वण्णउ<sup>८</sup> असमत्थो घारेउं सव्वकव्वरसपूरं<sup>९</sup> ।  
 नियसत्तिरुव<sup>१०</sup> संगहियरसकणो द्वाउ<sup>११</sup> तुण्हिको<sup>१२</sup> ॥३॥  
 कव्वरस इमस्स मए विरइय-वण्णंस्स<sup>१३</sup> रससमुइस्स ।  
 गंतूण पारमहिंयं थावउ<sup>१४</sup> अत्थं महासंतो ॥४॥  
 सालंकारं कव्वं काउं पढिउं च जुज्झिउं तह य ।  
 अहिणेउं<sup>१५</sup> च पवोत्तु<sup>१६</sup> वीरं मुत्तूणं<sup>१७</sup> को तरइ ॥५॥  
 [वत्ता]—भत्तिष्ठ<sup>१८</sup> अरुहयाससुपण जोडियमुएणं<sup>१९</sup> पणवेपिणु हरिसियगत्ते ।  
 निम्मलनाणचउक्कवरु गणहरु<sup>२०</sup> पवरु<sup>२१</sup> पुच्छिज्जइ उत्तमसत्ते ॥६॥

[ १ ]

आर्पप्रोक्त कथासे अधिक मैंने वसंतक्रोड़ा, हाथी( का उपद्रव ), नरेंद्रके प्रस्थान व संग्रामका, यह सब जो वृत्त कहा, उसके लिए गुरुजन मुझे क्षमा करें ॥१॥ चितनशील कवियोंके द्वारा काव्यके अंग व रसोसे समृद्ध चाहे वह घटित हुआ हो या न घटित हुआ हो, जो कुछ युक्ति-युक्त कहा जाता है, वह सब सच्चारित्रमें घटित अर्थात् संभावित होता है ॥ २ ॥ समस्त काव्यरसके पूरको धारण करनेमें असमर्थ लोग स्वयं (काव्यगत विषयोंका) वर्णन न करे, अपनी शक्तिके अनुरूप रसकणोका संग्रह करके अर्थात् काव्योके अध्ययनका ही रस लेकर, मौन ही रहे ॥३॥ मेरे द्वारा रचे हुए नाना वर्णों व रसोके समुद्र इस काव्यके पार जानेके लिए महासंत जन (सहृदय लोग) इसमें (अभिषाशक्तितसे प्रतीयमान अर्थकी अपेक्षा, लक्षणा व व्यंजना शक्तियोंके आश्रयसे) अधिक अर्थ (विशेषार्थ)की स्थापना करें ॥४॥ अलंकार-सहित काव्य रचने, पढ़ने, जानने तथा अभिनय और प्रयोग करनेमें वीर (कवि)को छोड़कर और कौन पार पा सकता है ॥५॥

वरहृदासके उत्तम आत्मा पुत्रने भक्ति-भावसे हाथ जोड़कर, प्रणाम करके प्रसन्न गात्र हो, निर्मल ज्ञानचतुष्क (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय)के धारक उन गणघरप्रवरसे पूछा—॥१॥

[ १ ] १. क कोलाल । २. ख ग कर्दप । ३. व चित्तामणि । ४. ख ग महु, व मम । ५. क ड गुणिणो, व गुणिणे । ६. घ मे इस पूर्ण पंक्तिके स्थानमें यह पंक्ति है—सिसेसु सिद्ध तंतं ताणं कवीण सव्वं पि कहियकम । ७. क ड कव्व सरसपमिद । ८. व चित्तमहवा ण चित्तं । ९. ख ग जुत्तमजुत्तं । १०. क घ ड उं । ११. क ड त्तव, ग रूव, व ह्य । १२. घ ड ठाउ । १३. ख ग व्ते, व तुण्हिको । १४. घ वत्तं । १५. व ड वो । १६. ख ग नेतुं । १७. घ पउत्तुं । १८. व मो । १९. क ड य । २०. व भुइणा । २१. क व हर । २२. घ पउर ।

[ २ ]

खंडयं—पहु तउ दंसणकारणं लहिवि<sup>१</sup> विषयइ मे यणं ।  
सहु<sup>२</sup> तुम्हेहिं ससुचय<sup>३</sup> चिरभवि कहि मि परिचय<sup>४</sup> ॥

- तं निसुणेवि वयसीलसमुदे विदुम इव<sup>५</sup> फुरियाहरमुदे ।  
दर दरसियकुंदुज्जलदते अभियपवाहु व गिरपु सर्वते ।  
५ चिरभवकारणु सुमरावंते जंबूसामि भणिउ<sup>६</sup> भववंते ।  
कहमि कुमार तुज्जु आयण्णहिं<sup>७</sup> मणसंकपु एहु फुडु मण्णहिं<sup>८</sup> ।  
भग्वहो नियाहीहुयभवछेयहो सन्नु जिं<sup>९</sup> फुरइ चित्ति सविवेयहो ।  
एत्थु जि मगहादेसि असंकिउ नामें गामु बडढमाणंकिउ ।  
तहिं<sup>१०</sup> भवयसनामदेवोत्तर<sup>११</sup> दिव्यवरतणय वेणिण दीहरकर ।  
१० परममहावयचरणु<sup>१२</sup> चरेप्पिणु हुय सुर तइयपु सगो मरेप्पिणु ।  
पुव्वविदेहि जाय तत्थहो चुय वज्जयंत-महपउमनिवइ-सुय  
सायरससि-सिखकुमार-वियवखण घोळ वीर तउ चरिवि सलक्खण<sup>१३</sup> ।  
घत्ता—वेणि वि बभोत्तरि अमर सक्कसिरीधर जलकंठविमाणपु<sup>१४</sup> सुत्थिय ।  
आउसु जेत्थु सुहायरइ<sup>१५</sup> दससायरइ<sup>१६</sup> भुंजंत सोक्ख-विविहाइ<sup>१७</sup> थिय ॥२॥

[ २ ]

‘प्रभु आपके दर्शनोका हेतु प्राप्त कर मेरे मनमें ऐसा विकल्प हुआ है कि आपके साथ कहीं पूर्वभवमें विशिष्ट (प्रगाढ) परिचय रहा ।’ इस बातको सुनकर व्रत और बोलके समुद्र, विद्रुमके समान स्फुरायमान अक्षरमुद्राके धारक, कुंदपुष्पके समान उज्ज्वल दांतोको ईप्सु दिखलाते हुए, और बाणीसे अमृतका प्रवाह-सा बहाते हुए, तथा पूर्वभवके कारण (संबंध)को स्मरण कराते हुए उन भगवान् (मुनि)ने जंबूस्वामीको कहा—‘हे कुमार, मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो ! यह तुम्हारा मनोभाव है, ऐसा स्पष्टतासे समझो । क्योंकि जिस भव्यजीवका भवच्छेद (मोक्ष) निकट हो गया है, ऐसे विवेकवान्के चित्तमें सब कुछ स्पष्ट भासित होता है । यही इसी मगधदेशमें वर्द्धमान नामका एक भय-भीतिरहित गाँव था, वहाँ एक भवदत्त और इसरा (अपने नामके अन्तमें देव<sup>१</sup> पद युक्त) भवदेव, ये दो दोषबाहु ब्राह्मण-पुत्र उत्पन्न हुए । परम महाव्रत चारित्र्य (मुनि-धर्म)का पालन कर वे मरकर तीसरे स्वर्गमें देव हुए । वहाँसे ऋत होकर पूर्वविदेहमें वज्जदत्त और महापद्म नामक राजाओंके सागरचंद्र और शिवकुमार नामक (शुभ)लक्षणोसे युक्त एवं विचक्षण पुत्र हुए । वहाँ घोर पराक्रमपूर्वक तप करके वे दोनों ही ब्रह्मोत्तर स्वर्गके जलकांत नामक विमानमें इंद्रकी लक्ष्मीके धारक देव हुए; और दस सागरकी सुखकर आयु पाकर, विविध सुखोका भोग करते हुए वहाँ रहे ॥२॥

[ २ ] १. क ऊ लहु वि, ख ग लहुइ । २. क महु; ऊ महु । ३. व कहि । ४. क ड परिचय । ५. क ऊ रुह, घ रइ । ६. घ दरिसिय । ७. घ ‘उ । ८. क ‘स ग तुज्ज । ९. प्रतिगोमे ‘ण्णहि । १०. क ड ‘हि, ख ग मवाहि । ११. व वि । १२. क तहि । १३. क घ ड भवणामवत । १४. ख ग ‘वरण । १५. क ऊ ‘वखणु । १६. व ‘णइ । १७. क ड ‘इ । १८. क ‘हाइ, ख ग ‘हइ; घ ‘हइ; ऊ ‘हाइ ।

[ ३ ]

खंडयं—तर्हि वेणिं वि परोपर चिरभवनेहनिभरं ।

वसिऊणं तओ चुया इह भरहे पुणो हुया ॥

अह एत्थु जि वरमगहाविसए	सुररमणिसासवासियदिसए ।	
जिणमंदिरसंडियघरणियले	इंदीवररयकयसुरहिजले ।	
संवाहणु <sup>३</sup> नामु अत्थि <sup>४</sup> नयरु	नायरविलासहासियखयरु <sup>५</sup> ।	५
सावयसंकिणवणु <sup>६</sup> व द्वियउ	पायलु व नायाहिद्वियउ ।	
रहुकुलु व सलक्खणरामधरु <sup>७</sup>	अण्णाणुवएसु व नट्टपरु ।	
बहुवाणिउं मयरहरु व सहइ	जर्हि हट्टमग्गु भारहु कइइ <sup>८</sup> ।	
वावरइ दोणु पसरंतसरु	पत्थु वि संचरइ करेण करु ।	
भुयतुलतोळियकंसावरिउं <sup>९</sup>	पयउइ व कर्हि <sup>१०</sup> मि केसवचरिउ ।	१०
बहुसंथउ जणियपयक्खलणु <sup>११</sup>	कत्थइ <sup>१२</sup> थिउ णं जडचट्टणु ।	
जणु कर्हि <sup>१३</sup> मि सवासणु ववरइ	रक्खससमवायहो अणुहरइ ।	

[ ३ ]

वहाँ दोनों ही परस्पर पूर्वभव-जन्य स्नेहसे भरपूर होकर रहे । वहाँसे व्यूत होकर पुनः इसी भारतमें हुए । अब यही इस सुंदर भगव देशमें, जहाँ सुररमणियोंके आवाससे दिखाएँ सुगंधित है, जहाँका भूमंडल जिनमंदिरोंसे मंडित है, और जहाँका जल इंदीवरोके पराग-रजसे सुरभित है, ऐसा संवाहन नामका नगर है, जहाँकि नागरिकोंका विलास लेखरोके विलासका उपहास करता है । श्रावकोसे संकीर्ण होनेसे वह स्वापदोंसे संकीर्ण बनके समान स्थित है, और नागोंसे अधिष्ठित पातालके समान नागवृक्षों अथवा न्याय-नीतिसे अधिष्ठित है । लक्ष्मणसहित राम तथा सुलक्षण रानियोंको धारण करनेवाले रघुकुलके समान वह नगर सुलक्षण वृक्षोंसहित आरामों तथा सुलक्षणा सुंदरियोंका धारक है । जिसप्रकार अज्ञानोपदेशसे परमार्थ नष्ट हो जाता है, उसीप्रकार उस नगरके शत्रु नष्ट हो गये हैं । बहुत वनियों (व्यापारियों)से युक्त होनेसे वह बहुत अधिक पानीवाले मकरगृह (सागर)के समान शोभा पाता है । वहाँका हाटमार्ग (बाजार) मानो भारत कथाको कहता है । भारत-युद्धमें वाणोंका प्रसार करते हुए गुरुद्रोण (युद्ध) व्यापृत थे, वहाँके हाटमार्गमें खूब शब्द करता हुआ द्रोण नामक माप व्यापृत अर्थात् व्यवहृत होता है । कहीं पर वह केशवके चरित्रको प्रगट करता है, जिसमें केशवने अपनी भुजाजोरुपी तुलामे कंस-जैसे प्रधान (शत्रु) को तोला अर्थात् विजित किया था; वहाँ हाथोंसे तौलनेवाली तुलामे कंसिकी बनी श्रेष्ठ वस्तुएँ तौली जाती हैं । कहीं बहुत-से व्यापारियोंके साथ व्यापारमें गिरावट (या रुकावट) जानकर इसप्रकार ठहरे हुए हैं, जैसे कि मूर्ख शिष्य पाठमें स्वल्प जानकर खड़े हो जाते हैं । कहीं दासनों(बरतनों)का व्यापार करनेवाले लोग,

[ ३ ] १. क चिरं, ख ग नेहानि । २. क ड भरहेण पुं, ख ग भारहे पुं; घ भरहे पुणु ते हुय । ३. क ड नाम अं, घ अत्थि नाम नं । ४. क णायरविलासं । ५. ग सावइ; क ड संकिण्णववणु; ख ग व संकिण्णु वणु । ६. ख ग व सलक्खणु रामं । ७. ख ग व वाणिउं । ८. क ड सहइ । ९. क भुअं; ख ग घ तुलतोळिउ कंसां, ड भुअतुलतोळियकंसाचरिउ । १०. घ कर्हि । ११. क ड जणियपयक्खलणु । १२. घ ई । १३. घ कर्हि ।

जहि अक्खरसंगहि<sup>१४</sup> सहहि<sup>१५</sup> कइ टेढहि<sup>१६</sup> जूवार<sup>१७</sup> विचिचत्तसइ ।  
 जिणहरहि<sup>१८</sup> सट्ठपण-पुञ्जवया<sup>१९</sup> दीसंति मुणिद वि तहिं जि सया ।  
 १४ घत्ता—तं पुरु<sup>२०</sup> सुपइड्डियनिवइ<sup>२१</sup> जिणचरणमइ परिपालइ समरे वलुद्धर<sup>२२</sup> ।  
 कुवलयपरिवडिद्वयरिसु<sup>२३</sup> छणससिसरिसु महिवीढभारवारियधुर<sup>२४</sup> ॥३॥

[ - ४ ]

[खंड्य]—तहो सुहलस्खणभायणा<sup>२५</sup> गुरुदेवक्षणकयमणा<sup>२६</sup> ।  
 सिगारासयसिप्पिणी<sup>२७</sup> पढमकलत्तं रुप्पिणी<sup>२८</sup> ।

भवयत्तु जेठु जो विहि मि चिर<sup>२९</sup> सुर<sup>३०</sup> सायरचंदु पुणो बि सुर ।  
 सो जाउ पुत्तु जणजाणियह<sup>३१</sup> नरनाहे रुप्पिणीराणियह<sup>३२</sup> ।  
 ५ सउहम्मनामु<sup>३३</sup> विज्जापवरु नीसेससत्थविण्णानधर<sup>३४</sup> ।  
 सज्जनमणनयणाणदयर<sup>३५</sup> लाइयपडिचक्खकुमारडर<sup>३६</sup> ।  
 एकहि<sup>३७</sup> दिणे सुप्पइड्डु<sup>३८</sup> निवइ सकलत्तु सनंदण सुद्धमइ ।  
 गस वंदणभत्ति<sup>३९</sup> भवत्तरणु सिरिवीरजिणंदसमोसरणु<sup>४०</sup> ।

शव-अशनका व्यवहार (प्रयोग) करनेवाले (शव-भोजी) राक्षस समूहका अनुकरण करते हैं। कही अक्षरोंका संग्रह अर्थात् काव्य पदोंकी रचना करते हुए कवि ऐसे शोभायमान होते हैं, जैसे द्यूतगृहोंमें पासोंके रसमें तल्लीन विचित्रबुद्धिवाले जुआड़ी। वहाँकि जिनगृहोंमें सद् + अप्रण अर्थात् सदाचारका पालन करनेवाले तथा पूज्य-वचन बोलनेवाले मुनींद्र सदैव दिखाई देते हैं। जिनचरणोंका भक्त, समरमें उद्वत बलशाली, कमलो (कुमुदों)को पूर्णतः प्रफुल्लित करनेवाले पूर्णचंद्रमाके समान पृथ्वीमंडलके हर्षको बढ़ानेवाला, एवं पृथ्वीके भारकी घुराको धारण करनेवाला सुप्रतिष्ठ नामका राजा उस नगरका पालन करता है ॥३॥

[ ४ ]

उसकी शुभलक्षणोंकी भाजन, गुरु व देवताके अर्चनमें मर्न लगानेवाली तथा शृंगारके आशयकी शिल्पिनी अर्थात् शृंगारके मर्मको समझनेमें दक्ष, ऐसी रुक्मिणी नामकी प्रधान रानी है। पूर्वमवमें जो ज्येष्ठ (आता) भवदत्त था, फिर देव, फिर सागरदत्त और पुनः देव हुआ था, वह राजाकी जनमाया रुक्मिणी रानीका पुत्र हुआ। उसका नाम सौधर्म रखा गया। वह विद्याओंकी जाननेमें श्रेष्ठ और समस्त शास्त्रों व विज्ञान(कलाओं)का धारक, तथा सज्जनोंके मन और नयनोंकी आनंद देनेवाला, एवं शत्रुपक्षके राजकुमारोंको डर उत्पन्न करनेवाला हुआ। एक दिन वह शुद्धमति सुप्रतिष्ठ राजा अपनी पत्नी और पुत्रके साथ वंदना करनेकी भक्तिसे संसारसे पार उतारनेवाले वीरजिनेन्द्रके समोद्यरणमें गया और उन परमेश्वरीकी दिव्यध्वनि सुनकर १४ क ड सगय । १५ ख ग ड हि । १६ ख ग घ टिटिहि । १७ व जूवार । १८ क ड रहि । १९ क ख ग रया, घ पूयरय । २० घ पुरि । २१ क ड द्वियडियणि । २२ क वल, ड ड्डइ । २३ क पखिद्वय । २४ क ख ग ड घर ।

[ ४ ] १ क ड भायण । २ क ड वण । ३ ख ग सप्पिणी । ४ क ख ग ड कलत्ता ह । ५ क ड भयवत्तु । ६ क वल, घ विर । ७ ख ग सुर । ८ ख ग जायत्त । ९ क घ गहु, ड यहो । १० ख ग घ गहु, ड यहो । ११ क ड जाम, घ नाम । १२ घ विज्जाण, घ घर । १३ घ णदणहो । १४ ड हि । १५ ख ग ड्डु । १६ क व ड हत्ति । १७ क घ ड जिणंद, क ड समवसरणु ।

निसुणेवि परमेष्टिहि<sup>१</sup> दिव्यज्जुणि पवज्ज लेवि हुव परमसुणि ।  
 गणहर<sup>२</sup> चउत्थु तवतवियत्तणु सिद्धिवहुनिवेसियविमलमणु । १०  
 पेक्खेवि जणेरु निवसिरिचइ<sup>३</sup> सवहम्मकुमारु वि पवइ ।  
 गणहर पंचसु नासियदुहहो अविणट्ठथाणु सासयसुहहो ।  
 सो हउ<sup>४</sup> रिसिसंचविराइयउ विहरंतुज्जाणि पराइउ<sup>५</sup> ।

धत्ता—जो भवएउ विहि मि लहुउ पुणु अमरु हुउ पुणु सिवकुमारु सुरवर पुणु ।  
 विज्जुमालि<sup>६</sup> गिन्वाणु<sup>७</sup> हुउ<sup>८</sup> चउ-देवि-जुउ जलकते विमाणे महागुणु ॥४॥ १५

[ ५ ]

खंडयं—सगचविउ मणोहरे जायउ एत्थु जि पुरवरे ।  
 सो तुह<sup>९</sup> जियसकंदणो अरुहयासचणिनंदणो ॥१॥

जं तं तव चिरु देविचउळं छम्मासावहि-पिययममुकं ।  
 चिरुभवनेहनिवद्धं आयं सायरवत्ताईणं जायं ।  
 दुहियचउळं विज्जाविमलं चरणोहासिय<sup>१०</sup>—कोमलकमलं । ५  
 करपल्लवजियरत्तासोयं<sup>११</sup> भमरपीयसुहसासामोयं<sup>१२</sup> ।  
 मणिमयकुंडलमंडियगंडं कासघणुद्धरअग्गिमकंडं ।

प्रव्रज्या लेकर महामुनि हो गया । उन तपसे तपाये हुए तनवाले चतुर्थ गणधरने सिद्धिबधूमें अपने विमल मनको लगाया । इसप्रकार अपने जनकको राजलक्ष्मीका त्यागी होते देख सौधर्म कुमार भी प्रव्रजित हो गया । उन दुःखका नाश करनेवाले और शाश्वतसुखके पद (मोक्ष)को प्राप्त वीरजिनैब्रका वह पाँचवाँ गणधर ही मैं हूँ, और मुनिसंघके साथ बिहार करते-करते इस उद्यानमें आ पहुँचा हूँ । दोनो भाइयोंमें छोटा जो भवदेव हुआ था, फिर देव, फिर शिवकुमार और फिर उत्तम देव हुआ, वह विद्युन्माली नामका महागुणवान् देव जलकांत विमानमें चार देवियोसे युक्त हुआ ॥४॥

[ ५ ]

वही तू स्वर्गसे च्युत होकर इस मनोहर सुंदर व श्रेष्ठ नगरमें अरुहदास वणिक्का इंद्रको भी जीतनेवाला पुत्र हुआ है । पूर्वमें वे जो तुम्हारी, चार देवियाँ थीं, वे प्रियतमके स्वर्गसे च्युत होनेकी छह मासकी अवधिमें उपरांत पूर्वभवके स्नेहसे बंधी हुई (स्वर्गसे) आकर सागरदत्तादिको उत्पन्न हुई है । वे चारों पुत्रियाँ विद्याओंमें विमल अर्थात् विद्याओंके विमलज्ञानसे युक्त, अपने चरणोंकी शोभासे कोमल कमलोंको तिरस्कृत करनेवाली, तथा अपने कर-पल्लवोंसे रक्ताशोकको भी जीतनेवाली हैं, और उनके मुखश्वासका आमोद भ्रमरों-द्वारा पीया जाता है, अर्थात् भ्रमर उनके मुखोंको कमल एवं उनके मुखके श्वासको-कमलगंध समझकर उनपर मंडराते रहते हैं । मणिमय कुंडलोसे उनका कपोलप्रदेज मंडित है, और वे काम-घनुद्धरेके अग्निम (श्रेष्ठ)वाण ही

१८. घ ङ 'टिहि' । १९. क ङ गहणर । २०. ब तवसिरिचइ । २१. ख ग हउ । २२. क ङ इहाइयउ ।  
 २३. ख ग विज्ज' । २४. क ङ 'णि'; ख ग 'ण' । २५. क ङ चुउ ।

[ ५ ] १ क ङ तुह । २ क ङ चलोण' । ३ ख ग 'सोए' । ४. ख ग 'मोए' ।

१० दिण्णं<sup>५</sup> तुब्बं ताण्णं<sup>६</sup> तं सत्त्वं दसमण्णं<sup>७</sup> वासरं परिणयेत्त्वं<sup>८</sup> ।  
 इय कज्जेण कुमार पविचं<sup>९</sup> परिचण्णं<sup>१०</sup> पडिल्लं<sup>११</sup> ते चित्तं ।  
 अन्हे<sup>१२</sup> लोयणदियदेहं<sup>१३</sup> परयाणहिं<sup>१४</sup> जम्मंतरनेहं<sup>१५</sup> ।  
 निसुणेवि सुणियवणं<sup>१६</sup> सुहकम्मो सविसेसं सुभरिय नियजम्मो<sup>१७</sup> ।  
 पुणु पुणु जइचलणेसु<sup>१८</sup> भत्तो जण्ह<sup>१९</sup> जंवूसामि सुसत्तो ।  
 वत्ता—मोक्खमहापहं गसु रयमि परियणु चयमि निविण्णसे<sup>२०</sup> महु वय किज्जद ।  
 चिरु भवे जिह मणु<sup>२१</sup> संवरितं<sup>२२</sup> वइयवरिय सुहु<sup>२३</sup> मोक्खदिक्ख पहुं<sup>२४</sup> दिज्जज्झा॥

[ ६ ]

खंडयं—इय सोऊणं सलहरो<sup>२५</sup> बोल्लह वयणं<sup>२६</sup> गणहरो ।

ता वच्चसु सनिहेलणं<sup>२७</sup> पुच्छसु पियमायाजणं<sup>२८</sup> ॥१॥

५ भणह ताम मेल्लियमणुजभवो अरुहयासजिणवइतणुजभवो ।  
 मायवप्पु इह अज्जु भणियओ<sup>२९</sup> एत्तिओ<sup>३०</sup> जं तेहिं जणियओ<sup>३१</sup> ।  
 ६ कहि मि काले जं पुणु न भाविचं दुल्लहु<sup>३२</sup> जम्मकोडिहिं<sup>३३</sup> न पाविचं<sup>३४</sup> ।  
 धम्मरयणु तं तत्त पसाण्णं<sup>३५</sup> लद्धु सीलु तह विणु<sup>३६</sup> कसाण्णं<sup>३७</sup> ।

हैं । (तुम्हारे) तातने उन सबको तुझे दे दिया है, अर्थात् तुम्हारे लिए उनका वाग्दान कर लिया है, वसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा । इस कारण (पूर्वभव संबंध) से, हे कुमार ! तुम्हें रा पवित्र चित्त मेरे परिचयमें लग गया । इस-लोग लोगोंके शरीरमें आनंद उत्पन्न करने-वाले पूर्वजन्मके स्नेहको जानते हैं । मुनिके वचनोंको सुनकर विशेषरूपसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण कर पुनः पुनः यतिके चरणोंमें भक्ति दशति हुए, शुभकर्मोंवाले सुसत्त्व (पवित्रात्मा) जंवू-स्वामी कहने लगे—हे प्रभु ! मैं मोक्ष-महापथमें गमन करूँगा और परिजनको छोड़ूँगा । मैं संसारसे उदासीन हो गया हूँ, मेरे ऊपर दया कीजिए, और पूर्वभवमें जिसप्रकार (मेरे) मनको संवृत अर्थात् संवरयुक्त बनाया था, उसीप्रकारकी शुभ (श्रेयस्कर) दिगंबरी-मोक्ष-दीक्षा दीजिए ॥५॥

[ ६ ]

यह सुनकर वे (कर्म) मलनाशक गणधर बोले—‘तो फिर अपने घर जाओ और माता-पिताजनोंसे पूछो ।’ तब मनोद्भव अर्थात् कामवासनाको त्यागनेवाला अरुहदास और जिन-भतीका तनुज बोला—आज जिन्हें यहाँ माँ-बाप कहा जाता है, वह इतने (से) ही कि उनके द्वारा जन्म दिया जाता है । कोटि-कोटि जन्म पाकर भी जो दृढं धन पहले कभी नहीं मिला था, और जिसका पहले कभी अभ्यास नहीं किया था, वह धर्मरत्न तथा कपायरहित शील

५. ख ग दित्त । ६. व तए । ७. क व रु दसमे । ८. ख ग दित्त । ९. क ख ग व परिचय, रु पडिवय । १०. क व रु अम्हा । ११. क रु जय । १२. ख ग ड । १३. व लउ. ड ण्णउ । १४. प्रतिषेधे भण । १५. क ख ग संवरिय, व ड नंवरिय । १६. क ड मोक्खु दिवइ महु ।

- [ ६ ] १ क व मण । २ ख ग वडण । ३ क रु सहणिहं, ख ग सुहणिहं । ४. क व ड पिउ । ५. ग यउ । ६. ख ग ड । ७. क व यउ; व ड यउ । ८ क व ड जम्मकोडि-कोडिहिं (ध न) पाविचं । ९ ख ग मण । १०. क विण ।

मायवप्प तुहँ<sup>११</sup> तुहँ जि वंघवो<sup>१२</sup> तुहँ<sup>१३</sup> जि मिचु तारियमहामवो<sup>१४</sup>  
 तुहँ<sup>१३</sup> जि देव गुरु तुहँ<sup>१३</sup> जि सामिओ<sup>१५</sup> पई जि पइसु महु मोहु नामिओ<sup>१६</sup> ।  
 विज्जमाणकणयमयचामरं दावियं सुहं माणुसामरं ।  
 करि पसाउ लइ पुण्वचारिणं देहि विक्खं<sup>१७</sup> किं बहु-विचारिणं<sup>१८</sup> । १०  
 वत्ता—निच्छउ तहो वोरहो<sup>१९</sup> सुणेवि वयणई सुणेवि सल्लम्ममहासुणि भासइ ।  
 मायवप्प पुच्छंताहँ<sup>२०</sup> तउ लिताहँ<sup>२१</sup> भणु पुत्त काई किर नासइ<sup>२२</sup> ॥६॥

[ ७ ]

खंडयं—चरमसरीरहो ते मणं म करउ किं पि वियप्पणं ।

आइच्छेपिणु परियणं सेवसु वच्छ तवोवणं ॥६॥

गुरुभासिउ आपसु लहेपिणु चलणजुयलें भत्तिप्र<sup>२३</sup> पणवेपिणु ।  
 गयउ कुमार पत्तु नियमंदिउ दाणान्वियवविणवंदिरु ।  
 जणणि-जणेहं पयहँ<sup>२४</sup> सिरु नाविचि करकमलंजलि सीसे चडाविचि । ५  
 संसारिणिअवस्थ पुणु डोल्लइ चबरदोउ व माणुसु डोल्लइ ।  
 अहिजीहाफुरणुं व जीविउ चलु गिरिणइपूव व ओहट्टइ वल्लु ।  
 लच्छिविलासु गंडपट्टमालणु विसयसोक्खु पामा-नहचालणु ।

तुम्हारे ही प्रसादसे प्राप्त हुआ । तू ही मेरा माँ-बाप है, और तू ही मेरा बांधव, तथा तू ही महासंसार(समुद्र)से पार उतारनेवाला मित्र । तू ही देव है, गुरु है, और तू ही स्वामी । तूने ही सर्वप्रथम मेरा मोह उपशान्त किया था, और जहाँ स्वर्णमय चंवरोसे व्यजन डुलाया जाता है, ऐसे मनुष्य और देवसुखोको दिलाया था । (अतः) कृपा कीजिए और पूर्व (जन्मों) से ही (मोक्षमार्ग) चलनेवाले (मुझ)को दीक्षा दीजिए ! बहुत विचार करनेसे क्या ?

उस धीरका निश्चय जानकर और उसके वचनोंको सुनकर सौधर्म मुनि कहने लगे—  
 रे वरस कहो तो ! माँ-बापको पूछकर, फिर तप लेनेसे क्या हानि होती है ? ॥६॥

[ ७ ]

रे वरस ! तुझ चरमसरीरीको अपने मनमें कोई विकल्प लानेकी आवश्यकता नहीं है, अतः परिजनोंसे पूछकर तपोवनका सेवन करना । गुरुके कहे हुए आदेशको लेकर, उनके चरण-युगलको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, कुमार गया, और दानसे बंदीबुंदको आनंदित करनेवाले अपने घरको पहुँचा, एवं जननी और जनकके पैरोंको सिर नमाकर, करकमलोंकी अंजलिको शिर-पर चढाकर, वह बोला—‘यह संसारी अवस्था ऐसी है, जिसमे मनुष्यका (चंचल) मन चौरस्तेके दोपकके समान (सासारिक विषयोंमें यहाँ-वहाँ) डोलता है । जीवित(आयुष्य) सपके जिह्वा-स्फुरणके समान चंचल है, और बल गिरिनदीके पूरके समान (तिरंतर) ह्रासको प्राप्त होता रहता है । लक्ष्मीका विलास गंडमाला(रोग)के जैसा है, और विषयमुख नखोसे खाज-

११. क ख ग तुहँ । १२ क ड उ । १३ क ड तुहँ । १४. क उओ । १५. क उ, घ उ । १६ क ड णासिओ, व उ । १७ ख ग देवत्त । १८. ड विचा । १९ क ड वो । २०. क ड तह । २१ क ड तउ त लैंतह । २२. ख ग उ ।

[ ७ ] १ घ लिणु । २. न्व ग जुजलु । ३ क ड य । ४ क व ड जणे । ५ क ड हि, व हि । ६. क ड दोवउ । ७. फुरणु ।



- १० ड्य कनेग अजु पव्वजमि सहुं तुम्हहिं<sup>८</sup> खंनखु विरल्लमि ।  
 अप्पणुं ग्गामिउं जगु जि न्गमावमि राखविरोह वे वि उवसावमि ।  
 सुयववणाउ माय सुच्छंगय कह व कह व उम्मुच्छिय न वि सुय ।  
 ग्गरपवणाद्वयजलि व कंपिय मजलनयण-गगिर-गिर जंपिय ।  
 पुत्त पुत्त महु जं पड<sup>१</sup> पयडिउ मडिहरसिहरि<sup>२</sup> वल्लु<sup>३</sup> णं निवडिउ ।  
 पुत्त पुत्त तुह<sup>४</sup> मंडणु निलयहो तउ छेतेण जाइ कुलु विलयहो ।
- १५ बन्ना—पुत्तु जि गोत्तहो आसतन संताणवरु शुद्धभारममुद्धियकंवरु<sup>५</sup> ।  
 पुत्तु जि आवडवल्लरिहि<sup>६</sup> कुलखयकरिहि<sup>७</sup> विद्धंसणवधुरसिधुन ॥७॥

[ ८ ]

खंडयं—ड्य संमारे जं पियं निसुणेवि जणणी जंपियं ।

चउगइदुम्भनियामिणा भणियं जंघुसामिणा ॥१॥

- प्रहु लोयायान विसुद्धकम्मि को चवड चविउ जं<sup>१</sup> तुम्हि अम्मि ।  
 ५ किर वंमुज्जालड जा म पुत्तु गुणिगणणि<sup>२</sup> पढसु आधारजुत्तु ।  
 जाएण न कंदिहिं वडिरे जण नंदिंति न सज्जण मड<sup>३</sup> सुहेण ।  
 दाणेण अहव निज्जियरणेण मुकविस्स<sup>४</sup> अह जिणकित्तणण ।

गुज्जलानेके समान हैं । इस कारणसे मैं आज ही प्रव्रज्या लूंगा । अपने आत्माको मैंने (सुद्धके प्रति) क्षमा(भाव)से युक्त कर लिया है, और लोकसे भी मैं (अपने प्रति) क्षमा(भाव) चाहता हूँ, एवं राग और विरोध(द्वेष) दोनोंको उपधांत करता हूँ ।<sup>१</sup> पुत्रके इन वचनोसे मैं मूर्च्छित हो गया, और किसी-किसी तरह उन्मूर्च्छित हुई, मरी नहीं (अर्थात् किसी-किसी तरह मरनेसे बची) । वह तीव्र पवनने आहत कदलीके समान कांपने लगी, एवं सजलनेत्र होकर ऐसी गद्-गद् बाणी बोली—हे पुत्र ! तुम्हारे वचन (कुल)कल्याणके विरुद्ध और विक्कारणीय हैं । हे पुत्र ! तूने जो कहा वह मेरे लिए पर्वतशिखरपर बज्रपातके समान है । हे पुत्र ! तू ही घरकी गोमा है, तेरे तप छेनेसे कुलका विनाश हो जायगा । पुत्र ही कुलका आगावूस है, संतानोंका धारक है, और कुटुंबके गुरुभागको कंघोपर उठानेवाला है । पुत्र ही कुलका क्षय करनेवाली आपत्ति-बल्लरीकी विध्वंस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति है ॥७॥

[ ८ ]

इस संसारमें जो प्रिय है, जननीके वैसे कवनको मुनकर चारों गतियोंके दुःखका नियमन करनेवाले जंघुसामीने कहा—‘हे शुद्धशील माँ ! यह जो लोकाचार तुमने बतलाया, वह दूसरा कौन कह सकता है ? निश्चयने पुत्र वही है, जो वंशको उज्ज्वल करे, तथा जो गुणियोंको गणनामें प्रथम हो, और आचारयुक्त हो । जिसके जन्म लेनेसे वैरी क्रंदन नहीं करते, और सज्जन सदा मुनसे अनंद नहीं मनाते; जिसके दानसे अथवा रणको जीतनेसे; मुकवित्व-से

८. क डं हं । ९. क डं उ, व अप्पणु । १०. क डं वमियउ, व खमियउ । ११. क डं पड । १२. क डं तिउहिं । १३. ड वज्ज । १४. ड तुहु । १५. कं यहुं । १६. ख गं भाससुं, वं यमुदियं । १७. क डं रिहो, व रिहिं । १८. क डं करिहो, वं करिहिं । १९. गं विधुर ।

[८] १. क डं डह । २. ख गं जो । ३. ख गं पुयं, वं गणेण । ४. व सडं । ५. क डं मुकपत्तं ।

जसहंसु भुवणपंजर<sup>१</sup> न संतु  
 किं तेण पयापरिपूरणेण  
 दुन्वसणभुत्तु कुलकंदखणु  
 तो वरि तं करमि विवेकम्मु  
 सामण्हो<sup>२</sup> सञ्चु<sup>३</sup> न धरणिवल्ल  
 तं करमि न विराहगइ पुणो वि  
 इंदियवावार न जेत्यु फुरइ  
 जहि<sup>४</sup> मिलिड विलीयइ कालद्वु  
 जहि<sup>५</sup> खयहो पवसइ कलिकयत्तु<sup>६</sup>  
 कहियइ<sup>७</sup> इय कहिवि निरंतराई  
 संबोहियाप्रे<sup>८</sup> मायप्रे<sup>९</sup> पवुत्तु<sup>१०</sup>

वंभंडे न धावइ अइकमंतु ।  
 नियजणणीजोवणलूरणेण<sup>११</sup> ।  
 अत्यत्थिड मारइ जणणि-जणणु ।  
 जिणकेवलीहिं जं आसि गम्मु । १०  
 कुलनामुकीरमि चंदफलप्रे<sup>१२</sup> ।  
 डंकेइ न जहि<sup>१३</sup> मणमंकुणो वि ।  
 अत्योवलंसु न वियारु करइ ।  
 अत्यवणु<sup>१४</sup> जाइ आयासु सञ्चु ।  
 तउ चरमि निरंजण होमि संतु । १५  
 सविसेसई<sup>१५</sup> नियजम्मंतराई ।  
 पडिबज्जिउ सचलु वि पुत्तु जुत्तु<sup>१६</sup> ।

वृत्ता—निच्छउ परियाणिवि नंदणहो सिवसुहसणहो पिथरे सिक्खनिवेसिय<sup>१७</sup> ।

सायरपमुहुम्माहियहो बइवाहियहो नियपुरिस वेणिण संपेसिय ॥ ८ ॥

अथवा जिनभगवान्का कीर्तन करनेसे जिसका यशःहंस इस संसाररूप पिण्डमें न समाता हुआ, इसका अतिक्रमण करके संपूर्ण ब्रह्मांडमें तीव्रगतिसे नहीं जाता; उस मात्र उदरपोषण करनेवाले अथवा प्रजापूरण (संतति वृद्धि) करनेवाले, निज-जननीके जीवनको काटने(लूटने)वाले पुत्रसे क्या जो दुर्व्यसनोंसे भक्षित(वशवर्त्ती) होकर कुलके मूल(धर्म)को ही खोद डालता है, एवं अर्थपरायण होकर माँ-बापको भी मार डालता है ।' तो अच्छा है कि मैं वह परित्यागकर्म (संसारत्याग) करूँ जो जिनकेवलियो-द्वारा गम्य रहा है । सामान्य व्यक्तिके लिए जैसा साध्य नहीं है, उसप्रकारसे मैं चंद्रमंडलपर अपने कुलके नामको उकेरूँगा । मैं वह करूँगा जिससे पुनः विग्रह-गति (संसारमें आवागमन) न हो, और जिससे यह मनरूपी मत्कुण पुनः डंक न मारे (अर्थात् विषयोंकी तृष्णासे अभिभूत न करे) । जहाँ इद्रिय व्यापार प्रगट ही नहीं होता है, अर्थकी (उपलब्धि या अनुपलब्धि) जहाँ विकार उत्पन्न नहीं करती, जहाँ मिलने (पहुँचने)से कालद्रव्य विलीन हो जाता है (अर्थात् जहाँ जन्म-मरण व मृत्यु नहीं होते), जहाँ समस्त आकाश अस्तंगत हो जाता है, और जहाँ कलिकृतांत अय हो जाता है, मैं ऐसा तप करूँगा, और निरंजन(कर्मरूपी कालमासे रहित)-संत होऊँगा । यह कहनेके अनंतर उसने विशेषतासे (विस्तारपूर्वक) अपने निरंतर (पाँच) जन्मांतरोंको कहा । तब बोधकी प्राप्ति हुई माने कहा—पुत्र । तूने जो कुछ प्रतिपादन किया, सब युक्त है । निवसुखमें मन लगे हुए पुत्र-का निश्चय जानकर पिताने विवाहके लिए समाहे हुए (उत्साहित) सागरदत्त प्रमुख वणिक्कोके पास शिक्षा(समाचार) देकर अपने दो पुरुष भेजे ॥८॥

१. क ड भुवण, ख ग भुयण, घ भुवण । ७. ख ग नियजणणे । ८ व 'सहो । ९. क मञ्जु । १० व 'फलड । ११ घ जहि । १२. ड जहि । १३ क ड अर्थ । १४. क ड जहि । १५. क ड 'क्रियतु । १६. ख ग 'यड । १७ ख ग 'सइ । १८ प्रतियोगे 'याड । १९ क व ड 'ड । २०. क ड पञ्चु । २१. क ड जुत्तु । २२ ख ग सिखाइ विनि; व सिक्खवि विनि ।

[ ६ ]

खंडयं—ता तहिं<sup>१</sup> मंडवे थकयं दिट्ठ<sup>२</sup> सेट्ठिचउकयं ।तोरणदारपराइया तेहिं<sup>३</sup> मि ते वि विहाइया॥

- तो अचमुत्थाणु करेवि तहु आसणु दहिं<sup>४</sup> कुसुमकखयहिं<sup>५</sup> सहुं ।  
 तंओलुं विलेवणुं सज्जियउ आयाजोगु सन्नु वि क्रियउ ।  
 ५ बोल्लणहं<sup>६</sup> लग्गु विहि एकु नरु वरताए<sup>७</sup> पेसिय<sup>८</sup> तुम्ह घर ।  
 अघडियउ घडावइ दिण्णदिहिं<sup>९</sup> विहडावइ सुघडिउ दुट्ठविहिं<sup>१०</sup> ।  
 दइयहो<sup>११</sup> कि करइ सुपुरिसमइ असमत्तकज्ज जहिं<sup>१२</sup> अवरगइ ।  
 बोल्लंतहो तहो संवरियमणु<sup>१३</sup> अणिमिसदिट्ठि<sup>१४</sup> मुंहु<sup>१५</sup> नियइ जणु ।  
 सव्वत्थ<sup>१६</sup> वि लय<sup>१७</sup> विण्णकारयाइ बज्जंतइ तूरइ वारियाइ ।  
 १० कलवेणु-वीणसमलंकियाइ नीसइ गोयाइ<sup>१८</sup> मि क्रियाइ ।  
 कामिणिस्संचारइ धारियाइ रुद्धइ<sup>१९</sup> नेउरझंकारियाइ ।  
 लिहिओ<sup>२०</sup> इव संठिउ<sup>२१</sup> वंधुजणु अवरु वि सव्वो वि निहियसव्वणु ।  
 आहासइ पुणरवि<sup>२२</sup> सो ज्जि नरु अवलोयहु कण्णहु<sup>२३</sup> अण्णु<sup>२४</sup> वर ।  
 नियचित्तु सिद्धिबहुवहिं<sup>२५</sup> धरिउ परिणयणु कुमारं परिहरिउ ।

[ ६ ]

तब (इन दोनो पुरुषोंने वहाँ जाकर) मंडपमें बैठे हुए चारों ओरिष्ठियोंको देखा, और तोरण द्वारा पार करते ही वे दोनो भी उन ओरिष्ठियोंके द्वारा देखे गये । फिर उनके लिए अभ्युत्थान करके दधि, कुसुम व अक्षत आदिसे मंगलोपचार करके आसन दिया, ताबूल, कुंकुम व चंदन आदि विलेपन सामग्री आगे करके जो-जो कुछ आचार-व्यवहार योग्य है, सभी किया गया । तदनंतर दोनोमें-से एक व्यक्ति बोलने लगा—‘वरके तातने तुम्हारे घर मेजा है । (दुः) साहसी और दुष्ट-विधि अघटितको तो घटाता है, और सुघटितको विघटित कर देता है । सत्पुरुषकी बुद्धि इस दैवका क्या करे, जहाँ असंपन्न कार्यमें कोई और ही गति हो जाती है ? उसके बोलते हुए सब लोग अपना मन थामकर निर्निमेष दृष्टिसे उसका मुँह देखने लगे । सर्वत्र विस्फार अर्थात् उच्चलयसे बजते हुए तुर रोक दिये गये । मधुर वेणु और वीणासे समवेत सभी गान बंद कर दिये गये । कामिनियोंका संचार रोक दिया गया, और नूपुरोंकी झंकार अवरुद्ध कर दी गयी । वंधुजन तथा और जिन्होंने भी कानोसे सुना, सभी चित्रलिखितके समान (स्तंभित) हो गये । पुनः वही व्यक्ति कहने लगा—कन्याओंके लिए अन्य वर देखिए । अपने चित्तको (अतिशयरूपसे) सिद्धिबधूमें लगानेवाले कुमारने विवाहको त्याग दिया है ।

[ ९ ] १ ख ग ड तहि । २ ख ग व दिट्ठ । ३ ख ग तेहि । ४ ख ग तहि । ५ क ड यहि । ६ क ड तवोल । ७ क ड वण । ८ क ड बोलणह । ९ क ताए । १० क ड ए । ११ ख ग य दियो । १२ व दइ । १३ ख ग यहो । १४ ख ग जह । १५ क ग मणु । १६ क ख ग ड अणमि । १७ ख ग सहु । १८ ख ग विलइ । १९ क ख ग ड इ । २० क ड इ । २१ ख ग लिहियउ । २२ व सत्तिउ । २३ ख ग पुणु । २४ व कवहो । २५ व अवरु । २६ क ड वहुवहि, स ॥ वहुवइ, व वहुवहि ।

तुम्हहि<sup>२०</sup> सहुँ अम्हह<sup>२१</sup> परमरइ जं करहु पखु तं देहु मइ । १५

वत्ता—पिउ-मायरि-बंधव-जणहिं दुक्खियमणहिं बुझाविउ कह व न<sup>२२</sup> बुझइ ।

सखउ अल्लु जि तवचरणु वइरायमणु लिउत कुमार किम रुझइ ॥ ६ ॥

[ १० ]

खंडयं—सुणेवि वयोहरजं पियं<sup>२३</sup> करवत्तेण व<sup>२४</sup> कप्पियं<sup>२५</sup> ।

विसकवलेण व पुम्मियं सव्वाणं हियं ठियं ॥

हेडासुहुं संठिउ सयणविदु

णं गरुडझडपिउ फणिसमूहु

खरपरसुं हयउं विडवो<sup>२६</sup> व वक्खु

वरुं जुसुसामि मेळिवि वरिदु

चिरु विणिगयाउ कण्णाउ जाउ

अह ताउ जि<sup>२७</sup> पुच्छहुं<sup>२८</sup> वालियाउ

इय भणेवि वयोहरुं<sup>२९</sup> करे धरेवि

कण्णाण कहिउ कारणु समणु<sup>३०</sup>

निसुणेवि कजंतरु जित्तसिरिपु<sup>३१</sup>

निम्मलगुणगोत्तविसालियाहं

वज्जासणिसुद्धिउ णं गिरिदु ।

हरिदारियसिरु णं इत्थिजुहु ।

बुच्चइ कण्णापियरहिं<sup>३२</sup> सटुक्खु । ५

सइलोके<sup>३३</sup> कवणु तहो सरिसु दिट्ठु ।

अण्णहो<sup>३४</sup> कहो<sup>३५</sup> एवह<sup>३६</sup> देहु ताउ ।

नवसरिसकुसुमसोमालियाउ ।

माइहरन्मंतरे पइसरेवि ।

वरइत्तु तुम्ह<sup>३७</sup> लइ नियहु अण्णु<sup>३८</sup> । १०

दिज्जइ पच्चुत्तरु पवमसिरिपु<sup>३९</sup> ।

पइ<sup>४०</sup> एक्खु जि किर कुलवालियाहं ।

तुम्हारे साथ हमारी परम प्रीति है, इस प्रसंगमें जो किया जाये वैसी मति दीजिए ! दुःखित-मन माता-पिता और बांधवजनोके द्वारा समझाये जाने पर भी वह कैसे भी नहीं समझता । वैराग्य-मन कुमारको आज ही सचमुच तप लेनेसे कैसे रोका जाये ? ॥९॥

[ १० ]

उस सदेशवाहकके कहेको सुनकर सभीका हृदय करोतसे चीरे हुए जैसा तथा विष खा लेनेसे घूमता हुआ (चकराता हुआ) जैसा हो गया । स्वजनवृंद इसप्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे जैसे अतिकठोर वज्रायुधसे तोड़ा हुआ पर्वतराज, जैसे गरुड़से झपेटा हुआ फणिसमूह, सिंहके द्वारा शिर-विदीर्ण किया हुआ हाथियोंका झुंड, और तीक्ष्ण परशुसे कटी हुई माखाओवाला (तूठ) वृक्ष हो जाता है । कन्याओके पिता दुःखपूर्वक कहने लगे—‘जंवूस्वामी-जैसे श्रेष्ठवरको छोड़कर तीनों लोकोंमें उसके समान और कौन देखा गया है ? जो कन्याएँ बहुत पहलेसे ही (उसे) दे दी गयी थी, उन्हें अब किस दूसरेको दें ? अब उन्हीं नवीन सिरिपुष्पके समान सुकुमार बालिकाओंसे पूछा जाये’—ऐसा कहकर सदेशवाहकको हाथ पकड़कर और मातृगृहमें भीतर प्रवेश कराकर कन्याओंको सब कारण(समाचार) बतलाया, (और पूछा) अच्छा, अब तुम लोगोके लिए दूसरा वर देखें ? (विवाह)कार्यमें व्यवधानकी यह बात सुनकर, लक्ष्मीकी शोभाको जीतने-वाली पद्मश्रीने प्रत्युत्तर दिया—निर्मलगुणों और महान् गोत्रवाली कुलकन्याओंका निश्चयसे एक

२७. क ड<sup>४१</sup> इं । २८ क ड<sup>४२</sup> इं, व हिं । २९ व नउ ।

[ १० ] १. ख ग घ वओ<sup>४३</sup> । २ क ड य । ३ ख ग कपिय । ४. क ख ग क फलस; घ पलस । ५. ख ग खडउ । ६. ख ग घ उं । ७. व कझां । ८. क डं लोए । ९ घ अझं । १०. ख ग कहं, घ कहिं । ११ क एमहि, घ एवहिं, ड एमहिं । १२ व वि । १३. क ड पुं । १४. ख ग नवकुसमसरितं; घ सिरसि । १५ ख ग व वओ<sup>४४</sup> । १६. घं झु । १७ व तुम्हि । १८ व निरि । १९. क ख ग व पइं ।

एकु जि जणेरि जगि एकु तात एको जि<sup>२०</sup> देउ<sup>२१</sup> जिणु वीयरार ।  
 गुरु एकु जि भण्णइ<sup>२२</sup> परमसाहु सुहि एकु जि जसु तल-धम्मसाहु ।  
 १५ परिणयणु अम्ह न करंतु कंतु जइ परतउ लेइ विरायवंतु ।  
 घत्ता—अह<sup>२३</sup> पुणु जइ<sup>२४</sup> विवाहु घडइ<sup>२५</sup> दिट्ठिहे<sup>२६</sup> चडइ<sup>२७</sup> अच्चगलु बोल्हु न जाणहु<sup>२८</sup> ।  
 तो तरलच्छिविलासवसु<sup>२९</sup> रइलद्धरसु जम्मावहि वल्लहु माणहुं ॥१०॥

[ ११ ]

खंडयं—इयवयणं हिययच्छियं इयराहिं मि<sup>३</sup> समत्थियं<sup>२</sup> ।

कयपरिणयणे वयधणं<sup>३</sup> दूरे तस्स तवोचणं<sup>२</sup> ॥१॥

गरुयउं कज्जु जइवि<sup>३</sup> लज्जिजइ लज्ज मुएवि तो वि वोल्लिजइ ।  
 अच्छउ ताम कामसंजीवणि कोमलज्जुणि जुवाणमणवीवणि ।  
 ५ रइनाडयविलाससंसिक्खणु चंकउ-तिक्खकडक्खनिरिक्खणु ।  
 सरसु सरलवाहुलयालिगणु गाढत्तणे पीडियथोरत्थणु ।  
 वंसणे जि दरसियसिगारहो<sup>४</sup> रइविहलंघलदिट्ठिकुमारहो ।  
 पेक्खेसहु<sup>५</sup> चलणेसु रभंती गुरुरमणत्थले खिन्न<sup>६</sup> भमंती<sup>७</sup> ।

ही पति होता है, लोकमें एक ही जननी होती है, एक ही तात, और एक ही देव—नीतराग जिन । एक ही परम साधुको गुरु-कहा जाता है, और एक ही सुदृढ़, जिससे तप व धर्मका लाभ हो । यदि प्रियतम हम लोगोका परिणय नहीं करके, वैरागी होकर परम-तप (विगंबरीदीक्षा) लेते हैं (तो लें), परंतु फिर भी यदि (किसी तरह) विवाह बंदिता हो जाय, और हम लोग उसकी दृष्टिमें चढ जायें, तो मे बहुत आगे बढ़कर तो बोलना नहीं जानती, (लेकिन फिरभी) भवचलनेत्रोके विलासके वश हुए, और रतिमें रस लेनेवाले उसको हम लोग आजन्म अपना प्राणवल्लभ माने (अर्थात् चंचल नेत्रोके कटाक्ष और रतिरसमें डूबकर वह आजन्म हमलोगोका प्राणप्रिय होकर रहेगा) ॥१०॥

[ ११ ]

इस मनोवाञ्छित वचनका दूसरी कुमारियोने भी समर्थन किया—(कि) परिणय कर लेने-पर उसके लिए व्रतप्रधान तपोवन तो दूर ही है । यद्यपि यह बड़ा भारी लज्जनीय कार्य है, तथापि लज्जा छोड़कर कहना पडता है—‘तो फिर जबानोके मनको उद्दीपित करनेवाली कामकी सजीवनी कोमल-ध्वनि, रतिनाटक और विलासकी शिक्षा, बाँके तीक्ष्ण कटाक्षोसे देखना, प्रेमरससे पूर्ण होकर सुंदर बाहुलताओसे आलिगन और स्थूल स्तनोसे प्रगाढतासे मर्दन हो । हमलोगोके दर्शनमानसे ही दर्शितशृंगार अर्थात् उद्दीप्त-काम कुमारकी रति-विह्वल दृष्टिको हमलोग अपने चरणोमें रमण करती और विशाल रमणस्थलपर खिन्न होकर भ्रमण करती

२० क घ ड वि । २१ ख ग देव वि । २२ क ड ण्ण । २३ ख ग सवु । २४ क ड जइ पुणु ।  
 २५ ख ग ण्ण । २६ क ड हि । २७ ख ग व ण्ण । २८ ख ग हो, २९ क लइ ।

[ ११ ] १. क घ ड पि । २ ख तमि । ३ प्रतियोमे वण । ४ ख ग तवो । ५ क घ ड वउ ।  
 ६ ख ग जयवि । ७ ख ग निर । ८ क ड तण । ९ क ण । १० घ दरसिय । ११ क ड सहु ।

१२ क ख ग ल खिण । १३ क ड भवती ।

रोमावलिपणसि<sup>१४</sup> विहङ्गफड  
 नाहीबिबे थक न पयट्टइ  
 हुय निपण्ड चडवि<sup>१५</sup> घणयणयड<sup>१७</sup>  
 तरलतरंगमयणमयसंगिणि  
 पेक्खेवड विलासरंजियमणु  
 माणिणिमाणुवसावण<sup>१६</sup>-कंखिरु  
 पणमणमिलियमउलिपयलमाड  
 इय निसुणिवि सव्वहि<sup>२२</sup> परिभाविड मिलिबि कुमार विवत्थहि<sup>२३</sup> थाविड ।  
 घत्ता—कण्ह<sup>२३</sup> चउह<sup>२४</sup> वि हत्थ<sup>२५</sup> घरि परिणयणु करि सुहिनयणह<sup>२६</sup> जणहि<sup>२७</sup> महारइ<sup>२८</sup> ।  
 एकु जि वासरु कझि पुणु वयविमलणु तवचरणु<sup>२९</sup> लेतु को वारइ<sup>३०</sup> ॥११॥

[ १२ ]

खंडयं—तो बालेण न वज्जियं वयणमिणं पडिबज्जियं ।  
 ज्ञप्ति विराय-विबज्जियं गहिरं<sup>१</sup> तूरं वज्जियं<sup>२</sup> ॥  
 पत्ते विवाहमुहुत्ते मणोहरे उण्णामड<sup>३</sup> निवद्धु कंकणु<sup>४</sup> करे ।

हुई देखेगी । रोमावलि प्रदेशपर बिह्लल होकर, विषम त्रिवली तरंगोपर झपट मारते हुए नाभिबिबपर ठहरकर उसका प्रवर्तन इसप्रकार रुक जायेगा, जिसप्रकार कीचड़में फँसा हुआ दुर्बल पशु; और घने स्तनतटोंपर चढ़कर वह ऐसी निष्पंद हो जायेगी, जैसे जलदशनका लंपट कोई प्यासा (जलको देखकर) । तरल तरंगोवाली (अर्थात् चंचल प्रेक्षणीसे युक्त) व मदन-मदकी संगिनी, हमलोगोंके दीर्घनेत्रोरूपी तरंगिणीको वह अभिलाषापूर्वक देखेगा । (और भी हमलोगोंके द्वारा) वह विलासमे अनुरक्त मनवाला और हम प्रणयिनियोंके प्रणयसे पादप्रहारसे युक्त शरीरवाला-अर्थात् प्रणयवश हमलोगोंके चरणोंको चूमते हुए; तथा मानिनियोंके मानको उपशांत करनेकी आकांक्षासे मधुर कंदर्पालाप करते हुए, व (दीर्घ) निःश्वास लेते हुए; और प्रणाम करनेके लिए उसका मुकुट अपने चरणोंसे इसप्रकार लगा हुआ मानो वह तूपुरोंके अग्र-भागसे बांधकर चिपका दिया गया हो, इस रूपमे देखा जायगा । यह सुनकर सभीने विचार किया, और मिलकर कुमारको इन व्यवस्थाओंमे स्थापित किया (अर्थात् बाँधा) कि केवल एक दिनके लिए चारो कन्याओंके पाणिग्रहण करके सुहृज्जनोके नयनोंके लिए महद् प्रीति उत्पन्न कीजिए । फिर कल ही विमल व्रतों और शुद्ध गुणोंवाले तपस्चरणको लेते हुए (तुम्हें) कौन रोकेगा ॥११॥

[ १२- ]

तब बालकने अस्वीकार नहीं किया, और इस वचनको मान लिया । शीघ्र ही विराग-विवाजितं अर्थात् किसी भी प्रकार रस-भंगरहित शरीर तूर बज उठा । शुभ विवाह मूर्हते

१४ क ड स । १५ क ड विसम, ख ग विसमें । १६ ख ग चडवि । १७ क ड तड । १८ घ दसणि जलल । १९ क घ ड सामण । २० क ड महुरामम्मणलावणु, ख ग लावण । २१ क घ ड कयकय । २२ ख ग घ ह । २३ क ड कण जु, घ कसह । २४ क घ ड ह, ख ग ह । २५ क घ ड हत्थु । २६ ख ग सुहिनय, क ड णयणहु । २७ क घ ड हि । २८ क ड रड । २९ क ड तउ । ३० क ड इ ।

[ १२ ] १. क ड तूर विवज्जियं । २. ख ग घ उता । ३. क ण ।

- सिरि<sup>१</sup> सियकुसुममड्डु जियससहर<sup>२</sup> गंधुद्वंत्<sup>३</sup> महरसर-महुवर<sup>४</sup> ।  
 ५ सेयसुहुम<sup>५</sup> नचवत्थनियंमणु चंदणलित्तरथणमंडियतणु ।  
 चड्डु<sup>६</sup> मि कणह<sup>७</sup> जंयुकुमार<sup>८</sup> किउ विवाहु वणिगोत्तायार<sup>९</sup> ।  
 सायरदत्तु करवि<sup>१०</sup> धुरे तारण<sup>११</sup> कणचयारि<sup>१२</sup> कपहि<sup>१३</sup> जलधारय<sup>१४</sup> ।  
 बहुकरसंगह<sup>१५</sup> गोत्तपवित्तहो दिज्जइ दाइज्जउ वरइत्तहो<sup>१६</sup> ।  
 १० डाहुत्तार<sup>१७</sup> चारु चामीयर<sup>१८</sup> मोत्तिउ तारु मुत्तिसंभउ<sup>१९</sup> वर ।  
 दित्तिफुरंतु रयणु जाइल्लउ<sup>२०</sup> चइरायरउ वज्जु कंतिल्लउ ।  
 जेल्लिउ कंचिवालु बहुमोल्लउ<sup>२१</sup> अवर वि<sup>२२</sup> जं काइ<sup>२३</sup> सि<sup>२४</sup> भल्लउ ।  
 दिण्णउ<sup>२५</sup> दासिउ चोर वि अकं<sup>२६</sup> दीवउ मंचउ सहु पल्लंके ।  
 घत्ता—मंडवि मिलियलोचपवर<sup>२७</sup> आणंदयरे परिणयणु कज्जु निवत्तिउ ।  
 जोयहो आइउ णं वरहो नचवहुवरहो मज्झणहो<sup>२८</sup> सूरु पवत्तिउ<sup>२९</sup> ॥१॥

[ १३ ]

खंडयं—खरतरधम्मपसित्त<sup>३०</sup> चंदणपंकविल्लित्त<sup>३१</sup> ।  
 कामिणिककणकलरवे गंधुव्वासियजल्लवे ॥

जाने पर कर्णामय कंकण हाथमे बांधा गया । सिरपर अपनी शोभासे चंद्रमाको जीतनेवाला तथा अपनी गंधसे आकृष्ट भ्रमरोंके गुंजारसे युक्त श्वेत(कमल)पुष्पको मुकुट बांधा गया । जबल, सूक्ष्म और नये वस्त्रोंको पहने, तथा चंदनसे लिप्त और रत्नोंसे मंडित-देह कुमारने चारों कन्याओंसे वणिक्कुलके आचारके अनुसार विवाह कर लिया । सागरदत्तको प्रमुख करके चारों कन्याओंके लिए (कन्यादानके निमित्त) स्वच्छ जलधारा की जानेपर बहुओंके पाणिग्रहणके उपरांत उस पवित्र कुलवाले वरके लिए बहुत-सा दायज (दहेज) भी दिया गया । तापसे तपाया हुआ श्रेष्ठ सोना, नृत्तिमें उत्पन्न होनेवाले बड़े-बड़े सुंदर मोती, दीप्तिसे स्फुरायमान श्रेष्ठ (जात्य) रत्न, वज्रकी खानसे निकाला हुआ कांतिमान बज्ररत्न एवं बहुमूल्य कांची देश निमित्त वस्त्र तथा अन्य भी जो जो कुछ वस्तुएँ हैं, सभी दी गयीं । दासियाँ भी दी गयीं, और सुंदर सुंदर वस्त्र; विज्ञेयप्रकारके आसन एवं दीपक और मंच पलंग सहित दिये गये । आनंददायक मंडपमें प्रवर अर्थात् वरिष्ठ लोगोंके एकत्र हो जानेपर परिणयका कार्य संपन्न किया गया, और मानो श्रेष्ठ नव-वधुओं तथा वरको देखनेके लिए आया हुआ मूल्य मध्याह्नमे प्रवृत्त हुआ ॥१२॥

[ १३ ]

(अत्र जित समय कि)—तीव्रतम घाम (घूप) से पसीनेसे तर, तथा चंदनका खूब गाढ़ा लेप की हुई कामिनियोंके कपोलोंपर जललव अर्थात् स्वेदबिंदु चमक रहे थे, और उनके कंकणोंका ४. क सिर । ५. घं डूंग । ६. क डंवर । ७. क ख डं नुहम । ८. प्रतिगोमें हु । ९. क डं हु । १०. ख करवे, ग करिडे । ११. क तारड, ख ग तामए, ड तामइ । १२. ख ग घ कणावरि । १३. क घ ड कि । १४. क ड वारड । १५. क ख न संगहो, घ संगहि । १६. व यत्तहो । १७. ख ग उत्तमु डाह । १८. क ड संगव । १९. ख ग जाम । २०. क ख ग ट व जं काउ मि, घ काइ मि जं जं । २१. घ दिण्णउ । २२. लोए २३. घ न्हो । २४. ग पवित्तउ ।

[१३] १. घ खरवर ।

तिणमयकायमाणसंठियजणं  
 कुसुमवाससुरहियसीयलघणे  
 कोबुण्हवियसलिलसरे सरतडे  
 कद्दमलोलविलोलियदुदुरे<sup>५</sup>  
 महिसिजूहडोहियपंकिलजले  
 तेहप्र काले कुमार विसुद्ध<sup>६</sup>  
 जं नाडयबित्थरु व रसिल्लउ  
 पिसुण्णोयहिययं व सकूरच  
 वरतरणीवयणु व लवणुग्गच  
 बासहरं पिब सहइ सखट्ट<sup>७</sup>  
 सुपुरिसधणु व सुयत्तहिं<sup>८</sup> थक्क  
 घन्ता—नाणाविहभक्खहिं<sup>९</sup> पयरु सुहमहुरयरु मुंजवि<sup>१०</sup> नियाणखणं दुक्कउ<sup>११</sup>  
 लइयरसेहिं<sup>१२</sup> मि<sup>१३</sup> परिहरिउ कवडहिं<sup>१४</sup> भरिणं धुत्तिहिं<sup>१५</sup> पेम्मघवक्कउ<sup>१६</sup> ॥१३॥ १५

मधुर कलरव हो रहा था; और जबकि लोग तृणमय कायमानों अर्थात् आसनोपर बैठ गये थे, तथा जलसे तर- किये हुए व वारिकणोको चुआते हुए चँवरोंके खूब शीतल प्रमंजन (पवन)का सेवन किया जा रहा था; और जबकि ईषत् उष्ण जलवाले सरोवरके तटपर गिला- तट अग्निके समान तप रहे थे; ददुर कद्दम-क्रीड़ा करके प्रसन्न हो रहे थे, भीरे इंदीवरोके पीछे छिप रहे थे; महिपोंके यूथोंके अवगाहन करनेसे (सरोवरोंका) जल पंकिल हो रहा था, तथा पणु-मंडली वृक्षोंकी छायामें बैठे थी; वैसे समयमें कुमार वधुओं और वांघवोंके साथ विबुद्ध भोजन करने लगा। वह भोजन शृंगारादि रसोंसे युक्त नाटकके विस्तारके समान नानाप्रकारके अम्ल-मधुर इत्यादि रसोंसे युक्त था; और क् ख् ग् आदि व्यंजनोंसे युक्त व्याकरणके समान नाना व्यंजनों अर्थात् विविध पदवानोंसे शोभायमान था। दुर्जन लोगोंके सकूर अर्थात् क्रूरतापूर्ण हृदयके समान वह भोजन कूर नामक श्रेष्ठ चावलोसे युक्त था, और सज्जन लोगोंके स्नेहपूर्ण मनके समान घृतादि स्नेह-पदार्थोंसे परिपूर्ण था। सुंदर तरणियोंके लावण्ययुक्त वदन (मुख)के समान वह लवणयुक्त था; और संपूर्णरूपसे उदगत अर्थात् पूरी तरह उदित हुए प्रातःकालीन सूर्यमंडलके समान समुग्ग अर्थात् मूँगके व्यंजनोंसे युक्त था। खाटोसे युक्त वासगृहके समान वह भोजन सुंदर खट्टे पदार्थों(अचार-चटनी आदि)से युक्त था। बहुत-से बाटो अर्थात् मार्गोंसे युक्त महानगरके समान वह बहुत-सी बाटो अर्थात् कटोरियोंसे युक्त (कटोरियोंमें सजा हुआ) था। सत्यरूपके सुपात्र अर्थात् सद्ब्यक्तियोंमें नियोजित घनके समान वह भोजन सुपात्रों अर्थात् सुंदर वरतनोमें रखा हुआ था, और सतर्क अर्थात् तर्कशास्त्रके ज्ञानसे शोभायमान पंडितोंके समान सतक्र अर्थात् तक्र(मट्टा) सहित होनेसे अच्छा लग रहा था। इसतरह रस लेनेवालोंके द्वारा नानाप्रकारके भोजनोंका समूह जो मुखको मधुर

२ क ड चुअ । ३ ख जणं । ४ क कि उण्हं, ड कि बुण्हं । ५ ख दुदुरे । ६ क ड महिं । ७ ख ग विसिट्टउ । ८ ख ग लणु । ९ ख वंजणहिं रसिल्लउ, ग व वजणं । १० ग वरं । ११ क मुं । १२ ख नयर । १३ अतियोमं तहिं । १४ क डं । १५ ख ग मुं । १६ ख ग डं मववहिं । १७ क हिययरु । १८ क ड ड मुंजवि । १९ व डं । २० क ख ग ड हिं । २१ क ड व; ख ग व् । २२ ग डहिं । २३ ख ग व हिं । २४ क घवं ।



[ १४ ]

खंडयं—जलगंदूषसविशोहणं पुणु तंवोल-विलेवणं ।

लइयं धरियदरुणहयं तो जायं अवरणहयं ॥१॥

- ३ ताव हि<sup>३</sup> बहुचउकसंजुत्तउ गउ वरइत्तु<sup>३</sup> निययधरु पत्तउ ।  
 अहलु वं<sup>३</sup> तुट्ठु<sup>३</sup> भुलुक्कियपवणहो दीसइ जंतु तवणु अत्थवणहो ।  
 ५ सेवियकमलकोसमहुमत्तउ निवडइ गलियनियंसु<sup>३</sup> व रत्तउ ॥५॥  
 लग्गु सिलायडरमणं-विराइहे<sup>३</sup> पेक्खेवि अत्थसिहरे<sup>३</sup> वणराइहे<sup>३</sup>  
 ईसाइवि<sup>३</sup> पच्छिमदिसपत्तिगं<sup>३</sup> किउ आयंविह सुहु<sup>३</sup> असहं तिगं<sup>३</sup> ।  
 तेउ हुयासि<sup>३</sup> ताउ विरहीयणे राउ वि विण्णु<sup>३</sup> तरुणमिहुणहं<sup>३</sup> मणे  
 मयणे पयाउ रविहि<sup>३</sup> आपंतहो अइ चाउ जि कारणु अत्थंतहो<sup>३</sup>  
 १० लइउ सव्भु तुम्हहि<sup>३</sup> चिर-महणे अंतोधणसुद्धिहे<sup>३</sup> रविगहणे ।  
 पुणु मंथणभण सुहिमुहं<sup>३</sup> धरिउ दीउ णं सुरहं<sup>३</sup> समुदे ।

करनेवाला और 'कवड' अर्थात् पुरवोंमें भरा हुआ था, खाया जाकर अंतमें बहुत-सा उच्छिष्ट उसीप्रकार छोड़ दिया गया, जिसप्रकार किसी घूर्त्तस्त्रीका कपटभरा उद्दीप्त प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है ॥१३॥

[ १४ ]

जलगंदूषके द्वारा मुखशोधन किया गया और विलेपन (कुंकुम-चंदनादिके पिष्ट चूर्ण) लिये गये। इतनेमें थोड़ा गरम अपराह्नकाल हो गया। तब तक चारों बधुओंके साथ वर गया, और अपने घर आ पहुँचा। (गरम) हवासे शूलसा हुआ, और (आकाशरूपी वृक्षसे) मानो निरर्थक ही टूटा हुआ सूर्यरूपी फल अस्ताचलको जाता हुआ देखा गया; मानो वह (दिनभर) कमलसरोवरीसे अपने किरणोरूपी हाथोंसे कमलकोषोका सेवन करके मधुसे मत्त (रक्तवर्ण) होकर सुरापानसे मत्त हुए किसी रागी पुरुषके समान अपने वस्त्रोंको (सूर्यपञ्चमे किरणोंको) फेककर गिर रहा हो। अस्ताचलके शिखरपर शिलातटरूपी रमण (नितंब)से विराजमान वनराजीसे (अपने प्रियतम सूर्यको) लगे हुए देखकर उसकी पश्चिम दिशाक्षी पत्नीने ईर्ष्या करके, इसे सहन न करते हुए क्रोधसे मानो साध्य-अरुणिमाके व्याजसे अपना मुख ताबेके समान लाल-लाल कर लिया। उस सूर्यने अपना तेज अग्निमें, ताप विरहीजनोमें, और राग (लालिमा-अनुरागके रूपमें) तरुण मिथुनोके मनमें दे दिया; और प्रताप रातभरके लिए कापदेवको अपित कर दिया, (इसप्रकार) उसका यह अतिशय त्याग ही उसके अस्त होनेका कारण हुआ। मेरे भीतरी घनका पता लगानेके लिए सूर्यको लेकर तुम लोगोके द्वारा बहुत प्राचीनकालमें ही मंथन करके मेरा सब कुछ ले लिया गया था, अतः अब पुनः मंथनके भयसे पृथ्वीरूपी मुद्रासे मुद्रित

[१४] १ ख ग घ लइयउ । २. घ हयं । ३ क ड तापहि, घ तामहि । ४. क ड यत्तु ।  
 ५ ख ग म अ । ६ क ख ग ड तुट्ठु । ७ ख ग वि । ८ ख ग घ रवण । ९. क ड ड ईहि । १०.  
 क ड यवि । ११. घ दिशि । १२. क व ड मुहं । १३. ख ग हं । १४ घ दिनु । १५. क ड णहं, ख  
 ग णहु, घ णहो । १६ क हि । १७ ख ग अच्छं । १८. ख हि । १९ क ड वणुमुद्धिहि, घ मुद्धिहि ।  
 २०. क ख ग हं, घ हं ।

परिपक्व नहरुक्खहो निवडिउ  
<sup>२१</sup>अत्थंगयरविपियमकामप्र<sup>२३</sup> फलु व दिवायरमंडलु विहडिउ ।  
 रत्तंवरजुवलउ<sup>२४</sup> नेसेविणु वासरलच्छिप्र<sup>२५</sup> संझारामप्र<sup>२६</sup> ।  
 खणु अच्छेवि दुक्खसंसंझिउ अण्ण चोरमहण्णवि घञ्जिउ । १५  
 तमे पसरते<sup>२७</sup> तडिहि<sup>२८</sup> विम्भुल्लउ कंदइ चक्कवायमिहुणुल्लउ ।  
 पंकयसरइ<sup>२९</sup> अलिहिं<sup>३०</sup> णं छइयइ<sup>३१</sup> काणणाइ<sup>३२</sup> णं<sup>३३</sup> कोइलइयइ<sup>३४</sup> ।  
 नच्चिरमोरपिच्छसंछन्नइ<sup>३५</sup> णं पववयसिहराइ<sup>३६</sup> पवन्नइ<sup>३७</sup> ।  
 दिम्भुहाइ<sup>३८</sup> कत्थूरिप्र<sup>३९</sup> कलियइ<sup>४०</sup> निवधराइ<sup>४१</sup> गयवरघडलियइ<sup>४२</sup> ।  
 घत्ता—<sup>४३</sup>धम्महपोडियविडजणहो<sup>४४</sup> धवगयधणहो<sup>४५</sup> विरहग्गिफुलिग व छड्डिय<sup>४६</sup> । २०  
<sup>४७</sup>नीलीरसे णं<sup>४८</sup> बोलियप्र<sup>४९</sup> जगि कवलियप्र<sup>५०</sup> जोइंगण<sup>५१</sup> गयणे समुड्डिय<sup>५२</sup> ॥११॥

[ १५ ]

खंडयं—अहिसारीहि<sup>१</sup> निसागमे दूयडियाणं<sup>२</sup> गमागमे ।  
 लइयं कसणनिथंसणं मरगयवडियविहूसणं ॥१॥  
 तिमिरकुंभिकुंभत्यलभेयउ<sup>३</sup> दीवियाउ भल्लिउ<sup>४</sup> हेमेयउ<sup>५</sup> ।

(अर्थात् मर्यादित) समुद्रने मानो देवताओंके सूर्यरूपी दीपकको धर लिया (अर्थात् अपने गर्भमें छिपा लिया)। आकाशवृक्षसे गिरे हुए पके फलके समान दिवाकरमंडल (एकाएक) विघटित हो गया। अस्ताचलको गये हुए सूर्यरूपी प्रियतमकी कामनासे दिवसखी लक्ष्मीने संझारामा (नायिका)के रूपमें लालवस्त्रोका (आत्माहुतिसूचक) जोड़ा धारण करके, तथा कुंकुमके गाढ़े द्रवसे टीका करके, क्षणभर ठहरकर (प्रियतमके विरहरूपी) दुःखसे अत्यंत पीड़ित होकर अपने आपको महासमुद्रमें डाल दिया। अधिकारके प्रसारसे (अलग-अलग) तटोपर भूला हुआ चक्रवर्त्तिका जोड़ा क्रान्त करने लगा। पंकज सरोवर मानो भ्रमरोसे छा दिये गये और उद्यान कोकिलोसे ढक दिये गये। पर्वतोंके शिखर ऐसे हो गये मानो नाचे हुए मोरोके पंखोसे आच्छादित हो गये हों। दिशामुख मानो कस्तूरीसे पोत दिये गये, और राजाओंके प्रासाद उत्तम गजसमूहके समान ललित लगने लगे। (यह ललितक नामक छंद है)। मन्मथसे पीड़ित, धनहीन विटजनोंके द्वारा छोड़े हुए विरहानिके स्फूर्तिगोके समान अपनी नीलिमासे सारे जगत्को व्याप्त करते हुए, तथा नीलके रंगको भी अतिक्रमण करते हुए जुगत्तु आकाशमें उड़ने लगे ॥१४॥

[ १५ ]

रात्रिका आगमन होनेपर दूतियोका गमनागमन होने लगा। अभिसारिकाओने काले वस्त्र पहने और मरकतमणियोसे गढ़े हुए आभूषण धारण किये। अधिकाररूपी हस्तिके कुंभस्थलको विदीर्ण करनेवाली सुवर्णनिर्मित सुंदर दीपिकाओरूपी बरछियां जलायी गयीं (पक्षमे चमकायीं-

२१. ख ग अर्थंगउ रविं । २२ क ड मइ । २३ क ड लच्छिय । २४ क ड जुअं, घ जुयं । २५ क ड प्णिणु । २६ क ड रत । २७ ख ग ड हि । २८ क ड सरह, घ सरिहि । २९ क ड यइ । ३० ग णाइ । ३१ ख ग कोयल; घ लवियइ । ३२ क ख ग ड ण्णडं । ३३ ग ड दिण्णु । ३४ क ड रिय । ३५ क घ ड गयधडहि व ललिं । ३६ क ख ग ड वम्महं । ३७ क ड पुलिग व ताडिय । ३८ क ड रतेण, ख ग रसन । ३९ व यइ । ४० व ड यइ । ४१ ख ग जोयं । ४२ क ड दिया ।

[१५] १ ख ग रोहि । २ क ड दूयं, घ याहं । ३ क ड कुंभत्यलिं, घ कुंभत्यलुं । ४ ख ग मल्लिय । ५ ख ग हेमेयउ ।

- जालियाउ गयवइहियहि सहुँ  
 ५ भमिप्र<sup>१</sup> तमवयारे वरअच्छिप्र<sup>२</sup>  
 "जोहारसेण भुवणु"<sup>३</sup> किउ सुद्धउ<sup>४</sup>  
 किं गयणाउ अभियलवविहइहि  
 किं सिरिखंडवहलरससीयर<sup>५</sup>  
 जाल-गवक्खइ<sup>६</sup> पसरियलालउ<sup>७</sup>  
 १० सुद्धउमुहिय<sup>८</sup> लेइ<sup>९</sup> कर-वावड<sup>१०</sup>  
 गोहि निविट्ट गोवि न वियाणइ<sup>११</sup>  
 सालिणीउ नियाडाउ निवासप्र<sup>१२</sup>  
 गेणइ<sup>१३</sup> समरि<sup>१४</sup> पडिउ बोरोहलु<sup>१५</sup>  
 पुरउ वि थक्क वइरिरोसिउ<sup>१६</sup> पडु  
 १५ चत्ता—परिसे<sup>१७</sup> कइरवनंदिणए सियचंदिणए नववहुचउक्कसंसिहउ<sup>१८</sup>  
 वरपल्लकपंचसहिप्र परिणकहिप्र वासहरे कुमार पइठउ<sup>१९</sup> ॥१५॥

गयी)। गत-पतिकाओके द्वारा अपने हृदयो अर्थात् उरस्थलो(स्तनो)पर कवुकी (पहुने जाने)के साथ-साथ गगनांगनमे मृगलाछन शोघ्न उदित हुआ; (जो ऐसा मोहायमान हुआ) मानो घना अंधकार फैल जानेपर बराली (सुंदर नेत्रवाली) नभलक्ष्मणे दीपक जलाया हो। ज्योत्स्नाके रस अर्थात् चाँदनीके प्रसारसे भुवन ऐसा शुद्ध अर्थात् धवल कर दिया गया मानो उसे क्षीरोदधि-मे डाल दिया गया हो। मकरध्वजके बाँधन चद्रमाकी किरणे ऐसी हो गयी मानो आकाशसे अमृतविंदु ही विघटित होकर गिर रहे हो; अथवा कर्पूरके पूरसे कण गिर रहे हो, अथवा श्रीखंड-के प्रचुर रस-शीकर (फुहारे) हो पड़ रहे हों। लार फैलाता हुआ एक मार्जार चरोके क्षरोक्षोको गोरसकी भ्रांतिसे चाटने लगा। मोतियोंके मनोहर व लंबे हारके समान उन चद्रकिरणोको कोई मुखमुखी अपने व्याकुल हाथोसे पकड़ने लगी। गोथानमे बैठी हुई गोपी जान नहीं सकी (कि इस मथानीमे कुछ नहीं लगा है), अतः (इस मथानीमे) दही है, ऐसा कहकर (खाली) मथानी को ही मथने लगी। मालिनियाँ आवासके निकटसे मालती कुसुमकी आशासे चुनने लगी। कोई क्षत्री (भूमिपर) गिरे हुए बेरके फलको हाथीके शिरका मुक्ताफन (गजमुक्ता) समझकर उठाने लगी। अपने बैरी(कौवे)से रुष्ट किया हुआ चतुर धूक (जल्लू) अपने सामने ही स्थित, (परन्तु अतिशय चाँदनीके प्रभावसे) हसके समान (दीखनेवाले) कौवेको पहचान नहीं पाया। ऐसी कुमुदोकी प्रसन्न (विकसित) करनेवाली धवल ज्योत्स्नामे चारो नववधुओके साथ कुमार परिजनोके द्वारा बताया हुए, पाँच सुंदर पलंगोसे युक्त वासगृहमे प्रविष्ट हुआ ॥१५॥

६. ख ग लपड। ७. क छ य। ८. क छ तमवयारवरअच्छिप्र। ९. व उ।  
 १०. घ मे इम पवितका पूर्वपाद इस प्रकार—जोहारसेण कियउ भणु सुद्धउ। ११. ख ग घ भणु।  
 १२. घ भवम्मि। १३. क छ सीयलु। १४. ख ग वल्लय। १५. ग जालउ। १६. ख ग ए। १७. क ड  
 मुद्धउ। १८. क छ तो वि। १९. क छ वावड। २०. क लवउ, ख ग व लपड। २१. ख ग विजा।  
 २२. ख ग इ। २३. ख ग वळणइ। २४. क घ ल सइ। २५. घ गिहइ। २६. क घ ड सवरि।  
 २७. ख ग वेरो। २८. घ मल्ले। २९. घ वइरिरोसिय। ३०. क घ ड इ। ३१. घ वुवहु। ३२. क घ ड  
 स। ३३. ड ठउ। ३४. ख ग पय।

[ १६ ]

खंडयं—खणु अच्छेवि कयायरा नियनिलयसु सहयरा ।

पट्टवेवि पुणु निविडप्र<sup>२</sup> दिण्णप्र<sup>३</sup> दारकवाडप्र<sup>३</sup> ॥१॥पंच वि तूलिसमिद्धहिं<sup>१</sup> पंचहिंछिन्नच्छाहुं पईवउ किज्जई<sup>५</sup>पडुलसमु वेइल्लु निवज्जइ<sup>६</sup>पयडइ<sup>३</sup> का वि बहुय भत्तारहोनाहीमंडलु का वि वियासइ<sup>१</sup>

का वि नियंसणसारें भल्लउ

कक्खंतउ कहैइ क वि कवणे<sup>१९</sup>कुडिलालोएं भउइउ<sup>२३</sup> कंइ

अवर वि वरजुवाणवीवियमणु

वीणावज्जसमाणु<sup>२३</sup> वि रायइ<sup>२३</sup>अवरइ<sup>१९</sup> समउ<sup>२३</sup> अवर<sup>८</sup> क वि जंपइआसीणइ पच्छाइयमंचहिं<sup>१</sup> ।करे तंबोल वि सम्माणिज्जइ<sup>५</sup> ।सुमहु<sup>११</sup> कप्पूराय<sup>१२</sup> डंजइ ।

थणहरु मिसिण गुत्तगुणहारहो ।

विरयण<sup>१०</sup> संवरणेण पयासइ<sup>११</sup> ।दावइ मसिणोरुव<sup>१०</sup> जुवलुल्लउ<sup>८</sup> ।मउलियनयणकण्णकंडुवण<sup>१०</sup> ।

क वि दंतहिं निययाहरु डंकइ ।

सालंकार पडइ वच्छायणु ।

बहु<sup>२३</sup> का वि हिंदोलउ गायइ<sup>२३</sup> ।सुणउ<sup>२३</sup> सिक्कारंती<sup>३०</sup> कंपइ<sup>३१</sup> ।

५

१०

[ १६ ]

कुछ देर उठकर आदर किये हुए (अर्थात् आदर करके) अपने सब सहचरों(मित्रों)को अपने-अपने घरोंको पठाकर (फिर) द्वारके कपाटोंको निविड अर्थात्—निविड रूपसे बंद कर दिये जानेपर वे पाँचो घर-बधू रहई गद्देदार एवं चादरोसे आच्छादित पाँच मंचोंपर आसीन हो गये । प्रदीपोंकी शोभा (ज्योति) मद करे दी गयी (अथवा श्लेषमे जंबूस्वामी एवं बधुओंके देदीप्यमान मुखोंरूपी दीपकोंके तेजसे तैलदीपकोंका तेज फीका पड़ गया) । हाथमें आदरपूर्वक तांबूल ग्रहण किये गये । गुलाबके पुष्पके साथ विचकिल्लका फूल वाँचा गया (विशेषार्थके लिए देखिये परिशिष्ट) । सुगंधित कपूर व अगर जलाया गया । कोई वधू हारकी छिपी हुई लड़की बतानेके बहानेसे भत्तारके लिए अपने वक्षस्थलको प्रकट करने लगी । कोई अपने नाभिमंडलको खोलती हुई विवाहसे की हुई अपनी विरचना (पत्ररचना आदि रूप सजावट)को प्रकट करने लगी । कोई वस्त्रोंको खिसकाकर अपने भले (आकर्षक) और मसृण ऊरुयुगलोंके दिखलाने लगी । कोई आँखें बंद करके कान खुजलानेके कपट (बहाने)से अपनी कुंठिकों वतलाने लगी । कोई कुटिलता-से अर्थात् कटाक्षोंसे देखती हुई श्राद्धोंकी वांछा करने लगी, और दाँतोसे अपने अश्वरोंको काटने लगी । कोई दूसरी वधू सुंदर युवकके मनको उद्दीप्त करनेवाले वात्स्यायन अर्थात् कामसूत्रको अलंकारपूर्वक(अर्थात् श्रृंगार-भावसे भरकर) पढ़ने लगी । और कोई वधू वीणावाद्यके साथ रागपूर्वक हिंदोला गाने लगी । कोई किसी दूसरीके साथ बोलने लगी और शून्यभाव से सीत्कार

[१६] १ घ पट्टावि। २ क ड णिविडयं, ख ग नियडइ। ३ क ड दिण्णं; ख डं; ग यं; घ दिण्णं। ४ क ड डयं; ख ग डंड। ५ ख डंहि। ६ भंचहि। ७ क ख ग ड दिण्णं। ८ ख ग घ डं। ९ ख ग सामा। १० क ज्जइ। ११ क ड सुमुहुं। १२ ख ग कत्थं। १३ घ बहुय का वि। १४ क ड पया। १५ क ड वरिं। १६ क संड। १७ व क्य। १८ व जुव। १९ क कविषं। २० व कं। २१ ख ग भउं, ड हउ। २२ प्रतियोगे वज्जुसमाणु। २३ ख ग यए, क व यंड। २४ ख ग व। २५ क घ डंड। २६ क घ ड रंड। २७ ख ग घ ड। २८ क र। २९ व मुणउ। ३० ख ग सिका। ३१ क ग डं।

१५ घत्ता—अवर वि केरलपुरिगमणु निवपरिणयणु वरइत्ते<sup>३२</sup> जित्तु रणु<sup>३३</sup> भासइ<sup>३४</sup> ।  
जुज्झिय विज्जाहरभडउ हासुन्मडउ सिंगारु सवीरु पयासइ<sup>३५</sup> ॥१६॥

इय जंबूसामिचरिउ<sup>३६</sup> सिंगारवीरे महाकव्ये महाकइदेवत्तसुयवीरविरइ<sup>३७</sup>  
विवाहुच्छवो नाम<sup>३८</sup> अट्टमो संघो समत्तो<sup>३९</sup> ॥ संधि—८ ॥

छोड़ती हुई कांपने लगी । कोई वरके केरलपुरीको गमन, राजाके विवाह एवं वरके द्वारा जोते हुए युद्धका वर्णन करने लगी; और इसप्रकार विद्याधरभटोके साथ किये हुए युद्धवर्णनके द्वारा, उद्भट हास्यके साथ वीररसपूर्वक शृंगाररसको प्रकट करने लगी ॥१५॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामी चरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें विवाहोत्सव नामक अष्टम संधि समाप्त ॥संधि—८॥

३२. क घ ङ "इत्तु । ३३. घ रणि । ३४. क "इ । ३५. क "सइ । ३६. क ङ से इस प्रकार—'वीरे महाकइदेवदत्तसुयवीरविरइए महाकव्ये विवाहु' । ३७. क ङ अट्टमा इमा सवो, घ अट्टमो परिच्छेमो समत्तो ॥ संधि—८ ॥

[ १ ]

तुम्हेहि वीरकव्वं सुयणेहिं परिक्खिउण वेत्तव्वं ।

कसतावछेयसुद्धं कणथं नेहेण मा किणहं ॥१॥

चिरकव्वतुलातुलियं बुद्धीकसवट्टए कसेउणं ।

रसदिच्चं पयल्लिअं गिण्हहं कव्वं सुवण्णं मे ॥२॥

मयरद्वयनच्चु नडंतिच्चं जंजुकमारें भेल्लियडं ।

वहुवाडं ताडणं दिट्ठउ कट्टमयउ वाउल्लियडं ॥३॥

रश्मिद्वं तु तं नयणहिं जोयडं

पुणु जि नाणदिट्ठिअ अवलोयडं

हा हा महिला मोहनिवद्धउ

मयणकालसप्पहिं जगु खड्डउ

बुधइ अहरु अमियमहुवासउ

अबरु जि नाउ ठविउ वयणासउ

को रसु उट्ठवस्से खड्जंतउ

चिच्चिल्लालामले पिज्जंतउ

मुत्तदुवार पूङ्गाधिल्लउ

रमणु नाउ किउ विडहिं महल्लउ

[ १ ]

वीर (कवि) द्वारा रचित काव्य आप सज्जनोके द्वारा परीक्षा करके ही ग्रहण किया जाना चाहिए। कसौटी, ताप और छैनो से शुद्ध जानकर ही सोना खरीदिए, उसके स्नेह मात्रसे नहीं ॥१॥ रसोसे शुद्ध किये होनेसे खूब दीप्तिमान एवं व्यवसायमे सुनिर्धारित (शुद्ध)सुवर्णके समान काव्यरसोसे देदीप्यमान, एवं सुपरीक्षित-विविध-शब्दसमूहसे (दोषरहित रूपसे) सुनिर्धारित तथा चिरप्रसिद्ध काव्योरूपी तुलापर तौले हुए मेरे इस काव्यरूपी सुवर्णको बुद्धिरूपी कसौटीपर कसकर ग्रहण कोजिए ॥२॥ मकरध्वजका नाच नाचती हुई उन वधुओंको जंबू-कुमारने अपने संपर्कमें लायी हुई काष्ठकी पुतलियोंके समान देखा ॥३॥

(उनके) उस रति(प्रेम)प्रपंचको वह अपने नेत्रोसे देखता, फिर ज्ञाननेत्रोसे अवलोकन(चितन) करता। अहो खेद ! स्त्रीके मोहमें जकड़ा हुआ यह जगत् मदनरूपी काले साँपके द्वारा खाया जाता है। (स्त्रीके) अवरको अमृत व मधुका वास कहा जाता है, उसका दूसरा नाम वदनासक (अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे, 'व्रतनाशक') भी रखा गया है। (पर) ओष्ठचर्मको काटनेमें और परित्याज्य लार-मलकी पीनेमें कौन-सा रस है ? जो मूत्रका द्वार है, और पुतिर्गंधसे युक्त है, उसे विटजनोने 'रमण' जैसा महत् नाम दे दिया है। स्त्रीका

[१] १. क व ड ह । २ व दिन्नं । ३ ख ग छित्तं, क ड छिण्णं । ४. व गिन्हं । ५ व णं । ६ क ड णड्डु णडडियडं । ७ क ड भिं, व णं । ८ ख ग व थाउ । ९. क ड वाव । १०. व णं । ११. क ग ड यडं । १२. क ड मिहिलां । १३ क णं । १४. क व ड अमयं । १५. क ड णाउं, व नाउं । १६ क वम्मि, व वम्म । १७ क व ड तडं । १८. ख ग चिच्चिल्लं, क ड लालामणि । १९ क ड माणु, व नाउ ।

पच्छलु तियह<sup>२०</sup> जेण लज्जिज्जइ राइहि<sup>२१</sup> सो जि नियंनु भणिज्जइ ।  
 एरिस<sup>२२</sup> -तियमय<sup>२३</sup> -पोमालखंघण<sup>२४</sup> अप्पल नाणवंतु को वंघण ।  
 वत्थुसरुड<sup>२५</sup> चएवि<sup>२६</sup> जेहिच्छण<sup>२७</sup> बुद्धिवियप्पु पवत्तण<sup>२८</sup> मिच्छण<sup>२९</sup> ।  
 १५ भाउ जि पढमु तियत्तणु पावइ पच्छण<sup>३०</sup> वहि तियदव्वहो<sup>३१</sup> -घावइ  
 सम्मन्नाणित<sup>३२</sup> एउ विवेयइ भाउ जि महिल अयाणु न चेयइ  
 दव्वसरुवविसय<sup>३३</sup> मुजंतउ अच्छइ जिउ संसार भमंतउ ।  
 यत्ता—उवयागउ<sup>३४</sup> भावसरुव<sup>३५</sup> मुजइ कम्मासण्ण विणु  
 संसाराभावहो<sup>३६</sup> कारणु भाउ जि छडिय<sup>३७</sup> परदविणु<sup>३८</sup> ॥१॥

[ २ ]

दिदचित्तु<sup>३९</sup> कुमार नियंतियाण<sup>४०</sup> मुहकंतिजित्तससिकंतियाण<sup>४१</sup> ।  
 दोहरनीसासु ससंतियाण<sup>४२</sup> थोब<sup>४३</sup> सचिलक्खु हसंतियाण<sup>४४</sup> ।  
 पंकयसिरीण<sup>४५</sup> आलत्तियाउ परिवाडिण<sup>४६</sup> ताउ सबत्तियाउ<sup>४७</sup> ।  
 वरइत्तहो का वि अउवभंगि संकिल्लि-हेल्लि-विक्कममु वरंगि ।  
 ५ कि मयणवाण संदहो वहंति पच्छुप्फिडेवि सयखंडु<sup>४८</sup> जंति ॥

पृष्ठभाग ऐसा है जिससे लज्जा उत्पन्न होनी चाहिए, किंतु रागियोंके द्वारा उसे ही नितंब (श्लेषार्थ—पर्वतके मध्यवर्ती ढालू प्रदेशसे तुलनीय) कहा जाता है। ऐसे- (जुगुप्सनीय)—त्रिक- (अधर, रमण व नितंब)-मय (स्त्रीरूपी)पुद्गलस्कंधमे कौन ज्ञानवान् अपनेको बाँधता है? वस्तुके (सत्य)स्वरूपको छोड़कर स्वेच्छया हमारा बुद्धिविकल्प मिथ्यात्वमे प्रवृत्त हो जाता है। पहले हमारा भाव (चित्त) स्त्रीत्व (स्त्रियाकाक्षा)को प्राप्त करता है, और फिर वही बाह्य जगतमे द्रव्य स्त्रीत्व (भौतिक स्त्रीशरीर)के लिए दीड़ता-है; सम्पृक्जानी इसप्रकारका विवेचन करता है; किंतु हमारा भाव(मन) ही स्त्रीरूप होता है, इस बातको अज्ञानी नहीं समझता। द्रव्यात्मक(भौतिक) विषयको भोगते हुए यह जीव ससारमे भ्रमण करता हुआ रहता है। जानी इस परिस्थितिको उदयागत - भावो(कर्मों)के अनुसार (नवीन)कर्माम्लुके विना, परद्रव्य (में आसक्ति)को छोड़कर भोगता है, और यही भाव (विवेक) संसाराभाव अर्थात् मोक्षका कारण है ॥१॥

[ २ ]

कुमारको इसप्रकार दृढचित्त देखकर अपने मुखकी कालिसे चद्रमाकी गोभाको जीतनेवाली, दीर्घनिःश्वास छोड़ती हुई, और कुछ लज्जापूर्वक हँसती हुई पद्मश्रीने परिपाटीसे (क्रमशः) अपनी उन सपत्नियोंको कहा—हे सुंदरी ! संकुचित की हुई भुजाओसे पागलपन सरीखी वरकी कोई अपूर्व ही भंगिमा है। क्या कहीं षडको भी मदनके बाण लगते हैं? प्रत्युत वापस आकर सँकडो

२०. क छ हि । २१ ख ग रायहँ, ड हि । २२ क घ छ सि । २३. क ड भड, घ मड ।  
 २४. क ख ग ड सल्लवहो । २५ क वय वि, ख ग ड वयवि । २६ घ जहि । २७ घ तड । २८ ख ग  
 तिए । २९ क ड णाणित, ख ग णित । ३० ख ग घ मरुण । ३१ ख ग घ उज । ३२ क  
 संसारी । ३३ क ड छ । ३४. क ड हविणु ।

[२] १. क ग ड दिहु । २. क ड याउ । ३ क ड याड । ४. ख ग टिउ । ५. ख गवि ।  
 ६. क खड ।

किं करइ अंधु नचुच्छवेण      किं कण्णहीणुं गेयारवेण ।  
 अविवेयहो एयहो गाहु लग्गु      तवचरणकिलेसें मइइं सुग्गु ।  
 घरे संपय<sup>१</sup> एरिस<sup>२</sup> कासु लोप्र      दुक्कुरु देवाहं<sup>३</sup> मि<sup>४</sup> बहिणि होइ ।  
 इय तुहइ<sup>५</sup> रुवजियच्छराउ      संपज्जइ सन्नु निरंतराउ ।  
 साहीणुं चयवि<sup>६</sup> सुह<sup>७</sup> लेइ दिक्ख      घरे रद्धउ<sup>८</sup> नालिउं भमइ<sup>९</sup> भिक्ख । १०  
 तवचरणहो फलु संदेहि लग्गु      पच्चक्खु कासु सग्गापवग्गु ।  
 घत्ता—आणंदरूउ मणजोयहो      जइ<sup>१०</sup> तो रमणिजोउ पवरु ।  
 विणु मोक्खे सोक्खघवक्खउ पच्चक्खु जि पावेइ नरु ॥१॥

[ ३ ]

हले एक्कु कदाणउ<sup>१</sup> कहमि वरि      जइ रोसु न भण्हिं<sup>३</sup> महु उवरि<sup>३</sup> ।  
 भत्तारु तुम्ह जाणमि जडहो      अणुहरइ जि हालियघणहडहो ।  
 निसुणंति ताउ चिमियमणउ      आयणणडं जिह<sup>४</sup> जिणवइतणउ ।  
 तिह कहइ पउमसिरि दुल्लल्लिउ      घणहड्डु नामेण आसि हलिउं<sup>५</sup> ।  
 तहो गेहिणि घरवाचारया<sup>६</sup>      सुउ एक्कु जणवि पंचत्तु गथा<sup>७</sup> । ५

टुकड़े हो जाते हैं । नृत्योत्सवसे कोई अंधा क्या करे ? और कोई बहुरा गीत-रवसे क्या करे ? इस अविवेकीकी ग्रह(भूत) लग गया है, तपश्चरणके क्लेशसे यह स्वर्ग चाहता है । हे बहन ! इस लोकमें ऐसी संपत्ति किसके घरमें है, जो देवोंके लिए भी मिलनी दुष्कर है । यहाँ रूपमे अप्सराओंको भी जीतनेवाली तुमलोग तथा (अन्य) सब कुछ निर्वाररूपसे प्राप्य है । स्वाधीन सुखको छोड़कर दीक्षा लेना ऐसा है, जैसे किसीके घरमे कमलनाल पके हुए हो, और वह (उन्हे छोड़कर) भिक्षाके लिए भ्रमण करे । तपश्चरणका फल तो सदेहमय है । स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) किसने देखे हैं ? यदि मनोयोग(अर्थात् चित्तवृत्तियोंका निरोध व ध्यानसमाधि)का स्वरूप आनंदमय है, तो उससे श्रेष्ठ तो रमणीयोग है, जिससे पुरुष मोक्षके बिना ही प्रत्यक्ष सुखकी अनुभूति पा लेता है ॥२॥

[ ३ ]

हे सुंदर सखी ! यदि मेरे ऊपर रोप न माने तो एक कथानक कहती हूँ । मैं समझती हूँ कि तुम लोगोका यह भर्तार मूर्ख धनदत्त नामक हालोका अनुकरण कर रहा है । वे सब विस्मित मनसे सुनने लगी, और जिसतरह जिनमतीका पुत्र—जबूस्वामी सुने (अर्थात् उसीको लक्ष्य करके) उसप्रकार पद्मश्री कहने लगी—धनदत्त नामका एक दुर्विदग्ध(मूर्ख) हाली था । उसकी घरके सारे काम-काज करनेवाली पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर पंचत्वको प्राप्त हो

७ व कत्तं । ८ क तववरणं । ९ क डं ड । १० क डं इ । ११ क डं सु । १२ ख गं डु । १३ ख ग वि । १४ क डं ड । १५ क डं ड । १६ ख ग सो । १७ क डं चडवि । १८. ख ग सह । १९ क डं रघइ । २०. ड डे । २१ व ड । २२ ख ग जय ।

[३] १ क व डं णउ । २ व मत्तहिं । ३. घ मज्जुवरि । ४ ख ग घ णणडं । ५. ख ग घ जिहं । ६ क डं । ७. ख ग रय । ८ ख ग गय ।



- सो पुत्त पवडिदयथोरकर<sup>१</sup>  
 बुड्डत्तणे<sup>११</sup> विहिणा वाहियउ<sup>२</sup>  
 तरुणउ<sup>३</sup> तरंटु मयजोडियउ<sup>४</sup>  
 उव्वितु<sup>१५</sup> थेरु पियपिल्लणउ  
 १० अह अद्वरत्ति<sup>६</sup> सा तासु पिया  
 अणुणतहो बोल्लइ विरसु<sup>११</sup> सरु  
 वट्टइ तउ तणउ समत्थु<sup>१२</sup> घरे  
 ते एयहो चलणइ अणुसरेवि<sup>१३</sup>  
 घत्ता—विणिवायहि<sup>१४</sup> पुत्त महारा जे नंदण होसंति पिय ।  
 १५ बुड्डत्तणे ताह<sup>१५</sup> पसाए भुजेसहुं निक्कट-सिंघ ॥३॥

[ ४ ]

पामरु भणइ<sup>१</sup> कंति लज्जिज्जइ<sup>२</sup>  
 विणयवंतु घरभारधुरंधरु  
 बोल्लइ घरिणि कयग्गह<sup>३</sup> पुणु पुणु  
 हल्लु वाहंतु पसरे एहु अच्छप्र  
 पिचरे केम पुत्त मारिज्जइ<sup>४</sup> ।  
 वल्लिउ विसेसे मारंतहो<sup>५</sup> डरु ।  
 मंतु कहेमि एक्कु जो बहुगुणु ।  
 नियहल्लु नववडल्लु करि पच्छप्र ।

गयी । वह पुत्र दीर्घ व स्थूल (बलिष्ठ) भुजाओंवाला और पिताके आरम्भ भार - अर्थात् समस्त कृषि-उद्योगका अच्छीप्रकार निर्वाह करनेवाला हुआ । बुढापेमे विधिवे प्रेरित होकर धनवत्तने एक दूसरी स्त्रीको व्याह लिया । वह तरुण, प्रगल्भ और (काम-)मदसे भरी हुई स्त्री सोभाग्य(सौदर्य)रूपी दुर्वातसे भग्न अर्थात् मर्यादा च्युत हो गयी, और वह वृद्ध किसान प्रियाकी कामप्रेरणासे उद्विग्न एवं व्याकुल होता हुआ गाँवके लोगोंके लिए एक खिलौना बन गया । पश्चात् एक दिन उसकी वह प्रिया अर्द्धरात्रिके समय रुष्ट होकर सुई फेरकर पड़ रही । अनुनय करनेपर कठोर स्वरमे बोली—मेरे शरीरसे मत लगा, अपने हाथको दूर करो, घरमे तुम्हारा समर्थ पुत्र विद्यमान है । मेरे उदरसे जो पुत्र होगे वे सब इसके घरणोका अनुसरण करके (अनुगामी बनकर), इसका भृत्यपना(दासत्व) करके जीयेगे । (अतः) हे प्रिय ! इस पुत्रको मार डालो, हमारे जो पुत्र होंगे, बुढापेमे उनके प्रसादसे निक्कटक लक्ष्मीको भोगेगे ॥३॥

[ ४ ]

तब किसानने कहा—काते ! यह बडी लज्जाकी बात है, पिताके द्वारा पुत्रको कैसे मारा जाये ? वह विनयवान् है, गृहभारकी घुराकी धारण करनेवाला है, और विधेयरूपसे बलवान् है, इसलिए उसे मारनेमे डर भी है । गृहिणी आग्रह करके पुनः पुनः कहने लगी—एक संत्र (उपाय) वतलाती हूँ, जो बहुत गुणकारी (हितसाधक) है । प्रातःकाल जब यह हल वहा रहा

९ क छ ड पवडिउ<sup>१</sup> । १० ख ग भारभर । ११ ख ग वड<sup>२</sup> । १२ ब ड चाहि<sup>३</sup> । १३ ड णउ । १४ ख ग तर दुम्मय<sup>४</sup> । १५ क ख ड उव्वितु, ग उव्वितु । १६ क ड थेर । १७ ख ग पेलणउ, घ खिल्लणउ । १८ ड रत्ते । १९ क ड स । २० घ लणु । २१ क त्य । २२ क ख ग ड उयरे । २३ क ड रवो । २४ क ख ग घ यहि । २५ क ड ताह, ख ग ताह ।

[४] १ ख ग घ ड । २ ख ग ज्जइ । ३ क ज्जइ । ४ घ तह । ५ क गह ।

तो उद्धतवलहई सारहि<sup>१</sup>  
 पडिभउ नथि नथि अवजसु जण<sup>२</sup>  
 सन्नु वि नियडधरम्मि<sup>३</sup> पसुत्ते<sup>४</sup>  
 पसरि गयम्मि पुट्टि<sup>५</sup> गउ पामरु<sup>६</sup>  
 पुरउ दिट्ट सुउ<sup>७</sup> लंगलवतउ<sup>८</sup>  
 वारिउ पुत्तु<sup>९</sup> काई<sup>१०</sup> किर सुल्लउ<sup>११</sup>  
 नंदणु भणइ<sup>१२</sup> ताय<sup>१३</sup> उम्मूलमि<sup>१४</sup>  
 बुच्चइ धणहडेण बढ गच्छहि<sup>१५</sup>  
 तणए<sup>१६</sup> बुत्तु पई<sup>१७</sup> जि सई<sup>१८</sup> सिद्धउ<sup>१९</sup>  
 पुत्तु<sup>२०</sup> पमाणु<sup>२१</sup> पत्तु<sup>२२</sup> मई<sup>२३</sup> धायहि<sup>२४</sup>  
 तं निसुणेवि विमुक्क<sup>२५</sup> दीहरसरु<sup>२६</sup>

फोडिचि हलमुहेण<sup>२७</sup> पुणु मारहि<sup>२८</sup> ।  
 पडिबज्जेवि<sup>२९</sup> वेण्णि वि तुट्टई<sup>३०</sup> मणे ।  
 इय<sup>३१</sup> संकेउ निसामिउ पुत्ते ।  
 दुइमविस<sup>३२</sup>—तिक्खं कुड्डहलह<sup>३३</sup> ।  
 पकउ सालिछेत्तु बाहंतउ ।  
 अत्यछेउ मा करि गिरितुल्लउ ।  
 अहिणवसालि एत्थु पुणु रुवमि ।  
 सिद्धउ चयवि<sup>३४</sup> असिद्धउ वंछहि<sup>३५</sup> ।  
 रयणिहि<sup>३६</sup> जं जंपत्त उट्टिद्धउ ।  
 महिलहि<sup>३७</sup> अण्ण पुत्त<sup>३८</sup> उण्णायहि ।  
 सुउ अवरुंडेवि रोचइ पामरु ।

२

१०

१५

धत्ता—पिउ हालियधणहडतुल्लउ वंछई<sup>३९</sup> किच्छे तउ करिवि<sup>४०</sup> ।  
 सदेहगउ<sup>४१</sup> सुरनारिउ<sup>४२</sup> आयउ<sup>४३</sup> तुम्हई<sup>४४</sup> परिहरिवि ॥४॥

हो, तब अपने नये बेलवाले हलको इसके पीछे कर लेना । फिर उस उद्धत बेलसे इसपर (सोंगोंका) प्रहार करना (कराना), फिर हलमुखसे विदीर्ण करके मार डालना । इसमें न तो (पुत्रसे) प्रतीकारका भय है, और न लोकोमें अपयश । ऐसा निश्चय करके दोनों मनमें संतुष्ट हुए । यह सारा संकेत(वार्तालाप) पासके घरमें सोये हुए पुत्रने सुन लिया । प्रातःकाल पुत्रके चले जानेपर हाली भी दुर्दम्य वृषभ और तीखे फलवाले हलको लेकर उसके पीछे-पीछे गया । सामने हो उसने हल लिये हुए अपने पुत्रको पके हुए धानके खेतमें हल चलाते हुए देखा । उसने पुत्रको (ऐसा करनेसे) रोका—अरे क्या (मति-)भ्रष्ट हो गया है ? यह पर्वतके समान महान् अर्थछेद (धन-नाश) मत कर ! तब पुत्र कहने लगा—तात इसका उन्मूलन कदूंगा, और फिर बिलकुल नया धान यहाँ रोपूंगा । धनदत्तने कहा—अरे मूर्ख चला जा, सिद्ध(प्राप्त)को छोड़कर असिद्धको इच्छा करता है । (तब फिर) पुत्रने कहा—‘रात्रिमें बातचीत करते हुए (तुमने पत्नीसे) जो कहा, उससे स्वयं तुमने ही यह सिखाया । प्रमाणको प्राप्त अर्थान् मुझ जवान पुत्रको मारकर तू स्त्रीसे अन्य पुत्र उत्पन्न करेगा ।’ यह सुनकर दीर्घ निःश्वास छोड़कर, वह पामर पुत्रको आलिंगन करके रोने लगा । प्रियतम धनदत्त हालीके समान है, (क्योंकि) यह (स्वयं देविघो-जैसी साक्षात् उपलब्ध) तुम सबको छोड़कर, बहुत कष्टसे तप करके ऐसी सुर-नारियोकी वाछा करता है, जिनकी प्राप्तिमें पूर्ण सदेह है ॥४॥

६ क घ ड उत्तदवलहहि, ख ग उद्धतवलहहि । ७ क हि । ८ क हलु । ९ क हि । १० ख ग जिण । ११ क ख ग ड ह । १२ ग नियडि । १३ ग डड । १४ क व ड पुत्ति । १५ क पसर । १६ क ग ग व उट्टम, क ड विमु । १७ क ड हलकर । १८ ख ग सुद । १९ क मंगल । २० क घ ड पुत्त । २१ क विम्भु । २२ ड ह । २३ व ताम । २४ क हि । २५ क ख ग ह च ड वि । २६ क ड पउ ; घ नउ । २७ ख ग घ ल णिहि । २८ व पत्तु । २९ क ड णि । ३० क व ड पुत्तु । ३१ क ख ग घ हि । ३२ क घ ड लहि । ३३ क ड पुत्तु । ३४ क ड मुक्क । ३५ ख ग ड । ३६ क ड करवि । ३७ ड सदेह । ३८ क रिडं । ३९ क ड आइउ । ४० व तुम्ह ।



[ ६ ]

अह कहइ कहाणउ<sup>१</sup> कणयसिरि  
सिहराउ पडिउ<sup>२</sup> सयदलित मुउ  
विज्जाहरु अह अवरेककु<sup>३</sup> जणु  
नियपियप्र समाणु एम चवइ  
तहि<sup>४</sup> मरइ कह व जइ<sup>५</sup> किर खयर  
लइ मरमि एथु इय बुद्धि थिया  
खेयर वि<sup>६</sup> सहावे नाह तुहु<sup>७</sup>  
देवाह<sup>८</sup> मि<sup>९</sup> सगगे किमठमहिउ  
अप्पाणउ<sup>१०</sup> बल्लवि<sup>११</sup> चुणु किउ

कइ एककु वसइ कइलासगिरि ।  
मणिकगयमउडवरु<sup>१२</sup> खयर हुउ ।  
तं<sup>१३</sup> पेक्खिवि हुउ विभइयमणु ।  
जहि<sup>१४</sup> कइ मुउ विज्जाहरु हवइ ।  
तो<sup>१५</sup> अवस होइ गिन्वाणवरु<sup>१६</sup> ।  
रोवति<sup>१७</sup> निवारइ तासु पिया ।  
संपवइ<sup>१८</sup> चित्तिउ तिसयसुहु ।  
अवगणिवि तं कंतप्र<sup>१९</sup> कहिउ<sup>२०</sup> ।  
रत्ताणु वाणरु होवि थिउ ।

५

घत्ता—साहाणइ<sup>२१</sup> सोक्खइ<sup>२२</sup> मेल्लेवि अहिउ मुणंतु नटठु खयर । १०  
तिह<sup>२३</sup> आयउ तुम्हइ<sup>२४</sup> निच्छइ दइवें छलिउ विणटठु वरु<sup>२५</sup> ॥६॥

[ ७ ]

आयणिवि जंबूसामि चवइ  
कामाउरु सेवियरइवसणु

विज्झम्मि एककु कइ<sup>२६</sup> जूहवइ ।  
असहियपडिमक्कडयडरसणु ।

[ ६ ]

इसके अनंतर कनकमाला कथानक कहने लगी—कैलासपर्वतपर एक कपि रहता था । वह शिखरसे गिरा और खंड-खंड होकर मर गया, तथा (मरकर) मणि व स्वर्णमय भूकूटधारी विद्याधर हुआ । कोई एक दूसरा विद्याधर उसे देखकर मनमें बड़ा विस्मित हुआ, और अपनी पत्नीके साथ ऐसा वार्तालाप करने लगा—जहाँ कपि मरकर विद्याधर होता है, तो यदि किसी तरह कोई खेचर मरे तो वह अवश्य उत्तम गीर्वाण(देव) होगा । तो लो, अब मैं ही यहाँ मर जाता हूँ, ऐसी उसकी (दृढ़)बुद्धि हो गयी । रोती हुई उसकी प्रिया उसे रोकने लगी—हे नाथ, खेचर स्वभाव(रूप)से भी तुम्हे मनोवाञ्छित विषयसुख प्राप्त होता है । देवोंके लिए ही स्वर्गमें कौन-सा अतिशय सुख है ? कांताके कहे हुएकी अवहेलना करके उस खेचरने अपने-को गिराकर चूर्ण कर लिया और लाल भूँहवाला वानर होकर रह गया । स्वाधीन सुखोंको छोड़कर, अधिककी कामना करनेवाला खेचर (जिसतरह) नष्ट हुआ, उसीतरह (प्राप्त हुई) तुम लोगोंको यह नहीं चाहता । (अतः) यह वर देवसे ठगा जाकर विनष्ट हो रहा है ॥६॥

[ ७ ]

यह सुनकर जंबू स्वामी कहने लगे—विध्यमे एक यूथपति वदर रहता था । वह बड़ा कामातुर था, सदैव रतिव्यसनका सेवन करता था, और दूसरे वानरयूथकी आवाज भी सहन

[६] १ क घ ङणं । २ क ड वि । ३ क ड मणि-कडय । ४ क ड रिक । ५ ग तो । ६ ख ग तहि । ७ क ड जे । ८ ग तउ । ९ ग गिन्वाणु । १० ड रोमति । ११ क ड जि । १२ ख ग व तुहु । १३ क ड जजउ । १४ क ड हु वि, ख ग हु वि । १५ क ड इ । १६ क तं । १७ क घ ङणउ । १८ क घ ङ वल्लिवि । १९ ड णइ । २० क ड ड । २१ ख ग तिहं, घ तह । २२ क ड हं । २३ ख नस ।

[७] १ ख आठ, व न्निवि । २ घ कवि ।

- वाणरिय पुत्तु जं किर जणइ  
अह एक कयावि सगन्म हुयां  
५ सुउ जाउ ताहि<sup>१०</sup> पिगलनयणु  
पुच्छिय जणेरी<sup>१०</sup> कहिं महु जणणु  
तो भणइ<sup>१२</sup> कुइउ धुयमुयजुवले<sup>१३</sup>  
निउ तेत्थु परोप्परकुद्धमण  
नहदंतपहारहिं<sup>१०</sup> वणियतगु  
१० हउ पुट्टिहिं<sup>१०</sup> इयरु वि असहमणु  
अइतिसिउ सल्लिसणिणहु<sup>३०</sup> नियइं<sup>३०</sup>  
लंबम्मि<sup>२३</sup> बहुट्टु ताम<sup>२३</sup> वियलु  
बोओ वि हत्थु तेत्थु जिं<sup>२४</sup> निहिउ<sup>२४</sup>  
जाणंतु वि मूडु<sup>२५</sup> विणट्टमइ  
१५ अत्ता—तह<sup>२६</sup> विसयसुहेसु तिसायउ<sup>३०</sup> होइवि<sup>३१</sup> हउं मिं<sup>३२</sup> न जामि खउ ।  
अहिंसकडे अनडे पडंतहो महुलवलेहणे<sup>३३</sup> आस कउ<sup>३३</sup> ॥७॥

न करनेवाला था । बानरी जो सतान जनती थी, पुत्रीको छोड़कर पुत्रको मार डालता था । पश्चात् किसी समय एक बानरी सगर्भा हुई । उस वनको छोड़कर उसने अन्य वनमें प्रसूति की । उसे पिगलनेत्र और खूब बड़ी द्रष्टृपक्षितसे-युक्त मुखवाला पुत्र हुआ । उसने जननीसे पूछा—मेरा पिता कहाँ है ? (माँने कहा) —हे पुत्र ! वह पुत्ररूपी अंकुरका उन्मूलन करनेवाला ( पिता, जहाँ है, वही ) रहे, अर्थात् उस पुत्रघातक पितासे तुझे क्या लेना देना है ? तब अपने भुजयुगलको फटकार कर, कुपित होकर वह बोला— माँ बतलाओ (कि वह कहाँ है ?) । उसे उसके पापका फल बतलाऊँगा । माँ उसे वहाँ ले गयी । परस्पर क्रुद्ध होकर दोनों बानर ( एक-दूसरेपर ) झपटे । नखों और दाँतोंके प्रहारसे घायल शरीर होकर वृद्धा वदर रण छोड़कर भाग निकला । दूसरा भी असहिष्णु होकर उसके पीछे हो गया, यहाँतक कि उससे वन छुड़वा दिया । अत्यंत व्यास हुए उसने अपने सामने जलके समान कुछ (द्रव पदार्थ) देखा । और जब (एक) हाथ डालकर उस पानी(जैसे पदार्थ) को पीने लगा तो उस लेप (चिपचिपा पदार्थ—गिलाजीत)में चिपककर व्याकुल हो गया । फिर भी उस मूर्खने जलकी अभिलाषा करके दूसरा हाथ भी उसीमें डाल दिया, तथा घुटने लगाकर मुख भी डाल दिया । जिस-प्रकार जानते हुए भी वह हतबुद्धि मूर्ख बानर लेपमें चिपककर मरा, उसी प्रकार विषयमुखोका व्यासा होकर मैं भी, किञ्चित्मानव मधुको चाटनेमें आसक्त होकर सर्पोंमें संकीर्णकूपमें पड़कर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा (दिखिए परिशिष्ट मधुविबुद्धतात्) ॥ ७ ॥

३. ख ग धूय । ४ ख ग इ । ५ क ड छडिबि । ६ क ड इ, घ अनहिं । ७. क ड आ । ८ घ तासु । ९ क ड पिगलु । १० ख ग कहि । ११ ख ग सुउ । १२ क घ ट उ । १३. ख ग घ जुयलु । १४ ख ग कहि । १५. क त । १६. क ड विय । १७. क उ मुजि । १८ क घ ट हिं । १९. क ड छडा । २० क घ ड सल्लिलु सम्मुहु । २१ क ट ए, घ इ । २२ ख ग घ ड । २३. घ ट जाम । २४ व लसिउ । २५ ख ग घ वि । २६ क दि, घ ट वि । २७ क मुड । २८. क उ पत्तु । २९ क तिहिं, घ तह, ड तिह । ३० ख ग घ निनाउयउ । ३१ घ होयवि । ३२ ख ग घ रि । ३३ ख ग आसतउ, घ आमकउ, ड आमकओ ।

[ ८ ]

विनयसिरोप्र<sup>१</sup> कहाणउ<sup>२</sup> सीसइ<sup>३</sup>  
 कम्मि पुरम्मि दरिइ<sup>४</sup> ताडिउ  
 दिणि दिणि वणे कन्वाडहो<sup>५</sup> धावइ  
 भुत्तसेसु<sup>६</sup> दिवसेसु पवन्नउ<sup>७</sup>  
 महिलसहाए<sup>८</sup> रहसे चड्डिउ  
 अह रविगहण कयाचि विहाणइ<sup>९</sup>  
 पूरिपहि<sup>१०</sup> मणिरयणसुवणहि<sup>११</sup>  
 मंतिजप्र<sup>१२</sup> आएण असारे  
 जाणाविउ<sup>१३</sup> लोयाण समग्गा  
 चित्तेवि तम्मि<sup>१४</sup> लुद्धु निउ<sup>१५</sup> भल्लउ  
 सो संपुणु करेवि पवत्तइ<sup>१६</sup>  
 अह छणदिणि<sup>१७</sup> महिलाप्र<sup>१८</sup> कहिज्जइ  
 संखिणि खणइ<sup>१९</sup> कलसु जहि<sup>२०</sup> धरियउ

संखिणिनिहि वरइत्तहो<sup>२१</sup> दीसइ<sup>२२</sup> ।  
 संखिणि नाम को वि कट्वाडिउ ।  
 भोजणमत्तु<sup>२३</sup> किलेसे पावइ ।  
 रुवउ<sup>२४</sup> एकु रोकु संपन्नउ ।  
 कलसे<sup>२५</sup> लुहवि धरायले गड्डिउ ।  
 चलियइ<sup>२६</sup> तिथे चयवि<sup>२७</sup> नियथाणइ<sup>२८</sup> ।  
 अवलोइउ संखिणिनिहि<sup>२९</sup> अण्णहि<sup>३०</sup> ।  
 खडहडंतलुवयसंचारे ।  
 अम्हइ<sup>३१</sup> गिण्हाविज्जहु<sup>३२</sup> लग्गा ।  
 एक्केकउ मणिरयणु गरिज्जउ ।  
 ण्हाप्रवि<sup>३३</sup> तिथे निययघरु पत्तइ<sup>३४</sup> ।  
 रुवउ<sup>३५</sup> अल्लु नाह विलसिज्जइ ।  
 दिट्ठउ ताम कणयमणिमरियउ<sup>३६</sup> ॥

५

१०

[ ८ ]

(तब) विनयश्रीने यह कथानक कहा, और वर(जवूस्वामी)को एक संखिणी नामक कवाड़ीका दृष्टांत दिखलाया। किसी नगरमे दारिद्र्यसे पीड़ित संखिणी नामका कवाड़ी रहता था। वह प्रतिदिन वनमें लकड़ी आदि इकट्ठा करनेको जाता और भोजन-भर भी बड़े श्लेशे पाता था। कुछ दिनोमे खानेसे वचा-बचाकर उसके पास एक रुपया रोकड़ (जमा) हो गया। पत्नीके सहयोगसे बहुत उत्कंठापूर्वक एक कलशमे रखकर उस रुपयेको (कही वनमे) घरातलमें गाड़ दिया। अथानंतर किसी समय सूर्यग्रहणके अवसरपर प्रातःकालके समय (कुछ लोग) अपने निवास स्थानोको छोड़कर तीर्थयात्राको चले; और मणि, रत्न व सुवर्णसे भरपूर उन लोगोंने संखिणीकी उस निधिको देखा; तथा कुछ खड़-खड़ करते हुए उस अल्प मूल्यवात् रुपयेके संवरणसे ऐसी मंत्रणा को—इस रुपयेके द्वारा लोगोंको ऐसा जनाया (वतला) जा रहा है कि (तीर्थयात्रा के) अपने (इस) मार्गसे जानेवाले लोग हमे (मुझे) कुछ ग्रहण करावे; अर्थात् इस घड़ेमे एक-एक सिक्का डालकर इसे पूरा कर दे। ऐसा सोचकर वे सब लोग एक-एक श्रेष्ठ सुंदर मणिरत्न उस घड़ेमें डालकर, उसे फिर वापस जमीनमे गाड़कर पुनः अपनी-अपनी यात्रापर प्रवृत्त हो गये, और तीर्थस्नान करके अपने घर आ गये। पदचात् किसी समय उसवके दिन (कवाड़ीकी) स्त्रीने कहा—नाथ ! आज उस रुपयेसे आनन्द मनाया जाये। तब संखिणीने उस स्थानको खोदा जहाँ कलश रखा था, तो उसे सुवर्ण और मणियोसे भरा

[८] १ क ड<sup>१</sup> 'सिरीय'। २ क घ ड<sup>२</sup> 'णउ'। ३. क ड<sup>३</sup>। ४ क ड<sup>४</sup> 'यत्तहो'। ५ क ड<sup>५</sup> 'दरहें'। ६ ख ग भोजणु मित्तु। ७ क ड<sup>७</sup> 'भुत्त'। ख ग 'सेस'। ८ क ड<sup>८</sup> 'णउ', ख ग 'णउ'। ९. ख ग घ ल्यउ। १०. प्रतियोगे 'कलसे'। ११ प्रतियोगे 'गिहाणइ'। १२ ख घ चडवि। १३ क 'णउ', ड 'णउ', घ 'निहि'। १४. क घ ड<sup>१४</sup> 'णिहि'। १५ क घ ड<sup>१५</sup> 'ज्जइ'। १६ प्रतियोगे 'जाणाविवि'। १७ घ गिण्हाविज्जइ। १८ क ड<sup>१८</sup> मति, घ तट्ठि। १९ क ड<sup>१९</sup> निरु, घ निरु। २०. क ड<sup>२०</sup> 'यवि, व न्हाडवि'। २१ क छवि'। २२ क घ ल<sup>२२</sup> 'लाइ'। २३ प्रतियोगे 'खणइ'। २४. क ड<sup>२४</sup> 'कणयमय'।

- १५ मरहसु रहसे<sup>२६</sup> कहिउ<sup>२७</sup> पिष्ट<sup>२८</sup> पेक्खहि<sup>२९</sup> मई सम पुण्णवंतु<sup>३०</sup> को लक्खहि<sup>३१</sup> ।  
 अज्जवि<sup>३२</sup> सिद्धिनएण निहाणे रयमि उवाउ अवरु मइनाणे<sup>३३</sup> ।  
 कि पि न लेमि करेमि न खोयणु<sup>३४</sup> होसइ कव्वाडेण वि<sup>३५</sup> भोयणु ।  
 अह कलसेसु लुहेवि एक्केउ<sup>३६</sup> बहु दविणासप्र गड्डेवि मुक्कउ<sup>३७</sup> ।  
 अण्णहि<sup>३८</sup> पन्वे पुणु वि पहे दिट्ठइ<sup>३९</sup> पूरहु केम हियप्र<sup>४०</sup> न पइट्ठइ<sup>४१</sup> ।  
 निहिहि<sup>४२</sup> रयणु एक्केउ लइयउ सुण्णउ<sup>४३</sup> करेवि सव्बु परिचइयउ ।  
 २० अवरहि<sup>४४</sup> समप्र जाम उग्घाडइ<sup>४५</sup> रिताउ नियवि करहि सिर ताडइ<sup>४६</sup> ।  
 अच्छउ<sup>४७</sup> रयणसमूहु सरूवउ<sup>४८</sup> सो वि विणहु मूलि जो रुवउ<sup>४९</sup> ।  
 घत्ता—साहीणलच्छि नउ मुंजइ<sup>५०</sup> महइ<sup>५१</sup> समगलु समगदिहि ।  
 सखिणिहि<sup>५२</sup> जेम वरइत्तहो करे लग्गेसइ सुण्णनिहि<sup>५३</sup> ॥८॥

[ ६ ]

बोझइ कुमार रइसुहहो भामि ममरो न्व वरच्छि न खयहो जामि ।  
 सयवत्तन्भसरे गंधलुहु अलि न कलइ दिवसत्थवणु मुहु ।  
 रयणीसंगमे संकुइउ कमलु नीसरिवि न सक्कु विवणु भसलु ।

देखा । उसने उत्कंठासे उत्कंठित होकर कहा—प्रिये, देखो । मेरे जैसा पुण्यवान् और कौन दिखाई देता है ? सिद्धिनय(दैवयोग) से अर्जित खजानेके द्वारा मैं अपने बुद्धिबलसे (प्रभूत धनार्जन करनेका) एक अन्य उपाय रचता हूँ । इस निधिमे-से न तो कुछ लूंगा और न इसे खो-दूंगा, अपना भोजन तो कवाडोपनसे भी चलता रहेगा । फिर एक-एक मणिको एक-एक कलशमे रखकर अत्यधिक धनकी आगासे गाडकर छोड़ दिया । (उन्ही) अन्य यात्रियोने (किसी दूसरे) पर्वपर मार्गमे फिर उस निधिको देखा, और (घडेमे एक ही रत्न देखकर) यह निधि कैसे पूरी हो, यह बात उन लोगोके हृदयमे अर्थात् समझमे नही आयी । (अंततः उन लोगोने खोज-खोज-कर) उस निधिमे-से एक-एक करके सब रत्न ले लिये और सब घडोको खाली करके (वही) छोड़ दिया । जब (पुनः) सखिणीने पत्नीके साथ उस निधिको उवाड़ा तो (सब घडोको) रिक्त देखकर हाथोसे सिर पीटने लगा ।—वह सुंदर रत्नसमूह तो दूर ही रहे, जो मूलमे एक रुपया था, वह भी विनष्ट हो गया । स्वावीन लक्ष्मीको तो भोगता नही, और श्रेष्ठ स्वर्गमुपकी आकांक्षा करता है, ऐसे इस वरके लिए उस सखिणीके समान मूल्य निधि (पानी घटे) हो हाथ लगेगी ॥ ८ ॥

[ ९ ]

कुमार बोला—हे सुंदर आँखोवाली भामिनी । रति (रमण, क्रीडा)-मुपके कारण मैं भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नही होऊँगा । जतपत्रके भीतर गया हुआ गंधका लोभो मृग भीरा दिवसके अस्त होनेको नही जान पाता । रात्रिके मंगम(प्रदोषकाल)पर कमल गहुनित

२५ क ट मरहसेण कहियउ । २६ घ रहमि । २७ क ट पिय । २८ क टि; स ग टे । २९ क ट पुणि; घ पुनं । ३० स ग टि । ३१ क ट अज्जु नि । ३२ क घ ट नाणे, स ग मट्ठाने । ३३ घ मोट्ठु । ३४ क ड य । ३५ क वक्कउ । ३६ क ट टि । ३७ क म म ट ट । ३८ क ट ड । ३९ स ग घ ट्टउ । ४० क ट इ घ मुक्कउ । ४१ क घ ट रि । ४२ क म ट ट । ४३ क ट । ४४ क वउ । ४५ क स ग ड । ४६ क ट । ४७ न ग निहि । ४८ क ट निहि, घ मुप ।

इय विसयसोकखु अचयंतु संतु  
तो कहइ रूवसिरि कवलियपु  
काल्मि कम्मि महिजणियसत्तु  
पावससिरि-संतरयंबरीय<sup>२</sup>  
घणपडलछणणतारयविहाड<sup>३</sup>  
वरिसइ वणोहु अछिन्नधारु<sup>४</sup>  
गिरिकडणि सिलायड<sup>५</sup> मंदमंदु  
आलावणिबज्जहो अणुहरंतु  
पडणुच्छलंतजलु धरणि<sup>६</sup> बहइ

घत्ता—निसिदिवससत्त धाराहरु<sup>७</sup> वरिसइ पूरियधरणियलु<sup>८</sup> ।

संचारु न लडभइ सलिले हुउ आदण्णल जगु सयलु ॥६॥

[ १० ]

फुटतलायपालिबहनिगगय<sup>१</sup>

<sup>२</sup>नइवण्णाहल्लगजलयर गय ।

हो जाता है, भौरा उसमे-से निकल नहीं पाता, व उसीमें मर जाता है । इसीप्रकार विषय-सुख-का त्याग न करके मैं बिनाशके मार्गपर नहीं चलूंगा, यही मेरा मंतव्य है । इसपर रूपथी बोली—ऐसे ही पराक्रम (आत्माभिमान)से एक सर्प अपने-आपको कालकवलित करके बिनाश-को प्राप्त हुआ । किसी समय पृथ्वीमें अनेक सत्त्वोको उत्पन्न करनेवाला शिखि-वल्लभ वर्षाऋतु प्राप्त हुआ । अंवरमे रज शात हो गया, पयोधर (मेघ) अधोमुख होकर आकाशमे लटक गये, मेघपटलसे तारकगुण आच्छादित हो गये, और काश (वासविशेष) खूब फूल उठे; इसप्रकार वह पावसलक्ष्मी ऐसी जराजीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत हुई, जिसका रजोवर शांत हो गया है, अर्थात् ऋतुमती न होनेसे जो रजोवस्त्र धारण नहीं करती; जिसके पयोधर (स्तन) अधोमुख होकर लटक गये हैं; जिसके अक्षि-तारक (आँखोकी पुतलियाँ) घने अक्षि-पटल (मोतियाविंद)से आच्छन्न (आवृत) हो गये हैं, और जिसका काश अर्थात् खाँसी रोग (स्वास) अत्यधिक बढ गया है । उत्तम वृक्षोके पत्रोसे सघट्टन करता हुआ बारिद-समूह गिरिमेखला और शिलातटोपर मद-मद, एवं हल चलायी हुई क्षेत्र-मालाओमे खूब घना, अतः आलापिनी (वीणा)के वादनके स्वरका अनुहरण करता हुआ, और नदी, तडाग, गड्ढो, दर्रे व दहोंको भरता हुआ अविच्छिन्न धारासे बरसने लगा । वर्षा गिरनेसे उछलते हुए जलको धारण करती हुई पृथ्वी ऐसी गोभायमान हो रही थी, मानो स्फटिकमय लिंगोसे जड़ दी गयी हो । सात रात-दिनो तक मेघ निरंतर बरसता रहा, और उसने धरातलको जलसे पूर दिया । पानोके कारण संचरण (मागं) मिलना भी कठिन हो गया, और सारा जग व्याकुल हो गया ॥ ६ ॥

[ १० ]

तालाबोकी पाल (मेढ) फूट गयी, और उससे जलका प्रवाह बह निकला । नदीकी बाढ़में

[१] १ घण्टा । २ घट 'वलीय' । ३. क ड 'मुहु' । ४. क ड 'पयो' । ५. क ड 'कास' । ६. क घ 'ह' । ७. क ख घ 'अच्छिन्न' । ८. घ 'तरवर'; ड 'दलवण्णतारुणतारु', क 'दलवण्णतारु' । १०. क ड 'वड', ख ग घ 'यड' । ११. क 'सरि' । १२. ख ग 'दर' । १३. ख ग 'णि' । १४. ख ग 'व' । १५. घ 'धरु' । १६. क ड 'वलु' । १७. क घ ड 'णणड' ।

[१०] १ ख ग 'पहनि' । २. क ड 'णय', ख ग 'नय' ।



- थिपिर-जुण<sup>३</sup>-तण<sup>३</sup>-कुडिलीण<sup>३</sup>  
 सलसलंति मुखसडं सविडवडं<sup>३</sup>  
 नीडनिवासिपहिं<sup>३</sup> अच्छिज्जइ  
 ५ गिरिकुहरेसु थकु वणथरगणु  
 मंदी जाइ जलोहिं नियत्ति<sup>३</sup>  
 नियआहारु चरंतें सरडें  
 कुंडलियंगु तडियउद्वरफणु  
 खड्डु भुयंगमेण कहिं<sup>३</sup> लुकमिं  
 १० पुत्तविट्ठनलदरि सरंतें  
 पुच्चइ सामिमाल मडै<sup>३</sup> मारहिं<sup>३</sup>  
 एम भणेवि करेवि<sup>३</sup> मुहुं<sup>३</sup> वुण्णउं<sup>३</sup>  
 अहिणा भणिउं<sup>३</sup> काइं<sup>३</sup> विवरेरउ  
 करकेटिउ कहेइ<sup>३</sup> तुहुं<sup>३</sup> कुलपहु  
 १५ इय जयकार रहसकिउ मण्णहिं<sup>३४</sup>
- कंदिरडिभइ<sup>३</sup> तवणविहीणइ<sup>३</sup>।  
 निव्ववसायइ<sup>३</sup> रोड<sup>३</sup>-कुडवइ<sup>३</sup>।  
 चार चार पक्खिहिं<sup>३</sup> मुच्छिज्जइ।  
 तल्लूवेत्ति करड पीडियतणु।  
 पविरलजलसंचार<sup>३</sup>-पवत्ति<sup>३</sup>।  
 दिट्ठउ कालसप्पु मइजरडे<sup>३</sup>।  
 ललणललंतु<sup>३</sup> जगु जि भक्खणमणु।  
 केण उवापं आयडो चुकमि।  
 जय-जय सह करेवि तुरंतें।  
 खुइजंतुजोणिहिं<sup>३</sup> उत्तारहिं<sup>३</sup>।  
 अंसुपवाहु सुयंतें<sup>३</sup> रुण्णउं<sup>३</sup>।  
 चरिउ तुहारउं<sup>३</sup> जणं अच्छेरउ।  
 पइं<sup>३१</sup> खड्डउं<sup>३२</sup> पावेसमि सिवपहुं<sup>३३</sup>।  
 रोविउ जं पि तं पि आयण्णहिं<sup>३४</sup>।

पडकर जलचर वह गये। खाद्य पदार्थोंके न मिलनेसे क्रंदन करते हुए बच्चे गलती हुई जीर्णतृण-निमित्त कुटियोमे लीन हो गये। कुटुंबीजन भूखसे व्याकुल होकर सलबलाने लगे और व्यवसाय-हीनताके कारण हैरान हो गये। पक्षी अपने नीडोंमें ही निवास करते रह गये, और बार-बार मूच्छित होने लगे। वनचर-समुदाय गिरिकदराभोमे स्थित हो गया, और पीडित शरीर होकर तडफडाने लगा। जलके प्रवाहमे-से निवृत्त होकर(बचकर), उथले जलमे संवरण प्रवृत्तिसे धीरे-धीरे चलते हुए एक मतिवृद्ध (प्रौढमति) करकेन्देने स्वयके आहारके लिए विचरण करते समय एक काला सर्प देखा, जो शरीरको कुडलित किये हुए अर्थात् कुंडली मारे हुए, विस्तीर्ण फणको ऊपर उठाये हुए, मानो सारे जगको भक्षण करनेके मन(इच्छा)से अपनी जीभोको लपलपा रहा था। अब मैं भुजंगमे खाया गया, कहाँ लुकूँ और किस उपायसे इससे बचूँ ? (ऐसा सोचकर) पहले देखी हुई एक नकुल गुफाका स्मरण करके उस करकेन्देने तुरत जय-जय शब्द करके कहा—हे स्वामिश्रेष्ठ। मुझे मार डालिए और क्षुद्र जंतु योनिसे उद्धार कर दीजिए। ऐसा कहकर, उद्विग्न मुख करके अश्रुप्रवाह छोड़ता हुआ रोने लगा। सपने कहा—तुम्हारा चरित्र लोगोमे बड़ा विपरीत और आश्चर्य-कारक है, इसका क्या कारण है ? करकेटा कहने लगा—तू हमारा कुलदेवता है, तुम्हारे-द्वारा खायी जाकर मैं शिवपथको पाऊँगा, इस कारण तो हर्षसे जय-जयकार की ऐसा मानिए, और जो रोया, उसका कारण भी

३. व. ३। ४. क कडिं। ५. ख ग ड डिभइ। ६. क व ड तवणिं। ७. क व ड इ। ८. ड वइ।  
 ९. क व यइ। १०. क रोड। ११. क ड वइ। १२. क ड पंखिहिं। १३. क व ड रि। १४. ख ग  
 पविं, ड पवत्ति। १५. व मइ। १६. व ललइ। १७. ख ग कहि। १८. ख ग मइ। १९. क हिं।  
 २०. क व ड जोणिहिं। २१. क व रंइ। २२. क करवि। २३. क व ड मुहुं। २४. ख ग ड वुं,  
 २५. व मुवत्ति। २६. व उं। २७. क व ड उं। २८. क ड काइ। २९. क ड रउ।  
 ३०. व भयेइ। ३१. ख ग पइ। ३२. क व उं। ३३. क पहुं, मुहुं। ३४. क ड हिं, व मण्णहिं।  
 ३५. क ख ग ण्णहिं।

महु कुडवु संताणगरिखउ मई<sup>३१</sup> एकेण जि विणु एक्खउ ।  
 केम हवेसइ ति दय किजउ तो<sup>३०</sup> वरि तं पि देव<sup>३०</sup> भक्खिजउ ।  
 उतु कुडवु कहहि<sup>३१</sup> जहि<sup>३१</sup> अछल्ल चलिप्र चलिउ सो वि तहो पच्छ<sup>३१</sup> ।  
 निउ गिरिदरिहि<sup>३०</sup> भडारा लक्खहि<sup>३१</sup> गोत्तु महारउ<sup>३२</sup> पइसिवि भक्खहि<sup>३३</sup> ।  
 तुहु पइहु<sup>३४</sup> दिहु मुहत्तवें खड्डउ फाडिवि नउलकयवें । २०  
 अहिलसतु अहि अहिउ<sup>३५</sup> जि लक्खइ इट्टु<sup>३६</sup> नियइ वडिपहरु न पेक्खइ ।  
 पत्ता—<sup>३७</sup> इच्छंतहो अहिउ असिद्धउ सिद्धविणासु वि “पियहो किह<sup>३०</sup> ।  
 सिवमाहवधुत्तविलोहिउ<sup>३८</sup> रायपुरोहिउ मुट्टु<sup>३९</sup> जिह ॥१०॥

[ ११ ]

तं निसुणेवि कुमारो वुचइ विसु साहोणु किं न लहु मुचइ ।  
 रयणिहि<sup>३५</sup> नयरे सियालु पइहुउ मुउ बलह रच्छामुहे दिट्टवें ।  
 भक्खतेण दंत-वणे<sup>३६</sup> काणिउं रयणिविंरामपमाणु न जाणिउं ।  
 हुप्र<sup>३७</sup> पहाप्र<sup>३८</sup> वस-आमिसमुज्झिउं जणसंचारवमालें वुज्झिउ ।  
 भयकपिनु नोसरिवि न सक्खउ चितियमंतु पडेविणु<sup>३९</sup> थक्खउ । ५

सुन लीजिए ! मेरा कुटुंब बहुत संतानोंवाला है । मुझ एकेके बिना अकेले (निराश्रय) होकर उसका कैसे क्या होगा ? इसलिए हे देव ! दया कीजिए, और उसको भी खा लीजिए ! सर्पने कहा—तुम्हारा कुटुंब कहाँ रहता है, यह बताओ ! करकंटेके चलनेपर वह सर्प भी उसके पीछे-पीछे चला । गिरिकदरामे ले जाकर करकंटेने कहा—भट्टारक, यह देखिये हमारा कुल ! भीतर प्रवेश करके इसे खा लीजिए ! प्रसन्न होकर वह(सर्प) प्रविष्ट हुआ, वहाँ लाल मुँहवाले नकुल समूहने उसे देखा, और फाड़कर खा लिया । अभिलापाके वशीभूत हुआ सर्प अधिककी ओर ही लक्ष्य करता है; अतः अपने इष्ट(दुग्ध)को तो देख लेता है किंतु प्रतिप्रहारको नहीं देखता । और अधिक अनुपलब्ध(सुखों)की इच्छा करनेवाले प्रियतमके उपलब्ध सुखोंका भी विनाश उसीतरह हो जायेगा, जिसप्रकार शिव और माधव धूर्तों-द्वारा ललचाया हुआ राजपुरोहित ठगा गया ॥१०॥

[ ११ ]

इस कथाको सुनकर कुमारने कहा—अपने आधीन विपक्षी (भी) क्या तुरत त्याग नहीं दिया जाता ? रात्रिमें एक शृगाल नगरमें प्रविष्ट हुआ और (उसने) रास्तेके मुँहपर ही एक मरा हुआ बेल देखा । (उसे) खाते-खाते उसके दाँत व मुख छिद गये और वह रात्रिके अंत होनेकी अवधिकी भी नहीं जान सका । प्रभात होनेपर वृषभके माससे मोहित वह शृगाल लोभके संचारके कोलाहलसे सचेत हुआ । भयसे कांपता हुआ वह (नगरसे) निकल भी नहीं

३६ ख ग मइ । ३७ ख ग घ वरि देव ते (व त) पि । ३८ ख घ<sup>३०</sup> हि । ३९ ख ग जहि । ४० क क<sup>३०</sup> हि । ४१ क<sup>३०</sup> हि । ४२ क<sup>३०</sup> रउं । ४३ क ख ग<sup>३०</sup> हि । ४४ क ड पट्टु । ४५ क<sup>३०</sup> उं । ४६ क घ ड डुडु । ४७ ख ग मे पूरी पवित इस प्रकार—लोहें जाइ खउ अहि वि विणामु वि पियहो किह । ४८ क<sup>३०</sup> हु । ४९ क ड<sup>३०</sup> धुत्तु । ५० क ड मुहु, ख ग मुहु ।

[११] १ क<sup>३०</sup> ड । २. प्रतिमामे निहि । ३ क<sup>३०</sup> उ, ड दिट्टिउ । ४. क व ड<sup>३०</sup> वण, ग<sup>३०</sup> वणु । ५ क<sup>३०</sup> उ । ६ क ड हुय, ख ग हुउ । ७. क क<sup>३०</sup> इं । ८ क हामियं । ९ क<sup>३०</sup> ड, ख ग घ ड<sup>३०</sup> इ । १०. व<sup>३०</sup> पिणु ।

- अप्पउ सुयउ करिवि दरिसावमि किर वणु पुणु वि निसागमि पावमि ।  
 दीसई दिवसि<sup>१</sup> मिलिय पुरलोए<sup>२</sup> एके नरेण पवडिहियरोए<sup>३</sup> ।  
 ओसह<sup>४</sup> लुउ पुच्छ<sup>५</sup> -सकणउ<sup>६</sup> चित्तइ जंघुउ अज्ज वि धणउ<sup>७</sup> ।  
 जीवेसमि अपुच्छ<sup>८</sup> विणु कण्हि<sup>९</sup> एकवार जइ छुट्ठमि पुण्णहि<sup>१०</sup> ।  
 १० वोझइ अवर एकु कामुयजणु गेण्हमि<sup>११</sup> दंतु करमि वसि पियमणु ।  
 पाहणु लेवि दंत किर चूरइ जाणिवि जंघुउ हियइ<sup>१२</sup> विमूरइ ।  
 खंडियपुच्छ<sup>१३</sup> -कण्ण मणिय तिणु<sup>१४</sup> दुकरु जीवियास दंतहि<sup>१५</sup> विणु ।  
 चितवि<sup>१६</sup> मुक्कु धाउ जव-पाणे लइउ कंठे हरिसरिसे साणे ।  
 मारिउ ताम जाण कयनाएं खद्वउ मिलिवि सुणहसमवाएं ।  
 १५ इय विसयंघु मूहु जो अच्छइ कवणमंति सो पल्यहो गच्छइ ।  
 वत्ता—<sup>१७</sup> गय अद्धरत्ति<sup>१८</sup> बोझंतह<sup>१९</sup> तो वि कुमार न भवे रमइ<sup>२०</sup> ।  
 तहि<sup>२१</sup> काले चोर विज्जुवर चोरेवइ<sup>२२</sup> पुरे परिभमइ<sup>२३</sup> ॥११॥

[ १२ ]

विरइयगाढगंठिपरिहणसलु  
 निविडंनिवद्वज्जूसिरपरियरु

क्रियआयत्तलुरियपिहुकडियलु ।  
 अयरुगारधूवेसुरहियमरु<sup>२४</sup> ।

सका और यह मंत्र सोचकर निश्चल होकर पड़ रहा—अपनेको मरा हुआ दिखला देता हूँ, पुनः रात आनेपर वनको चला जाऊँगा । दिनमें नगरके लोगोंने मिलकर देखा । एक मनुष्यने जिसका रोग बढा हुआ था, औषधिके लिए उसकी पूछ व कान काट लिये । जवूक सोचने लगा—अभी भी वन्य (भाय) हैं; यदि एक बार पुण्यसे छूट जाऊँ तो बिना पूछ और कानोके ही जी लूँगा । एक दूसरा कामी पुरुष बोला—इसका दाँत ले लेता हूँ, (उससे) प्रियाका मन वशमे करूँगा । और पत्थर लेकर सचमुच ही उसके दाँत तोड़ डाले । (यह) जानकर श्रुगाल अपने हृदयमें खेद करने लगा—पूछ व कानके काटे जानेको तो मैंने तूणके समान समझा, परंतु दाँतोके बिना तो जीनेकी आशा दुष्टकर ही है । ऐसा सोचकर (लोगोंसे) छूटते ही जब वह अपने प्राण लेकर भागा, तो सिंहके समान श्वानने उसे गलेसे पकड़ लिया, और जानसे मार डाला, तथा शोर मचाते हुए कुत्तोके समुदायने मिलकर खा डाला । इसप्रकार जो मूढ विषयाद्य होकर रहता है, वह अवश्य विनाशको प्राप्त होगा, इसमें क्या आति है ? (इसप्रकार) कथा-वार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी, तो भी कुमार ससारमें आसक्त नहीं हुआ । उसीसमय विजुवर नामका चोर चोरी करनेके लिए नगरीमें भ्रमण कर रहा था ॥११॥

[ १२ ]

सुदृढ गाँठसे अपने परिधानमें शलाका (डंडा) लगाये हुए, और पृथुल (विशाल) कटितलपर छुरीकी स्वाधीन किये हुए अर्थात् लटकारे हुए, शिरके चारो ओर घना जटाजूट बाधे हुए, अगुरुके

११. वं<sup>२५</sup> । १२. क ड अ<sup>२६</sup> । १३. क व ड पुच्छु । १४. व ल णउ । १५. ख ग वज्ज, व ड<sup>२७</sup> । १६. व<sup>२८</sup> । १७. क ड<sup>२९</sup> वि । १८. ख ग जवू । १९. ग हिय। २०. ख ग व खडिउ, पुच्छु । २१. क व ड तण् । २२. ख ग हि । २३. क ड चितिवि । २४. क ख ग ल गट रत्तु । २५. क ड तड, ख ग तहो । २६. ख व ल ड । २७. ख ग तहो । २८. व चोरिज्जइ । २९. ख ग ड ।

[१२] १. ख ग निवड । २. ख ग व धूय । ३. व पसरिय ।

सियतबोलवत्तवीडियधर  
कामिनिकामलयहे<sup>१</sup> मेझिवि घर  
वेसउ जत्थ विट्टसियरुवउ  
खणविट्टो वि पुरिसु पिउ सिट्टउ  
नउलुउमउ ताउ किर गणियउ<sup>२</sup>  
वम्महदीवियाउ<sup>३</sup> अत्रितत्तउ<sup>४</sup>  
छगिरसाइणिसत्थसरिच्छउ<sup>५</sup>  
मेरुमहीहरमहिपडिउ<sup>६</sup>  
नरवइनीइसमाणविहोयउ  
अहरे राउ मयणु<sup>७</sup> वि जहि<sup>८</sup> वट्टइ

फेरियपत्तिवालदाहिनकर ।  
वेसावाडउ नियइ निरंवर ।  
नरु मण्णंति<sup>९</sup> विरूउ विरूवउ ।  
पणयारूउ न जम्म<sup>१०</sup> वि दिट्टुउ ।  
तो वि सुयंगदंतनहवणियउ ।  
तो वि सिणेह संगपरिचत्तउ<sup>११</sup> ।  
<sup>१२</sup>कामुयरत्ताकरितणदच्छउ ।  
सेवियवहुकिपुरिसनियंउ ।  
दूरुज्झियअणत्थसंजोयउ ।  
पुरिसविसेससंगि न पयट्टइ ।

५

१०

उद्गार व धूपसे पवनको सुगंधित करते हुए, श्वेत ताबूल(पका पान)पत्रका बोझा चवाते हुए दाहिने हाथसे तलवार घुमाता हुआ, कामलता नामक कामिनोके लिए घर छोड़कर निरंतर वेश्यावाटको देखा (जाया) करता था, जहाँपर वेश्याएँ खूब सजे हुए रूपवाले मनुष्यको भी रूपसे रहित अर्थात् धनहीन होनेसे विरूप (कुरूप) मानती हैं। अण-भरके लिए देखा हुआ (धनवान्) पुरुष जहाँ अतिवल्लभ कहा जाता है, और जीवन-भर प्रणयासक्त रहनेवाले पुरुषको (भी निर्धन हो जानेपर) ऐसा कहा जाता है कि इसे जन्म-भर कभी देखा ही नहो। जो नकुल सतान होकर भी भुजंगो(सर्पों)के दंत-नखोंसे ब्रणित (घायल) होती है(यह विरोधाभास है); अर्थात् वे न-कुल—हीन कुलमे उत्पन्न होती है, और भुजंगो अर्थात् कामीजनोके दाँतो व नखोंसे उनके अगोपर ब्रण लगा दिये जाते हैं(विरोध परिहार)। (काममोगसे) कभी भी तृप्त न होनेवाली कामदेवकी दीपिकाएँ होते हुए भी वे स्नेहसंगसे परित्यक्त होती हैं (विरोधाभास), अर्थात् कामवासनाका उद्घोषन करनेवाली होनेपर भी किसीसे सच्चा स्नेह (प्रेम) नहीं करती (विरोध परिहार)। रक्त चूसनेमें दक्ष व लगी हुई शाकिनियोंके समूहके समान वे कामुक व्यक्तियोंका रक्त (शक्ति व धन) चूसनेमें दक्ष होती है। वे मेरुपर्वतकी समभूमिके प्रतिबिंबके समान होती है। मेरुपर्वतकी समभूमि किंपुरुषादि देवोंसे सेवित होती है, वेश्याओंके नितंब किंपुरुषो अर्थात् क्षुद्र मनुष्योंसे सेवन किये जाते है। वे राजनौतिके समान ऐश्वर्यसंपन्न होती है, और अनर्थ संयोगोको दूरसे ही छोड़ देती है। राजाकी नीति ऐश्वर्यवृद्धि करनेकी तथा राजा और प्रजाको हानि करनेवाले कारणोंको दूरसे ही छोड़नेकी होती है; उसीप्रकार वेश्याएँ ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवानोको तो चाहती हैं, और अर्थहानिके संयोगों अर्थात् जिन लोगोसे कोई अर्थलाभ होनेवाला नही, ऐसे धनहीन लोगोके सर्पकको दूरसे ही त्याग देती हैं। जिनके अघरोमें राग(प्रेमरस) भी विद्यमान है और मदन(कामदेव) भी, तथापि वह पुरुष-विशेषके साथ प्रवृत्त नही होता (यह विरोधाभास है); (विरोधपरिहार) जहाँ ओठो व अघम(अहरे) पुरुषोंमें राग होता है, और जो नीच मदन(काम)से युक्त है, अथवा जिनके ओठोमें नीच पुरुषोके प्रति राग

४ ड लयहो। ५ घ मझति। ६ ख ग जम्म। ७ ग दिट्टिउ। ८ घ यउ। ९. क घ छ 'दंतखय'।  
१०. प्रतिपोगे वम्मह'। ११ क ख ग ड 'अत्तउ। १२ क ड सणेह'। १३ ख ग 'आयणिसत्थ'।  
१४ ख ग कामुअ'। १५ घ 'विविउ। १६ ख ग पमाणु। १७ ख ग जहुं, घ जहु; ङ जहि ।

परकोऊहलत्थु<sup>१८</sup> विरइल्लप्र<sup>२०</sup> कडिपरिहाणु न लज्जप्र<sup>२१</sup> किल्लप्र ।  
 सरलत्तणु बाहुल्यहि<sup>२०</sup> सिद्धउ<sup>२२</sup> परवंचणअ<sup>२१</sup> हियाप्र<sup>२२</sup> न विट्ठउ ।  
 १५ रुइरवेसचिरयण<sup>२३</sup> न सरुवउ<sup>२४</sup> कायुयमण<sup>२५</sup> सायडहणभूवउ<sup>२६</sup> ।  
 जं मिट्ठंतु न सद्धहे<sup>२७</sup> इह गुणु<sup>२८</sup> तरुणे<sup>२९</sup> चित्तरंजण<sup>३०</sup> पीडइ<sup>३१</sup> पुणु ।  
 मंडणे<sup>३२</sup> वण्णावेक्ख<sup>३३</sup> न विडजणे<sup>३४</sup> गउरउ रवणे<sup>३५</sup> न माणुसे निद्धणे ।  
 घत्ता—आयरेण सुइर<sup>३६</sup> आलिगिवि<sup>३७</sup> सरसु<sup>३८</sup> पुरिसु महसंचु जिह ।  
 रिच्चेवप्र निउणउ<sup>३९</sup> खुइउ खुइउ<sup>४०</sup> संचुवति तिह<sup>४१</sup> ॥१॥

[ १३ ]

का वि वेस नवदविणु गणंती<sup>४२</sup> हियवणमणुससंगु अगणंती<sup>४३</sup> ।  
 ईसामिसेण निरोहवि<sup>४४</sup> बारइ<sup>४५</sup> मंदिदि अवरु सधणु पइसारइ ।

व काम रहता है, वहाँ पुरुष-विशेष अर्थात् उत्तम-पुरुषमे उसका प्रवृत्त न होना स्वाभाविक है । और जहाँ दूसरोंको कौतूहल (औत्सुक्य) उत्पन्न करनेके लिए हो कटिवेशकी विरचना (सजावट) की जाती है, लज्जासे नहीं । और सारल्य उनकी बाहुल्यताओमे तो कह दिया गया है, परंतु उनके परवंचक हृदयमे किसीने नहीं देखा अर्थात् उनके हृदयकी कुटिलतापर किसीने लक्ष्य नहीं दिया । और जिनमे कामीजनोके मनको आकर्षण करनेवाली रुचिर(सुंदर) वेशरचना तो होती है, परंतु स्वाभाविक रूप (नैसर्गिक सौंदर्य) नहीं होता । और उनमे जो मीठापन है, तो यह गुण श्रद्धाके लिए, अर्थात् श्रद्धाके कारण नहीं; क्योंकि वह तरुणाईमे तो चित्तका अनुरजन करता है, परंतु पीछे पीछा देता है । अपने शारीरिक मंडनमे तो उन्हें सब वर्णों(रंगों)की अपेक्षा (चिता) रहती है, परन्तु विट्ठजनोंके सबधमे उन्हें किसी वर्ण—जातिकी कोई अपेक्षा नहीं रहती । और उनका गौरव (गुरुता, गुरुभाव) सबके रमण(भोग करनेवाला धनी व्यक्ति अथवा नित्य-प्रदेश)मे होता है, निर्धन मनुष्यमे नहीं । जिसप्रकारसे किसी छत्तेसे उड़ायी हुई निपुण मधुमक्खियाँ मधुके उस सरस(मधुयुक्त) छत्तेको रिकत करनेके लिए आदरपूर्वक खूब देर-तक चूमती अर्थात् चूम लेती हैं, उसीप्रकारसे ये क्षुद्र(दुष्टाभिप्राय) व निपुण वेश्याएँ किसी सरस (स-काम, स-धन) व्यक्तिको रिकत (धन-हीन) करनेके लिए आदर(अनुराग)-पूर्वक चिरकाल तक आलिंगन करके चुवन करती है (अर्थात् पूर्णतः चूस लेती है ।) ॥१॥

[ १३ ]

कोई वेश्या किसी नये-नये धनिकको गिनती (आदर देती) हुई किसी हतधन अर्थात् धनहीन मनुष्यके संसर्गकी अवगणना(अवहेलना) करती हुई ईर्ष्याके बहानेसे (कि तुझे यहाँ देखकर उस धनिकको ईर्ष्या होगी) उसका गृहप्रवेश निषिद्ध करके, उसे हटा देती है, और घरमे

१८. ख ग रलत्थु । १९ क ड हि; घ ड । २० ख ग लयहो । २१ क ड वचण, घ वचणु । २२ क घ ड हियाए, ख ग हियए । २३ क घ ड यणु । २४ ख ग कामुअ । २५ क ख ग ड साट्टयण, क व ग ड भूयउ । २६ ख ग सद्धे । २७ ख ग व ण । २८ क ड चित्तु । २९ ख ग ए । ३० व ण । ३१ घ वत्ता । ३२ व यणि । ३३ क रउ वणि; गग गउर वणे । ३४ ग सुयस । ३५ ड धिवि । ३६ ग स । ३७ ख ग जेउणउ, घ णउ । ३८ ख ग ए । ३९ व निउ ।

[ १३ ] १ ख घ ग वणु । २ क ख ग ड अमु; घ अय । ३. क घ ड हिवि ।

काए वि जूरतीए<sup>४</sup> वियपिउ<sup>५</sup>  
 कूडर दम्मु निएवि विमत्तिप्र  
 भग्गभाडिबिडुं दिट्ठर काय वि  
 पच्छप्र जं धणु लद्ध चउग्गणु  
 धणु वि दिण्णु निरपेक्ख विर्यमइ  
 इय पेक्खंतु चोरु किर गच्छइ  
 गाढालिंगणचप्पियधणयडु  
 दसनकोडिपीडियविवाहरु  
 सेयसलिलवल्लियकपोल<sup>१०</sup>  
 गामासन्नवणु<sup>८</sup> व ह्यवच्छड<sup>९</sup>  
 कम्मवियारु व रुवियवंधव

वंचयकामुण<sup>६</sup> जो अप्पिउ ।  
 किज्जइ काई कज्जे निव्वत्तिप्र ।  
 लयउ कडच्छप्र<sup>७</sup> चोडप्र<sup>८</sup> धाप्रवि<sup>९</sup> । ५  
 नियसोहमाखोरे निक्खइ पुणु ।  
 डोउ न लहमि<sup>१२</sup> को वि उवल्लभइ ।  
 मिहुणह<sup>१३</sup> निहुवणु<sup>१४</sup> कहिं मि<sup>१५</sup> नियच्छइ ।  
<sup>१६</sup> कामट्ठाण चारुचुवणपडु ।  
 नञ्जावियभूमंगमणोहरु । १०  
 अद्धक्खरखलंतकलोरोलड ।  
 रायउलं व करणपरिहच्छड<sup>१९</sup> ।  
 गिद्धकिसाणु<sup>१८</sup> व अप्पियखंधव ।

दूसरे धनीको प्रवेश कराती है । किसी मतिहीन (किंकर्तव्यविमूढ़) गणिकाने, धूर्त कामुकके द्वारा अपित झूठे झमको देखकर खेद करते हुए सोचा कि अब कार्य समाप्त हो चुकनेपर क्या किया जा सकता है ? किसीने अपना भाड़ा लेकर भागे हुए बिटको देखा तो दौड़कर उसको कछोटे व चोटीसे पकड़ लिया । पीछे जो चौगुना धन मिला, उसे अपनी श्रृंगारपिटारीमें डाल लिया । (अत्यावृत्तिके कारण) धन दो जानेपर भी कोई देखा (यह निर्धन है, ऐसा सोचकर) उसके प्रति निरपेक्ष रहती है (उसे स्वीकार नहीं करती), और किसी अन्य(धनी)के प्रति बड़ा अनुराग दिखलाती है, (ऐसा देखकर) मुझे अपनी भेंट नहीं मिली, इस प्रकार कोई किसी गणिकाको उलाहना देता (फिरता) है । विद्युच्चोर यह सब देखता हुआ चला जा रहा था, तो कहीं उसने मिथुनोके सुरत (व्यापार) को देखा । कहीं गाढ आलिंगनके द्वारा स्तनोके अग्र-भागोको आक्रांत करके कामस्थानोके सुंदर चुंबनमे पटुता दिखाई जा रही थी । कहीं दांतोके अग्रभागसे विबाधरोका पीड़न, भ्रूमगिमाका मनोहररूपसे नर्तन, स्वेदसलिल कणोसे सुंदर कपोल और आधे अक्षर स्खलित होते हुए (प्रणयक्षणोकी) वात्ताका कलकल हो रहा था । कहीं स्त्री-पुरुषोके जोड़े ग्रामके निकटवर्ती वनके समान हो रहे थे—ग्रामका निकटवर्ती वन हतवृक्ष होता है, अर्थात् उसके वृक्ष काट भी लिये जाते हैं, व नानाप्रकारसे आहत भी होते हैं, उसीप्रकार स्त्री-पुरुष युगल भी परस्परके वक्षस्थलोको आहत कर रहे थे; और भी वे स्त्रीपुरुषोके जोड़े राजकुलके समान करण दक्ष थे—राजकुल न्यायालय, मंत्री, सेना, दुर्ग आदि अनेक करणो—साधनोसे परिपूर्ण होता है, मिथुन कामक्रीड़ाके समस्त साधनो (व आसनो) में परिपूर्ण (व दक्ष) थे । ज्ञानावरणादिरूप अथवा प्रकृति-स्थिति आदिरूप अनेक प्रकारके कर्म-विकारकृत बंधनके समान, वे जोड़े अनेक प्रकारके रतिबंध रच रहे थे । समृद्ध किसानके समान उन्होंने अपने कंधे

४. क ड<sup>०</sup> तियइं । ५. क ड<sup>०</sup> विअ<sup>०</sup> । ६. क ड<sup>०</sup> वंचइ<sup>०</sup> । ७. क<sup>०</sup> चिउ । ८. क ड<sup>०</sup> लइउ । ९. क ड<sup>०</sup> च्छइ ।  
 १०. क ड<sup>०</sup> ए । ११. क ड<sup>०</sup> घावि, घ घावि । १२. पं० मे 'लहइ' । १३. क ड<sup>०</sup> णहुं, ख ग घ<sup>०</sup> णहु ।  
 १४. क ड<sup>०</sup> अणु । १५. क ड<sup>०</sup> कहिं मि, ख ग कहिं वि । १६. क कामट्ठाण<sup>०</sup> । १७. क<sup>०</sup> वल्लियकवो<sup>०</sup> ।  
 १८. क ड<sup>०</sup> गामासण<sup>०</sup> । १९. क ख ग<sup>०</sup> वत्थउ । २०. क ख ग<sup>०</sup> हत्थउ । २१. क ड<sup>०</sup> रिदिं ।

अंधयवहु व जायनहरवणु<sup>२२</sup> मेल्लियसरु णं धाणुक्कियरणु ।  
 १४ फारकु व कड्डियकरवालउ<sup>२३</sup> नडपुलिणं पि व रेयविसालउ ।  
 दाणववलु व<sup>२४</sup> समुग्गयमुक्कउ वणवियलंगु व मुक्कहे हुक्कउ<sup>२५</sup> ।  
 धत्ता—इय मिहुणइ सयणासीणइ नयणवलइ<sup>२६</sup> मउलंताइ<sup>२७</sup> ।  
 निव्वत्तिथरयभरखिन्नइ<sup>२८</sup> निदइ<sup>२९</sup> नियइ<sup>३०</sup> घुलंताइ<sup>३१</sup> ॥१३॥

[ १४ ]

धवलहरपंतिछायप्र<sup>३</sup> चलंतु हिंदिरतलारकलयलु<sup>३</sup> कलंतु<sup>३</sup> ।  
 निहुअ<sup>३</sup> जि मुणिय पाहरियसामु<sup>३</sup> संपत्त अरुहयासहो निवासु ।  
 आसरेवि थक्कु कयचोरवित्ति जंबूकुमारवासहरभित्ति ।  
 चित्त चोरत्तणु कवणु मञ्जु जइ हरमि न इह धणु जं असञ्जु ।  
 ५ तं सुउ वर-वहुव<sup>३</sup> कहावसेसु परियाणिड<sup>३</sup> कारणु निरवसेसु ।  
 तावेत्तहिं जंबूकुमारजणणि परिसुसड डञ्जमाणे व<sup>३</sup> धरणि ।

अर्पण कर रखे थे; समृद्ध किसान सहारेके लिए (दूमरे वधुओको) कंधा अपित करता है, युगलोने परस्पर आलिंगनमे अपने कंधे अपित कर रखे थे । युगल किसी अंधेकी वधूके समान थे—अंधा व्यक्ति अपनी वधूको यत्र-तत्र अनुचित स्थानोमे नख-व्रण लगा देता है; उसीप्रकार युगल भी विवेक किये बिना परस्परको अनुचित स्थानोमे नख-व्रण लगा रहे थे, और इसप्रकार स्वर छोड़ रहे थे, मानो धनुर्धरोका युद्ध हो, जिसमे वाण छोड़े जाते हैं । फारक्क चारण करनेवालोके समान वे करवाल (तलवार, युगलपक्षमें हाथोसे वाल) खीच रहे थे । नदीके पुलिन(तट)के समान वे अत्यधिक रेत (बालू, युगल पक्षमे रेतस्-रज, वीर्य) से युक्त थे, अथवा नदीके रेत एवं जलके आगार तटके समान, युगल रेतसूखी जलके आगार थे । युगल दानव सैन्यके समान थे—दानव सैन्यमे शुक अर्थात् शुक्राचार्य उत्पन्न हुए थे, और युगल समुत्पन्न शुक अर्थात् (रति क्रीडामे) अत्यंत वीर्यवान् थे, तथा व्रणोसे विकलांग अर्थात् घायल होकर मूर्च्छित हो रहे थे । इसप्रकार विद्युच्चरने गयनोपर आसीन मिथुनोको, जिनके नेत्र मुकुलित हो रहे थे, संपन्न किये हुए रतके आयाससे थककर निद्रामे घुलते (डूबते) हुए देखा ॥१३॥

[ १४ ]

प्रासाद पक्तीकी छाया(ओट)मे चलते हुए, घूमते हुए नगर रक्षकोके द्वारा किये जाते हुए कोलाहल व पहेरेदारोके वासको मीन हुआ जानकर, वह अरहवासके घर प्राप्त हुआ, और जंबूकुमारके वासगृहकी भित्तिका आश्रय लेकर चोरवृत्तिसे अर्थात् छिपकर वहाँ खड़ा हो गया, एवं सोचने लगा—यदि इस असाध्य(दुर्लभ)घनका अपहरण न कहे तो मेरा चोरपना ही क्या ? इसके अनंतर (वही खड़े-खड़े) उसने वर-वधुओके उस अवशेष कथालापको सुना और नि शेष कारण (वृत्तांत) को जान लिया । तबतक इधर जंबूकुमारकी माता जलती

२२. ख ग नहरवणु । २३. ख ग कड्डिय । २४. ख ग दाणु व वलु व । २५. व उ । २६. क ड लड । २७. ड ताड । २८. क ड खिण्ड । २९. क व ड इ ।

[१४] १. क छासड । २. क ड हिंदियतलय । ३. क कयलु, ख ग कयलु । ४. क ड अड; ग वड । ५. ख ग वाहि । ६. क ड वहुय । ७. ग विनेसु । ८. क व ड णिच । ९. ग ग वि ।

सिवपवि जेम दुहवियलपाण<sup>१०</sup>  
 घर पंगणु मेल्लइ<sup>११</sup> बार-बार<sup>१२</sup>  
 एत्तहि<sup>१३</sup> कुमार किर दठपइल्ल<sup>१४</sup>  
 किं अल्ल वि सुउ तत्रचरणवुद्धि  
 किं अल्ल वि मण्णइ<sup>१५</sup> मोक्खवासु  
 किं अल्ल वि अप्पल सहइ सिद्ध

धत्ता—इय<sup>१२</sup> चित्ताचक्कवडाविय<sup>१३</sup> चित्तभमणचमकिय<sup>१४</sup>  
 जिणवइ<sup>१५</sup> कुइसंलीणउ<sup>१६</sup> दिट्ठु चोर अदवकिय<sup>१७</sup> ॥१४॥

[ १५ ]

बोल्लावियउ तिमिरि कि वंछइ<sup>१</sup>  
 तक्कर भणइ<sup>२</sup> माण<sup>३</sup> मा बीहहि<sup>४</sup>  
 हउं नामेण चोरु बिज्जुचर  
 करमि अक्कमु सिद्धजणदूसिउ  
 तेरउ एक्क नवर न निहेलणु  
 ताम कुमारहो मायए<sup>५</sup> वुच्चइ<sup>६</sup>

माणुसु कवणु एउ रे अच्छइ<sup>७</sup>  
 सहलु होउ जं हियवइ ईहहि<sup>८</sup>  
 हिंडमि नयरु निसिहि<sup>९</sup> नीसंचर।  
 मंदिउ तं न जं न मई मूसिउ<sup>१०</sup>  
 चोरमि अल्लु तं पि पेरिउ<sup>११</sup> मणु।  
 गेणहहि<sup>१२</sup> दविणु पुत्त जं रुचइ<sup>१३</sup>।

१०

५

हुई भूमिके समान (दीर्घ और उष्ण) इवास ले रही थी। श्रीनेमिकुमार (२२वें जैन तीर्थंकर) के घर छोड़ते समय जिसप्रकार गिवदेवी दुःखसे विकलहृदय हुई थी, उसी प्रकार विकलात्म होकर बार-बार घर-आंगनको छोड़ती (आती-जाती) थी, फिर पुत्रके वासगृहका द्वार देखती कि क्या कुमार अभी भी दूढ़प्रतिज्ञ है, अथवा वधूचतुष्क्री (काम)विधाके वशमें हो गया? क्या अभी भी पुत्रका मन तपस्वरणमें ही लगा है, अथवा उसे वधुओंके मुखरागका (कुछ) लोभ हुआ है (अर्थात् वधुओंमें आसक्ति हुई है)? क्या अभी भी वह मोक्षवासको ही (श्रेष्ठ) मानता है, अथवा क्या उसके कंठमें प्रियाओंका बाहुरूपी पाण पड़ गया है? क्या अभी भी अपनेको सिद्ध बनाना चाहता है, अथवा तीक्ष्ण कटाक्ष शरीरसे बिध गया? इस प्रकार चिन्ता-चक्रपर चढ़ाई हुई उद्भ्रात चित्त व विस्मित जिनमतीने बिना डरे हुए, भित्तिसे लगकर छिपे हुए चोरको देखा ॥१४॥

[ १५ ]

(जिनमतीने) उसे पुकारा—अरे! अंधेरेमें यह कौन आदमी है! और क्या चाहता है? तत्कारने कहा—माँ डरो मत, तू जो हृदयसे चाहती है, वह बात सफल हो। मैं विद्युच्चर नामका चोर हूँ, रात्रियोमें नगरका भ्रमण करनेवाला निशाचर हूँ, तथा शिष्टजनों-द्वारा दूषित अपकर्म करता हूँ। ऐसा कोई घर नहीं है, जिसे मैंने लूटा नहीं। एक तेरा ही घर नहीं लूटा। इसमें भी आज चोरी करूँ, इस प्रकार मेरा मन प्रेरित हुआ। तब कुमारको माँ

१०. गं पाणि। ११. ख ग वुच्चं, ङ मुचं। १२. क वारं, ख तारुहार, ग बार; घ तारुहार। १३. क ङ जोयड। १४. रत ग घ सुअं, ख ग दार। १५. ख ग हिं। १६. क डं ज्ज। १७. क डं याउ; ख ग माहु। १८. ख ग वं। १९. घ विज्ज। २०. क डं डं; घ मज्जं। २१. घ चित्ताचक्कि चडां; ख ग चडावियं। २२. ख ग वमणं। २३. ख ग सइलीणउ, घ सइलीणउ। २४. ख ग अवदं; घ वइं।

[ १५ ] १. क हिं; घ ड हिं। २. क घ ङ डं। ३. ख ग माय। ४. क हिं। ५. ख ग अ हिं। ६. घ डं। ७. घ पेसिउ। ८. क इं। ९. क ङ हिं; घ गिन्हि।



निसुणेवि बोलिज्जइ कुंसुमाले तव धणु पेक्खमि सरिसु पलाले ।  
 चोरिय चित्ते<sup>१०</sup> पत्थु न पयइइ चितासल्लु अवह महु वइइ ।  
 बार-बार जं निल्लं पईसहि<sup>११</sup> मंदिराउ पुणु पंगणि दीसहि<sup>१२</sup> ।  
 १६ दारकवाड पुणु वि जं लक्खहि<sup>१३</sup> कारणु कवणु माप्पं तं अक्खहि<sup>१४</sup> ।  
 सीसइ तामु<sup>१५</sup> सगगिरवयणप्पं वइयरु अंसु त्रोल्लियनयणप्पं ।  
 एक्कु जि पुत्तु पुत्त अम्हारउ बंधव-पियरमणोहरगारउ ।  
 अज्जु<sup>१६</sup> जि परिणावियउ विवत्थप्पं<sup>१७</sup> लेसइ दिक्ख<sup>१८</sup> विहाणप्पं सत्थप्पं<sup>१९</sup> ।  
 वत्ता—इय पुत्तविओयकुठारं फाडेवि खंडु खंडु कियउ<sup>२०</sup> ।  
 १५ अंगारपुंजे सदिणणउ<sup>२१</sup> लवणु व सयसक्कर हियउ ॥१५॥

[ १६ ]

निसुणेविणु<sup>२२</sup> तं वयणं पचरो वयणं पडिजं पइ विज्जुचरो ।  
 करुणारसरंजियसुद्धमणो पडिक्खन्ते<sup>२३</sup> पत्रडिडय नेहधणो<sup>२४</sup> ।  
 सुणियं<sup>२५</sup> व मए रहसुक्खभियं बहुवाहि<sup>२६</sup> वरेण समं लवियं ।  
 न पवत्तइ<sup>२७</sup> केम वि पुत्तु<sup>२८</sup> तउ वहुवोल्लं महल्लं नए-ण-जउ<sup>२९</sup> ।  
 ५ अवरेक्क पयासमि माप्पं<sup>३०</sup> मइ विहडेइ न अज्ज वि कज्जगइ ।

बोली—पुत्र तुझे जो रुचे वह द्रव्य ले ले । यह सुनकर चोरने कहा—मे तेरा धन पुआलके समान समझता हूँ । यहाँ मेरे चित्तमे चोरीकी भावना ही प्रवृत्त नहीं हो रही है । मुझे तो दूसरा ही चिताशल्य उत्पन्न हुआ है । तू बार-बार घरमें प्रवेण करती है, घरसे फिर प्राणणमे दिखाई देती है, फिर द्वार कपाटोको देखती है; तो हे माँ ! इसका क्या कारण है ? सो बताओ ! गद्गद वचनों और अध्जलसे आद्रनेत्रोसे वह उसको वृत्तात कहने लगी—हे पुत्र ! हमारा एक ही पुत्र है, जो बाँधवों और माता-पिता सबके लिए सुखदायक है । आज ही व्यवस्था (विधि)पूर्वक उसका परिणय कराया गया है; और विहान (प्रभात) होते ही वह शास्त्र-विधि-के अनुसार (दिगंबरी)दीक्षा ले लेगा । इस पुत्रवियोगके कुठारने हृदयको फाड़कर खड-खंड कर दिया है, और अगारमे डाले हुए लवणके समान शतशः विदीर्ण कर दिया है ॥१५॥

[ १६ ]

विद्युच्चर करुणारससे रजित शुद्ध मन और स्नेह प्राप्त करनेसे वद्धित-स्नेह होकर ये प्रतिवचन बोला—मैंने वधुओके द्वारा वरके साथ किया हुआ समस्त उत्कटाजनक वातलाप सुन ही लिया है । तुम्हारा पुत्र किसी भी तरह ससारमे प्रवृत्त नहीं होगा, यह वधुओके बड़े-बड़े बोलोके न्यायसे जीता नहीं जा सकता । हे माता ! एक ओर युक्ति प्रकट करता हूँ, जिससे (संभवतः) अभी भी कार्यकी गति (अर्थात् अभीप्सित कार्य) विघटित न हो । हे अम्मा !

१०. ख ग चित्तं । ११ क ग घ ड, हि । १२ क ड ई । १३ क ग ट हि । १४. ख ग गवि; घ सगगरं, वयणइ (सभी प्रतियोग) १५ क घ ङण्ड । १६ ग अज्ज । १७. क विज्जय; ग ग विवत्थइ, क विडव्थइ । १८ क विहाण पयत्थइ । १९ क घ उ । २० क घ णउ ।

[ १६ ] १ क ट पिणु । २ क ख ग ट वण्ण । ३ क ट वणो । ४. क ड अं । ५ ग ग वइयर । ६. ख ग याहि; घ वाहि । ७ घ तट्ठ । ८ ख ग पुत्त । ९ क ग ग ट नए अज्जो, घ ल्लनएण जुओ । १० घ माय ।

महँ<sup>११</sup> एत्थु पवेसहि<sup>१२</sup> अम्मि<sup>१३</sup> जइ तिहँ<sup>१४</sup> बोल्लमि वड्डइ<sup>१५</sup> जेम<sup>१६</sup> रइ ।  
 सुहँ<sup>१७</sup> -सत्थइं वुज्झमि<sup>१८</sup> आरिसइं<sup>१९</sup> परचित्तइं<sup>२०</sup> जाणमि जारिसइं ।  
 जणकम्मण-थंभण-मोहणयं<sup>२१</sup> भुवणस्स<sup>२२</sup> वि खोहणं<sup>२३</sup> -जोहणयं ।  
 नयणंजणजायरभंजणयं सुहसुत्तपवोहणरंजणयं ।  
 विहडंतमहादिहिजोहणयं पियमाणुससंगमतोहणयं । १०

घत्ता—वहुवयणकमलरसलंपडु भमरु कुमार न जइ करमि ।

आएण समानु<sup>२४</sup> विहाण<sup>२५</sup> तो तवचरणु<sup>२६</sup> हवें मि<sup>२७</sup> सरमि ॥१६॥

[ १७ ]

तो कुमारमायरी<sup>२८</sup> पुत्तदुक्खकायरी<sup>२९</sup> ।  
 चोरचोरसासिया<sup>३०</sup> सुद्धमुद्धभासिया<sup>३१</sup> ।  
 दल्लवाहुकंकणा<sup>३२</sup> छित्तदारदंकणा<sup>३३</sup> ।  
 सुणहनासु<sup>३४</sup> उच्चरेवि पिल्लिया कवाड वे वि ।  
 नंदणो मुणेवि माय कारणेण केण आय । ५  
 आनमंसियं<sup>३५</sup> पयाइं<sup>३६</sup> पुच्छइं त्ति अम्मि काइं ।  
 एरिसम्मि जं सुसुत्ति<sup>३७</sup> आगयासि मज्झरत्ति<sup>३८</sup> ।  
 अक्खए कुमार वुज्झ गन्धसंठियस्स तुज्झ ।

यदि तू मुझे यहाँ (भीतर) प्रवेश करा दे तो मैं ऐसा बोलूँगा जिससे उसकी संसारमे रति बड़े । मैं ऐसे श्रुतिशास्त्रोको जानता हूँ, जिनसे लोगोंकी जैसी चित्तवृत्तियाँ है, उन्हें जान लेता हूँ, और जो लोगोका वशीकरण, स्तम्भन व मोहन करनेवाले, व सारे भुवनको भी विक्षुब्ध कर देनेवाले एवं लड़ा देनेवाले है; तथा ऐसा नेत्रांजन भी जानता हूँ, जो जागृतोको सुला देनेवाला एवं सुखसे सोये हुएओको जागरणका आनंद देनेवाला, तथा विघटित होती हुई (छूटती हुई) महा-धृति (महान् प्रीति-सुख) को भी जोड़नेवाला, और प्रियजनोके संगमको तोड़नेवाला है । अतः यदि मैं कुमारको वधुओके मुखकमलरूपी मधुका लंपट भ्रमर न बना सकूँ; (अर्थात् कुमारको वधुओके प्रति अत्यंत आसक्त न कर सकूँ) तो विहान होते ही मैं भी इसके साथ तपस्वरणका अनुसरण कलैगा ॥१३॥

[ १७ ]

तब पुत्र दु खसे कातर कुमारको माताने उस चोर चोर(भ्राता)के सरल व निश्छल वचनोसे कहेको सुनकर, ठोले बाहु कंकणोसे (गब्द करते हुए) द्वार कपाटोकी छूकर वधूका नामोच्चारण करके दोनों किवाड़ोको ढकेल दिया । किसी कारणसे माँको आयी जानकर पुत्रने माँके पैरोको नमस्कार करके पूछा—माँ क्या बात है, जो इसप्रकार सोनेके समय अर्द्धरात्रिको ही तू आ गयी ? माँने कहा—कुमार समझो(सुनो)—अब तू गर्भमें ही था तो मेरा एक कनिष्ठ भाई जो तभीसे

११ क ड मइ । १२ ख ग सति । १३. क ड अति । १४. व तिह । १५ ख ग वट्टइ । १६ क ड जेण । १७ सुह । १८ व बोल्लमि । १९ क ड सई । २०. क परि । २१. क ड खो । २२. ख ग भुयं । २३. क ड मो । २४ क ड ण । २५ क व ड णइ । २६. क ड तउ । २७ क ड हउ । ख ग वि ।

[ १७ ] १ क ड रीय । २. ख ग वुत्तु । ३ क वीह । ४ क याइ, ड याइ । ५ क सुद्धमुद्ध । ६ क व ड णाडं । ७ क ड छित्तवारं, ख छिण्णं । ८. व सुहं । ९ क ड ता णमसियो, व ता नमसिउं । १०. क ई । ११ ख ग ते । १२ ख ग मज्जे ।

- १० मे कणिङ् भाइ एकु मंडलंतरस्मि थकु ।  
 वच्छरेसु आउ अञ्जु जाणिअण तुच्छ<sup>१</sup> कल्लु ।  
 दंसणापुरायवद्ध दुल्लहेइगोडिसद्ध<sup>२</sup> ।  
 नेच्छए निसाविरामु अच्छए दुवारे मामु ।  
 बोल्लए कुमारु वूहि<sup>३</sup> आगुरु लहू व ऊहि<sup>४</sup> ।  
 किं<sup>५</sup> विलंअण सुधम्मि<sup>६</sup> आवउ समाणि अम्मि<sup>७</sup> ।

- १५ घत्ता—पुत्ताणुमइए उवलद्धए<sup>१</sup> अर्म्मतरथियाए थिरए<sup>२</sup> ।  
 जिणवइए<sup>३</sup> भाइ हकारिउ<sup>४</sup> निविडनेहकोमलगरिए ॥१७॥

[ १८ ]

- तं सुणिचि<sup>१</sup> सरोरि<sup>२</sup> वरंतु समु परिअत्तवि<sup>३</sup> तं थिररुवकमुं ।  
 पयडियकिराडमयवेसपहु आज्ञाणुलंअपरिहाणपहु ।  
 वंकुडियकच्छे<sup>४</sup> कयडिल्लकडि<sup>५</sup> कण्णंतलुखावियकेसलडि ।  
 पुट्टीनिहित्तकयबंधभरु उम्माठियविसरिसकुंअधरु<sup>६</sup> ।  
 ५ आउत्तमंगपंगुरियतणु सिडिलाहरोट्टवंतुरवयणु<sup>७</sup> ।  
 डोल्लंतवाहुललल्लियकड वासहरि पइट्टव<sup>८</sup> विज्जुचर ।

वेधातरमे रहता था, वह आज तेरा विवाह कार्य जानकर अनेक वर्षोंपर तुम्हारे दर्शनेके अनुरामसे बंधा हुआ, एवं ऐसी दुर्लभ अभिलषित गोष्ठीकी श्रद्धा(अभिलाषा)से यहाँ आया है, और द्वारपर ठहरा है, परंतु वह रात्रिमे विराम(रुकना) नहीं चाहता । तब कुमार बोला—माँ ! वे बहुत बड़े अर्थात् पितृस्थानीय है, और मैं लघु अर्थात् पुत्र स्थानीय हूँ, यह सोचो ! (अतः) स्वधर्म(स्वकर्तव्य)मे देर क्यों ? वे ससम्मान आवें (अर्थात् सम्मानपूर्वक उन्हे ले आओ) । (यह सामानिक छद्म है) । पुत्रकी अनुमति मिलनेपर भीतर ही खडी हुई जिनमतीने स्थिर एवं अत्यंत स्नेहपूर्ण कोमलवाणीसे भाई(विद्युच्चर)को हाँक लगायी ॥१७॥

[ १८ ]

यह सुनकर अपने थकावट-भरे शरीरका वह पुराना वेष्ट बदलकर उसने अपना ऐसा रूप प्रकट किया—किरातोके समान मृगछालाका पट्ट(दस् या फुर्राला) वेष्ट, आजानुवीर्य परिधान वस्त्र, बाँका उरोबधन, कमरमे कटिबस्त्र (बोती) बाँधे हुए, कर्णांत तक लहुराती हुई केसलटाएँ, पीठपर डाला हुआ केससमूह, खुली हुई विसदृश (असमान या अद्भूत) कूर्चोंको धारण किये, सपूर्ण शरीरको उत्तमागमयंत आच्छादित किये, स्थितिल अवरोष्ठ व दतुर (दाँत दिखाई देता हुआ) मुख तथा डोलते हुए बाहु और सुंदर कर धारण किये हुए वह विद्युच्चर

१३. घ तुच्छु । १४. ग 'गोडु' । १५. ड आवुत्तलमकुलजहि । १६. दा ग कं । १७. क ड विलव पत्तु धम्मि । १८. क ड यम्मि । १९. ख ग अम्मतरमि माएरिए । २०. क ड 'वयए' । २१. स ग निवडं ।  
 [ १८ ] १. क ड मू । २. क ड 'र' । ३. घ 'त्तिवि' । ४. क ड 'रुव' । ५. क ड 'कच्छु' । ६. स ग 'दिल्लकडि' । ७. घ कलतं । ८. घ पिट्टे' । ९. ख ग 'वट्टय' । १०. घ 'कुं' । ११. क ड आवत्त-मंग' । १२. ख ग 'वत्त रुव' । १३. ख ग पय' ।

तं नियवि कुमार समुद्रियउ दूरपणमियसिरु<sup>१४</sup> समहिद्वियउ ।  
<sup>१५</sup>अण्णोण्णालिगणरसभरिया <sup>१६</sup>चिहिं पीढहिं<sup>१७</sup> वेण्णि चि वइसरिया ।  
 पुच्छिज्जइ कुसलु पंथसमिउ<sup>१८</sup> बहुदिवस माम<sup>१९</sup> कहि किहिं<sup>२०</sup> भमिउ<sup>२१</sup> ।  
 घत्ता—विज्जुचरिं कुसलु कहिज्जइ निमुणि कुमार कालु<sup>२२</sup> गमिउ । १०  
 वाणिज्जकज्जि दिढचित्ते जं जं मंडलु मइ<sup>२३</sup> भमिउ<sup>२४</sup> ॥१८॥

[ १६ ]

दक्षिणाए दिसाए समुद्र घरेऊण मलयाचलं सिंघलं केरलं तोसलं कोसलं लंजिया-  
 तंजिया-मंडलं चोडदेसं । असेसं सिरीपन्वयं गंगवाडीसमं पंडि-इविडं<sup>१</sup> चीणं<sup>२</sup>-  
 सकण्णाडं<sup>३</sup> कंचीपुरं कुंतलं । सज्जगिरि-रट्टमहरट्टं<sup>४</sup> वइदवभ-वइरायरं भइरंगं  
 बराडं च तावीयडं नम्मयाडं<sup>५</sup> । सविज्जं-पभासं<sup>६</sup> पइट्ठाणं<sup>७</sup> आहीर-चेउल्लं<sup>८</sup> संजाण-  
 भरुयच्छ-कच्छेल्ल सोपारयं कोकणं । नागरं<sup>९</sup> सिंधुवीरं कवेरीतडं कडहतं<sup>१०</sup> वइरि- ५  
 किक्किव<sup>११</sup> तोयावली दीवयं पारसं हंस-छोहारदीवं<sup>१२</sup> लुटु मम्मणं<sup>१३</sup> । पच्छिमणं  
 थलीमंडलं<sup>१४</sup> बालभं सोमसोरट्ट-कच्छं<sup>१५</sup> महं भिल्लमालं<sup>१६</sup> बिसालं च सोवण्णदोणी-

वासगृहमे प्रविष्ट हुआ । उसको देखकर कुमार थोड़ा नत-शिर होकर (प्रणाम करते हुए)-उठ खड़ा हुआ और बहुत अधिक प्रसन्न हुआ । परस्पर स्नेहपूर्वक आलिंगन करके दोनों दो पीठोंपर बैठ गये । पथश्रात ममामसे (कुमारने) कुशल समाचार एवं यह पूछा कि हे मामा ! कहे ! इतने दिनोतक कहाँ भ्रमण किया ? विद्युच्चरने कुशल कहा—(और बोला) हे कुमार मुनो ! वाणिज्यकार्यसे सृष्ट दित्तसे मैने जैसे काल गमाया और जिस-जिस देशका भ्रमण किया ॥१८॥

[ १९ ]

दक्षिण दिशामे समुद्रको घेरकर मलयाचल, सिंहल, केरल, तोसल, (महा)कौशल, लंजिया व तजिया प्रदेश, चोडदेश, श्रीपवंत, गंगवाडी और उसके साथ पांड्य, द्रविड, आंध्र देश एवं चीनका भ्रमण किया । फिर कर्नाटक, कंचीपुर, कोतल, सह्याद्रि, महाराष्ट्रदेश और विदर्भ तथा वज्जाकर और भद्रंगमे घूमा । फिर बरार, ताप्तोत्तट, नर्मदात्तट, विध्य, प्रभासतीर्थ, पैठण, आमीर, चेउल्लदेश, जहाजोका स्थान (वंदरगाह) भरुकक्ष (भड़ौच), कक्ष, सोपारक (सूरत), कोकण, नागर देश, सिंधु तट, कावेरी तट, कडहत (?), वइर देश (?) किक्किंवा, तोयावली द्वीप, पारस देग, हंस द्वीप जहाँके लोग दूसरोको लूटनेवाले(लुठ) और अव्यक्त वचन बोलनेवाले हैं, उन द्वीपोका भ्रमण किया । पविचमसे स्थलीमंडल (राजस्थान), बालभ (वल्लभी?), सोमनाथ, सौराष्ट्र तथा महान् भिल्लमाल (भीनमाल) जिसकी रचना एक विनाल सुवर्णद्रोणी

१४. क ड 'पणविहि सिरु । १५ घ अण्णो' । १६ क विहि ए द्विहि, ख ग ड विहि पीं, घ विहि वीं ।  
 १७. घं मिउ । १८ ख ग कहि, घ किहिं । १९ क काल । २० क ड मइ । २१ ख घ उं, ड भरिउ ।

[ १९ ] क ख ग ड दिविं । २. क ख गड चीणं । ३. घ सकण्णाड । ४. ख ग रिट्टुं, घ मरहट्ट । ५. ख ग व पाड । ६. प्रतियोमं प्रयासं । ७. ख ग घ पयं । ८. क ग घ ड वं ।  
 ९. ख ग नारंग । १०. क ड करहत, ख ग करहत । ११. क ड किक्किव, ख ग किक्किव । १२. क ड लुड वकण, घ लुटु व मड भकणं । १३. क ड थनीं । १४. ख ग मसमिल्लं, घ मर भिल्लं ।

- सगं। अच्युयं<sup>१५</sup> लाडडैसं<sup>१६</sup> च मेवाड-चित्तउडं<sup>१७</sup> मालव य तलहारियं।  
 पाण्यत्तं<sup>१८</sup> अवंती<sup>१९</sup> नहा तावलिती<sup>२०</sup> भटं दुग्गमं। उत्तरेण य सायंभरी<sup>२१</sup> गुज्जर-  
 १० ताग खस-चच्चरं<sup>२२</sup> टक्कं-करहाडं<sup>२३</sup> कसमीर-हम्मीर-कीरं<sup>२४</sup> तुरुक्कं<sup>२५</sup> तहाताइयं।  
 चल्नं सिधु-सरस्वतीतटं<sup>२६</sup> मेच्छदेशं<sup>२७</sup> मक्किफाण-लाहुर-पुट्टाहरं<sup>२८</sup> बालुयासायरं<sup>२९</sup>  
 उत्थिरज्ज अचलं<sup>३०</sup> ममासाडयं<sup>३१</sup>। पक्कवयक्कणं<sup>३२</sup> वावरण-द्वयवयण-गोवयण-  
 करिवयण-हरिवयण-वाणरगुहं<sup>३३</sup>। पुव्वभायम्मि गाउडं<sup>३४</sup> कुरु<sup>३५</sup> कणउज्जं<sup>३६</sup> स-  
 राडं<sup>३७</sup> वरेंद्रोसिरी मज्झदेमं वरं। गोल्ल-वंगंग कोंगं कलिगं महाउट्टियाणं च  
 १५ जालधरं। गंग-जउणं सरूवायरं कामरूवं<sup>३८</sup> डहाला-पयगं<sup>३९</sup> वणवट्टं<sup>४०</sup> वाणारसी-  
 वट्टहरं<sup>४१</sup> मत्तगोयावरोभीमगंगोवहिं<sup>४२</sup> जोहणारं<sup>४३</sup> सुहं।  
 घत्ता—विट्ठणवि<sup>४४</sup> मिक विभियचित्तं बुधडं मामं<sup>४५</sup> न वणिगववरं।  
 पणक्खु दउडं<sup>४६</sup> इय मत्तिगं<sup>४७</sup> अवस होमिं<sup>४८</sup> तुहं<sup>४९</sup> वीरनरुं<sup>५०</sup> ॥१६॥  
 इय जंबूसामिचरिणं सिगारोरे महाकन्ने महाकहदेवयत्तसुयथीरविरट्ठं वहु-वरक्कणायं नाम  
 नवमो संघो समत्तो ॥ सधिः ९ ॥

के समान है; फिर अच्युद (आनूपर्वत), लाटदेश, मेवाड, चित्तीड, मालव तथा तलहारको देखा। फिर पारियात्र, अवंती तथा भटोके लिए दुर्गम ताप्रलिप्तीको देखा। उत्तरदिशासे शाकभरी [साभर-अजमेर], गुज्जरा, खमदेश, वरेंद्रदेग, टक्कप्रदेश, करहाट, काश्मीर, हम्मीर, कीर देश, तुरुक्क (तुरुक्क-तुर्की), तथा ताजिक, वज्जर देश, सिधु व सरस्वतीका तट, म्लेच्छ देश, कैवकाण देग सहित लीहपुर एवं अन्य (स्थानों)को छूता हुआ बालुकासागर, स्त्रीराज्य व अज्जको पहुँचकर प्रेमतत्पर वचन बोलनेवाली एक म्लेच्छ जातिके देश, एवं अवधमुख, गोमुख, हरि-मुख, व्याघ्रमुख और वानरमुख इन देशोंमें गया। पूर्वभागमें गौडदेश, कुरु(जागल), कन्नौज, राड, वरेंद्रश्री, और सुदर श्रीमध्यदेशको देखा। फिर गोल्लदेश, वग, अंग, कुर्ग, कलिग, और महान् उडियो (उडोसा निवासियों)के जालवर (?), गगा, यमुना, सौदर्यके आकर कामरूप, डहाला (डाहल-जवलपुर) प्रयाग, चुनार, वाणारसी, बडहर, सप्तगोदावरी, भीम, गंगोदधि (गंगासागर) तथा सुम(सुदर)घोषनद्वीपकी यात्रा की।

(यह सब सुनकर) सिर हिलाकर विस्मित चित्तसे कुमार बोला—मामा। तुम वणिक्वर नहीं हो। इसप्रकारकी श्रित्तसे तुम प्रत्यक्ष दैत्य हो, और अवश्यमेव एक बड़े वीरपुरुष हो।

इसप्रकार महाकवि देवदत्ते पुत्र वीर-कवि-द्वारा निरचित जंबूत्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीर-रसात्माक महाकाव्यमें बज्रवर आप्त्यान नामक नवम संधि समाप्त ॥ संधि ९ ॥

१५. क र ग घ अच्युय। १६ ख ग डालं। १७ क ड वड। १८ ख ग यत्तू। १९ ख ग यवती। २० ख ग नामभती, घ तामं। २१ क ड गुज्जरा तार ख सबच्छर, ख गुत्तरत्ता खसं चच्चर, ग गुत्तरत्ता खस चच्चर। २२ क तुक्क। २३ घ हार। २४ क ड ग ड तुरुक्क। २५ क ड वज्ज। २६ क ड पुट्टाहर। २७ क ड पच्छिरज्ज, ख ग घ अतज्ज। २८ ख ग इणए। २९ क ड पक्कवयं। ३० ख ग मुहा। ३१ क ड गडड, घ मउड। ३२. क ग ड कुर। ३३ ख ग कणउज्ज, घ कन्नं। ३४. क ड भराह, ख ग राड। ३५ क ड कानं। ३६. क ड पयाग। ३७ ख ग वणवट्ट, घ वन व वट्ट। ३८. क ड चहुं। ३९ क ड सौत्तगोयावरोसीमं। ४० ख ग वलोहं। ४१ क घ ड णिवि। ४२ क र ग घ मामु। ४३ क ड दइयउ, ड दयउ। ४४ क ड सत्तिप। ४५ घ होहि। ४६ क ड तुह, ख ग तुह। ४७ क घ ड वीरं। ४८ क घ ड नवमा इमा संघो।

[ १ ]

विह्वेण<sup>१</sup> रायनियडत्तणेण कलहेण जत्थ कन्वगुणो ।  
 कव्वस्स तत्थ<sup>२</sup> कइणा वीरेण जलंजली दिण्णा<sup>३</sup> ॥१॥  
 जत्थ गुडाईण जहा महुत्ते<sup>४</sup> भिण्ण-भिण्णमुवल्लो<sup>५</sup> ।  
 निव्वडइ तत्थ गरुवं<sup>६</sup> रसंतरं वीरवाणीणं ॥२॥  
 पडिपुच्छियकुसलकयायेण<sup>७</sup> मायामायेण विल्लुचरेण ।  
 संदिण्णसुयणमणरणण्डे<sup>८</sup> वोल्लाविड<sup>९</sup> अरुहयासत्तण्डे<sup>१०</sup> ॥३॥

५

अहो विमलचार<sup>११</sup> जंजुकुमार मारावयार-भुवणेकसार ।  
 सारंगचंगचलदीहनयण नयणाहिरामल्लणइदवयण ।  
 वयणामयपीणियसुयणकण्ण कण्णाइसाइ<sup>१२</sup> चायप्पवण<sup>१३</sup> ।  
 वण्णाखिलधन्नलियसिहरिसिग<sup>१४</sup> सिंगारकमलमयरंभिग ।  
 भिगालिसरिसवणनीलवाल चालककिरणतणुतेयमाल ।  
 सालकिंयंग-कित्तिलयकंद<sup>१५</sup> कंद्रावियपडिभडरमणिविंद ।

१०

[ १ ]

जहाँ ऐश्वर्यसे, राजाके (निरंतर) नेकद्वयसे अथवा कलहसे काव्यगुण उत्पन्न होता है, वहाँ, उस काव्यके लिए वीर कविने जलाजलि दे दी है ॥१॥ गुड़ादिकसे जहाँ (व जिसप्रकार) भिन्न-भिन्न माधुर्यकी उपलब्धि होती है, उसीप्रकार वहाँ वीर कविकी वाणीमें उत्कृष्ट रस-भिन्नता निष्पन्न होती है ॥२॥ कुशल समाचारपृच्छा आदिके द्वारा आदर प्राप्त लक्ष मामा विद्युच्चर, स्वजनोके मनमें उद्देग उत्पन्न करनेवाले अरुहदासपुत्रसे इसप्रकार बोला—॥३॥

हे शुद्धाचरण जंकुमार ! तुम कामदेवके अवतार हो, और लोकके एकमात्र श्रेष्ठधन हो । तुम्हारे नेत्र हरिणके समान सुंदर, चंचल व दीर्घ हैं, और मुख पूर्णचंद्रमाके समान नेत्रो-को आनंद देनेवाला है । अपने वचनामृतसे तुम सज्जनोके कानोंको प्रीणित (तृप्त) करनेवाले हो, और तुमने महाराज कर्णको भी मात करनेवाले त्यागको अंगीकार किया है । तुम्हारे गौर-वर्णसे संपूर्ण गिरिशिखर धवल हो रहे हैं । शृंगाररूपी कमलकी मकरंदके लिए तुम भ्रमर हो (अर्थात् कामदेवके शृंगारकमलका समस्त मकरंद तुम्हीने पी लिया है, अतः भुवनमे तुम्ही सुंदरतम हो) । तुम्हारे बाल भृंगावलिके समान अत्यंत काले हैं । बालसूर्यकी किरणोके समान तुम्हारा शरीर तेजसे वेष्टित (व्याप्त) है । तुम्हारा अंग-अंग लक्ष्मी (सौंदर्यलक्ष्मी एवं विजय-लक्ष्मी)से विभूषित है, और कीर्तिलताके तो तुम मूल अंकुर ही हो । शत्रुभटोंकी रमणियोंको

[ १ ] १. क ड एण । २. क व ड तस्स । ३. घ दिन्ना । ४. क रत्तेण । ५. ख ग लंजे । ६. क घ ड य । ७. क घ ड परि । ८. क ड यण । ९. ख ग सुवण । १०. क घ णं । ११. ख ग विडं । १२. क चार । १३. क ड कण्णाई भाडं, ख ग ड चाइ । १४. ख ग चाइ ; घ वस । १५. क ड वण्णा-विलं । १६. क ख ग ड सिहरं । १७. क ड कंदलवियं ।

- वन्दिणपढंत<sup>१</sup> जयथोत्तसंग<sup>२</sup> संगामुप्पाइयवइरिभंग<sup>३</sup> ।  
 भंगागयकेरलवलवियास<sup>४</sup> आसाइयजयसिरिसोक्खवास ।  
 १५ घत्ता—तुह<sup>५</sup> सुंदर परमविवेउ तुह<sup>६</sup> जाणहि<sup>७</sup> दुल्लहु संसारसुह<sup>८</sup> ।  
 लायणलच्छि<sup>९</sup> आरोयतणु पई<sup>१०</sup> मेखेवि अण्णहो<sup>११</sup> कासु भणु ॥१॥

[ २ ]

- भोयणसत्ति न भोयणु एकहो<sup>१</sup> भोजु न भोजसत्ति अण्णेकहो ।  
 कामुच्छाहु न कामिणी एकहो<sup>२</sup> रमणि न रमणसत्ति अण्णेकहो ।  
 दाणपवत्ति न धणु पर एकहो<sup>३</sup> दविणु न दाणवसणु अण्णेकहो ।  
 जसु पुणु उहय-पक्ख<sup>४</sup> संपज्जइ<sup>५</sup> सो किम छलइ अप्पु पावज्जइ ।  
 ५ भग्गविहीणालसियह<sup>६</sup> सिद्धउ<sup>७</sup> भिक्खनिमित्तु लिंगु उडिहउ ।  
 सिद्धपु काइ<sup>८</sup> एण परिभावि<sup>९</sup> सुक्किलेसि<sup>१०</sup> अप्पु म तावहि<sup>११</sup> ।  
 तव नामेण कम्म किर कायहो<sup>१२</sup> कारणे<sup>१३</sup> कासु<sup>१४</sup> कवणु<sup>१५</sup> फलु आयहो<sup>१६</sup> ।  
 सुद्ध अवहु<sup>१७</sup> जीउ निदिहउ<sup>१८</sup> तणुमणवयणचेहउअप्पिहउ ।

(उनके वीर पतियोंको स्वर्ग भेजकर) रलानेवाले हो, और वंदीजनो-द्वारा पढे जाते हुए जय-स्तोत्रके साथ संग्राममे वैरियोंका भंग अर्थात् विनाश उत्पन्न कर देते हो । पराजित होकर आये हुए केरल सैन्यको तुम्ही प्रफुल्लित करनेवाले हो और तुमने सुखको निवासरूप जयलक्ष्मीको प्राप्त कर लिया है । तुम सुंदर हो, और तुममे परम विवेक भी है, तथा तुम (स्वयं) जानते हो कि यह संसार-सुख अत्यंत दुर्लभ है । (ऐसी) लावण्यलक्ष्मी और नीरोग(स्वस्थ)शरीर तुम्हे छोड़कर बताओ और किसके पास है ? ॥१॥

[ २ ]

एकके पास भोजन करनेकी शक्ति है तो भोजन नहीं, दूसरेके पास भोजन है, तो खानेकी शक्ति नहीं । एकको कामोत्साह है तो कामिनी नहीं; दूसरेको रमणी है तो रमण शक्ति नहीं । एकको दान प्रवृत्ति है तो धन नहीं; दूसरेको द्रव्य है तो दानका व्यसन (आसक्ति-रुचि) नहीं । जिसे दोनों पक्ष (भोग भी व भोग शक्ति भी) संप्राप्य हैं, वह प्रव्रज्या-द्वारा अपने आपको प्राप्त सुखोसे क्यों वंचित करेगा ? लिंग(साधुवेष)का प्रतिपादन भिक्षाके निमित्तसे किया गया है, जो भाग्यविहीन आलसियोंके लिए अत्युत्तम है । इससे क्या सिद्ध होगा ? यह विचार करो, और गुणक (निरर्थक) (काय)श्लेष्मसे अपनेको मत तपाओ । तप नामको वस्तु शरीरका एक कर्म है, इसे किस कारणसे करना चाहिए, और इसका क्या फल होगा ? जीवको शुद्ध व अव्यद (निर्गुण-अकर्ता) तथा तन-मन और वचनको चैष्टाओंमे अस्पृष्ट रहनेवाला कहा गया है ।

१८ ख ग पढति । १९ क मगासु । २० ख वइरभग । २१. क ट तुह । २२ क न हि । २३ क म ग सुहु । २४ व लायण । २५ क ट पइ । २६ व अन्नहु ।

[ २ ] १ व अने । २ ग घ ग पविनि । ३ क ट उवह । ४ मभो प्रनियोग 'पाणु' । ५ म ग व जजइ । ६ ख ग छलउ अप्पु, व छलउज्जइ । ७. क ट थिनि । ८. ट निहउ । ९ क ट मइ । १०. क ट ख ग लेसे । ११ ख ग मा । १२ क ट णु । १३ क ट कज्ज । १४ क ट न । १५ क व आवहो । १६ क ट सुद्ध अवहु, ख ग सुद्ध अमुहु । १७. क ख ग ट मणु ।

तासु विसेसु को वि सविसेसे<sup>१८</sup> किजइ<sup>१९</sup> काई न<sup>२०</sup> कायकिलेसे ।  
 घत्ता—तणुकम्सु न जीवदन्तु<sup>२१</sup> सरइ न विचार<sup>२२</sup> विद्यप्पु तामु करइ । १०  
 जाणिवि कुमारु डय<sup>२३</sup> कज्जु निउ तं किजइ जं स-सरीरहिउ ॥२॥

[ ३ ]

आगन्धमरणपजंतु एहु	न वि जीउ न जीवहो कज्जु देहु ।
अहमिय <sup>१</sup> विद्यापु इह <sup>२</sup> मोहु भणिउ <sup>३</sup>	पडिफुरड <sup>४</sup> भूयसमवायजणिउ <sup>५</sup> ।
गुड-धायई-जलजोएण जेम	महुसत्ति <sup>६</sup> न अण्णहो <sup>७</sup> कज्जु तेम ।
पुगलकिउ अह संभूउ कम्सु	पुगलु जि न अण्णहो <sup>८</sup> तणउ <sup>९</sup> धम्सु ।
सो चेय जीउ पडिहाइ जं जि	दुप्पणमुहविदु व भाति <sup>१०</sup> तं जि । ५
जीवहो परिणामासंभवेण	सिद्धउ परलोयाभाउ तेण ।
परलोयाभावे न सग्गु मोक्खु	न नियत्थु <sup>११</sup> सुयवि <sup>१२</sup> संसारसोक्खु ।
तं निसुणेवि ईसिहसंतएण	इन्द्रियवावार <sup>१३</sup> चयंतएण <sup>१४</sup> ।

आत्माके लिए इस अतिविशेष कायक्लेशके द्वारा कुछ भी विशेष(हित) नहीं किया जाता अथवा उस आत्मामें इस अतिविशिष्ट कायक्लेशके द्वारा कोई भी विशेषता उत्पन्न नहीं की जाती । शरीरका कर्म जीवद्रव्यका अनुसरण नहीं करता और न उसमें कोई विकार-विकल्प ही उत्पन्न करता है । इस(सिद्धांत)के अनुसार अपने कार्य(कर्तव्य)को जानकर ऐसा करो जो अपने शरीरको हितकारी हो ॥२॥

[ ३ ]

यह शरीर गर्भसे लेकर मरणपर्यंत रहता है, और यह देह न तो स्वयं जीव है, और न जीवका कार्य ही है, मैं (देहसे अतिरिक्त अमूर्त-आश्रित व चैतन्यस्वरूप स्वतंत्र आत्मा) हूँ, इसप्रकारके विकल्पको (चावक् दृष्टिसे) मोह कहा गया है । वास्तवमें यह देह भूतसमवाय (पचमहाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश)से उत्पन्न होकर स्फुरायमान (प्रगट) होता है । जिसप्रकार गुड, घातकी और जलके योगसे मधुगवित (मादक गवित) उत्पन्न हो जाते हैं, वह किसी अन्य (अव्यक्त-अमूर्त) कारणका कार्य नहीं है, उसीप्रकार कर्म भी पुद्गल-निर्मित है, और उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह स्वयं भी पुद्गल ही है, किसी अन्य वस्तुका धर्म (स्वभाव) नहीं है । जो कुछ प्रतिभासित होता है, वही जीव है (उसके अतिरिक्त जीव नामकी कोई स्वतंत्र-अमूर्त वस्तु नहीं है) और वह दर्पणमें मुखके प्रतिबिम्बके समान (एक स्वतंत्र वस्तुके रूपमें) भासित होता है । जीवमें किसीप्रकारका अध्यवसायरूप परिणमन असंभव होनेसे परलोक-का अभाव सिद्ध होता है, और परलोकका अभाव होनेसे स्वर्ग व मोक्ष नहीं रहते । अतः संसारसौख्यको छोड़कर अपना कोई अर्थ (हित, लाभ) नहीं हो सकता । -यह मुनकर थोड़ा

१८ ठ सेसे । १९ ग ई । २० क ड एण, घ काउ न । २१ क जीउ । २२ क ड ई । २३ व इउ ।

[ ३ ] १. क ड तिय, ग णिय । २. क ड इहु । ३. क ड ई । ४. क व ड परि । ५. प्रतियोमे । ६. क घ ड ई । ७. क पहु । ८. व अन्नहो । ९. क ड भणउं, व उ । १०. क व ड भनि, ग हंति । ११. क ड वि अदु, घ णिअत्थु । १२. क ड मुडवि । १३. ग व वाह । १४. ग व ड रन्तं ।



- १० घत्ता—इय सव्वु वि सुउ पमेयविससु मिच्छापावंचवंचियसुससु ।  
 तत्तत्थु साहुज्जण-उव्वहसिउ पई सुयवि माम को साहसिउ<sup>१५</sup> ॥३॥

[ ४ ]

- सवियप्पहो नाणहो साहारणु भूयई<sup>१</sup> अंतरंगु जइ कारण ।  
 तो न काई समपरिणई सुत्तहो पडरंगेण रंगु जिम<sup>२</sup> सुत्तहो ।  
 अह सहयारिनिमित्तु निरुविड<sup>३</sup> अण्णु जि अंतरंगु पई सूउ<sup>४</sup> ।  
 कज्जहो कारणु नवर सलक्खणु मिउपिडो<sup>५</sup> व्व घडहो अविलक्खणु ।  
 ५ सव्वउ अंतरंगु आयण्णहि<sup>६</sup> नाणहो कारणु नाणु जि मण्णहि<sup>७</sup> ।

हंसते हुए, जो इंद्रियोंके व्यापार(प्रवृत्तियाँ, प्रवृत्तिमार्ग)को त्याग रहा था, और जो धर्मरूपी पर्वतके शिखरका (उन्नत) वृक्ष था, ऐसे जिनमतीके पुत्रने कहना प्राप्त किया—

यह समस्त श्रुत (सिद्धात व तर्क) प्रमेयविषय है, अर्थात् बहुत कठिन प्रमेयोको लिये हुए है, मिथ्याप्रपचसे रहित व ठीकप्रकारसे सतुलन-युक्त है; तथा यह सारा तत्त्वार्थ साधु-अर्थात् शोभन है, और साधारणजन-अर्थात् अविचक्षण लोगोंके द्वारा (कठिन होनेसे) उसका उपहास किया जाता है, परंतु साधुजनोके लिए उभयशिव-अर्थात् दोनों लोकोमे कल्याणकारी है। हे-मामा ! ऐसी बात आपको छोड़कर और तो कौन कह सकता है; (यह इसका स्तुतिपरक अर्थ है। श्लेषमे निंदापरक अर्थ इसप्रकार है—) अथवा आपका यह सारा सिद्धात प्रमेयविरुद्ध है, मिथ्यात्वके प्रपंच द्वारा साधारणलोगोको धोखा देनेवाला है, एव सज्जनोके द्वारा उपहास करने योग्य है; तत्रभवान्(तत्तत्त्व-तत्त्वतः) आपको छोड़कर हे मामा ! ऐसा (कहनेवाला) और कौन साहसी है ॥३॥

[ ४ ]

(पंचेन्द्रियों एव मनसे उत्पन्न) सविकल्पक ज्ञानका सामान्य (उपादान) कारण यदि पंच-भूत ही है, तो फिर सभी जीवोके मूर्त्तकारणसे उत्पन्न मूर्त्तज्ञानकी परिणति (प्रवृत्ति) एक जैसी क्यों नहीं होती, जिसप्रकार किसी पटके प्रत्येक सूत्रका रंग संपूर्ण पटके रंगके अनुसार ही होता है। इन(भूतो)को आपने ज्ञानका सहकारी-निमित्त निरूपित किया है, और इन्हीको अंतरंग (उपादान) कारण भी सूचित किया है। (किसी भी) कार्यका कारण केवल स्वजातीय लक्षण-वाला होता है, जिसप्रकार घटरूप कार्यका कारण उससे (द्रव्यत) अविलक्षण मूर्त्तिव-ही होता है। अतः (आपके सिद्धातके अनुसार) अचेतन पृथिव्यादि भूतोसे उत्पन्न अचेतन शरीरादिकके समान ज्ञान भी अचेतन ही होना चाहिये (परंतु ऐसी वास्तविकता नहीं है, क्योंकि ज्ञान एक चेतन तत्त्व है, और ज्ञप्ति-ज्ञानना यह चेतनकी ही क्रिया है)। इसलिए सच्चा अंतरंग कारण सुनिये। ज्ञान(रूप चेतन तत्त्व)का कारण ज्ञान(तत्त्वक चेतनशक्ति-आत्मा)को ही मानिये।

१५ क-धम्महि<sup>१</sup> । १६ क छ त तित्थु । १७ घ ड ।

[ ४ ] १ ग भूयइ । २ क ड णय । ३ क ड जिह । ४ क ट णय, ग इउ । ५ क ड मउ ।  
 ६ क ड सवि, घ अविक्खणु । ७ प्रतिगोमे णहि । ८ क ड हि, घ मणहि ।

बद्धज जोड मोहु पई<sup>१०</sup> सूइउ<sup>१०</sup>  
 अविचारिउ सिद्धंतु तुहारउ  
 दप्पणे वयणु<sup>११</sup> ताम न<sup>११</sup> पईसइ  
 दप्पणतेयमिलिउ नच्छेरउ<sup>१३</sup>  
 चक्खु निरुद्ध<sup>१४</sup> पुरउ न पलोयइ<sup>१५</sup>  
 नाणु वि कम्मसत्तिसंवलियउ  
 मोहवसेण वत्थु अवगणणइ<sup>१६</sup>  
 वट्ठइ सव्वु<sup>१७</sup> भंति तुट्ठइ जिह<sup>१८</sup>

दप्पणे वयणाभासु निरुचिउ ।  
 विहउ<sup>११</sup> पेक्खु नएण असारउ ।  
 वयणु मुएवि वयणु कहि दीसइ<sup>१३</sup> ।  
<sup>१४</sup> नायणु तेउ होइ विवरेरउ ।  
 वयणसरुउ वलेवि अवलोयइ<sup>१५</sup> । १०  
 जायइ मिच्छादंसणे मिलियउ<sup>१६</sup> ।  
 दप्पणे मुहु<sup>१७</sup> तुम्हारिसु मणणइ<sup>१८</sup> ।  
 सुद्धसरुउ<sup>१९</sup> वियाणहि<sup>२०</sup> कुरु<sup>२१</sup> तिह<sup>२२</sup> ।

घत्ता—सुहभावे असुहु न परिचयइ<sup>२३</sup> सुद्धे<sup>२४</sup> नएण<sup>२५</sup> विणिण वि खयइ<sup>२६</sup> ।  
 मणुयत्तु लहेवि जो सो अमइ तिलियवल्लु जिम<sup>२७</sup> भवे असइ<sup>२८</sup> ॥४॥ १५

‘जोव वंघा है’, ऐसे विचारको (साध्यदर्शनके अनुसार) आपने मोह कहा है, और दर्पणमे वदनाभासके समान (मिथ्या) निरूपित किया है। आपका यह सिद्धांत अविचारित व असार है, और देखिये ! यह नयो(युक्तियो)से खंडित हो जाता है। (मूर्तस्वरूप) दर्पणमें (मूर्तिमान्) मुख तो प्रवेश करता नहीं, और (स्वशरीरस्थ) मुखको छोडकर मुख दिखाई ही कैसे दे सकता है ? (तब फिर दर्पणमे मुख कैसे दिखाई देता है ? इसका समाधान यह है कि) दर्पणके तेजसे मिलकर नेत्रोका तेज विपरीत हो जाता है (अर्थात् मूलतः दर्पणाभिमुख होते हुए भी लौटकर स्वशरीराभिमुख हो जाता है) इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि दर्पणके तेजसे प्रतिबिम्बित होकर चक्षुओके (तेजकी गति) निरुद्ध हो जानेसे वह दर्पणमे स्थित मुखके शुद्ध स्वरूपको नहीं देखता, बल्कि लौटकर (अपने शरीरमे स्थित) वदनके स्वरूपको ही देखता है (विगेणचर्चके लिए देखिये परिशिष्ट)। उसीप्रकार ज्ञान भी कर्मशक्तितसे संबलित (मिश्रित) होकर मिथ्यादर्शनसे मिल जाता है, और इसप्रकार मोहके वनसे अथवा अविबेकके कारण जो वस्तुस्वरूप (अर्थात् यह कि शुद्धदर्पणका स्वरूप तो मुखरहित ही है, और मुख वास्तवमे दर्पणमे नहीं, अपने शरीरमे ही है) की अवहेलना करते है, ऐसे तुम सरीखे लोग ही दर्पणमे मुखका होना मान लेते है। जो साध्य हो, जिससे भ्राति नष्ट हो जाय, और जिस तरह तुम अपने शुद्ध स्वरूपको जान सको, वैसा करो।

मनुष्यत्व प्राप्त करके जो व्यक्ति शुभभावके द्वारा अशुभ(भावो)का त्याग नहीं करता, तथा शुद्धनय(शुद्ध आत्मस्वरूपके ध्यान व चिन्तन)के द्वारा(शुभ व अशुभ)दोनोंका ही क्षय नहीं करता, वह अमति(कुमति या मतिहीन) तेलीके वैलके समान संसारचक्रमे भ्रमण करता रहता है। (विशेषके लिए देखिये परिशिष्ट) ॥४॥

१ ग पड। १०. ग सूविउ, घ सूयउ। ११ क डण ताम। १२ क इ। १३ ख गण<sup>१०</sup>। १४ व नयणु। १५. क व ड वि। १६. क ड वड। १७ क ड यउ। १८. ड मलि<sup>१०</sup>। १९ व ञडं। २० क घड महु। २१ क ख ग ड मण्णु। २२ घ हं। २३ व सिद्धं। २४ ख घ णहिं। २५ ग घ क। २६. क यडं। २७ प्रतियोमे ‘सुद्धेण’। २८ क एण। २९. ख व ड ड, ग ए। ३०. क ड जिह। ३१. क घ ड इ।

[ ५ ]

- अहं दधंततण्ण अवद्धउ अच्छउ परप्र जीउ सुविसुद्धउ ।  
 पुग्गलकम्मं न वियारिज्जइ तेण वि तणुहे न काई मि किज्जइ ।  
 अप्पु स मोहु भणिउ पई पोग्गलु करहि कम्मु भुंजहि कम्महो फलु ।  
 सुक्खु दुक्खु जं पयहु जि माणहि धम्माहम्मविणहु तं जाणहि ।  
 ५ धम्मं सग्गु सोक्खु आवज्जहि पावें नरयदुक्खु अवहुंजहि ।  
 धम्माहम्म केम समभावहि जाणमि कालकूडु जइ चावहि ।  
 दुक्खे धम्मरसायणु पिज्जइ किंविमु विमु लीलप कवल्लिज्जइ ।  
 करहि न धम्मु दिसवि पर डंभहि सुम्हं जेहा घरे घरे लब्धहि ।  
 अप्पणु करइ परहो तह सीसइ पविरलु एक्कु कहि मि सो वीसइ ।  
 १० पावकम्म को नाम न ईसर को उज्झाड न तह अगेसर ।  
 सो जि समोहु एहु संसारिउ चउगइ भमइ कम्मफलखारिउ ।

[ ५ ]

(एक ओर तो) एकांत नय (साध्यमत)से (आपने कहा कि) जोव अवद्ध है और (सर्व) पूर्णतः विगुद्ध रहता है। पुद्गल कर्मसे वह विकृत नहीं होता, और उसके द्वारा इम नरीके लिए कुछ क्रिया भी नहीं की जाती। (दूसरी ओर चार्वाक मतका आश्रय लेकर) आपने बताया कि आत्मा पुद्गल (स्वरूप) ही है, यह सब (आपका) मोह है। (तो ठीक है) कर्म बोजिये और कर्मके फलको भोगिये। जो सुख व दुःख (विलकुल) प्रगट है, उसे (तो) मानिये, और उसे (क्रमशः) धर्म व अधर्मका चिह्न समझिये। धर्मसे लोग स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करते हैं, और पाप-से नरक दुःख भोगते हैं। धर्म और अधर्म समान कैसे हो सकते हैं? इसे तो मैं ऐसा मानता हूँ जैसा कालकूट विषको दातोसे चवाना। (लोगोंके द्वारा) धर्मरूपी रसायन तो बड़े दुःखमें पीया जाता है और पापरूपी विषको लीला(क्रीड़ा)पूर्वक निगल लिया जाता है। स्वयं धर्म नहीं दग्नेवाले, और पापोपदेश देकर दूसरीको वंचना करनेवाले आप तरीखे लोग धर्म-धर्म मिलते हैं। परंतु जो स्वयं करे, और दूसरीको भी वंशी ही गिखा दे, ऐसा कोई बिरला ही नहीं-कही दिया देता है, पापकर्म करनेसे कीन ईश्वर(नमर्थ), उपाध्याय (उपदेश) और अपमर(मेता) नहीं बन जाता। जो आत्मा मोहयुक्त है, उसीको समारी कहा जाता है, और वह अपने कर्मकर्ममें नर्दान (पीड़ित) होता हुआ चारो गतिधोमें भ्रमण करता है।

[ ५ ] १ न वट वम्मण । २ कंजउ । ३ कंजहि घहि । ४ कंजका । ५ नं । ६ स ग म ड । ७ क ग हि । ८ व विमु । ९ क व ड हि । १० वंजहि । ११ क ड उ । १२ वणहुजहि । १३ न हम्म । १४ व ड व हि । १५ क वावहि, ग हि, न मरहि । १६ क न ड किंविमु । १७ ग विन, व न विमु नहीं । १८ क व ड । १९ क गी । २० क विवसि । २१ ग व हि । २२ क अणु, व ड वणु । २३ कंज । २४ न ड हि मि । २५ स म र । २६ क व ड तहो ।

घत्ता—अहमिय मई<sup>२०</sup> जा ता कम्मरई<sup>२१</sup> वोझिजइ जीवहो वंघगई<sup>२२</sup> ।  
इय रूवाभावि<sup>२३</sup> विसुद्ध ठिठ सो मोक्खु<sup>२४</sup> निरंजणु<sup>२५</sup> संतु सिउ ॥५॥

[ ६ ]

पयडमि निययाई<sup>२६</sup> निरंतराई<sup>२७</sup> आयणि<sup>२८</sup> माम जम्मंतराई<sup>२९</sup> ।  
भयएउ नाम हउं वहुउ आसि तउ चरिवि जाउ सुरु<sup>३०</sup> सोक्खरासि ।  
सग्गाउ चयवि<sup>३१</sup> हुउ कुमर<sup>३२</sup> सार चक्कवइहि नंदणु सिवकुमार ।  
तयचरणविसेसे हयतमालि नामेण देव हुउ विज्जुमालि ।  
तय<sup>३३</sup> वहिणिहे सुउ पुणु गरुयमाणु<sup>३४</sup> संजाउ जंवूसामीह जाणु<sup>३५</sup> ।  
भवे भवे तयचरणावल्लियाई मणुयामरसोक्खई मुंजियाई<sup>३६</sup> ।  
चिलिसावणे माणुससोक्खे सुदधु किह<sup>३७</sup> अच्छमि एमहि<sup>३८</sup> पंके छुदु<sup>३९</sup> ।  
सो भणइ<sup>४०</sup> विज्जुचरु कम्मकीउ मणमि<sup>४१</sup> संसारिउ अत्थि जीउ ।  
घत्ता—<sup>४२</sup>चिरजम्मकम्मपरिणइ<sup>४३</sup> तुहुं संपत्तु कह व जइ<sup>४४</sup> सग्गसुहु<sup>४५</sup> ।  
भवे भवे हियइच्छियलाहु<sup>४६</sup> कउ आयणिण कहाणउ<sup>४७</sup> कहमितउ<sup>४८</sup> ॥६॥ १०

‘यह मै’ (या मेरा), इसप्रकारकी मति जबतक रहती है तभीतक जीवको कर्मोंमें रति (आसक्ति) रहती है, और उसीको जीवकी बंधगति कहा जाता है—अर्थात् इस कर्मरतिके कारण ही जीवको कर्मबंध होता है, व चतुर्गंतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। इसप्रकारके रूपके अभाव अर्थात् ऐसे विकल्प (मै, मेरा)के सर्वथा अभावसे शुभाशुभ कर्मोपार्जनसे रहित होनेसे जो जीव शुद्धावस्थामें स्थित हो जाता है, वह आत्मा ही स्वयं मोक्ष, निरंजन, शांत एवं शिव (कहलाता) है ॥५॥

[ ६ ]

हे मामा ! मैं अपने निरंतर कई जन्मातरोको बतलाता हूँ, उनको सुनिये ! (पहले)मै भवदेव नामका बटुक था। तपश्चरण करके सुखराशि संपन्न देव हुआ। स्वर्गसे च्युत होकर मै चक्रवर्तीका पुत्र शिवकुमार नामका श्रेष्ठ राजकुमार हुआ। विष्णु तपश्चरण द्वारा (अज्ञान) अंधकार समूहका नाश करके मै विद्युन्माली नामका देव हुआ। फिर तुम्हारी बहनका विशेष सम्मान-साजन पुत्र जंवूस्वामी हुआ। मैने तपश्चरणसे प्राप्त किये हुए मनुष्य व देव संबन्धी सुखोको भोगा है। इस जुगुप्सोत्पादक मनुष्यगति संबन्धी सुखमें मुरब(मोहित)होकर, (बताओ कि) मैं कैसे इसीतरह (संसार)पंक्रमे पड़ा रहूँ ? तब विद्युच्चर बोला—मै तो ऐसा मानता हूँ कि ससारी जीव कर्मक्रीत अर्थात् कर्मोंका दास है। पूर्वजन्मकी कर्मपरिणतिसे यदि किसीतरह तुझे स्वर्ग सुख प्राप्त हो गया, तो फिर भव-भवमें हृदयेच्छित लाभ कहाँसे होगा। तुम्हें एक कथानक कहता हूँ, वह सुनो ॥६॥

२७ क ग ड मइ । २८ क रई । २९ क ड रइ । ३० ख घ भाउ, ग भाव । ३१ क घ ड मोक्खु, ख ग मोक्ख । ३२ घ जण ।

[ ६ ] १ क याइ । २ वं जि । ३ ड राइ । ४ ख ग सुरु । ५ क ड चइवि, घ चविवि । ६ क घ ड र । ७ क वइहि । ८ घ तउ । ९ क ड वहिणि सुओ, घ णिहिं तु । १० क घ ड भाण । ११ क घ ड जाण । १२ क याइ । १३ क ड किह । १४ ख ग एवहि, घ एवहि । १५ क घ ड ड । १६ घ मममि । १७ क घ ड चिरजम्मि, ख ग चिर । १८ क ड णइय, घ णइउ । १९ ख ग जइ । २० ख ग सुहु । २१ क ख ग डच्छिय । २२ क घ ड णउ । २३ घ तउ ।

[ ७ ]

केण वि-भम्महेण सकवज्जुक्कु  
सच्छन्दचरणे हुउ बलविसदधु<sup>६</sup>  
तं<sup>७</sup> महु<sup>८</sup> सरंतु वहतु वाह  
इय सुत्तु सरंतु सगसोक्खु  
५ पडिक्कइ क्कहाणउ<sup>९</sup> तो कुमार  
एक्कल्लउ मणे वाणिज्जतिट्ठु  
चोरेहि<sup>१०</sup> सुसिउ<sup>११</sup> कंप्पिरसरो<sup>१२</sup>  
सुइणंतरी तं सरु नियइ जाम  
जीहाइ<sup>१३</sup> लिहइ उंसाजलाइ

१० घत्ता—इय माम सगसुहु जो सरइ अहिलासछेउ तहो किम करइ ।  
एउ माणुससोक्खु विणावणउ<sup>१४</sup> अविचारिउ परकोट्टावणउ<sup>१५</sup> ॥७॥

[ ८ ]

अह चवइ चोरु विडपुरिसगमणि वणि एक्कु थेरु तहो तरुणि रमणि ।

[ ७ ]

किसी घुमक्कइने अपने कार्यसे च्युत(भ्रष्ट) एव खस (खारिष) व्याघ्रिसे पीडित ऊँटको अटवीमे छोड दिया । स्वच्छंद करनेसे वह पर्याप्त बलशाली हो गया । बहुत दिनोंपर उसने कही मधु खाया । उस मधुका स्मरण करता हुआ एव भूखकी वाधाको वहन करता हुआ वह ऊँट करीलकी शाखाओको कभी चरता था, कभी नहीं भी चरता था । यही बात भोगे हुए स्वर्गसुख स्मरण करनेकी है । ( वरना ) यहाँ स्वर्ग-भोक्ष किस भूढको मिलता है ? तब कुमार भी उसके उत्तरमे यह कथानक कहने लगा—कोई वणिक्पुत्र भारी (असीम) तृष्णाको धारण करता था । अकेले ही मणि-व्यापारकी तृष्णासे जाते हुए अरण्यमे उसने शीतल सरोवर-जलको देखा । (वहाँ) वह चोरो-द्वारा लूट लिया गया और (भयसे) अंग-अंग कांपता हुआ, एवं तृषासे पीडित हुआ, जलका स्मरण करता हुआ सो गया । स्वप्नमे जब उसने उस सरोवरको देखा तो ( स्वप्नमे ही ) जल पीकर (वास्तवमे) प्यासा ही जाग उठा, और जिह्वासे ओस बिंदुओंको ही चाटने लगा । भला उनसे उसकी तृष्णा कैसे मिटे ? इसप्रकार हे मामा ! जो स्वर्गसुखका स्मरण करता है, वह अपनी अभिलाषाका छेदन कैसे करे ? यह मानुषिक सुख बड़ा विनौना, और विचारहीन ( अर्थात् विवेक भावसे रहित ) है, एवं दूसरोको ( व्यर्थ ) कौतुक उत्पन्न करनेवाला है ॥७॥

[ ८ ]

अब चोर कहने लगा—एक वृद्ध वणिक् था, और उसकी जार पुरुषोसे गमन करने-

[ ७ ] १ क ड<sup>१</sup>विहिं । २ क ख उट्टु । ३ ड मुक्क । ४ क घ ड<sup>२</sup>विमुहु । ५ स ग<sup>३</sup>हि । ६ क ड कहिं, ग कह मि । ७ स ग तें । ८ क ड<sup>४</sup>र । ९ स ग घ भुत्त । १० क ड सगु । ११ क घ ड<sup>५</sup>णउ । १२ क तिडु । १३ घ<sup>६</sup>ने । १४ क स ग ड पोय<sup>७</sup> । १५ घ<sup>८</sup>उ । १६ क ट कणिण<sup>८</sup>, घ कपिण<sup>९</sup> । १७ क तेमं । १८ घ ड<sup>९</sup>इ । १९ घ<sup>९</sup>हि । २० घ ड तेहि । २१ प्रतिभोमे<sup>९</sup>वणउ । २२ घ ट<sup>९</sup>णउ ।

भम्मुट्टि नाम चट्टं समाण  
वच्चत्तहो तहो थोए वि काले  
वहुकवडभरिउ धुत्ताण धुत्तु-  
सुहलकखणलक्खिउ चारु देहु  
तुहु<sup>४</sup> भाइ भज्ज तउ-भाइजाय  
गच्छइ सकंतु इय धुत्तनडिउ  
कइययदिणेषु लोए सलज्जु<sup>५</sup>  
कलु पडइ नियंविणि जेम सुणइ<sup>६</sup>  
चोरियउ चित्तु धुत्तेण ताहि<sup>७</sup>  
लइ<sup>८</sup> करहि संतु एम वि मयच्छि<sup>९</sup>  
भणु एम एत्थु<sup>१०</sup> देउले<sup>११</sup> सकंतु  
जं सुणइ तुम्हइ<sup>१२</sup> कहवि पवर  
इय सुणवि दिणेषु पळ्ळराउ<sup>१३</sup>

नीसरिय लेवि मणिगणनिहाण ।  
नरु एक्कु मिलिउ देसंतराले ।  
भम्मुट्टि चट्टु पहि तेण वुत्तु ।  
पइ<sup>१</sup> पेक्खिउ वडिउ<sup>२</sup> मच्चु नेहु । ५  
जम्मे वि न मेल्लमि तुम्ह पाय ।  
पडिवणणइ वडिउनेहजडिउ<sup>३</sup> ।  
चवलक्खिवि तं परयारकज्जु<sup>४</sup> ।  
वम्महसदीवणु गेउ झुणइ<sup>५</sup> ।  
वोल्लइ हउ<sup>६</sup> जोगा<sup>७</sup> तुम्मि नाहि<sup>८</sup> । १०  
इह गामतलारहो<sup>९</sup> पासि गच्छि ।  
सोवेसमि हउ<sup>१०</sup> गुरुपंथसंतु ।  
तो निसिहि<sup>११</sup> होइ कल्लाणु नवर ।  
संकेउ तलारहो<sup>१२</sup> कहवि<sup>१३</sup> आउ ।

घत्ता—ता देउले सुहरंजियमणइ रयणिहिं सुत्तइ<sup>१४</sup> तिणिण वि<sup>१५</sup> जणइ । १५

भम्मुट्टि सयणे एक्कहि<sup>१६</sup> सपिउ वीयम्मि धुत्तु जगंतु थिउ ॥८॥

वाली एक तरुणी रमणी थी । वह ब्रह्ममुट्टि नामके एक चटके साथ मणिसमूह आदि खजाने को लेकर निकल गई । चलते-चलते ब्रह्ममुट्टिको थोड़े काल पश्चात् कही देगोंके मार्गमें एक पुरुष मिला, जो बहुत कपटसे भरा हुआ और धूर्तोंका भी धूर्त था । रास्तेमें उसने ब्रह्ममुट्टि चटके कहा—शुभ लक्षणोंसे युक्त सुंदर शरीरवाले तुमको देखकर मुझे बड़ा स्नेह बढ़ गया है । तू मेरा भाई है, और तेरी भार्या मेरी भ्रातृजाया (भौजाई) है । आजन्म तुम लोगोंके पैर (चरण-सेवा) नहीं छोड़ूंगा । इसप्रकार अत्यधिक स्नेहसे जड़ा हुआ वह ब्रह्ममुट्टि बदलेमें उसकी स्तुति करता हुआ उस धूर्तसे ठगा हुआ अपनी कांताके साथ चलता रहा । कतिपय दिनोंमें लोकमें निंदा उस परदार-कार्य (परस्त्री रमण) को देखकर वह मधुरतासे इसप्रकार गाने लगा जिससे वह सुंदरी सुन ले, और कामोद्दीपन करनेवाले गीत आलापने लगा । धूर्तने उसका चित्त चुरा लिया । वह बोली—मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ । धूर्तने कहा—हे मृगाक्षी लो ! यह मंत्र (उपाय) करो । इस ग्रामके ग्रामरक्षकके पास जाओ, और ऐसा कहो—यहाँ इस देवालयमें लंबे पथसे श्रांत हुई मैं अपने कांतके साथ सोऊँगी । यदि किसीतरह तुममेंसे प्रवर (अर्थात् पुरुष) सो गया, तो रातमें निश्चयसे कल्याण हो जायगा । यह सुनकर रागारूढहुई वह (धूर्तके द्वारा दिये हुए) उस संकेतकी दिनमें ही नगररक्षकसे कह आयी । तब देवकुलमें सुखसे प्रसन्न मनसे वे तीनों जन रात्रिमें सो गये । एक गयनपंर प्रियाके साथ ब्रह्ममुट्टि (सो गया) और दूसरे पर धूर्त जागता हुआ पड़ रहा ॥८॥

[ ८ ] १. क ड लक्खिउ । २. ख ग पइ । ३. ख ग वडिउ । ४. क ख ग तुहु । ५. ख ग भाउ-जाउ; घ भाउजाय । ६. ख ग पडिवणण पवडिउ, घ पडिवण चडिउ नेह । ७. क ख ग ड कय । ८. ख ग ज । ९. क ख ग घ ड । १०. क घ ड इ । ११. क ख ग घ ताहि । १२. घ हउ । १३. क ल जोगु । १४. क णाहि, ख ग घ नाहे । १५. ख ग लउ । १६. ख ग घ मयच्छि । १७. प्रतियोगं गामि । १८. क इय, घ ड इत्थु । १९. क ड देवलि । २०. क ह हउ । २१. क ह । २२. क ड हि, ख ग हे । २३. क ए लउ । २४. घ ड कहिवि । २५. ख ग इ । २६. क घ ड मि । २७. ख ग हे, घ हि ।

[ ९ ]

तओ अद्धरत्ते दिसामुक्कसहा  
जमाइइद्व्याणुरुवा पयंडा  
समाणं तल्लारेण वग्गंतमिच्छा  
पमेल्लेवि चट्टं पसुत्तं पि जाया  
५ सुणेऊण भड्डहक्किंयं कयवमालो  
दिणे चैय कद्वियं इमे दो वि अम्हे  
तओ णिट्ठु भम्मुहि लइओ वराओ  
तियं लेवि धुत्तो वि तहवरत्तो

पसोवणि पवज्जंत डिंडिमनिनहा ।  
महाचुण्णपंडुरियधियं लउडिदंडा ।  
नियच्छेवि आवंत-संता दइल्ला ।  
असुत्तस्स धुत्तस्स सयणस्मि आया ।  
समाल्लु धुत्तेण तो कोट्टुवालो ।  
न याणेमि तइयं गवेसेहं तुम्हे ।  
निओ वंधिल्लणं वड्ढीदिण्णवाओ ।  
पणट्ठे त्ति वेलाणई तीरे पत्तो ।

१० घत्ता—तो चोल्लड दुत्तर नियवि नइ सो धुत्तु कयडक्कियनेहमई ।  
वत्थाइवत्थु ता वहमि सई उत्तारमि पुणु वाहुडवि पई ॥९॥

[ १० ]

इय निमुणेवि अप्पिउ ताप्रं सव्वु  
तं लेवि तरवि उत्तरिउ धुत्तु  
मई सुयवि विवत्थं तडस्मि दास

भूसणु सक्कडिल्लु सुवणुं दव्वु ।  
परवीरु जि चोलवि जंतु वुत्तं ।  
रे किल्लु चलिउ वंचिवि ह्यास ।

[ ९ ]

तव अर्द्धरात्रिमें जबकि सब सो रहे थे, और दिशाएँ शब्दरहित हो गयी थी, उस समय डिंडिम निनाद करते हुए, यमसे आदिष्ट दूतोंके समान प्रचंड, महाचूर्ण(मूर्दाशंखचूर्ण)से पांडुरवर्ण बने हुए, एवं लकुटि दंडोंको लिये हुए, खूंखार गवद करते हुए, भयानक दैत्यो जैसे भूत्योको नगर-रक्षकके साथ आते हुए देखकर वह स्त्री सोते हुए चटको छोड़कर न सोते हुए घूर्तके गयन पर आ गई । भटोंके हुंकारसे उत्पन्न कोलाहलको सुनकर घूर्तने कोटपालसे कहा—दिनमे ही कह दिया था कि ये दो तो हम (पति-पत्नी) हैं, तीसरेको नहीं जानते, तुम लोग खोज लो । तब (इन लोगोंने) ब्रह्ममुष्टिको देखकर बेचारेको पकड़ लिया और बहुत मार-पीटकर बांधकर ले गये । घूर्त भी उसके बदनमे आसक्त हुआ, स्त्रीको लेकर, भागकर समुद्रकी तटवर्ती एक नदीके तीरपर पहुँचा । तब वह घूर्त उस दुस्तर नदीको देखकर कपट-स्नेहमति करके बोला—तो अब एक बार वस्त्रादि वस्तुओंको लेकर जाता हूँ, पुनः चलकर (आकर) तुम्हें भी पार उतार दूँगा ॥९॥

[ १० ]

यह सुनकर उसने अपने आभूषण, कटिमेखला, सुवर्ण, द्रव्य आदि सब कुछ उसको अर्पित कर दिया । उस सबको लेकर घूर्त तैरकर पार उतर गया, और दूसरे तीरको अतिक्रमण करके जाने लगा, तो वह बोली—अरे दुराग्रय दास ! मुझे तटपर विवस्त्र(नग्न) छोड-

[ ९ ] १ क ड णिणहा । २ ख ग घ रूडा । ३. क वुण्ण । ४ ख ग वव । ५ ग ग सेय ।  
६. ख ग कियनेहमइ । ७ क ड वत्थइयवत्थु । ८ क सई । ९. क व ड डिंवि ।

[ १० ] १ घ ताड । २ क ड ण । ३ क ड ण । ४ ग घ तारवि । ५ क ड रड, ख ग रिवि । ६ ख ग चोल्लवि । ७ क ड धुत्त । ८. क ड सुइ वि, व सुएवि । ९ ख ग थु ।

पञ्चुत्तर हृत्<sup>१०</sup> चलंतएण  
 परिणित<sup>१२</sup> वि मुक्कु भत्तार सारु  
 किं भक्खणमण मच्चु वि मयच्छि  
 गइ तस्मि असइ थिय<sup>१६</sup> तीरे जाम  
 जंतु<sup>१८</sup> जलाउ थले नियवि मच्चु  
 जले बुद्धु<sup>२१</sup> सोणु एत्तह<sup>२२</sup> दवत्ति  
 उहयासारविच<sup>२४</sup> हुउ विलक्खु  
 बुच्चइ निवुद्धिय<sup>२६</sup> रे सियाल  
 तो<sup>२७</sup> तेण भणित<sup>२८</sup> हउ<sup>२९</sup> परकुवुद्धि  
 एकत्थ मुक्कु पइ पावकम्मे  
 कल्लाणकारि तउ बुद्धि लग्ग  
 घत्ता—इय असइ कहणउ<sup>३३</sup> अवगमहि<sup>३३</sup> सुरसोक्खकळे मा मणु दमहि<sup>३८</sup> । १५  
 अनुहुंजि मणुयफलु दुल्लु<sup>३१</sup> तुहुं सायत्तु चयंतहं कवणु सुहु ॥१०॥

कर, व ठगकर कहाँ चला । उसने गीघ्र चलते हुए, एवं हाथ हिलाते हुए, प्रत्युत्तर दिया—  
 (एक जगह तो) परिणय किये हुए भर्तारको छोड़ा, अन्यत्र अपने जारको मरवा डाला, हे  
 मृगाक्षी ! क्या (अब) मुझे भी खानेका मन है ? ले, भट्टारिके ! मैं जा रहा हूँ, तू यही रह !  
 उसके चले जानेपर जब वह असती तीरपर खड़ी थी, तभी मांसका टुकड़ा लिये हुए एक शृगाल  
 वहाँ आया । जलसे स्थलपर आये हुए एक मच्छको देखकर, मांसके टुकड़ेको छोड़कर,  
 उस मच्छको पकड़नेकी दृष्टतासे दौड़ा । मच्छ (तुरंत) जलमे डूब गया, और इधर वह मांसका  
 टुकड़ा झटसे एक स्थान (वाज) द्वारा उठा लिया गया । दोनों आशाओसे वंचित होकर शृगाल  
 बड़ा लज्जित और उदास हो गया । वह कुलटा उसे लक्ष्य करके हँसी और बोली—अरे निर्वुद्धि  
 क्याल ! रे मूर्ख ! स्वाधीन (वस्तु) को छोड़कर क्या लाभ हुआ ? तो उसने कहा—मैं तो अवश्य  
 परम दुर्वुद्धि हूँ; पर, अरे पापकर्म करनेवाली दुराचारिणी ! ऐसी (तेरे जैसी) परम सुवुद्धि  
 कहाँ मिले कि एक जगह तो तूने भर्तारको छोड़ा, और फिर (दूसरी जगह) जारको भी मरवा  
 डाला । अरे निर्लज्ज कल्याणकारिणी ! तेरी ऐसी सद्वुद्धि तुझे खूब लगी है (अर्थात् तेरी परम  
 दुर्वुद्धिका अच्छा फल तुझे मिला है) । नग्न अवस्थामे (खड़े हुए) भी बोलते हुए कुछ तो लज्जा  
 कर ! इस असती कथानकको समझो । देव सुखोंके लिए मनका दमन मत करो । दुर्लभ मनुष्य  
 फल (शारीरिक विषय-भोग) को भोगो । स्वाधीन(सुख)को छोड़नेवालोंको कौन-सा सुख  
 मिलता है ? ॥१०॥

१०. क ड हत्य । ११ क घ ड तहि । १२ क घ ड णित । १३ क ड र्व, ख ग घ अघं । १४. ख ग  
 लए । १५ क ड रिय । १६ ख ग घ थिए । १७ ख ग ताउ । १८ ख ग अ । १९ क घ ड मेल्लिखि ।  
 २०. क ड धायउ, घ धाविउ । २१ क घ ड बुद्धु । २२. क ड हिं, घ हिं । २३ क ड खड । २४ क ड  
 उहयासां । २५. क ड अडणण, घ अडयणणं । २६ क ड णिवुं; ख ग निवुं । २७ क ड ता । २८ खं  
 ग उं । २९ क ख ग ड हय । ३०. क ड लं तेरी डह सुं, घ एही लं परमुं । ३१. क ड भत्ताव मरां ।  
 ३२ प्रतियोमं भिम् । ३३. क ड लज्जि । ३४ ख ग त । ३५ ख ग लग्ग । ३६. क घ ड णउ । ३७. क  
 घ हिं । ३८. क घ ड हिं । ३९. क हुं ।



[ ११ ]

- जंबूसामि कहाणस<sup>१</sup> साहइ  
 गड परतीरे<sup>२</sup> पुहइषणतुल्लउ  
 चडिवि पोइ लंघइ सायरजलु  
 जा वेलासलु पावमि तहि<sup>३</sup> पुणु  
 ५ हरि-करि किणचि भंडु नाणाविहु<sup>४</sup>  
 अह हत्थाउ गलिउ बरनिहो  
 धाहावइ तरियहु<sup>५</sup> दीहरगिरु  
 निवडिउ<sup>६</sup> एत्थु रयणु<sup>७</sup> अवलोयहो  
 सायरं नट्टु वहंतहो पोयहो  
 १० घत्ता—इय मणुयजम्मु माणिकससु रइसुहनिदावसजायमसु<sup>८</sup>  
 संसारससुहि<sup>९</sup> हरावियउ जोयंतु केम पुणु लहमि हउं ॥११॥

[ १२ ]

विज्जुच्चरु<sup>१</sup> भणइ दिडप्पहारि<sup>२</sup> विज्जन्मि मिल्लु कोयंडधारि<sup>३</sup>  
 सरघाए<sup>४</sup> मारिउ हत्थि तेण एत्तह<sup>५</sup> सो वट्टु सुयंगमेण ।

[ ११ ]

(अथानंतर) जंबूस्वामी कथानक कहने लगे—कोई बनिया जहाज लेकर दूसरे तीर पर गया। वहाँ उसने पृथ्वीके (समस्त) धनके तुल्य एकमात्र अति बहुमूल्य रत्न खरीदा। पोतमें चढ़कर जब वह सागरको लांघ रहा था तो अपने मनमें इसप्रकार इष्टार्थ सिद्धिकी वांते सोचने लगा—जैसे ही मैं वेलाकूल(समुद्रतट)पर पहुँचूँगा, वही इस महागुणवांत् माणिक्यको बेव दूँगा, और फिर हाथी, घोड़े व नानाप्रकारके भांड खरीदकर राजाके समान संपदासहित घरको जाऊँगा! थोड़ी नौद आनेपर वह रत्न उसके हाथसे गिरकर समुद्रके मध्यमें जा पड़ा। वणिक् क्षीर्ण स्वरसे तैरनेवालोको चिल्लाया—अरे! अरे! जहाजको रोकिये! यही रत्न गिर गया, उसे देखिये, और उसे लाकर मुझे उपस्थित कीजिये। देखिये! पोतके चलते हुए, सागरमें नष्ट हुआ माणिक्य (भला) कहाँ मिले? यह मनुष्यजन्म माणिक्यके समान है। रतिमुखरूपी निद्राके वशसे भ्रममें पड़कर, संसार समुद्रमें हराकर, खोजनेपर भी मैं (इस मनुष्यजन्मरूपी माणिक्यको) फिर कैसे पाऊँगा? ॥११॥

[ १२ ]

(तब) विज्जुच्चर कहने लगा—विध्यपर्वतमें दृढप्रहारी नामका एक धनुर्धर भील रहता था। उसने वाणके आघातसे एक हाथीको मार डाला। इधर वह स्वयं भुजंगमसे ढँस लिया

[ ११ ] १ क घ ङ २ क घ ङ ३ क ङ ४. ख ग मुह ५. ५ क घ ट मणि ।  
 ६. घ तहो । ७. क विहु । ८ क ड तर ९ क ड वुत्तु । १० क ख ग ट र ११. क ट अण्णे-  
 सवि पुणु महु । १२ क ड ममुउ । १३ क ड संगारि ।

[ १२ ] १. क ड ई दिड, ख ग घ पमणड दिडपहारि । २. क घ ट कोवउ । ३ क ट एनहि,  
 घ हि ।

धनुषाणं<sup>४</sup> मारिड विसहरो वि भिल्लु<sup>५</sup> वि विसमुत्तु<sup>६</sup> विवण्णु सो वि ।  
 करि-भिल्ल-सप्पु-धनु धरणिपडिच्च विहरंतसिवाल्लो<sup>७</sup> चित्ति चडिय ।  
 छम्मासु हत्थि नरु एकु मासु अहि होसइ पुणु दिवसेकु<sup>८</sup> गासु ।  
 तावच्छउ फेडमि दुट्ठमुक्ख<sup>९</sup> इय<sup>१०</sup> खामि दो वि धणुनद्ध<sup>११</sup> सुक्ख<sup>१२</sup> ।  
 करडंतहो तहो दिट्ठनद्धु<sup>१३</sup> तुडिउ धणुकोडिपू<sup>१४</sup> तालु कवालु फुडिउ ।  
 मुउ जंजुउ जेम<sup>१५</sup> मुणंतु अहिउ नासेसहि<sup>१६</sup> तिह<sup>१७</sup> परमत्थु कहिउ ।  
 घत्ता—तो भणइ<sup>१८</sup> कुमार माम सुणहि<sup>१९</sup> अक्खाणउ<sup>२०</sup> अज्जु वि नउ सुणहि<sup>२१</sup> ।  
 कवाडिउ<sup>२२</sup> को वि कहि मि<sup>२३</sup> वसइ<sup>२४</sup> इंधणु आहरिवि अन्नु<sup>२५</sup> गसइ<sup>२६</sup> ॥ १२ ॥ १०

[ १३ ]

वणे एकदिवसे सज्जियकुठार<sup>१</sup> गउ सीसे चडाविउ<sup>२</sup> कट्टभार ।  
 उण्हालइ<sup>३</sup> खररविकिरणतत्तु भरु मेल्लिचि तरुतले निट्टपत्तु ।  
 सुइणंतरे<sup>४</sup> पेच्छइ रायलील वरकामणीहिं सहुं<sup>५</sup> कामकोल ।  
 अप्पाणु कलइ महिवइसमाणु सिंहासणे<sup>६</sup> चमरहिं<sup>७</sup> चिज्जमाणु ।  
 करि-तुरय-जोहसामगिसारु रायउलु<sup>८</sup> दद्धपडिहारदारु ।

गया । धनुषके प्रहारसे उसने विपधरको भी मार डाला, और वह भील भी विपभुक्त (विप-व्याप्त) होकर मर गया । पृथ्वीपर पड़े हुए हाथी, भील, सर्प और धनुष एक घूमते हुए शृगालके चित्तमे चढ़ गये । हाथी छह मास, मनुष्य एक मास, और यह सर्प एक दिनका प्रास होगा । तो ठीक, ये सब तबतक रहे, आज तो मैं इस दुष्ट भूखको धनुषके दोनों ओर बँधे हुए सूखे बंधन (तांतकी गाँठ)को खाकर मिटा लेता हूँ । उसके चबानेसे वह दृढ़ गाँठ टूट गया, और धनुषके शिरेसे उसका तालु व कपाल फूट गया । जिसप्रकार अधिकसे और अधिक लाभ-को चाहनेवाला जव्वर मर गया, तू भी उसीतरह नष्ट होगा, इसप्रकार मैंने यह परमार्थ कह दिया । तब कुमार बोला—हे मामा ! एक आख्यान सुनो, जिसे तुम अबतक भी नहीं जानते । कहीं कोई कबाड़ी रहता था, और इंधन लाकर ( उसे बेचकर ) अन्न खाता था ॥ १२ ॥

[ १३ ]

एक दिन वह अपने कुल्हाड़ेसे सज्जित होकर वनमे गया, और शिरपर काष्ठका भार चढ़ा लिया । ग्रीष्ममे प्रखर रविकिरणोंसे संतप्त होकर भारको छोड़कर (शिरसे उतारकर), वृक्षके नीचे निद्राको प्राप्त हुआ । स्वप्नमे उसने राजलीला देखी, और सुंदर कामिनियोंके साथ काम-क्रोड़ा । अपने आपको राजाके समान समझा, जो सिंहासनपर विराजमान था, जिसके ऊपर चमरोसे बीजना किया जा रहा था; जिसका राजकुल करि-तुरग एवं घोड़ाओ इत्यादिकी समस्त सामग्रीसे सार-युक्त अर्थात् समृद्ध था, और जिसका द्वार प्रतोहारसे अवरुद्ध (संरक्षित)

४. क ड धायाहि । ५. क ड मिल्ल । ६. क ड विसु । ७. क ड ड सप्प । ८. क ड ड सियालहु । ९. क ड संक । १०. क ड भुक्खु । ११. ख ग पर । १२. क ख ग ड वड । १३. क मुक्खु, ख ग मुक्कु । १४. क ड ण्डु । १५. क ड य । १६. ख ग सुहेण छुहिउ । १७. क संहि । १८. घ तिहा । १९. क ड ड ड । २०. ख ग मु, घ मुणहि । २१. क ड ड णउ । २२. क ड हि, घ मुणहि । २३. क ड कहिमि को वि । २४. क ड । २५. प्रसियामि 'अणु' ।

[ १३ ] १. घ कुठार । २. घ विवि । ३. ख ग घ उन्हा । ४. क ड मुय । ५. क सहु । ६. क ड सिधा । ७. ख ग विज्जु । ८. ख ग रुडु तं नियवि सारु, ग प्रतिमं दूसरा पाठ भी = चित्तु लगा कर लिखा गया है ।

अह आगया<sup>१</sup> लुहसोसिया<sup>२</sup> उट्टाविउ महिल<sup>३</sup> रोसिया<sup>४</sup>।  
 अंतरिउ रज्जु पर दिट्ठ<sup>५</sup> पत्ति मसिकसणवण<sup>६</sup> णं कालरत्ति  
 सुकंग-पयडसिरसंधिजाल<sup>७</sup> उद्धुसियरुक्खखरविसमवाल।  
 असहंतु विरसु तं तीण<sup>८</sup> वुत्तु सा पिट्ठिवि<sup>९</sup> धाडिय<sup>१०</sup> पुणु वि सुत्तुः  
 १० तो नियइ<sup>११</sup> सुदणु अडइह<sup>१२</sup> सबाहु मलमलिनवहंत<sup>१३</sup> पसेयवाहु।  
 ईधणभरपीडियउत्तमंगु ता उट्ठिउ<sup>१४</sup> हुक्खञ्जुलुकिंयणु।  
 घत्ता—जइ सुदणे रज्जु संपत्तु तहो पुणु पुणु वि तं पि संभवइ कहो।  
 इय माणुसजन्महो जइ ल्हसिउ तो अच्छमि नरयट्ठक्खगसिउ ॥ १३ ॥

[ १४ ]

तक्कर कहइ<sup>१</sup> निसुणि बहुचेडउ<sup>२</sup> पाउसे कम्म<sup>३</sup> नयरे नडवेडउ<sup>४</sup>।  
 नच्चहु निसिहि<sup>५</sup> गयउ निवपासइ<sup>६</sup> मुक्कउ रक्खणु निय<sup>७</sup> आवास<sup>८</sup>।  
 वोडु नाम नडु ठिउ जरज्जुणउ<sup>९</sup> तरुसकडआरामासणवे<sup>१०</sup>।  
 ता पुराउ आहरणहि<sup>११</sup> लल्लिय सासुया<sup>१२</sup> क वि<sup>१३</sup> वहु निम्भच्छिय<sup>१४</sup>।  
 ५ आविबे<sup>१५</sup> रुक्खे ताइ<sup>१६</sup> संथाविउ मरणोवाय<sup>१७</sup> पासु गले लाविउ<sup>१८</sup>।

था। अथानतर क्षुभासे शोषित एव रष्ट्र हुई उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया। राज्य (दृष्टिसे) ओझल हो गया, और स्याही जैसे काले वर्णवाली एवं काल-रात्रि जैसी पत्नी दिखाई दी। उसके अंग सूख रहे थे, शिराएँ और सधिसमूह प्रकट हो रहे थे, एव बाल रोमांचित (खड़े हुए), रूखे, कठोर तथा असमान थे। उसके कठोर बचनको सहन न करते हुए (कबाडीने) उसे पीटकर निकाल दिया, और फिरसे सो गया। तो उसने स्वप्नमे देखा कि बटवीमे उसके आसू बह रहे हैं, मलसे मलिन अतिशय प्रस्वेदका स्रोत बह रहा है, और उसका उत्तमाग (शिर) ईधनके भारसे पीड़ित (दबा हुआ) है। तब दुःखसे झुलसते हुए शरीरसे बह उठ खडा हुआ। यदि स्वप्नमे उसको राज्य मिल गया तो वह भी पुन-पुन. मिलना कैसे सम्भव है? इसी-प्रकार यदि मैं इस मनुष्यजन्मसे गिर गया, तो नरकदु खोमे श्रित होकर रहना होगा ॥ १३ ॥

[ १४ ]

तब तत्कर कहने लगा—सुनो! बहुत-से चेटोसे युक्त नटोका एक वेडा(दल) वर्षा ऋतुमें (आजीविकाके) कार्यसे नगरमे आया, और रातमे नाचनेके लिए राजाके पास गया। अपने आवासमें रक्षाके लिए उन्होंने एक रक्षक छोड दिया। वोड नामका एक जरा जोर्ण (अतिवृद्ध) नट वृक्षोसे, सकीर्ण आरामके पास बैठ गया। तो उसी समय आभरणोसे लाडित (युक्त) कोई बहू सासकी निर्भर्त्सना पाकर, नगरसे आकर उसी वृक्षके नीचे ठहरी, और मरनेके उपाय स्वल्प

१. क घ ड<sup>१</sup>इ। १०. क घ<sup>२</sup>याड। ११. ख ग बिट्ठि। १२. ख ग<sup>३</sup>सिरिपि<sup>४</sup>। १३. क ड पिट्ठिवि।  
 १४. ख ग<sup>५</sup>उ। १५. क<sup>६</sup>इ। १६. क घ ड<sup>७</sup>इहि। १७. घ<sup>८</sup>वहंतु। १८. क ख ग डुक्कु।

[ १४ ] १ घमणइ। २ कड वेडउ। ३. क घ ड कम्मि। ४. ख ग घ नर<sup>५</sup>। ५. ख ग घ ड<sup>६</sup>हि।  
 ६. क घ ड<sup>७</sup>सड। ७. ख ग नियड। ८. क ड<sup>८</sup>सड। ९. ख ग नर। १०. क घ ड<sup>९</sup>णउ, ख ग  
 नर। ११. क घ ड<sup>१०</sup>याड। १२. क ड जिम्भ<sup>११</sup>। १३. क घ ड आडवि। १४. ख ग तावे, घ ताए।  
 १५. घ सत्था। १६. क ड<sup>१२</sup>पाय। १७. घ ड लायउ, ख ग लायय।

चितइ वोडु मुयह<sup>१८</sup> १० महु जायउ  
 मरहु न जाणइ<sup>१९</sup> सई उवएसमि  
 पुच्छि<sup>२०</sup> भणइ<sup>२१</sup> भाय उहेसहि<sup>२२</sup>  
 पासगाहु तो नडिण कडिजइ<sup>२३</sup>  
 तहि सई चडवि<sup>२४</sup> पडेण निवद्धउ  
 सुंदरि<sup>२५</sup> मुरउ एम<sup>२६</sup> डालिजइ<sup>२७</sup>  
 इय तहो दक्खालतहो वेणं  
 निवडिउ<sup>२८</sup> पासगंठि गलि गाढिउ  
 तो तिय पेक्खवि<sup>२९</sup> वोडु<sup>३०</sup> मरंतउ  
 घत्ता—इय कज्जु असिद्धउ<sup>३१</sup> अहिलसई<sup>३२</sup> परिणामे न जाणइ<sup>३३</sup> तासु गइ<sup>३४</sup> । १५  
 जो सो नडवोडहो अणुहरइ<sup>३५</sup> नियवुद्धिण सोक्खचत्तु मरइ<sup>३६</sup> ॥१४॥

कंचणलाहु वडइहो आयउ ।  
 मुइयहि पुणु<sup>३७</sup> आहरणइ<sup>३८</sup> लेसमि<sup>३९</sup> ।  
 सुहमिच्चुणु<sup>४०</sup> मई<sup>४१</sup> जमउरि<sup>४२</sup> पेसहि<sup>४३</sup> ।  
 आणवि मुरउ रुक्खतलि दिजइ<sup>४४</sup> ।  
 साहहि पासु पुणु वि गले वद्धउ । १०  
 गाढबंधपासेण मरिजइ<sup>४५</sup> ।  
 मदलु<sup>४६</sup> ढलिउ दइवसंजोए ।  
 चडफडंतु जमदूयहि<sup>४७</sup> काठिउ<sup>४८</sup> ।  
 नद्धिय सभय करेवि अवरत्तउ<sup>४९</sup> ।  
 परिणामे न जाणइ<sup>५०</sup> तासु गइ<sup>५१</sup> । १५  
 नियवुद्धिण सोक्खचत्तु मरइ<sup>५२</sup> ॥१४॥

[ १५ ]

वोडइ जंबूकुमारु न जाणसि  
 लोयवालु<sup>३</sup> तहि<sup>४</sup> रज्जुवरंधर<sup>५</sup>  
 विगाह<sup>६</sup> लगा पंच संवच्छर<sup>७</sup>

पुरि नामेण अस्थि बाणारसि<sup>८</sup> ।  
 सत्तु जिणेवइ गड देसंतउ<sup>९</sup> ।  
 पच्छग तासु महिसि णं अच्छर<sup>१०</sup> ।

पाशको गलेमे लगाया । वोड सोचने लगा—इसके मरनेसे मुझे (यही) वंटे-वैटे ही स्वर्णलाभ हो गया । यह मरना नहीं जानती, अतः मैं स्वयं इसको शिक्षा देता हूँ, मरजाने पर आभरण ले लूँगा । पूछी जानेपर उसने कहा—भाई मुझे सुखमृत्युसे यमपुरी भेज दो । तो नटने पागका फदा बनाया और वृक्षके नीचे मुरज लाकर रखा । फिर वहाँ उसके ऊपर स्वयं चढ़कर एक वस्त्रसे शाखासे बाँधकर फिर पाशको गलेमे बाँध लिया । और बोला—हे सुंदरी ! मुरजको इसतरह लूटका देना चाहिये, और दूढ़ पाशबंधसे मरना चाहिये । इसप्रकार वेगसे उसको दिखलाते हुए, दैवसंयोगसे मर्दल लूटक गया । सुदृढ पाणग्रंथी गलेमे पड़ गई और वह तड़फड़ाता हुआ यमदूतोके द्वारा खींच लिया गया । स्त्री वोडको मरते देखकर अनुताप करके भयभीत होकर भाग गयी । इसप्रकार जो असिद्ध कार्यकी अभिलाषा करता है, और परिणाममे उसकी गति नहीं जानते हुए, उस वोड नामक नटका अनुसरण करता है, वह अपनी ही बुद्धिसे सुखरहित होकर ( अर्थात् दुःखपूर्वक ) मरता है ॥१४॥

[ १५ ]

तब जंबू कुमारने कहा—तुम नहीं जानते । वाराणसी नामकी एक नगरी है । वहाँका राज्यकी धुराकी धारण करनेवाला लोकपाल नामका राजा शत्रुको जीतनेके लिए देशांतरको गया । युद्धमे पाँच वर्ष लग गये । पीछे उसकी अप्सरा जैसी विभ्रमा नामकी महादेवी जिसे

१८ क ड भुजहि, खं हि । १९ ख ग मुहु । २० क व ड ण्ड । २१ ख ग ण्ड ले, घ र ण लएसमि । २२. क ड पु । २३ क घ ड भणिउ । २४ क घ ण्सहि । २५. क घ ड णिमिच्चुइ । २६. क मड, व मए । २७ घ णुरि । २८ क ख ग घ ण्हि । २९ क ख ग ड कहि । ३० क ड । ३१ क ख ड चडवि । ३२ क ड एम मु । ३३ ख ग टालि । ३४ क ड मदलु । ३५ घ निवि । ३६ क ड थंड । ३७ क णं । ३८ क घ ड पेक्खवि । ३९ क ड वोड । ४० क ड त्तउं । ४१ क ड ढडं । ४२ क घ गड ।

[ १५ ] १. क ड वारा । २ क ड वाल । ३ क ड तहि । ४. ख ग रज्जु ।

- विचम नाम निलग्र जा सुकी नरजोए<sup>१</sup> त्रिणु मयणल्लुकी<sup>१</sup> ।  
 ५ चडेवि तधंगे अलज्जिर डोल्लिय एकग्र जरदासिए<sup>१</sup> सहुं बोल्लिय ।  
 हले दोहुणहसास<sup>१</sup> अवलोयहि<sup>१</sup> सुसिउ अहरु कं पंतउ जोयहि<sup>१०</sup> ।  
 पेक्खहि<sup>११</sup> हियवउ कल्लविमुल्लउ<sup>१२</sup> रयजलसित्तु<sup>१३</sup> जंघजुवल्लउ<sup>१३</sup> ।  
 आणि जुवाणु को वि गलि लावहि<sup>१४</sup> संदीवउ वम्महु<sup>१५</sup> चल्हावहि<sup>१६</sup> ।  
 वेसिणि भणइ<sup>१७</sup> चविउ किं दीणग्र<sup>१८</sup> काई असज्जु<sup>१९</sup> मई मि<sup>२०</sup> साहीणग्र<sup>२१</sup> ।  
 १० घत्ता—इय रहसकज्जु दोहि मि तियहु<sup>२२</sup> धवलहरउवरि बोल्लंतियहु<sup>२३</sup> ।  
 रच्छाइ जंतु जणजाणियहे<sup>२४</sup> दिट्ठीवहे<sup>२५</sup> निवडिउ राणियहे<sup>२६</sup> ।

[ १६ ]

- विडयडवच्छु<sup>१</sup> सुकुमारसुओ चंगाहिहाणु सुणारसुओ<sup>१</sup> ।  
 सालत्तयनहमणिपयकमलु उप्पुछियनिद्धजंघजुयल्लु<sup>१</sup> ।  
 घोलंतचल-सोहणपडउ<sup>१</sup> पच्छललंवाविचकच्छडउ<sup>१</sup> ।  
 विप्फुरियल्लुरियआयत्तकडि कण्णंतस्सित्त-वालदलधडि<sup>१</sup> ।  
 ५ नवकुसुमसंच<sup>१</sup> गग्गिणु<sup>१</sup> पवर खंधंते लुलावियकेसभरु ।

घर छोड़ दिया था, पुरुष सयोगके बिना कामवासनासे जल उठे, और प्रासादपर चढ़कर निर्लज्ज भावसे डोलने लगी, तथा एक बूढ़ी दासीसे बोली—सखी ! मेरे दीर्घ व उष्ण ह्वासो को देखो, और कांपते हुए सुखे अधरोको देखो । और भी कार्यको भूले हुए अर्थात् कृत्याकृत्य द्विवेकानुस्य, मेरे इस (सूने) हृदयको देखो । मेरी दोनों जांघें रज-जलसे सिंच गई हैं । किसी जवानको लाकर गले लगाओ, और संदीप्त मदनको बुझाओ । तब वह कुलटा दासी कहने लगी—इस प्रकार दीनतासे क्यों कहती हो ? मेरे स्वाधीन आपके आधीन रहते हुए (आपके लिए) क्या असाध्य है ? प्रासादके ऊपर दोनों स्त्रियोंके इस गुप्तकार्यकी चर्चा करते समय जन-मान्य(प्रख्यात) रानीके दृष्टिपथमें मार्गसे आता हुआ—॥१५॥

[ १६ ]

—अतिविस्तीर्ण वक्षस्थल और सुकुमार भुजाओवाला चग नामका सुनार पुत्र पडा, जिसके चरण कमलोंकी नखमणियोंमें आलक्तक(अलता) लगा हुआ था । उसकी जबाएँ स्निग्ध और मसृण थी, व केश लहरा रहे थे । वह एक सुंदर पट धारण किये हुए था, पीछे लम्बा लटकता हुआ कछोट्टा पहने था, और उसकी कमरमें एक चमकती हुई खुरिका लगी थी । अपने कानोंमें वह तालपत्र निमित्त कुडल पहने था । नये पुष्पोंके संचय(गुच्छे अथवा माला)से सजाया हुआ

५ ख ग जोए । ६ ख ग ल्लुक्की । ७ क ड दासिय । ८ क ल सासु, घ न्हसास । ९ घ वहि । १०. क हि, ख ग जोवहि । ११ ख ग हि । १२. ख ग घ रइजल्लु मिन्न । १३ ख ग घ जुयल्लु । १४. ख ग हि, घ लायहि । १५ ख ग वम्महु । १६. क वहि । १७. क ल इ, घ भणिउ । १८ क व ड इ । १९. ग ल्लु । २० क ड मइ मि, ख ग मइ वि । २१. क व ल णइ । २२ क ड यहु, घ यही । २३. क ख ग ड यही । २४ क ड पहि ।

[ १६ ] १. क व ड वच्छ । २ घ सुवार । ३. क ल जमलु । ४ सोसण, ख ग घ ड णेसण । ५ ख ग पच्छड । ६ ख ग घ कन्नत । ७. ख ग वाल । ८ ख ग कुसम । ९. क ड ण ।

संचपियवड्डुलकुंचधरु  
सो नियवि कहिउ सण्णंतियए<sup>१२</sup>  
आणिज्जइ कि पि म खेउ करु  
संकेयवि<sup>१३</sup> छुडु छुडु आणियउ<sup>१४</sup>  
छुडु छुडु महएवि रायभरिय<sup>१५</sup>  
घत्ता—ता<sup>१६</sup> परिणलोयसहायसहुं धयचिघछत्तपच्छइयनहुं<sup>१७</sup> । १०  
उप्फोडियदाडिय<sup>१८</sup>—वामकरु<sup>१९</sup> ।  
पडिहाइ जुवाणु<sup>२०</sup> एहु हियए ।  
गय दूई जहि सो<sup>२१</sup> सुइयवरु ।  
छुडु छुडु दिट्ठिप्र परिणायियउ<sup>२२</sup> ।  
छुडु छुडु नियसेज्जहि<sup>२३</sup> वइसरिय<sup>२४</sup> । १०  
वरतुरययट्टसंवाहियउ संपत्तु राउ उम्माहियउ ॥१६॥

[ १७ ]

पसरियथानंतरि<sup>१</sup> मग्गु रुद्धु  
अह आउ राउ महएविगेहु  
थोवंतरि समप्र निरोहसमणु  
उत्तालियाप्र भयजणियभंगु  
निच्चं चिय माणुसपोसुं तासु  
छम्मास जाम तहि<sup>२</sup> वसइ चंगु  
देविप्र<sup>३</sup> पच्छाहरे चंगु छुद्धु ।  
वहुवरिसइ<sup>४</sup> रुढनवल्लनेहु ।  
जाणवि<sup>५</sup> पच्छाहरे रायगमणु ।  
वल्लिउ पुरीसकूवम्मि चंगु ।  
पेसइ<sup>६</sup> जिह होइ न जीवनासु । ४  
दुग्गंधविट्ठु<sup>७</sup> हुउ पंडुरंग ।

उसका केशपादा कंधोके नीचे तक लहरा रहा था । वह अच्छी तरहसे चाँपी हुई बड़ी-बड़ी मूँछे धारण किये हुए था, उसकी दाढ़ी खूब सुंदरतासे सँवारी हुई थी, और हाथ बहुत मनो-हर थे । उसको देखकर इशारा करते हुए रानीने कहा—यह जवान हृदयको भाता है, इसको लाओ । जरा भी विलंब मत करो । दूती वहाँ गई, जहाँ वह श्रेष्ठ सुभग था । तदनंतर उसको सकेत करके ले आई । फिर दृष्टिसे पहचान हुई (आँखोंसे आँखें मिली) और फिर झट-पट रागभरी महादेवीने उसे अपनी घैयापर बैठाया । तभी श्रेष्ठ अश्वोंके समूहपर सवार अपने परिजन लोगों व सहायकोंके साथ, ध्वजा, छत्र और पताकाओंसे आकाशको आच्छादित करता हुआ बड़े उमाह(उत्साह)से युक्त राजा आ गया ॥१६॥

[ १७ ]

(उस समय) राजपरिवारके स्थानांतर तक फैल जानेपर अर्थात् राजमहलके विलकुल निकट आनेपर मार्ग अवरुद्ध हो गया और महादेवीने चंगको पीछेके घरमे डाल दिया । तब तक इधर बहुत वर्षोंसे अभिनव-वर्द्धित स्नेहसे भरा हुआ राजा महादेवीके निवासको आया । थोड़ी देर बाद श्रम निवारणके लिए पीछेके घरमे राजाका आगमन जानकर उतावली और भयसे पराभूत रानीने चंगको पुरीषकूपमे डाल दिया, और नित्यप्रति उसके लिए मनुष्य(शरीर) के पोषण भरके लिए इतना भोजन देती रही, जिससे उसका जीवनाश अर्थात् मरण न हो । जब छह मास तक चंग वहाँ रहा, ( तो ) उसका शरीर दुर्गंधसे आविष्ट और पांडुरवर्ण हो

१० क ड उप्फोडियं, घ उप्फेरियं । ११. क कामं । १२. ख ग यइं, घ सच्चंतियइं । १३ क ड ण । १४. क ड सा । १५ घ एवि । १६. घ ड यउं । १७. प्रतियोमे यउं । १८. प्रतियोमे भरिउ । १९. ख ग ञ्जहे, घ ञ्जए । २० क घ ड सरिउ, ख ग वइसारियउ । २१ घ परिमियं । २२. क ड धयछत्तचिवं ; ए ग नहुं ।

[ १७ ] १ ख ग घ तरु । २ ख ग य । ३. क सइं, ख ग सहु, ड सड । ४ क घ ड जाणिवि । ५. क ड याडं । ६. ख ग तोस । ७ क ड पो । ८. क ड तहि । ९ क ड दुग्गंधु विट्ठु ।

- अह<sup>१०</sup> कम्मकरेहिं विहच्छभूउ<sup>१०</sup>  
<sup>११</sup>विट्ठंतरधदारिण अगाहे  
 चंगो वि विणिग्गउ वाहमिलिउ  
 १० पुच्छिउ तुहुं होसि न होसि चंगु  
 अक्खउ हउ रुवासत्तिएहिं  
 निउ दिवसेहिं<sup>१६</sup> घरु सुमरंतु मुणिवि  
 घरु<sup>१६</sup> जाणवि दव्वहिं सुरहिएहिं<sup>१०</sup>  
 बहुवासरेहिं<sup>२२</sup> संजाउ<sup>३३</sup> चंगु  
 १५ कालम्मि कम्मि भूओ वि राउ  
 पुणुरुत्तु<sup>२३</sup> दिट्ठ वाहरिउ<sup>२३</sup> चंगु  
 सुहयत्तणफलु अणुहविउ<sup>२३</sup> जं जि  
 पुण्णेहिं<sup>३३</sup> छुट्टु जइ एकवार  
 घत्ता—तिज्जंच-नरयगइ अणुहवेवि मणुयत्तु लद्धु जइ भवि<sup>३३</sup> भमेवि ।  
 २० रइसुहलवकारणि मूढमणु को साम<sup>३३</sup> पडइ पुणु नरइ<sup>३३</sup> जणु ॥१७॥

गया । इसके बाद जब कर्मकरो ( मेहतरो ) के द्वारा उस वीभत्स हुए अशुचि कृपका जलसे शोधन किया जाने लगा तब विष्टाके भीतर अध(गुप्त)द्वारसे वह अमेध गगाके प्रवाहमे पड़ा । चंग भी उस (अशुचि)प्रवाहके साथ मिला हुआ निकल गया । सुरसरिके तीरपर लोगोने उसे पहचाना, और पूछा—हो न हो तू चंग है, तुम्हारा शरीर दुर्गंध युक्त और पाडुरवर्ण कैसे हो गया ? उसने कहा—मैं ( मेरे ) रूपमे आसक्त नागसुंदरियो-द्वारा पाताल लोकमे ले जाया गया । बहुत दिनोपर मुझे घरका स्मरण करते जानकर उन्होने रोपसे मुझे विवर्ण ( कुरूप ) करके छोड़ दिया । घर जाकर देवताओंके द्वारा लाये गये अर्थात् दिव्य द्रव्यो, सुरभित जल सेचन व सुरभित तेलोके—( प्रयोग- )द्वारा वह चंग बहुत दिनो बाद पुनः कंचन-वर्ण और अभिनव अंग अर्थात् नवीन तारुण्य एवं सौंदर्यसे भरपूर अगोवाला हो गया । किसी समय पुनः राजा गया, और कुछ दिन वीतनेपर रावीको पुनः बिरह उत्पन्न हुआ । पुनः वैसेके वैसे सुंदर चंगको देखकर उसे तुलाया, तो दुःखसे कापते हुए गात्रसे चंग उसकी सखीसे यू बोला—  
 मैने सुभगत्व ( सुंदरता ) का जो फल अनुभव किया ( उससे ) आज भी शरीरकी वह दुर्गंध पूर्णतः नही मिटी । पुण्योसे यदि कोई एक बार ( संकटसे ) छूट गया, तो क्या वह बार-बार ( संकटमे पड़ने ) जाता है ? तिर्यंच और नरकगतिका अनुभव करके यदि भवभ्रमण करके मनुष्यत्व प्राप्त हुआ तो, हे मामा ! रचमात्र रतिसुखके लिए कौन मूढमति पुरुष पुनः नरकमे पड़े ॥ १७ ॥

१० क डं करहिं वी<sup>०</sup> । ११ क विट्ठितं, ग वट्ट, घ विच्छिन्नं । १२ क व डं हिं । १३ क काइ । १४ ख गं सति । १५ क ख ग ड पय्यं । १६ क व डं सहिं । १७ कं छु । १८ व कुणवि । १९ क डं घरि । २० डं एहि । २१ कं हिं । २२ क वट्ट वासं । २३ ख गं यं । २४ ख गं वणु पुणुणवंगु; घ वट्ट पुणुं । २५ घ पुणुं । २६ क ड वाहरउ । २७ क ड बोलाइ वि । २८. प्रतियोमें यं । २९ क डं भविउ । ३० क ड अज्जु वि । ३१. घं डं । ३२ ख गं हि, घ पुत्तेहि । ३३. क डं सुवि । ३४. क डं णरइ पुणु पडइ ।

[ १८ ]

१तो नवर-नयमगपडिवोहदित्तेण नीसारसंसारवड्ढायचित्तेण ।  
 अणवरयपसरंतरोमंचसंचेण आसन्नभग्गेण<sup>१</sup> वंचियपवंचेण ।  
 कुरुविसयनाथरपुररायउत्तेण विज्जुच्चरनामेण<sup>२</sup> जुत्तीपत्तेण ।  
 पोमाइओ जंबुसामीमहाभन्वु मङ्गण-सुयणाण<sup>३</sup> परिमुणिय-छ-द्वु ।  
 तुहु परमगुणखाणि तुहु धम्मतरुकंदु अम्हाण कडरवगाण<sup>४</sup> तुम चंदु । ५  
 इय धुणिवि पुणु कहिउ तं तकरायारु अप्पणव<sup>५</sup> नीसेसु वासहरपइसार<sup>६</sup> ।  
 एत्थंतरे गयणमयरहरे<sup>७</sup> पवहंति निसिनाव दिवसयरदोत्तहि<sup>८</sup> अरहंति<sup>९</sup> ।  
 संघट्टविहडंतकट्ठागयाफुट्ट पुणु किरणसंताणगुणवंधु<sup>१०</sup> बहु तुहु<sup>११</sup> ।  
 निव्वुडु<sup>१२</sup> सियवडु<sup>१३</sup> वे ससिलंछणो गलिडे<sup>१४</sup> सडणयणवणिवग्गु साकंदु कलयलिउ ।  
 एत्तिहि<sup>१५</sup> तयाहारु रुइतारु तारोहु वीसेइ मज्जंतु माणिक्कसंदोहु । १०  
 घत्ता—चंधुक्कुमुमसंकासछवि उययाचले<sup>१६</sup> छज्जइ उयउ<sup>१७</sup> रवि ।  
 विज्जुचरविमुक्कहो भवघरहो<sup>१८</sup> उड्डिउ<sup>१९</sup> भायणु व रायभरहो<sup>२०</sup> ॥१८॥

[ १८ ]

तो फिर शुद्ध नीतिमागसे प्रतिबोधको प्राप्त, निःसार संसारसे वैराग्य(विरह)-  
 बित्त, अनवरत प्रसरणशील रोमांच-समूहसे युक्त, आसन्न भव्य और ( संसारके माया-मोहके )  
 प्रपंचसे रहित तथा कुलदेशमें नागरपुर ( हस्तिनागपुर ) के विद्युच्चर नामके उस राजपुत्रने  
 युक्तिप्रयोग-द्वारा (अर्थात् युक्तिपूर्वक) महाभय जंबूस्वामीकी, जिन्होंने भतिज्ञान व श्रुतज्ञान-  
 पूर्वक छह द्रव्योंको जान लिया था, इसप्रकार स्तुति की—तू परमगुणोंकी खान है, धर्मवृक्षका  
 मूल है; और हम-जैसे व्यक्तियोंकी कुमुदबनोके लिए तू ही चंद्रमा है। इसप्रकार स्तुति  
 करके उसने अपना वह तस्कराचार ( चोरवृत्ति ) और वासगृहमें प्रवेश संबंधी निःशेष वृत्त  
 कहा। इसके अनंतर गगनरूपी मकरगृहमें प्रवहमान रात्रिरूपी नाव सूर्यरूपी दोस्तटिका-  
 के कारण अवस्थितिको प्राप्त न कर पाती हुई संघर्षमें विषटित होकर फूट गयी और उधर  
 जिसका किरणसंततिरूपी रज्जुबंध टूट गया है, ऐसे (रात्रिरूपी नौकाके) डूबते हुए स्वेतपट  
 (पाल)के समान चंद्रमा भी गलित हो गया (डूब गया)। (इसप्रकार मानो रात्रिरूपी नावके  
 खंड-खंड होकर टूटनेसे) शकुनजन(पक्षी समूह)रूपी वणिक्बंध क्रंदन करने लगा, और इधर  
 उसका आधारभूत सुंदर व विशाल तारासमूहरूपी माणिक्यसमूह भी डूबता हुआ दिखाई देने  
 लगा। बंधूक पुष्पके समान छविवाला सूर्य उदयाचलपर उदित होकर ऐसा शोभायमान हुआ,  
 मानो संसाररूपी गृहसे मुक्त विद्युच्चरका राग(मोह, घट पक्षमें लालरंग)से भरा हुआ भाजन  
 ही उधरकर सूर्यके रूपमें आकाशमें जा लगा हो ॥१८॥

[ १८ ] १. प्रतियोगे इस पक्तिके पूर्व चरितमें आये अठारह कथानकोके नाम इस प्रकार दिये गये  
 हैं—हालिय-वायस-वेयर-कड-सखिणि-ममर-विसहर-सियाल-उंट-वणि-असड-रयण-जंबुय (व कोल्हय) कव्वाडिय-  
 नबो-चगो—एताणि कथानकानि षोडश, राजपुरोहितो भधुलेहलवनं च इति कथानकद्वयमध्याहार्यं, क ड में  
 'अह कूप सिव-माधवधूर्तेति कथानकमध्याहार्यं', २. क ख ग छ आसणं । ३. ख ग च्चरे नाम । ४. ख ग  
 घ सुडं । ५. ख ग कयरव । ६. ख ग भणवि । ७. क घ छ णउ । ८. ख ग पयसार । ९. ख घ हूर ।  
 १०. क ड तडिहि, घ तडिहि । ११ घ अहरति । १२. क ड दिहवुट्ट । १३ ख ग सियचडु, ड सिडवडु व ।  
 १४ क उं । १५ घ हि । १६ क छ उययाचलि, घ यलि । १७. क घ ल उड्ड । १८ क ग घ ड  
 घरहो । १९. ख ग य । २० ख ग हरहो ।



[ १६ ]

	ताम धरपंगणे	धुसिणचंदणधणे	पडहपड्डु <sup>१</sup> छालियं ।
	करड-करडंतयं	टिविल <sup>२</sup> -उंटंतयं ।	तूरमप्फालियं ।
	झल्लरीरामयं	मडलुदामयं <sup>३</sup>	तडियसडिकाहलं ।
	डकडमडकियं	रंजरुंजंकियं	संखकोलाहलं ।
५	सुणिवि खय <sup>४</sup> -रइसुहं	जिणवईतणुरुहं	तुरय-करिसंगओ ।
	नेहसंवाहिओ	रायरायाहिओ	सेणिओ आगओ <sup>५</sup> ।
	तेण मणिजुत्तयं	कडय-कडिसुत्तयं	सेहरं सिरहियं ।
	समवसिय वत्थेण <sup>६</sup>	अप्पणो <sup>७</sup> हत्थेणं	भूसणं परिहियं ।
	गाढ-नरजाणए <sup>८</sup>	दुक्क जंपाणए	पुत्तदुहकणविया ।
१०	वहुड मेललतिणा	सिद्धिवहुडसिणा	भायपिड पणविया ।
	चड्डिवि संचल्लिओ	वंधुजण <sup>९</sup> सल्लिओ ।	लग्गओ मग्गए ।
	खुहिय जणतायरो <sup>१०</sup>	धाविओ <sup>११</sup> सायरो	संठिओ अग्गए ।
	धुयधयाडंबरं <sup>१२</sup>	छत्तछन्नंवरं <sup>१३</sup>	पासजणनंठणी ।
	वहल्लरहसंठिया <sup>१४</sup>	निवड्ढलअरिया <sup>१५</sup>	वट्टए संठणी ।

[ १६ ]

तब घने केजर और चंदनसे सुगंधित वर-आगनमें पट्ट पट्ट ललितस्वरसे बजाया गया । करडवाद्य करड-करड ध्वनि करने लगा, टिविल-वाद्य ट ट करने लगा, तूरका आस्फालन किया गया, उद्दाम मर्दल सहित झल्लरी रमण कराने लगे (अर्थात् मनोरंजन करने लगे), काहल-वाद्य विधुत्के समान तड-तड, एवं डकका डमडक-डमडक करके बजने लगा । रंज नामक वाद्यने गूंज उत्पन्न कर दी और शंखोंने कोलाहल । जिनमतीके पुत्रके रतिसुख (अर्थात् स्त्री आदि विषयसुखको भोगनेकी आकांक्षा) को नष्ट हुआ जानकर, स्नेहसे संवाहित अर्थात् संचालित व प्रेरित होकर बोड़े, हाथी समेत राजाविराज श्रेणिक आया । उसने जंबू-स्वामीको मणिमय कड़ा और कटिसूत्र एवं शिरपर खोखर (मुकुट) पहनाये, और स्वयं अपने हाथसे उसे वस्त्र पहनाये और आभूषण धारण कराये । तब मनुष्यों-द्वारा ले जाये जानेवाले सुदृढ़ जपानकयान(पालकी)के उपस्थित किये जानेपर, वधुओको छोड़कर सिद्धिवधूमें अनु-रक्त हुए जंबूस्वामीने पुत्रके (वियोग)दुःखसे क्रंदन करते हुए माता-पिताको प्रणाम किया, और पालकीपर चढ़कर चल पड़ा । (इसपर) वधुजनोंके हृदय (दुःखसे) विध गये, और वे मार्गसे लग गये, अर्थात् मार्गमें खड़े हो गये । नागरजन ध्रुव हो गये, व सागरचंद्र (दुःखसे विह्वल होकर) दीड़ पड़ा, और मार्गमें आगे आकर खड़ा हो गया । ध्वजा पताकाएँ फहराने लगी, अवर छत्रोसे छा गया, और राजमार्ग दोनों ओर खड़े हुए लोगोको आनंद देनेवाले

[ १६ ] १. क ड पड्डु । २. क ड ति, र ग ल । ३. र ग घ मडलुदामियं । ४. र ग म ड । ५. क आयओ । ६. क ड वत्थय । ७. र ग ञे । ८. क ट हत्थिए । ९. ड णए । १०. क र ग ञणु । ११. क ड णरे, र ग घ ञणु । १२. घ वाड । १३. क र ग ड छत्तछण्ण । १४. क ट संठिया, घ वड्डिया । १५. क ड वड्डिया, घ वड्डिया ।

एम नंदनवर्णं फुल्लफुल्लदलवर्णं वंदिशुचंतओ<sup>१६</sup> ।  
 रुक्खसंपणयं<sup>१७</sup> मुणिगणाइणयं<sup>१८</sup> आसमं पत्तओ ।  
 घत्ता—मणुयामरसिरसेवियरयइ<sup>१९</sup> पणवि वि सुहम्ममुणिगुरुपयइ<sup>२०</sup> ।  
 विण्णविउ<sup>२१</sup> कडक्खियसिद्धिवहु किल्लउ पव्वज्जपसाउ पट्टु ॥१९॥

[ २० ]

विण्णायुग्गह गुरुणा सारे	किज्जइ दिक्खग्गहणु कुमारे ।
सीसहो <sup>२२</sup> कुसुममालं जं मेल्लिय	वम्महवाणपंति तं <sup>२३</sup> पेल्लिय ।
रणणफुरंतु <sup>२४</sup> मउडु जं छोडिउ	तं कंदप्पदप्पु णं मोडिउ ।
जं सिरं कारिउ वालुणाडणु	तं <sup>२५</sup> किउ मयरच्चिघनिद्धाडणु ।
हारुज्झिउ तिरहुं रेहइ <sup>२६</sup> गलु	को आयरइ विस्समुत्ताहलु <sup>२७</sup> ।
मुक्कउ मणिचामीयरकंकगु	विहरंतं <sup>२८</sup> नरजम्महो कंक्कणु ।
उत्तारि <sup>२९</sup> घल्लंति न मुडिउ	तणु-मणं <sup>३०</sup> त्रयणगुत्तिउ <sup>३१</sup> मुडिउ ।
छोडि वि विस्स-सपरियर <sup>३२</sup> सस्थी	मुक्कइ लोहिणि-वंधसमस्थी ।

बहुत-से रथोमे संस्थित राजसेनासे भरपूर हो गया । इस प्रकार बंदीजनों-द्वारा स्तुति किया जाता हुआ कुमार, नंदनवनमें फूलों, फलों एवं पत्रोंसे सघन वृक्षोंसे संपन्न तथा मुनिगणोंसे आकीर्ण (भरे हुए) आश्रमको प्राप्त हुआ । मनुष्यों व देवोंके शिर जिनकी (चरण) रजको लेते हैं, ऐसे मुनि सौधर्म नामक गुच्छे चरणोंको प्रणाम करके उसने विज्ञापना की—हे सिद्धिबधूको कटाक्ष (लक्ष्य) करनेवाले प्रभु (मेरे ऊपर) प्रव्रज्या-(दान)रूपी प्रसाद कीजिए ॥१९॥

[ २० ]

श्रेष्ठ गुच्छा अनुग्रह पाकर जंबूकुमारने दीक्षा ग्रहण की । सिरसे जो कुसुममालाको त्यागा, तो मानो कंदर्पकी बाणपंक्तिको ही फेंक दिया । रत्नोंसे चमकता हुआ मुकुट छोड़ा, तो मानो कंदर्पके दर्पको ही भग्न कर दिया । शिरपर-से बालोंको उखाड़ा तो मानो मकरध्वज-का निष्कासन कर दिया । हार त्याग देनेपर (सम्प्रदर्शन-ज्ञान-चारित्र्य रूप त्रिरत्नके समान) तीन रेखाओंसे-युक्त उसका गला स्वयमेव सुंदर लगने लगा, तो फिर वृत्तमुक्त अर्थात् आचरण-से रहित (= शुद्धाचरणके विपरीत), अतएव निष्फल, ऐसा हार धारण करनेरूप निरर्थक आचरण कौन करे ? मणिसुवर्णमय-कंकणको छोड़ा तो मानो उसने नरजन्म (अर्थात् संसारमें मनुष्यरूपमे जन्म) के लिए जलकण छोड़ दिये, अर्थात् जलांजलि दे दो । मुद्रिकाओंको तो उसने अवश्य उतारकर डाल दिया, परंतु वह तन, मन और वचन इस गुप्तित्रयसे मुद्रित हो गया । स्त्रियो सहित अपने क्षेत्र व परिकरको छोड़कर उसने (संसार या कर्म)बंधनमे समर्थ लोभरूपी लौह-शृंखलाको त्याग दिया । उसने (बाह्य)परिधानवस्त्रको तो त्याग दिया,

१६ क घ ढ युच्वं । १७ वं नय । १८ ख ग विणिं ।

[ २० ] १ क ख छं ह । २ ख ग कुसमं । ३ क लण । ४ ख ग फुरत । ५ ख ग नं । ६ ख ग किय । ७ ख ग हं । ८ क डं । ९ क चितं । १० क ड विरयत्तं । ११ क ड रवि । १२ क ड मणु । १३ ग भुत्तं । १४ ख ग यरि ।

- जं परिहाणच्चत्थुं<sup>१</sup> परिसेसिउं<sup>२</sup> वत्थुसरुवे चित्तु तं पेसिउ ।  
 १० पाणि जि पत्तु पविच्चु विसुद्धउ<sup>३</sup> भिक्खुसामभणभोवज्जुं<sup>४</sup> अविरुद्धउ ।  
 आसउ वासु निरासु पदिण्णउं<sup>५</sup> संथरुं<sup>६</sup> धरणिपीडुं<sup>७</sup> विस्थिण्णउं<sup>८</sup> ।  
 घत्ता—इय बाहिरत्थपरिहासं<sup>९</sup> किउ तं अंतरसुद्धिहं<sup>१०</sup> हेउं<sup>११</sup> थिउं<sup>१२</sup> ।  
 नोसंगवित्तिइंदियदवणुं<sup>१३</sup> निम्मूलहिं<sup>१४</sup> कम्मं<sup>१५</sup> संति कवणु ॥२०॥

[ २१ ]

- एत्तहं<sup>१</sup> वि पडिच्छियवयभरेण पणवज्जं<sup>२</sup> लइय विज्जुच्चरेण ।  
 अण्हिं<sup>३</sup> दिणे सुयणाणंदणासुं<sup>४</sup> संताण सहोयरसंदणासुं<sup>५</sup> ।  
 जिणसेणहो अपिपि ललियबाहु हुउ अरुहयासुं<sup>६</sup> निर्गयसाहु ।  
 जिणवइयप्प सुप्पहअज्जियासुं<sup>७</sup> तवचरणु लइउं<sup>८</sup> पासम्मि तासुं<sup>९</sup> ।  
 ५ पउमसरिपमुह बहुआउं<sup>१०</sup> जाउ पणवज्जिउं<sup>११</sup> अजिजउ जाउ ताउ ।  
 कइदिणेहिं<sup>१२</sup> सुहम्महो गणहरासु उप्पण्णउं<sup>१३</sup> केवलानाणु तासु ।  
 केवलिसहसंठिउं<sup>१४</sup> सुद्धगामि तउ चरइ महासुणिजंबुसामि ।  
 अणसणु पहिलारउ कम्मउहणु नियमियदिणेसु आहारचयणुं<sup>१५</sup> ।

पर वह वस्तुस्वरूप(के ज्ञानके रूप) मे उसके चित्तमे प्रविष्ट हो गया । हाथ ही उसके पवित्र एवं विशुद्ध पात्र बने, और भिक्षाभ्रमण ही उसका अविरुद्ध (निरतिचार) भोजन । निर्जन आश्रय (गृह, कुटीर) जो दूसरेका दिया हुआ हो, वह उसका आश्रय स्थान हुआ, और विस्तीर्ण पृथिवी-पृष्ठ ही उसका संस्तरण (बिछोना) बना । इसप्रकार किया हुआ बाह्यार्थोंका जो परिहार है, वह आभ्यंतर शुद्धिका हेतु होता है । निम्नगवृत्ति और ईद्रियोका दमन करनेवाला व्यक्ति कर्म-को निर्मूल करता है, इसमे क्या आति है ! ॥२०॥

[ २१ ]

इधर व्रतोंको स्वीकार करके विद्युच्चरने भी प्रव्रज्या ले ली । दूसरे दिन अपने वशजोको, अपने सहोदरके पुत्र जिनसेनको, जो कि स्वजनो (व सज्जनो) को आनंद देनेवाला था, अपित करके, सुंदर भुजाओवाला अरुहदास भी निर्ग्रथ साधु हो गया । जिनमतिने भी सुप्रभा आर्थिकाके पास तपश्चरण ले लिया । पद्मश्री प्रमुख जो बहुएँ थी, वे भी प्रव्रजित होकर आर्थिकाएँ हो गयी । कुछ दिनोंमे सौधर्म गणवरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । केवलीके साथ रहते हुए शुद्धावारी जंबूस्वामी इसप्रकार तप करने लगे । सर्वप्रथम कर्मोंको दहन करनेवाला

१५. ख ग वत्थ । १६ ख ग सविं । १७ ख ग भिक्खुसामभणं, कं भोजु, डं भोज्ज । १८ क घ टं ण्णउ । १९ घ सत्पह । २० क डं वोहु । २१ क ख ग ड विच्छिं, वं ण्णउ । २२ गं हार । २३ क ख ग लं हि, घं हि । २४ ख ग होउ, घ देउ । २५ क थिह । २६ ख ग घं दमणु । २७. क घ टं लहि । २८. क ड कम्मु ।

[ २१ ] १ क डं हि, घं हि । २ क ड पावज्ज । ३. क घ टं हि । ४ ख ग सयणां, घ णयणां । ५ ख ग सहोयरु णंदं । ६. ख ग यास । ७. क डं याहि । ८ क घ ट लयउ । ९ क ड ताहि । १० घं याउ । ११ क ड पाव । १२ क ड कइदिणहि । १३ वं तउ, डं ण्णउ । १४. ख ग घं सुहसंठिय । १५ ख ग गहणु ।

अणुदिद्वयभिक्ष<sup>१६</sup> फलाणुमेउ<sup>१७</sup> संजमझाणागमसुद्धिहेउ<sup>१८</sup> ।  
 वत्ता—अवमोयर एकगासु पढमु दिणि दिणि एकोत्तरकवलकमु । १०  
 वत्तीस जाम पुणरवि सरइ एकेकउ जा एकु जि ह्वइ<sup>१९</sup> ॥२१॥

[ २२ ]

इय तवेण मुणिमग्गे<sup>२०</sup> वलग्गाइ<sup>२१</sup> दंसणनाणसमाहिहि<sup>२२</sup> जग्गाइ ।  
 तइयउ नवर वित्तिपरिसंखउ एक्कपमुहवरनियमियभिक्षउ ।  
 बहुसंकप्पचित्तअवहारणु आसापासविणासण<sup>२३</sup> कारणु ।  
 आसानाम नरहो<sup>२४</sup> दुक्खायर परमनिरासवित्ति सुहसायर ।  
 तउ चउत्थु<sup>२५</sup> रसचाउ चरिउजइ दिदपंवेदियदप्पु हरिउजइ । ५  
 पंचमु पुणु विवित्तिसिज्जासणु सुण्णागारुज्जाणनिवासणु ।  
 जंतुपीडविरहिउ<sup>२६</sup> वयविद्धिहि कारणु ज्ञाणजुयलनयसिद्धिहि<sup>२७</sup> ।  
 छट्टउ<sup>२८</sup> कायकिलेसु महातउ जायइ<sup>२९</sup> जेण परीसहभयजउ ।  
 जो किर होइ जहिच्छहो<sup>३०</sup> दूसहु मुणिणा सो सोदंथु<sup>३१</sup> परीसहु<sup>३२</sup> ।

अनगन (नामक तप) है, जिसमें नियमित दिनों(अष्टमी चतुर्दशी आदि)में आहार त्याग किया जाता है, अपने उद्देश्यसे न बनायी हुई दीक्षा ली जाती है, एवं जिसका फल अनुमान प्रत्यक्ष है कि वह संयम, ध्यान व ज्ञान-शुद्धिका हेतु होता है ।

अवमोदयमें पहले दिन एक ग्रास, और फिर प्रतिदिन क्रमशः एक-एक अधिक करते हुए जब वत्तीस हो जावे, तो फिर एक-एक करके ग्रासोंको घटाया जाता है, जबतक कि पुनः एक ग्रास हो जावे ॥२१॥

[ २२ ]

इसप्रकारके तपसे भूनि भागमें लगे हुए वे जंबूद्वामी दर्जन, ज्ञान और समाविसे जागते थे । इसके अनंतर तीसरे वृत्ति-परिसंख्यान नामक तपमें एक(दो) आदि चरो(की संख्या)को निश्चित करके भिक्षा की जाती है । यह (तप) बहु-संकल्पी चित्तका निरोध करनेवाला और आशा-पाशके विनाशका कारण है । 'आशा' यह नाम ही मनुष्यके दुःखोंका आकर है, और निराशा वृत्ति अर्थात् सर्वथा निष्काम भावना मुखका सागर है । चौथा रसत्याग(नामक)तप किया जाता है, जिससे प्रवल पंचेंद्रियोंके दर्पका अपहरण होता है । पांचवां विविक्त-गय्यासन (नामक) तप शून्यधर उद्यान आदिमें निवास करना है । जन्तु पीड़ासे रहित होनेसे यह तप ब्रतोंकी वृद्धि एवं ध्यान-युगल(धर्म व शुक्ल)रूपो पर्वतकी सिद्धि (आरोहण) का कारण है । छठा काय-क्लेश नामक महातप है, जिससे परोपहोके भयका विजय हो जाता है । स्वेच्छाचारीके लिए

१६ क 'वित्तिय दिट्ठ', ख ग 'वेवित्तिय दिट्ठि', ब 'दिट्ठिय' । १७. ब 'मोउ' । १८. ब 'सिद्धिहेउ' । १९ ब हरइ ।

[ २२ ] १ ख 'मग्ग', ग 'लग्ग' । २. क ख ग ब 'गहं' । ३. ख ग 'हिहि' । ४. क ड 'विणासउ' । ५. ख ग 'ह' । ६. ख ग सहसायर । ७. ख ग चउथउ । ८ ब मुग्गा' । ९. ख ग 'पीडविरहियउ' । १० प्रतियोगे 'वयविद्धिहि कारणु ज्ञाणजुयल नयसिद्धिहि' । ११. ख छट्टउ । १२ ख ग ब 'इ' । १३. क ड जडच्छहि, ख ग जइ' । १४ ख ग 'ज्व' । १५ क 'सहुं' ।

१० नियमविसेसैं जो सई किजई<sup>१</sup> कायकिलेसु एम<sup>२</sup> सो गिजई<sup>३</sup> ।  
 घत्ता—इय छप्यारु बाहिरस तस बहिरसु बि आयहो भणिस<sup>४</sup> कउ<sup>५</sup> ।  
 बहिदन्वावेकसहो तणस<sup>६</sup> गुण अणु वि जं परपच्चकु पुणु ॥२२॥

[ २३ ]

अन्भंतरु पमायपरिहरणउ<sup>७</sup> पायच्छित्तु चरणु भवतरणउ<sup>८</sup> ।  
 पुज्जरिहि<sup>९</sup> जं आयरु<sup>१०</sup> किजई<sup>११</sup> नयपालणु तं विणउ भणिजई<sup>१२</sup> ।  
 तणुचेट्ठ<sup>१३</sup> अहवा देविणु धणु विज्जावच्चु भणिउ तमनासणु<sup>१४</sup> ।  
 नाणन्मासे<sup>१५</sup> अलसु जं मुच्चई<sup>१६</sup> निम्मलु तं सञ्जाउ पवुच्चई<sup>१७</sup> ।  
 ५ अप्पणत्तु संकप्पु<sup>१८</sup> न मण्णइ<sup>१९</sup> तं बोसग्गु महातउ भण्णइ<sup>२०</sup> ।  
 परसंकप्पचित्तविणियत्तणु अप्पाण<sup>२१</sup> ल्लि अप्परुविमणु ।  
 सम्मण्णाणबोहिसंसिद्धउ<sup>२२</sup> तं परमत्थञ्जाणु<sup>२३</sup> निदिट्ठिउ ।  
 छन्विहु नाणबिसुद्धिहि<sup>२४</sup> दीसई<sup>२५</sup> अन्भंतरउ तेण तउ सीसई<sup>२६</sup> ।  
 एम महातउ गणहरसण्णिहु<sup>२७</sup> जंबूसामि चरइ बारहविहु<sup>२८</sup> ।

जो दुःसह होता है, मुनिके द्वारा वह परीषह सहन किया जाता चाहिए। नियम विशेषसे जो स्वयं किया जाता है (जैसे खड्गासनमें रहना, शीत, उष्ण व वर्षाको सहन करना आदि) उसीकी कायक्लेश(तप) कहा जाता है। इस तरह यह छहप्रकारका बाह्य तप है। इसका बाह्यत्व किस कारणसे कहा गया? क्योंकि इसकी गुणवत्ता बाह्यद्रव्यों(के त्यागादि)की अपेक्षासे है, और दूसरे यह पर-प्रत्यक्ष (दूसरे लोगको दिखाई देनेवाला) भी है ॥२२॥

[ २३ ]

प्रमादका अपहरण करनेवाला प्रायश्चित्त नामका आभ्यंतर आचार(तप) संसारसे पार उतरनेवाला है। पूजाहंनकोंका जो आदर किया जाता है, उस नीतिपालनको 'वित्तय' कहा जाता है। शरीर-चेष्टासे (शरीरसे सेवा करके), अथवा धन देकर जो वैयावृत्य किया जाता है, वह (मोहरूपी)अंधकारका नाश करनेवाला कहा गया है। ज्ञानके अभ्यासमें जो आलस्यको छोड़ा जाता है, अर्थात् आलस्य छोड़कर जो ज्ञानाभ्यास किया जाता है, उसे निर्मल स्वाध्याय कहा जाता है। जो (वेहादिकमें) अपनत्वका संकल्प नहीं करना है, उसे व्युत्सर्ग (नामक) महातप कहते हैं। मनकी उस अवस्थाको जबकि वह परद्रव्य सर्वधी संकल्पसे अपने-को लौटाकर आत्मामें ही आत्म-रूप होकर, सम्प्रक्षान व (आत्म)बोधिते संश्लिष्ट हो जाता है, उसे परमार्थ ध्यान निर्दिष्ट किया गया है। यह छहप्रकारका तप ज्ञानकी विशुद्धिसे जाना जाता है, इसीसे इसे आभ्यंतर-तप कहा जाता है। इस प्रकार (सीधमें)गणवरके समान (अथवा समीप रहते हुए) ही जंबूस्वामी बारहप्रकारका महातप करने लगे।

१६. क ख ग ई। १७. ख ग सोहिज्जइ, घ साहिज्जइ। १८. क घ ङ उ। १९. क घ उं। २०. ल ग बहु। २१. ख ग ङ उ।

[ २३ ] १. प्रतियो ये णउ। २. ख ग घ णउ। ३. ख ग घ रिहि। ४. घ आयरु ज। ५. क ई। ६. ख ग घ ई। ७. क ङ उं। ८. क ङ तमु णां। ९. क घ ङ न्मायु, ख ग न्मास। १०. क घ संकेउ, ग में दोनो पाठ हैं। ११. क ख ग ङ उ, घ भवइ। १२. ख ग घ णो, ङ णि। १३. ख ग घ सम्मण्ण। १४. क ङ परमत्तु। १५. क घ ङ दिट्ठि, ख ग देहि। १६. क ई। १७. क ई, घ संश्लिष्ट। १८. क विहु।

घत्ता—अठारहवरिसह<sup>१९</sup> कालु<sup>२०</sup> गड माहहो सियसत्तमि पसरै तउ । १०  
बिउलइरिसिहरे<sup>२१</sup> विसुद्धगुणि<sup>२२</sup> निन्वाणु<sup>२३</sup> पत्तु सोहम्सु<sup>२४</sup> सुणि ॥२३॥

[ २४ ]

तत्थेव दिवसि पहरद्वमाणि  
पलिथंकासीणहो निम्ममासु  
गय खयहो विलीणउ<sup>१</sup> मोहसेसु  
अत्थवणपवत्तिउ अंतराउ  
उत्तण्णउ केवलु पुणु निरंधु  
'करयलजल' व<sup>२</sup> नोसेसु<sup>३</sup> दन्वु  
देवागसु जायउ नहु<sup>४</sup> कंमंतु  
भन्वयणचित्तचूरियकुत्तकु  
बिउलइरिसिहरे<sup>५</sup> कम्मद्वचत्तु  
सल्लेहणमरणे<sup>६</sup> जणणु-माय  
वहुवउ<sup>७</sup> चयारि चंपापुरम्मि  
मासेसु करवि<sup>८</sup> सण्णासु<sup>९</sup> तम्मि

आऊरियजोए<sup>१</sup> सुक्कझाणि ।  
जंबूकुमार<sup>२</sup>-सुणिपुंगमासु<sup>३</sup> ।  
दंसणनाणावरणु वि असेसु ।  
परियाणिउ जीवें जीवभाउ<sup>४</sup> ।  
अवल्लोयउ तिहुयणु<sup>५</sup> एकखंधु । ५  
पच्चक्खु जि लोयालोय सन्वु ।  
परिमियसहायसहु<sup>६</sup> परिकमंतु<sup>७</sup> ।  
अठारहवरिसह<sup>८</sup> जाम थळु ।  
सिद्धालय<sup>९</sup>—सासयसोक्खपत्तु<sup>१०</sup> ।  
वंभोत्तरि इंद-पडिंद जाय । १०  
जिणवासुपुज्जचेईहरम्मि ।  
अहमिंद जाय वंभोत्तरम्मि ।

अठारह वर्षका समय बीतनेपर, माघकी श्वेत(गुक्ल)सप्तमीकी प्रातः विपुलगिरिके शिखरपर विशुद्ध गुणोवाले सौभर्म मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए ॥२३॥

[ २४ ]

वही, उसी दिन अर्द्धप्रहर प्रमाण दिन व्यतीत हो जानेपर गुक्लध्यानमें, परिपूर्ण योगसे पर्याकासनसे स्थित, निर्मम मुनिपुंगव जंबूकुमारका शेष (बचा हुआ) मोह (मोहनीय कर्म) अय हो गया; दर्शन व ज्ञानावरण कर्म भी अशेषरूपसे विलीन हो गये, और अंतराय कर्म भी अस्तंगत हो गया। जीवने जीवके (शुद्ध)स्वभावको जान लिया। निरंध्र अर्थात् संपूर्ण लोकमें अखंडरूपसे व्याप्त कंबलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे तीनों लोकोंको एक स्बंधके समान स्पष्ट देख लिया; अखिल द्रव्योको करतल-स्थित जलके समान जान लिया और लोकालोक सभी प्रत्यक्ष हो गये। आकाशका अतिक्रमण करते हुए अर्थात् आकाशमार्गसे, परिसित सहायकोके साथ परिक्रमा करते हुए देवताओंका आगमन हुआ। (इस प्रकार) अठारह वर्षों तक भव्यजनोंके चित्तका कुतर्क (मिथ्यात्व) दूर करते रहकर, (अंतमे) विपुलगिरिके शिखरपर अष्टकर्मोंको त्याग कर मोक्षके शाश्वत सुखको पा लिया। संलेखनापूर्वक मरण करके पिता-माता ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें इंद्र व प्रसीद्र हुए। चारों बहुरे चंपापुरमें वासुपूज्यजिनके चैत्यघरमें, एक मासका संन्यास करके (मरणोपरांत)

१९. क ड 'वरिसड, ख ग 'सह, घ 'सइ। २०. ख ग काल। २१ क घ ड बिउलइरिहिं सिं ख ग बिउलइरि सिं। २२ ख ग 'गुणे। २३ ख ग 'ण। २४. ख ग 'म्म।

[ २४ ] १ ख ग घ आऊरिए। २. क ड 'कुमार। ३ क घ ड 'वासु। ४. क घ ड 'उ। ५. क घ 'उं। ६. क ड घणु। ७ क ड 'वणु। ८ क घ ड 'जलु व ( घ ज्व )। ९. क ड 'स। १०. क ड पणि, घ नहि। ११ -घ 'सहाए'। १२. प्रतियोमे 'परिभमंतु'। १३. क ड 'सड, ख ग 'सह, घ 'सइ। १४ क घ ड 'लउ। १५ घ 'सोमिह'। १६. ख ग 'मरणे। १७. क घ ड 'यउ। १८ क ड जिणवास'। १९. घ करवि। २० क 'स'।

घत्ता—अह सवणसंधसंजु<sup>२१</sup> एवर एयारसंगधरु<sup>२२</sup> विजुचरु।

विहरंतु तवेण विराइयउ पुरि तामलिचि<sup>२३</sup> संपाइयउ<sup>२४</sup> ॥२४॥

[ २५ ]

- नयराउ नियडे रिसिसंधे थके अत्यवणहो<sup>१</sup> दुक्क<sup>२</sup> सूरचके<sup>३</sup> ।  
 अह आया<sup>४</sup> ताम कंकालघारि कंचायणि<sup>५</sup> नामे भद्रमारी<sup>६</sup> ।  
 आहासइ सविणय<sup>७</sup> दिवसपंच महु जत्त हवेसइ सप्पवंच ।  
 आमंतिय भूचावलि रउह उवसग्गु करेसइ तुम्ह खुद ।  
 ५ इय कज्जे अण्णहि<sup>८</sup> 'कहि मि' ताम पुरि मेळिचि गच्छहु जत्त जाम ।  
 गय एम कहेवि तो जइवरेण मुणि भणिय एम विजुवरेण ।  
 लड<sup>९</sup> जाहु पमेळहु पइ यत्ति तो 'तेहि' चविउ<sup>१०</sup> परिगलउ<sup>११</sup> रत्ति ।  
 वोहंतह<sup>१२</sup> को किर घम्मलाहु उवसग्गसहणु<sup>१३</sup> साहुण साहु<sup>१४</sup> ।  
 इय वयणु 'दिठवि' सव्वे वि<sup>१५</sup> अवक्के<sup>१६</sup> निक्कपिर नियमु करेवि थक्क ।  
 १० घत्ता—संजायरयणि मसिकसिणपह<sup>१७</sup> अंधारियइसदिसि<sup>१८</sup> कूरगह ।  
 गयणंगणु-महि एक्कहि<sup>१९</sup> मिलई खयकालसरिसु<sup>२०</sup> तमु जगु<sup>२१</sup> गिलइ<sup>२२</sup> ॥२५॥

ब्रह्मोत्तर-स्वर्गमें अर्हाम्र हुई। इसके अनंतर ग्यारह अंगोंके धारी, एवं तपसे सुगोभित श्रेष्ठ विद्युच्चर महामुनि विहार करते हुए अपने अमणसंध सहित ताम्रलिप्ति नामक नगरीमें आये ॥२४॥

[ २५ ]

ऋषिसंधके नगरके निकट ही ठहर आनेपर एवं सूर्यमंडलके अस्तंगमनके लिए प्रवृत्त होनेपर कंकालको धारण करनेवाली भद्रमारी नामकी कात्यायनी देवी वहाँ आयी, और विनयपूर्वक बोली—'पाँच दिनों तक पूर्ण विस्तारके साथ यहाँ मेरी यात्रा होगी। उसमें रौद्र भूतसमुदाय आमंत्रित है, वह तुम्हें धुद्र (असह्य) उपसर्ग करेगा। इस कारण जब तक यात्रा है तब तक इस पुरीको छोड़कर अन्यत्र चले जाइए।' यह कहकर वह चली गयी, तो यतिवर विद्युच्चरने मुनियोंको इसतरह कहा—अच्छा (हो कि), आप लोग इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जावें। तो उन लोगोंने कहा—'रात्रि व्यतीत हो आवे (तब चले जावेंगे); (क्योंकि उपसर्गसे) डरनेवालोंको क्या धर्मलाभ (हो सकता) है? उपसर्ग सहना ही साधुओंके लिए साधु (कल्याणकर) है।' इस वचन (से अपने)को दृढ़ करके सभी वहीं रह गये, और मौन लेकर निष्कंपरूपसे नियम करके स्थित हो गये। रात्रि होनेपर दणो दिशाओंको अंधकारमय करनेवाले एवं स्याहीके समान कृष्णवर्णवाले क्रूरग्रह(राहु ?)के समान, तथा गगनांगन और पृथ्वी मानो एकत्र मिल रहे हो, ऐसा प्रलयकालके समान (निविड) अंधकार सारे लोकको गोलने (घसने) लगा ॥२५॥

२१. घ 'संजु सं'। २२. ख ग 'घर'। २३. क ड 'तावलि', घ 'ताव'। २४. ख ग संपराइयउ।

[ २५ ] १. क ड लव'। २. ख ग सूर चके। ३. क घ ड आय। ४. घ 'ऊणि' ५. क रह'। ६. क ड सिविणइ, ख ग सिविणव। ७. ख 'सइ'। ८. ख ग घ आव'। ९. क ड 'हि'; घ अवहि। १०. घ कहि मि। ११. क ख ग घ जय'। १२. क वइ। १३. क ड चविउ तेहि। १४. ख ग 'गलिउ'। १५. ख ग 'तह'। १६. क 'हु'। १७. क ड 'सहण'। १८. क ड विहु वि। १९. क ड सव्वहि, घ सव्व वि। २०. ख ग थक्क। २१. क ड 'कमण'। २२. क ड 'दिसु'। २३. ख ग घ ड 'इ'। २४. क 'कालु'। २५. ख ग घ जगु तमु। २६. क 'इ'।

[ २६ ]

समुद्राह्या<sup>१</sup> ताम भिउडीकराला कवालेसु<sup>२</sup> पसरंत कोलाललीला ।  
 समुल्लालयंता महांसखंडा<sup>३</sup> सधूसमिग-भस्मुक फेकारचंडा ।  
 गले<sup>४</sup> बदककालवेयालभूया कयाणैयदुपिच्छवीहच्छरूया<sup>५</sup> ।  
 थिया के वि मसियालहुवडयमाणा<sup>६</sup> तथा मंकुगा के वि कुकुडपमाणा ।  
 रिसीणं सरीराह<sup>७</sup> खाडं पवत्ता<sup>८</sup> सहंता न तं वेयणं जोयवत्ता । ५  
 पर्यंपति दुक्खं सहेचं गरिह<sup>९</sup> अहो तवफलं केण कथेव दिह<sup>१०</sup> ।  
 अधीरा तओ के वि मुणिणो अयाणा तणु<sup>११</sup> कंडुयंता<sup>१२</sup> वराया पलाणा ।  
 सरे के वि कूवम्मि चीयाहुयासे<sup>१३</sup> विवणगा पडेऊण तरु—वेळिपास<sup>१४</sup> ।  
 ठिउ नवर विजुच्चरो जोयलीणो<sup>१५</sup> महाधोरउवसगासंगे अदीणो ।  
 वत्ता—सण्णासु<sup>१६</sup> चउविह्व संगहवि वयखग्गे<sup>१७</sup> मोहवहरि वहेवि । १०  
 संठिउ आराहणसुद्धमणु एकल्लवीर<sup>१८</sup> ईदियदमणु<sup>१९</sup> ॥२६॥

इय जंबूसामिबहिद सिंगारवीरे महाकव्जे महाकइदेवयत्तमुयवीरविरहए विजुच्चरअक्खणयं  
 जंबूसामिनिव्वाणगमणं नाम<sup>२०</sup> दममो संघी समसो<sup>२१</sup> ॥ संधिः १० ॥

[ २६ ]

तब कराल भूकुटियों वाले, कपालोमे-से लोहकी धार बहाते हुए, महामांस(नरमांस)-  
 खंडोंको उछालते हुए, धूर्त्र व अग्नि सहित प्रचंड फेत्कार छोड़ते हुए, गलेमें ककाल बांधे हुए,  
 अनेक दुष्प्रेक्ष्य और बीभत्स रूप बनाये हुए बैताल और भूत वहाँ ठठ खड़े हुए । कोई स्याहीके  
 समान काले भूत हुंकार करने लगे । कोई कुक्कुटके समान विशाल मत्कुणोंके रूपमें प्रकट हुए  
 और ऋषियोंके शरीर खानेको प्रवृत्त हो गये । उस वेदनाको सहन नहीं करके कोई (मुनि) योग  
 (ध्यान) छोड़कर बोले, यह दुःख तो सहनेके लिए बहुत भारी है । अरे तपका फल कब, किसने,  
 कहा देखा है ? इससे कोई बेचारे अज्ञानी मुनिजन अधीर होकर शरीर खुजलाते हुए भाग  
 निकले । कोई तालाबमें, कोई कूपमें, कोई चिताग्निमें और कोई वृक्षों एवं लताओंके जालमें  
 पड़कर मर गये । केवल एक विद्युच्चर (महामुनि) ही योगमें लीन हुआ, महाधोर उपसर्गके  
 प्रसंगमें अदीन (निर्भय) भावसे स्थित रहा । चार प्रकारका संन्यास धारण कर, व्रतरूपी खड्गसे  
 मोहशत्रुका वध कर आरात्रनामे शुद्धमन व ईद्रियोंका दमन करनेवाला वह अकेला वीर वहाँ  
 स्थित रहा ॥२६॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामोचरित्र नामक इस

शृंगार-वीरसात्मक महाकाव्यमें 'विद्युच्चरका आख्याय' एवं 'जंबूस्वामिका

निर्वाणगमन' नामक यह दशम संधि समाप्त ॥ संधिः १० ॥

[ २६ ] १. ड 'चाह्या । २. ख ग कपा । ३. ख ग व 'मास' । ४. क ख ग ड गला । ५. क क  
 'रूवा । ६. क व ड मस' । ७. क घ ड हूचडयमाणा । ८. ख ग घ 'राण । ९. ख ग घ पउत्ता । १०. घ  
 असज्ज । ११. क ग तणु । १२. क घ ड 'वता । १३. क ख ग ड वीया' ; ख ग 'हुवासे । १४. ख ग  
 'पासि ; घ पेत्ति' । १५. ख ग जोव' । १६. घ सत्तासु । १७. ख ग 'खग्गे । १८. क ड 'वकल्लंड' ।  
 १९. क ख ग ड 'दवणु । २०. क घ ड दसमा इमा संघी, ख ग 'सम्मतो । संधिः १० ।



सो जयउ देवयत्तो कहत्तधामोत्ति वीरपडितुल्लो ।

जस्स सयासे सिद्धा सीसा सवत्थरायवण्णा ॥१॥

विज्जुच्चरहो महामुणिहो जीवहो कम्मनिर्वधणं कुरियउ ।

अइदूसहे उवसग्गे तहिं बारह मणि अणुवेक्खई कुरियउ ॥२॥

५ जिहं जिहं धोरुवसग्गु पहावइ तिहं तिहं जग्गु अणिच्चु परिभावइ ।

गिरिनइपूरु वं आउसु खुट्टइ पक्कलं पि वं माणुसुं तुट्टइ ।

सिय-लावणु<sup>१</sup> वण्णु-जोवणु-बलु गलइ<sup>२</sup> नियंतहो<sup>३</sup> णं अंजलिजलु ।

बंधव-पुत्त-कलत्तइ अण्णइ<sup>४</sup> पवणाहयइं जंति णं पण्णइ<sup>५</sup> ।

रह-करि-तुरय-जाण-जंपाणइं<sup>६</sup> अहिणवधणउन्नयणसमाणइं<sup>७</sup> ।

१० चामर-छत्त-चध<sup>८</sup>-सिंहासणुं<sup>९</sup> विज्जुलचवलविलासुवहासणु ।

आसिं<sup>१०</sup> निमित्तु जं जि अणुरायहो दिवसहिं<sup>११</sup> कारणुं<sup>१२</sup> तं जिं<sup>१३</sup> विसायहो

वे (महाकवि) देवदत्त जयवत्त हो, जो कवित्वके धाम हैं, और उन वीर (३० महावीर) के प्रतिस्तुत्य है, जिनके पास सीखे हुए शिष्य सर्वत्र कीर्तिको प्राप्त हुए—वीर भगवान् के पास तप साधनामे सिद्ध हुए शिष्य केवलज्ञानमे समस्त अर्थोंको व्यक्त करनेकी शब्द शक्ति प्राप्त करके अंतमे सिद्ध हुए व सर्वत्र स्तुत्य हुए; महाकवि देवदत्तके पास काव्य-रचनानामें सिद्ध हुए शिष्योंको कवित्वमे समस्त अर्थोंको व्यक्त करने योग्य शब्दशक्ति प्राप्त हुई, तथा वे सर्वत्र प्रशंसाको प्राप्त हुए ॥१॥

विज्जुच्चर महामुनिके मनमें उस अत्यंत दुःसह उपसर्गमें जीवके कर्मके कारणोंको छेदन करनेवाली बारह अनुप्रेक्षाएँ स्फुरित हुईं ॥२॥

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग अधिक समर्थ अर्थात् कठोरतर होता जाता था, वैसे-वैसे विज्जुच्चर यह जगत् अनित्य है, ऐसा चिंतन करता था । गिरिनदीके पूरके समान आयुष्य पंडित हो जाती है, और मनुष्य पके फलके समान (जीवन वृक्ष-से) टूट जाता है । लक्ष्मी, लावण्य, वण (शरीरका गौर, कृष्ण आदि रंग), यौवन और बल देखते-देखते अंजलिके जलके समान गलित हो जाते हैं । बंधव, पुत्र और कलत्र ये सभी जीवसे अन्य हैं, और इस तरह चले जाते हैं, जैसे पवनसे आहत होकर पत्ते (उड़ जाते हैं) । रथ, हाथी, घोड़े, यान और जंपानक (पालकी) नये मेघ उन्नयनके समान हैं । चमर, छत्र, ध्वजा और सिंहासन विद्युत्के चंचल विलासका भी उपहास करनेवाले (अर्थात् उससे भी अधिक क्षणिक) हैं । (पहले) जो कुछ अनुरागवशा निर्दिष्ट

[ १ ] १ क वण्णा, घ वन्ना । २ क व ड हिं । ३ घ वणु । ४ ग ग ट तं । ५. र ग घ च विह । ६ क ड वेहु । ७ घ हे । ८. र गिरिनयं, ग नयपूरव । ९. क ड । १०. क ड य । ११ र ग म । १२ घ लाण्णु, च लायं । १३ र ड । १४ ग घ तं, ग तं । १५. घ लण्ड । १६ घ पण्ड । १७ क र ग ट उणयण । १८ क ट चित्त । १९. र ग मिमा । २०. र मास । २१ र ग महो, घ सहि । २२ ग ग जनि ।

मोहें तो वि जीउ अवगणइ<sup>३</sup> अजरामरु अप्पाणउ<sup>४</sup> मणइ<sup>५</sup> ।  
 घत्ता—अद्भुतभावण पह मणे जायइ<sup>६</sup> जासु विवस्त्रियकामहो ।  
 दंसणनाणचरित्तगुणु भायणु होइ सो जि सिवधामहो ॥१॥

[ २ ]

मरणसमग्र जमइयहि<sup>१</sup> निजइ<sup>२</sup> असरणु<sup>३</sup> जीउ केण<sup>४</sup> रनिखजइ<sup>५</sup> ।  
 जइ वि भरति धरियधुर माणव<sup>६</sup> गरुड<sup>७</sup> फणिंद-देव-दिठदानव<sup>८</sup> ।  
 अक्क-मियंक-सुक्क-सकंदण<sup>९</sup> हरि-हर-वम<sup>१०</sup> वइरि-अकंदण<sup>११</sup> ।  
 ११ पण्णारहं खेतिसु सुहंकर<sup>१२</sup> कुलयर-वक्कवट्टि-तित्यंकर ।  
 जइ पइसरइ गाढपविपंजर<sup>१३</sup> गिरिकंदरे सायर<sup>१४</sup> नइ<sup>१५</sup> निज्जरे । ५  
 हरिणु जेम सीहेण वलिजइ<sup>१६</sup> तेम<sup>१७</sup> जीउ<sup>१८</sup> काले कवलजइ ।  
 आबसु कम्म<sup>१९</sup> निवद्धव जेतत जीविजइ मुंजंतह<sup>२०</sup> तेत्त ।  
 तहो कम्महो<sup>२१</sup> थिरु खणु वि न थक्कइ तिहुवणे<sup>२२</sup> रक्ख करेवि को सकइ ।  
 घत्ता—दुत्तरे भवसायरसलिले<sup>२३</sup> बुडुंतह<sup>२४</sup> जगे को साहारइ ।  
 जिनसासन-उवएसियउ दहविहु धम्म एक्कु पर तारइ ॥२॥ १०

था, वही दिन बीतनेपर विपादका कारण हो जाता है। तो भी जीव मोह (वश)से (इस सत्यकी) अवमानना करता है, और अपने आपको अजर, अमर मानता है। जिस कामत्यागीके मनमें यह अद्भुत भावना उत्पन्न होती है, वही दर्शन, ज्ञान व चरित्र गुणोंसे युक्त मानव शिवधाम (मोक्ष) का भाजन होता है ॥१॥

( २ )

मरणके समय जब यमदूत जीवको ले जाते हैं; उस समय उस अवरण जीवकी रक्षा कौन कर सकता है। चाहे बड़े-बड़े सभ्राम धुरंधर सुभट पुरुष ही (जीवको कालसे रक्षाके लिए) धारण कर लें, चाहे, गरुड, फणींद्र, देव या वलिष्ठदानव; चाहे सूर्य, चंद्र, गुरु या शक्र; चाहे शत्रुको आक्रंदन करानेवाले हरि और हर; चाहे पंद्रह क्षेत्रोंमें कल्याणकारी कुलकर, चक्रवर्ती, या तीर्थंकर उसे धारण कर लें, चाहे वह सुदृढ़ वज्र-पंजरमें प्रवेश कर जाय, या गिरि कंदराओं, सागर, नदी अथवा निर्झरमें, तो भी जिस प्रकार हरिण सिंहके द्वारा मार डाला जाता है, उसी प्रकार जीव कालसे निगल लिया जाता है। जितना आयुष्य कर्म बाँधा है, उतना ही भोगते हुए उसे जीया जाता है। उस आयुष्यमें अधिक एक क्षण भी स्थिर अर्थात् जीवित नहीं रह सकता। तीनो लोकोंमें कौन उसकी रक्षा कर सकता है? दुस्तर भवसागर सलिलमें डूबते हुओंके लिए कौन सहारा देता है? वस एकमात्र जिन-वासन-द्वारा उपदिष्ट दगविध धर्म ही पार उतार सकता है ॥२॥

२३. क ण्णइ, घ न्णइ । २४. क घ ड णत्तं । २५. क इ, घ मणइ । २६. क ख ग ड इ ।

[ २ ] १. ख ग इहं । २. क ण्णइ । ३. ख ग केण जीउ । ४. घ ण । ५. क ड दानव । ६. ख ग म । ७. ख ग सक । ८. घ वक्कण । ९. ख ग वयरि । १०. घ पक्कण । ११. घ पला । १२. च महकर । १३. ख नय । १४. ख ग ड तो वि । १५. घ जीव । १६. ख ग घ कम्म । १७. क तह । १८. क ड समयहो । १९. ख ग वणे । २०. ख ग सायर । २१. ख ग तह ।

[ ३ ]

- संसारानुवेक्षे भाविज्जइ<sup>१</sup> कम्मवसेण जीउ पाविज्जइ<sup>२</sup> ।  
 जोणि-कुलाउ-जोय<sup>३</sup> सय-संक्रहे चउगइभसणे<sup>४</sup> विवज्जियकंकडे ।  
 जम्मंतरइ<sup>५</sup> लेतु मेहंतउ कवणु न कवणु गोत्तु<sup>६</sup> संपत्तउ ।  
 वप्पु<sup>७</sup> जि पुत्तु पुत्तु जायउ<sup>८</sup> पिउ भित्तु जि सत्तु सत्तु बंधउ<sup>९</sup> थिउ ।  
 ५ माय जि महिल महेली मायारि बहिणि वि धीय धीय वि सहोयरि ।  
 सामिउ<sup>१०</sup> दासु होवि<sup>११</sup> उप्पज्जइ<sup>१२</sup> दासु वि सामिसालु संपज्जइ<sup>१३</sup> ।  
 केत्तिउ कहमि<sup>१४</sup> मुणहु<sup>१५</sup> अणुमाणे जम्मइ<sup>१६</sup> अप्पाणउ<sup>१७</sup> अप्पाणे ।  
 नारउ तिरिउ तिरिउ पुणु<sup>१८</sup> नारउ देउ वि<sup>१९</sup> पुरिसु नरु वि<sup>२०</sup> वंदारउ ।  
 घत्ता—इय जाणेवि संसारगइ दंसण-नाणु जेण नाराहिउ ।  
 १० अच्छइ<sup>२१</sup> सो मिच्छा-छलिउ काम-कोइ-भय-भूप्पहि<sup>२२</sup> वाहिउ<sup>२३</sup> ॥३॥

[ ४ ]

- जोवहो नत्थि को वि साहिज्जउ<sup>१</sup> कम्मफलइ<sup>२</sup> जो भंजइ<sup>३</sup> विज्जइ<sup>४</sup> ।  
 एक्कु जि पावइ निउइ<sup>५</sup> महल्लउ निवडइ धोरनरप<sup>६</sup> एक्कलउ ।  
 एक्कु जि खरधम्मणे<sup>७</sup> विलिज्जइ<sup>८</sup> एक्कु वि वइतरणिहि<sup>९</sup> वोलिज्जइ<sup>१०</sup> ।

( ३ )

अनंतर वह संसारानुप्रेक्षाका चितवन करने लगा । चतुर्गति भ्रमणमे मर्यादा (दि० रहित होकर जोब कर्मवशसे सैकड़ो संकीर्ण योनियो, कुलो, आयुष्य तथा योगो (नाना संयोगो) को प्राप्त करता है । जन्मातरोको लेते और छोडते हुए इसने कौन-सा गोत्र नहीं पाया । दाप पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है । मित्र शत्रु और शत्रु, बांधव हो जाता है । माता स्त्री और स्त्री, माता बन जाती है । बहिन पुत्री हो जाती है, और पुत्री सहोदरा । स्वामी दास होकर उत्पन्न होता है, और दास स्वामि-श्रेष्ठ हो जाता है । कितना कहे, अनुमानसे जान लीजिए, यहाँ तक कि स्वयं अपनेसे आप ही उत्पन्न हो जाता है (देखिये भूमिकामे महेश्वरवत्तका कथानक) नारक तिर्यंच हो जाता है, व तिर्यंच नारकी, देव भी पुरुष हो जाता है, और पुरुष देव । इस प्रकार संसारगतिको जानकर जिसने दर्शन-ज्ञानको नहीं आराधा, वह मिथ्यात्वसे छला जाकर, काम, क्रोध व भयके भूतोसे चालित होकर रहता है, अर्थात् काम क्रोधादि कपायोके बशीभूत होकर जीवन व्यतीत करता है ॥३॥

( ४ )

जोवका ऐसा कोई सहायक बिज (ज्ञानी) या वेद्य नहीं है जो उसके कर्मफलोको काट दे । जोब अकेला ही महान् मोक्षपदको पाता है, और अकेला ही धोर नरकमे गिरता है, तथा वहाँ

[ ३ ] १ क ड पेक्ख । २ क ज्जइ । ३ ख ग जोणि । ४ ख ग व भवणे । ५ क ड रइ । ६ क गोत्त । ७ क ड वापु । ८ क ड इ । ९ ख ग व । १० क व ड उ । ११ क ख ग ड होइ । १२ ग कहमि । १३ व हुं । १४. प्रतियोगे ३ । १५. क व ड गत । १६. क ड तह । १७ घ जि । १८ ख ग उ । १९. क व ड भूयहि । २०. व उ ।

[ ४ ] १. ग व ज्जइ । २. प्रतियोगे भु । ३. व ड । ४. ख ग ड निउ जि । ५. घ वि । ६. क धम्मणे । ७. ख ग लइज्जइ । ८. ख ग व णिहि ।

एकु जि ताडिजइ असिबत्तिहि<sup>१</sup>      एकु जि फाडिजइ करवत्तिहि<sup>२</sup> ।  
 एकु जि जले जलयर वणे वणयर      एकु जि महिहरकंदरे अजयर ।<sup>३</sup>      ५  
 एकु जि मेच्छु चंडपरिणामर<sup>४</sup>      एकु जि संडु<sup>५</sup> विसमवहुकामर<sup>६</sup> ।  
 एकल्लो वि महिल एकु जि नर      एकु जि महिवइ एकु जि सुरवर ।  
 एकु जि जोए<sup>७</sup> गलियविथप्पर<sup>८</sup>      जायइ जीउ सुद्धपरमपर ।  
 धत्ता—एकु जि मुंजइ कम्मफलु जीवहो वीयर<sup>९</sup> कवणु<sup>१०</sup> कलिजइ<sup>११</sup> ।  
 सत्तु मित्तु कहिं संभवइ<sup>१२</sup>      रायदोसु कसु उप्परि किजइ ॥४॥      १०

[ ५ ]

अण्णत्ताणुवेक्ख भावइ पुणु      अण्णु सरीरु अण्णु जीवहो गुणु ।  
 वज्झइ अण्णकम्मपरिणामे      जणे कोकिजइ अण्णे नामे ।  
 गोत्तु निबंधइ अण्णहिं खोणिहिं<sup>१</sup>      उप्पजइ अण्णण्णहिं<sup>२</sup> जोणिहिं ।  
 अण्णेण जि पियरेण जणिजइ      अण्णइ मायइ उयर<sup>३</sup> धरिजइ ।  
 अण्णु को वि एक्कोयर भायर      अण्णु मित्तु घणनेहकयायर ।      ५  
 अण्णु कलत्तु मिलइ परिणंतहं      अण्णु जि पुत्तु होइ कामंतहं<sup>४</sup> ।

अकेला ही तीक्ष्ण तापसे (पारदके समान) गलाया जाता है। अकेला ही वैतरणीमे डूबता है, अकेला ही अतिपत्रोसे फाड़ा जाता है, और अकेला ही करीतसे चीरा जाता है। अकेला ही जलमें जलचर और वनमे वनचर होता है। अकेला ही पर्वत-कंदरामें अजगर होता है। अकेला ही चंड परिणामोवाला म्लेच्छ होता है। अकेला ही तीक्ष्ण एवं विषम काम (वासना) से युक्त नपुंसक होता है। अकेला ही महिला और अकेला ही पुरुष होता है। अकेला ही महीपति, और अकेला ही देव, और अकेला ही योग (ध्यान व तप) से समस्त (सासारिक) विकल्पोको त्याग कर यह जीव शुद्ध परमात्मा हो जाता है। अकेला ही कर्मफलको भोगता है, जीवका दूसरा (मित्र या बांधव) किसे गिना जाय? (किसीका) शत्रु या मित्र होना कहाँ सम्भव है? राग व द्वेष किसके ऊपर किया जाय ॥४॥

( ५ )

फिर वह अन्यत्त्वानुप्रेक्षाका चिंतन करने लगा। शरीर अन्य है, जीवका स्वभाव (गुण) अन्य है। परिणामोके अनुसार यह जीव अन्य (अर्थात् अपनेसे भिन्न व पुद्गलमय) कर्मपरिणामों (कर्म-प्रकृतियों) से बंधता है। लोगोमे किसी अन्य ही नामसे पुकारा जाता है। भिन्न-भिन्न पृथिव्योमे भिन्न-भिन्न गोत्र बांधता है और भिन्न-भिन्न योनियोमे उत्पन्न होता है। अन्य पितासे उत्पन्न किया जाता है, और अन्य माँके उदरमें धारण किया जाता है। सहोदर भाई भी कोई अन्य ही होता है, और घना स्नेह व आदर करनेवाला मित्र भी अन्य ही होता है। परिणय करते हुए (अपनेसे) भिन्न ही स्त्री मिलती है, और कामभोग करनेसे कोई

१ ख ग पत्तिहि; घ पत्तिहिं । १० ख घ त्तिहि, ङ त्तिहि । ११ क घ ङ मउं । १२ ख संड । १३ घ ङ कामउं । १४ ख ग जोए । १५ क घ ङ प्पउं । १६ ख ग घ च विज्जउ । १७ क ण । १८ क ङ कहिं । १९ क वइ ।

[ ५ ] १ घ अन्नं । २ क ऊ विं, ख ग धइं । ३ क अण्णुज्जइ । ४ घ अन्नत्तहिं । ५ क ङ वि । ६ क घ ङ इ । ७ क ङ च उवरि, ख ग उडरि । ८ ख ग अण्ण, व अण्णु । ९ ख कामं-तह, ग कम्मतह ।

अण्णु होइ धणलोहैं किंकर अण्णु जि पिसुणु होइ असुहंकर ।  
 अण्णु अणाइ<sup>१०</sup> अणतु<sup>११</sup> सचैयणु<sup>१२</sup> सावहि<sup>१३</sup> अण्णु<sup>१४</sup> धवडिहयवेयणु ।  
 धत्ता—अण्णणाइ<sup>१५</sup> कलेवरइ<sup>१६</sup> लइयइ<sup>१७</sup> मुक्कइ<sup>१८</sup> भवसंधारेण ।  
 १० अण्णु जि निरवहिजीउणु<sup>१९</sup> कवणु ममत्तिभाउ<sup>२०</sup> तणुकारणे ॥५॥

[ ६ ]

जंगमेग संचरइ अजंगसु<sup>१</sup> असुइ सरोरे न काइ<sup>२</sup> मि<sup>३</sup> चंगसु ।  
 अंडुविग्रहहडुसंधडियउ<sup>४</sup> सिरहि<sup>५</sup> निवद्धउ चम्मै<sup>६</sup> मडियउ ।  
 सहिर-सास-वस-पूयविटलउ<sup>७</sup> मुत्तनिहाणु पुरीसहो<sup>८</sup> पोह्लु ।  
 थवियउ तो किमि<sup>९</sup> कीहु<sup>१०</sup> पयट्टइ<sup>११</sup> दहडु मसाणे छाउ पसट्टइ<sup>१२</sup> ।  
 ५ सुहविवेण जेण ससि सोलहि<sup>१३</sup> परिणइ तासु कवोले<sup>१४</sup> निहालहि<sup>१५</sup> ।  
 लोयणेसु कहि गयउ कडक्खणु कहि<sup>१६</sup> वंवि<sup>१७</sup> दरहसिउ<sup>१८</sup> विथक्खणु ।  
 विफुरियाहरत्तु कहि<sup>१९</sup> वट्टइ<sup>२०</sup> कोमलवोल्ले<sup>२१</sup> काइ<sup>२२</sup> न पयट्टइ<sup>२३</sup> ।  
 धूयविलेवणु बाहिरि थक्कइ<sup>२४</sup> असुइ गंधु को फेडिबि सक्कइ<sup>२५</sup> ।

अन्य ही पुत्ररूपमे उत्पन्न होता है । धनके लोभसे सेवक भी अन्य ही होता है, और अकल्याण-कर दुर्जन भी अन्य ही होता है । जोबका अनादि अनत सचेतन स्वरूप कुछ अन्य ही होता है, तथा सवेदन अर्थात् कर्मों की उद्वोरणासे युक्त सावधि (सादि-सान्त) स्वरूप कुछ अन्य ही । बार-बार भवविस्मयन अर्थात् शरीरत्याग करनेमे भिन्न-भिन्न ही शरीर लिये और छोड़े । जोबका निरवधि ज्ञान गुण भी इन सब बाह्य वस्तुओंसे अन्य ही है । अतः इस शरीरके लिए ममत्व ही क्या ? ॥५॥

( ६ )

चेतन (आत्मा) के सहारेसे अचेतन (शरीर) का संचरण होता है । इस अणुचि शरीरमें कुछ भी चंगा नहीं है । जाड़े-टेढ़े हाडोंसे यह संघटित है, शिराओंसे निबद्ध है, और चर्मसे मढ़ा हुआ है । यह शरीर पूति रुधिर, मांस, व असाकी गठरी और मूत्रका निधान व पुरीषकी पोटली है । ( मरणोपरांत ) इसको रख दिया जाय तो यह कृमि व कीटरूप प्रवृत्त हो जाता है, और इमशानमें जलानेपर क्षार रूपमे पलट जाता है । जिस मुखविंदसे चद्रमाकी तुलना की जाती है, ( आगु व्यतीत होनेपर ) कपोलोपर उसको परिणति देखिये । लोचनोका कटाक्षसे देखना कहाँ गया ? दाँतोसे वह विचक्षण ईषत् हास्य अर्थात् वह मद-मद मुसकराना कहाँ गया ? ओंओंकी वह शोभा कहाँ गयी ? और कोमल वचन अब क्यों प्रवृत्त नहीं होते ? घूप (आदि) विलेपन बाहर ही रहता है; (शरीरके भीतरकी) अणुचि गंधको कौन मिटा सकता है ?

१०. क अण्णाय, ड अणाय । ११. क अण्ण, ख ग अण्ण, घ अण्णु । १२. क ड अवे । १३. क ड सव्वहि । १४. ख ग ण्णाइ, व अण्णसाइ । १५. क ड ड । १६. ख ग निरवहे, क घ ड जोउ हउ । १७. घ ममिति । १८. ख ग ण्णाइ, व अण्णसाइ । १९. क ड ड । २०. ख ग निरवहे, क घ ड जोउ हउ । २१. क ड ड । २२. ख ग ण्णाइ, व अण्णसाइ । २३. क ड ड । २४. ख ग निरवहे, क घ ड जोउ हउ । २५. क ड ड ।

[ ६ ] १. क ड ड च गउ । २. ख ग व काइ मि । ३. क अड । ४. ख स कडियउ । ५. क ख ग ड सिरहि । ६. ख ग व चम्महि; घ चम्महि । ७. क घ ड जहि । ८. ख ग घ पूयल-ट्टलु । ९. ख ग सह । १०. ख ग किम । ११. ख ग कोड, घ कडु । १२. क घ ड ट्टइ । १३. क घ दहडु । १४. क ट्टइ । १५. क घ ड हि । १६. क ड ल । १७. क ख ग घ ड लहि । १८. ख ग हसिय । १९. ख ग कहि । २०. क ड लु वोल्लु । २१. क ड । २२. क ड । २३. क ड । २४. क ड । २५. क ड ।

घत्ता—असुहसरीरहो कारणेण केवलु सुद्ध अपु अवगणइ<sup>२२</sup> ।  
 किसि-कब्बाड<sup>२३</sup>-वणिज्जफलु सेवकिलेसु सुहिल्लउ मणइ<sup>२४</sup> ॥६॥

१०

[ ७ ]

नारय-तिरिय-नरामर थावण मुणि परिभावइ आसवभावण ।  
 तणु-मण-वयण जोउ जीवासउ कम्मागमणवारु सो आसउ ।  
 असुहजो<sup>२५</sup> जीवहो सकसायहो लमाइ निविडकम्ममलु आयहो ।  
 कपडे जेम कसायइ सिट्ठउ जायइ वहलरंगु मंजिडउ ।  
 अवलु नरिंदु जेम रिउसिमिरे<sup>२६</sup> मंठुजोउ दीउ जिहं तिमिरे<sup>२७</sup> ।  
 जीउ वि वेडिज्जइ तिहं कम्मं निवडइ दुक्खसमुदे अहम्मं ।  
 अकसायहो आसउ सुहकारणु कुगइ-कुमाणुसत्तविणिवारणु ।  
 सुहकम्मेण जीउ अणु संचइ<sup>२८</sup> तिथयरत्तु<sup>२९</sup> गोत्तु<sup>३०</sup> संपज्जइ ।  
 घत्ता—मिच्छादंसणे<sup>३१</sup> मइलियडे<sup>३२</sup> कुडिलभाउ जायइ सकसायहो ।  
 काय-वाय-मणपंजलडे<sup>३३</sup> पुण्णनिमित्तु<sup>३४</sup> होइ अकसायहो ॥६॥

५

१०

अवृत्ति शरीरके कारणसे (अज्ञानी जीव) अनुपम व गूढ़-आत्माकी अवगणना करते हैं, एवं कृषि, कबाड़ीपन, वाणिज्यफल और सेवाके क्लेशको सुखकर मानते हैं ॥६॥

( ७ )

अव ( वह विद्युच्चर ) मुनि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें स्थापन करनेवाली आसूव भावना माने लगा । जीवके आश्रयसे होनेवाला तन, मन व वचनका योग ( क्रिया ) ही जो कर्मके आगमनका द्वार है, वही आश्रय है । सकषाय जीवके अगुम योगसे उसको बना कर्ममल इस तरह आकर लग जाता है, जैसे कषाय(गोंद)से श्लिष्ट कपड़ेमें मंजीठका रंग खूब गाढ़ा हो जाता है । जिस प्रकार दुर्बल राजाको शत्रुसेनाके द्वारा, एवं संद प्रकाशवाले दीपकको अंधकारके द्वारा घेर लिया जाता है, उसी प्रकार सकषाय जीव भी कर्मोंसे वेष्टित कर लिया जाता है, और अवर्म करके जीव दुःख समुद्रमें पड़ता है । अल्पकषायवाले जीवका आसूव शुभ बंधका कारण होता है, और वह कुगति और कुमनुष्य ( अघम मनुष्य जाति ) योनि ( में जन्म होने )का निवारण करता है । गुभक्रियाके द्वारा कर्म परमाणुओंका संचय करनेवाला जीव तीर्थकर गोत्रको प्राप्त कर लेता है । सकषाय जीवका भाव ( परिणाम ) मिथ्यादर्शनसे मैला होकर कुटिल हो जाता है, और प्रांजल ( शुभ ) काय, वाक् व मनवाले अल्पकषायी जीवका भाव पुण्य ( बंध )का निमित्त होता है ॥७॥

२२ घ 'नइ' २३ क ड 'हु' । २४. घ मन्नडं ।

[ ७ ] १ क ख ग ङ 'चाह' । २. प्रतियोगे 'असुहजोउ' । ३. ख ग घ 'कम्म' फुडु । ४. क घ ड 'यहि' । ५. ख ग घ वहुल' । ६. ख ग 'समरे' । ७. घ जिहं । ८. ख ग तिमरे' । ९. ख ग घ तिहं वेडिज्जइ । १० प्रतियोगे 'व' । ११. क सचडं, घ संवइ । १२ घ 'रत्ति' । १३ क ड जाग । १४ क घ ड विणिवयइ । १५. च 'सण' । १६ ख मय' । १७. क 'इ' । १८. घ 'लिय' । १९. घ पुन्न' ।

- सहई परीसहु<sup>१</sup> परमदियंवर  
 ०. इंदियवित्तिछिहु दिहु दक्कई  
 नावारुहु जेम बलि जंतउ  
 जो देविणु पडिवंधणु बारइ  
 ५ अह मोहिह मईधु<sup>२</sup> जइ अच्छइ  
 इय कवजें अकसाउ कसायहो<sup>३</sup>  
 कोहहो खंति नाणु अण्णाणहो<sup>४</sup>  
 अणसणु रसगिद्धिहि<sup>५</sup> निद्धाडणु  
 १० घत्ता—इय जो कुम्मायारससु संवारियणु<sup>६</sup> न आसउ<sup>७</sup> गोवइ।  
 लाइवि<sup>८</sup> दावानलु<sup>९</sup> गहणे<sup>१०</sup> मारुयसम्मुह<sup>११</sup> होइवि सोवइ ॥८॥

[ ६ ]

दूरि निरस्थ मरण-जन्मण-जर  
 उइउ<sup>१</sup> सुहासुइफलु भुंजिजई  
 पुणु अवलोयई भावण निज्जर।  
 आसियकम्महो निज्जर किज्जइ।

( ८ )

परीषहको सहन करते हुए उस परमदिगंबर विद्युच्चर महामुनिको आसूबको रोकनेवाला सवर(भाव) उत्पन्न हुआ। इन्द्रिय-वृत्तियोंरूपी छिद्रोको दृढतासे ढँक दिया, जिससे नया कर्म प्रवेश भी नहीं कर सकता। जिस तरह कोई नावारूढ व्यक्ति जलमे जाते हुए सैकड़ो छिद्रोसे प्रवेश करते हुए जलको, छिद्रोको बंद करके रोक देता है, तो उसको तीरपर उतरनेसे कौन रोक सकता है? परन्तु यदि कोई मतिका अंघा मोहिह (मूढ) होकर वैरा रहे ( व छिद्रोको बंद नहीं करे ), तो इसमे क्या भ्राति है कि वह डूबकर विनाशको प्राप्त होगा? इस हेतुसे कषायके लिए अकषाय, रागके लिए विरति, क्रोधके लिए क्षाति, अज्ञानके लिए ज्ञान, लोभके लिए संतोष, और मानके लिए अमान ( मानहीनता, मार्दव भाव ) रूपी निबंधन अर्थात् उपशमका उपाय करना चाहिए। उसी प्रकार अनशन रस-लोलुपताका निष्कासन करनेवाला है, तथा प्रायश्चित्त प्रमादको दूर करने वाला है। इस प्रकार जो कूर्माकारके समान, अपनेको संवृत करके आसूबोसे अपनी रक्षा नहीं करता, वह मानो वनमे आग लगाकर पवनके सन्मुख मुँह करके सोता है ॥८॥

( ९ )

फिर वह निर्जरा भावना करने लगा, जिससे जन्म, मरण व जरा दूरसे ही निरस्त हो जाते हैं। उदित हुए ( कर्मानुसार ) गुणानुभ फल भोगने चाहिये, और आसित (स्थित)

[ ८ ] १ क घ ड सट्टिय, ख य। २ ख ग सह। ३ क ड हंमणु। ४ क घ ड चितइ।  
 ५ क दुक्कइ, ख ग दक्कइ, घ डंक्कइ। ६ ख पय। ७ क ख ग ड घा। ८ क घ ट मयवु।  
 ९ क ह। १० घ अन्ना। ११ क व ड गिद्धिहि। १२ क ख ग ड अण्णु। १३ क ड वु। १४ स ग  
 च लायवि। १५ क ख ग ड णलु। १६ क ड णं। १७ क ड मारुवसम्मुह; घ सम्मुहं।

[ ९ ] १. क ड वइ। २. क उयउ। ३. क ञ्जइ।

‘मोक्ष-बंधमेपहि’<sup>४</sup> नियाणिय . कुसलाकुसलमूल<sup>५</sup> परियाणिय ।  
 नरयसमुत्भव<sup>६</sup> नारयजीवहं<sup>७</sup> सेसहं<sup>८</sup> मिच्छादंसणकीवहं ।  
 दुह-सुहं<sup>९</sup> जणएहो<sup>१०</sup> निज्जर अकुसल-अट्ट-उदनिर्तर । ५  
 जं निज्जरइ दुक्खु<sup>११</sup> मुणि अंगं कायकिलेस-परोसहसंगे ।  
 अबरु वि जो सम्मत्तालोयणु<sup>१२</sup> ‘उवयसहाव-सुहासुहभोयणु ।  
 रायरोसरहियउ<sup>१३</sup> नीसल्लउ सुक्खु<sup>१४</sup> दुक्खु निज्जरियउ भल्लउ ।  
 घत्ता—पक्कउ फलु तले निवडियउ विट्ठे<sup>१५</sup> पुणु वि<sup>१६</sup> जेम-नउ लगइ ।  
 कम्म वि निज्जरसाडियउ पुणु वि न<sup>१७</sup> उवइ नाणे जो जग्गइ<sup>१८</sup> ॥६॥ १०

[ १० ]

पुणु लोयाणुरुवे थावइ मणु सुद्धायासे परिट्ठिउ तिहुयणु ।  
 चउदहरज्जुमाणे<sup>२</sup> परियरियउ तिहिं मि समीरण वल्यहिं<sup>४</sup> धरियउ ।  
 रज्जुव<sup>५</sup> सत्त छोट हेड्डिल्लउ पुढविउ<sup>६</sup> सत्त जि दुहहिं<sup>७</sup> गरिल्लउ ।  
 पढमहिं<sup>८</sup> तीसल्लक्खनरयायर रयणप्पहइ<sup>९</sup> आउ जहिं<sup>१०</sup> सायर ।

अर्थात् अभी उद्यमें न आये हुए कर्मोंकी ( उदोरणा-द्वारा ) निर्जरा की जानी चाहिए । मोक्ष और बंधकी विशेषता शोके अनुसार, उनके मूलकारण रूपसे निर्जरा भी कुशलमूल व अकुशल-मूल, ऐसी दो प्रकारकी जानी जाती है । नारकी जीवोंको नरक दुःख भोगनेसे और शेष अपुरुषार्थी ( बलीव ) लोगोंको दुःख-सुख भोगनेसे निरंतर आर्त व रीढ़ ध्यान पूर्वक जो निर्जरा होती है, वह अकुशल ( मूल ) है; तथा शरीरसे दुःखका बोध होते हुए भी कायबलेश करते हुए, परोषहोको सहन करके जो निर्जरा की जाती है, और जो समताभावसे आलोचना है, ( कर्मोंके ) उद्य स्वभावानुसार ( निर्द्वंद्व व निष्काम भाव से ) जो शुभाशुभका भोगना है, एवं राग-द्वेषसे रहित नि शय भावसे जो सुख-दुःखकी निर्जरा है, वह भली ( कुशलमूल ) है । पका फल नीचे गिरकर जिस प्रकार पुनः डंठलमें नहीं लगता, उसी प्रकार जो कर्म निर्जरा-द्वारा दूर कर दिया गया है, वह भी उस व्यक्तिको पुनः प्राप्त नहीं होता जो ज्ञानमें अर्थात् जानाराधनामें निरंतर जागरूक ( सावधान ) रहता है ॥१॥

[ १० ]

फिर उसने लं कके स्वरूप (का चिंतन करने) में अपने मनको लगाया । यह त्रिभुवन शुद्ध आकाशमें परिस्थित है । यह चौदह राजू प्रमाणवाला है । तीनों लोक बातवलयसे धारण किये हुए है । अधोलोक सात राजू है । उसमें अत्यंत दुःखदायक सात पृथ्वियाँ है । पहलो रत्नप्रभामे तीस लाख नरक-बिल है, और एक सागर आयु है (१) । (दूसरी) शर्करा प्रभामे

४ ख ग वंधु मोक्खु मे<sup>४</sup>, व वध-मोक्खु मे<sup>४</sup> । ५ ख ग व कुसलु मूल । ६ घ वमड । ७. क ख ग ह । ८ ग मंजण । ९. क दुक्ख । १०. क ड समता आलो । ११ क ड उअर्य; घ च उववासहसु । १२. क ड दोसविरहिव । १३ ख ग सुक्ख । १४. घ पुणउ । १५ घ उयइ नाणि जो लगइ ।

[ १० ] १. ड अणु । २ क घ ड माण । ३. ख ग तिहि । ४. ख डहि । ५. क घ ड रज्जुय । ६ ख ग च विहि । ७ ख ग हे । ८ क ख ग घ ड महि । ९. घ ड हहि । १० क ड जहि ।



- ५ लक्ष्मण<sup>१</sup> पंचवीम नरयड<sup>११</sup> तड  
 चालुपह<sup>१२</sup> लक्षड<sup>१३</sup> पण्णागह<sup>१४</sup>  
 पंकपह<sup>१५</sup> नरड<sup>१६</sup> लक्षड<sup>१७</sup> दह<sup>१८</sup>  
 पंचविहीणु<sup>१९</sup> लक्षनु तमनामहि<sup>२०</sup>  
 नरयमहानमहि<sup>२१</sup> पंच वि थिय  
 १० घत्ता—घनुहड<sup>२२</sup> सत्त पढममहि<sup>२३</sup> हत्यसवातिणि<sup>२४</sup> वि जायड<sup>२५</sup> तणु।  
 विउणउ<sup>२६</sup> विउणउ<sup>२७</sup> नारयह<sup>२८</sup> सेसमदीसु<sup>२९</sup> ढोड<sup>३०</sup> उच्चत्तणु ॥१०॥

[ ११ ]

- मज्झिमलोउ रत्तुपरिखंडिउ  
 जोयणलक्षनु मेरु मज्झंकिउ<sup>३</sup>  
 चउदिमु वेहिउ<sup>४</sup> धलयाथारं  
 हिमबंनड<sup>५</sup> तत्थ पडवय छह  
 ५ देवोत्तरकुह<sup>६</sup> सहं निम्मिय  
 दांवममुह<sup>७</sup> मयलु वि मंडिउ<sup>८</sup>  
 जंबुदीउ मल्ले दीवह<sup>९</sup> टिउ<sup>१०</sup>  
 लवणणवेण<sup>११</sup> विउणवित्थारं।  
 गंगापमुह<sup>१२</sup> नइउ चउहह<sup>१३</sup>  
 छत्तचयारि<sup>१४</sup> भोगभूमी थिय।

पचीस लाख नरक(-विल) हैं, और आयुष्य तीन सागर है (२)। तीसरी वालुकाप्रभामे पंद्रह लाख नरकविल और मात-सागरकी अवधि (आयु) है (३)। चौथी पक्षप्रभामे दस लाख नरकविल और दमसागर आयु है (४)। पांचवी धूमप्रभामे तीन लाख नरकविल और सत्रह सागर आयु है (५)। छठी तम-प्रभामे पांच कम एक लाख नरक-विल और आयुष्य बाईस सागर है (६); तथा सातवीं महातम-प्रभामें केवल पांच नरकविल और आयु तेतीस सागर होती है (७)। पहली पृथ्वीमे गरीर सातघनुप व सवा तीन हाथ ऊँचा होता है। ओप सब पृथ्वियोंमे नारकियोंकी ऊँचाई दुगुनी-दुगुनी होती जाती है ॥१०॥

[ ११ ]

मध्यलोक विस्तारमे चतुर्दिक् एक राजू है, और साराका सारा द्वीप व समुद्रोसे मंडित है। सत्र द्वीपोंके बीचमे एक लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है, जिसके मध्यमे सुमेरुपर्वत है, जो कि दुगुने विस्तारवाले लवणोदधिसे चारों दिशाओमे बलयाकार वेष्टित है। वहाँ हिमवंतादि छह पर्वत हैं। गंगाप्रमुख चौदह नदियाँ हैं। देवकुह व उत्तरकुहके साथ निमित्त

११ क ख ग ड 'यह, घ 'यहि। १२ क ड मकराहि। १३ ग ग तड। १४ क ड 'पह, ख ग 'याड, घ 'याहि, च 'याहे। १५ ख ग च 'हं। १६ क 'रह। १७ क ड 'यहि, ख ग घ च 'यह। १८ क 'रहं। १९ क घ ड 'पहहि। २० ख ग घ उचहि। २१ ख ग 'ह; घ 'ड। २२ क ख ग ड 'हि। २३ ख ग घ तिलि। २४ ख ग घ उचहि। २५ ख ग च 'पंचहि, घ 'पंचहि'। २६ क ड 'हि, ख ग घ 'हो। २७ क ड आउमु; ख ग घ 'वामही, घ 'वामही। २८ क 'तमेहि, ख ग 'तमेह। २९ ख ग 'हरड। ३० क ड 'महिहि, ख ग पढमहे महिहि। ३१ ख ग घ 'तिलि। ३२ घ 'डं। ३३ क घ ड 'णउ। ३४ घ 'महीहि। ३५ घ होउ।

[ ११ ] १. क 'उं। २ ग ग 'किय। ३ क ख ग ड 'हं। ४ ग ग ठिय। ५ ग ग मडिउ। ६ घ 'लवेण। ७ क ड नित्य। ८ घ 'हउं। ९ घ देउत्तर, क ड 'कुहहिहि, ख ग 'कुहत्तहि। १० क ड वेत्त'।

पुन्वावरविदेह<sup>११</sup> सुपसत्थ<sup>१२</sup> एकलुड थिउ कालु चउत्थ<sup>१३</sup> ।  
 भरहेरावएसु अवसप्पिणि<sup>१४</sup> विहि मि पवत्तह<sup>१५</sup> तह<sup>१६</sup> अवसप्पिणि<sup>१७</sup> ।  
 दाहिणमज्झि हिमालय उवहिहि<sup>१८</sup> विजयद्वेण गंग-सिंधुहि विहि ।  
 भरहसेत्तु छक्खंडिउ छज्जह<sup>१९</sup> आयारे रोवियधणु<sup>२०</sup> नज्जह<sup>२१</sup> ।  
 इय दीवाउ खेत्तकमु विउणउ<sup>२२</sup> धाडयखंडे<sup>२३</sup> पुक्खरद्धय<sup>२४</sup> तउ । १०  
 घत्ता—अड्ढाहयदीवई<sup>२५</sup> धरेवि<sup>२६</sup> मणुसोत्तरगिरि जाम नरालउ<sup>२७</sup> ।  
 पुक्खरद्ध धुरि परइ पुणु तिरिय-देव-संचारु विसालउ ॥११॥  
 [ १२ ]

उवरिमु पंचरज्जु परिमाणे सोलहसुग मुरयसंठाणे ।  
 नव-गोविर्ज-विजयचउजुत्तउ उवरि<sup>२८</sup> सव्वत्थसिद्धि पज्जत्तउ ।  
 विणिण-पढमसगहि<sup>२९</sup> विहि<sup>३०</sup> सायर तइय<sup>३१</sup>-चउत्थे सत्त रयणायर ।  
 उवरिमेसु विहि<sup>३२</sup> विहि<sup>३३</sup> सगई<sup>३४</sup> तह<sup>३५</sup> दस<sup>३६</sup>-चउदस<sup>३७</sup>-सोलह-अट्टारह<sup>३८</sup> ।  
 बीसोवहि-बाबीस सुहायरे<sup>३९</sup> साणुत्तर<sup>४०</sup>-गोवज्जहि<sup>४१</sup> सायर<sup>४२</sup> । ४  
 घट्टइ<sup>४३</sup> एक्कु चउहु उवरिज्जहि<sup>४४</sup> तेतीसोवहि आउसु<sup>४५</sup> सव्वहि<sup>४६</sup> ।

और भी चार भोगभूमि क्षेत्र स्थित हैं। पूर्व और अपर (पश्चिम)विदेहमें कल्याणकारी व सुखकर चौथा काल सदैव एकरूप स्थित रहता है। भरत और ऐरावत दोनों क्षेत्रोंमें कालके उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी आरोंका प्रवर्तन होता है। हिमालयके मध्यसे दक्षिणकी ओर विजयाद्वं (पर्वत)से होकर सागरपर्यंत बहनेवाली गंगा व सिंधु इन दोनों नदियोंसे भारतवर्ष छह खंडोंमें विभक्त होकर विराजमान है, और आकारसे चाप चढ़ाये हुए धनुषके समान (अर्धचंद्राकार) जाना जाता है। इस क्रमसे द्वीपोंसे क्षेत्रोंकी संख्या दुगुनी है। फिर घातकी खंड और पुष्कराद्वं हैं। इस प्रकार अष्टाई द्वीपोंकी लेकर मानुषोत्तर पर्वत-तक मनुष्योका आवास है। पुष्कराद्वंकी घुरो (मानुषोत्तर पर्वत) के परे तिर्यच और देवोंका विशाल संचार क्षेत्र है ॥११॥

[ १२ ]

ऊपर पाँच राजू परिमाण मुरजके आकारसे सोलह स्वर्ग तथा चार विमानोंसे युक्त नव-ग्रेवैयक हैं। (इन सत्रके) ऊपर सर्वार्थसिद्धि (नामक स्वर्ग) कहा गया है। प्रथम दो स्वर्गोंमें दो सागर, तृतीय और चतुर्थमें सात सागर तथा ऊपरके दो स्वर्गोंमें दस, चौदह, सोलह, अट्टारह और बीस सागर आयु है। आरण और अच्युत तथा नव-ग्रेवैयकोमें क्रमशः बाईस सागर व उससे एक-एक सागर बढ़ती हुई सुखाकर (सुखदायक) आयु है। ऊपरके चारो विमानोंमें एक

११ क<sup>१</sup>वरविदेहि, ख ग<sup>२</sup>विदेह। १२ क<sup>३</sup>घ ड ओस<sup>४</sup>। १३ घ<sup>५</sup>त्तहं। १४ क<sup>६</sup>ख ग<sup>७</sup>लु तह। १५. घ<sup>८</sup>ओस, ड<sup>९</sup>उसं। १६ क<sup>१०</sup>ख ग<sup>११</sup>हं<sup>१२</sup>हिहि, घ<sup>१३</sup>उअहिहि। १७ क<sup>१४</sup>हं। १८ ख ग<sup>१९</sup>रोविउं। १९ ग<sup>२०</sup>निं। २० घ<sup>२१</sup>हं<sup>२२</sup>णउं। २१ ख ग<sup>२३</sup>हं<sup>२४</sup>सडे, घ<sup>२५</sup>घादडसडि। २२ ख ग<sup>२६</sup>ट्टए, घ<sup>२७</sup>ट्टहं। २३ क<sup>२८</sup>हं<sup>२९</sup>दीवइ, घ<sup>३०</sup>दीवहं। २४ ख ग<sup>३१</sup>मणं। २५ ख ग<sup>३२</sup>नरलोउ।

[ १२ ] १ क<sup>३३</sup>लु<sup>३४</sup>रिम। २ क<sup>३५</sup>हं<sup>३६</sup>गेवज्जु, घ<sup>३७</sup>गेवज्ज। ३ क<sup>३८</sup>हं<sup>३९</sup>घरि, घ<sup>४०</sup>वरि। ४ ख ग<sup>४१</sup>सगोहि, ड<sup>४२</sup>सगहि। ५ क<sup>४३</sup>हं<sup>४४</sup>विहि। ६. ख ग<sup>४५</sup>तइयइ, घ<sup>४६</sup>तयइं। ७ ख ग<sup>४७</sup>घ<sup>४८</sup>विहि। ८. ख ग<sup>४९</sup>विहं, घ<sup>५०</sup>विहि। ९ क<sup>५१</sup>हं<sup>५२</sup>ड, ख ग<sup>५३</sup>हिं। १०. क<sup>५४</sup>घ तह। ११ च<sup>५५</sup>दह। १२ ख ग<sup>५६</sup>घ<sup>५७</sup>दह। १३. घ<sup>५८</sup>रहं। १४ ख ग<sup>५९</sup>घ<sup>६०</sup>च<sup>६१</sup>यह। १५ ख ग<sup>६२</sup>आणुं। १६ घ<sup>६३</sup>ज्जहि। १७. ख ग<sup>६४</sup>घ<sup>६५</sup>वट्टइ। १८ क<sup>६६</sup>हं<sup>६७</sup>वि। १९ क<sup>६८</sup>हं<sup>६९</sup>सल्लहि।

इय कप्पेसु विसयसुक्खारह<sup>२०</sup> वेमाणिय<sup>२१</sup> हवन्ति<sup>२२</sup> तह वारह<sup>२३</sup> ।  
 भावणदसपयार<sup>२४</sup> अण्णे तहि<sup>२५</sup> अट्ठमेय विवर एकत्तहि<sup>२६</sup> ।  
 जोइस पंचपयार पमाणिय एम निकाय चयारि<sup>२७</sup> वि जाणिय<sup>२८</sup> ।  
 १० घत्ता—एक्कारत्तु<sup>२९</sup> लोयग्गु<sup>३०</sup> थिउ<sup>३१</sup> विचरियत्तत्तायाह<sup>३२</sup> सुहावइ<sup>३३</sup> ।  
 दंसण-त्ताण-चरित्तणु<sup>३४</sup> अमलकलंकु सिद्धु<sup>३५</sup> तं पावइ ॥१२॥

[ १३ ]

पुणु वि सुणिदु कम्म निक्कंतइ धोहिमहागुणु रयणु<sup>३६</sup> वि चितइ ।  
 बालुयसायरस्मि ठिय भावइ होरयकणिय<sup>३७</sup> कवगु फिर पावइ ।  
 इय संसारि<sup>३८</sup> जोणिसंकिण्णइ थावरजंगमजीवपण्णइ ।  
 विरलिदियवाहुल्लु<sup>३९</sup> वियंभइ पंचेदियत्तणु दुक्खहि<sup>४०</sup> लभइ<sup>४१</sup> ।  
 ५ तहि<sup>४२</sup> मि<sup>४३</sup> सिगि-यसु-यस्सि<sup>४४</sup> बहुत्तणु कह व पमाए<sup>४५</sup> लहए<sup>४६</sup> नरत्तणु ।  
 लद्धए<sup>४७</sup> माणुसत्ते<sup>४८</sup> सुकुल्लम<sup>४९</sup> संपुणिदियत्तु<sup>५०</sup> सुइसंगमु ।  
 सव्वु वि दुल्लहु<sup>५१</sup> लहवि वियक्खणु धम्म न पावइ जइ दसलक्खणु<sup>५२</sup> ।

समान तेतोस सागरकी आयु है । इन कल्पोमे विषयमुख भोग सकनेमे समर्थ बारह वैमानिक देव होते हैं । दूसरे दस प्रकारके भवनवासी देव हैं, और व्यंत्तर एकत्र रूपमे आठ प्रकारके हैं । पाँच प्रकारके ज्योतिष देव कहे गये हैं । इस प्रकार देवोंके चार निकाय जाने गये हैं । (सत्रसे ऊपर) एक राजू- प्रमाण लोकाय (सिद्धलोक) स्थित है, जो खुके हुए छातेके आकारका शोभायमान है । दर्शन, ज्ञान व चारित्ररूपी शरीरको धारण करनेवाला अमल(कर्ममल रहित) व अकलंक सिद्ध पुरुष ही उसे प्राप्त करता है ॥१२॥

[ १३ ]

फिर वह मुनीन्द्र कर्मोंको काटने हुए बोधिरूपी महावृक्ष गुणकारी रत्न (बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा) का चिंतन करने लगा—बालुकामागरमे पड़ी हुई हीरेकी कणिकी इच्छा करनेपर उसे कौन पा सकता है ? इसी प्रकार नाना योनियोमे संकीर्ण तथा स्थावर व जगम जीवोंसे भरे हुए इस ससारमे विकलेन्द्रिय जीवोंका अतिजग्य बाहुल्य है । पंचेन्द्रिय शरीर बड़े कष्टमे मिलता है । वहाँ पर भी सीगोंवाले एवं अन्य पशुओं तथा पक्षियोंका ही बहुत्व है । किसी तरह बड़े कष्टमे मनुष्यत्व प्राप्त होता है । मनुष्यत्व मिलनेपर (फिर किसी तरह) उच्च कुलपरवरा, इंद्रियोंकी पूर्णता, एवं श्रुति(शास्त्र)का सगम (सयोग) होता है । और इन सब दुर्लभ वस्तुओंको

२०. ख ग र्ह, घ र्हि । २१. ख ग वडमाणिय । २२. व तह वारह, व वारहविह । २३. क ट अवरे तहि, अन्ने तहि । २४. क व व एकत्तहि, च एक्कहि तहि । २५. ख ग रे । २६. क व य । २७. च एक्कु । २८. घ म्मे । २९. क व ठिठ । ३०. घ यार । ३१. क वड । ३२. ख ग गुणु । ३३. क व सिद्ध ।

[ १३ ] १. क ण । २. क ड । ३. क ख ग व होरइ । ४. ख ग घ र । ५. ख ग घ णमइ, व णइ । ६. घ णड, ख ग णड । ७. ख घ च ल्ल । ८. घ मइ । ९. क व व ट्ठमिहि, ख ग रे । १०. क घ ड । ११. ख ग तहि । १२. क व पवित्र-यसु सिगि । १३. क ए । १४. क घ व ड । १५. घ ड । १६. क व मुत्ति । १७. क व मुकुल्लम, घ मुकुल्लम । १८. घ मण्णे । १९. ख ग हो । २०. क व व दह ।

तो निरल्यु जम्मु वि संपत्त<sup>३</sup> वयणु व<sup>१</sup> विमलु<sup>२</sup> चक्खुपरिचत्त<sup>३</sup> ।  
 धम्मु वि<sup>३</sup> लहेवि जो न तं पालइ<sup>३</sup> छारनिमित्तु घुसिणु सो जालइ<sup>३</sup> ।  
 घत्ता—इय चित्तिवज्ज रत्ति-दिणु दिद्वसम्मत्तचित्ति-दय-संजसु ।  
 भवे भवे सामिउ<sup>३</sup> परमजिणु होउ समाहिउ<sup>३</sup> महु मरणु<sup>३</sup> ॥१३॥

१०

[ १४ ]

पुणु वि पुणु वि परिभावइ मुणिवरु<sup>३</sup> दसविहधम्मह<sup>३</sup> आवज्जणपरु ।  
 कयदोसेसु<sup>३</sup> रोसु वंचिजइ<sup>३</sup> उत्तमखमइ<sup>३</sup> धम्मु मंडिजइ<sup>३</sup> ।  
 जाइमयाइमाणपरिहरणउ<sup>३</sup> महवचित्ति धम्मआहरणउ<sup>३</sup> ।  
 कायवायमण जोउ अबक्कउ<sup>३</sup> अज्जवभावे धम्मु तहि थक्कउ<sup>३</sup> ।  
 पत्तपरिग्गहलोहु चयंतहो<sup>३</sup> सउचायारपरहो<sup>३</sup> धम्मु वि तहो<sup>३</sup> ।  
 सप्पुरिसेसु साहुसंभासणु<sup>३</sup> सच्चु<sup>३</sup> वि धम्मु<sup>३</sup> अहम्मविपासणु ।  
 दुहमइदियगिद्विनिरोहणु<sup>३</sup> संजसु नामु धम्मु<sup>३</sup> मणरोहणु ।  
 कम्मक्खयनिमित्तु निरवेक्खउ<sup>३</sup> तउ चिजंतु<sup>३</sup> करइ<sup>३</sup> पावक्खउ<sup>३</sup> ।  
 सोलविहसियाण लं विजइ<sup>३</sup> जोगु दाणु तं<sup>३</sup> चाउ भणिजइ<sup>३</sup> ।

५

उपलब्ध करके भी यदि कोई बुद्धिमान् दण्डलक्षण धर्मको प्राप्त न कर सके तो उसका जन्म वैसे ही निरर्थक हुआ, जिस प्रकार चक्षुरहित निर्मल(सुंदर)मुख । और धर्म पाकर भी जो उसे नहीं पालता, वह मानो राखके लिए केसरको जलाता है । पूर्वोक्त प्रकारसे रातदिन सोचना चाहिए, और हृद्द सन्त्यस्तवृत्ति तथा दया व संयम रखते हुए यह भावना करनी चाहिए कि भव-भवमे परम जिन (अंतिम तीर्थंकर महावीर) हमारे स्वामी (इष्टदेव) हों, व मेरा मरण समाधिपूर्वक हो ॥१३॥

[ १४ ]

दशविध धर्मके अभ्यासमे तत्पर वह श्रेष्ठ यति पुनः पुनः चिंतन करने लगा—दोष (अपराध) करनेवालोंके प्रति रोषका त्याग करना चाहिए । उत्तम क्षमासे धर्मको अलंकृत करना चाहिए । जातिमद आदि मानका अपहरण करनेवाली मार्दववृत्ति धर्मका आभूषण है । काय, वाक् और मनका अवक्र ( निष्कपट, सरल )-योग आर्जवभावमे ही होता है, और उसीमें धर्म स्थित रहता है । पात्र आदि परिग्रहके प्रति लोभ त्यागनेवाले तथा शुद्धाचारपरायण व्यक्तिका ही शौच धर्म सच्चा होता है । सत्पुरुषोंके साथ साधु संभाषण ही सत्यधर्म है, जो अधर्मका विनाश करनेवाला है । दुर्दम इन्द्रिय-लोलूपताका निरोध करना यह संयम नामका धर्म है, जो मनका निग्रह करनेवाला है । कर्मक्षयके निमित्त निरपेक्ष ( निष्काम ) भावसे तपका संवय करनेवाला व्यक्ति ही पापोंका क्षय करता है । शीलसे विमूर्षित

२१ क ख ग ङ वि । २२ प्रतियोगे 'विमल' । २३ क ड में 'वि' नहीं । २४ क ख ग ङ ङ । २५ क ड 'हिय' । २६ घ मरणुज्जमु ।

[ १४ ] १ क ड जयं । २ क ड दहविहयम्महो, घुं धम्मह । ३ क ड संसु । ४ क घ ङ च दडि । ५ क ख ग ङ लमइ । ६ कुं जइ । ७ ख ग ङ ड, घ ड 'णं' । ८ क ख ग ङ 'चित्तु' । ९ क ड धम्मु आहरणउ, घ 'णं', ख ग ङ ड । १० क 'उ' । ११ क ड पत्तु । १२ क घ ड 'यार प' । १३ क तहु, ड तहु । १४ क ख सव्वु, च सच्छु । १५ क वम्म । १६ ख ग वम्म । १७ क वि ; ख ग ङ कि । १८ क ख ग ह । १९ व कि । २० ख ग घ सो ।

- १० एहु<sup>२१</sup> महारउ इय मइ मुचइ<sup>२२</sup> परिवज्जियकिंचित्तु<sup>२३</sup> पवुवइ ।  
 नवविह-वमचेरु<sup>२४</sup> जो<sup>२५</sup> रक्खइ<sup>२६</sup> चडेवि धम्मि सिववहुय<sup>२७</sup> कडक्खइ<sup>२८</sup> ।  
 धत्ता -<sup>२९</sup> दसलक्खणधम्माणुगउ<sup>३०</sup> जीउ न जाम कम्मु<sup>३१</sup> निक्कंदइ<sup>३२</sup> ।  
 मिच्छादंसणविणडियउ<sup>३३</sup> सुद्धचरित्ति ताम कउ नंदइ<sup>३४</sup> ॥१४॥

[ १५ ]

- अणुवेक्खाउ एम भावंतहो निम्मलझाणे चित्तु<sup>३५</sup> थावंतहो<sup>३६</sup> ।  
 देहभिन्नु<sup>३७</sup> अप्पाणु गणंतहो निरवहि-सासयसोक्खु मुणंतहो<sup>३८</sup> ।  
 पत्तपरीसहदुहअवसायहो विज्जुच्चरहो विमुक्ककसायहो ।  
 जिह जिह<sup>३९</sup> रुहिरु पियइ<sup>४०</sup> भूयावलि तिह तिह मुणि मणइ<sup>४१</sup> गय भवकलि ।  
 ५ मासु वि तडयडतु तुटंतउ पेक्खइ<sup>४२</sup> कम्मोवहि खुटंतउ ।  
 हइइ<sup>४३</sup> कडयडंतउ खज्जंतइ<sup>४४</sup> जाणइ<sup>४५</sup> कट्ठाइ व भज्जंतइ ।  
 एम समाहिप्र<sup>४६</sup> भरेवि सुसत्तउ<sup>४७</sup> गउ संवत्थसिद्धि<sup>४८</sup> संपत्तउ ।

व्यक्तियोंको जो योग्य दान दिया जाता है, उसे त्यागधर्म कहा जाता है। 'यह मेरा है' इस मतिको छोड़ देना परिवर्जित-किंचित्व अर्थात् आर्किकन्य धर्म कहलाता है। जो नव-विष ब्रह्मचर्यका रक्षण करता है, वह धर्म(रूपी पर्वतके शिखर) पर चढ़कर शिवबधूको कटाक्षोसे देखता है, अर्थात् मोक्षलक्ष्मीसे परिणय करता है। जन्तक जोव दशलक्षण-धर्मोंका अनुगामी होकर कर्मोंका उन्मूलन नहीं करता, तबतक मिथ्यादर्शनसे छला हुआ वह जीव शुद्ध चारित्र्य अर्थात् शुद्ध आत्मस्वभावमे लीनतामें कैसे आनदित हो ? ॥१४॥

[ १५ ]

इस प्रकार अनुप्रेक्षाओंकी भावना करते हुए, निर्मल(धर्म)ध्यानमे अपने चित्तको स्थापित करते हुए, अपने आत्माको देहसे भिन्न मानते हुए, निरवधि-निःसीम शाश्वत(मोक्ष) सुखको समझते हुए अर्थात् उसीका ध्यान करते हुए, एवं आये हुए परीषह-दुःखके वशीभूत न होनेवाले तथा कषायरहित विद्युच्चर महामुनिका जैसे-जैसे भूतोंका वह समुदाय रुधिर पान करता, वैसे-वैसे मुनि अपना भवकलह अर्थात् ससारमे बार-बार जन्म-मरणका झगडा, मिटा हुआ मानता। मासके तड़-तड़ करके टूटनेको वह महामुनि कर्मोपाधिके खड-खंड होनेके समान देखता; और कड़-कड़ करके खाये जाते हुए हाडोंकी वह भग्न किये जाते हुए काष्ठादि पदार्थोंके समान जानता। इसप्रकार वह शुद्धस्त्व अर्थात् शुद्धात्मा मुनि (शुद्धभावोसे)

२१ क व ड च एउ । २२ क 'इ, व मुज्जइ । २३ क ड 'किंचित्तु । २४ क व ड णवविह वभ' । २५ क जे, ड ज । २६ क 'इ । २७ र ग ग वहुव । २८ क ड दह' । २९ र ग ण गइ, घ 'णु गइ । ३० क ड कम्म । ३१ घ 'दंसणि विण', ख ग 'निर्वडियउ ।

[ १५ ] १ ख व चित्त । २ र ग वाव' । ३ क देव'; क ड 'भिण्णु । ४ र ग 'मोक्ख-मणंतहो । ५ घ 'परीसह', क घ ड 'अविसायहो । ६ र ग जह जह, घ जिह जिह । ७ घ 'इ । ८. ख ग तहं, तह, घ तिह तिह । ९ ख ग मणइ, घ मणइ । १० क र ग ड 'मलि । ११ क घ ट पेक्खवि । १२ क ग ड 'इ, ख हइय । १३ क ड 'डति । १४ र ग व ड 'ड । १५ क घ ट 'विणु मुत्तउ । १६ क च सव्वट्ट' ।

हृत्थपमाणु देहु जायउ तहिं<sup>१७</sup> सायर तिणितीस<sup>१७</sup> आवसु जहिं ।  
 जत्थहो<sup>१८</sup> चइवि जीउ<sup>१९</sup> नासियरइ<sup>२०</sup> एकभवेण लहइ पंचमगइ ।  
 इयकमेण आरिसे जिह<sup>२१</sup> जाणिउ<sup>२२</sup> जंबूसामिहो<sup>२३</sup> चरिउ<sup>२४</sup> समाणिउ<sup>२५</sup> । १०  
 घत्ता—सोयारनरह<sup>२६</sup> तह<sup>२७</sup> पाढयह<sup>२८</sup> चाउवणसंघसमदिट्ठिहि<sup>२९</sup> ।  
 सोक्खपरंपर<sup>३०</sup> परमफलु मंगलु<sup>३१</sup> देउ वीरु जिणु गोट्ठिहिं ॥११॥

इय जंबूसामिचरिणु सिंगारवीरे महाकब्बे महाकइनेवयत्त<sup>३२</sup>—सुयवीरविरइए वारहअणुपेहाउ<sup>३३</sup>  
 भावणाए विड्डुअरस्स<sup>३४</sup> सव्वट्ठसिद्धिगमणं नाम<sup>३५</sup> एयारसमो  
 संघी समत्तो<sup>३६</sup> ॥संधिः ११॥

समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ । वहाँ उसका हस्तप्रमाण देह हुआ, और तेसीस सागरकी आयु, जहाँसे च्युत होकर जीव समस्त रति अर्थात् राग (एवं द्वेष) का नाश करके एक बार ही जन्म लेकर पंचमगति अर्थात् मोक्षको पा लेता है । इस क्रमसे आर्य-परंपरासे जैसा जाना, वैसा जंबूस्वामी चरित्रको पूरा किया । श्रोता पुरुषोंकी तथा पाठकोकी और सम्यग्दृष्टियोंके चतुर्वर्ण संघकी गोष्ठोके लिए महावीर भगवान् सौख्य परंपरापूर्वक परमफल (मोक्षप्राप्ति) रूपी कल्याण प्रदान करे ॥१५॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार वीर रसात्मक महाकाव्यमें बारह अनुप्रेक्षाओंकी मात्रासे विद्युत्कारा सर्वार्थसिद्धि-गमन नामक एकादश संधि समाप्त ॥ संधि ११ ॥

१७ ख ग घ तिघितीस । १८ क छ ङ्ह । १९ ख ग जीव । २० क रई । २१ ख ग जहिं, ङ्ह जिह । २२ घ ङ ङं । २३ क ग ङ सामिहिं; ख सामिहि, घ सामिह । २४ क ङं । २५ क ख ग सम्माणिउ, घ वखाणिउ, ङ णिउं । २६ ख ग घ तह । २७ क वण्हो संघहो समं, घ समदिट्ठिहं; ङ वणसंघहो समं । २८ घ प्रति यहाँ समाप्त । २९ ख मंगल । ३० क प्रति यहाँ समाप्त । ३१ ङ पेक्ख । ३२ ङ सव्वत्थं । ३३ ख ग एयारसमो संधिपरिच्छेद सम्मत्तो, ङ एयारह्मा संघो ।

## प्रशस्ति

वरिसाण सयचउके सत्तरिजुत्ते जिणेदवीरस्स ।  
 निव्वाणा उववण्णे विक्रमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥  
 विक्रमनिव्वालाओ छाहत्तरदंससएसु वरिसाणं ।  
 माहस्मि सुद्धपक्खे दसस्मि दिवसस्मि संतस्मि ॥२॥  
 सुणियं आयरियपरंपराण वीरेण वीरनिहिद्धं ।  
 बहुलत्थपसत्थपयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥  
 इत्थेव दिणे मेहवणपट्टणे वड्ढमाणजिणपडिमा ।  
 तेणावि महाकइणा वीरेण पयट्ठिया पवरा ॥४॥  
 बहुरायकज्ज-धम्मस्थ-कामगोट्ठीविहत्तसमयस्स ।  
 वीरस्स चरियकरणे एक्को संवच्छरो लग्गो ॥५॥  
 जस्स कहं देवयत्तो जणणो सच्चरियलद्धमाहण्यो ।  
 सुहसीलसुद्धवंसो जणणी सिरिसंतुआ भणिया ॥६॥  
 जस्स य पसणवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिण्णिग ।  
 सीहल्ल लक्खणंका जसइ नामे त्ति विक्खाया ॥७॥  
 जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो वीया ।  
 लीलावइ त्ति तइया पच्छिमभज्जा जयादेवी ॥८॥  
 पढमकलत्तंगरुहो संताणकयत्तविडविपारोहो ।  
 विणयगुणमणिनिहाणो तणओ सह नेमिचंडो त्ति ॥९॥

वीर जिनेंद्रके निर्वाण प्राप्त होनेके चार सौ सत्तर (४७०) वर्ष होनेपर विक्रम काल ( वि० संवत् ) की उत्पत्ति हुई ॥१॥ विक्रम नृपके कालसे दस सौ छिहत्तर ( १०७६ ) वर्ष होनेपर माघ मासमें शुक्लपक्षमें दशमीका दिन आनेपर वीर (कवि) ने वीर भगवान्‌के द्वारा निर्दिष्ट प्रचुर अर्थ और प्रशस्त पदोंसे युक्त इस श्रेष्ठ चारित्रको आचार्य परंपरासे सुनकर उदार किया ॥२-३॥ इसी दिन मेघवनपत्तनमें उसी महाकवि वीरने वर्द्धमान-जिनकी श्रेष्ठ प्रतिमा प्रतिष्ठित की । वहुत-से राजकार्य एवं धर्म, अर्थ और कामगोष्ठीमें विभनत समझाले योग कवि-को इस चारित्रको रचनेमें एक सवत्सर लगा । शुभशील, शुद्धवंश, सच्चारिय व लब्ध माहात्म्य कवि देवदत्त जिसके पिता थे, और जिसकी जननी श्री सुआ कही गयी है, जिनके प्रसन्न-मुखवाले सद्वृद्धिमान्‌ तीन छोटे सहोदर भाई थे, जो सीहल्ल, लक्षणाक और जगई नामोंमें विख्यात थे; जिसकी पहली इष्ट भार्या जिनमती, दूसरी पद्मावती, तीनों लोलावती और चौथी अंतिम भार्या जयादेवी हुई; और जिसकी पहली पत्नीके गर्भमें संतानोंके लिए समृद्धिन्पी विदप-का प्ररोहरूप, विनयगुणरूपी मणिका निधान नेमिचंद्र नामक पुत्र हुआ; ऐसा वह योग कवि

सो जयउ 'कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण ।  
पाहाणमयं भवणं पियरुद्धेसेण मेहवणे ॥१०॥  
अह जयउ जसनिवासो जसनाओ पंडिओ त्ति विक्खाओ ।  
वीरजिणालयसरिसं चरियमिणं कारिय जेण ॥११॥

॥ इय जंबूसामिचरित्तं समत्तं ॥



जयवन्त हो, जिसने अपने पिताको उद्देश्य करके अर्थात् अपने पिताकी स्मृतिमें मेघवन पट्टणमें वीरजिनेन्द्रका पाषाणमय भवन बनवाया; और यशका निवास एवं 'यश' इसी नामसे विख्यात वह पंडित जयवन्त हो जिसने वीरजिनालयके समान इस चारित्रको लिखवाया ( अथवा रचना करनेकी प्रेरणा दी ? ) ॥४-११॥

इति जंबूस्वामी चरित समाप्त ।







## जम्बूसामिचरित संस्कृत टिप्पण

§ १ ये टिप्पण 'जम्बूसामिचरित' की जयपुरके जैन-आस्थानभण्डारीसे उपलब्ध ख एवं ग प्रतियों तथा जम्बूसामिचरित्र-पंजिका ( पं ) इन तीन प्रतियोंपर-से संकलित किये गये हैं । ख एवं ग प्रतियोंमें ये टिप्पण ऊपर-नीचे, बाएँ-शाहिने इन चारो हाशियोंपर मूलके केवल एक शब्दके ऊपर = का चिह्न लगाकर प्रतिकी पंक्ति सत्याका उल्लेख करते हुए लिखे गये हैं, फिर वह टिप्पण चाहे उसी शब्दपर हो, शब्दांशपर हो, किसी पादांशपर हो, पूरे पादपर हो, अथवा पूर्ण पंक्तिपर । इन प्रतियोंमें मूल शब्दका उल्लेख क्वचित् ही टिप्पणके साथ किया गया है, जेव सर्वत्र उपयुक्त पद्धतिके अनुसार केवल = चिह्नसे ही काम चलाया गया है । पंजिकामें इसके विपरीत सर्वत्र मूल शब्द, अथवा एक साथ यथावश्यक कई शब्दोंका उल्लेख करके टिप्पण लिखे गये हैं । इस पद्धतिसे टिप्पणो व मूल दोनोंको समझनेमें अत्यधिक सहायता मिली है । तीनों प्रतियों ( ख ग पं ) का पूर्ण परिचय भूमिकामें 'जम्बूसामिचरित' की सम्पादन सामग्रीके अन्तर्गत दिया गया है ।

§ २ टिप्पणोंकी भाषा अधिकांशतः सरल-संस्कृत है, जो स्थान-स्थानपर संस्कृत व्याकरणकी दृष्टिसे शुद्ध नहीं है । संयुक्त व्यञ्जनोपे भग्यवर्ती एवं अन्त्य पंचमाक्षरों इ, अ, ए, न् एवं म् इन सबके स्थानपर सर्वत्र अनुस्वार ( ँ ) का प्रयोग किया गया है, जैसे सम्बन्ध > संबंध, अङ्ग > अंग, पञ्च > पच, दण्ड > दंड कार्यम् > कार्य इत्यादि । ऐसी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं, जिससे टिप्पणोंकी भाषाको सामान्यरूपसे अपभ्रंश-संस्कृत कहा जा सकता है । टिप्पणोंकी भाषाका कुछ परिचय टिप्पणोंके पाठभेदोंसे भी प्राप्त किया जा सकता है । इस प्रकारकी भाषाका प्रयोग अनेक प्राचीन जैन-हस्तलिखित ग्रन्थोंमें हुआ है ।<sup>१</sup>

टिप्पणोंके सम्पादन में 'मूर्तिदेवो जैन ग्रन्थमाला' के प्रधान-सम्पादकोंके निर्देशानुसार टिप्पणोंकी भाषामें निम्न दो प्रकारके परिवर्तन सम्पादकने किये हैं । एक तो जहाँ-जहाँपर मूलमें पर-सवर्ण ( वर्ण का पचमाक्षर ) का प्रयोग नहीं मिलता, जैसा कि उपर्युक्त कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट है, ऐसे स्थलोपर सर्वत्र पर-सवर्ण जोड़कर शुद्ध-संस्कृतके अनुरूप बना दिया गया है; एवं दूसरे जहाँ-जहाँ पूर्ववर्ती र् के साथ संयुक्त अवस्थामें क्, ग्, ज्, ञ्, ट्, द्, ए, म्, य् एवं ड् का द्वित्व मिलता है, जैसे तर्क > तर्क्क ( १.१३ ) दुर्ग > दुर्गर्ग ( १.१२.६ ) पूर्वोपाजित > पूर्वोपाजितर् ( २.५.६ ) 'वर्ण' > अमरकृतवर्ण ( १.११.३ ) निर्दलित > निर्दलित ( ४.२२.५ ) वलीवर्द > वलीवर्ह ( ७.६.२२ ) सर्प. > सर्प ( ३.७.१२ ) समपित. > समपित. ( ९.१३.१२ ) गर्भो > गर्भो ( ४.१३.१६ ) मर्मदा > मर्मदाः ( ४.१५.११ ) लोभम > लोभम्म. ( ११.१२.३ ) कार्य > कार्य ( ३.१३.५ ) द्रोणाचार्य. > द्रोणाचार्य ( ८.२.९ ) गीर्वाणो > गीर्वाणो ( २.३.९ ) पर्वत > कुसुलपर्वत ( ५.१०.११ ) इत्यादि इत्यादि, ऐसे समस्त स्थलोपर 'र्' के परवर्ती मयुक्त व्यंजनके द्वित्वका लोप कर दिया गया है । इनके अतिरिक्त अन्य कहीं कोई संशोधन-परिवर्तन सम्पादकने अपनी ओरसे नहीं किये हैं । जहाँ किसी ईपत् संशोधन या अर्थ स्पष्ट करनेके लिए कोई सूचना देनेकी अनिवार्यता प्रतीत हुई है, वहाँ उसे [ ] के भीतर दिखाकर मूलसे स्पष्टतः अलग रखा गया है । कुछ उपयोगी पाठभेद भी मिले हैं, उनका यथास्थान मूल अपभ्रंश पाठोंमें उपयोग कर लिया गया है, और अन्य पाठभेदोंको टिप्पणोंके पाठभेदोंमें सुरक्षित रखा गया है । टिप्पणोंके द्वारा सूचित अर्थ जहाँ मूलके शब्दाद्यंके अनुकूल नहीं हैं, ऐसे स्थलोपर परिशिष्टमें विचार किया गया है । मूल अपभ्रंश-पाठोंके संशोधन एवं हिन्दी

<sup>१</sup> दृष्टव्य : डॉ० बी० जे० साडेसरा-द्वारा सम्पादित Lexicographical notes on Jain Sanskrit.

अनुवादमें ये टिप्पण बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हुए हैं, इस कारण समस्त टिप्पणोंकी उनके मूलरूपमें यहाँ प्रकाशित किया जाता है ।

### टिप्पण सन्धि-१

म० प० २ सुतराणि छंकारा— (ख पं) आदित्यजलकणालम्, (ग पं) तरणिरादित्यस्तस्य तनु शरीर तस्या लगनन्तरं ते विन्दवश्च जलकणास्तेषां छङ्कारास्ते जयन्ति । कथं पुनरचेतनविन्दुछङ्कारा वन्द्यन्ते ? जगद्वन्द्यतोषैकरदेवाङ्गसंपर्कत् तद्विन्दूना वन्द्यत्व जातम्, तेषामपि वन्द्यत्वमुपपद्यते । इष्टं च भगवदङ्गसंपर्कत् पुष्पगन्धोदकादीना वन्द्यत्वम्, पुष्प त्वदीयचरणार्जं च ? ] नपीठयोग्य भवति, देव जगत्त्रयस्य अस्पृष्टमन्यशिरसि स्थितमप्यतस्ते को नामसाम्यमनुशास्ति क्षयेश्वराद्यैरित्यभिधानात्, 'तरणिल-  
गतेर्विन्दुछंकारा' इत्युपलक्षणमेतत्, तेन त्रिभुवनविपतिसमाश्रितत्वेन तरणिवत् त्रिभुवने सचरता निर्मल-  
तोयविन्दूनां भगवदीयाऽमलज्ञानादिवदप्रतिहतगतित्वमुक्तम्, (पं) [ उक्तं च ]

सर्वमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-शुभाशुभान्निभवनं तव लङ्घयति ।

ये सञ्चितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेक कस्तासिचारयति सचरतो यथेष्टम् ॥

—अवता० स्तोत्र श्लोक १४

म० प० ६ अणियच्छिद्य 'लोचयो जाओ— (ग पं) अस्य व्याख्यानम् : कथं तत् ? परिकल्पितानि सहस्रसंख्यायाः परिकल्पितानि यानि लोचनानि तैः परिकल्पितलोचनेर्दृश्यो जातः, अपरिपूर्णलोचनो जातः, सहस्र[ाना]मपि लोचनानामरूपनक्षत्रमणिरूपावलोकने एव प्रतिफलम् अन्वयवयवपादलोकने तद्व्यापाराभावात् इन्द्रियान्तरासम्भवात् च तदवलोकने दुस्त्वत् तस्य सजातम्, (पं) उक्तं च —

'ल्लालोचने क्वाससत्तद्' तित्ति न पत्तं पुर्वरनेत्तद् ।

ब्रह्मि निबिडयद् तद्दि चियं गुत्तद् दुन्वल्गा इव पकि च्छुद्द ।।'

(ग पं) जिनस्य शरीरेऽष्टोत्तरसहस्रलक्षणानि, इन्द्रशरीरे सहस्रलोचनानि सर्वावयववलोकने असमर्थानि इति नयनावलोकने दोषस्य दारिद्र्यं जातम्, (पं) उक्तं च —

'अष्टोत्तरसहस्रलक्षणवत् इदोऽपि सहस्रनयण' इति प्रसिद्धम् ।

म० प० ७ अमिर...दिणसकं— (ग पं) अमणशोलभुजवेगप्रमितज्योतिश्चक्रमनितरजनी-विबसशङ्केति यथा भवति तथा (पं) क्षणे क्षणे जिनरात्रि-दिवसशङ्काम्, इन्द्रस्य हि सहस्रभुजकुर्वणा कृत्वा तुल्यतोऽनवरतं करणाङ्गहाराविधानेन प्रामितज्योतिश्चक्रेण दिवसे स्वस्थानच्युतेन रात्रिशङ्का क्रियते, रात्रौ स्वस्थानच्युतेन दिवसशङ्केति, अथवा क्षणे क्षणे स्वस्थानच्युते 'क्षेत्रान्तरगतं' रात्रिशङ्का, पुनः स्वस्थाने आगतैर्दिवसशङ्केति, ख जोइस > शरीरदोषया ।

म० प० ९ झगान्क "जस्स— (ग) वगान्को ह्रीमिः रति > रमणसुखम्, विपश्यसेवमसुखं यस्माद्येन वा, अयं रते [ ] नित्रमार्गो वा सुखं यस्मादौ रतिमुल काम, रडसुहो— (प) रति > रमणात् विपश्यसेवनात् सुखं यस्मात् अतौ रतिमुल काम ।

म० प० १२ गहियण्ण "सासिदं— (ग पं) गृहीतमन्यमूलशरीररूपात् व्यतिरिक्तं शरीररूपयुक्तं येन सः, किमर्थम् ? त्रिजगदनुवासितुं सन्मार्गे प्रवर्तयितुम्, न हि रूपत्रयविधानव्यतिरेकेन त्रिजगदनुवासितुं शक्यते ।

म० प० १३ रेहद्— (ग पं) कोयते ।

[१.१] १ पं वा । २. पं गतिस्त्वमुण्यत्व (मुषत्व ?) । ३. पं अनवरत । ४. पं च्युते । ५. पं आगते दिवस । ६. पं रेकेणा । ७. पं शासित्वं ।

म० प० १४ फणिणो "कणकडणो—( ग पं ) धरणेन्द्रस्य "विद्युतालिङ्गि [ "छद्दि ]त्त. आपाहोद्भूतनव-  
जलवर इव मस्तकबूडामणिकर्तुरित. फटाटोप फटासघातो वा<sup>१</sup>

आदिदेवं स्तुत्वा पार्श्वेनायस्तवनानन्तरं वर्द्धमानस्वामिन. स्तवनकर्तुमुत्तित, तत्र क्रमोल्ङ्घनेन  
स्तवनकरणं किं कारणम् ? ग्रन्थकारस्य वर्द्धमानस्वामितोर्थे रत्नत्रयलाभः । उक्तं च—

जस्मन्तिर्यं धम्मपहं नियच्छे तत्सतियं वेणुइय पडंजे ।

काएण वाचा मणसा वि णिण्णं सक्कारए त्ति सिरपंचमेण ॥

१.१.२ पारंभिय जिह कह—( ख ग पं ) यथा कथा आगमे प्रसिद्धा तथैव प्रारब्धा ।

१.१.३ वड्डमाणु—( ग पं ) वर्द्धमाननामा, तित्थु—( ग पं ) संसारसागरोत्तरणहेतुभूतत्वात् तीर्थमा-  
गम, उत्तमक्षमादिबर्मचारित्र्यं च, जगे वड्डमाणु—( ग पं ) जगति सर्वोत्कृष्टं ।

१.१.४ जम्माहिसेड—( ग पं ) जन्माभिपेक्षः; सेड—( ग पं ) सेतुवन् ।

१.१.५ बीरु—( ग पं ) निष्कम्पः, निष्ठासिध "बीरु—( ग पं ) निर्नाशिता "आशङ्का शङ्का" येन,  
हस्ते हि "अष्टयोजनायामदैर्घ्यं, योजनैकमुखाऽष्टोत्तरसहस्रकलशान् गृहीत्वाऽनन्तरं भगवच्छरीरमवलोकयतः  
दृष्ट्वा शङ्कोरस्य एतावता जलप्रवाहेन भगवान् "बाह्वित्वा नीयते लग्न इति शङ्का चरणेन मेरुचलना-  
भिहित्वा [ "हस्ता ] निर्नाशिता ततो भगवत. शक्रगे वीर इति नाम [ "मं ? ] कृतवान् [ कृतम् ? ]

१.१.६ धामु—( ग पं ) तेज, लोथा "धामु—( ग पं ) लोकालोकस्थिति ।

१.१.७ जयसासणु—( ख ग पं ) जगतः शासनं सम्मार्गं प्रवर्त्तनात्, सणु—( ग पं ) आता रक्षक<sup>१</sup>  
इत्यर्थः ।

१.१.८ भूइ—( ख पं ) राक्ष वा भस्म, भूइकथ—( ग पं ) भस्मीकृत, कंशोद्वधु—( ग पं ) "पद्म-  
बन्धुरादित्य इत्यर्थः; वंजु—( ख पं ) चन्द्र वा रविः ।

१.१.९ चरकमळा 'मुत्ति—( ग पं ) वरा वासो कमळा च लक्ष्मीरित्यर्थस्तथा आलिङ्गिता, चार्वा गोमा-  
वतीमूर्तिः विगुह्यात्मस्वरूपं शुद्धस्वस्तिकगङ्गाय<sup>२</sup> [ "सकाशं ? ] शरीरस्वरूपं च यस्य, साहित्य परममुत्ति—  
( ख पं ) साहितं मुक्ति मोक्षं वा, परममुत्ति—( ग पं ) परममुक्ति सम्पत्स्वाद्यष्टगुणोपेता सिद्धावस्था ।

१.१.१० वयणामंय "सत्तु—( ग पं ) वचनामृताश्वासितसकलप्राणिमण ।

१.१.११ तित्थंकर ( ग पं ) तीर्थभागिन उत्तमक्षमादिलक्षणो बर्म चारित्र्यं च, करोति परंपरामग्रे प्रति-  
पादयति स्वयमनुतिष्ठतीति "वैतीर्थकर, सासदपयपहु—( ग पं ) शाश्वतपदं मोक्षं तस्य प्रभु स्वामी,  
पग्था वा मार्गं, सम्मइ—सम्पत्ति नामा ।

१.१.१२ सम्मइ—( ग पं ) गोमनामति<sup>३</sup> केवलज्ञानम् ।

\*\*\* ... ..

१.२ १ मंदमइ—( ख ) स्वहामति, ( ग पं ) स्वल्पमति. "घनमतिश्च निपुणमतिरित्यर्थः; सविणयगिह—  
( ग पं ) सविनयवचन ।

१.२ २ जियइ—( ग पं ) जायति उद्यतचित्त इत्यर्थः; न जियइ—( ख पं ) न पश्यति ।

१.२ ३ नारुइ—( ख ग पं ) न योग्यो भवति ।

१.२.४ पयइ दोसललु—( ख पं ) असद्भूतदोषोद्भावनम्<sup>४</sup>, ललु ( ख पं ) दुर्जनः ।

८ प विद्युत् । ९ प वा तत् । १० पं वासंकिना । ११. पं द्वादशगोजनत्रयमाणकलशं । १२ पं बाहि-  
मित्वा । १३ पं रक्षक । १४ पं "रादित्येत्यर्थः । १५ पं "शकाश । १६. ग च तीर्थ" । ७. ग मति ।  
[ १.२ ] १. पं मतिश्चैतत्तरिदं निपुणं । २. पं जायति । ३. पं "द्वामनं ।

१.२.५ परगुण—परपरए—( ग पं ) परेषां गुणास्तेषां परिहारस्य परम्परा सातत्यं तथा; कथंभूतया ? परए—( ख ग पं ) परया परमप्रकर्षं प्राप्तया; ओसरड—( ग पं ) मम काव्याग्रे मा भूत्, हयासु—( ग पं ) हतवाञ्छः मदीयं काव्ये दोषाणामभावात् तदीया दोषोद्भावनवाञ्छा हता ।

१.२.६ विडसहो—( ग पं ) पण्डितस्य, मञ्जरसहो—( ग पं ) गुणान् गुणरूपतया, दोपान् दोषरूपतया च परिभावयतो मध्यस्थस्य ।

१.२.७ परिउच्छिधि—( ग प ) विनाश्य ।

१.२.८ एकग्रथु—( ग पं ) काव्यकर्तृत्वमेव एकः कस्यचित् गुणः, पडलेब्बइ निडणु—( ग प ) व्याख्यान-यितु निपुणः । अत्रार्थे दृष्टान्तमाह ।

१.२.९ एक्कु जे—जणइ—( ग पं ) एकः सुवर्णपाषाण हेमं स्वर्णं जनयति, न तस्य परीक्षा कर्तुं समर्थः; अण्णेक्कु—कुणइ—( ग पं ) अन्नेक्कु—कसवट्ट, रोषपाषाणस्तस्य सुवर्णस्य गुणदोषपरीक्षा करोति ।

१.२.१० डहयमइ—( ग पं ) करण—व्याख्यानीमयमतिः ।

१.२.११ सुइ सुहयइ—( ख ग पं ) श्रुतिमुखकरः, फुरंतु मणे—( ग पं ) चेतसि परिस्फुरन् प्रतिभासमानः, कन्नय्थु निवेसइ—( ख ग पं ) काव्यार्थमारोपयति ।

१.२.१२ रस—( ख ) शृङ्गार-हास्यादि, रसमावहि—( ग ) रसा नव शृङ्गारादयः, भावादिचतोद्भवा चल्हा[ल्ला]सास्तै, रसमावहि—( पं ) रसा नवः ।

शृङ्गार-नीर-भीमस्स-हास्य-रौद्र-भयानकाः ।

करुणाद्भुत-सान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ।

इति वचनात् । चित्तोद्भवैरुल्लासविशेषैः—

हावी मुखनिकार. स्याद् भावः स्याच्चित्तसम्भव ।

विलासो नेत्रयो ज्योति विभ्रमो भ्रूयुगान्तयो—रित्यभिधानात् ।

१.२.१३ सो जेय—करइ—( ग प ) स्वयंभूतमानः पुरुषः, गव्वं—अहङ्कारम्, यदि न करोति, तहो कउजे—धरइ—( ग पं ) तस्य निमित्तं एवमो दातवलयरूपः, एवविच पुरुषरत्न त्रिभुवने तिष्ठतीति मत्वेति त्रिभुवनं धरति ।

१.२.१४-१५ अकहिउज्ज—जाणहि—( ग पं ) अकथ्यमानोऽपि कविश्चोदयश्च लक्ष्यते, कै लक्ष्यते ? बहुजाणहि—प्रचुरज्ञानवद्भिः, किं विशिष्टोऽपि ? कय अण्णवण्णेत्यादि—कृताभ्यवर्णपरिवर्तमानोऽपि । कविः कृताभ्यवर्णपरिवर्तनं, अकारादिवर्णचितवर्णरचनाविशेष, चौरस्तु कृतब्राह्मणादिवर्तनरूपविशेषः; कैः कृतया लक्ष्यते ? एवमवयवसंघाणहि—( ग पं ) सुकवि प्रकटैः प्रसन्नोदार-गम्भीर-सुदिलष्ट-रसादयः काव्यवयव-संघानि, ( पं ) सधिविधानैश्च, चौरस्तु प्रकटैश्चिद्वचनसंघानि. लक्ष्यते ।

१.३.१ वावडेण—( ख ) व्याप्तेन, सामगि—जडेण—( ख ) एव गुणविशिष्टमहाकवोद्वारन् काव्यवयव-कृतम्, मया जडेण—मूर्खेण कं [ किम् ? ] ।

१.३.२ परिकळिउ—सइसय्थु—( ख पं ) सहृदयालक्षणेनार्थेन वर्तते इति सद्वार्थः यः प्रदीप एव मया परिकलितः, परिज्ञातः, न तु शब्दशास्त्राणि अष्टौ व्याकरणानि, सुत्तु—सूत्राण्यम्, सुत्तु जि—वस्तु—( ख पं ) सूत्रमपि येन वस्त्रं निष्पाद्यते तत्परिज्ञातम्, न तु शब्दमिद्विवन्धनव्याकरणयूत्रम्, चतुष्काशातकृत-सूत्राणि ।

४. पं प्रकर्ष । ५ ग एवकः । ६ ग व्याख्यातुरुचयः । ७ ग श्रोत्रः । ८ पं आकारादिः ।

१ ३.३ वनगड सुणिड—( ख ) वने गज एवं श्रुतम्; वनगड \*\*\*सुणिड—( ग पं ) स्वच्छन्दो घण्टारहितश्च वनगज एव मया श्रुतः, न तु सहृच्छन्दो<sup>१</sup> समात्रा प्रस्तारेण निघण्टो<sup>२</sup> नाममालाऽमरकोशादिर्न<sup>३</sup> श्रुतः<sup>४</sup>, गोरस \*\*\*\*\*सुणिड—( ग पं ) तत्र गोरसविकारो दधिविकार एव श्रुतम्, विज्ञातम्, न तु तर्को युक्तिसाश्च<sup>५</sup> कन्दली किरणावली अष्टसहस्रो<sup>६</sup> प्रमेयकमलमार्त्तण्डादिकं न श्रुतम्, न ज्ञातम् ।

१ ३.४ सहकह \*\*\*सेड—( ग पं ) समुद्रवन्व रामायणे एव श्रुतः, न तु सेतुवन्वो नाम महाकविना प्रबन्धेन [ प्रवरसेनेन ? ] राज्ञा विनिबद्धः काव्यभेद काव्यविशेषः, सेड—( ख ) समुद्रवन्वः ।

१ ३.५ गुण्य 'सुयनामकरणि—( ग पं ) गुणः स्वजने एव वृद्धिश्च सुतनामकरणे एव श्रुतः, न तु 'नाम्यन्तयोर्दो' 'तु विकरणयोरुणां' इति 'वृद्धिरादौ सणे इति ( ? ) च एते गुणवृद्धौ व्याकरणे प्रसिद्धे<sup>१</sup> ज्ञाते; चारित्तचित्तु—( ग पं ) चित्तं चारित्र्यमेव ज्ञातम्, न तु वृत्त एकाक्षरादि वृत्तजातिविशेषः<sup>२</sup>; पयवंपुवरणे—( ग पं ) पयसः पानीयस्य बन्धः वरण एव ज्ञातः, न तु गद्य-पद्यबन्धरूपाः काव्यविशेषाः<sup>३</sup> ।

१ ३.६ दुण्वयणु—( ख ) दुर्जनवत् दुर्वचन, दुण्वयणु \*\*\*जाणिड—( ग पं ) दुर्वचनः पिशुन एव ज्ञातः, न तु द्विर्वचन द्विर्वचनमनभ्यासस्यैकस्वरस्याद्यस्य, डवलक्लिड \*\*\*\*\*समासु—( ग पं ) सहमासेन वर्तत इति स-मासः सवस्तर एवोपलक्षितो ज्ञातः, न तु व्याकरणे प्रसिद्ध<sup>४</sup> समासोऽप्ययोभावादि<sup>५</sup> ।

१.३.७ मुहियए—( ग पं ) एवमेव ।

१.३.८ निरस्थु—( ग पं ) विकलप्रायासः ।

१.३.९ अह \*\*\*\*\*पर्वणु—( ग ) अथ महाकविरचितप्रबन्धः ।

१.३.१०. विड्डड \*\*\*\*\*पहसिज्जह—( ग पं ) यथा अतिकठिने महारत्ने हीरकेण विद्धे कुतश्छिद्रेण मृदुना सूत्रेणापि प्रविश्यते, तथा महाकविरचिते 'गाथाप्रबन्धरूपे जम्बूस्वामिचरित्रप्रबन्धः पच्छदिका [ पञ्च-दिका ? ] प्रबन्धद्वारेण सुलेन क्रियते इत्यत्र न किञ्चिदाश्चयम् ।

१ ४.१ गुडखेड—( ख ग ) गुडखेडदेशात्, सुहचरणु—( ग पं ) शोभनानुष्ठानः ।

१.४.२ सिरिडाडवग—( ख ) गोत्र ; निम्बूडकसु—( ग पं ) काव्यकरणे सुकविकशोत्तीर्णः ।

१.४.४ कविशुण—( ग पं ) कविताशुणः ।

१.४.७ तहो—( ख ग ) देवदत्तस्य कवेः ।

१.४.८ संतुवगम्भुभड वीरु—( ख ग ) संतुवा माता, वीरु कविः ।

१.४.९ अखलिय \*\*\*\*\*कलिबि—( ग पं ) संस्कृतकविरत्नकलितस्वर इति ज्ञात्वा, सुड—( ग ) वीरु कविः ।

१ ४.१० कि इयरें—( ग पं ) संस्कृतप्रबन्धेन किम् ।

१ ५.३ रसह—( ग पं ) वाद्यति ।

१ ५.४ सुहो—( ख ग पं ) मित्र ; वीरु \*\*\*\*\*दिहि—( ख पं ) हे स्वजनवृत्ते वीरः ; ( ग ) कुत-सुजनवृत्ते वीरः ।

१ ५.५ उदरिड—( ख ग पं ) विरचितम्, संकिल्लहि—( ग ) संक्षेपं कृत्वा कथय ।

१ ५.६ पडिमणह—( ग पं ) प्रतिवचन ददाति ।

[ १.३ ] १ पं छंदः । २. पं निघण्टो । ३. पं कोशादि न । ४. ग श्रुताः । ५. ग विक्र न श्रुत न ज्ञातः । ६. पं प्रसिद्धा । ७. ग रूपः काव्यविशेषः । ८. पं द्वाः । ९. पं भावादि । १०. पं रूपः ।

१.५.७ किय तुच्छकहा—( ग ) मक्षिता स्वल्पा कया कृता सती, ( ग ) संक्षिप्त-स्वल्पा कृत कया ।

१.५.८ सरहु—( ग पं ) अष्टापद ।

१.५.१० निवाणु—( ग पं ) जलस्थानम् ।

१.५.११ थोवउ करयथु—( ख ग पं ) स्तोक करकस्वितं संस्कृतम् ।

१.६.१ अवि य—( ख ग पं ) अपि च; समस्यमाणेण—( ख ग पं ) भरतवचन समर्थमानेन :

१.६.३ जाणं—( ख पं ) वेपाम् ।

१.६.४ उगिररंता—( ख ग पं ) प्रकाशयन्ती ।

१.६.५ मंति वाई वि—( ग पं ) कवयः, वाई वि हु—बाहुर्वादिनोऽपि बहव सन्ति, हु—(ख) इह लोके ।

१.६.६ रममिद्धिर्मंचियत्थो—( ख ) रससिद्धि सचियर्थो [ 'तायो ? ] निपातितार्था वा सुवर्णशृङ्गारादि नवन[वा]दि, ( ग पं ) रसमिद्धया संचितार्थ. निष्पादित सुवर्ण, पले शृङ्गारादिरसाना सिद्धयाज्जया संचितो रचितः शोभनवर्णेषु अर्थो येन स, चिरलो—( पं ) प्रविरल, मृद्धो—( ग पं ) अन्य ।

१.६.७-८ जाणं चाणी साहयवट्टि इव अट्टपुक्कल्ये निब्बडह—( ग पं ) यथा सावकवतिरवृष्टपूर्वेषु निधानलक्षणेषु उभयोपविशेषोपपत्ति, ( ख ग पं ) तथा वेपा कवीनां वाणी केनापि कविना अवृष्टपूर्वेषु निपतति प्रवर्तते, अथा निब्बडह—विचार्यमाणा कणोत्तोर्णा भवति । कथं पुन केनाप्यवृष्ट्यै केपाचिन्मति. प्रवर्तत इत्याशङ्क्याह ।

१.६.९ जाणं रमह—( ग पं ) वेपा कवीनां समग्रगन्दीव. संस्कृतगन्ध-प्राकृतगन्धसंवात. स एव सिद्धुक रमति स्फुरति उच्छलति नानार्थेषु प्रवर्तते, कस्मिन् सति ? अहफहम्मि—( ग ) मत्प्रेत स्फुरतिस्तस्मिन् कन्दुकोच्छलन् भूमिप्रदेशे, ( पं ) मत्प्रेत फडक. उच्छलनमनेकार्थेषु प्रवर्तनम् ।

१.६.१० साणं परिस्फुरह—( ग प ) तेभ्योऽप्युपरितना अधिका कस्यापि बुद्धिः परिस्फुरति अपूर्वावेपु प्रवर्तते ।

१.६.१६ जिणवहनाह—( ख ग पं ) जिनमतेऽऽभार्याया. नाथ, जिनपतिर्वा नाथो यस्य ।

१.६.१८ धम्माधार आरहभूसणु—( ख ग पं ) पाण्डवाना नाथो युधिष्ठिर-धर्माधारयुक्त ( ५ ) निर्द्वैपगव, तथा [था] मगह[व] देशोऽपि, आरहभूसणु—पाण्डवाना भारतपुराणस्य भूपणो मण्डनभूत, मगवदेशस्तु भरतस्थेऽथ ( ? ) भारता ( ? ) भरतक्षेत्रं तस्य भूपणः ।

१.६.१९ विसवसार हंसु व—( ख ग पं ) वीनां पक्षिणा शतानि तेषु मध्ये यो हंस. सार उत्कृष्टो वर्ण्यते, तथा विपयाणां देशविशेषाणा मध्ये मगवदेश. सारो वर्ण्यते; किं तु "हंसु व—( ख ) हविष-मध्ये यथा तदृशी तेन पयोधरासार. तस्य सार्थो तथा मगवदेश विपयसार, ( ग पं ) किन्तु यथा तदृशीस्तनमण्डलस्पर्श इव, तस्या स्तनमण्डलस्पर्शो यथा विपयेषु मध्ये सारस्तथा मगवदेशो विपयेषु सार ।

१.६.२० कुहह वीसर—( ख ग पं ) कुकविश्रुतकथाप्रवन्वो हि विगतस्वरवन्व विनिष्टसन्निविधान-विकलः देशस्तु विनिष्टोद्यानादिषु वीनां पक्षिणा स्वरे शब्दे युक्त; कुकहकणकहवन्तु नीरसस्त सुमनोहर मावह—( ख ग प ) कुकविश्रुतकथाप्रवन्व. नीरसस्य ग्राम्यस्य पुरुषस्य, मावह—प्रतिभासने, सुमनोहरः, न तु पण्डितानाम् देशस्तु विनिष्टनीर. सत्येव सुमनोहरः ।

[१.६] १ गंयती । २ पं दित । ३ ग वि । ४ पं मतो । ५. ख पतेवा । ६. पं यस्या । ७ प तथा । ८. पं ष्टोपवनादिषु ।

१६.२१ जहि—(ग पं) यत्र देहे; जत्र “रमणज—(ख ग पं) जलवाहिन्यो नद्यः स्त्रीसमानाः, स्त्रियो हि स्मररामना, नद्योऽपि मन्दरामनाः, मन्दप्रवाहाः, गुरु “रमणज—(ग पं) तया स्त्रियो गुरुगम्भीर-बलाधिकरमणा निरम्भप्रदेशाः<sup>१०</sup> भवन्ति, नद्यः पुनर्ये गुरुवो गम्भीराश्च बलाधिका महाह्लास्त<sup>११</sup> एव प्रमाणा नितम्बप्रदेशा. यासां ता, बलाहियरमणज—(ख) रमणदेशबलाधिकाः ।

१.६.२२ वियसियइंदीवर—(ग पं) विकसितपद्म ।

१६२३ जलगाय "थणहारउ—( ग षं ) स्त्रियो हि स्थूलस्तनधारिण्यो भवन्ति, नद्य, पुनर्जलगजा-जलहस्ति-  
नस्तोपा<sup>१५</sup> कृमस्यलानि तान्येव स्थूला-महान्तः स्तना. तद्वारिण्यः ।

१.६.२४ डह्यकूल... वत्तणड—( ख ग पं ) <sup>१३</sup> उभयतटवृक्षपरिहितवस्त्राः; सज्जियरसणड—( ग पं )  
बहुमेखला ।

१६२५ सरिङ—(ख ग पं) आश्रितः<sup>१६</sup>; अपेड—(ग पं) अपेयपानीयम्<sup>१७</sup>, विसायरु—त्रिपं कालकूट-  
पानीयं च तस्य आकरः समग्रं तम् ।

१६२६ जडमह्यहि<sup>१६</sup>—(ग पं) जडमतिभिर्जलमयीमिदं, अहं च तियदि<sup>१७</sup>.....आयस—(ग पं) अथवा स्त्रीणां स्वरूपमेतत् गणवन्तं परित्यज्य सलवणे लावण्यवन्ते आदरं कुर्वन्ति ।

१७१ जहिं ...कुललता इव— (ख ग पं) यत्र देशे सरोवराणि सन्ति कुकलत्रसमानानि, कुकलत्राणि हिङ्हिङितपात्रत्वात् हसितशतवाराणि-वक्ष्णाणि भवन्ति, सरोवराणि तु हसितानि विकसितानि शतपत्राणि पद्यानि यत्र तानि; अक्षिण्य— (ख) अविनयः, सरोवरपक्षे जलनिर्गमनप्रवेगः; अक्षिण्यवत्तद्— (ग पं) अविनयवन्ति, सरोवराणि तु अविनयवन्ति, जलनिर्गम-प्रवेगोऽविनयः, तेन युक्तानि भवन्ति ।

१.७.३ मार—(ख ग पं) मारः हृद्वक्षः कामरुचः, उच्छ्राणहं” पियाळवणसारहं—(ग पं) उद्यानानि परिवर्द्धित हृद्वक्षानि भवन्ति, योवनानि तु परिवर्द्धितकामानि भवन्ति; उद्यानानि प्रियाळा चारवृक्षास्तैर्वनैः पानीयैश्च साराणि उत्कृष्टानि भवन्ति; योवनानि तु प्रियाणामालापाः कामोद्रेककारीवृक्षानि तैः साराणि, पियाळवणसारहं—(ख) चात्त्वक्षैः, पानीयैः साराः, पक्षे प्रियाणामालापाः तैः ।

१७.६ असुहाविष—रहियहि—( ख ग पं ) अतिगोल्यादमुखापितमुखै. रुचिरहितरुचियुक्तैः ।

१.७७ छुहछिज्जह—( ग पं ) वृक्षसा नश्यते ।

१७९ गौडगणे नीलनियसगिहि—(ख ग पं) गोकुले परिहितनीलचेलाभि; धणधण...कंतिहि—  
(ख पं) धनास्थगोक्षतोभयाऽन्योन्यसंलग्ना. ये स्तना. रमण च नितम्बप्रदेशस्तैराक्रान्ताभिः ।

१७१० पहि...विलंघु—( ग पं ) पथि मार्गे, पथिकानां गमनविलम्बः क्रियते ।

१.८ ? समीरणु...रंधु—( ख ग प ) वायुभूतदरीविवरप्रदेशा<sup>१</sup> ।

१८२ हल्लिर " वसेण—( ख ग पं ) दोलायमाना महल्लो<sup>२</sup> महत्स्यो मञ्जर्व<sup>३</sup> कलमगालिकणिग्रानि तद्गेन  
तद्व्याजेन, घुमइ व धरणि—( ग पं )<sup>४</sup> घूर्मतीव धरणी पृथ्वी ; कथंभूता सती ? रंजियरसेण—( ग पं )  
रसो मध<sup>५</sup>, कलमगालिमकरन्दास्वादनं<sup>६</sup> च तेन रंजिता ।

१८.३ उद्धृत्सूयरोहि—(ख ग पं) रोमाञ्जिता इव अतिनिगन्तव्यपरमुद्गै; उच्चलह व  
वल्गरोहि—(ख ग पं) उत्पततीव चपलकोपरपरि-स्मिन्न,ग्रथै ।

१.८४ विसृष्ट—फलेहि—(स्व ग पं) विकसितमुखकर्पासफलैः ।

९. गं ममाना । १० गं प्रदेक्षा । ११. पंं ब्रह्मास्त । १२ पंं हस्तिना. तेषां । १३. पंं तद्वक्त्राः ।

१४ पं आश्रिताः । १५. पं पानीयाः । १६. पं जलं । १७ पं त्रियह । [१.८] १ गं प्रदेश । २. पं मह-  
ती या मंजरो । ३. पं धूर्मयतीव । ४ ग मखं । ५ प्रतिघोर्मे रन्द. स्वादनं ।



१८५ सर्वगुक्करसिन्धु—(ख ग पं) सर्वाङ्गोत्कर्षिता सर्वाङ्गे हर्षिता इत्यर्थः ।

१८६ अंतचिक्कारर्हि—(ग पं) यन्त्रचौत्कारशब्दै, गायह्व—(ग पं) गीतं गायन्तीव; सुक्क  
सिक्कारर्हि—(ख ग पं) यन्त्रबाहुकास्वाद्यमानरससौत्कारे ।

१८७ जंपिण्णि—(ग पं) जल्पकैः ।

१८८ देवउल्ल—(ग पं) देवकुलैर्देवगृहैर्विशूषिताः [ : ] ग्रामा शोभन्ते, अवहण्ण—(ग पं)  
अवतीर्ण [ : ], गामसग्गा व विचित्तघाम—(ग पं) ग्रामा [ : ] नानाप्रकारस्थानाः, स्वर्गस्तु  
विचित्रस्थानाः, नानाप्रकारतेजसश्च ।

१८९ परिहा—(ग पं) छातिका; सुरपुर—(ग पं) इन्द्रपुरीलक्ष्मीनिर्दलन<sup>१</sup> ।

१९१ गोउर—(ख ग पं) प्रतोलि; दुइमं—(ख ग पं) कन्नूणा दुष्प्रवेशम्; कुंसविलया—  
(ख ग पं) पानीहारिण्य ।

१९२ संघट्टियगो—(ख) अङ्गो शरीरसङ्घट्ट [ नम् ] ।

१९३ सेवखुयकुक्रमे—(ग पं) प्रस्वेदगलितकुङ्कुमे, कुसुमदामेहि—(ग पं) पुष्पमालाभिः; गुप्पय—  
(ग) स्रवति ।

१९४ गडमंतरे—(ख ग पं) गर्भगृहे; कामपंडुर—(ख ग पं) गवक्खतरे—(ख ग पं) कामाद्रेकेन सजात-  
पाण्डुरकपोला, गवाक्षान्तरे गवाक्षछिन्ने ।

१९५ सासमर—(ख ग पं) सुगन्ध<sup>२</sup> देवासवायुस्तेन सम्मिलिताः<sup>३</sup> भ्रमरा. यत्र तत् तथाविधं  
मुलं लोकानां वर्धयति, राहुससि—(ग पं) राहुससियोगे ग्रहणं तद्भ्रान्तिं समुत्पादयति ।

१९६ फल्लिहसिल—(ग पं) स्फटिकमणि<sup>४</sup>; पोमराएहि—(ख ग पं) पोमराणि रक्तवर्णं  
प्राङ्गणे<sup>५</sup> रङ्गावली विरच्य प्रकाशिता, सा च स्फटिकमणिं बुध्नाकान्त्या तन्मिश्रिता सवलिता ।

१९७ रविकंतकिरणेहि—(ग पं) सूर्यकान्तमणिकिरणैः खिज्जय—(ग पं) नवयति, जामिणी—  
(ग पं) रात्रिः ।

१९८ कसणमणिखंड—(ख ग पं) इन्द्रनीलमणिसंघातः, चिचहय—(ख ग पं) खञ्जितं मण्डित-  
मित्यर्थः, चलवक्खियकिरणुज्जलं—(ग पं) स्फुरितकिरणोज्ज्वलम् ।

१९९ आहणह्व—(ग पं) आहन्ति [ ? ] स्थिरं यथा भवति तथैव केवलम्; कुंघह्वचंय—  
(ग पं) भग्नचञ्चू ।

१९-१०-११ चरि चरि ईसर जणु । नियरिद्धिप—(ख ग पं) एवमिदं विभूतिमुक्त राज-  
गृह्णमरं दुष्टत्वा स्वर्गोऽप्यात्मनो हीन मन्यते, दुस्थ चीन च, स्वर्गे हि एका गौरी सीमन्तिनी स्त्री, इह  
गृहे गृहे गौर्याः, सीमन्तिन्यः<sup>६</sup>; स्वर्गे, शक्र<sup>७</sup> एक एव धनदः, इह तु गृहे गृहे धनदायकाः, धनेश्वरा, स्वर्गे  
एक एव ईश्वर, इह तु गृहे गृहे ईश्वरा धनकनकसमृद्धा इत्यर्थः ।

११०२ गधज्जाणुलगा आशवणि—(ख ग पं) गीतानुसारिणी वीणा ।

११०३ जहि नेउर—(ग पं) हसन्त्यहो गह्वर—(ग पं) हसन्त्यहो हसन्त्यहो हसन्त्यहो हसन्त्यहो हसन्त्यहो  
आमयति, नूराणि अस्मान्स्वजातीयानीति भ्रान्तिं वा तेषामुत्पादयति, गो—(ग पं) वाणी शब्दः ।

६ ग लन । [ १.९ ] १ पं शः । २. पं वायु. तस्मिन् मिलिता । ३ ग मणि । ४. ग प्रायणैः । ५. पं शक्र  
स्वर्गे । [ १.१० ] १ पं हसानुलगा प्रा ।

- १.१०.४ दप्पण ...आसत्तिपु—( ग पं )—रूपावलोकने आस[स]क्तया ।
- १.१०.५ सुखियापु—( ग पं ) अगुत्पत्तया, इहंतिपु सिखगुणु—( ख ग पं ) दन्तानां श्वेतगुणमभिपत्त्या इत्यर्थः ।
- १.१०.६ कामिणोड—सखाह—( ग पं ) चन्दनशाखा. विरचितभोगैः कृतफटाटोपैः भुजगैः सर्पैः सनाथाः समविताः, कामिन्यस्तु विरचितवस्त्राभरणाद्युपभोगैः कामुकैः सनाथाः, भोय—( ख पं ) भोग, फटाटोप, वस्त्राभरणाद्युपभोगश्च ।
- १.१०.७ जाहं रुड पिच्छिनि—( ग प ) यासा कामिनोनां रूपं प्रेक्ष्य; कलङ्कड—( ख ग पं ) सकल-कलायुक्तम्, हेलपु—विच्छिड—( ग पं ) हेलया—अप्रयासेन जित-वशीकृतं महेश्वराणां चित्तं येन रूपेण ।
- १.१०.८ जय ...मययट्ट—( ग पं ) त्रिनयनजयाभिलाषी, त्रिनयनो महेश्वरस्तद्भयात् व्रस्तो विभीतः ; सरणड ...वड्ड—( ग पं ) तासामङ्गैः काम. शरणं प्रविष्टः ।
- १.१०.९ धगधग ...ठवेदिणु ( ग पं ) तेन तत्र शरणं प्रविशता कामेन निमग्नस्त्व शृङ्गारभाण्डागारं धनस्तन-कलशेषु मुद्रा रचयित्वा कृत्वा स्थापयित्वा ।
- १.१०.१० अहरपु ...छुहेवि—( ख ग प ) ओष्टे मधु आत्मीयं माधुर्यगुणं प्रक्षिप्य काममदम्, धणु सज्जीड—( ख ग पं ) धनुः प्रत्यञ्चायुक्तं कृतम्, मयसंगहिं सूरसंगहिं सुक्कु—( ग पं ) काममदस्य यौवनमदस्य च संगः मन्वो येषु भ्रूमङ्गेषु [ तेषु ] मुक्तं कृतम् ।
- १.१०.११ बाण ...कड्कखहि—( ग प ) आत्मीयभाषाः नयनकटाक्षेषु समपिताः; कश्चभूतेषु ? कामुभ—<sup>३</sup>द्वखहि—( ग पं ) कामुकजनमनः<sup>३</sup>कदर्शनदक्षेण ।
- १.१०.१२ रमणुलप—( ग प ) शोणितले, ऊरुखंभ...सुवणुलप—( ख ग पं ) जङ्घास्तम्भशोभित-धवलगृहे, रड् ...क्रियड—( ग पं ) रति-श्रीतिलज्जान्तःपुरस्य आवासः कृतः ।
- १.१०.१३ रड्खल—( ग पं ) काम ।
- १.१०.१४ लवणणवकूकाविहि—( ग पं ) लवणार्णवतटपर्यन्त [ . ], ( ख ) आसमुद्रपर्यन्त [ . ] सखर—<sup>३</sup>पाक्षिकक—( ग ) पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलगृहीतकरः ।
- १.११.२ वल्लिंसडपु—( ग प ) बलाकारेण ।
- १.११.३ मरगय ...गुणणड जसु जसु—( ख ) मरकतवर्णः कृष्ण. स चासौ कृपाण. खङ्ग तस्मादुत्पन्नं यस्य यथा, मरगय ...गयवणणड—( ग पं ) यद्यपि कृष्णकृपाणादुत्पन्नम्, तो वि—तथापि, जसु जसु—यस्य यथा, अमरगयवणणड—अमरकतवर्णं ज्ञेयम्, अथवा अमरगजः एरापतिः सद्गङ्गां शुभ्रो यस्य, अमरैषु वा गत [ ] वर्णं व्यावर्णनं यस्य ।
- १.११.४ पयाव ...असिचड—( ख ग पं ) प्रतापानिः अतृप्तः, खीषा...निथंत्तड—( ख ग पं ) क्षीणं च तद्विरिरेवेत्तन् च शत्रुकाष्ठं तस्य, खोज्जु निथंत्तड—तद्गत्वा प्रविष्टमिति सौमं पश्यन् अन्वेषयन् सन् ११.५-६ रिड ...पञ्जक्रियड—( ग प ) शत्रुभाषाणां हृदये प्रव्वलितः, अथस...पात्रिचङ्ग—( ख ग पं ) अवश्यमेव विपक्षः शत्रु अत्र रिपु [ . ] गृहिणी हृदये प्राप्यते, कुत ? विह्वी...सुमतिजङ्ग—( ख ग प ) यस्मात् कारणात् विवकीभूताभिः रण्डिताभिः अनवरतं हृदये मदीयशत्रुः स्मर्यते, अत्र शत्रुनिवासस्थानत्वात् प्रतापानिना हृदयं तासां दहते ।

२. पं महा ईश्वर । ३ गं मन् । ४. पं सखर...पानीयक—पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलं, पानीयक गृहीतसिद्धादय । [ १.११ ] १. पं तद्विन । २ पं मार्गमन्वेषयते ।



- १.१२.३ कलयति—सह—( ग पं ) कलो मनोज्ञः कण्ठो यस्याः सा कलकण्ठि-कोकिला तस्याः इव कण्ठो कलो मनोज्ञो मयुर श्रोत्र-मन श्रोतिकरः स्वरो यस्याः; बंधूयुक्तुसुम्—( ग पं ) माध्याह्निकमुष्णवत्<sup>२</sup> ।
- १.१२.४ कलहोयकलस—( ग पं ) सुवर्णकलसः; निर्विद—( ख ग पं ) विष्टनिकारहितः; चक्रकरमणु—( ख ग पं ) चक्राकारस्थूलनितम्बः ।
- १.१२.५ सुहमरु—( ग पं ) मुखस्वा[<sup>०</sup>श्वा<sup>०</sup>]सवातः ।
- १.१२.६ सद् ( अत्यागे ? )—( ग पं ) समाम्, ससंगरज्जु—( ख ) स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोनो बल सुहृदिति सप्ताङ्गं राज्यम्; ( ग पं ) स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशो देश-दुर्गं बलं संयेति सप्ताङ्गं राज्यम् ।
- १.१२.९ अद्—( ग पं ) अय, एतस्मिन् प्रस्तावे, कणय—( ग पं ) कनकदण्डे विशेषेण निबद्धः पट गुडिकारूपो येन ।
- १.१२.१० दडवारिण—( ग प ) प्रतीहारः ।
- १.१२.१ जयसिरिरस—( ख ग पं ) जयलक्ष्म्यासक्त[<sup>०</sup>सक्त]चित्तः; चडरण्यायरंत—( ख ग पं ) चतुः-समुद्रपर्यन्त ।
- १.१३.३ अर्चभट—( ग पं ) आश्चर्यम् ।
- १.१३.४ वणु—( ख ग पं ) निरन्तर [.] , काणयु—( ग पं ) उद्यानादिवनम् ।
- १.१३.५ क्खालिय—( ग पं ) क्षालित, प्रक्षालित ।
- १.१३.६ अकिट्टपत्त—( पं ) अवाहितपत्रा; पसविय—( ग पं ) प्रसूत, निष्पन्न; बहुवण्णि—( ख ग पं ) बहुवर्णं धान्यं ।
- १.१३.७ गाविड—( ग ) गावः; खिरंति—( ग पं ) अवन्ति[<sup>०</sup>खं ?]; अमोहड—( ग पं ) परिपूर्ण बहुतरमित्यर्थः ।
- १.१४.४ कंटह्यगकु—( ग पं ) रोमान्वितगान्धः ।
- १.१४.५ कण्णंत—( ग पं ) कर्णात्तमध्य, दिथंत—( ग पं ) दिग्मध्यं दिग्मर्यन्तं वा ।
- १.१४.६ मुरय—( ग पं ) मार्हल[<sup>०</sup>मं ?]
- १.१४.९ पूरंतसासु—( ग पं ) पूरणसमर्थः, महाप्राणमुक्तः श्वासो यत्र ।
- १.१४.१० परिष्ठुट्टुनाड—( ख ग पं ) उच्चारितशब्दः ।
- १.१५.२ दसियारेहि—( ग ) हस्तिपक्षैः; वीरेहि—( ख ग पं ) पडिकारै (?) ।
- १.१५.३ कप<sup>१</sup>—( ग पं ) चर्मयष्टि ।
- १.१५.४ विप.लिया—वेसरो—( ख ग पं ) विगलितः पतितः; आसणनरो—अश्ववारो यत्र तत् विप-लिताननर यथा भवत्येव नश्यति<sup>२</sup> ।
- १.१५.५ तक्कडं—( ग पं ) समर्थम्, घंत—( ग पं ) घावन्त<sup>३</sup>; पाह्कवडसंक्कडं—( ख ग पं ) भट-भट-सुभटसंघातः ।

२. प<sup>०</sup> क्लृप्तः पृष्ठः । ३ ग<sup>०</sup> दंडः । [ १.१५ ] १. पं कसा । २. पं यथा न भवति एवं नश्यति । ३. पं घावन्तः । ४. पं पायक<sup>०</sup> ।

- १.१५.६ भूमीकम छड्डी—( ख ग पं ) निज-निज भूमिकमारित्यागिनी, वारिया—वारिमिर्वारिता[ ], निवारिताः, \*निरवीरमोसारिया—( ख ग प ) निजभृत्यसमूहः निज-निज भूम्या घृतः ।
- १.१५.७ डंवरं—( ग पं ) आटोपम्; छह्यंवरं—( ग पं ) प्रच्छादिताकाश ।
- १.१५.१० नियय \*हिट्ठो—( ख ग पं ) निजबोभास्वीकृतः, कणयसेछो—( ग पं ) मेहः ।
- १.१५.११ तुंगिम—( ख ग पं ) महत्त्वम्, परए कस्—( ख ग पं ) दूरत<sup>१</sup> उत्सारय, देवनिक्कायहो—( पं ) भवनवास्यादिदेवसघातस्य; किम समसीसी—( ख ग पं ) समगणना का ।
- १.१५.१२ आयहो—( ग ) एतस्य मेरो, ( पं ) कनकगिरे ।
- १.१६.१ दूरजिस्सय—( ख ग प ) \*दूरत [ १६ ] एव परित्यक्त, पचें—( ख ) पान्नाणि, ( ग ) पन्नाणि, बाह्नानि; परियण \*लुपण—( ख ग पं ) परिजन, पुरनिवासीलोकमुक्तेन ।
- १.१६.२ केवकवाहें ( ख ग पं )—केवलज्ञानधारध्वन ।
- १.१६.१० सुहभावण—( ग पं ) शुभपरिणामाः<sup>२</sup> ।
- १.१६.११ दळ—( ख ग पं ) पत्र ।
- १.१७.१ हरिचिट्ठरे—( ग पं ) सिंहासने, किरणाहय\* करे—( ग पं ) किरणैर्निजित, सुरेन्द्रमुकुटकिरणो ।
- १.१७.२ पत्तपहुत्त<sup>३</sup>—( ख ग पं ) प्राप्तनिभुवनाधिपत्यः, कुसुमकिण—( ख पं ) पुष्पाञ्जिते ।
- १.१७.३ महप—( ख ग ) मनोज्ञे ।
- १.१७.४ सयकमाससवळियए—( ख ग पं ) अष्टादशदेशोद्भवभाषासमन्वितया ।
- १.१७.५ छज्जिड ( ग पं )—शोभितः, पडिबिंब—( ग पं ) प्रतिच्छाया ।
- १.१७.७ \*तह्लोक्कपरिआमहु—( ग पं ) त्रैलोक्यपितामहः ।
- १.१७.८ पयाहिण देंलें—( ग ) प्रदक्षिणा वदता सता ।
- १.१७.९ रइतमगहिड—( ख ग पं ) विपयासकिततम प्रच्छादितः<sup>४</sup> ।
- १.१७.१० सुत्तड—( ख ग प )—विवेकरहितम् ।
- १.१८.१ वणिऊणं—( ग ) वणितुम्, भाळो—( ख ग पं ) अन्न ।
- १.१८.२ समुज्जोइया\* पईवेण सुरो—( ख ग पं ) समुद्योतितविषयो वा किं न पूज्यते प्रबोधेन सूर्य ? किं विशिष्ट. ? वेयपुरो—( ख ग प ) तेज संवातः, तेजोनिविरित्यर्थः ।
- १.१८.३ संनवइरस्स—( ग प ) क्षीणकपायस्य ।
- १.१८.४ परं—( ख ग पं ) पवित्री करोतु, \*सुक्खयाम—( ख ग पं ) सोख्योत्पादनपराक्रम समर्थमित्यर्थः ।
- १.१८.५ सावळलेसो—( ख ग पं ) सावद्यलव ।
- १.१८.६ कणो \*रसपरसथो—( ख ग प ) कणो-कणिका, हालाहलः कालकूटस्य संवन्धी, जीवा<sup>२</sup> यथा तथा सपरसथो-सर्पसार्थ, सुहासायरं—( ख ग पं ) अमृतसमुद्रम् ।
- १.१८.७ अविग्घो—( ख ग पं ) अविघ्न. प्रतिवन्धरहित, तए—( ख ) त्वया, तिलोयगगामोण—( ख ग पं ) मोक्षगामिनाम् ।

५ पं निरवीरमोसारिया । ६ ग दूरत । [ १.१६ ] १ पं दूरतर । २ पं णामा । [ १.१७ ] १. पं पहुत्तु । २. पं तयलोयं । ३ ग दित । [ १.१८ ] १ पं सोवखयाम । २. ग जीवो ।

१.१८.८ मोहकालाहि—( ख ग पं ) मोहकृष्णसर्प , वायासुहाए—( ग प ) वाचामृतेन; विसुद्धो—( ग पं ) विशुद्ध , स्वच्छः ।

१.१८.९ कृवार—( ग प ) समुद्र , संपुष्पविज्जा—( ग प ) केवलज्ञानम् ।

१.१८.१० तप—( ग पं ) त्वया , नाण ...उदितमेयं—( ग पं ) ज्ञानदीप्त्या उदयततेजः कृतमिदं हत-  
प्रतापीकृतमित्यर्थ ; समुष्मासए—( ग ) समुद्भासति , वोभते ।

१.१८.११ मुहामासय—( ग प ) मुखप्रतिबन्धम् [ °छन्दम् ? ] ।

१.१८.१२ वस्तुर्लब्धं—( ग पं ) वस्तु-पदार्थम् , नित्यं निश्चे [ °स्वे ] दत्त्वमित्यादिशरीरस्वरूपम्; अहंबुद्धि-  
छुद्धा ते मुद्धा सख्व निरुवति—( पं ) तव स्वरूपमिति निरूपयन्ति—( ग पं ) वयं भगवत्स्वरूपं यथावत्  
ज्ञात्वा प्रतिपादयामः इत्यहङ्कारेण विपर्ययिताः , शरीरस्वरूपाङ्गवत्स्वरूपस्यानन्तज्ञानाद्यात्मकस्यान्य-  
त्वात्<sup>३</sup> ।

१.१८.१८ भूयो—( ख ग पं ) पुनरपि ।

## टिप्पण सन्धि-२

२.१.१ समवायं—( ख पं ) सर्वेषा अभिप्रायेण ।

२.१.३ पयंपद्—( ग पं ) प्रजल्पति ।

२.१.४ निरंजयु—( ख ग पं ) कर्ममुक्तः ।

२.१.५ निरवहि—( ख ग पं ) अनाद्यनन्त , सङ्गणान् " भेत्तु ( ख ग पं ) स्वज्ञानप्रमाणमान ; 'आदाणा-  
ण्यमाण' इत्यभिधानात् ।

२.१.६ परेण मिलित—( ख ग पं ) परेण स्पृष्टः परामृष्टो वा; आयास—दुर्वर्हि—( ग पं ) आकाश-  
प्रमुखैराकाशाद्यैर्द्रव्यैः ।

२.१.७ नीसेस—बाहि—( ग पं ) 'नि शेषं शरीरी-मनुष्यो-देवो-बाल-कुमारः सुखी-दुःखीत्यादिरूपो निरर्थो-  
ज्ञात्मस्वरूप कर्मजनितमित्यर्थः उपाधिविशेषणम्; सहइ—( ग पं ) सहते , भजते , तथा भजते चात्मनि  
सति अचेतनशरीरादिकं ससारे प्रवर्तते , केन सता क इव ? जंगमेण—( ग पं ) जङ्गमेन बलीबद्धादिना  
अजङ्गमं शकटादिवम् , जेम—यथा , तथा कर्मणा सता शरीरादिकं ससारे प्रवर्तयिष्यति ।

२.१.८ भवमसंशु—( ख ) संसारकर्मकरणे समर्थः , संतं गयणे—संशु—( ग पं ) अतः किमात्मनेत्या-  
शङ्क्याह—संतं—सता आत्मना भवः प्रादुर्भवः कर्मपरमाणुस्कन्ध समर्थो भवति , आत्मनि वा अवकाशं  
लभते , केन , क इव ? गयणेण व—( ग पं ) आकाशेन सता यथा ( ख ग पं ) पृथिव्यादिपदार्थ आकाशे  
अवकाशमवगाहं प्राप्नोति स्वकार्यकरणे समर्थश्च भवति , आत्मानं च सकपायं प्रप्य कर्मणो योग्यपरमाणु-  
स्कन्धोऽपि विचित्रफलदाने समर्थः कर्मरूपतया परिण [ म ] ते , 'सकपायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान्  
पुद्गलान्मात्से स धन्व' इत्यभिधानात्; ( ख ) अत्र दृष्टान्त [ : ] सूर्यकान्त [ मण ] य ।

२.१.९ दिवसयर—अग्निगर्धनु—( ग पं ) 'अमुमेवार्थं प्रति दृष्टान्तमाह , दिवसयरेत्यादि—दिवसकरिकरण-  
कारण सहायम् [ सहाय ] उभयमान सूर्यकान्तो यथा अग्निना [ अग्निमान् ] दृश्यते—

३ ग ज्ञानाद्यात्मकस्यान्यत्वात् ।

[ २.१ ] १ पं प । २. पं प्रवर्तयते । ३. पं 'यो' । ४. पं अत्रैवार्थे ।

२.१.१० तिहे जोग्य ...बुद्धिबन्धु—( ग पं ) कथंभूत. ? स्वकर्मयोग्यपरि[ परं ]माणस्कन्ध ; परिवर्द्धितोऽहमिति बुद्धिबन्ध आत्मनि संबन्धो येन, ननु इन्द्रियाण्येवाहमिति बुद्धिमुत्पादयिष्यन्ति, तत्किमात्मना कर्मणा वा ? अत्राह—

२.१.११ 'जीवेन'...करणगामु<sup>६</sup>—( ग पं ) जीवेन निमित्तीभूतेन करणगाम. इन्द्रियसंघातः, किं विशिष्ट ? मोहयामु<sup>७</sup>—( ग पं ) महामोहनोयकर्मणः सकाशात् ( पं ) मोहो वा मोहजनने विषयासक्तिः प्रादुर्भावितासु—यामा. [ यामः ] सामर्थ्यं यस्य स, विषयु भाव—( पं ) द्रव्येन्द्रियभेदसहित, विषयमह—( पं ) स्वविषये यथेष्टया प्रवर्तते ।

२.१.१२ ह्यजाउ ...जीउ सो वि—( ग प ) एवमुक्तप्रकारेण आत्मानं निमित्तोक्त्येन्द्रियद्वारेण जनितोपयोगलक्षणं कश्चित् सन् निमित्तिकोऽपि जातः, अत्राहारेण सोऽपि जीवः इत्युच्यते, निश्चयेन एकोऽविनश्वर उपयोगयुक्त इति, ( ख ) 'निश्चयेन हेतुकोऽविनश्वरो स उपयोगयुक्त इति चिद्रूपलक्षणो जीवः, न तु क्षयोपशमिकादिनश्वरैरिन्द्रियोपयोगयुक्त इति ।

२.१.१३ ससार'...जण्ड—( ग पं ) संसारस्य भवान् भवान्तराप्राप्तेर्निबन्धनं कारणभूतं कर्म तेन व्यवहारनयेन जीवेन, जनितां—आत्मनि प्रादुर्भावितां भवति, तं नासु मोक्षसु मण्ड—( ग पं ) तस्य सथाभूतस्य कर्मणो नाशो मोक्षो<sup>८</sup> भवति, निरामड—( ग पं ) आमयो व्याधिस्तस्मान्निराकातः ।

२.१.१४ सिज्जह—( ग पं ) जियते, उप्पज्जह'...अणुहवह—( ग प ) स एव जीवो व्यवहारिक मोहसंघातं क्षययति; किं विशिष्टः सन् ?

२.१.१५ 'कम्मासयवारणु' खवह—( ग पं ) कर्मसंस्कारणः कर्मणासाक्षरस्य 'मिथ्यात्वाविरतिप्रमाद-कषाययोगलक्षणस्य निवारकः, किं विशिष्टं सन् तत्संस्कारको भवति ? साक्षिकारणु—( ग पं ) भावित-कारण. भावित कारणं मोक्षमार्गे रत्नत्रयस्वरूपो येन ।

२.२ ८ अण्डिडु—( ग पं ) अनिष्टं दुःखम्, मड—( ख ग पं ) मया; कट्ठे—( ख ग पं ) महातापकष्टेन ।

२.२ ११ संसारिणि-विस्स—( ख ग पं ) संसारिणीतुल्ला भोगाकाक्षा ।

२.३ १ नरामरे'...वहंतए—( ख ग पं ) वरामरेषु विगुडभाषना धारयमाणे ।

२.३.२ पंतय—( ग ) आगच्छन्; निचच्छियं'...तेयवारि—( ख ) स्फुरन्तं तेयवारि(?)विज्जु(?)मालि-विमानं नमेधामं(?)सदृशं दृश्यते आगच्छन्तु शुद्धतोल्या(?)धारयन्ते, पूरिया दिवंतय—( ख ग पं ) 'पूरितदिगा'दिवं'न्तम् ।

२.३.३ अतिव्वतावय—( ग प ) अतीवप्रतापः, ( पं ) अतीवप्रतापं येन, सूरकिरणसंघातस्तु अतीवतापकः, न सूरगोनिडंजय—( ख ग पं ) सूरस्य आदित्यस्य, गोनिकुञ्जः—किरणसंघातो न भवति ।

२.३.४ साडुवाइणा—( ख ग पं ) साहु-गणधरवचनेन, सुन्दरवाचा वा कृत्वा ।

२.३ ६ सत्तमे'...वविस्सए—( ख ग पं ) सप्तमे दिने आद्युष्यक्षये आयुषः सयात् च[व्य<sup>९</sup>]विषयति; भवेण—( ख ग पं ) अत्रेतनमनुष्यभवेन, केवलीह'...वविस्सए—( ख ग पं ) इह—भरतक्षेत्रे, पविषमोऽन्तिमः केवली भविष्यति ।

२.३ ८ प्रियाचउकपंचमी—( पं ) प्रियाचतुष्टेन[<sup>१०</sup>प्लेन] सह पञ्चमः; सहाए विट्ठलो—( ख ग पं ) सभा-मण्डपिकानिवासीजनेन दृष्टः ।

२.३.९ सिन्वाणु—( ख ग पं ) गोत्राणी विद्युन्मालीदेवः ।

५. प्रतिशोभे यप्यति । ६. पं जीवेनेत्यादि । ७. ख ग 'यामु । ८. ग मोक्षः । ९. पं कम्मासव' । [ २ ३ ]  
१. पं पूरिता' ।

२.४.३ अथहो—( ग ) एतस्यागतस्य वा ।

२.४.४ न मिलिड—( ग ) न त्यक्तः; पच्वेल्लिड—( ख ) अगृह्णत ( ? ), ( ग ) केवलम् ।

२.४.५ एण—( ग ) विद्युन्मालिना ।

२.४.१० दिवि दिवि—( ग ) दिने दिने ।

२.४.११ सघणक्याहरे—( ग पं ) निरन्तरलतागृहे, कडुय—( ख ग पं ) कटुकः कर्कशवचनः ।

२.४.१२ चलसिह—( ग पं ) चलचूल्का ।

२.५.१ संसु—( ग पं ) प्रशंस<sup>१</sup>; गुणवंतु—( ख ग पं ) गुणाः सुशीलत्वादयः, पक्षे ( ख पं ) प्रत्यञ्चा चापः; वंसु—( ख ग पं ) संतान. वंशरथ ।

२.५.२ सुत्तकंडु—( ख ग ) ब्राह्मण ।

२.५.३ कमलायरो व्व—( ख ग ) सरोवरवत्, गोविसनिहाणु—( ख ग पं ) ब्राह्मणपक्षे गावो वेनव<sup>२</sup>, वृषमाः वलीवद्भिस्तेषां निधानम्, कमलाकरपक्षे गो<sup>३</sup> पानीयम्, विपाः—पथिनीकन्दास्तेषां निधानम्; मंडलवद्भव—( ख ग पं ) मण्डलपतिरिव राजा इव स ब्राह्मण इति; महिप्सीपहाणु—( ग पं ) ब्राह्मणपक्षे महिप्यः प्रधानाः बहुदुःखघृतदायिन्यो यस्य, मण्डलपतिपक्षे महिप्पी-अग्रमहादेवो पट्टराज्ञो प्रधाना यस्य ।

२.५.४ पद्मव्यधारिणी—( ख ग पं ) पतिव्रतधारिणी, ( ग ) अन्यभर्तृकत्वव्रतधारिणी ।

२.५.५-६ ( ग प ) समथणेत्यादि पाणहियकंतेत्यनेन संबन्धः; प्राणानां हिता-कान्ता-माया प्राणहिता वाहण कान्ता-कमनीयाः समथणतणु—( ग पं ) कान्तापक्षे समदना कामोद्रेककारीतनुर्यस्या [सा], पाणहियपक्षे तु समदनेन सिक्ता लिप्ता तनुर्यस्याः; रत्ती—( ख ग पं ) कान्तापक्षे निजभर्तृरनुरक्ता, पाहणियपक्षे रक्ष-वर्णा, कलियकण—( ग पं ) कान्तापक्षे ललित[ललितकम् ?] आभरणविशेषपरिधानशोभायमानो कर्णो यस्या, पाहणियपक्षे तु ललितकर्णः; नेह—( ग प ) स्नेहः तैलं च ।

२.५.६ अविहत्तसंग—( ग पं ) अविभक्तसङ्गी<sup>४</sup> अविनाभावविनाशित्यर्थः ।

२.५.१२ घत्थु—( पं ) गृहीतः ।

२.५.१४ सरंस्तु—( ग ) स्मरन्; विट्ठु—( ग ) विष्णुम् ।

२.५.१५ तहि पविट्ठ—( ग ) चित्तान्मो प्रविष्टा ।

२.५.१६ हुक्खगवविय—( ग पं )<sup>५</sup> हुक्खपूर्णं ।

२.५.१७ संठविय—( ग ) सस्थापिता ।

२.६.१ सयणिट्ठु—( ग पं ) लघुभ्रातृसंयुक्तः ।

२.६.२ जीवणजिओथ—( ख ग पं ) जीवनव्यापारा. असि-मसि-कुप्पादयो<sup>६</sup> यस्य तत्, सण्णालुथड—( ख ग पं ) आहारमयमैथुननिद्रापरिश्रमलक्षणसंज्ञायुक्तम् ।

२.६.१० खारियड—( ख ग ) कदाचित् ।

२.६.१२ सहियण—( ग ) स्वहृदये ।

२.७.१ किलेसि—( ग पं ) क्लेशेन प्रयासेन ।

[२.५] १ पं चलसिह [२.५] १ पं सा । २. वृषाश्च । ३. ख ग गीः । ४. पं यत्र । ५. पं पयवय । ६ पं पाणदित्ता । ७. पं ओ । ८. पं पाणहिता तु । ९ पं संग । १०. पं पूर्णः । [२.६] १. पं दया ।



- २.७.३ रुंकेसु—( पं ) संक्लेशः ।
- २.७.४-५ अहमंतर्हू—नियद् बाहिरत्—दंडक—( ग पं ) बाह्यं देहस्वरूपं यद्यपि इन्द्रियाणामभिलाष-  
करन्, तो वि—तथापि आभ्यन्तरदेहस्वरूपं यदि वा बाह्यं पश्यति तदा मासपिण्डस्वरूपत्वात् वायसमेव दण्ड-  
कर उद्घापयति ।
- २.७.७ विलसत्—( ग पं ) विज्ञप्त ।
- २.७.११ गुरु—रह—( ग पं ) मुखचनश्रवणरतिः, कर्मा—संवह—( ग ) कर्माश्रितवृत्तसवरः ।
- २.८.२ भमिचो—( ग ) भ्रमिन्त्वा ।
- २.८.६ समनियपरहो—( ख ग पं ) समौ निजपरी यस्य, समं वा परमोपशमं ससारोपशमं वा<sup>१</sup> नीतः परः  
आत्मा येन ।
- २.८.७ अणुत्—( ख ग पं ) लघुभ्राता; भवगुरु सरिहि<sup>२</sup>—( ख ग पं ) ससारमहानद्यां, दरिहि—( ख  
ग पं ) गर्तायाम् ।
- २.८.९ ज्ञोयण अज्ज्ञाणु—( ख ग ) योजनाध्वानं योजनमार्गं इत्यर्थः ।
- २.८.१० न पमाड—( ख ) न दोषः ।
- २.८.११ नस्थि—दिसि—( ख ग प ) दोषलोकोऽपि नास्ति ।
- २.८.१३ वड्डसाणु—( ख ग पं ) वड्डमाननामनगरम् ।
- २.९.८ सिप्प—( ख ग पं ) काष्ठचित्रकर्मादिविशेषः ।
- २.१०.१ महिचोडे निबेसिचि—( ग ) क्लितितले निवेद्य ।
- २.१०.२ सुय—( ग ) भो सुत भो भ्रातः, धम्मविद्धिर्लभवड—( ग ) धर्मवृद्धिः संपद्यताम्, तड—( ग )  
तव ।
- २.१०.३ तड—( ग ) ततः पश्चात्, करिची—( ग ) कृत्वा ।
- २.१०.४ पहरणु—( ग ) पहरणं [प्रक<sup>३</sup>] विवाहमहोत्सवः ।
- २.१०.७ सवाहनयणु—( ख ग पं ) अश्वप्रवाहयुक्तलोचनः ; उद्धंतमणु—( ख ग पं ) उद्भूताभिमानः ।
- २.१०.८ जणणि-जणेरहं—( ग ) जननी-जनकयोः ।
- २.१०.९ जो—( ग ) स्नेहः, भसियड—( ख ग पं ) नाशितः ।
- २.१०.१० अजपमाणहि—( ख ग पं ) संप्रत्यनुभूयमानैः, कय आगमणहि—( ग पं ) कृतागमनैः, पुण-  
णणड—( ग पं ) पुनर्नवो नवीनः ।
- २.११.३ मइ—( ग ) मया ।
- २.११.१० नियहिड—( ख ग ) निबहिषहेतुः ।
- २.११.११ हो तं—( ख ग पं ) धिक् विन्धं तं मनुष्यम्, अवगणणिहि—( ग पं ) अवधीरय ।
- २.१२.३ विहारो—( ग प ) आशमोक्तविधिना ।
- २.१२.५ नियत्तणाए ससद्ध—( ख ग पं ) व्याघुट्टनश्रद्धायुक्तः ।

[३७] १. ग उहं । [२.८] १ पं परमो वा । २. पं सरिहो । ३. पं दरिहो । [२.८] १. पं कोळ—  
विशेषा । [२.१०] १. पं मनु २. ख साप्रत्य । [२.११] १. पं हिंस । [२.१२] १. ग घुटन ।

२.१२.७ उद्देशः—( ख ग पं ) कथयति; अण्णालावलीलु—( ख ग ) अन्योक्तिलीलाम्, ( ग ) अन्यो-  
क्त्यासक्तः ।

२.१२.८ पाठ—(ख ग पं ) शाखा, प्ररोहम्, नग्गोह—( ग पं ) वटवृक्षः ।

२.१२.११ परिसीलिय—( ग ) दृष्टा, ( पं ) दृष्ट्वा ( ? ) ।

२.१३.६ नववहुवाप्—( ग पं ) नूतनवध्वा ।

२.१३.७ अपरिगव—(ख ग पं) प्रागेव<sup>१</sup> इति लोकोक्ती, "जेट्ठे" निच्छइयड—( ग पं ) भवदत्तेन, विरु =  
पूर्वं सङ्घस्याग्रे, निच्छइयड—प्रतिज्ञातं भवदेवं तपोग्रहणार्थं अहमिह गृहीत्वा आगमिष्यामीति ।

२.१३.९ 'रडे—( ख ग पं ) रडि-पूत्कारः ।

२.१३.१२ समासइ—( ख ग पं ) पर्यालोचयति ।

२.१३.१३ अवयत्त—( पं ) भवदत्तो यथा, पडंतड भववहुतरिणिहे उद्धरहि—( ख ग पं ) भव एव वैत-  
रणो-नरकनदी. ( ख ग ) तस्या ( तस्याम् ? ) पततः उद्धर इति भवदेव ।

२.१४.१० कवल्लिज्जप्—( ख ग पं ) चित्रयते ।

२.१४.१२ अण्णठ—( ख ग पं ) कृतार्थः ।

२.१५.५ ( ख ) 'इय आथत्त'—ईदृक्कूलाकया ( ? ), ( ग ) इय सेच्छय—स्वेच्छया ।

२.१५.९ वियडप्—( ख पं ) क्षीघ्रया ।

२.१५.१० परिओसइ—( ग ) परितोपयति ।

२.१५.१२ दिस्सड—( ग ) दिशः ; निज्झाण्वि—( ख ग पं ) अवलोकय ।

२.१५.१७ परिसक्कइ—( ख ग पं ) आक्रामति; चित्तु "चमक्कइ—( ख ग पं ) चित्तेन समं ऊहापोहं  
करोति ।

२.१५.१८ इड काणु—( ख पं ) विषयसेवानिमित्तं ज्ञतमङ्गादिकम्, धिद्धिक्कारिड—( ख पं ) निन्दितम्;  
आरिसहिं—( ख पं ) आगमैः ।

२.१६.१ वीणोवमल्लणि—( ख ) वीणावज्ज[वाद्य]इव धुनि [ध्वनिः] ।

२.१६.५ बहइ—( ख ) पञ्चात्तापं कारयति ।

२.१६.६ विक्कासपिया—( ख ग पं ) रतिक्रीडाभिलाषिणी, कवणकिया—( ख ग ) का क्रिया, का गति-  
स्तस्या वर्तत इत्यर्थः ।

२.१६.११ नेहइह—( ग ) नीत्यालयः ।

२.१६.१४ सुल्लिनि—( ख ग पं ) चण्डिका ।

२.१७.४ अज्जसूदियहो—( ग पं ) आर्यवसूनाम्नो द्विजस्य ।

२.१७.५ चिन्दिइयंवरिया—( ख ग पं ) दिगम्बरराणामिय दैगम्बरी-निर्ग्रन्थप्रवृत्तिरित्यर्थः ।

२.१७.७ किह—( ग पं ) केन पतिव्रताप्रकारेण, विचरीयकिया—( ख ग पं ) विपरीतक्रिया, कुलमार्गपरि-  
त्यागक्रिया, ( ख ) कुलभ्रष्टक्रिया ।

२.१८.४ परिलियवयसि—( ख ) गतवयसे वृद्धकाले, ( ग ) परिगलिते वयसि सति, वृद्धत्वे सतीत्यर्थः ।

२.१८.७ लेह्विसि—( ख ग पं ) व्रतानुष्ठानादिदिसाश्रमभ्रष्टो भवति ।

[२.१३] १. पं प्रणव । २ पं जेट्ठइ । [२.१५] १ पं पयसिज्जइ ।

- २.१८.९ जा<sup>१</sup>कायणरसु—( ख ) हे मुने त्वया पृष्ठा तस्याः नागवस्वा<sup>२</sup> स्वरूपं कथयामि, त्वं शृणु ।  
 २.१८.१२ चिचुय—( ग )<sup>३</sup> चिबुक ( ? ) [ हिंदी—चिबुड जाना, पिचक जाना ] ।  
 २.१९.६ संलद्ध<sup>४</sup> पमाणो—( ख ग पं )<sup>५</sup> संलब्धः शिक्षातोऽपमानो<sup>६</sup> येन ।  
 २.१९.८ पुव्वसकेयच्चतो—( ख ग पं ) पूर्वसङ्केत विषयसेवासङ्कल्पः स त्यक्तो येन ।  
 २.१९.१० म वंकहि—( ख ) मदीया प्रार्थनाया सज्ज्यक्ता [ संत्यक्ता ? ] सा कुरु, ( न ) मदीया प्रार्थना, तामवक्रा कुरु, ( पं ) मदीयप्रार्थनायामवक्रा कुरु, उच्चैर्हृद—( ख ) सकलेशकल्पनाभावत्यक्तः, ( ग पं ) सद्गिनः ।  
 २.२०.२ अव्वसइ—( ग पं )<sup>७</sup> उपायते<sup>८</sup> ।  
 २.२०.५ अजिउसु ध—( ख ग प ) जिह्वारहित इव, जिह्वायास्वादनमगृह्णित्यर्थः ।  
 २.२०.८ ( ग पं ) पुव्वजिय<sup>९</sup>—( ख ग पं ) पूर्वोपाजित[म्] ।  
 २.२०.१० मइए—( ख ग पं ) परिमिते ।

## सन्धि-३

- ३.१.३ लक्खे पयाइ—( ख ) लक्षपदानि, ( ग ) लक्ष्ये पदानि ।  
 ३.१.७ किविणमाणसा—( ग पं ) अल्पमतयः ।  
 ३.१.८ जे संपण्णमाणसा—( ग प ) ये सम्प्राप्तज्ञानलक्ष्मीका<sup>१</sup>, केवलज्ञानश्रीसमन्विता इत्यर्थः; सञ्चु दि<sup>२</sup> दिणसञ्चु—( ग प ) तेषां सर्वमपि कालद्रव्यं<sup>३</sup> सुषमसुषमादिसेद्विषय पदविषयमपि दिनसमानं, यथा दिन-मधिर पुनः पुनरुदयास्तमनरूपतया परिणमति, तथा कालद्रव्यमप्यधिरतया<sup>४</sup> पुनः पुनः सुषम-सुषमादिरूप-तया परिणमते<sup>५</sup> [इ]ति ।  
 ३.१.९ मंदाउ—( ख ग ) मेरोः, पुव्वासए—( ख ग पं ) पूर्वस्या दिशि ।  
 ३.१.११ ज्या—( ख ग प ) मेघेद्वर ।  
 ३.१.१३ विवक्ख—( ग पं ) शत्रु ।  
 ३.१.१४ घरसिंघ—( ख ग पं ) गृहसिंहगण,<sup>६</sup> पञ्जरिय—( ख पं ) अरितपानीयम्, धनु—( ग पं ) मेघः ।  
 ३.१.१५ दिसमाणरिद्धि—( ख ग पं ) दिक्मानश्रद्धि<sup>७</sup>, या या दिक् अवलोकयते तत्प्रमाणा<sup>८</sup> शस्य-रिद्धिरित्यर्थः ।  
 ३.१.१६ कणकणिग्दसण—( ख ग पं ) दशन-दन्तकम्पजनक, विलु—( ख ग पं ) कुन्दरं विवरम् ।  
 ३.१.१७ सरलु—( ख ग पं ) वृक्षविशेषः ; सरलु<sup>९</sup> तरलु—( ख प ) सरलफलन्तहरिणी—प्राञ्जल-फालविशेष<sup>१०</sup> कुर्वाणामि हरिणीभिः तरलं—चंचलम् ।  
 ३.१.२० मणिसारपायार—( ख पं ) रत्नमयप्राकारः [ ] ।

[२.१८] १ पं चिबुवनं, अथवा चिबुक्तं । [२.१६] १ पं<sup>१</sup> इव शिक्षाऽपमानो । [२.२०] १. ग<sup>२</sup> यतो ।  
 २. पुव्वासिय । [३.१] १ पं सुषममुखमा<sup>३</sup> । २ पं<sup>४</sup> स्थिरतया । ३ ग<sup>५</sup> मनि । ४. पं<sup>६</sup> रापं ।  
 ५ पं दिक्समानाश्रद्धि । ६. पं<sup>७</sup> भाण । ७ ख ग प्राञ्जलफाल ।

३.१.२४ (ख ग) मड<sup>१</sup>—(ख ग पं) मड. वृक्षविशेषः धवनमृदुविशेषश्च, (ख ग) लतामण्डपादि(?); निबन्धनाद<sup>२</sup>—(ख ग पं) राजकुलानि ।

३.२.५ वादीड—(ख ग) तालाव, वाटिकाः; तालड—(ख ग पं) वृक्षविशेष, ताल-मञ्जरी-समताला-दिवाद्यवादनविशेषश्च, स च महापुराणटिप्पणके नीलञ्जसा<sup>३</sup> नृत्यसमये विशेषेण व्याख्यात<sup>४</sup> इह द्रष्टव्यः<sup>५</sup> ।

३.२.६ सरपाळिड—(ख ग पं) सरोवरपाल्यः, (ख ग) वेद्यापक्षे कामयुक्ता, विदंगणह वणिग्—(ख ग पं) विदङ्गाः वृक्षविशेषाः, <sup>६</sup>नखाः-जैवविशेषा. <sup>७</sup>तै. वणिग्—उपलक्षिताः, <sup>८</sup>वा वणिग्—वणिकाः—लघुनिरन्तरवृक्षविशेषसमूहाः, वणि इति लोके, वेद्यापक्षे विदंग <sup>९</sup>वणिग्—विटैरङ्गेषु नखैः, वणिता ; गणियड—(ग पं) गणिका, वेद्याः ।

३.२.७ मुणिवर—(ख ग पं) अगस्त्यकवृक्षविशेषः<sup>६</sup>, मुनिप्रधानाश्च ।

३.२.८ सुपक्षेहरड—(ख ग पं) शोभनपयोवारिण्यः, स्त्रीपक्षे शोभनपयोवरा, सुरमणिड—(ख ग पं) सुरमण्यः, शोभनरमण्यः सोपानपङ्क्तयः, (पं) स्त्रियश्च, (ख ग) स्त्रीपक्षे शोभनरमणशीला, रमणिड—(ग) स्त्रियः ।

३.२.९ सहक<sup>१</sup>—आणहं जगदाणहं—(ख ग पं) मण्डपस्थानेषु फलै सहितानि शोभनानि पत्राणि, जन-दानपक्षे तु सफलानि जनानां चिन्तितफलसम्पादकानि शोभनपान्नाणि<sup>२</sup> उत्तम-मध्यम-जघन्यभेदमिश्रानि यति-आवक-आ[F]वका-अविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि ।

३.२.११ गयडकाहं—(ग पं) हस्तिसङ्कातानि, रयणुख्यहं—(ग पं) रदना दन्तास्तेषां रुक् दीप्तिर्येषु, बालकपक्षे रत्नाभरणदीप्तिवृक्षानि, डिमरुखहं—(ख) डिम्भाः बालका. तेषां रत्नाभरणदीप्त्या, (ग) लेककामि(?)बालकानीत्यर्थः ।

३.२.१२ वज्जयंतु—(ख ग) वज्रदन्तु ।

३.३.१ उच्छ—(ग पं) अच्छ स्वच्छं निर्मलमित्यर्थः ।

३.३.२ कमळा ह्व—(ख ग पं) लक्ष्मी इव ।

३.३.४ सायरचंडु—(ख) सागरचन्द्रनाम, वाहरह—(ग) आकारयति ।

३.३.७ हवि—(ख ग पं) हवि. अग्निः, महाणसि—(ख ग पं) रसवत्याम्, (ख) रसोर्हि लोके; पयणछवि—(ख ग पं) पवने छवि. तेजः प्रभावमित्यर्थः ।

३.३.६ मरगाय<sup>१</sup>—सामलिया—(ख ग पं) मरकतमणिमिती कुतस्यामवर्णाः; गोरंगी—(ख ग पं) लज्जवल-गौरहारीरावि, माहं <sup>२</sup>कलिया—(ग पं) भर्तुरिण न ज्ञाता<sup>३</sup> ।

३.३.११ अस्थिजन—(ख ग पं) याचकजनाः; पडमालंकरिड—(ग पं) लक्ष्म्यालङ्कृत, महापडसु—(ख ग) महापद्मानाम् ।

३.३.१२ चरियकरु—(ग पं) गृहीतसिद्धादयः ।

३.३.१५ हरिणकलिया—(ख ग पं) चन्द्रक्रान्तिशोभा<sup>२</sup> ।

३.३.१८ वणमालह—(ग पं) वनमालायाम् ।

३.४.७ संयविड—(ख ग पं) कृतयुवराजपट्टवन्धः ।

३.४.८ देहि आपसु जीवि—(ख पं) यस्यादेशदत्ते जीवितं सखि [मन्यो ?] ते कुमार मन्त्री सामन्तादि ।

[१.२] १. पं मडु<sup>१</sup> । २. पं निब<sup>२</sup> । ३. पं नीलंजसा । ४. पं व्याता । ५. पं व्या । ६. पं नखा ।

७. पं तैः उपलक्षिताः । ८. पं अगस्त्यक<sup>३</sup> । ९. पं पत्राणि । [३.३] १. ग ज्ञाता । २. चंद्रक्रान्ति<sup>२</sup> ।

- ३.५.२ सुवंतुतिलङ—सुवन्तुतिलको मुनिः ।  
 ३.५.१३ राउत्ति—( ग पं ) राजपुत्रै ; उयहिचदु—( ख पं ) सागरचन्द्रः ।  
 ३.६.१ राय ...वाडणो—( ख ग पं ) क्रोधादि-विकषादिनिर्नाशकः ।  
 ३.६.७ पग्गिव—( ख ग पं ) प्रागेव ।  
 ३.६.८ इह निम्मलु—( ग पं ) ईदृशो<sup>२</sup> निर्मलः ।  
 ३.६.१० विहिणा—( पं ) अगमोक्तविधिना ।  
 ३.६.१२ मणि निणण्ड—( ग प ) कृताश्चर्यवितर्कः ।  
 ३.७.१२ भवकालसत्तु—( ग पं ) भव एव कृष्णसर्पः ।  
 ३.७.१३ विसंसि—( ग पं ) अद्वितीयः ।  
 ३.७.१४ उद्धरिय—( ग ) उद्धृतः ।  
 ३.८.२ विहडप्फुडु—( ग पं ) विकलगात्रः ।  
 ३.८.१० नड वंकड—( ख ग पं ) शरीरं न मोटयति ।  
 ३.८.१२ निळड—( ग प ) स्थानम् ।  
 ३.८.१३ जयणिज्जहे—( ग पं ) त्यजनीयाया, अविज्जहे—( ख ग पं ) अविद्यारूपायाः मोहवृद्धिहेतुभूताया<sup>१</sup> इत्यर्थे, तहे<sup>२</sup> ( पं तहो )—राजलक्ष्म्याः, अविळंवेण<sup>३</sup>—( ख ग पं ) अन्नमेव, विळड<sup>४</sup>—( ख ग पं ) परित्यागः ।  
 ३.९.२ निग्गडु...तड तं किर—( ख ग पं ) तत्तप किल इन्द्रियाणां निग्रहः ।  
 ३.९.७ वरकज्जुवो—( ग पं ) त्यक्तगृहस्थव्यापारः ।  
 ३.९.१० आहार...<sup>५</sup>वविड<sup>६</sup>—( ग पं ) आरनालेन कञ्जिकेन सहितः आहारः ममाय बोध्यः, <sup>७</sup>इति वांसितः<sup>८</sup> ।  
 ३.९.१२ पारणकज्जु—( ग पं ) पारणार्थम्, सुणि—( ख ग पं ) ज्ञानोहि ।  
 ३.९.१६ दिणसंज्जहे—( ग पं ) दिन-सन्ध्यायाम् ।  
 ३.९.१७ मञ्जोयणहिं—( ख ग ) वायुभोजनेषु सपेषु ।  
 ३.९.१८ अज्जिवत्तवफलु—( ग पं ) अजिततपःफलं अशुभमनिर्जरा<sup>९</sup>—शुभमवाप्तिलक्षणमेव ।  
 ३.१०.१ वाड—( ख ग पं ) वातः ।  
 ३.१०.४ अवाहिण<sup>१</sup>—( ख ग पं ) व्याधिरहिते वाधारहिते च ।  
 ३.१०.६ इय तवफलु महंत—एतस्य कञ्जिकाहारस्य तपसः फलं महत्, इय तणुपह—( ग पं ) एषा शरीरप्रभा ।  
 ३.१०.१० विहियतवंतरु—( ख ग पं ) अनुष्ठिततपोविशेषः ।  
 ३.१०.११ जणकिण्णी<sup>३</sup>—( ख ग पं ) जनसङ्कोर्णा<sup>४</sup>, विट्ठिण्णी—( ग ) विस्तोर्णा ।

[३.६] १. पं इड । २. ग ईदृशो । [३.७] १. पं उद्धृत्य । [३.८] १. ख ग भूताया । २. प तहो ।  
 ३. ख ग अव<sup>१</sup> । ४. पं ओ । [३.९] १. पं वविडो । २. पं प्रगसित । ३. ग निज्जर । [३.१०]  
 १. अवाहिय<sup>१</sup> । २. पं तवहलु । ३. पं किन्तो । ४. पं संकोर्णा ।

३.१०.१२ सुचित्तः ( पं सङ्खरः )—( ग पं ) सुचित्तः साभिप्रायः<sup>१</sup> घूर्त इत्यर्थः, नामै<sup>१</sup> सूरसेण—  
( ख ग पं ) सूरसेननाम्ना इन्द्रः श्रेष्ठिः ; धणइत्तः—( ख ग पं ) वनादयः ।

३.१०.१४ सवित्र्य—( ख ग पं ) तीक्ष्णोक्तः ।

३.११.१ तेहिं—( ग ) तादवतस्तः, सकम्भमविणं ( पं<sup>१</sup> मावेणं )—( ग पं ) स्वकर्मणा स्वकीयमनोवगापार-  
भव<sup>१</sup> प्रादुर्भावो<sup>२</sup> यस्य ।

३.११.२ बाहिं—( ख ग ) व्याविशतैः प्रस्तः पीडित ( पं ) गृहीतः ; निष्पद्—( पं ) अनादेय-  
मूर्तिः [ ], अञ्जियपुत्रपात्रिणं—( ग पं ) पूर्वोपाश्रितरापकर्मणस्तेन ।

३.११.४ वाड—( ख ग पं ) वातो व्याधिः ।

३.११.५ कंतह—( ख ग ) भार्याविलुक्तः ।

३.११.८ सहुद्ध—( ग ) दण्ड [ ओष्ठ ] सहितम् ।

३.११.९ सखुद्ध—( ग ) स क्षुद्र, ससुद्ध—( ख ग ) स्वमुद्राङ्कितम् मुद्रासहितम् ।

३.११.१५ रह्यावणु—( ग पं ) सर्वेषां स्वैः<sup>३</sup> प्रीतिर्वा<sup>४</sup> जनकः ।

३.१२.१-२ नववसंतओ हणुवंतु ज—( १ ) विरहा “वंतओ—( ग पं ) विरहातुरेण रामेण हनुमान्  
आलोच्यमानः, नववसन्तस्तु विरहातुररामानिरालोक्यमानः, ( २ ) मास्यसुत्रियासु—( ग पं ) हनुमान्  
मास्ता वायुना पित्रा चुम्बितास्यः चुम्बितमुखः, नववसन्तस्तु मास्ता दक्षिणवायुना कामोद्रेकजनकेन  
चुम्बितदशदिशः ।

३.१२.५ मानहो मडखिज्जह—( ख ग पं ) मानस्य मयः क्षीयते ।

३.१२.६ कंरतिं—सुस्मह—( ग पं ) गृहस्योपरि सुष्टुमतिं अतिशयेन अनुरागबुद्धिं कुर्वन्ति ।

३.१२.८ पहावह—( ख ग पं ) प्रधावति ; पहावह—( ख ग पं ) प्रधावती मतिं कान्तिमती नायिका ।

३.१२.९ विरह निद्राह—( ख ग पं ) विरहं निद्रादयति, स्फोटयति<sup>१</sup> ; ( पं ) निद्राह—( पं ) स्निग्धा-  
सजलशब्दौ ।

३.१२.१० माहह—वजह—( ग पं ) भ्रमरो यथा वर्जयति मालतीकुसुमम्, पाटलादिकुसुमेषु तदा तस्य  
शक्ते [ आसक्ते ] ।

३.१२.१२ वेयल्लं—( ग पं ) क्षीघ्रेण ।

३.१२.१३ संतं किं सुयं<sup>२</sup>—( ख ग पं ) शुकपक्षसमानैः हरितपद्मैः, मुखसमानैः सुरवतपुष्पैः भ्रान्तचित्तो  
जनः किशुकाः एते इति जानाति ।

३.१२.१४ पुज्जसमारह—( ख ) समारति<sup>१</sup> पूजा, समारह—( ग ) करोति, वट्टह—( ग ) वसन्ते ;  
मिडुणह—( ग ) मिथुनस्य स्त्रीपुरुषयुगलस्य, हियह—( ग ) हृदये, समारह—( ग ) समा रतिः, समाना  
रतिः<sup>२</sup>, समद्युतिः इत्यर्थः, ( ख ) हियह समारह वट्टह—हृदये रतिं प्रवसन्ते ।

३.१२.१५ तुरयहिं—न चिज्जह—( ग पं ) आद्रस्वादिका<sup>३</sup> चणकाः, न चिज्जह—“न भक्ष्यते<sup>४</sup>, तदा  
चणकानां प्रस्रत्वात् तद्भक्षणत् तुरगानां भूलप्रकोपनात् ; ( ख ) अल्लहज्जि न चिज्जह—नोलचणका[ ]  
न भक्ष्यते [ “यन्ते ] ।

५. पं प्रायो । ६. पं नामह । [ ३ ११ ] १. ग<sup>१</sup> जावा । २. ग<sup>२</sup> जावा । ३. पं रतिः । ४. पं प्रीतिर्वा ।

[ ३ १२ ] १ पं स्फोट<sup>१</sup> । २. पं भंतचित्तु जणु काणइ किं सुय । ३. पं समरातः । ४. पं आद्रस्वादिका ।

५ ग नाम । ६. पं भक्षते । ७. ग तुर<sup>२</sup> । ८ पं मूल<sup>३</sup>

- ३.१२.१७ वल्लह—( ख ग पं ) वीणा ।  
 ३.१२.१८ वसंतहो—( ख ग पं ) वसन्तमासे, ( ख ) वा उपवासः; वसंतहो—( ख ग पं ) तिष्ठ[ठ]तः<sup>१</sup> ।  
 ३.१२.१९ नायहो जलणहो—( ख ग पं ) जलननाम्नो<sup>२</sup> नागस्य ।  
 ३.१२.२० निवह—( ग ) नृपतिः, विहड—( ग ) विभव; पथडीकयविहड—(ख)प्रकट[ीकृत]  
 विभवम् ।  
 ३.१३.१ रविलेणें—(स ग ) सूरसेनेन ।  
 ३.१३.२ जत्तच्छवि—( ग ) यात्रोत्सवे, रक्खणसहिड—( ख ग ) रक्षा[रक्षक]संग्रहतः ।  
 ३.१३.३ अहिभवणु—( ख ग ) नागमवनम् ।  
 ३.१३.४ फणसच्छायहो—( ख पं ) फणेषु<sup>३</sup> सती शोभना छाया रत्नदीप्ति<sup>४</sup>, शोभा वा यस्य<sup>५</sup> ।  
 ३.१३.५ एत्तडड करेज्जहि—( ग ) एतावत्मात्र कार्यं कुर्या, स दिज्जहि—( ग ) भा दद्याः ।  
 ३.१३.७ सुमह—(ग) सुमतिनामा ।  
 ३.१३.८ तेहिं—( ग ) तामिद्वत्तल्लमि. स्त्रीभिः ।  
 ३.१३.१२ वज्जगयसत्तड—( ख ग पं ) व्यपगतसत्त्वः ।  
 ३.१३.१३ केवलवाहो—( ख ग पं ) केवलज्ञानधारकस्य ।  
 ३.१३.१४ सुवय—( ख ) व्रतिका [ सुव्रता नाम आयिका ], चयारिंवि कंतड—( ख ) वस्तु.सार्वा,  
 निखलंतड—( ख ग पं ) गृहीतदीक्षा. ।  
 ३.१३.१६ एड चयारि “ पियड—( ग ) एता चत्तर. प्रियाः जाताः ।  
 ३.१४.४ विज्जुच्चरहिहाणु—( ग ) विज्जुच्चराभिधानम् ।  
 ३.१४.६ “वर ( पं “वर )—( ख ग पं ) प्रधानम् ।  
 ३.१४.७ पळयमहामरु—( ग पं ) प्रलयकालमहावातः ।  
 ३.१४.१३ जगंतो वि—( ग पं ) जाग्रदपि ।  
 ३.१४.२१ “भाविणि—( ख ग प ) प्रतिभासिनी<sup>६</sup> वल्लभेत्यर्थः ।  
 ३.१४.२३ विणु नित्तिट्—( ग ) नीत्या विना ।

## सन्धि-४

- ४.१.१ दट्ठु न सहंति—( ख ) दृष्टि नावलोकते, दट्ठुं—( ग ) द्रष्टुमवलोकयितुम् ।  
 ४.१.४ मयहाहिड—( ख ) श्रेणिकु [ °कः ] ।  
 ४.१.६ धाराहरे—( ख ग पं ) मेघे<sup>१</sup> ।  
 ४.१.८ एयहो—( ग ) अर्हदासस्य, पियहो—( ग ) प्रियाया. ।

१. पं तिष्ठततः । [३.१३] १. ग फणसु । २. पं यस्याः । [३.१४] १. ख “पिणी, पं “दिनी ।  
 [४.१] १ पं मेघ ।

४.१.९ जक्खु—( ख ) जक्ष [ यक्ष ] कथा ।

४.२.२ सहत्तड—( ग ) सचित्तः सावधानः, संतप्पित—( ख ग पं ) नामेदं श्रेष्ठि[ठ]नः; घणहत्तड—  
( ग ) घनाहयः ।

४.२.५ जिणयास—जिनदासः ।

४.२.७ उक्कहुड्क—( ख ग ) डाक डिडिम, समाणइ—( ख ग पं ) सहिते, आवाणप्—( ख पं )  
‘मद्यपानगोष्ठ्या मिलित्वा’ मद्यपानस्थाने ।

४.२.१० छलय ( ख ) टोंटा नामम्, छलयनामज्जारें—( ग ) छलकनामवृत्तकारेण ।

४.२.११ पमणइ—( ग ) जिनदास [ उत्तरं वदति ], तड—( ग ) तव ।

४.२.१३ बिप्पारहिं—( ग पं ) प्रयोगिभिः; हँवाइड—( ख ग पं ) गर्व नीतः ।

४.२.१५ पग्गिब—‘जायड—( ख ग ) प्रागेव प्रतिज्ञा कृत्वा ईर्ष्या गतः ।

४.२.१६ जिणगल्लु—( ख ग पं ) निवारकरहितम्, असिडुहियप्—( ख ग पं ) छुरिकया ।

४.३.१ वं वड्यस—( ग ) तं व्यतिकरं वृत्तात्म्यम्, अरुइयारें—( ख ग ) अर्हदसिन् भ्रात्रा [ भ्रात्रा ] ।

४.३.२ अंतइं ओषिवि—( ख ) अन्तनिये ( ‘पे’ या ‘वे’ ) सिवि ( ? )

४.३.८ महमाइहि—( ख ) वडड माइड मदीयं मम भ्रातुः ।

४.३.१२ भवजल्लु—( ख पं ) संसारजाह्नयम् ।

४.३.१४ कम्मा...‘दप्पिणिहि ओसप्पिणिहिं—( ख ) कर्माश्रव<sup>२</sup> स एव<sup>३</sup> मस्तु वात, तस्य दपः उत्कटता,  
सा विद्यते यस्यां सा अवसप्पिणी; कम्मा...‘दप्पिणिहिं—( ग पं ) कर्मभिरभिभूतं<sup>३</sup> आशयं चित्तं तदेव<sup>३</sup>  
मस्तु वातः, तस्य दपः<sup>३</sup> उत्कटता सोऽस्याः ( सोऽस्या अस्तीति ) सा कर्माश्रयमवसप्पिणी, तस्यां  
[ अवसप्पिण्यां ] ।

४.३.१५ तमनियस—( ग पं ) अज्ञाननिकरः ।

४.४.१२ जयसासण—( ख ग पं ) प्राणिनां आश्वासकः, अथवा इहलोक-परलोकाकाशानिराकारकः ।

४.४.१३ घर ( पं ) घरा—( ख ग पं ) अम्भुद्धारकम् ।

४.५.३ सहामासिरीप्—( ख ग पं ) सभाया भासनशीलया<sup>१</sup> शोभायमानया ।

४.५.४ ससामंतविडो—( ख ग पं ) सामन्तवृन्दसहितः ।

४.५.५ सरंतो—( ग ) स्मरन् सन् ।

४.५.६ मयालोयणीणं—( ख ग पं ) मृगवत्<sup>१</sup> [ ‘वत्’ ] लोचनीनाम् ।

४.५.६ मणस्योहयेणो—( ख ग पं ) मन एव अर्थो<sup>१</sup>व. तस्य स्तेनश्चोर<sup>२</sup>, परहृदयहारकः इत्यर्थः ।

४.५.७ ससुडुंठरावो—( ख ग पं ) उच्छ्रान्तु कोलाहलः ।

४.५.९ रमाळीढवच्छो—( ख ग पं ) रक्ष्म्यलङ्घनवधस्थलः ।

४.५.९ पयापाकणिट्टो—( ख ग पं ) प्रजापालनमिष्टं यस्य ।

४.५.१३ तलो सचिरत्ते—( ख ग ) तद्दिनात् सप्तमदिने ।

[ ४.२ ] १. पं मद्यपानामिलित्वा गोष्ठ्या । [ ४.३ ] १. पं संसारं । २. ग तदेव । ३. पं भूत ।  
४ पं स एव । ५ पं तर्प्य । [ ४.५ ] १. ख ग ‘शालाया । २ पं ‘लंघ ।



४.५.१४ वासधामे—( ख ग पं ) वित्रशालिकायाम् ।

४.५.१५ तमोसेसरामे—( ख ग पं ) रात्रिगेपे रमणीये ।

४.५.१६ तूलियंके—( ख ग पं ) तूलिचिह्ने तूलिमध्ये च ।

४.६.२ जोड्य सच्चासं—( ख ग पं ) उद्योतितसमस्तदिशम्<sup>१</sup>, सच्चासं—( ख ग पं ) अनितम् ।

४.६.४ कूड्य—( ख ग पं ) गन्दिस्त<sup>२</sup> ।

४.६.५ मयर पायारं—( ग पं ) मकरमत्स्यकच्छरानां प्रकारा भेदा. यत्र, पारावारं—( ख ग पं ) समुद्रम् ।

४.६.६ सुयणालोयं—( ख ग ) स्वप्नालोकम् ।

४.६.१० परमर्थं—( ग ) सत्यस्वरूपम्, ( ख ) परमं अत्युत्कृष्टं अर्थं पुत्रलामलक्षणम् ।

४.६.११ जंबुफलालोप—( ख ग पं ) जम्बूवृक्षफलालोकनेन ।

४.६.१३ दयणाहारो—( ख ग ) रत्नानां धारकः, ( पं ) रत्नधार ।

४.७.३ कालसङ्—( ख ग पं ) बौद्धलम्पटानि ललितमणि मुकोमलानीत्यर्थः, साळसङ्—( ख ग पं ) बालस्ययुक्तानि ।

४.७.४ सिय—( ख ग पं ) पाण्डुर ।

४.७.५ मरगय<sup>३</sup> सेहरिया—( ख ग पं ) मरकतकलशौ शोभरिता, अग्रभागे मरकतकलशोपेता इत्यर्थः ।

४.७.९ नव पमोहरिया—( ख ग पं ) प्रावृलक्ष्म्या नव पयसा अभिनवपानीयेन पूर्णा पयोधरा<sup>४</sup> मेधा. भवन्ति गर्भवत्यां तु नवपयसा दुग्धेन पूर्णा. पयोधरा<sup>५</sup> स्तना. भवन्ति; आसन्न सिरिया—तथा प्रावृलक्ष्म्या आसन्नं ज्येष्ठानक्षत्रं भवति, गर्भवत्यां तु आसन्ता. ज्येष्ठा प्रसवकर्मकुशला<sup>६</sup>. वृद्धा स्त्रिय<sup>७</sup>. सूनियो (?) भवन्ति ।

४.७.१० रोहिणिठिप्<sup>८</sup> लङ्गे—( ख ग ) रोहिणोनक्षत्रे स्थिते चन्द्रे, मयलङ्गे—( ख ) सोमवासरे ।

४.७.११ पचूसे—( ग पं ) प्रभाते, पस्य—( ग ) प्रसूता ।

४.७.१३ कण्ण पणिगयड्—( ग ) कर्णयोः पतितमपि न श्रूयते ।

४.८.१ अलङ्कियनिस्तनेण—( ख ग पं ) अलङ्कृतं भूषितं निशान्तं राश्रवसानम्, राश्रगृह वा येन सूर्येण, ( ख ) प्रभातेन, ( ग ) कुमारैर्न च, बाळेण—( ग पं ) तेन जम्बूस्वामिनाम्ना, पसरैण—( ग पं ) प्रसरेण वा प्रभातेन वा ।

४.८.२ स्याहरे—( ख ग पं ) प्रसूतिगृहे, दिण्ण निहिचा—( ग ) कृतबीषोवर्द्धन्ति निक्षिप्ता, ( पं ) दिनदोषोद्यप्रभाकृता तद्वत्, कथंभूतेन तेन बालेन प्रभातेन वा ? ( ४.८.१ ) तथा सरुणा<sup>९</sup> तेषुण—तत्पुनः श्वासा अरणश्चारकत च वासावादित्यत्र सत्यैव तेजो यस्य बालस्य प्रभातस्य वा तेन ।

४.८.३ विद्धि<sup>१०</sup> कोपहिं—( ग पं ) वृद्धिबद्धमाने[वर्द्धपने] आगच्छद्भि<sup>११</sup> लोके ।

४.८.४ टरमत्त—( प ) यौवनमदेन ( ख ग पं ) ईषन्मत्त [ ] ।

४.८.५ महायट्ठसंघट्ट—( ग पं ) महामेलापकसङ्घट्ट ।

४.८.६ पंडो<sup>१२</sup> नेत्तेहिं—( ख ग ) पण्डदेशोद्भवानि प्रभावन्ति नेत्रदेशोद्भवानि च तैः. ( प ) पण्डोशालं चीर प्रभावन्त तैराणि च, अथवा पण्डोदेशोद्भवानि च प्रभावन्ततैराणि च ।

३. पं<sup>१</sup> अके । [४.६] १. पं<sup>२</sup> सच्चदियं । २. पं<sup>३</sup> ता । [४.७] १. ख ग बालस<sup>४</sup> । २. पं पूर्णा । ३. पं<sup>५</sup> धरा । ४. पं स्तना । ५. पं ज्येष्ठा । ६. पं कुशला । ७. पं स्त्रिया । [४.८] १. ग च । २. लङ् ।

४.८.६ त्रियाणेषु—( ख ग पं ) विनानेषु चन्द्रोदयेषु ।

४.८.७ सकाडहायार—( ख ग पं ) <sup>३</sup>पञ्चवर्णैर्द्वयनुपसदृशाकाराः ।

४.८.१२ अकृत्ति—( ख ग ) अकृत्तिके, निरंतरतरं—( ख ग पं ) अतिशयेन निरन्तरम्; निरदममंवरं—( ख ग ) अत्ररहिताकाशम् ।

४.८.१३ असारयं—( ख ग पं ) त्रिकृकम्, खयं—( ख ग पं ) नष्टम् ।

४.८.१४ हस्वस्तर्ह पकुल्लिया—( ग ) सा वृक्षमन्तति प्रकुल्लिता; तर्ह—( ख ग पं ) तस्मिन् काले; वणासई सई—( ख ग पं ) न केवलं वृक्षमन्तति, सई—पापि वनस्तरिपि प्रकर्षेण पुष्पिता ।

४.८.१५ सुवर्ण सासुरा सुरा—( ख ग पं ) सुवर्ण इत्यादिः सुवर्णवृष्टिम्, किं लक्षणां ? ( ग पं ) भासुरां दीप्ता मुञ्चन्ति तथा सुरा. शोभन रा इव्यं मुञ्चन्ति, के ते ? सासुराः असुरकुमारैः समन्विताः सुराः देवाः ।

४.९.५ गृह...सत्यद्—( ख ग प ) गृहशब्दायः <sup>१</sup>निमित्तमात्रम् शास्त्राणि पुनः पठितानीव स्वयमेव तेन ज्ञातानि, ( ग पं ) तथा मन्त्राश्च शास्त्राण्यायुधानि स्वयमेव तेन ज्ञातानि, मतस्यद् सत्यद्—( ख ) तथा मन्त्राणि च शास्त्राणि च आयुधानि ।

४.९.६ नीसेसाड...अवमसिषड—( ग पं ) तथा नि शेपाः समस्ता कलाः अवमस्ता ; कथंभूता कलाः ? संपाद्...रसिषड—( ग प ) संपादित च तत् त्रिवर्गफल च धर्मार्थकामफल तेन रसिकाश्चित्तानन्दजनकाः यास्ताः ।

४.९.८ सिद्धुचनमसि सहसिप—( ग पं ) त्रैलोक्यभ्रमणे दत्तचित्तगा ।

४.१०.४ कवण्य...सुरसरि—( ग पं ) <sup>१</sup>को [हसित] ? न कश्चिदस्ती<sup>२</sup> अस्ति यो यशसा धवलितः <sup>३</sup>सुरकरि-  
परागनिद्धिबिरगुणेन न जात ; सा सरि...सुरसरि—तथा सा का सरित् नदी या यशसा धवलिता सुरसरित्  
गङ्गातुल्या धावल्यगुणेन न जाता ।

४.१०.५ तुहिणायलु—( ग ) हे(हि)माचलः ।

४.१०.७ लुह ( पं लोह )—( ग पं ) लोद्ग्रावम् ।

४.१०.१० मद्...मण्यु—( ग पं ) मा दुःखमाजनं करोते; तत्किं द्वितीयमपि मनोऽस्ति ?

४.११.१, २ काहे वि...कवोले खिच; पल्लद्...सुण्यु—( ग पं ) विरहानलेन संप्रचालितः <sup>१</sup>स चासी  
अश्रुजलोधश्च तेन <sup>२</sup>तु हलित प्लावित <sup>३</sup>स चासी कवोले क्षिप्तो; दत्तो हस्तश्च त हस्तं क्षम्यं चूडकरहितं  
कुर्वन्, पल्लद्—प्रवर्तते ( परिवर्तते ? ), कथं पुनः हस्तस्य चूडकरहितत्वं संपन्नं ? ( पं ) अश्रुजलोधेन  
विरहानलसंपन्नाग्निवर्णन ओहलितस्य (?) दन्तिमचूडस्य अवस्थेतिशयेन (?) चूर्णीकृतस्वमनैःपटस्नात् ।

४.११.५ कजपुं तु—( ग ) वमलशय्याम् ( पं ) पञ्चशय्या ।

४.११.६ नीसा ( तु ) हुंतु—( ख ग पं ) नि द्वास एव <sup>१</sup>उल्लिखुर्ण अरदृष्टदृष्टिका विरहानस्य बहिर्निक्षेपकं  
यदि नाऽभविष्यत्, बर्दिदोह—( ग पं ) <sup>२</sup>बन्दीना नग्नाचार्याणां, सदोह सघातः ।

४.११.८ कंठाळु—( ग पं ) कसणि (?) ।

४.११.६ उच्चालियाए—( ग पं ) उत्पुकर्या ।

३. पं घनुप सदृशा आकाश । [४९] १ ख ग ङ्याया । [४१०] १. पं कश्चिन्न हस्ति । २. ग करो । ३. मद् । [४.११] १. ग ङ्वलित । २ पं तुलित ओह प्ला । ३. पुंज । ४, पं उल्लिखुर्ण अरगर्तघटिका । ५. ग बर्दिना । ६. पं कंठाणलु । ७. पं कयाः ।

- ४.११.१० कवरी—( पं ) वेणी ।  
 ४.११.१२ मयर्जल—( ग ) प्रेमसलिलम्, ( पं ) चुकः ।  
 ४.११.१४ नहे—( ख ग ) नमसि ।  
 ४.११.१५ नसावडह—( ख ) न संपद्यते ।  
 ४.१२.३ मलतकणय—( ख ग पं ) कनकमाला<sup>१</sup> ।  
 ४.१२.५ वयसवणजुति—( ख ) कुवेरसदृशम्, ( ग ) ऐश्वर्यादिना वैश्रवणयुक्तिरुपापत्तिर्यस्य ।  
 ४.१२.६ रुचलच्छी—( ग पं ) रूपश्री ।  
 ४.१२.७ फेरियाड—( ग प )<sup>२</sup> हस्तेनोत्तिष्ठन् आमिता<sup>३</sup> ।  
 ४.१२.११ भाला<sup>४</sup> लकलु—( ख ग पं )—संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशस्वरूप भाषात्रय तत्प्रकरण च; लकलु—  
 ( ख पं ) तद्वाच्यम्, वसण<sup>५</sup>—( ग प ) दर्शनानि षड्, नभा—( ग पं ) नया. नैगमादयः सप्त ।  
 ४.१२.१३ सचित्तु—चित्रेण सह ।  
 ४.१३.१ नवल्लु—( ग ) अभिनव, ( प ) अभिनव अव्यजनासम्भ्रमम् इति, वस्मीकह—( ख ग पं )  
 प्रकटीभवति ।  
 ४.१३.३ भाउचिथ—( ग पं ) कुरुक्षायमान, अंगुलिताणावलि—( ग पं ) अङ्गुलयः ( पं ) प्राण अङ्गुलिः )  
 पोडवाका. तासा आवलि<sup>६</sup> पद्धिक्तः ।  
 ४.१३.७ नासावसु—( ग पं ) नासिका, अहरमुह—( ख ग पं ) अक्षरस्वरूपम्, करमुह—( ख ग प )  
 हस्तमुद्रिकेव ।  
 ४.१३.८ अणुगुणु<sup>७</sup> टंकारह—( ग पं ) तासा कोमलस्वनिद्वारेण मकरचिन्त<sup>८</sup> काम<sup>९</sup> धनुषो गुणं दीर  
 दङ्कारयति, वादयतीव ।  
 ४.१३.९ अचछं—( ग पं ) अचछं पत्तलं निर्मलं वा ।  
 ४.१३.१० रेहाहलु—( ग पं ) रेखायुक्त, कलु—( ग पं ) मनोज्ञ, विजयसंखु—( ग पं ) त्रिभुवनविजय-  
 सूचकशङ्ख, नजह—( ग पं ) ज्ञायते ।  
 ४.१३.११ बिडंबह—( ग पं ) कदर्ययति ।  
 ४.१३.१२ उक्कुकिरियसिहिण—( ग प )<sup>१०</sup> प्रथमतो उद्गतवन्तो, सिहिण—स्तनी, रटवहरायहो—  
 ( ग पं ) कामस्य ।  
 ४.१३.१३ गुळिया—( ख ग ) 'गुल्ही' इति लोके ।  
 ४.१३.१४ रोमंचिणु<sup>११</sup>—( ग प ) रोमावल्या ।  
 ४.१३.१६ रंभागढोह<sup>१२</sup> व—( ग प ) रंभा-कदली, तस्याः गर्भो ( ? ) इव, रडशमहो—( पं ) रस्या  
 रमणीयस्य, धम्महधामहो—( पं ) म-मण्यवलगृहस्य-ओणिततलस्य ।  
 ४.१३.१७ कुम्मायारु—( ग प ) कूर्मोन्नताकारम् ।  
 ४.१३.१९ ताड—( ग ) ताडवतस, अहिट्टिड—( ग पं ) अधिष्ठिता यत्र देवो स्थिता प्रत्यक्षीयता न यत्र  
 दृष्टा दृश्ये ।

[४.१२] १. ख ग<sup>१</sup>माला । २. पं हस्ते उत्तिष्ठन् । ३. ग<sup>२</sup>ता । ४. प त्रमुदंघण । [४.११] १. प<sup>३</sup>लि ।  
 २. ग<sup>४</sup>विष्ट । ३. ग. प्रथम । ४. पं<sup>५</sup>वड । ५. पं य ।

- ४.१४.१ समयसयर्णं व—( ख ग पं ) मदनस्य शयनं शय्या इव ।  
 ४.१४.२ धारंति ताड—( ख ग पं ) ताः धरन्ति, विह्वलम्...अहरं—( ग पं ) ओष्ठम्, कथम्भूतम् ?  
 विह्वलं वंतुर—( ख ग पं ) विह्वलं प्रवालक हीरकदन्त प्रसिद्धः तयोः खचिः क्षोभितः तया दन्तुर कर्तुरं  
 विह्वलोपमाधरविभवं शय्यास्थानीयम्, हीरकगुल्या दन्तखचिः पुष्पप्रकरस्थानीयेति ।  
 ४.१४.५ चकणचडविसाम—( ख ग पं ) चरणानां पादानां छविः कान्तिः तया, 'साम—तुल्यता'; अहि-  
 लासि—( ग ) अमिलापेन, वाञ्छया, कमलोहि—( ग ) पत्नी ।  
 ४.१४.६ निययं...पसाणस्मि—( ग ) नित्रयात्मानं लिप्त्वा कण्ठप्रयाणे ।  
 ४.१४.७ सखरद्विखाड्याले—( ख ग पं ) नाभेरधोरेखा सखरं खातिका तया युक्ते, तिवकि—( ग पं )  
 नाभेरधरि रेखाग्रयम् ।  
 ४.१४.१० आचड—( ग ) एता, निम्नविड—( ग ) निमित्ता; पयावड—( ग ) बह्या ।  
 ४.१४.११ निचवि—( ग ) दृष्ट्वा; हसिय—( ख ) उदहसितम्, ( ग ) उपहसति ।  
 ४.१४.१२ नासंभति—( ग प ) अस्माकमर्थं प्रमप्ययुमर्थं भवति; सहोपोद्धृतं बलं ( न ) शक्नोमि ।  
 ४.१४.१३ लग्गु—( ग पं ) लग्नः, जेईये—( ग ) उद्योतिष्केन ।  
 ४.१५.१ पंचप्याह—( ख ग पं ) पञ्चपरमेष्ठीभेदभिन्नं पञ्चप्रकारम् ।  
 ४.१५.२ केरकि—( ख ग पं ) केरलदेशोद्भूतानायाः ।  
 ४.१५.६ ( ख ) सखरद्वि—( ख ) सख्याचलस्य; कणिर—( ग ) कण कण इति शब्दः; कण्ठावसंखु—  
 ( पं ) ताडयन्म् ।  
 ४.१५.१० कौलकि—( ग प ) कोस्तलदेशोद्भूता नायिका<sup>१</sup>; कौलकमर—( ग पं ) केशसंघात ।  
 ४.१५.११ उहीविष—( ख ) उत्कृष्टं कृतम्, उहीविषे... विडंडु—( ग पं ) उद्दीपितम् उत्कृष्टं कृतं काम-  
 क्रोडनं यासां ताश्च तां रम्यं<sup>२</sup> समदाः तत्तद्देवोद्भूतानायाः तासां विडम्बकाः<sup>३</sup> कदर्थकः,  
 पं नमंशतटदेशो<sup>४</sup> ... ।  
 ४.१५.१२ पथद्विष दुरोकाड—( ख ग पं ) ईपत् प्रकटितं कुरुदेशसंरूपो<sup>५</sup> येन ।  
 ४.१५.१५ कीवड—( ख ग पं ) वडीवानि ।  
 ४.१६.३ सरकदल—( ग पं ) तिर्यक्प्रसूनपत्रावली, कवली—( ग पं ) लवङ्गः, कयलीसुहं—( ग पं )  
 कदलीप्रभृतिः ।  
 ४.१६.५ नगोह—( ग पं ) वटवृक्षः ।  
 ४.१६.८ रड्वराणता—( ग पं ) कामादिष्टा, अवयवण—( ग ) व्यावृता, ( प ) व्यावृत्तः; माहवसिरे—  
 ( ग पं ) वसन्तलक्ष्मी ।  
 ४.१६.१२ यण...विडविणि—( ख ग पं ) स्तनरमणप्राग्भारकद्वयिता, निहुवणैकेलिहि—( ख ग पं )  
 कामक्रोडाया ।  
 ४.१७.१ अणुण्ड—( ख ग पं ) अनुकूलं करोति, परिहासा...मण्ड—( ख ग पं ) विशिष्टानां परि-  
 भाषणयोग्यानि पेशलानि मनोज्ञवनानि भणति एव वक्ष्यमाणं कथा येन ।

[४.१४] १ ख ग समा, पं समतुल्यता । २ प 'पोद्वत्ये' । [४.१५] १. पं 'का' । २ पं 'वि' ।  
 ३. पं 'तरीय' । ४. पं 'विट' । ५. पं 'रूप' । [४.१६] १. पं 'निहुवण' वैलिहि ।

४.१७.२ कुरभो<sup>१</sup>—(ख ग पं) वृक्षविशेष, साण्डु<sup>२</sup> जं न<sup>३</sup> आलिंगिभो सि—(ख ग पं) यतः यस्मात्  
<sup>३</sup>सानन्दो भवसि<sup>३</sup> आलिङ्गितः सन् ।

४.१७.३ हेमरुक्ख—(ग पं) वकुलवृक्षः ।

४.१७.४ कलिभो "रुक्ख—(ग पं) आकलितांसि ज्ञातोऽसि त्व अशोकवृक्ष इति, लड—(ग पं)  
 - पूयता, पाय "सुक्ख—(ग पं) यतः पादप्रहारेण त्व मूर्खं हससि, विकसति ।

४.१७.५ विदोयवयण—(ग प) विपरीतवदना, पराङ्मुखा, पणमकुद्ध—(ग) प्रणयकोपा, (पं)  
 सभया—मयारित्यवतप्रणयकोपा [ 'कोपा ] ।

४.१७.७ परियत्तवि—(ग) व्याघ्रपुत्रः ।

४.१७.८ विराड्—(ग प) विराजते, आड्—(ग पं) यावति ।

४.१७.९ नववहुवहे—(ग) नवीनकान्तायाः ।

४.१७.१० आवाणपू<sup>४</sup>—(ग पं) आपानके हि मद्य-मद्यपानमेलोपकस्थाने ।

४.१७.१४ मिज्जन "मयणु वयणु वहड्—(पं) मद्यपानरहितप्रदेशे प्रसर-मदनवशादवलम्वत्पितृकोप-  
 प्रवेशे वा रगतं मुखं वरतीति ।

४.१७.१५ फलिहमय अवाणयचपड—(ग प) रुक्मिकौशकीयमानयः ।

४.१७.१६ मयणाहि—(पं) कस्तूरिका ।

४.१७.१६-१७ मयणाहि "वंदमरिसु सुहु किड एड कूडमन्तु—(ग पं) निष्कलङ्कं मुखं कस्तूरिकातिलकं  
 कृत्वा सकलङ्कं कुतमिति कूटमन्त्रोप्यम् ।

४.१७.२० दहासु—(ग पं) लडहिमौ ।

४.१७.१ सं सत्त "ववत्तु—(ग पं) तव शिष्टत्वं सकलमप्युद्यानं प्राप्तम् ।

४.१७.२२ कलड्—(ग पं) आकलयति ।

४.१७.२३ अकाळावहि "पडिक्खलड्—(ग पं) परिष्कलङ्कं वक्रोत्तया अवाजिरे योजयति ।

४.१८.१ नच्चंसा मोरा—(ग प) जम्बूस्वामिनोऽभिप्राये मयूरा, नायिकया च तद्वचनं छलितम्, स्वदीपा  
 नृत्यन्तमिति, 'मोरा' शब्दो हि मयूरे आत्मीये च वर्तते इति ।

४.१८.२ कारंढाण "रिडवरिणिहुं—(ग प) का रण्डाणां विषयानां पङ्क्तिं चेत्युच्छसि<sup>५</sup> । या तव  
 रिपुषु हेणोनामिति छलोक्त्या उत्तर<sup>६</sup> वत्तम् ।

४.१८.३ सर "वावे वहड्—(ग पं) सर—शब्दः कोमलायाः कोमल एव बहति प्रवर्तते इति स्वामिनो  
 वच, तच्छ्लोभस्या प्रश्नं करोति, वः सरः कोमल एव वधते इति चेत् ? उत्तरमाह—(ग प) य सार  
 मेदनश्चटापिते चापे गृह्णाति स पुष्पमयबाणत्वात् कोमलोऽपि वधते ।

४.१८.४ एयं च "जणाण—(ग प) इदं चारद्वैवे<sup>७</sup> जानोहीति स्वामिनो वच, तव छलोक्तिः प्रिया-  
 कान<sup>८</sup> प्रियतमस्य आलोकनं समापणं दुर्लभं दुर्मगजलानाम् ।

४.१८.५ सारंभं "वड्डु गच्छ—(ग पं) सारंभं—हरिणी गता, सारणी—हरिणी, दल्ला घूर्ता इति (पं)  
 स्वामिनो वचः, तव छलोक्तिः यदि सारङ्गो उत्तमाङ्गोपेना सारङ्ग गता भूमिं प्रविष्टा ततः सा नृत्यतु, पदहं  
 वादय त्व ! गच्छ ।

[४.१०] १ प कुरवो । २ पं जल । ३. पं सानन्दः शि । ४. पं गहं । ५. गं हिम । [४.१८] १. अं वे ।  
 २. वत्तु । ३. पं चारवनं वृक्ष । ४. लवण ।

४.१८.६ पिय...कामधेयु—इन्द्रगोपकान् रक्तक्रीटकविशेषान् वियतरेणून् निर्मलान्<sup>१</sup> पश्य पश्येति<sup>२</sup> स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः। यदि इन्द्रगोः कामधेयुस्तस्याः पादान् पश्यसि, विरेणून्—परिस्फुटान् तदा लङ्-पूर्यात्, कामधेयुरियमिति, मणिं दुदुधु—याचय दुग्धम् ।

४.१८.७ जले "जलमि मंडु—( ग प ) जले कङ्कणे वक्रः, हंगो चैय, हसी यद्यपि स न भवति, तथापि मन्दमन्दगतिः, व ? जलमि—जले, इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः तु हंसो चिचय त्वमेव स वङ्क कं परमात्मा मुलं ( पं स्वरूप ) कोति ( प कोपति ) प्रतिपादयतीति<sup>३</sup> कङ्क, जलमि मंडु—त्रडे जडस्वरूपे मन्त्रे<sup>४</sup> निरन्तर [ तिर ] ब्रह्मस्वरूपमित्यर्थः ।

४.१८.८ सुड...कञ्जु नाह—( ग पं ) शुक्रः कोरो विशेषेण जलातिस्तत्र [ अत्र ] का वावा का पीढा इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः—यदि मुनः पुत्रो बिलपति, हे नाथ ! तदा संक्रन्वि—सस्थाप्य श्रद्धां कुरु, यतः इदं परकीयकार्यं न भवति ।

४.१८.९ म हे सरु...जिचचणहाणु—( ग पं ) मावमासे सरः कमरुसरोवरः शिशिरेण हिमेन दग्धं जानीहि त्वमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः—माहेस्वरौ महेस्वरमभवत्<sup>१</sup> शङ्कुादिकं ददाति<sup>२</sup> यदि शीतेन त्रियते<sup>३</sup> तदा मरेहिद्—जिदण्डी अतिसयेन त्रियता<sup>४</sup> यतो यस्य नित्यमेव त्रिसन्ध्यास्तानाम् ।

४.१८.१० सुखिहे...कत कंतावसाणु—( ग पं ) तापसानां शुद्धेः कारणं कं-गानीयमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः कंतावसाणु<sup>१</sup>—कान्तावशर्वत्तना रागिणा तापसानां जलनानामात्रेण का शुद्धिर्न कदाचिदपीत्यर्थं [ काचि० ? ] ।

४.१८.११ केरि...हरिणकरेह—( ग पं ) हे नन्वङ्ग त्वं अथ च कीदृशं वक्रा ? अतिवक्रासीत्यर्थः<sup>१</sup> इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः—हे नाथ यासौ तन्वङ्गो अतिवक्रा च सा हरिणः क्लृप्तस्य चन्द्रस्य रेखा द्वितीयाचन्द्रस्य कलेत्यर्थः न चाहं तथाभूता इति ।

४.१८.१२-१३ ( पं ) दोहडा—गौरी...सुकति । तं वा "न मंति ॥—( ग पं ) गौरी गौरवर्णात्ताम्रवरेण आरक्तीकटेन सुकात्ता सुष्ठुरमणीया केवलं न भवति, किन्तु सामाखी—इयामवर्णात्ताम्रवरेण सुकात्ता भवतीति स्वामिनो वचः, तत्र छलोकितः—तं वा गौः, वसहं—वृषभेण, रमिय—सेविता, न पुनः तस्मा हरेण महेश्वरेण सेविता, हरेण पुनर्गौरी रमिता अत्रार्थे न कदाचिदपि [ काचि० ? ] भ्रान्तिः, सर्वेषां सुप्रसिद्धमेतत् ।

४.१८.१४-१५ जह साहिबि...सिंगारसु । दूरं वरे...विसयकसु—( ग० प० ) तत्रोद्यानवने क्रोडता<sup>१</sup> जम्बूस्वामिप्रभृतीनां योऽसौ शृङ्गाररस, मदनोऽपि तं यदि साहबि सकरुह—वर्णयितुं शक्नोति, अथवा सोऽपि न शक्नोत्येव, दूरन्तरे तिष्ठतु<sup>२</sup>, आरिसु<sup>३</sup>—अभ्युत्पन्नः<sup>४</sup> अस्मदस्य कविः<sup>५</sup> कथं परिजानाति, विसयकसु—( ख ग पं ) शृङ्गारविषयविभागनिश्चयम् ।

४.१९.१ कामधेय—( ग पं ) कामस्य वेगे<sup>१</sup> आत्रेये<sup>२</sup> अथवा कामवेदे<sup>३</sup> गुणवताकादिकामक्रीडाप्रतिपादके<sup>४</sup> शास्त्रे<sup>५</sup> ।

४.१९.६ विसइ—( ग पं ) प्रविशति, वरंगु—( ख ग पं ) नितम्बप्रदेशः ।

४.१९.८ विवरीयसुड—( ख ग पं ) विपरीतरतं ( पं रतं ) ।

४.१९.१० तलनाइहि...सरोरि—( ख ग पं ) तलनाइहि—नरन्तो शरीरलघुत्वं स्थापयन्ती ।

४.१९.११ डरसोल्लिण...तरंग ( ख ग पं ) हृदयेन पानीयविल्लणम् ।

१ प पश्यामिति । २ प यतीति । ३ प जलं । ४ निरन्तरजलस्य । ५ प भवति । १०. पं "मि ।

११ पं मूयते । १२ पं० मूयते । १३. पं वसान । १४. पं अतीववक्रा । १५ पं ता । १६. पं तिष्ठतु ।

१७ पं सो । १८ पं पन्नो । १९ पं कवि । [ ४ १३ ] १. पं वेप । २. पं श । ३. पं वंदो । ४. पं पादकं । ५. पं शास्त्रं । ६. ख ग रत । ७ पं सेल्लिण ।

- ४.१९.१६ आवास तवंगु—(ख ग) आवासं चवलगृहम् (पं) आवासचवलगृहे ।  
 ४.१९.१८ जलकोल—परिहणाहे—(ख ग पं) जलकलोलैरितस्ततः कृतवस्त्रायाः ।  
 ४.२०.२ सङ्गु—(ग) स्वेच्छया, पोचङ्ग—(ख ग प) परिधानवस्त्राणि ।  
 ४.२०.९ हुलण—(ग पं) वेव ।  
 ४.२१.२ दालिमाकि—(ग प) दालिमपङ्क्तिः, मंडमार—(ग पं) घनहृन्दवृक्षाः ।  
 ४.२१.४ चारिकोललोलमाग—(ग पं) जलकलोलैरितस्ततः सिष्यमाणाः ।  
 ४.२१.५ भूमिभायसृष्टिर्हि—(ग पं) श्रोटयित्वा भूमिभागे आस्फालितं, चकपुहि—(ग) अहूविषङ्गः,  
 (पं) अङ्गवेयाडे (हिङ्गे-अङ्गे-टेङ्गे), कुल्लमल्ल—(ग पं) कुल्लासारिणी, (पं) तल्ल—छिल्लराणि  
 (हिन्दी-छिल्ला) ।  
 ४.२१.७ वाह ।ट्ट—(ख ग प) घोटकसघाताः ।  
 ४.२१.११ दोमियंग—(ग प) दुःखसाङ्गाः ।  
 ४.२१.११ गुंठि (गोठुं)—(ख ग पं) भारः ।  
 ४.२१.१२ सरट्टिलोष्टिया—नवधौवना, सरङ्गट्टिका, विसट्टवस्थ—(ख ग पं) नवना ।  
 ४.२१.१७ सदाणं—(ख ग पं) समदम् ।  
 ४.२१.१८ वेसा सु रंगं—(ख ग पं) वेवयाया सुरङ्गमत्यासवतम् ।  
 ४.२१.१९ पङ्क्तिमा—(ख ग पं) प्रभुः सृष्टेन ।  
 ४.२१.२० वियाणं—(ख ग पं) मणिवितानम् । अधामं—(ख ग पं) सामर्थ्यरहितम्; वलिट्टेन—  
 (ख ग प) बलश्रता ।  
 ४.२२.१ नापण—(ख ग पं) नागेन हस्तिना ।  
 ४.२२.३ कियदूवरीण पडिकारेण—(ख ग पं) दूरीकृतप्रतीकारेण सुभटेन वा ।  
 ४.२२.४ डमरेण—(ख ग प) अयानकेन ।  
 ४.२२.५ चूरियभुयंगेण—(ख ग प) निर्दलितक्षेपेण ।  
 ४.२२.६ दुववारवारसल—(ख ग पं) दुर्वाराणां दुष्टानां (पं) दुर्वाराणामयज्ञाना ? ) वारकस्य विजेतुः ।  
 ४.२२.१० रणरंगलुद्धेण—(ग पं) सङ्ग्रामभूमौ जयकाङ्क्षिणा ।  
 ४.२२.१३ वंघ जणतेण—(ख ग पं) करबन्ध कुर्वता ।  
 ४.२२.१७ कंजुह्य—(ख ग पं) श्रापीकृतं, पुण्ड्र—(ख ग पं) कमलसङ्कथं, विह्वियसिरायु  
 —(ख ग प) गलितदर्पेणात् विवटितसिराङ्गम्, संजातशियिलसर्वगात्र इत्यर्थः ।

### टिप्पण सन्धि ५

- ५.१.३ आवरणं—(ख ग) प्राप्नोति ।  
 ५.१.४ नियत्त—(ख ग) प्रवर्तितम् ।  
 ५.१.५ बालु—(ख ग) जम्बूधारी ।

[४.२१] १ पंमाण । २. ख ग संघातः । ३. पंतागाः । ४. पंवना । ५. पं प्रभु । [४.२१] १. पं  
 काक्षिणाः । २. पं ध्रुवः ।

- ५.१.८ एककु पासि—( ख ग पं ) एकस्मिन् पाद्वे ।  
 ५.१.१४ पायथ्यवणफलपुण—( ख ग प ) पादपृष्ठे[ठे]न ।  
 ५.१.१५ नखलससासिणा—( ख ग पं ) नखत्रस्वामिना, चन्द्रेण ।  
 ५.१.१८ रायसासणं—( ख ग पं ) आज्ञा सासनम् ।  
 ५.१.१९ राय—समीहमाण—( ख ग पं ) आज्ञा प्रतीच्छन् ।  
 ५.१.२० असोसारुणा—( ख ग ) दूरीकरण ।  
 ५.१.२१ सत्थानमुवविसंत—( ख ग पं ) स्वकीयस्थाने उपविशन्तः ।  
 ५.१.३० सुहि—( ख ग ) सञ्जन [ ' ] ।  
 ५.२.४ मारुपवेयवहुत्तु—( ख ग पं ) समीरणवेगादधिकवेगम् ।  
 ५.२.६ हडं गयणगह—( ख ग ) गगनगतिरहम् ।  
 ५.२.११ उक्तल्लु—( ख पं ) उत्सुकः ।  
 ५.२.१४ अणगु थवह—( ख ग पं ) कामदेवो रचयति ।  
 ५.२.१९ सुण्डमाला—( ख ग पं ) मुकुटः ।  
 ५.२.२३ मियके—( ग पं ) मृगाङ्गेन विद्यावरिण, देवद—( ग ) दातव्यम् ।  
 ५.३.१ असमसाहस—( प अह-अथ, सुसाहसु )—( ग प ) साध्वससहितः ।  
 ५.३.८ जिण—संघट्टणह—( ग पं ) जिनभवनरमणीयत्वम्, ( पं जिनभवने रमणं रमणीयत्वं ) तेन संघट्टणं संवन्धी वेवाम्, रवण—( ख ) रमणीयत्वम् ।  
 ५.३.९ निव्वासियाहं—( ख ग पं ) उद्घासितानि, नमनीकृतानि वा ।  
 ५.३.१० रामहं—( ख ग पं ) रमणीयाणि ।  
 ५.३.११ मारियाहं—( ख ग पं ) मरणिकया भूतानि ।  
 ५.३.१२ कपनीडहं—( ग पं ) कृता निनाहलादिभिः पक्षिभिर्वा नीडानि गुहाणि येषु ।  
 ५.३.१३ तहरीरहं—( ग पं ) तरवस्तीरेषु तटेषु येषाम् ।  
 ५.३.१५ परिरक्षियछल्लु—( ख ग पं ) परिरक्षितं छलं पीरुषं येन, वयणं यहे—( ख ग पं ) लोकयाच्य-  
 तया ।  
 ५.४.४ गोहत्तणु—( ग ) पीतपत्रम्; सव्वास्सु—सर्वा[र्व?]स्यापि ।  
 ५.४.५ मणुसह्य—( ग ) पीरपत्रम् ।  
 ५.४.८ पासंगिड—( ख ग पं ) प्रसंगीयातम्, छट्टं—( ख ग पं ) संक्षेपेण ।  
 ५.४.९ समड—( ग ) समयोऽवसर, सत्तुवरे—( ख ग पं ) वैरिपर्वते, पवी—( ग ) दक्षः ।  
 ५.४.११ साहेज्जड—( ग ) सहायी ।  
 ५.४.१३ विज्जु—( ख ग ) वेद्यः, सप्पु—( ख ग ) सर्पः ।  
 ५.४.१४ गहु—( ख पं ) व्यूहं, सयदिठहु—( ख ग ) १५० ।  
 ५.४.१७ अणुवल्लु ( ख ग पं ) साहाय्यनिमित्तं सैन्यम् ।



५.४.१८ समिथं कु—( ग प ) मृगाङ्गेन सह ।

५.४.२ सम्वासे—( ख ग ) अम्नो ।

५.४.३ कर्पतुष्टु<sup>१</sup> जलु—( ग प ) क्लान्ते प्रलयकाले भ्रमितमूर्ध्वकलोलमालाकुलित जलं यत्र ।

५.४.६ समं आसिरेण—( ख ग प ) भापणशीलेन विद्याधरेण, समं—सह ।

५.४.८ विहप्पस्स ( ख ग पं ) राहोः ।

५.४.९ चंरस्स पक्खिरायस्स—( ख ग पं ) दुष्टाशयस्य गरुडस्य ।

५.४.११ भूर्हनिहाणो<sup>२</sup>—( ख ग पं ) अस्मविधान ।

५.४.१३ खेयरो—( ख ) गगनगति नाम खजर, रायवाणी—( ग ) राजवाणीम्; ( ग ) देवि पाणो—( ग ) वस्त्रा हस्तम् ।

५.४.१५ खगङ्गेन दिट्ठ सहाए—( ग पं ) श्रेणि कस्य समया क्षणादैन विमानं दृष्टम् ।

५.५.१६ चित्तुत्तलें ( ग पं ) उत्सुकचित्तेन ।

५.५.१७ निवेण—( ख ग ) श्रेणिकेत ।

५.६.१ सरसं—( ख ग पं ) सहप्रामरसैकचित्ताः<sup>३</sup> ।

५.६.२ तंतवाल्लकलिविड्ड—( ग ) सैन्धुनिविड्डा, मडयड्ड—( ख पं ) भटसंघात, ( ग ) मट्टसंघातम्, ( पं ) मडसंघातम् ।

५.६.३ आहट्ट—( ख ग प ) आदिष्टाः आहट्टा<sup>४</sup> वा शीघ्रं प्रयाणके चलन्तु भवन्त इत्यर्थः; सामग्गिवावड्ड<sup>५</sup>—( ग प ) प्रयाणकसामग्रीभ्यापूतः<sup>६</sup> व्याकुला वा ।

५.६.५ सबाहियकरकट्ट—( ख ग पं ) सबाहितं जालितम्, प्रयाणकयोभ्य वस्तु ( ख )<sup>७</sup> ज्ञात येपा ते ।

५.६.७ पडय 'द्विज्वर'—( ग पं ) प्रह्लाद्वच पटुपट्टाश्च सैर्यः प्रतिरडिनाः<sup>८</sup> प्रतिवादिता अपि प्रति-  
शब्दिताः द्विज्वराः समवाह्याः बाधविशेषा ।

५.६.८ सालकंसाल—( ग पं ) विस्तीर्णकंसाल ।

५.६.९ टंकार—( ग प ) शब्दः ।

५.६.१० 'नाहय'—( ग प ) निनादयुक्तम्<sup>९</sup>, संक्षिणसमवाहयं—( ग पं ) दत्तनमहस्तम् ।

६.११.१४ ( ग पं ) थगगदुगे 'विस्तारियं'—( ग पं ) सज्जित्य—एतैः शब्दैः सज्जितः—प्रगुणीकृतं यत्  
एतैः प्रागुक्तैः प्रगदितशब्दैः प्रहृतसमहस्तेन सुप्रशस्तं यथा भवति एव विस्तारित ।

५.७.४ हरिखुर 'ससुरागरण'—हरिखुरैर्वीटकनलैः क्षुण्णनीचकलितैः<sup>१०</sup> समुत्पन्नेन गगनतले गतेन ।

५.७.६ जड्वल्लु—( ख ग पं ) जयनशीलः जययुक्त, मड्वल्लु<sup>११</sup>—( ख ग पं ) मलिनः ।

५.७.९ डरिवल्लु—( ख ग पं ) भयानक, तंदविय—( ख ) ताणितम्, ( ग ) ताडित ( पं ) ताडितम् ।

५.७.१० पालिद्ध्यालि—( ख ग पं ) वक्षलग्नचौरं, गरिवल्लु—( ग पं ) महावीरोपेत ।

५.७.११ कसहयहरिवल्लु—( ग ) तर्जनहस्ताश्च ।

[ ५.५ ] १ पं घंत । २ पं निहाणे । [ ५.६ ] १ पं सा । २ पं तिता । ३ पं टः । ४ पं टः ।

५ पं वावडा । ६ पं सामय्य ग्रावृता । ७ पं रट्टिताः । ८ पं नायय । ९ पं युवनः । १० पं धाययं ।

[ ५.६ ] १ पं ता । २ पं कृता । ३ पं पडवति । [ ५.७ ] १ पं खमुण्णएण । २ पं कलितेन ।

३ पं मयल्लु ।

५.७.१२ सिरिजूद—( ग पं ) सरो जूहे बद्धं थोरिकैरिल्ल उपरितनवस्त्रं यत्र ।

५.७.१३ पयवपण—( ग पं ) पादयोश्चपःपेन कृतानि विकृतानि नद्योभयतटानि यानि तेरिल्ल युवतः ।

५.७.१४ तट्ट—( ग पं ) वस्त्रं, नट्ट—( ग पं ) मग्नः ।

५.७.१६ विववणीप—( ग पं ) विगतवन्धननिमित्तपुरुषया असहायया इत्यर्थः ।

५.७.२० मुकराड्ड—( ग पं ) मुक्तक्रन्दः ।

५.७.२१ मज्जथट्ट—( ग ) मज्जवपक ( पं गव चटसः ) मज्जस्वा वा ।

५.७.२४ हस्तिरोड्ड—( ग ) गजारोहक<sup>५</sup> ।

५.७.२६ कारणु—महल्लड—( ख ग पं ) महदपि स्त्रीपराभवादिलक्षणं कारणं, महल्लड—अतिसयेन महत् ।

५.८.७ वंसिज्जंसी—( पं ) वंसज्जालो समूहः ।

५.८.१४ करिकाण्णा—( ग पं ) हस्तिकदयिकाकाः<sup>१</sup> ।

५.८.१५ वग्गेहि गुंजारिया—( ग पं ) व्याघ्रवासिताः<sup>२</sup> ।

५.८.१६ कोलडड—( ग पं ) सूकरसंघाताः ।

५.८.२५ विसरिस—( ग पं ) परस्परानुगतः ।

५.८.२६ हलभूमिली—( ग पं ) कृष्टभुवनेलीलाम्<sup>३</sup> । संपच्च—नील—( ग प ) संपच्चयमनगोधूमैर्नीला भवति, सत्यमानगवा<sup>४</sup> धूमैश्च नीला भवति ।

५.८.३१ विज्जाडई सारहरणभूमि वः—

( i ) सरहमील—( ख ग पं ) भारतरणभूमि. सरया रक्षसमन्विता, नीसा—भयानका; विन्ध्याटवी तु सारभैरुष्टापदेभयानकाः<sup>१</sup> ।

( ii ) हरि—नील—( ख ग पं ) भारतरणभूमौ हरिर्बानुदेव, अर्जुनी, नकुलः शिखण्डो च पाण्डवश्चै राजपुत्रविशेषाः एते दृश्या भवन्ति; विन्ध्याटव्या तु हरिः—सिंह, अर्जुनी—वृक्ष-विशेष, नकुल—प्रसिद्ध, शिखण्डी—अयूरः एते दृश्या भवन्ति ।

५.८.३२ ( iii ) गुरु—वार—( ख ग पं ) भारतरणभूमौ गुरुणाचार्यः तत्पुत्रः अश्वत्थामा, कलिङ्गः कलिङ्गदेशाधिपति राजा, एतेषा वारः—वेष्टा भवति, विन्ध्याटव्या तु गुरुर्महान्, अश्वत्थः—पिपलः, आमः—आर्द्र, कलिङ्गा—वल्गु, वाराः वृक्षविशेषा भवन्ति ।

( iv ) गजगजिर सार—( ख ग पं ) भारतरणभूमौ गजगजिरा<sup>२</sup> सारा भवति, सचाराः वाणस-मन्विता, महीसाः राजानः, ते. सारा भवन्ति यत्र, विन्ध्याटव्या तु गजगजिताः<sup>३</sup>, ससरा—सरोवरसमन्विता, महीमसारा—महिषा. सारा भवन्ति यस्याम् ।

५.८.३३ विज्जाडई लकानयरी वः—

( i ) सरावणीय—( ख ग पं ) लङ्का रावणसहिता भवति; विन्ध्याटवी तु सरावणीया—रावण-वृक्षविशेषमहिता भवति ।

४ पं पादो वपः । ५ पं मेहिला (?) । ६ पं लक्षण । [ ५.८ ] १ पं कदयिक । २ पं वासिताः । ३ पं लीला । ४ पं गवं । ५ पं धूमैः । ६ पं वैदर्भीसा । ७ पं साहू । ८ ख गज्विता । ९ पं गज्विरा ।

- (ii) चंदणहिं<sup>१०</sup> वणीय—( ख ग पं ) लङ्कानगरी चन्दनवाचारेण चेष्टाविशेषेण कलहकारिणी भवति, विन्ध्याटवी तु चन्दनं चन्दनवृक्षविशेषे<sup>११</sup> द्यारै. चारवृक्षैः वा मनोहैः कलहैः लघुनस्तीभिर्युक्तो<sup>१२</sup> भवति ।

५.८.३४ (iii) सपलास<sup>१३</sup>—( ख ग पं ) लङ्कानगरी सपलाशा, पलाशे राक्षसैर्युक्ता, <sup>१४</sup> सकाञ्चना, <sup>१५</sup> अक्षय कुमारी रावणपुत्रस्तेन<sup>१६</sup> युक्ता, विन्ध्याटवी तु पलाशवृक्षसमन्विता, सकाञ्चना-मदनवृक्षविशेषसहिता, असा—विभीतकवृक्षा. ते तच्छा [ तत्स्था ? ] यत्र ।

- (iv) सविहीसण<sup>१७</sup>—( ख ग पं ) लङ्कानगरी विभीषणसहिता भवति, विभीषणो रावण-भ्राता, कइडल—कपीना बानराणा, कवीना काव्यकर्तृणा वा कुलानि—सघाता ( पं कुलैः सघातै ) तै. समन्विता, फलानि रसादधानि, <sup>१८</sup> एतैः सहिता, <sup>१९</sup> विन्ध्याटवी तु सविहीसणा—नाना विभीषिकाभि सहिता भवति, बानरसंघाता [सघातैः सहिता] फलसंघाता च ।

५.८.३५ विज्झाडई कंचायणिञ्च.—

- (i) द्वियकलणकाय—( ख ग पं ) कात्यायनी-चामुण्डा घृतकृष्णकाया भवति, विन्ध्याटवी तु <sup>२०</sup> घृतकृष्णकाका ।
- (ii) सद्बुलविहारिणि—( ख ग पं ) कात्यायनी तु शार्दूलैः वाहनेन विहारिणी—विहरणशीला, विन्ध्याटवी तु शार्दूला विहारिणी यस्याम् ।
- (iii) मुकनाय—( ख ग पं ) कात्यायनी मुक्तनादा, मुक्कफेकारा; विन्ध्याटवी नानाजीवै-मुक्तनादा च ।

५.८.३६ विज्झाडई तिनयणतणुञ्च :—

- (i) दारुणलंड—( ग पं ) त्रिनयनो महादेवस्तर तनु, छन्देन-गौर्यभिप्रायेण नानाछ दैर्घ्यनत्तित, दारा ( पं दारु ) भवानी <sup>२१</sup> गौरी, तस्या दारुणिक. नृत्यो भवति, विन्ध्याटवी तु दारुभिः काष्ठैः पवनै. पलाशै. छदा—प्रच्छादिता ।
- (ii) गिरिदुय<sup>२२</sup> खंडचंद—( ख ग पं ) त्रिनयनतनु गिरिसुताया <sup>२३</sup> गौर्या, उटानि. कन्दलै—कपालखण्डैः, खण्डचन्द्रेण च सहिता [ <sup>२४</sup> त. ? ] भवति, विन्ध्याटवी तु गिरिभिः, शुकैः, जटामिनानामूलैः कन्दलैरङ्कुरविशेषैः, खण्डकन्दैश्च सहिता भवति ।

५.८.३७ परिसङ्ग—( ख ग पं ) अग्नेतनभूमिमाक्रामति, छइल्लु—( र ग प ) विदग्ध ।

५.९.२ गामार वि—( ग पं ) कुटुम्बिका अपि ।

५.९.४-५ अहि गोवाल व गोवाल—( ग प ) यत्र देशे गोपाला. गवा रक्षकाः, गोपाला इव-राजान इव ।

- (i) महिसी<sup>२५</sup> अहि—( ग प ) राजानो हि महिषा अग्रमहादेव्या बद्धस्नेहा भवन्ति गोपालास्तु महिष्या घेत्वा च बद्धस्नेहा भवन्ति ।

- (ii) कमलायरगयसाल—( ग प ) तथा राजान कमलाकाः कमलादराः लक्ष्म्या आकराः गजशालाभूतत्वाच्च भवन्ति; गोपालास्तु कमलाकरा<sup>२६</sup> पत्न्योऽखण्डमण्डितसरोवरात् शालोन-विशालभूतान्<sup>२७</sup> गताः महिषीणा तत्र रतिसङ्गात्<sup>(?)</sup> ।

५.९.७ कट्टेडई—( ख ग पं ) पद्यानि, कमलानि ।

१० प इवार्मी. कलमी लघु<sup>२८</sup> । ११ प युक्ताः । १२ प अक्षय<sup>२९</sup> । १३ प पुत्रस्तेनो । १४ प यत्र । १५ प घृताः । १६ प गौर्या । १७ ख ग सुतया । [ ५६ ] १ ग णाः । २ प कर । ३ प गुण ।

५.१.८ कीरेहि—( ग पं ) कीरे शुकै, द्विधा—आगता. [ ता ] ।

५.६.६ कण्डल—( ख ग ) शुका., ( पं ) शुकः ।

५.६.१२ जनवेस—( ख ग पं ) जनवेपो, जनाना वेध. शरीराकारः ।

५.९.१४ लाळिया—( ख ग पं ) सन्मानिता. ५ ।

५.६.१५-१६ सेविज्जह कंठारड—( ख ग पं ) कान्तारतम्, गण्डकविशेषश्च सेव्यते, कथंभूतं तत् ? कोमल-  
बहुरसु—( ग पं ) तदुभयकोमलं बहुरसं च, किं कृत्वा ? मेखिलि ( ख ग पं ) परित्वज्ज, परवसु—  
( ख प ) विगतस्वाहुरिति, किं तत् ? वेसायड—( ख ग पं ) वेद्यारतम्, किमिव ? उच्छ्वव—( ख ग पं )  
इक्षुरिव, कथमूनम् तत्—( पं ) विगतस्वादं इक्षुस्वरूपं वेद्यास्वरूपं च, कथयच्छड—( ख ग पं ) क्रये  
मूल्ये स्थितं च उभयं च; तथा निट्ठुर—( ख ग पं ) निष्ठुरं, निस्नेहं ( पं निस्नेहलं ) अकोमलं च,  
बंछड—( ख ग पं ) बक्रम्, वैशिकप्रधानम्, ( पं रतिकप्रधानम् ) अत्राजलं च, गंठिहु सरिड—( ख ग पं )  
ग्रन्थिभिर्हृदयकुटिलमात्रं प्रचुरपर्वविशेषश्च भूतम्, सखारड—( ख ग पं ) पूर्वमार्गं पश्चिमार्गं उभय-  
मपि क्षेत्रयमानं मधुररसं न भवति ।

५.१०.१ संदण—( ग ) रथा., ( पं ) रथः ।

५.१०.४ मणिह—( ग पं ) चित्ताह्लादजनका ।

५.१०.८ पुडिण "कच्छी ( ग पं ) पुलिनस्थानेषु निवेशिता कच्छी यथा ।

५.१०.६ गंधंदि—( ग ) गन्धे अत्याश[स]क्ताः ; ( पं ) गंधविध—( पं ) त्वं चिरं गन्धेनाऽतिशयेन  
अत्याश[स]क्ताः ।

५.१०.१० चहरी—( ख ग पं ) हरमलिता ।

५.१०.११ कुल्लगिरिंडु—( ग पं ) कुल्लगर्वतः, निववाहिणि—नृपसेना ।

५.१०.१८ सुइज्ज—( ग पं ) सूच्यते ।

५.१०.२२ बलि ( पं वेलि )—( ग पं ) मन्दुरा ।

५.१०.२४ रेवाणए कणए—( ग पं ) रेवानदीसमीपे ।

५.११.६ ( पं ) गुणेलिका—( पं ) गुणतणिका ।

५.११.१० ( पं ) आर्या; वमालु—( ख ग पं ) कोलाहल ।

५.११.१६ तमारि—( ख ग पं ) आदित्यः ।

५.११.१६ रयणचुल्ल—( ख ग ) रत्नशेखरः ।

५.११.२२ पइणड—( ख ग ) भीमपति ।

५.१२.८ समत्ता—( ख ग ) समस्ताः सर्वा ।

५.१२.१४ करुणलु "कमलरुंडु—( ख ग पं ) करकमण्डपे उद्भूतसिती लक्ष्यतया शोभितौ, कमलकम्प-  
पञ्चशब्दौ यस्य ।

५.१२.१८ पीणखधु—( ख ग पं ) उद्यनस्कन्धः ।

५.१२.२० रेहा न होइ—( ग पं ) हरीकारः चित्तः न भवति ।

५.१२.२३ सारलेड—( ख ग पं ) सरपः ।

४ पं निता । ५ पं सत्तारं । [ ५.१० ] १ पं कुल्लु । २ पं पर्वत । [ ५.१२ ] १ पं लक्ष्मी ।

- ५.१२.२४ अगश्यास—( ग ) अन्यायाचारम्, ( पं ) अन्यायपर ।  
 ५.१३.२ त्रिद्विा छाबहो—( ग पं ) निराकृतमाह्वान्यस्य ।  
 ५.१३.३ द्य—( ग ) आगत ।  
 ५.१३.६ दंडकरंविड—( ख पं ) दण्डगमित ।  
 ५.१३.१० पल्लिउड—( ख ग पं ) कोशमिना प्रज्वलित ।  
 ५.१३.१२ वज्रोहृ—( ख ग पं ) दूतः ।  
 ५.१३.१४ खयरविस रेस—( ख ग प ) प्रत्यकाकाशित्यसदृशः ।  
 ५.१३.१७ अयसु ...समुच्चपवधै—(ख ग पं) अयसोऽश्वकोतिरेव, सम्पुगुचवधौ—प्रहावश तस्मिन् तत्र वा ।  
 ५.१३.१६ एवम...रंजह—( ख ग पं ) प्रथमतो विवेक पापमेव रसस्तेन रञ्जयते, मलिन क्रियते ।  
 ५.१३.२० पहिफड...डकह—( ख ग पं ) योऽपी एवदोष. काल एव सपं प्रथमतो मनो प्रसति ।  
 ५.१३.२२ दम्भह—( प ) उपशाम्यते ।  
 ५.१३.२३ जित्तु जि एण वि—(ग) कोपादिना अयं जित, ( प ) जित्तु ज एण जि—( पं ) निजितेनापि, कोपादिना अयं जित ।  
 ५.१३.२६ जड ठवहि—( ग पं ) जय स्थापयति ।  
 ५.१३.२६ रहवह—( ख पं ) क्षीराम ।  
 ५.१३.३० कायहो—( प ) काकस्य, तो किं—( ख ग पं ) ततः आकाशनामित्त्वम्, सो विजि—(ख ग पं) स एव काक, याणु गुणसायहो—( ख ग पं ) स्यान् गुणविशेषस्य, गुणवत्तायाः ।  
 ५.१३.३३ अजलहि—( पं ) कथय ।  
 ५.१४.३ अवस' कयंतहो—( ग ) तेन यमहिहि कृतमित्यर्थः ( प ) तेन यमवे [देहे] नि त्यमित्यर्थः ।  
 ५.१४.१३ असिदुहिये—( ग प ) छुरिका, छुहदुहिय—( ख ग पं ) क्षुषादु छिता, ( प ) वरषमु-कारकः । (?)  
 ५.१४.२१ अत्रहृत्त—( ख ग प ) क्षत्रोरभिधात, समहृत्त—( ख ग प ) वामपाद्वे क्षत्रोरभिधातः, दडकाकचट्टेहि—( ख ग प ) 'अभिमुखे क्षत्रोरभिधात', करिडाण—( ग प ) हस्तिरसुवेधै वामे गळ कसि[ति ?]कया खड्गमुनासिकया च अघोमुखेन भूत्वा क्षत्रोरभिधान, रुठण—(ख ग पं) उपविश्य क्षत्रोरभिधात, कुम्मासणट्टेहि—( ख ग प ) सपक्ष रथ हस्ति-घोटकाना वृक्षासंगेन करवर-पाभिधात ।  
 ५.१४.२२ पचाणणालोय—( ख ग पं ) विहावलीकनेन अग्नेतेनक्षत्रूणा क्रम दत्त्वा प्राप्तेनक्षत्रूदनन, मिग...पापहि—(ख ग प ) मृगवत् अग्रकृतपादै क्रमेण अग्नेतेनक्षत्रूभूमिकाक्रम्य शत्रुहृत्त, सविास—(ग प) वामपाद्वे फरक दत्त्वा खड्गं पूष्ठप्रदेशे तिरोहित कृत्वा आत्मान निरवधान शत्रोः प्रदर्श्य निरवधानोऽपमिन् विस्वासेन हननार्थमायनस्य क्षत्रोरभिधातः मद्विवास, संकोय—( ग प ) चङ्काभूत क्षत्रुनिरमिहन्त्यधान. 'शरसि फरकं दत्त्वा क्षत्रोरभिधात. सकोव, अवसारषाणुहि—( ग प ) शत्रुनि अक्षत्रेणा [तन ?] मिहन्त्यमान. इति तं तान् हत्वा [हत्वा ?] स्वानान्तरे अपसरण सक्रमण अपसारयात ।

[ ५ १३ ] १ प 'वसो । २ प समर्थः । ३ प 'गामित्वाजि [ 'डि ? ] । ४ प 'वनाया । [ २.१४ ]  
 १ प 'दुहिया । २ प अभिमुखक्षत्रुभि' । ३ प 'वत्तु अवधा वन्तु, यो वन्तुनेयलकसि' । ४ प 'सण सगु' ।  
 ५ प शिरसि । ६ प अवसरे ।

सन्धि-६

- ६.१.१ द्वैत—( ख ) दम्ब, सञ्जद्वय—( ग प ) सर्ववन्, ( पं ) साटकछन्दः ।
- ६.१.२ हृदये चाथो इत्यादि—( ग ) साटकछन्दः ।
- ६.१.४ वच्छे सच्छा एवित्तो—( ख ग प ) हृदये निर्मला प्रवृत्तिः ।
- ६.१.५ कण्ठाण्येयं इत्यादि—( ग ) <sup>१</sup>अप्ये अप्या स्थितः, सप्तम्यर्थे पठ्यते, कण्ठाण्येयं—( ख पं ) कर्णेण्विद, सुयसुयराज्ञं—( पं ) आकण्ठितश्रुताश्चवारणम्, दोक्ष्याणं—( ख ग पं ) दोलताम्, बाहुलतासु, बाहुदण्डेण्वित्यर्थः ।
- ६.१.६ सहजः कञ्जमण्णं—( ग पं ) सम्मदा पुनः सहजपरिकरो भवति, किन्तु [सांगतम् ?] कार्यमग्नत् उत्तरकालीनम् ।
- ६.१.७ केरलनिवे धरिण—( ख ग पं ) विद्वाद्भूलोकनन्यायेन वचनम्, विजयं तरिण—( ख ) विजयेन अन्तरिते, ( ग पं ) विजयेन अन्तरितेन हरिषितोत्यर्थः ( ? )
- ६.१.१० उद्वेविह—( ग पं ) अस्तो व्यस्तम् ।
- ६.१.१६ सरायड—( ख ग पं ) राजासहितम् ।
- ६.१.१८ कडण्—( ख ग पं ) कटके ।
- ६.२.३ करवाकफेरण—( ख ग पं ) खड्गसदृशिनो ।
- ६.२.४ लोकावोक्त्यं—( ख ग पं ) अतिशयेन बोधितम् ( ) भुषणं<sup>१</sup> बोधितं—( ख ग प ) भुवनमार-  
भाराम्या, भुवनभातघरणसमर्थाम्या भुजाभ्यां तोलितम् लीलाया आकलितम् ।
- ६.२.६ रत्नपोत्तं रंजियं—( ख ग पं ) रत्नानि पीतानि वस्त्राणि धरन्ति या सा रामाश्चैता रण्डिता यत्र ।
- ६.२.८ रणरसिय—( ख ग पं ) समारसिका. संग्रामरसिका इत्यर्थः ।
- ६.२.९ तुष्टं 'मट्टड—( ख ग पं ) अतिपीरुषात् समुत्पन्नरोमाञ्जकञ्चुकेन तुष्टं ( ग तुष्टो, पं तुष्टे )  
ये कवचा. ते भूमौ प्रविष्टाः ।
- ६.३.३ कय—( ख ग प ) क्रयेन, मौल्येन ।
- ६.३.१० अगलियखगफर—( ख ) खड्गहस्तात् अपतित, ( ग ) अगलितखड्गखड्गकः ।
- ६.६.१० कय-सिरड—( ग पं ) <sup>१</sup>शिरावन्नेन मस्तकं मस्तकवैशाख ( पं ) वैशाखारमरतरजद्व ? ),  
सरसज्जणु—( ग पं ) सरसाः जणाः घाता यत्र रणे योवर्नं च सरसज्जम् ।
- ६.६.११ नह—( ग प ) नखानि, वधश्च, हियड ( ग पं ) चित्तं उरश्च ।
- ६.८.२ हा महु <sup>१</sup>बंससेसु—( ग पं ) सर्वेऽपि शत्रवो मया निर्भूकृताः, <sup>२</sup>तदीयगृहस्थितापैत्यमात्रावस्थानात्  
बंससेपा. <sup>३</sup>( ग ) 'कृताः वैरिण इति, इदानीं तेषां संग्रामे युद्धमानानामुपलम्भ्य विस्तरयति' ( ख ग )  
'हा वैरिणो न जाता बंससेपा इति' ।
- ६.८.३ निशुत्तु—( ग पं ) निस्तीर्णम्, सुयङ्—( ख ) सुपति [ स्विति ? ] ।
- ६.८.५ मज्झ सुदनिहाणु—( ख ग पं ) मज्झप्रमोक्षकारित्वात् सुखनिवाप्तमयं पदं<sup>१</sup> ।

[ ६.१ ] १ पं 'बो' । २ पं 'हरितो' । [ ६.६ ] १ ग खर । [ ६.८ ] १ पं त्वदीय । २ वं 'स्थिता' ।  
३ पं 'शेषा' । ४ पं 'कारत्वात्' । ५ पं 'विधान' । ६ ख ग पसाः ।

६.८.७ सिह...सक्कु ( ख ग पं ) यद्यपि शिरो दत्तम्, वो वि-तयापि, स्वामीप्रसादश्रृणु स्फोटयितु न शक्त इति, सामिय...थक्कु—( ख ग पं ) स्वामीप्रसादश्रृणुशेषस्य सङ्गानात् ।

६.८.८ अंतावलि...लद्धर्थु—( ख ग प ) अन्तावलिनिगडैल्लवन्व ।

६.८.९ पकासहं—( ख ग प ) मासाशिना राक्षस-पक्षिप्रभृतीनां ।

६.८.१० महिहे वण्णु—( ख ग प ) पृथिव्यामात्मोयगुणव्यावर्णना दत्ता ।

६.८.११ उर-सिर-सरीर—( ग प ) उर. शिर. शरीरं च, सवचुरिड—( प ) सर्वमपि चूरितम्, स[श]वत्य वा मृतकस्य चूरितम् ।

६.९.१ समसत्तहं ( प्रंक्ष संतह )—( ख ग पं ) होनाधिकसत्त्वरहितानि ।

६.९.२ अवलंविषसत्तहं—( ख ग पं ) स्वीकृतयोल्पाणि, अपरिग्यवतवोरवृत्तीनीत्यर्थः ।

६.९.३ तोरविष—( ख ग पं ) चूर्णोक्तताः ।

६.९.४ रसवविषपकासहं—( ख ग पं ) खिरप्रीणितानि राक्षसानि ।

६.१०.१ गरुडमण—( ख ग पं ) महानाद ( पं ) मद्गाहस्तिमवच ।

६.१०.२ खंड...वेययड—( ख ग पं ) खण्डा सोण्डा येषां ते च ते वेदाण्डाश्च ( ग प वेयडडाश्च ) ते षण्डास्ते, मिसले—( पं ) मेमला—( ख ग प ) विह्वला भयानकाश्च यत्र ( प ), भीमले—( पं ) भयानके ।

६.१०.४ कडविमद्दये—( ख ग प ) महासप्राप्ते ।

६.१०.५ षडियं—( ख ग पं ) घृष्टा, अन्योन्मसलनाः; गयणगमण—( ख ग प ) गगनगतिः ।

६.१०.६ लच्छिलवस्त्र—( ख ग पं ) लक्ष्म्या उपलक्षितो<sup>२</sup> लक्ष्म्या वा लक्ष्यो<sup>३</sup> ।

६.१०.८ मणिसिहेण—( ख ग पं ) रत्नचूकेन ।

६.१०.९ निरस्थु—( ख ग प ) अस्थ ( प क्षस्त्र ) रहित, आयुवहो न; जड मुणेह आहणेइ—( ख ग पं ) वेगेन घातयामीत्यर्थः ।

६.११.१ वणिथसत्तु—( ख ग पं ) वणितमश्रुः ।

६.११.५ सलेव—( ख ग पं ) सदप, आरोहु—( ख ) रथवाहिमहावन्त [ वत ? ] ।

६.११.८ निचिस—( ख ग पं ) खड्ग ।

६.११.१० जंमुहलोयणेण—( ख ) सम्मुखलोचनेन ।

६.१२.२ इय...वंडु—( ख ग प ) गगनगतिना सदृश. समान. कथं बन्धुरिभ भवति, अपि तु न भवति ।

६.१२.४ रज्जु—( ख ग पं ) राजग्राम्, रज्जु—( ख ग पं ) दोरः ।

६.१२.१० ओवडिय—( ख ग ) उच्छरिता, प च्छरिता ।

६.१२.२ वल्लद्धर—( ख ग पं ) वल्लोत्कट, रसदिड्य<sup>१</sup> धीररसेन आढ्यभूताः ।

६.१३.३ रणंगण...वच्छ ( ख ग प ) रणागणेण सप्राप्तेन, सङ्ग-सवन्व, तेन विरक्षित वक्ष—दृढयं यदो सप्त.मदतद्दयो ( या ) इत्यर्थः, दच्छ—( ख ग प ) संग्रामक्रुशला [ लो ] ।

७ प रिण । ८ प सहि । ९ पं महिहि वन्तु । [ ६.९ ] १ प रसवन्वियं । [ ६.१० ] १ प या । २ प लक्षिताः । ३ प लक्षाः । [ ६.१३ ] १ प रसद्विय ।

६.१३.५ समाधि—( ख ग पं ) आदित्यः ।

६.१३.७ धसन्निध्य—( ख ग पं ) परस्परं तेषां घातनं विलोक्य ( पं घातनमवलोक्य ) घसक्यते, कस्या-  
नयोर्मध्ये जयः इति संशयतुलारूढा ।

६.१४.३ तिब्वातपण—( ख ग पं ) तीव्रातपेन ।

६.१४.१३ कथं च...नच्चाविथ—( ग पं ) कवन्था बन्धनेन—प्रबन्धेन तृप्तेन नृत्यं कारिताः ।

६.१४.१५-१६ पठि...वसेण—( ग पं ) प्रतिभटखड्गधीनेन<sup>२</sup>; खड्गियाकसेण—( ग पं ) खटिकेन कशः  
स्वामिरिणनिस्तरणपरीक्षायां कसवट्टः, रणमहि...विस्थिण्णठ अंकमिरंररठ—( ग पं ) कठितं रिणस्य-  
मूलकस्रजुरसूचकं एकत्वादिसह्याविशेषरूपं कतितरं भवति, रणमहिकडितं तु अङ्कैः परस्परं युद्धेनिरन्तरं  
भवति । सकलंररठ—( ग पं ) सकलन्तर, प्रभुदत्तप्रसाददानमानादिकं तरां(?) प्रभुकार्यकरणात् सकलन्तरं  
रिणं [ ऋणं ] दत्तम्, सामिरिणु—( ग ) स्वामिरिणं [ नृणम् ] ।

### संघ ७

७.१.१ ( पं ) महुणा—( ग ) प्रतिशोभ्येन ।

७.१.४ गिरइ—( ख ग पं ) प्रतिपादयति; नेम्मि—( ख ग पं ) परिमितिः ।

७.१.९ तं—( ग पं ) भगनदन्तः; सेयइ डाइणि—( ग पं ) स्वेदते हाकिनि; कया (?) वथंभूतया ?  
मदुल्लङ्गिकं समरसाइ—( ग पं ) मल्लुकीमुखाग्निकृतोष्ण्या<sup>२</sup>; नरवस इ—( ग ) नरवसया [ ? ]

७.१.१८ दिपणसंक—( ग पं ) भयभगनाः<sup>३</sup> ।

७.१.२० ( पं ) हेइल्लवस—( पं ) प्रहरणलक्षाः ।

७.१.२१ चरमतणु—( ख ग पं ) जम्बूद्वीपः; इड्डइड्डविस्सड्डिडर—( ख ग पं ) सर्वतो विशिष्ट-  
हृत्कण्ठा<sup>४</sup> ।

७.१.२२ बहुसचणड—( ख ग पं ) प्रचुररक्तनिरन्तरम् ।

७.२.२ बहुपहरण—( ग पं ) बहूनि प्रहरणानि ।

७.२.९ मडल्लग—( ग ) लङ्ग, ( पं ) लङ्गाग्रम् ।

७.३.१ पड्डहउमरु ( पं समर० )—( ग पं ) महासंग्रामाटोपः ।

७.४.१२ तियक्कस्स—( ग पं ) त्रिलोकनस्य ।

७.४.१३ णिविस्सं ( निमिस्सं )—( ग ) निमेषमात्रमपि ।

७.४.१५ खरं खारियं—( ग पं ) अतिशयेन परिभवितम् ।

७.५.३ परिचडियं—( ग पं ) परिपतितं<sup>१</sup> ( ता ) ।

७.५.४ गयणवहपहय—( ग पं ) वायुमहतं<sup>३</sup> ।

७.५.८ समरु परियरवि—( ग पं ) सग्रामं स्वीकृत्य ।

[ ६.१४ ] १ पं सातत्येन । २ पं धीनेन । ३ पं प्रभुदत्ते<sup>०</sup> ।

[ ७.१ ] १ प निम्भि । २ ग ग्नितोष्ण्या । ३ प नरेवासाए । ४ ग लङ्गिका । ५ प रुडः ।  
[ ७.५ ] १ प विडिया । २ प पविता । ३ प प्रहृतं<sup>०</sup> ।



७.५.६ खयविसम—विहो—( ग पं ) क्षयकालोद्वयमसदृश ।

७.५.१२ समयतडिफिहिवि—स्वमर्यादातटमुल्लङ्घ्य ।

७.५.१५ कलि—मरुद्दहं—( ग पं ) कलिकाखेन कृतान्तेन च तुल्यो मरुद्दो भवो येन ते ।

७.५.१६ पुणु—( ग पं ) पुनरपि ।

७.६.७ विरस—( प ) भयानकाः ।

७.६.१२ सुरसुंदरी—कुमरं—( ग पं ) सुरमुन्दरीदक्षितुमूर्द्धोऽङ्गो मध्य येषां तानि उद्भवांतानि नयनानि येषां ते च उल्लिताश्च—पतिता सामन्तकुमाराः यथा ।

७.६.१३ लंबंतच्छू—( ग पं ) लम्बं न-तुच्छं; पविहच्छकच्छ—( ग पं ) किरिविलच्छुटक ।

७.६.१४ अलङ्क—निम्माणिथ—( ग पं ) प्रभो-सकाशाद्वयमन्वसम्मानास्तिष्ठा प्रभुकार्यं न कुर्म इत्य-  
मिमानरहिता; सचचविय—( ग पं ) प्रकाशिताः ।

७.६.१४ निसग्गाचारहृदिय—( ग पं ) सहजपौरुषम् ।

७.६.१८ कसरेसु—गहवङ्गो—( ख ग पं ) कसरेसु कवुरेषु बलीवद्बगेषु यत्प्रतिपालनं तस्मात्पुष्टः प्रति-  
लनास्ते वर्गा यस्य घनिकस्य ।

७.६.२५ गह्वरम्—एसो ( ख ग पं ) एकाकिनो मे भरोद्दहने समर्थस्य अकिंचित्करोऽयं प्रतिभारो  
द्वितीयमर एक केवल भविष्यति ।

७.६.२६ समसोसिवाय—( ख ग पं ) समस्तद्वया ।

७.६.३० ( पं ) डोहडा सोहसिलिडु—( ख ग पं ) सिद्धशावकम् ।

७.७.५ हेवाड्ड—( ख ग पं ) गवितः ।

७.७.८ किं वलवलेण—( ख ग पं ) किं सेन, बलेन ।

७.७.१२ ( पं ) अवसन्नदह—( पं ) परित्यक्तसन्निधास्वरूपाणि ।

७.८.१ सरवंतहं—( ग पं ) वाणाः, लोणहि—( ग ) भयान्, ( पं ) भयान् ।

७.८.१० डकक्षि—( ग पं ) टलटलितानि ।

७.८.११ दवकीय—( ग पं ) मोता ।

७.८.१३-१४ गाडवि—इत्यादि—छयरे—( पं ) रत्नचूडविस्त्राधरेण, भगवन्वीमविसल्लिय—( ग पं )  
विशतिमर्गणा-वाणा. विसल्लिता, किंविणेण व—( ग पं ) कृपणेन इव, किं कृत्वा ? गाडवि—घणु—  
( ग पं ) गडमाक्रम्य करेण घणु ( प ) स्वानक-विरोपेण, वरुंनि सणु—( ग पं ) तनुं वरुं कृत्वा—  
( पं ) मार्गणा विधाता ।

७.११.६ सोमद—( ख ग पं ) कथयति ।

४ पं फिडिवि । ५ पं मर्यादातटी । ६ पं मड गव्यो । [ ७.६ ] १ पं लडो । २ पं कुमारा । ३ ग  
नाश्रिताः । ४ पं नोसरण । ५ पं पूड्डटवः । ६ पं अग्रमकिंचित्करो । ७ पं याइ । [ ८.७ ] १ प्रतियो मे  
सुण्णदहं । [ ७.८ ] १ प्रतियो मे वसहि । २ प्रतियो मे लोणह । ३ पं टल ।

सन्धि न

- न.१.८ थावड—( ख ) स्वीकारं करोतु ।  
 न.२.६ नामदेवोत्तर—( ख ) भवदेवः ।  
 न.२.१३ जलकंठ—( ख ग ) नाभि [ विमाने ] ।  
 न.३.६ सावयं—( ग ) थावकैः स्वापदेव ।  
 न.३.७ सकलशु रामधर—( ख ग ) लक्षणेन सहितो राम , लक्षणसहिताः रामाश्च ; नटपुरु—( ख ग ) नटः परमार्थः , नटशत्रुश्च ।  
 न.३.८ बहुवाणिङं—( ख ग ) बहुवाणिजम् , बाहूपानीयं च ।  
 न.३.९ द्रोणु—( ख ग ) द्रोणाचार्यः , मापविशेषश्च ।  
 न.३.१५ सुपहृदिय—( ख ग ) सुप्रतिष्ठो नाम राजा ।  
 न.४.११ सवहस्म—( ख ) सौधर्मः ।  
 न.५.१४ सुहु—( ख ) सुभजनस्तचतुष्टयम् ।  
 न.७.२ आठच्छेविणु—( ख ग ) पृष्ट्वा ।  
 न.७.३ भस्मि ( ख ग ) मातः ।  
 न.७.७ जसहंसु—( ख ) परब्रह्म , ( ग ) यशोहंसः ।  
 न.७.८. पयापरिपूरणेन—( ख ग ) उदरपूरकेन ।  
 न.९.२ बरताई—( ख ग ) वरपित्राः ।  
 न.६.६ अचक्षियड—( ख ) अघटमानवस्तु ।  
 न.१२.१ तो.....न वज्जियं—( ख ) वयान् वचनं जम्बूस्वामिना [ ल ] लङ्घितम् ।  
 न.१२.३ डण्णामड—ऊर्णमियम् ।  
 न.१२.७ कण्णगवति—( ख ग ) कन्याप्रतिपत्ते ।  
 न.१२.८ बहुकरसंगहो—( ख ग ) पाणिग्रहणं वचूनां वा करेण सहग्रहो यस्य ।  
 न.१२.११ चेखिड कंविवाळु—( ख ग ) काञ्चीदेशनिष्पन्नपटपरिधानम् ।  
 न.१३.३ कायमाण—( ख ) कद्वार्ण ( ? )  
 न.१३.४ प्हंमण—( ग पं ) पवनः ।  
 न.१३.५ कोवुण्हविय—( ख ग ) ईपटुष्णीकृतम् ।  
 न.१३.१४ नियाणखणे—( ख ग ) भोजनावसानसमये ।  
 न.१३.१५ पेम्मघवक्कड—( ग पं ) प्रेमपुरुषसदृशम् , विशेषणमिदम् ; कइय.....परिहरि?—( ग पं ) आहारमागतं भुक्त्वावसाने त्यक्तमित्यर्थः ।  
 न.१४.२ दरुण्हयं—( ग पं ) ईपटुष्णम् ।  
 न.१४.५ सेविय महुमत्तड ( पं ) मयमत्तड ) निवड्ड—( ग प ) पट्पदैः संबन्धः ; मद्यपाल इव आदित्यो-  
 निपतितः मद्यपालो हि मधुना निपतति , आदित्यस्तु सेवितकमलकोशमकरन्देन-मद्येन-( पं ) मधुना सत्तो

[ न ७ ] १ ख पूरणेन । [ न १४ ] १ पं तितो ।

निपतति; गलियनिर्यसुं वि—( ग पं ) मद्यपालः गलिडनिनाशुकः पतितनिनवस्त्रः, आदित्यस्तु गलिता निजाशुकाः किरणा यस्य स तथोक्तः, रत्तव—( ग पं ) अनुरक्तः ।

८.१४.६ लग्नेत्यादि—( पं ) लग्नमादित्य प्रेक्ष [ प्रेक्ष्य ? ], क्व लग्ने ? अत्थ—“वणराइहे—( ग पं ) अस्तशिखरि<sup>२</sup>वनराजिकाया ; कथमूताया ? <sup>३</sup>सिक्कायड” विराइहे<sup>३</sup>—( ग पं ) शिलातलमेव रमणं गुह्यं तेन विगणिताया , तं तथाभूतम् आदित्यम्, ऐक्खेवि—( ग पं ) दृष्ट्वा ।

८.१४.७ ईसाइवि—( ग पं ) ईर्ष्या कृत्वा; पच्छिमदिसपत्तिए असहतिए—( ग पं ) पश्चिमदिशिपत्न्या भार्यया असहमानया, किड “सुहु—( ग पं ) कोपेन कृत आतात्र मुख सन्ध्यारागव्याजेन, तेन चास्तमनं<sup>४</sup> कुर्वता ।

८.१४.८ तेड हुयालें—( ग ) तेजो अग्निना ।

८.१४.२०-२१ विरहगिगुलिगि—( ग पं ) विरह एव अग्निस्तस्य स्फुलिङ्गा ; जोइंगण—( ग पं ) ज्योति-  
गणकण्ठजेन, छड्डिय—प्रसृता ।

८.१५.१ अहिसारीहि—( ख ग पं ) अमिसारिकाभिः, पुंश्चलीभिः ।

८.१५.३ हेमेयड—( ग पं ) सुवर्णनिमिताः ।

८.१५.४ गयवह—सहुं—( ग पं ) गनमत्तुं काह्वयैः सह ।

८.१५.६ सुद्धड—( ग पं ) घबलम् ।

८.१५.९ किहइ—( ग पं ) आस्वादयति ।

८.१५.१० सुद्धडुहिय—( ग पं ) मुग्धमुखी; करवावड—( ग पं ) करास्तद्गुणव्यावृत्त्या<sup>१</sup> यस्याः ।

८.१५.१२ निथडाड निवासए—( ग पं ) गृहसमीपे, उच्चिण्णिं<sup>२</sup> माहइ कुसुमासइ—( ग पं )  
मालर्त्तं पुष्पाणि मालतीगण्डेनोच्यन्ते तानि चन्द्रकरैर्घवलीकृतानि<sup>३</sup> पुष्पाणि [ इत्या- ] शया नोदयन्तीत्यर्थः ।

८.१५.१३ समरि—( ग ) शर्वरी ( हिंदो शर्वरी ) ।

८.१५.१५ एरिसे<sup>४</sup> नंदिणए—( ग पं ) कैरवाणि कुमुदानि नन्दयन्ति विकासयन्तीत्येवं शोला, संसिट्टड—  
( ग ) संशान्वित ।

८.१६.४<sup>१</sup> छिण्णु “किजइ—( ग पं ) प्रवीणो द्वितीयं दीपे दत्ते छिन्नछायो<sup>२</sup> भवति ।

८.१६.७ पयासइ—( ग पं ) उद्योतयति ।

८.१६.८ मियंसणसारें—परिधानवस्त्रसारेण<sup>३</sup> ।

८.१६.९ कवणें<sup>४</sup>—( ग पं ) केन व्याजेन ।

८.१६.१२ विरायए<sup>५</sup>—( ग पं ) विराजते ।

(पं) इति अष्टम सन्धि

२ पं अस्तशिखरं । ३ पं मिलायल मगविगइयडि । ४ ग कुर्वत । [ ८.१५ ] १ पं <sup>१</sup> तद्गुणाव्यावृत्ता ।

२ पं माहइ । ३ पं <sup>२</sup> द्ववली । [ ८.१६ ] १ प छिन्न । २ पं छाया । ३ पं <sup>३</sup> वस्त्र । ४ प कवणें ।

५ पं विरायइ ।

सन्धि ६

- ६.१.४ रसदितं—( ग पं ) आवर्तितं सत् सुवर्णं दीप्तं भवति, कान्यं तु शृङ्गारादिरसैः दीप्तं भवति, पयस्त्रिण्यं—( ग पं ) सुवर्णं पदेन भागेन छटिकाद्येकदेशेन छिन्नेन परीक्ष्य गृह्यते, कान्यं तु पदैः छिन्नैर्विधैः शुद्धं परीक्ष्य गृह्यते ।
- ९.१.५ मेष्ठियड<sup>२</sup>—( ग प ) आकलितान्तस्तिवताः ।
- ९.१.६ वाडल्लियड—( ग ) पुत्तलिकाः ।
- ९.१.७ मयणकालसप्प—( पं ) मदनबाणः ।
- ९.१.८ अमिय-वासड—( ग पं ) अमृतमधु-आवासः ; वयणासड—( ग प ) वदनमेव आसवो मधं<sup>३</sup> वदनमद्यमि<sup>४</sup>र्थः ।
- ९.१.९ बहि<sup>५</sup>—( ग प ) बहि<sup>५</sup> स्त्रीद्रव्येषु ।
- ९.१.१० नुअयागड<sup>६</sup>—( ग पं ) कर्मादेशवशात् उदयागत भाव विवेकी उदासीनः सन् भुङ्क्ते; भुङ्गह<sup>७</sup>—( ग पं ) कर्माश्रयेण विना कर्माण्युपार्जयन् भुङ्क्ते इत्यर्थः ।
- ९.१.११ हले—( ख ग ) कमलभीरुवाच ( ख ) हाली कया, ( ग ) कृषोमल कया ।
- ९.१.१२ दुल्लिड—( ख ग पं ) दुष्चेष्टितः ।
- ९.१.१३ पंचत्तु—( ग पं ) रत्नम् ।
- ९.१.१४ ब्राह्मियड—( ग पं ) वञ्चित, विवाहियड—( ख ग पं ) विवाहिता ।
- ९.१.१५ उडमविस—( ग पं ) दुर्दमवनीवर्दः ।
- ९.१.१६ सिद्धड<sup>८</sup>—( ग पं ) सिद्धं त्यक्त्वा असिद्धं वाञ्छसि ।
- ९.१.१७ किच्छं—( ग प ) महता वहेन ।
- ९.१.१८ जामि न लोहे—( ग पं ) मवदीयवचनात् विषयाभिलाषेन<sup>९</sup> क्षय न व्रजामि ।
- ९.१.१९ आडसति—( ख ग पं ) आयुषः अन्ते ।
- ९.१.२० योवड<sup>१०</sup>—( ग पं ) स्तोत्रं भ्रान्त्वा ।
- ९.१.२१ सज्जु ( ग पं ) साध्यं भवति, मयणं—( ग प ) कामे [ न ] ।
- ९.१.२२ सयदकिड—( ग पं ) सतखण्डो मूत्रा ।
- ९.१.२३ अडमहिड—( ग पं ) अग्रधिकम्<sup>११</sup> ।
- ९.१.२४ जर—( ग ) वृद्धः<sup>१२</sup> ।
- ९.१.२५ निहिड ( पं विहिड )—( ग पं ) पङ्क्ते कृतः ।
- ९.१.२६ अवडे—( ग पं ) कूपे; महु केहणे—( ग पं ) मधुबिन्दुसादने आसक्तः ।
- ९.२.१ सीसह—( ख ग पं ) कथयति ।
- ९.२.२ रूपड एककु—( ख ग पं ) व्रममेकम् ।

[९.१] १ पं<sup>१</sup> छिन्न । २ पं<sup>२</sup> मिलि । ३ पं<sup>३</sup> मद्य । ४ पं<sup>४</sup> मदीरित्यर्थः । [९.२] १ पं<sup>५</sup> विषयामिष-लोभेन । २ पं<sup>६</sup> साध्या । [९.६] १ पं<sup>७</sup> विकः । [९.७] १ पं<sup>८</sup> वृद्धता ।

९.८.५ महिलसङ्गाहं—महिला सहायो<sup>१</sup> यस्य तेन; रदसं चडिड—(ख ग पं) ख्ययो<sup>२</sup>? सम्पत्तौ यः समु-  
त्पन्नो रमसः तेन उभाभ्या चटितो<sup>३</sup> महति ।

६.८.१० निड—(ग पं) निजं । गरिहकड—(पं) जनयोः[<sup>०</sup>वो?] यम् ।

६.८.१२ रुयड—विलसिज्जह—(ग पं) अस्योपयोगः कर्त्तव्य इति परिभाषितम् ।

९.८.१५ मई पाणं—(ग पं) मतिक्रमणेन ।

६.८.१८ पच्चे—(ग पं) पर्वणि; हियए न पड्डुड—(ग पं) हृदये न प्रविष्टं (पं) मद्ये [महं?] क्षति ।

९.८.२२ महइ—(ख ग पं) वाञ्छति; समरगळ—(ख ग पं) समधिका; समगदिहि—(ख ग पं)  
स्वर्गधृति, स्वर्गलक्ष्मीं पुरिपूर्णमित्यर्थः ।

६.६.३ चिचण्णु—(ख ग पं) मृतः ।

९.६.४ पड्डु मंहु—(ख ग पं) इति एतत् वा तात्पर्यम् ।

९.६.५ कवकियप्पु—(ख ग पं) विनाशितात्मस्वरूपम् परिसयोहं (ख प) ईदृशेन स्तोमेन व्युद्ग्राहेण ।

६.६.६ महि—सत्तु—(ख ग पं) पुषिष्यामुत्पादितं द्वीन्द्रियादिप्राणिगणः ।

९.९.७-८ (पं) पाडससिरि इत्यादिपदचतुष्टयेन संबन्धः—पाडससिरि जरयेरि नाहं विहाइ (पं)  
प्रावृत्काललक्ष्मी जरस्थविरो हव प्रतिभाति, पाडससिरि जरयेरिवाइ (१) संतरयंबरीय—(ख ग पं)  
प्रावृत्काललक्ष्मीः—लक्ष्मी<sup>१</sup> शान्तमुपशमं गतं रजो ब्रूलियंस्या<sup>२</sup> सस्या अम्बरे सा, जरस्थविरो पक्षे तु प्रशान्त  
रजोम्बर<sup>३</sup> रजस्वलावर्त्तं यस्याः (॥) पओइरीय—पयोधराः मेधाः, स्तनौ च, (III) घम—विहाई—(ख  
ग पं) घनतिमिरेण निबिडान्धकारेण छन्नाः प्रच्छादिताः तारकाः नक्षत्राणि (ख) 'आकाशे' यस्या प्रावृत्-  
काललक्ष्म्या सा, <sup>४</sup>जरस्थविरो पक्षे तु<sup>५</sup> घनेन प्रचुरेण च चक्षुर्दोषेण छन्ना तारका यस्या [ः] सा<sup>६</sup>, (IV)  
उल्लसियकास—(ख ग पं) उल्लसिताः पुष्पताः काशाः तुणविषोषाः यस्या प्रावृत्काल-  
विरो तु उल्लसितकाशाः—उत्कटकाश-श्वासा भवति ।

९.९.९ तारतार—(ख ग पं) अतिशयेन तारः ।

६.६.१० मंदमंडु—(ख ग पं) अतिशयेन मन्दः; संडु—(ख ग पं) सान्द्रो मनोमग्नः ।

९.९.१२ फलिह—अडिलेव (ख ग पं) स्फटिकमयसिद्धिर्नैर्जटिता हव ।

९.१०.१ चह—(ख ग पं) प्रवाहः ।

६.१०.२ जुणतण्ण—(ख ग पं) जीर्णतृणमयः ।

६.१०.७ सरडे—(ख ग पं) करकण्ठेन, (ख) कणवेन्यो लोके; मइजरबे—(ख ग पं) अतिप्राप्तेन ।

६.१०.१० सरते—(ख ग पं) स्मरता ।

६.१०.१२ तुण्ड (पं) सुष्ठु—(ख ग पं) दोनम्, (पं) वै स्फुटम् ।

९.१०.२० कयबे—(ख ग पं) समूहेन ।

९.१०.२१ अहि—(ख) सपः, बडिपहर—(पं) प्रतिप्रहारः ।

६.१०.२४ सिव-माहव—(ख) शिवमूर्ति ब्राह्मणः, द्वितीय नाम सत्यवोधः ।

[९.८] १-ख गं वा । २ पं क्वड । ३ पं चडितो । [९.९] १-पं सा हि । २ ख ग संत्या । ३ ख ग  
रजः । ४ पं स्थविरस्त्री तु । ५ पं प्रतिभाति ।

९.११.३ दंतवणे ( पं दंतमुहं ) काण्डि—( ख ग पं ) दन्तमुखेन च काण्डिः, दन्तर्वा मुखे मुखप्रदेशे काण्डिः कुतन्त्रिष्ठः ।

९.११.४ सुविज्ञ—( ख ग पं ) अत्यासक्तः ।

९.११.१२ तिणु—( पं ) तृण ।

९.११.१३ जवपाणै—( ग पं ) अतिशयेन वेगेन ।

९.११.१४ कयनाए—( ख ग पं ) कृतनादेन; सुणह समवाए—( ग ) सुनां [स्वानाना] समवाएन [येन] ।

९.१२.५ विहूसियरुवड—( ख ग पं ) विमूर्षितं रूपं दृष्टम्; नरु—विरुवड—( ख ग पं ) स एव नरः विरुपकः रूपरहितः तामिर्वेश्यामिमन्यते, विरुवड—( ख ) यो रूपकेण द्रव्येण रहितः ।

९.१२.६ खणदिट्टो—सिद्ध—( ख ग पं ) सहिरण्यः पुरुषः प्रथमतः अणमात्रेण दृष्टोऽपि प्रियो वैशिकः व्याजने ( ग ) अतो बल्लभः शिष्टः प्रतिपादितः; पणया—विद्ध—( ख ग पं ) यः पुनराजन्मनः प्रणयाहो भिवः स एव निबनो जातो यदा तदा स जन्मनि अपि मया न दृष्टोऽयम् इति परित्यज्यते ।

९.१२.७ णडड—वणियड—( ख ग पं ) नकुलोद्भवा ( ख ग दूताः ) नकुलोदरज्ञाः गणिकास्तदा ताः कथं भुजङ्गैः सपैः दन्तनखैः व्रणिताः<sup>३</sup>, भुजङ्गानां नकुलामिर्वेश्यामानत्वात्? अत्राह—यतो न कुलोद्भवाः कुलहीनास्ततो भुजङ्गैर्विदैर्दन्तमखैर्व्रणिताः ।

९.१२.८ वम्मह—परिचत्त—( ख ग पं ) मन्मथस्य कामस्य दोषिकाः दूषिकाः न तु दंषिका स्नेहः सङ्गवत्यो मविष्यन्ति; अत्राह—प्रद्यपि ताः दोषिकाः, तोवि—तयापि स्नेहसङ्गपरित्यक्ता, कार्यवशाद्वैव वैशिष्येन ताः केनचित् सह स्नेहसङ्गः प्रदर्शयन्तीत्यर्थः ।

९.१२.९ छगिर—दृच्छड—( ख ग पं ) शाकिन्यो हि रक्ताकर्षणे दक्षा भवन्ति, गणिक्यस्तु रक्तानामुत्पादितानुरागानां कर्षणे दक्षाः ।

९.१२.१० मेरु—निर्वड—( ख ग पं ) मेरोः महीधराणां ( ग पं ) पटकुलपर्वतानां च मही-भूमिस्त्रु-प्रतिबिम्बः तेन सदृशः सन्मही हि किंपुरुषादिभिर्वहुमिर्देवविशेषैः<sup>४</sup> सेवितनितम्बा इति, गणिकास्तु किंपुरुषैर्वहुमिः<sup>५</sup> कुतिसैः पुरुषैः सेवितनितम्बाः इति ।

९.१२.११ नरघह—संजोयड—( ख ग पं ) नरपतिनोतिभिः समानविभोगाः, नरपतिनीतयो हि अर्थवन्त्यः<sup>६</sup> प्रवर्त्तन्ते, अनर्थसंयोग दूरतः परिवर्जयन्ति, गणिकानां विभोगा अपि अर्थवन्त्येव<sup>७</sup> प्रवर्त्तन्ते, अनर्थसंयोगं दूरतः परित्यजन्तीत्यर्थः ।

९.१२.१२ अहरे राड—( ख ग पं ) मोष्ठे नीचे च रागः, मदनोऽपि कामोऽपि नीचः<sup>८</sup> एवं यासा वर्त्तते ।

९.१२.१४ परवंचण—( ग पं ) परवञ्चनादि सम्बन्धे स्त्रोजने ( पं ) परवंचनहृदियाए इति पाठे ।

९.१२.१५ न सरुवड—( ख ग पं ) तत् स्वभावस्वरूपं न ।

९.१२.१६ जं मिहंतु—पीडय पुणु—( ग पं ) मिष्टान्तैः<sup>९</sup> यत् तत्रैव<sup>१०</sup> नार्यं श्रद्धया गुणः, तथा सुन्दरं यत् तत्रैव तरुणक्षितेषु रञ्जिता प्रीतिः रञ्जनार्थं पीडा वा इति पाठः, तदभिलाषः यस्य प्रयासस्य च नार्यः गुणः, (पं) एतेन किं सूक्तम् [उक्तम्]? सेव्यासेव्यं वेदया न पश्यति [ इति ] ।

[९.११] १ पं प्रदेशो । २ पं तणु । [९.१२] १ पं नरो विरुपको रूपकरहितस्तामिमन्यते । २ पं न दृष्ट इव । ३ पं ता । ४ ग भुज । ५ पं विटदन्तनखैर्व्रणिता । ६ पं पिका । ७ पं दिमिर्देवविशेषैर्वहुमिः । ८ ख ग च । ९ पं निर्वता । १० ख ग वंति । ११ ख अर्थवन्त एव । १२ पं नीच । १३ पं मृ । १४ पं यस्त्रेव ।

- ९.१२.१७ मंडणे ...चिडजणे ( ग पं )—[ मडने ] श्वेतपीतादिवणपिडा<sup>१५</sup> न ब्राह्मणाद्यपेसा<sup>१६</sup>; गड-रवणे—( ग प ) नितम्बे एव गुह्यता ।
- ९.१२.१८-१९ आचरेण ...महुसंजु जिह । रिचवेवद्... सजुवंति तिह—( ग पं ) यथा मधुसज्ज<sup>१७</sup>—मधुछत्र सरसं कर्तुं, निडण्ड—निपुणाः<sup>१८</sup> दक्षाः उद्घापिताः सन्त्यः<sup>१९</sup> खुद्द—मधुमक्षिकाः सज्जुम्बन्ति मधुसज्जं, तिह—तथा आचरेण सरसं पुरुषं सुचिरमालिङ्ग्य रवंतं कर्तुं निपुणाः<sup>२०</sup> गणिकाः, सुहा. पर-वज्जकरत्नेन दुष्टाभिप्राया ।
- ९.१३.१ का वि... गणती—( ग पं ) चतु पदै संबन्धः, नवदविणु—अग्निनवोपाजितार्थं<sup>२१</sup> पुरुषम्, गणती—चित्ते वरती, ह्रियधनमणुम—( ग पं ) गृहीतार्थपुरुषम्, अमुणती<sup>२२</sup>—अनिच्छन्ती ।
- ९.१३.२ निरोहवि<sup>२३</sup>—( ग प ) गृहे प्रवेश निषिध्य ।
- ९.१३.३ जो अप्पिड—( ग ) दत्त यद्गन्धम् ।
- ९.१३.४ विमत्तिप—( ग ) बुद्धिहीनया, ( पं ) बुद्धे दीनया ।
- ९.१३.५ कडच्छप्—( ग प ) कच्छायाम् ।
- ९.१३.७ धणु वि उवलंमह—( ग पं ) कश्चिद्वत्साक्षरितवसाद्वत्तवनावि<sup>२४</sup>, ढोड न कडमि<sup>२५</sup>—निर्द्वन्द्वोऽयमिति ज्ञात्वा न स्वीकरोति<sup>२६</sup>, सत्र निरपेक्षा, अन्यत्र विजृम्भते, ततोऽपि उपलभ्यते—उपलभ्यमयसि लोकानामग्रे तस्या कथा कथयति ।
- ९.१३.८ निहुवणु<sup>२७</sup>—( ग पं ) सुतन्त्रायारम् ।
- ९.१३.११ सेय—( ग प ) प्रस्वेद, कल—( ग पं ) मनोहा<sup>२८</sup> ।
- ९.१३.१२ वणु व हयवच्छड—( ग प ) वनो निवारितवृक्षम्<sup>२९</sup>, [ मिथुनः ] हतवसस्थल<sup>३०</sup> च, करणपरिपूर्णम्, यथा राजकुल करणैरधिकम्, किंपुरुषे पूर्णं च ।
- ९.१३.१३ क्वियवंचड<sup>३१</sup>—( ग प ) निरूपितकर्म-प्रकृत्यादिबन्ध<sup>३२</sup> मिथुनन च रतिकृतकरणबन्ध विलास-शास्त्रे<sup>३३</sup> विशेषतः ; रिद<sup>३४</sup>—खड—( ग पं ) कृपीबलाः समपितसिद्धादायाः [ सिद्धादाय. ] ( पं ) कृपाणां समर्पित सिद्धादाय ) मिथुनमपि अपितस्कन्धम् ।
- ९.१३.१४ अंधय... वणु—( ग प ) अन्धवदानवस्य वधू इव मिथुननिहुअणं तद्वधार्थं<sup>३५</sup> हिन जाता<sup>३६</sup> हरस्य व्रणा<sup>३७</sup>, निधुवर्नं तु जातनखरव्रणम्<sup>३८</sup>, सरु—( ग पं ) शब्द बाणश्च ।
- ९.१३.१५ कडियकरवाळड—( ग प ) करवाळ—ऊर्ध्व<sup>३९</sup>, आकपिता. करेण वालाः<sup>४०</sup> वेष्टा यत्र तत् च<sup>४१</sup>, रेय—( ग पं ) रेत शर्करा<sup>४२</sup> सूक्ष्मवाल्मुका च ।
- ९.१३.३६ समुग्गयसुक्कड—( ग पं ) समुद्गतशुक्रः गृहविशेषो दानवबले<sup>४३</sup>, पक्षे शुक्र—रेत मिथुन-निधुवने ।
- ९.१३.१८ नियह—( ग पं ) अवलोकयते ।
- ९.१४.१३ चित्तममणे—( पं ) अन्तर्मनस्कृतया गमने ।

१५ पं 'पेलणं । १६ गं 'सिचं । १७ पं 'णा । १८ गं 'सत्य । १९ गं 'णा । [९.१३] १ पं 'तोर्थ । २ पं 'अगं । ३ पं 'हेवि । ४ पं 'च्छुहे । ५ पं 'कश्चिदन्त्या । ६ पं 'वनोपि । ७ पं 'ह । ८ पं 'स्वीकारयति । ९ पं 'यणु । १० पं 'जं । ११ पं 'वृक्ष । १२ पं 'स्थल । १३ पं 'वतड । १४ पं 'यड । १५ पं 'वधयो[रति] विलासशास्त्रे । १६ पं 'अं । १७ पं 'जातं । १८ पं 'व्रण । १९ पं 'मिथुन निहुअणे जात नखव्रण । २० पं 'खड्ग । २१ पं 'बाला । २२ पं 'केशाकर्पणं च । २३ पं 'शक्कर । २४ पं 'बली ।

६.१५.२ तक्कृत्—( ग पं ) चौरः ।

६.१५.७ कुसुमाले—( ग पं ) चौरिण ।

६.१५.१३ विवत्थय—( ग पं ) व्यवस्थया<sup>१</sup> ।

६.१६.४ न पवत्तइ पुत्तु तउ—( ग पं ) तव पुत्रः<sup>२</sup> न व्रत्रति, न गच्छति ।

६.१६.६ जायरसंनणथं—( ग पं ) जाग्रतो निद्राकरणम् ।

९.१७.१० वच्छरेसु—( ग पं ) संवत्सरेषु ।

९.१७.११ सद्दु—( ग पं ) श्रद्धावान् ।

९.१७.१३ बूहि—( ख ग पं ) बूहि; आशुक—( ख ग पं ) आसमन्तात् महान्तः एते पितृम्यानीयाः<sup>१</sup>;  
कहू व—( ग पं ) कहू लघु. पुत्रस्थानीयः एतेषाम्; कहि—( ख ग पं ) एतत् स्वचित् सप्रचारय ।

९.१७.१४ आधओ समाणि अस्मि—( ख ग पं )<sup>२</sup> आगतः सन्, समाणि—सन्मानय, अस्मि—हे मातः,  
( ग पं ) अन्धत् आशुकलघुवतुल्यैर्गणैरागतं समालिका लब्धौ नाम<sup>४</sup> ।

९.१७.१५ पुत्ताणुमहए—(ख ग पं ) पुत्रानुमत्या ।

६.१८.२ वेसपड्ड—( पं ) वेशदक्षः<sup>३</sup> ।

९.१८.३ केसकडि—( ग पं ) केशा ।

९.१८.४ कयवंधमस—( ख ग पं ) केशवन्धसङ्घातः; उग्गडिय—( ख पं ) ओदितप्रग्वी, ( ग )  
छोदितप्रग्वि ।

### सन्धि १०

१०.१.६ कग्गाइ “ववणज—कर्णातिशयात् त्याग. प्राज्ञ प्राप्ती येन ।

१०.१.१० वण्णाखिल<sup>१</sup>—सिं—वर्णेन यस्य वा ववेल्लितानि<sup>२</sup> अखिलानि शिखरिणा शृङ्गानि<sup>३</sup> शिखराणि  
येन ।

१०.१.१२ मालंकिथ—( ख ग पं ) लक्ष्मीभूषिता ।

१०.१.१४ विवास—( ख ग पं ) विकास<sup>३</sup>; आसाइय—( ग पं ) समासादित ।

१०.२.७ तउ—( ख ग पं ) तपः; कायहो कारणे—( ख ग पं ) कायस्य निमित्ते; आयहो—( ख पं )  
एतस्मात् कृततपस वा शरीराख्यस्य फलं किम् ? न किञ्चि<sup>४</sup> ।

१०.२.८ सुद्ध<sup>१</sup>—निदिद्ध<sup>२</sup>—जीवो-जीवः शुद्धो निर्गुणो अकर्ता कार्याविभिरसस्पृष्ट<sup>३</sup> इति विशेषोक्तिः;  
वेद्ध-अविद्ध<sup>४</sup>—( ख ग पं ) एतामिदृशैश्चिरस्पृष्टैः ।

१०.३.५ भलि—( ग पं ) वञ्चयन्ति ।

१०.३.७ न नियथु<sup>१</sup>—सोक्खु ( ग पं ) सशरसोध्यं मुक्त्वा अन्यो<sup>२</sup> निवार्यो<sup>३</sup> नास्ति ( पं ) अतः किम् ?

१०.३.६ धम्महि<sup>१</sup>—रुहेण—( ग पं ) धर्म एवाद्रि. पर्वतस्तेस्य शिखरं तत्र धम्णोरुहं<sup>३</sup> वृक्ष<sup>४</sup> यस्तेन ।

[९.१५] १ प व्यवस्थायाम् । [६.१६] १ पं पुत्रं । [९.१७] १ पं नीया । २ ग आगतं संतं । ३ पं  
“वतुष्क” । ४ पं नामो । [६.१८] १ ख ग वं सपड्ड । २ ख ग वशदक्षः ।

[१०.१] १ पं वसेत्यादि । २ पं अखिलशिखरिशृङ्गानि । ३ पं सो । [१०.२] १ पं कस्यापि । २ पं  
स्पृष्ट । [१०.३] १ पं अन्यं । २ पं अर्थं । ३ ग रुहो । ४ ग वृक्षो ।



१०.३.१० मिच्छा—सुससु—( ग प ) मिथ्या असरयो य. प्रपञ्चः जीवो नास्ति, प्रमो, नास्ति, परलोको नास्ति इत्यादिरूपस्तेन वञ्चिताना सुसमः सुन्दरः ।

१०.३.११ तत्त्व—हसिड—( ग पं ) तत्त्व—तत्त्वार्थः, तत्त्वभूते परमार्थभूते अर्थे जीवादी ये साधवो जनाः गणधरदेवादयस्तरुहसितः ।

१०.४.१ सविग्रहो—कारण—( ग पं ) पञ्चेन्द्रियमनः प्रभवतया, सविकल्पस्य चट्टपकारभेदमिन्नस्य ज्ञानस्य भूतानि पृथिव्यादीनि, साधारण्य कारण—सर्वेषां समानं यदि अन्तरङ्गकारणं स्यात् ।

१०.४.२ तो न—सुत्तहो—( ग प ) तो—ततः मूर्तकारणजन्यत्वात् भूतस्य ज्ञानस्य तदा समाना परिणतिः सर्वेषां समानो ज्ञानपरिणामः किं न स्यात् ? अत्रार्थे दृष्टान्तमाह—पटरङ्गेण—सुत्तहो—( ग पं ) विशेषोक्ति-पदाम्ने दिनमूर्तेर<sup>१</sup> साधारण्यकारणेन पटे रञ्जयमाने पटरङ्गे समानः सुखस्य रङ्गो यथा भवति ।

१०.४.३ अह—निरुविड—( ग पं ) सहकारिकारणं ज्ञानोत्पत्तौ भूतानि निरूपितानि नोपादानकारणं तद् हि अणु जि—सूड—( ग पं ) अन्यदेव जीवलक्षणं अन्तरङ्ग उपादानभूतं ज्ञानावगणादिसोपशम-लक्षणं च त्वया एक सूचितं प्रतिपादितम् ।

१०.४.४ कञ्जहो—सकल्लणु—( ग पं ) यत् सहकारिकारणभूतं पृथिव्याद्यात्मकं शरीरादिकार्यं च ज्ञानादि तत् कारणं सहकारिभावेन जनकं नवर वपुर्लक्षणं येन शरीरस्याचेतनत्वे ज्ञानादेरप्यचेतनत्वं स्यात्; अत्र दृष्टान्तमाह—मिड—सकल्लणु—( ग पं ) यथा मृत्पिण्डो घटस्य जनको न पुनः तस्य लक्षणं स्वरूपं, न हि मृत्पिण्डसदृशो घट मृत्पिण्डस्य जलधारणादहरेण [ ५ ] समर्थत्वात्, घटस्य तु तत् समर्थत्वात्, पृथुवृक्षो-दराद्याकारत्वाच्च वपुर्लक्षणदृष्टान्तमाह; अविलक्षणमिति पाठे भूद्रूपसया मृत्पिण्डो घटेन अविलक्षणः सदृशः पृथुवृक्षोदराद्याकारतया जलधारणादहरेणार्थक्रियाकारितया च विलक्षणं इति ।

१०.४.५ सञ्चड—आयण्णहि—( ग पं ) यस्यान्तरङ्ग उपादानभूतं यत्कारणं तत् सत्यं कथयामि, आकर्ण्य; नाणहो—अण्णहि—( ग पं ) ज्ञानस्योत्पाद्यमानस्योपादानकारणं ज्ञानमेव उपयोगलक्षणलक्षिता-स्मैवेत्यर्थः ।

१०.४.६ अड्ड—निरुड्ड—( ग पं ) साहचर्यमनाश्रित्य त्वया सूचितं सदैव जीवो भुवतः, बद्धो जीव इति तन्मोहः, अज्ञानमेतत् प्रकृतेरेव बन्धसद्भावात् यथा दर्पणे मुखमेव सम्बद्धं, मोहवशान्मुखदर्पणे सम्बन्ध [ सम्बद्धः ? ] मिति दर्पणे वदनभासो न पुनः सत्यो वदनप्रतिभासस्तथेति ।

१०.४.७ अत्र दूषगमाह—अविचारिड—असारड—( ग पं ) अयं सिद्धान्तस्त्वयो योऽविचारितः—विचार-क्षमो न भवति यतो विघटितेन युक्त्या विचार्यमाणः, अतो असारोऽयमिति प्रेष्य अवलोक्य त्वं मध्यस्थो भूत्वा, दर्पणे हि मूर्ते वदनं मूर्तं तावन्न प्रविशति अतः शरीरस्थवदनं भुवत्सा दर्पणे वदनं कथं दृश्यते ? किन्तु शरीरस्थमेव वदनं तत्प्रतीयते तत् प्रतिपत्तौ च प्रकृत्या प्रदर्श्यते ।

१०.४.८ दूषणतेय—विवरेड—( ग पं ) दर्पणतेजसि मिलितं नायनं—तेजः, ( पं ) नायना रश्मयः, होइ विवरेवड—दर्पणेऽभिमुखं सत् व्याघुटय शरीराभिमुखं भवति तद्विदमाश्चर्यम्, नञ्छेड—( पं ) नेद-माश्चर्यम् ।

१०.४.१०—११ चक्खु—अवलोक्यह नाणु जि—मिळियड—( ग पं ) चक्षुषा निरुद्ध दर्पणतेजसा प्रतिहतम्, घुरड—अग्रे स्थित, शुद्धं दर्पणे स्थितं स्वरूपम्, न विलोक्यह—न पश्यति, वदनस्वरूपं तु चक्षेवि—व्याघुटय अवलोकते, तत् प्रभव च ज्ञानमपि कमंचवितसंचालितं मिथ्यात्वकर्मोदयसहितं मिथ्यादर्शनसहचरित-

५ पं हसितो । [ १०.४ ] १ पं अति । २ पं दिनामूर्त्तेन । ३ पं अणु जे । ४ ग अंतरंग । ५ पं कार्यदेव । ६ पं हो । ७ ग नः । ८ पं सिद्धातं त्वं । ९ पं तेजो । १० पं संव ।

मुत्पद्यते; मिलियमिति पाठे—मिथ्यादर्शनेन मिलितं ज्ञायते<sup>११</sup> इत्यर्थः, तथा च मोहवशे<sup>१२</sup> [शे]<sup>१३</sup> न—मोहनीयकर्म-  
सामर्थ्येन अविवेकसामर्थ्येन वा ।

१०.४.१२ वस्तु—( ग पं ) दर्पणस्वरूपं मुखविविक्तम्, मुखं तु शरीरप्रदेशवर्ती<sup>१२</sup> इति एवविधं वस्तु-  
स्वरूपम् ।

१०.४.१३ वियाणहि<sup>१३</sup>—( ग पं ) विशेषेण जानोहि, सुखं<sup>१४</sup> कुरु तिह—( ग पं ) माम् ! तथा कुर्व  
स्व सम्पददृष्टिभूत्वा यथा स्वरूपं पश्यन्<sup>१५</sup> इत्यर्थः ।

१०.४.१४ सुहभावे<sup>१४</sup>—( ग पं ) दुर्लभं मनुष्यत्वं लब्ध्वा शुभभावेन सम्पददर्शनज्ञानचारित्र्यपरिणामेन  
अशुभं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र्यं न परित्यजति, तथा शुद्धेन भावेन परमोदासीनतालक्षणेन न त्यजति, विष्णि  
विशुद्धाशुद्धमात्रे<sup>१५</sup> क्षायति ।

१०.४.१५ अमङ्—बुद्धिहीनः<sup>१६</sup> ।

१०.५.१-३ अहं<sup>१७</sup>—अवबुद्ध—( ग पं ) अथ साक्षाद्यमतमवलम्ब्य एकाग्रतयेन अवबुद्धो जीवो<sup>१८</sup> इत्यते<sup>१९</sup> तदा—  
अच्छब्दः<sup>२०</sup> सुविशुद्ध—( ग पं ) आस्ता परितः सुविशुद्धो जीवो यतः—पुनरगलं<sup>२१</sup> विचारिज्जह—पुद्गल-  
कर्मणा तथाभूतो जीवो न विकार्यते<sup>२२</sup> सुखदुःखादिस्वरूपा परिणतिं न नीयते, तेन वि<sup>२३</sup> किञ्जह—  
तेनापि शुद्धस्वभावेनात्मना, तदुहं—शरीरस्य, न काह मि<sup>२४</sup>—न किमपि विविधव्यापारादिलक्षणं फलं क्रियते;  
यत् च चार्वाकमतःअथैनं अणु पोगल्लु भणितं<sup>२५</sup> स मोह—( ग पं ) आत्मा पुद्गलः शरीरपरिणामस्वरूपो<sup>२६</sup>  
भणितः, स मोहः, तन्मोहविजृम्भितं भवतीत्यर्थः<sup>२७</sup>, अतः करहि कम्मु—( ग पं ) वर्मावर्मसंज्ञकं कर्म कुर्व ।

१०.५.७ किञ्चिन्नु<sup>२८</sup>—( ग पं ) किंत्वं पापं तदेव विष<sup>२९</sup> ।

१०.५.८ दिसवि—( ग पं ) पापोपदेशं दत्त्वा ।

१०.५.१० पावकस्मे<sup>३०</sup>—अग्नेस्तस्य—( ग पं ) पापकर्मविषये ईश्वरः तपाध्यायः अग्नेस्तस्य ।

१०.५.११ सोज्जे 'संसारिड—( ग पं ) स एव, यः<sup>३१</sup> आत्मा समोह मोहनीयकर्मग्रस्त<sup>३२</sup> स ससारी  
अभिधीयते, 'खारिड—( ग पं ) कदाचित् इत्यंभूतस्य चारमन ।

१०.५.१२ अहमिय मङ्—( ख ग पं ) अहमिति मति, जा—यावत्, ता—तावत् कम्मरह<sup>३३</sup> बंधगह—  
कर्मोपार्जने रतिः आसक्तिः सैव जीवस्य बन्धगतिः, बन्धवच कर्मभिः सखिल्लः, गह—गतिवचतुर्गति-  
परिभ्रमणम् ।

१०.५.१३ क्खामावि—( ख ग पं ) विकल्पपरित्यागेन परमोदासीनतायाम्, विशुद्धु टिड—( ख ग पं )  
शुभाशुभकर्मोपार्जनरहितं, सो मोक्खु<sup>३४</sup> सिड—( ख ग पं ) स मोक्षः सकलकर्मकलङ्कारहितो विशुद्ध आत्मा  
मोक्ष निरञ्जनं प्राप्तं शिवः<sup>३५</sup> इत्यादिभिः शब्दैरभिधीयते ।

१०.६.४ हयवमालि—( ख ग पं ) स्फोटितं शकट-समो निकरः ।

१०.६.८ कम्मकीड—( ख ग पं ) कर्मक्रीतमुपाजितं येनासौ कर्मक्रीतः ।

१०.७.२ वडविसुवुडु—( ख ग पं ) बन्धेन विशब्ध<sup>३६</sup> अतिपुष्टो<sup>३७</sup> मन्द्गतिरित्यर्थः ।

१०.७.३ तं महुह<sup>३८</sup>—वहुतु वाह—( ख ग पं ) त-वत्, महुह—मधुरं स्मरन् अन्यपदावयवक्षणे वुमुसा<sup>३९</sup>  
वाधा पीडा, वहंतु—वहन्, धरन् ( ख ) धरन्तु ।

११ गंते । १२ पं वति । १३ पं णहि । १४ पं पश्येत् । १५ पं भावं । १६ पं होताः ।  
[१०.५] १ पं जीव । २ पं ईष्यते । ३ पं परतः । ४ ग विचार्यते । ५ ग तनुहे । ६ पं वि । ७ पं तं ।  
८ ग रूपं । ९ पं भवेदिदमित्यर्थः । १० ग किं विषु । ११ ग विषं । १२ पं य । १३ ग गुणः । १४ पं  
क्वभावे । १५ पं शिव । [१०.६] १ पं कम्मकृतं । [१०.७] १ ख विशुद्धः । २ पं पुष्टः । ३ पं महंतु ।  
४ पं सुमर्षा ।

१०.७.५ तिष्ठमारु—( ख ग पं ) असुरालतृणाम् ।

१०.७.६ एककलकड—( ख ग पं ) 'अतितृष्णावशात् एकाको भट्टपुत्रमेकमपि 'ससहायं न चरति, मणि-  
वाणिज्ये तृष्णा यस्य'; पीय....दिट्ठु—( ख ग पं ) 'पूर्वं पीत सरसि' सलिलं यत्र तत्तथाविध पीतसर-  
सलिलं दृष्टं ।

१०.७.७ चोरेहिं सुसिद्ध—( ख ग पं ) ततो अग्रे गच्छन् वीरैर्मुषितः ।

१०.८.२ गुरुयंयसत्तु—( ग पं ) वृद्धमार्गस्थान्तः ।

१०.८.२ जमाद्दृष्टे—( ग पं ) यमेनादिष्ट<sup>२</sup> ।

१०.८.८ वेलाणई तीरे पत्तो—( ख ग पं ) समुद्रोपकण्ठनदी<sup>३</sup> तस्या वेला चटति ।

१०.१०.६ निड सेणें—( ख पं ) 'नीतं सञ्चाणकेन ।

१०.१०.१० अडयाणए—( ख ग पं ) पुर्ववेण्या<sup>२</sup>, देवि कञ्चलु—( ख ग पं ) अमिमुहमवलोकयित्वा ।

१०.१०.१४ कल्लाणकारि—( ख ग पं ) इत्युपहासकारी वचनमेतत्, 'तत्र बुद्धिकग्ग—( ख ग पं ) तत्र  
बुद्धिफल सञ्जातमिष्युपहासवचनम्<sup>३</sup> ।

१०.१०.१५ अवगमहि—( ख ग पं ) जानीहि ।

१०.१२.३ विवण्णु—( ख पं ) मृगः ।

१०.१४.६ चोड्डु—( ख ) नटावः [ नटव ? ] ।

१०.१४.८ उरि—( ख ) पुरि ।

१०.१५.५ तवगे—( ग पं ) प्रासादे ।

१०.१५.७ कज्जविमुक्कड—( ग पं ) कृत्याकृत्यविवेकशून्यम् ।

१०.१५.६ वेसिणि—( पं ) विलासिणी ।

१०.१६.१ चंगाहिहाणु—( ग पं ) चंगड नाम ।

१०.१६.२ डप्पु'छिय—( ख ) मुह्रित, ( ग पं ) पक्वाद्भागमृण्डितः ।

१०.१६.३ चूल्—(ख ग ) कञ्चल, ( पं ) बूलम् ।

१०.१६.४ वण्णत—( ग पं ) कर्ममध्य ।

१०.१६.५ नव " पव्व—( ग पं ) नवानि प्रत्यक्षाणि तानि कुसुमानि फलानि-पुष्पाणि तेषां सञ्च सङ्घातो  
माला वा, तेन गमिणः-उपचितः ( पं ) स चासौ करध्व वेशभारः ।

१०.१६.६ 'डप्पोडिय—( ख पं ) समारितः ।

१०.१६.११ सहायसङ्कु<sup>२</sup>—( ग पं ) सहायशोभः ।

१०.१६.१२ संवाहियड—( पं ) सहितः ।

१०.१७.२ रुद्ध—( ख ग पं ) रुद्ध उत्पन्नः प्रौढो वा ।

१०.१७.३ निरोहसमणु—( ख ग पं ) निरोधभाजनम् ।

१०.१७.७ विहच्छ—( ख ग पं ) विरूपकः ।

५ पं अकिं । ६ ग सहाय । ७ न यस्या । ८ पं पूर्वपीतसरसि । [१०.२] १ पं दृष्टु । २ पं जमेनादृष्ट<sup>३</sup> ।  
३ पं तस्या । [१० १०] १ पं नीतो । २ पं चल्या । ३ पं तत्र । ४ पं हास्यवचनम् । [१० १६] १ पं  
उपकेयि । २ पं सङ्कु ।

- १०.१७.१२ विचण्यु—( ख ग पं ) विरूपकरूप ।  
 १०.१७.१३ सुरहिण्णि—( ग पं ) देवानामपिहितं ।  
 १०.१७.१५ भूयो वि—( ख ग पं ) भूयोऽपि, पुनरपीत्यर्थः, राड—( ख ग ) राजा ।  
 १०.१८.२ वंचियपवंचेण—( ग पं ) परित्यक्तमायाप्रपञ्चेन ।  
 १०.१८.३ जुत्तोपउत्तेण—( ग पं ) युक्तेन ।  
 १०.१८.४ पोमाइड—( ग पं ) प्रवर्धित ।  
 १०.१८.५ कइरववणाणं—( ग पं ) कुमुदसङ्घतानाम् ।  
 १०.१८.६ तं तक्कायारु—( ग पं ) तत् तत्कराचारः<sup>१</sup> चौराचारः इत्यर्थः<sup>२</sup> ।  
 १०.१८.७ गयण...हरे—( ग पं ) आकाशसमुद्रे, दिवसपर—( पं ) दिवसतरे; दोत्तडिहि—( पं ) दुष्टरटै<sup>३</sup>; अरुहंति—( पं ) अवस्थानं अनुभवमाना, संवट्ट—दिवसकरदुष्टरटै अभिघातः ।  
 १०.१८.८ सिपवडुव—( पं ) स्वेतवट्ट इव; सडणगण—( पं ) पक्षिगणः ।  
 १०.१८.१० तयाहारु—( पं ) तदाचारो, तारोडु माणिक्कसडोडु—निस्सिनीग[ 'का ? ] वारयस्य तागीयस्य स अन्यत् माणिक्कसन्दोहः ।  
 १०.१८.११ उयथावळे—( ग पं ) उदयावळे; उड्ड रवि—( ग पं ) उदित सूर्यः ।  
 १०.१८.१२ भवधरहो—( ग ) ससारधारकस्य, ( पं ) भववा<sup>४</sup> ।  
 १०.१८.५ लय 'सुहं—( ग पं ) नष्टरतिमुखम् ।  
 १०.१८.७ सिरहियं—( ग पं ) शिरसि धृतं स्थापितम् ।  
 १०.१९.१२ सायरो—( ग पं ) साहयः ।  
 १०.१९.१३ पासजणनंङ्गी—( ग पं ) पांसर्वज्जना प्रेसकज्जनास्तेषां नन्दिनी<sup>५</sup> वृद्धिकरी[ 'रा ] ।  
 १०.१९.१४ वडुह...संठिया—( ग पं ) प्रचुररस दद्या; संदणी—( ग पं ) सङ्गृहः ।  
 १०.१९.१६ सेवियरयडं—( पं ) सेवितवृषी ।  
 १०.२०.५ विसमुत्ताहल्लु—( ग पं ) वृत्तानि मुक्ताफलानि यत्र, विसेपेण वा इत गत मुक्तानां कर्मव्यपारि-  
 तानां फलं येन रागवृद्धिहेतुतया हि तेन फलं त्यक्तम् ।  
 १०.२०.६ विहरंते...कंकणु—( ग पं ) विचरता यत्र तत्र नरजन्मनः क-कणु—कं—पानीयम्, तस्य  
 कणं—सर्वं, नरजन्मनः<sup>६</sup> पानीयं इतिमित्यर्थः ।  
 १०.२०.७ तड मुडिड—( ग पं ) ततो ( पं ततः ) मुद्रिता ।  
 १०.२०.८ परियर—( ग ) परिकरसहिता, ( पं ) परियरेदलकपट्टिकया सहिता; सर्थी—( ग पं )  
 छुरिका; कोहिणि—( ग पं ) कोहनिमिता, कोभिनी, कोहमयावस्तु; वंच-समरथी—( ग पं ) बन्धनमयी  
 यत् कारणात् ।  
 १०.२०.११ आसड—( ग पं ) आश्रयः ।  
 १०.२०.१२ परिहारु—( ग पं ) योजनम् ।

[१०.१७] १ पं 'हिण्णि' [१०.१८] १ पं 'वारो' । २ पं 'वारमित्यर्थः' । ३ पं 'वट्टै[ 'रट्टै' ] । [१०.१५] १ पं  
 नंदनी । [१०.२०] १ पं 'वियरते' । २ पं 'जन्मनो' ।

- १०.२२.११ बहेरु वि आयहो भणित—( ग प ) बाह्यत्वमथास्य भणितम्, कठ—( ग पं ) कुतः ।  
 १०.२२.१२ वहिदन्वावेकस्वहे—( ग पं ) आहारादिबाह्यद्रव्यापेक्षया<sup>२</sup> कृतो गुणो बाह्यत्वम्, अणु<sup>३</sup>....  
 पुणु—( ग पं ) अन्यदपि यद्बाह्येन्द्रियैः प्रत्यक्षत्वं तत् कृतमपि बाह्यत्वं तस्य<sup>४</sup> ।  
 १०.२३.५ पं गाथा अप्यणक्तु—( ग प ) आत्मन<sup>१</sup> शरीरम् ।  
 १०.२३.९ गणहरसण्डु<sup>२</sup>—( ग पं ) सोषमस्वामिगणधरसन्निभः सद्गुण समीपवर्त्ति वा ।  
 १०.२३.१० पसरे तड—( ग पं ) प्रभाते ततः ।

इति दशमसन्धिः

### सन्धि ११

११.१.१ पं गाथा ।

- ११.१.२ सयासे—( ग पं ) समीपे, सन्दर्भमथवर्णना—( ग पं ) सर्वस्मिन् [ सर्वत्र ? ] गतो वर्णो यथा स्वकामपरचिता [ त ] अकारादिवर्णा वा येषाम् ।  
 ११.१.३ छुरियड—( ग पं ) छुरिका ।  
 ११.१.१० विजुल 'डवहासणु—( ग पं ) अतिचपलत्वेन विद्युच्चपलविलास उपहसति, ततोऽपि क्षणदृष्टादृष्टतया अतिचपलान्येतानीत्यर्थः ।  
 ११.२.२ धरियधुरमाणव—( ग प ) सद्ग्रामधुराधारकाः सुभटा इत्यर्थः ।  
 ११.२.३ सक्कंशु—( ग पं ) इन्द्र, वहिरिभक्कंशु<sup>१</sup>—( ग पं ) वैरिणा प्रकर्षणाकन्दका [ ] ।  
 ११.३.२ विवडिजयसंक्के—( ग पं ) विवर्जिता मर्यादा येन, भ्रमणेन बवविदुत्पद्यते बवविश्रोत्पद्यते इत्येवं मर्यादावहित<sup>२</sup> सर्वं उत्पद्यते इत्यर्थः ।  
 ११.३.८ वंदारड—( ग पं ) देवः ।  
 ११.४.९ कलिजजड—( ग पं ) गण्यते ।  
 ११.५.७ कामंतह—( ग पं ) कामसेवा कुर्वताम् ।  
 ११.७.२ जीवासड—( ग पं ) जीवाश्रितः ।  
 ११.७.४ सिट्टड—( ग ) विलष्ट, ( पं ) सूष्ट, निमित्तः नित्यसाम् ।  
 ११.६.२ आसियकम्महो—( ग पं ) उपाजितकर्मण ।  
 ११.९.३ नियाणिय—( ग पं ) निर्जिता ।  
 ११.६.४ कोवह<sup>१</sup>—( ग पं ) कलौवस्य ।  
 ११.६.७ डवय<sup>२</sup>—( ग पं ) उदयः ।  
 ११.१०.२ रज्जू—( पं ) अष्टड्षाष्टयोजनकोटिभिः एका रज्जू, तिहिमि<sup>३</sup>....धरियड—( ग पं ) घनोदधि-  
 घनानिक्त-तनवातवलयैः ।

[१०.२२] १ पं कथो । २ पं वेत्ता । ३ पं अणु । ४ पं तस्या । [१०.२३] १ पं आत्मन । २ पं शान्ति ।  
 [११.१] १ पं क्षणदृष्ट तया । [११.२] १ पं वडरियवर्द्धन । [११.३] १ पं रहित । २ पं यथोक्त ।  
 [११.९] १ पं वेहा । २ पं उदय । [११.१०] १ पं घनोदधि ।

११.१०.४ तीसं...सायरु—( ग पं ) त्रिशल्लसादिनरकविलानामाकरः, एकसागरोपम आयुः एकादि-  
सप्तभूमिषु बोधव्यम् ।

११.१०.१० पं घसा-अणुहई...सवातिणि—( ग पं ) सप्तवधनुषि त्रयो हस्ताः<sup>२</sup> षडङ्गुला उत्सेधः,<sup>३</sup> धनुः  
७, ह० ३, अ० ६ ।

११.११.१ परिलिङ्ग—( ग पं ) परिलिङ्गः ।

११.११.८ हिमालय-उवहिहि—( ग पं ) हिमवत्पर्वतसमुद्राभ्याम् ।

११.११.६ आचारै—( पं ) आकारेण, रोत्रियधणु—( ग ) आरोपितधनुः, षटापितधनुः ।

११.११.१० लड—( ग पं ) ततः ।

११.१२.२ नव-मेविज्ज ( पं शेषं )—( ग पं ) 'नव' शब्देन नवानुविद्या गृह्यन्ते, 'मेविज्ज' शब्देन  
नवश्रेयिकाः, उचरि—( पं ) उपरि ।

११.१२.३ विणिण...सायरु—( पं ) सोधर्मेष्टानयो द्विसागरोपमायुः इत्यादि बोधव्यम् ।

११.१२.५ सुहायरु—( ग ) सुभकर, ( पं ) सुभाकरः ।

११.१२.१० सुहावइ—( ग पं ) सुखा अमृतम्, तस्याः पतिः ।

११.१३.६ छुसिणं—( पं ) कुङ्कुमम् ।

११.१४.२ कयदोसेसु—( ग पं ) कृतदोषेषु प्राणिषु ।

११.१४.३ जाइमयाइ—( ग पं ) जातिमदादि ।

११.१४.५ पत्त...वि लहो—( ग पं ) कस्यचित् सम्बन्धोयः स परिग्रहः सुवर्णादिपदार्थः तत्र-लोभ इत्यनता  
निर्लोभाना शौच भवति ।

११.१४.१० परिकविजयकिंचतु—( ग पं ) आकिञ्चन्यमित्यर्थः ।

११.१५.२ सुणंतहो—( पं ) अमिलपतः ।

११.१५.११ सोयार—( ग ) औतणाम्, समदिट्टिहि—( ग पं ) सम्यग्दृष्टेः मध्यस्थदृष्टेर्वा ।

पं इति श्री जम्बूस्वामिचरित्रे एकादशमः सन्धिः समाप्तः ॥१॥

प्रशस्ति

१. वरिसाणसयवठक्के—( ग ) ४७० । २. छाहत्तरदससएणु—( ख ग ) १०७६ ।

## शब्द-कोष

‘अ’		अंतर्भूल-अन्तर्ही हि० आते	६१०.३
अ-च	३.११ ६;५ १३ १७	अंतेडर-अन्तःपुर	६०.८, १ १९.१४; ३.३ १४
अह-अति	१.१२ ४, ८ १३ ९	अतोघण-अन्तर्घन	८ १४ १०
✓ अहकर्मन्त-अति + क्रम् + शतृ०	८ ८ ८	अंथवण-अन्तर्गमन	८ ८ १४
अहकिण्ह-अतिकृष्ण	४.१३ १४	अच-अन्ध.	२.२०.६
अहट्ट-अमृष्ट	१ ५ १८	अंच-आन्ध्र. ( देश )	९.१९.१
अइसुत्तभ-( १ ) अति + भुवत कः-स्वच्छन्द		अंचय-अन्ध + क ( स्वार्य )	९.१३ १४
( ११ ) पु० अतिभुवतक ( पुष्पम् )		अंवल-अन्ध	२ ६ ८
	३ १२ १२	अंधयार-अन्धकार	८ १५ ५
अइमाइ-अतिशयो, मात करनेवाला	१० १.९	अंधारिय-अन्धकारित	६ ५ ४, १० २५.१०
अउच्च-अपूर्व	९ २ ४	अंभ-अम्भ, मातः	२ १७.२
अंक-अङ्क, आसन	८ १२ १२	अंभ-आम्भ	४ २१.२
अंकिर्यंग-अङ्कित + अङ्ग	१० १ १२	अंभर-अम्बर, आकाश, १ १५.७, ४ ८.१२, ५ ६.७;	१० १९ ६
अकुरिभ-अकुरित	४.१९ १३	अंवादेवय-अम्बादेवता, अम्बादेवी	१.२.६
अंकुसिय-अङ्कुषित	४ १९.१५	अंसु-अधु	४ ११ १, ९.१०, १२
अंकोत्त-वृक्ष एवं पुष्प विभो	५ ८ ८, ५ १० ९	अकृतिभ-प्र + कर्तिक.	४ ८ १२
अंग-अङ्ग	६ ११ ८, ७.२ ८, ९ ११ ८	अकर्म-प्रकर्ष	९ १५ ४
अंगरकल-अङ्गरक्षक	३ ४.९, ४ १२ १५	अकरवंगु-अविकृताङ्ग	७ १ १३
अंगरुह-अङ्गरुहः, पुत्र	प्रश० १७, ३ ५ १०	अकलकिभ-अ + कलकित	२ १४ ३
अंगार-अङ्गार	६.६ २	अकलत्य-अकृपाय	११.७ ७, ११ ७ १०
अंगारपुंज-अङ्गारपुञ्ज	९ १५ १५	अकहिउजमाण-अकथ्यमान	१.१ १५.
अगुलि-अङ्गुलि	२ ५ १३, ४.१३.३	अनेट्ट-प्र + कृष्ट	१ १३.६
✓ अंच-अचय, अंवि	५ १.५	अकिति-अकोति	५ १३.२१.
अंजण-अञ्जन वृक्ष	३ ९.१७, ५.८ ७	अकुलीण-( १ ) अ + कुलीन	
अंलकि-अञ्जलि	८.७ ५; ११.१.७	( ११ ) अ + कु + लीन	६ ५.२
अत-अन्त	२ ४ १	अकुलक-अकुशल	११ ९.३
अंत-अन्त, हि० आत	४.३ २	अक-अर्क, सूर्य	४.५.१., ५ १३.६
अंत-अन्त, आम्बन्तर	९.१६ ६	अकल-( १ ) अक्ष, रावणका एक पुत्र	
अनद-अन्त, हि० आत	४ २ १७	( ११ ) अक्ष-वहेडा वृक्ष,	५ ८ ३४
अंतर-अन्तर	१.४ ९	✓ अकल-आ + हया	४ १ ३, ५ ४ ८, ५ १३ ३३,
अंतरसुद्धि-अन्तरसुद्धि	१० २०.१२	इ	९.१५ १०; १०.१६.११
अंतरंग-अन्तरङ्ग, आम्बन्तर उपादन	१०.४.१	ए	९.१६.८
अंतराभ-अन्तराय ( कर्म )		अकलय-अक्षय	२.१२.४
अंतराभ-अन्तराय, विघ्न	२ १५ ८	अकलय-प्रक्षत विना टूटे सफेद चावल	७ १२ ५
अंतराल-अन्तराल	५ ११ १०, ९.५.९	अकलयणिहि-अक्षय + निधि	३ १४ १९
अंतरिभ-अन्तरित	१०.१३.७		

## अब्द-कोष

अक्षयतद्वय-अक्षय + तृतीया	४.१४.२१	अच्छेरभ-आचर्य (कारक)	
अक्षर-(१) वर्णमाला अक्षर		अच्छोद्धि-अग्रमुक्तः अवलोकितः हि०	
(११) अक्षर-अंक संख्या	२.१४.५; ८ ३.१	छोड़ना	-
अक्षराण-आख्याण	९ ५.१.	अजगम-अजङ्गम-अचेतन	२ १.७; ११.६.१
अक्षराणभ-आख्याणक	१०.१२.९	अजिन्म-अजिह्व	२.२०.५
अक्षिभ-आख्याण	१ १५ ८, ४.४ २, ६.१ १७	अज-आर्य	१.७.६
अक्षिय-आख्याण	३.१०.६, ५ २ १०	अज-अद्य, आज्ञा	२.१०.१०; ४.१४.१२, ७ ११.१०;
अक्षुद्धि-अक्षुमित, अक्षुन्न	४.२१ १५		१०.१२.९
अक्षुण्णिहाण-अक्षयनिधान	३ ८ ६	✓ अज-अर्जय, ०दि	९.८.१६
अखिल-अखिल	१० १.१०	अजवन्माव-आर्जवभाव	११ १४.४
अखुद्धि-अ + क्षु + मत्	४.२१ १९	अजवस्-आर्यवस् पु०	२ ५ २
✓ अगजर-अ + गर्ज + हर (न.च्छोत्वे)	२ ३.३	अजिभा-आयिका	१०.२१.५
✓ अगण-अ + गणय, अगणय,		अजिय-अजित	३.९.१८, ३.११.२
अगणयित्वा	५ ७ २६	अजिया-आयिका	३.१३.१४; १०.२१.४
अगणत-अ + गणय + मत्		अज्जेणभ-अद्यतन	५.२ १०
हि	२.१० ९	अज्जुण-(१) अर्जुन पाण्डव (११) अर्जुनवृक्ष	५.८.३१
अगळिच-अगलित	६ ३.१०	अज्ज्माण-अज्ज्मान	२.८.९
अगाह-अगाध	१०.१७ ८	अह-आर्त	११.९.५
अगुण-(वि०) अ + गुण निर्गुण	४ १ १	अहमेय-अहमेव	११.१२.८
अग-अग्र	२.१२.१४	अहम-अहम हि० आठवाँ	१.१६.८; ८.६.१८
अगाभ-अग्रत.	१०.१९ १२	अहवरिस-अहवर्षीय.	३.४.६
अगर-अग्रत. हि० आगे. ४.४.१, ५.१०.९, ५.१३ १४		अहसहस-अष्ट + सहस्र	१.१२.१, ६.४.२०
अगाहार-अग्रहार	२.४ ८	अह्मरह-अष्टादश हि० अठारह	२.५.१०, १०.२३.१०
अगिग-अग्रिम	८ ५ ७	अडिवाड-अस्थिवात	३.११ ४
अगिगवत-अग्नि + मत्तुप्	२.१.९	अडइ-अटवी	१०.७.१; १०.१३.१०
अगोय-आग्नेय	७ ९५	अडयणा-(दे) अग्निचारिणी स्त्री	१०.१०.१०
अगोसर-अग्रसर	१०.५ १०	अडवी-अटवी	१०.७
अघद्धि-अघटित	८ ९.६	?अघोद्धि-अ + दोहित, मथित, अवगाहित	५.१० २
अघटिज-अ (न) + आक्रान्त, अनाक्रान्त	५.३.२	?अङ्गुविचङ्क-अर्द्धवितर्द, भाडे, टेढ़े,	११.६.२
✓ अचयत-अ + त्यज् + घातु	९.९.४	?अङ्गुवाङ्ग-अर्द्धविक, दाई	११.११.११
अचर्यन्म-आश्चर्य हि० अचमा	१.१३ २,	अणव-अ + नय-अनोति	५ १३.८
अचर्या ङ-अति + अग्रल	८.१०.१६	अणंग-अनङ्ग	३.१२.१६, ४.१३.३; ५.२.१४
अच्छ-(दे) अच्छा, स्वच्छ	४.१३ ९	अणत-अनन्त	२.२.१०; ३.१४.१९
✓ अच्छ-आस्-इ	५ १ ३१	अणत्थ-अनर्थ	५.१३.७, ९.१२.११
अच्छाहि	३.१.६	अणययार-अ + नय + चार अनोत्थारार	
अच्छर-अप्तरा	१०.१५.३		५.१२.२४
अच्छरिभ-आश्चर्य	३.६.११	अणवरय-अनवरत	५.१.२८; १०
अच्छि-असी, नेत्र	४.१७.८	अणसण-अन + अणन् अनवान	२ २०.९, १०.२१ ८
✓ अच्छिज्ज-(१) आस् (कर्मणि) ङ	९.१० ४	अणाह-अनादि	११ ५ ८
अच्छिज्ज-अच्छिज्ज	९ ९.९	अणिच्च-अनित्य	११.१.५



अणिट्ट-अनिष्ट	२.२.८	✓अणुहुंज-अनु + मुञ्ज ँहि	५.४.१८
अणिट्टसंघ-अनिष्ट + संघ	४.५.८	°हुञ्जि-( विधि० )	१०.१०.१६
अणिमिस-अनिमेष निनिमेष	८.९.८	अणूप-अनु + उप( म ) अनुपम	४.१९.२२
अणियच्छिय-अ + दृष्टः	१.१.६	°अण्येय-अनेक	१०.२६.३
°अणिल-अनिल	६.८.५	अण्ण-( १ ) अन्य	१.२.१२; २.१६.५; ४.१४.१०;
अणुभ-अनुज	२.५.१०, २.८.७	६.८.१०, ९.८.७, ( ११ ) आत्ममित्र	१.१५.१
अणुकारिभ-अनुकारी	५.१.२५	अण्णत्ताणुविकल-अन्यत्वानुप्रेक्षा	११.५.१
अणुगह-अनुग्रह	१०.२०.१	अण्णत्थ-अन्यत्र	१०.२०.५
✓अणुचिट्ट-अनु + चेष्ट (विधिलङ्ग)		अण्णवण्ण-अन्य + वर्ण	१२.१४
°बद्ध	३.७.१६	? अण्णहि-अन्यत्र	१०.२५.५
✓अणुणभ-अनुनय	४.१७.१	अण्णहो-अन्यस्य	३.६.८
✓अणुणत-अनुनय + शतृ	९.३.११	अण्णाण-अज्ञान	८.३.७; ११.८.७
अणुविट्ठव-अनुद्दृष्ट	१०.२१.९	अण्णामिडज-आ + नम् ( कर्मणि ) °ह	१.७.८
अणुधिण-अनुदिन	२.८.४३, ३.११.५	अण्णाकाव-अन्यालाप, अन्योमित	२.१२.७
अणुपेहा-अनुपेक्षा	११.१५.१४	अण्णासिरी-अन्या + श्री	४.८.११.
✓अणुमण्ण-अनुमोदय °णिवि	७.७.८	अण्णेक-अन्य + एक	१.२.८
अणुमपिगभ-अनुमोदित	२.८.११, २.१२.३	अण्णे तहि-अन्ये तत्र	११.१२.८
अणुमाण-अनुमान	११.३.७	अण्णेसभ-अन्येष्वयं °वि	१०.११.८
अणुमेभ-अनुमेय	१०.२१.९	अण्णे षण-अन्योन्म	७.६.२, ९.१८.८
°अणुराय-अनुराग	९.१७.११, ११.१.११	अत्तिन्न-अनुत्प °उ	१.११.४
अणुरूच-अनुरूच	१०.९.४	अत्तिन्न-अतीन्न	- २.३.३
अणुलङ्ग-अनुलङ्ग	१.१०.२	अत्थ-अर्थ, घन	३.१४.२२, ८.६.१३, १०.३.७
अणुवच-अनु + वच् °वि	२.१२.४	अत्थ-अर्थ-पदार्थ	२.१.८
अणुवक-अनुवक, सहायक सैन्य	५.४.१७	अत्थ-आवश्याय, भावार्थ	७.१४.८.२.८
अणुविकला-अनुप्रेक्षा	११.१५.१४	अत्थहरि-अस्त + गिरि-अस्तावक	६.१०.१४.
अणुवेकल-अनुप्रेक्षा	११.३.१	अत्थंगय-अस्तगत	८.१४.१३
अणुवेकला-अनुप्रेक्षा	११.१.४	✓अत्थंस्त-अस्त गम् + शतृ	५.७.३, ८.१३.९
✓अणुसंचभ-अणु + सञ्चय्य °ह अणु		अत्थल्लभ-अर्थल्लेख	९.४.१०
कमपरमाणु सचय	११.७.८	अत्थवण-अस्तवनम्	८.९.१४; १०.२४.४
अणुमर-अनु + सु °मि	१.२.६	अत्थवणहो-अस्तवनस्य	८.१४.४
°रेवि	९.३.१३	अत्थसिहर-अस्तसिखर	८.१४.६
अणुवासिड-अनु + वास + तुमुन् सम्भार्ग		अत्थाण-आस्थान, समा	५.१.७, ५.१२.८, ७.६.३६
प्रवर्तयितुम् ( टि० )	१.१०.१२.	अत्थाणुरूच-अर्थ + अनुलप	७.१.३
✓अणुहर-अनु + ह	२.१६.१४, १०.१४.१६	अत्थात्थि-अर्थ + अर्थ	८.८.९
°हरत्त-अनु + ह + शतृ	९.९.११	अत्थि-प्रति	१.४.१, ३.१०.१०
अणुहरिभ-अनुसुत	४.१९.२२, ९.३.२	अत्थिलण-अर्थोजन	३.३.११
✓अणुहव-अनुभव °ह	२.११.४	अत्थाम-अ + स्थाम	४.२१.१६
°हवि	१०.१७.१९	अद्वविकल-°दि निर्भय	९.१४.१४
°हविअ-अनुभूत	१०.१७.१७	अदीण-अदीन	१०.२६.९
		अद-अर्द्ध	७.१०.६

अर्द्धनिध-अर्ध + अर्द्ध	४ ११.९	अन्मासु-अम्मास	१.२.४
अर्द्धकसर-अर्द्ध + अक्षर	९.१३.११	√ अन्मट्-दे) सामने आकर भिड़ना	
अर्द्धरत्ति-अर्द्धरात्रि	९.३ १०; ९.११.१६, १०.९.१	ई	६.१.८, ६.१.४ १०, ७.३.४
अर्द्धासण-अर्द्ध + आसन	५.१.५	अन्मुत्थाण-अन्मुत्थान	८ ९.३
अर्द्धधुव-अर्द्धधुव	११.१.१३	√ अयउ-अ + मू, अमृत.	३.५.११
अर्द्धदु-अर्ध + ह्नु	४.१३.४	अमाउ-अमाव	१०.३.६
अधीर-अधीर	१०.२६.७	अमय-अमृत	१०.१.९
अन्त-अन्त	१०.१२.१०	अमययहु-अमृतमधु	९ १.९
अपाउस-अ + प्रावृष	४.८ १३	अमर-(तत्सम)	३.३ ३; ४.४.७
अपूर-अ + पूर	५.५ १२	अमरगय-अमर + गज-ऐरावत	१.११ ३
अपेय-अपेय	१ ६.१०	अमरालय-(तत्सम) स्वर्ग	३ १.५
√ अपर-अपर्यु ई	१.११.२०	अमरिद-अमरेन्द्र	४.१.५
अपर-आत्मा, आत्मनः	२.७.१, ६ ५.२,	अमक-अ + मल, निर्मल	११.१२.११
	९ ११.६, ११ ६.९, ११.८ ९	अमाण-अ + मान	२.१३.१०; ११.८.७
अप्यच-आत्मनः	८.१४.१५, ९.१.१३,	अमारिअ-अ + मारित	७ ६ ३६
	९.१४.१२	अमिय-अमृत	८ २ १६
√ अपरअ-अपर्यु ई	२ १९.९, ५ ४.४,	अमुक-अ + मुकत, युक्त	३.१० ३
अप्यवि	१०.२१.३	√ अमुणल-अ + जा + णलु ३ १.१३; ७ ११ १३	
√ अप्यत-अपर्यु + णलु	८.१४.९	अमुर्णित	९ १३ १
अप्यण-अप्यण, आत्मनः	१० १३ ४, ११ ७ ७	अमुणिय-अजात	५ १४ ११, ७ ६ २३
	११ १५.२	अमेह-अमेध	१० १७ ८
अप्यणअ-आत्मनः	१० १८ ९	अमोहउ-अमोह, प्रचुर	१ १३.७
अप्यणस्त-अप्यणस्त	१०.२३.५	अम्म-माता हिं अम्मा	९.२७ ६
अप्यमाण-अ + प्रमाण, अक्षीम	५.३ ३, ५ ४.१	अम्ह-अस्माकम्, नः	५ ११.१५, ७ ३ १०; ७ ३ १४
अपरकविय-आत्मकवित	१०.२३.६	अम्हाण-अस्माकम्	७ ७ ८
अप्यणअ-आत्मनः	९.५ ११; ९.६९, ११.३.७	अम्हाणम्-हमाता	९ १५ १२
अपरिअ-अरित	९.१३ ३, १० १०.१	अम्हारिल-अस्माकम्	२.१५ १९; ७ १८ १५
अपरिअ-अरिपुष्ट	१०.२.८	अयक-अयक	९.१२ २
अपरिय-अरित	९ १३ १३	अयय-अयय, अपयय	५ १३ १७
अप्ताकिअ-आस्का कित	१ १४.५, ७ ८ ८	अयाण-अजान, अज्ञानी	१ १८ ११, १०.२६.७
अयक-(तत्सम) अलहीम	११ ७ ५	अ-अक-अकाल	१ १३.३, ४ ८.२३
अयहि-अयय, निर्वय	३.१० ४	अरहंत-अर्हन्त	४.४ ११
अयत्रुअ-अयुद्ध, आवृ पर्वत	९ १९.६	√ अरहति-अ + रह (दे) + णलु ई (स्त्रियाम्)	
अयमतर-आयमतर	३ २.४, ७ ११.१२		१० १८ ७
	१०.२३ १०	अरिभिच-अरि + मित्र	२ २० ४
अयमतरिअ-आयमतरिक	१० २३.८	अरिसकड-अरिसकट	५ ४ ५
अयमथण-अयमथना	१.२.६, ३ ९ ५	अरुण-(तत्सम) अरुण	२ १४ ७
√ अयमस-अयम + अम् ई	२.२०.२,	अरुणच्छाअ-अरुण + छाया	१ ११ १५
अयमसियअ-अयमस्त	४.९ ६; ४ १७.१९	अरुणस्त-अरुणस्त	६ ६ १
अयमहिअ-अयमधिक	९.६ ८		

अरुहणाह-अरहनाथ, अर्हन्तनाथ	३.१३.७	अवभाणिय-अपमानित	७.६.२१
अरुहभक्त-अर्हन् + भक्त	१.११.८	अवभोथर-अवभोदय	१०.२१.१०
अरुहयास-अरुहदास (श्रेष्ठि)	४.१७, ४.३१.१०, ९	✓ अवचरन्त-अव + तृ + शतृ	५.२.३
	१३.२; १०.२१.३	अवचार-अवतार	१०.१.७
अलंकरिय-अलङ्कृत	२५.२	अवयास-अवकाश	२.१.८
अलंकार-अलङ्कार	४.१२.१२	अवर-अपर, हि० और	२.१८.१४, २.२०.३
अलंकिअ-अलङ्कृत	१.१६.२; ३.८.३, ५.४.८.१;	अवर-अपरा (स्त्री०)	४.११.१५, ८.६.३, ९.८.२०
	५.२.८	अवरल्ल-अपराह	८.१४.२
अलंमिरी-अ + लभ् + °हरी (ताच्छीत्ये, स्त्रियाम्)	४.२१.९	अवरत्तअ-अनुताप	१०.१४.१४
✓ अलज्ज अ + लज्ज् °हर (ताच्छीत्ये) हि०		अवरिक्क-अपर + एक	९.६.३
लज्जाहीन	१०.१५.५	अवरुण्ण-°दे) आलिङ्गन	२.१४.९
अलङ्क-अलङ्क	७.६.१८	✓ अवरुण्ण-अवरुण्ण, आलिङ्गय्, °डेवि	
अलक-अलक हि० अलके	१.११.१६	आलिङ्गयित्वा	९.४.१५
अलधावलि-अलक + अवली	४.१३.३; ५.२.१७	अवरुप्पर-पररुप्पर	२.२.२, ५.२.३
अलस-आलस्य	१०.२३.४	अवरुप्पर-पररुप्पर	१.१५.८; २.४.११
अलि-(तत्सम) अमर	८.१४.१७, ९.९.२	अवलंबिय-अवलम्बित	६.९.३, ७.११.७
अलिङ्क-अलिकुल	१.१७.६	अवलोकअ-अवलोकित	९.८.७
अलिमाळा-(तत्सम) अमर पङ्क्ति	१.११.१६	✓ अवलोय-अवलोकय् °यद्	९.१.७; १०.४.१०;
अलिय-अलीक	५.१३.७		११.९.१
अल्लय-आर्द्रक हि० अवरक	७.१.२	°यत्	९.१९.१७, ४.१२.१६
अल्लहज-आर्द्रचणका: गोले चने	(टि०) ३.१२.१५	°यहि (विधि०)	१०.१५.६
अवहण्ण-अवतीर्ण	१.८.८, ४.१६.८	°यद्द, °यहो (विधि०)	८.९.१३; १०.११.८
	°हण्णी ४.४.२३	अवस-अवश्य	१.११.४, ३.६.७
अवती-अवती	९.१९.८	अवसद्-अपशब्द	१.२.७
अवक्क-अवाक्	१०.२५.९	अवसप्पिणी-अवसप्पिणी, कालचक्र	३.१.१०, ४.३.
अवक्क-अवक्क	११.१४.४		१५.११.११.७
✓ अवगणअ-अप + गणय् °हि	५.१३.२५	अवसर-(तत्सम)	६.३.५, ७.३.११
	°ह ११.१.१२	अवसाण-अवसान	२.२०.९; ९.५.१
	°णिगि ९.६.८	अवसार-अपसार, पीछे हटना	५.१४.२२
अवगण्ण-अप + गणय् (विधि) °हि	२.११.११	अवहार-अवहार	५.१४.२१
अवगणिय-अवगणित, अवमान	७.६.२६	अवहारण-अवधारण	१०.२२.३
✓ अवगम-अव + गम् (विधि) °हि	१०.१०.१५	अवहि-अवधि (ज्ञान)	२.२.७; ३.५.१
अवजस-अपयज्ञ	९.४.६	✓ अवहुज्ज-अप + भुञ्ज् °जहि (विधि)	१०.५.५
अवज्ज-अज्ज (देश)	९.१९.९	अवहेर-अपहार, अपहरण	९.५.२
अवड-कूप	९.७.१६	अवाणअ-आवाणक	४.१७.१५
✓ अवतस-अप + तस् °इ	४.२२.११	अवि-अपि	१.५.१२
अवत्थ-अवस्था	७.२.१६, १०.५.१	अविक्क-अविक्क	१.१८.७
अवद्ध-अवद्ध	१०.५.१	अविज्ज-अविज्ज	३.८.३
✓ अवमाण-अप + मानय् °टि (विधि०)	५.१३.२४	अविणट्ट-अ + विणट्ट	८.४.१२
		अविणयवत्त-अविनय + मनुप्	१.७.१

अवितत्तञ-अवितुत्त (वेद्याजन)	१.१२ ८	असुहंकर-अ + शुभंकर	११.५.७
अवियारिञ-अविचारित	१०.४.७, १०.७.११	असुहाविय-असुहापित, हि० स्वादरहित	१.७.६
अविरुद्धञ-अविरुद्ध, निर्दोष	१०.२०.१०	असेस-अशेष	२.१२.११, ६.१.१६, १०.२४.३
अविल्लञ-अविल्ल (तत्सम)	३.८.१३	असीय-अशोक (वृक्ष)	१.१६.१२; ४.१७.४
अविलक्षणञ-अविलक्षण	१०.४.४	अह-अथ	३.१२.१८, ९.८.६; ११.८.५
अविचेह-अविचेकी	७.८.१४	अहं-अहम्	१.८.१, २.१६.३
अविचेयहो-अविचेतस्य	१.२.७	अहमिद्-अहमिन्द्र	१०.२४.१२
अविषाय-अविषाह	११.१५.३	अहमिय-अहम् + इदम्	१०.५.१२
अवहित-अ + विमत्त	२.५.९	अहम्-अघर्म	१०.५.४; १०.१०.१३
अवेकञ-अपेक्षा	९.१२.१७	अहर-अघर	१.११.१५; २.१६.४, ४.१७.११
असह-असतो (वेद्या)	१०.१०.७; १०.१८.२	अहर-(१) अघर (११) अघम	९.१२.१२
असंकिञ-असंकिञ्जित	८.२.२९	अहरत्त-अघरत्त्व	११.६.७
असंभव-असम्भव	१०.३.६	अहरमुह-अघरमुद्रा	४.१३.७, ८.१.१५
अमङ्ग-अ + भाग्य	५.१३.३१, ६.१.१२	अहरविह-अघरविम्ब	२.१५.१५, ५.१३.२०
असगाह-असद् + आप्रह	५.१३.४	अहरुल्ल-अघर + उल्ल (स्वायें)	२.१४.७
असज्ज-अमाद्य	९.१४.४, १०.१५.९	अहरोह-अघर + ओह	४.२२.१०
असम-अ + सम, असमान	५.३.१	अहरोवाहि-अघर + उपाधि-सन्निधि, नैकट्य	१.१०.४
असमत्त-असमान्त	८.९.७	अहरोह-अघर + ओह	९.१८.५
असमथ-असमर्थ	८.२.५	अहल-अफल	८.१४.४
असरण-अघरण	११.२.१	अहलीकञ-अवरी + कृत	१.११.१६
असराह-अह, अपर्याप्त	४.२२.२६	अहव-अथवा	४.१८.१४; ८.१.४, १०.२३.३
असरिस्-असवृक्ष	४.२२.२६	अहि-(तत्सम) अहि, सर्प	४.१०.१३; ८.७.७
असवार-अव + वार, घुडसवार	६.५.७	अहिञ-अधिक	९.१०.२१; १०.१२.८
√ असहंत्-अ + सह + शतृ	२.५.१५; ५.१.१६, ६.४.१०	अहिणंदिञ-अभिनन्वित	२.१३.१
°i (स्त्रियाम्)	८.१४.७	°दिह	४.४.९
असहमान-असहमान	९.७.१०	√ अहिणेड-अभिनय + तुमुन्	८.२.१०
असहिञ-अ + सह	९.७.२	°अहिष्टिञ-अविष्ठित	४.१३.१९; ५.१.३४
असार-(तत्सम) सारहीन	९.८.८, १०.४.७	अहिमवण-अहिमवन, नाममंदिर	३.१३.३
असारय-(१) अ + सार (११) अ + सारयीय	४.८.१९	अहिमार-वृक्ष विशेष	५.८.६
°असि-अस्ति	६.१.२	अहिसुह-अभिमूल	७.१०.१८
असिवाय-असि + घ त	६.१.१६	अहिय-अधिक	८.२.१
असिद्ध-असिद्ध, अनुपलब्ध	९.४.१२, १०.१४.१५	अहिराम-अभिराम	१०.१.८
असिहञ-असिद्ध, अप्रप्त	९.१०.२२	√ अहिलस-अभि + लप् + ह	१०.१४.१५
°असिघार-(तत्सम) असिघार	६.७.३	°सिचि	९.७.१२
असिघरण-	६.१४.१५	°हि	५.१४.३
असुह-अशुचि	१०.१७.७, ११.६.१, ११.६.८	√ अहिलसंत-अभि + लप् + शतृ	९.१०.२१
असुत्त-अ + सुप्त	१०.९.४	अहिलस-अभिलाषा	१.५.११, २.७.५, १०.७.१०
असुद्ध-अशुद्ध	१०.२.८	°अहिलासी-अभिलाषो	४.१४.४
असुह-अशुभ	१०.४.१४, ११.७.३	अहिसारिमा-अभिसारिका	८.१५.१
		√ अहिसिञ-अभि + सिच् + ह	४.१९.७

अहिहाण-अभिधान, नाम	३.५.११, ३.११.२१,	आणंद्यर-आनन्दकर	८४.६
	१०.१६.१	आणंद्यरी-आनन्दकरी (स्त्रीयाम्)	३.३.६
अहो-(तत्सम) आश्चर्याथे	१.१३.१	आणंदरूप-आनन्दरूप	९.२.१२
[ आ ]		आणद्वद्वावण-आनन्द + वद्वापन-वर्वाह	३.४.३
आह्व-आगत	१.११.१०, ६.२.१	आणद्विथ-आनन्दित	४.६.७
आह्वचदंशणा-(स्त्री०) आदित्यदर्शना	३.१४.१	आणकर-आज्ञाकारी	३.३.१३
आह्व-आदिष्ट	५.६.३	आणस्त-आज्ञप्त	४.१६.८, ५.१४.८
आह्वण-आकीर्ण, सङ्कीर्ण	१०.१९.१६	आदणभ-(दे) व्याकुल	९.९.१४
आह्व-आगत	८.४.१३	आ + नमस्त्रिय-नमस्कृतम्	९.१७.५
आव-आगतः	२.१३.२; ६.११.६, १०.८.१४	आपङ्कुर-आ + पाण्डुर, समन्तात् पाण्डुर	४.७.४
	१०.१७.२, ११.३.३	✓ आपीक-आ + पीड्य ई	४.१७.११
आवचिय-आकुञ्चित	८.१३.३	आनिष्ट-(ठ) मिडना	६.१२.९
✓ आउच्छ-आ + पुच्छ ई	३.५.५	आर्मितिय-आर्मित्रता ( स्त्रियाम् )	१०.२५.४
आउलियणु	८.७.२	आमिस-आमिष	९.५.४, ९.११.४, १०.१०.९
आउण-आ + पूर्ण	४.६.५	आमुक-आ + मुक्त	५.११.११
आउच-आयुक्त (अधिकारी)	५.१.१०	आमोय-आमोद	५.१.२२, ७.१२.२; ८.५.६
आउत्तमंग-आ + उत्तमाङ्ग	९.१८.५	आय-आयता (स्त्री०)	८.५.५
आउक-आकुल	५.१.२०, ५.६.१७	आय-आगत	६.१०.७
आउस-आयुष्य	३.१.६, ३.५.८, ८.२.२६,	आयभ-आगत	१०.१९.६
	११.१.६	उ	४.२.४, ७.११.१०
आउसमभ-आयुष्यमय	२.२०.१०	आयउ-एषः, यह	९.६.११
आकरिय-आपूरित	१०.२४.१	आयंविस्-आठात्र	८.१३.७
आपुस-आदेश	३.४.८, ५.२.२२, ८.७.३	आयखिड्य-आकुण्ट	४.६.१
आपुसिभ-आवेशित	१.४.९, ५.१२.१०	✓ आयण्य-आकर्ण्य	२.४.४, ३.१
आकरिसण-आकर्षण	९.१२.९	ई	९.३.३
आगभ-आगत	१०.१८.६	आवणवि	९.७.१
आगडम-आ + गर्म	१०.३.१	आयण (विधि०)	१०.६.१
आगम्ण-आगमन	२.१०.१०, ११.७.२	आवणहि (विधि०)	९.१०.१५,
आगया-आगता	९.१७.७, १०.१८.११		१०.४.५
आगुच-(तत्सम) पूव्य, गुह्य-स्थानीय	९.१७.१३	विण्यई (आत्मने०)	४.७.१३
आजाणु-आजानु	९.१८.२	आयत्त-(तत्सम) स्व + आधीन ९.१२.१, १०.१६.४	
आह्विल-आरब्ध	३.९.१०	आयस-आगम	३.९.१९
✓ आण-मान्य ई	३.९.१४	आयस्-आदर	१.७.११, ९.१२.१८, १०.२३.२
वि	१०.१४.९	✓ आथर-आदृय ई	१०.२०.५
हि (विधि०)	३.९.१२	आथरिय-आचार्य	२.८.२, २.१७.५
आणि (विधि०)	१०.१५.८	आथरियपरंपरा-आचार्य-परम्परा	प्रज० ५
आणिज्झ (विधि०)	१०.१६.८	आथहु-अस्य, एतस्य	५.१२.१९,
आण्ड-आनन्द	४.१.१४, ४.८.४	हो	२.१८.१, ५.१२.२१
आणदण-आनन्दन-आनन्ददायक	४.६.१४	आथा-आगता (स्त्री)	१०.९.४, १०.२५.२
आणदत्त-आनन्दतूर	१.१४.५	आथार-आकार, समान	४.८.८

आचार-आचार	८८४	आवास-(तत्सम)	१०.१४.२
आवास-आकाश	२.१६	आवासि-आवासित	५.१०.२५
आरक्षि-आरक्षित	७८९	आवि-आगत	७.४१६
आरण-आरणा, काजी, सावधाना	३.९.१०	आम-आषा	८.७१६
आरण-आरण्य	१०.७.६	आस-आश्रय (स्थान)	१०.२०.११
आरक्ष-आरक्षित	४२२.११	आसक-आसक्त	२१६५
आराम-वधान	५.३.१०	आसक्ति-आसक्ति	५.१.२१
आराहण-आराधना	१०.२६.११	✓ आसक्त-अक्षय, या आ + वृत् आसक्ति	
आरि-ईदृश	९.१६.७		६.१२.८
आरि-आरि-आरि-आरि	८.२.१	आसक्त-आशक्तः	९.७.१६
आरि-आरि-आरि-आरि	७.६.४	आसक्त-आसक्त, निकट	३.१३.६, १०.१८.५
आरि-आरि-आरि-आरि	११.८.३	आसक्ति-आसक्ति	१.१०.४
आरि-आरि-आरि-आरि	१०.११६	आसक्त-आसक्ति (i) अक्षय	
आरि-आरि-आरि-आरि	६११.५	(ii) पीपलका गच्छ	५.८.३२
आरि-आरि-आरि-आरि	६.११.९	आसक्त-आसक्ति	९.१३.१२, १०.१८.२
आरि-आरि-आरि-आरि	९२.३	आसक्त-आश्रय	१०.१९.१५
✓ आरि-आरि-आरि-आरि	४१७.१८	✓ आसक्त-आरि + आरि	२.२०.९
आरि-आरि-आरि-आरि	९.९.११	रेवि	९.१४.३
आरि-आरि-आरि-आरि	९१८८	आसक्त-आसक्त	११.८.१
आरि-आरि-आरि-आरि	४१७२	आसक्त-आसक्त + वार, द्वि० सवार	४.२१.७
✓ आरि-आरि-आरि-आरि	९.१२१८	आसा-आसा	१०.१०.१०
आरि-आरि-आरि-आरि	४.५.१३	आसा-आसा-आसा, प्राप्त	१०.१.१४
आरि-आरि-आरि-आरि	५.२.१०	आसा-आसा-आसा	१०.२२.३
✓ आरि-आरि-आरि-आरि	३.१२.१	आसा-आसा-आसा	७.४.१८
आरि-आरि-आरि-आरि	११.९.७	✓ आसि-आसि	५.१३.१९, ११.१.११
✓ आरि-आरि-आरि-आरि	२१४५	आसि-आसि	११.९.२
व (वि०)	९१७१४	आसि-आसि	१०.२४.२
आरि-आरि-आरि-आरि	१०१४.५	आरि-आरि-आरि, द्वि०	२.४.७
✓ आरि-आरि-आरि-आरि	५.१२.११, ६.११.२	✓ आरि-आरि + हन् आरि	६.१०.९
	१०.११.३	आरि-आरि	८.७.१२
आरि-आरि-आरि-आरि	८७१७	✓ आरि-आरि + हन्	१०.१२.१०
आरि-आरि-आरि-आरि	११.१४.१	आरि-आरि	४.८.५, ११.१४.३
आरि-आरि-आरि-आरि	२५.१२.४.९.४	आरि-आरि	२१२.३
	१०६६	आरि-आरि + भण	२.१८८, १०.२५.३
आरि-आरि-आरि-आरि	६.९.२	आरि-आरि (द्वि०)	९.१९.४
आरि-आरि-आरि-आरि	५.१.३		
आरि-आरि-आरि-आरि	१०.२६.३		
✓ आरि-आरि-आरि-आरि	४.२२.१४		
✓ आरि-आरि-आरि-आरि	७६.२३		
आरि-आरि-आरि-आरि	४.२.७		

इंद्रगोत्रय-इन्द्र गोपक	४.१८.६	✓ ईह-ईह, °ह	८.११.१२;
इंद्रनील-इन्द्रनील	३.३.१०	°हि	९.१५.२
इंद्रसमान-इन्द्रसमान	३.१०.५	✓ ईहविय-ईह + वतु °तिय (स्त्रियाम्)	१.१०.५
इंद्राएस-इन्द्र + आदेश	१.१६.३		
इंद्रिंदिर-भ्रमर	८.१३.६	[ उ ]	
इंद्रिय-इन्द्रिय	३.९.२, ८.८.१३, १०.२०.१३	उभय-उदय	११.९.७
इंद्रियगिद्धि-इन्द्रियमृद्धि	११.१४.७	उभयागव-उदय + आगत	९.१.१८
इंद्रियदप-इन्द्रियदर्प	३.६.२	उभय-उदित	८.१५.४; १०.१८.१४, ११.९.२
इंद्रियदवण-इन्द्रियवमन	२.१८.३	उं-उष्ट्र (कथा)	१०.७.१; १०.१८.२
इंद्रियफडाल-इन्द्रिय + फण + ल (स्वाथे)	३.७.१३	उंवर-उदुम्बर, वृक्ष विशेष	४.२१.२, ५.८.१३
इंद्रियवित्ति-इन्द्रियवृत्ति	११.८.२	उंस-ओस	१०.७.९
इंद्रियविसय-इन्द्रियविषय	२.२०.३	✓ उर्ध्वकर्मन-(दे) उवकक + वतु, वनुष पर	
इंदीवर-(तत्सम)	१.६.७	उरी चढ़ाते हुए	६.७.१०
इंदु-(तत्सम)	४ ९.१	उर्ध्व-उत्कण्ठित	७.१२.१८
इंधन-ईधन	१०.१३.११	उर्ध्व-उत्तान्ति	१ ७.९
इक-एक	१.५.१७, ६.२.१	उर्ध्व-उत् + कर्तित	५.८.२६
इकलभ-अकेला	१०.२६.११	✓ उर्ध्व-उत् + क्रम °वि	६.७.८
✓ इच्छ-इच्छ हच्छमि	१.३.७	उर्ध्व-उत् + वषित	१ ८.५
इच्छिय-इच्छित	३.९.११, १०.६.१०	उर्ध्व-उत् + वषित	२ १५.१
इष्ट-इष्ट	२.५.१५, ९.१०.२१, ९.१७.११	✓ उर्ध्व-उत् + वषित	२ १५.१
इष्टच्छर-इष्ट + अप्सरा	२.२.७	✓ उर्ध्व-उत् + वषित	२ १५.१
इण-इदम्	८.१२.१	उवकुकिरिय-उत्क + उत्क + कृतः	
इथ-अथ	१.६.२	उपर उठे हुए	४ १३.१२
इथह-अथैव	९.१५.१३	✓ उवखण-उत् + खत् °ह, हिं उखाटना	५ ५.१
इथिरज-इथीराज्य (देश)	९.१९.१२	उवख-उत् + खात	५.११.१३
इडम-इडम, धनवान	३.१०.१२	उविलस-उत् + लिप्त, उखाटे हुए	५ १४.१
इमं-इदम्	२.३.१	उवखेव-उत्क्षेप	८ ११.४
इय-इति, एव	७.१२.१०, ९.४.७, ११.१५.१०	उवखेविभ-उत् + क्षेपित	७ १०.१५
इयर-इतर	१.४.१०, ४.१४.१४	उवख-उत् + गत	५.७ ४; ८.१३.११
इयरा-इतरा (स्त्री०)	८.११.१	उवर्गदिय-उत् + ग्रथित खुले हुए	९ १८.४
इयराउत्त-इतर + आयुक्त	५.१.१०	उवगय-उद्गत	१ १७.७
इव-(तत्सम)	८.३.३	उवगामिभ-उद् + गमित	६.४.८
इहु-ईदुक्, (अप०) एतत्	३.१.२, ७.३.७	उवगार-उद्गार	९ १२.२
		उमिण-उत् + मोर्ष, उद्गोर्ष	५.१४.१०
		✓ उमिरंती-उत् + गृ + शतु °ी (स्त्रियाम्)	१.५.४
			१.५.४
✓ ईस-ईषय, ईसाइवि	८.१४.७	✓ उवघाह-उद्घाटय °ह	९ ८.२०
ईस-ईषा	९.१३.२	उव्वंत-(दे) ऊंचे उठाये हुए	७ ६.१५
ईसर-ईषय, समृद्ध	१ ९.१०	उवत्तण-उवत्त्व, उत्तरेष	११.१० ११
ईसाळम-ईष्याळ + क (स्वाथे)	३.११.५	✓ उवत्त-उत् + वत् °ह, हिं उवत्तना	१.९.३
ईसि-ईषत्	१०.३.८		

✓ उच्चलंत-उत् + चल् + शतृ	४ २१ ११	✓ उच्चाव-उद् + आपय् °ह, हि० उद्गता २ ७.५	
✓ उच्चर-उच्चारय्, उच्चरेवि	९.१७.४	उद्धिञ्-उद्धित	१०.१८ २५
✓ उच्चाश-उच्चय् °ह्वि	६.१४.७;	✓ उद्धिञ्ज-उत् + ङी °ह (कर्मणि)	९ ५ ८
°यवि	७.११.२	✓ उद्धी-उद् + ङी, उदना °ह्र (ताच्छील्गे)	५.७.६
उच्चाह्य-उच्चायित, ऊपर सठाया हुआ	४.२०.८	उद्धेविणु ७ १०.२२	
✓ उच्चारय-उत् + चारय् (कर्मणि) °रिञ् २.४.९		उष्णह्य-उष्णयित, उदितः	७.९.९
उच्चारिय-उच्चारित	१.१७.८	उष्णामय-ऊर्णामय	२.१०.५, ८ ११.३
उच्चाक्षि-उत् + चालित	५.४.१०	उष्णाह्-(दे) तीव्र प्रवाह, वाढ	९.१०.१
✓ उच्चिण-उत् + चि, उच्चिचंपति (बहु व०)	८.१५ १२	उष्ण-ऊष्ण	१०.१५.६
उच्चोदिय-उच्चादित	६.४ ६	उष्णह्विय-ऊष्णापित, ऊष्णीकृत	८ १३.५
✓ उच्छल-उत् + चल् °ह	६.५ १	उत्त-उत्त	१०.८ ४
✓ उच्छलंत-उत् + चल् + शतृ	९.९ १२	उत्तमंग-उत्तमाङ्ग, शिर	५.१.१७
उच्छल्लिभ-उच्छलित	५.६.१७	उत्तमखम-उत्तम क्षमा	११.१४.२
उच्छव-उत्सव	४.८ १०	✓ उत्तर-उत् + तृ, उत्तरेवि	७ १३.५;
°उच्छहिय-उत्साहित	७.६.११	°रद्	१०.१०.२
उच्छाह्-उत्साह	७ १२.१०	°रिवि	१०.२०.७
°उच्छाहमण-उत्साह + मनस्, उत्साहितमन ३ ५ ३		✓ उत्तार-उत् + तारय् उत्तारमि	१०.९.१२;
उच्छाहिभ-उत्साहित	५.८ ३८	°रहि (विचि०)	९ १०.११
उच्छु-छु, बाण	३.१०.१४	उत्तरिभ-उत्तरित, उत्तीर्ण	१०.१० २
उच्छु-छु	५.९.१७	उत्तारिय-उत्तारित	७.८.१
उच्छेह्-उत्सेव	३.१ १२	उत्ताल-उत्ताल, हि० उतावला	५.२.११
उच्छजल-उच्छजल	१.१४ ३	उत्ताकिया-उतावली (स्त्री०)	४.११.९
उच्छान-उच्छान ३ १२.२१, ८.४.१३; १०.२२.६		°उत्ताविय-उत् + तावित	५ १०.४
✓ उच्छाल-उत् + च्वाल् °ह	८.८.४	उत्तिण-उत् + तीर्ण	५.११.२१
उच्छीविभ-उच्छीवित	७.४.१७	उत्सेविभ-(दे) उत्सवित, ध्रुव-बृंद कर फैली हुई	७.७.११, ५.७.२१
उच्छोद्विभ-उच्छोदित	१.१५.९	✓ उत्थर-अव + तृ °ह	५.१४ १९
उच्छांसिय-उद् + योषितता, जोत उतार दिये गये	५ १०.२०	उत्थरिय-आक्रान्त	७ ८ ६,
✓ उच्छोयंत-उच्छोयत् + शतृ	३.१३.३	उद्धिष्ठ-उद्धिष्ठ-कथित	९ ४.१३
उच्छाश-उपाध्याय	१० ५.१०	उद्ध-उद्धत	४ २०.११
°उच्छिभ-उत्सिप्त	९ १२.११, १० २०.५	°उद्दाम-उद्दाम, ऊँचे स्वरसे	४.८.३
✓ उद्धत-उत् + स्था + शतृ	५.१४ ८	°उद्दामप्र-उद्दाम + मतुप् (स्त्रिय म्)	४.५.१८
उद्धवम्म-ओद्धवर्म	९.१.१०	उद्धिष्ठ-उपदिष्ट	१० २.५
उद्धाविभ-उत्पापित	१० १३ ६	उद्धित-उद्धित	१.१८ १०
उद्धिभ-उत्थित	३.७ ४, ६.४.१०	उद्दीविभ-उद्दीपित	४ १५ २०
✓ उद्धिड-उत् + स्था + तुमुन्, उत्थातुम्		°उ स-उपदेश, कथन	°विश ७ ४.१७
	४.२१.१२	उद्देस-उद्देस्य, प्रवेश	प्रश० २०
उद्धिय-उत्थित	५.६.१६; ५.१४ ९	✓ उद्देस-उपदेश्य °हि (विचि)	७.४.३
✓ उद्धत-उत् + ङी + शतृ	६ ७ २	उद्ध-उद्ध	१० १४ ८
			५ १४.१२



उद्धत-उद् + भ्रातृ	२.१०.७	उद्धिय-उद्धिञ्जित	७.२.६
उद्धत्त-उद्धत	९.४.५	√ उद्धिन्-उत् + धृ उद्धिभि	१.८.७
उद्धद्विही-उद्धद्विष्ट	१.१५.९	उद्धसूक्षिन्-उद्धृषित	४.१९.१३
उद्धरिष-उद्धृष्ट	७.३.१३; ९.१०.८	उद्धमग-उद्धमार्ग	५.११.११
“रिय	प्रश्न० ६	“उद्धमाय-उद्धमाद	४.११.११
उद्धाङ्ग-उद्धावित	४.१३.६; ५.१०.८, ९.७.८	उद्धमाहिन्-उद्धे उत्साहित	२.१४.१, ८.८.१९
“उद्धाविभ-उद्धाविष्ट	७.१०.१४	उद्धमाहियन्-उद्धसाहित	१०.१६.१२
उद्धृष्टिय-उद्धृष्टि, रोमाञ्चित	१७.१३.९	√ उद्धमोद्ध-उत् + मोल्य लह	४.१३.१
उद्धृष्ट-रोमाञ्चित	१.८.३	उद्धमोद्ध-उद्धमोद्धन	५.२.१७
उद्धृष्ट-उद्धोत्	७.९.७	उद्धमोष्टिय-उद्धमेष्टित	१.९.६
उद्धृष्ट-उद्धृष्ट	११.१.९	√ उद्धमुच्छ-उत् + मूच्छ्य भाण (ताच्छोत्से)	६.८.५
√ उद्धृष्ट-उत् + पद उद्धृष्टि	४.३.११	उद्धमुच्छिन्-उद्धमुच्छित	३.७.७; ८.७.११
उद्धृष्टि	३.१.१०;	उद्धमुह-उद्धमुह	६.११.१०
उद्धृष्टि	४.१.११	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	९.४.११
√ उद्धृष्ट-उद्धृष्ट (कर्मणि) °ह	२.१.१४;	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	१०.१८.१४
११ ३.६; ११ ५ ३४		उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	११.५.४
उद्धृष्टि-उत्पन्न जात	४.३.३	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	७.६.२३, ७.४.४.
उद्धृष्टि-उत्पन्न	१.१८.३; ४.२२.२६; १०.२१.६	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	४.१९.११
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	प्रश्न० २; ४.२२.१८	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	८.१६.८
उद्धृष्टि-उत्पन्न	४.१९.१	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	४.१५.१२
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	११.४.१०	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	२.१४.१०
√ उद्धृष्टि-उत् + भाव्य °ह्वि	४.३.१२;	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	१.९.८
उद्धृष्टि	१.१३.८	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	५.७.१६
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	९.४.१४	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	५.७.२३
“उद्धृष्टि-उत्पत्ति	१०.१.१३	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	७.४.५
“उद्धृष्टि-उत्पत्ति	१०.२०.४	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	८.११.१४
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	६.१४.३	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	४.११.६
√ उद्धृष्टि-उत् + पत् °ह उद्धृष्टि, वर्ष देता	५.१०.१४	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	१.१५.११
उद्धृष्टि-उत्पत्ति, नसृण	१०.१६.२	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	१०.१७.८
उद्धृष्टि-उत्पत्ति, हि नैवारी हई	१०.१६.६	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	११.९.१०
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	९.३.९	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	५.२.२२, ८.३.७
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	६.१.१०	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	१०.१४.७
“उद्धृष्टि-उत्पत्ति	६.७.८; ८.११.१५	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	११.२.१०
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	३.७.१४	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	२.१३.६, ३.१४.२२
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	९.१२.७	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	१०.५.५
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	९.१६.३	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	११.९.७
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	४.१६.९	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	९.१.१८
उद्धृष्टि-उत्पत्ति	८.१२.२	उद्धमूढ-उत् + मूल्य भाषि	५.३.४

उचयार-उपकार	२.८.६
उवर-उपरि, हि० ऊपर	७.६.३६
उवर-उदर	९.३.१२
उवरि-उपरि, हि० ऊपर	१.९.४, ९.३.१, ४.५.२५
उवरिम-उपरिम'	११.१२.१
उवरिल्ल-उपरि + इल्ल (पष्ठघर्षे), हि० ऊपरका	११.१२.६
°उवलंम-उपालम्भ, उपलब्धि	८.७.१३, १०.५.३
उवलभ-उपालम्भ	२.१६.९
√ उवलंसई-उप + लभ् ई	९.१३.७
उवलसिञ्ज-उपलसित	१.३.६
√ उवलकल-उप + लक्ष् + हि (विधि)	७.१३.९
°विञ्चि	१०.८.८
उवलद्ध-उपलब्ध	९.१७.१५
उववण-उपवन	३.५.२; ७.१३.१५; ८.३.६
उववण-उपवन,	प्रवा० २
उववसिञ्ज-उपवासित	२.१५.७
उवविट्ठ-उपविष्ट	५.८.२८
√ उवविसंत-उप + विष् + शतृ	५.१.२१
उववसग-उपसर्ग	१०.२५.४, १०.२६.९
उववसपिणि-उपसपिणि (कालचक्र)	११.११.७
√ उववसम-उप + वसम् ई	२.१८.४
उववसममण-उपशम + मनस्, उपशान्तमन	३.९.१५
उववसामण-उपशमन	८.१०.१४
उववसामिञ्ज-उपशामित	६.५.११
उववसाध-उपशाम्य°मि	२.८.१०
√ उववसावञ्ज-उपशाम्य°वमि	८.६.१०
उववसिञ्ज-(१) उपहासित (१) उभयशिव	१०.३.११
उववहासण-उपहासन, उपहास करनेवाला	११.१.१०
उववहि-उदधि सामर	४.१६.१३, ११.१०.६, ११.११.८
उववहिचंड-उदधि(सामर)चन्द्र	३.५.१३
उववहुंनिय-उपभुञ्जित, उपभुक्त	४.९.१२
उववञ्ज-उपाय	९.८.१५
उववञ्ज-उपाय	९.१०.९, १०.१४.५
°उववहि-उपाधि	२.१.७
उववडिय-उत् + पठित	६.६.९
√ उववर-उद् + वृ°इ, हि० उवरना, वचना	३.११.९

√ उववलंव-उद् + वल् + शतृ पीछे लोटना,	४.२१.११
उवव्वञ्ज-कामोद्दिग्ध	९.३.९
उवव्वेइय-उद्देवित	२.१९.१०
उवव्वेविर-उद्दिग्ध + इर (ताच्छील्ये)	६.१.१०
उवव्वय-उभय	७.५.११; ७.७.१२; १०.२.४
उवव्वयमई-उभयमति	१.२.१०
ऊरिया-पूरिता (स्त्री०)	१०.१८.१४
ऊरुय-ऊरु + क (स्वार्थे)	२.१६.२
ऊसरिय-अपसारित	७.७.१२

[ ए ]

एम-एतत्	२.१३.७; ४.१७.१७, ७.१३.९
	१०.११.४
एउ-एतत्	४.२२.३५; ९.१.१६
°एए-एते, हि० ये	१.१८.१०
एएण-एतेन	५.५.७
एए-एक, अकेला	४.१.९; ४.५.२; ५.१.१; ७.४.८
एकङ्ग-एक + अङ्ग	५.१४.१९
एकंतर-एकान्तर, एक दिनके अंतरसे	३.९.१२
एकत्त-एकत्र	११.१२.८
एकस्थ-एकस्थ	१०.१०.१३
एकमेक-एकमेक	१.९.२
एककल-दि० अकेला	५.८.१७; ७.१२.९
एककलठ-अकेला	९.१०.१६; १०.७.६; ११.४.२
एकवचकण-एक + पव + कण एक चरण व एक	९.१९.९
	कान वाली जाति
एकसि-एकदा	२.१५.१४
एकमेक-एकपर	६.४.९
एकवेयर-एक + उवर, सहोदर भ्राता	११.५.५
एण-एतेन	२.४.५; ६.३.६
एत्तड-एतावत्	७.७.५
एत्तहि-इतत्, यहाँ से	३.१०.४
एत्तहि-इवर	४.३.१; ९.१४.६, १०.१०.९
एरुहे-अत्र, हि० इवर	२.१३.९; ३.४.११; ६.४.४
	१०.१२.२
एत्तिय-एतावन्मात्र, हि० इतना	८.६.४
एत्थ-अत्र	२.११.१; ३.७.३; ८.३.८; ९.६.६

एत्थंतर-अत्रान्तर	२.५.११; १०.१८.१०	ओहामिय-अवधामित, तिरस्कृत, अमिभूत	२३
एम-एवम्	५.१२.१९; ६.१४.६; ९.६.४		९८५५
एमइ-एवमेव	२.१८.१६	ओहालिय-अवलित	६.१०.१३
एमहि-इदानीम्	८.१०.७		

एयअ-एतत् ९.२.७

एयं-एतत् ४.१८.४

एयंतनअ-एकान्त + नय १०.५.१

एयहो-एतस्य ४.१.८

एयाळ-एताः (कुमारिकाः) ४.१२.७

एयारसंग-एकादश + अङ्ग १०.२४.१३

एयारसम-एकादशम् ११.१५.१५

एयारहम-एकादशम् १.१८.१५

एरावअ-ऐरावत (क्षेत्र) ११.११.७

एरिस-ईदृश ६.१०.१; ८.१४.१५, ९.१.१३

एवअ-ईदृश ७.२.१६

एवहि-(अप०) इदानीम्, एवधि, साम्प्रतम् ३.१०.७;

६.२.७; ७.३.११; ७.६.३७

एवि-आगम्य ७.७.३

एस-एषः १.१८.५, ९.१७.१४

एह-एषा(स्त्री०), (अप०) ईदृक् २.११.३;

५.१३.१४

एहअ-ईदृक् १.१३.७

एही-ईदृशा ( स्त्री० ) २.१३ ८, १० १०.१२

एहु-एषः ३ १०.२, ५ ११ १५, ७ ११ १३

### [ ओ ]

ओछरिणी-उत्सर्पिणी, कालचक्र

३-१ १०

ओहिय-उद्भूत

१ ११ ८

ओमुंछियअ-उन्मूर्छित

३.७.७

ओमुंछिय-उन्मूर्छिता ( स्त्री० )

८ ७ ११

ओलम्बिय-अवलम्बित

५-८ २५

ओवडिय-अव + पतित

६.१२ १०

ओसहय-ओषध + अर्थ

९ ११ ८

✓ओसर-अप + सृ ( विधि० )

५.७ २४

✓ओसरंअ-अप + सृ + सत्

६ १२ ११

ओसरिय-अपसृत

७ ६.१०

ओसही-ओषध

३ १४-१२

ओसारिय-अपसारित

७ ८.३

ओह-ओष

६ ४१; ७ ४२

✓ओहट-अव + घट्ट 'इ

८ ७ ७

### [ क ]

क-का ( स्त्री० ) १० १४ ४

कअ-कृत ७.१ २; ८ १३ ७

कइद-कवि + इन्द्र १.५.१४

कइ-कवि ४ १८ १५; ८.१ ३; ९ ६ १

कइकुळ-(1) कवि कुल (II) कपिकुल ५.८.३४

कइरव-कैरव, कुमुद ८ १४ १५

कइरव-कैरव वन १०.१८ ८

कइत्त-कवित्व १ ५ १३

कइत्तवाम-कवित्ववाम १ १ १ १

कइदेवयत्त-कवि देवदत्त प्रथा १

कइदिण-कई दिन १० २१ ६

कइयहं-कदा २ १४ १२

कइलासगिरि-कैलासपर्वत ९.६ १

कइवय-कतिपय १ १४ ४; ३ १३.१२; ७ १२ १७,

१० ८ ८

कइवल्लह-कवि + वल्लभ ५.१.४

कइवीर-कविवीर प्रथा. १९

कठ-कृत, कथम् १०.१०.११, ११.१४.१३

कडह-ककुम्भ ( वम्पा ? ) वृक्ष ५ ८.१२

कओ-कुतः १०.६ १०

कं-जलम् १०.२०.६

कंक-कङ्क, वक् पक्षी ४.१८.७

कं क-काव काव ( वन्त्या० ) ९.५.१०

ककड-(दे) रक्षा कवच ११-३-२

ककण-कङ्कण, वक् १०.२०.६

कंकर-(दे) हि० ककर, कौडी ४ २ ८

ककालघारि-कंकालधारी १०.२५-२

✓कंसिर-काङ्सय् + हर (ताच्छीत्ये) ८.११.१४

कचण-कञ्चन, सुवर्ण ४.२.११, १०.१४.६

कंचाहणि-कात्यायनी, चापुण्डा ५.८.३५, ७.६.८

कचाइणी ७.६.६

कंचायणी १०.२५ २

कचिपुर-काञ्चीपुर (नगर) ९.१९.३

कंचिवाल-काञ्चीदेशोत्पन्न ८.१२.११

कनुय-कञ्चुक, हि० चोली ४.११.८

कंज-कम् + जात, कमल	४.११.५	कक्षन्तर-कक्ष + अन्तर	८.१६.९
कंजिय-काजी	३.९.१३	कक्ष-कञि, शीशा	२.१८.५
कंठ्य-कण्टकित	१.१४.४	कच्छ-कच्छ (देश)	७.६.१६; ९.१९.९
कंठ्य-कण्टक	५.८.२४	कच्छड-('य) कछोटक, कछोट	५.७.१३; १०.१६.३
कंठिवोरी-कंठीली बेरी	५.८.६	कच्छव-कच्छप	४.६.५; ९.७.५
कंठ-कण्ठा, कण्ठाभरण	३.१४.१३	कच्छी-कक्षी, कक्षवती (स्त्री०)	५.१०.८
कंठक-कण्ठकृञ्ज कण्ठरत	१.१२.३	कच्छेरक-कच्छ (देश)	९.१९.४
कंठा-('दे) कडाह, भार, कांठी	४.११.८, ५.७.१४	कञ-कार्य, हेतु	१०.२.११; ११.८.६
कठिय-कण्ठित, परिवृत	५.९.८	कञ्जन्तर-कार्यन्तर	८.९.११
कंठ-काण्ड, बाण	८.५.७	कञ्जगइ-कार्यगति	९.१६.५
√ कंठ्यन्त-कण्ठ्य + शतृ	१०.२६.७	कञ्जस्थि-कार्यार्थी + क (सवर्थ)	६.१२.३
कंठवण-कण्ठपन, छुजलाना	८.१६.९	कञ्जलु-कार्यलुप्त	४.१७.५
कंठ-कात्ता, पत्नी	४.१२.३	कञ्जाकञ्ज-कार्य + अकार्य	५.१३.१६
कंठार-कात्ता + रत	५.९.१७	√ कंठन्त-कृत् + शतृ	४.१५.१५
कंठावसाण-(१) कात्ता + वसानाम्	४.१८.१०	कट्ट-कण्ट	२.२.८
(११) कं-जलम् + तापसानाम्	४.१८.१०	कट्टमार-कण्टमार	१०.१३.१
√ कंठ-कण्ठ्य 'इ	८.१४.१६	कट्टमय-कण्टमय	९.१.६
'हि (विधि०)	२.२.६; ८.७.५	कट्टा-काण्ट + आदि	११.१५.६
कंठ-कण्ठन	४.२१.११	कट्टियधर-काण्टधर, वण्डधर	७.७.११
कंठप-कण्ठप	१०.२०.३	कड-कटक, छावनी	६.१.१८
कंठ-कण्ठरा	११.२.५	कडत-कटक, हिं कडा	३.१४.१३
कंठ-('अप०) कलह, झगडा	४.२.१६	कडकिय-कडकडकृत, कडकडायित (ध्वन्या०)	७.८.१२
कंठाविय-कण्ठावयिता, कण्ठन करानेवाला	१०.१.१२	कडकल-कटाक्ष	१.१०.११; ८.१०.५
√ कदिर-कण्ठ + इर (ताच्छीत्ये)	९.१०.२	√ कडकल-कटाक्ष 'इ	११.१४.११
कंदोह-('दे) कण्ठोह, नीलकमल	५.९.७	कडकलण-कटाक्ष करना	११.६.६
कंध-कण्ठ	४.२२.१७	कडकिलप-कटाक्षित	२.२०.११; १०.१९.१८
कंध-कण्ठ	८.७.१६	कडकल-कटाक्ष	९.१३.५
√ कंध-कण्ठ 'इ	८.१६.१३	कडय-कटक हिं कडा	२.२०.२१
√ कंध-कण्ठ + शतृ	७.८.११, १०.१५.६	√ कडयडत-कडकडायित + शतृ (ध्वन्या०)	११.१५.६
कंधावण-कंधावन, कंधानेवाला	५.१३.९	कडयडिय-कडकडायित (ध्वन्या०)	७.५.६
कंधिय-कण्ठिता (स्त्रियाम्)	८.७.१२	कडविमहण-कृत + विमर्दन,	६.१०.४
√ कंधिर-कण्ठ + इर (ताच्छीत्ये)	२.४.१२; ९.११.५	कडह-कटभु, कटहल	५.८.१०
कंधिरंग-कण्ठ + इर + अञ्ज	१०.१७.१६	कडह-('दे) कडाह	६.१९.४
कण्ठिय-कण्ठित	२.७.६	कडाह-कटाह	६.१४.४
कंठ-कण्ठ, यष्टि, चावुक	६.४.५	कडि-कटि	९.१८.३, १०.१६.४
कंधु-कण्ठु, घाल	५.१२.१४	कडिपरिधान-कटिपरिधान	९.१२.१३
कंसार-('दे) कंसेरा, ठेरा	५.७.१७	कडिनिव-कटि + निव	५.९.११
कंसार-वाद्य विशेष	१.१६.७; ४.८.७		

कडियल-कटितल	४.१३.१५	कणिय-कणिका, बाण विशेष	७.१०.५
कडिल- (वे) कटिवस्त्र	४.१९.१२	कत्य-कुत्र	७.१.२३; १०.२६.६
कडिसुत्त-कटिसुत्र	३.१९.१३; १०.१९.७	कत्यद्-कुत्रचित्	७.१.१९; ८.३.११
कडिहार-कटिहार	३.३.१४	कत्युरिय-कस्तुरिका	८.१४.१९
कडुह-कटुक	७.६.१०; ७.६.१३	कडमिल्ल-कदम + इल्ल (स्वार्थे)	५.७.८, ८.१३.६
कडुय-कटु + क (स्वार्थे)	२.४.११	कडमेल्ल-कदम + इल्ल-युक्त	४.२१.४
कडुरदिय-कटु + रटित > कटुरुदन	४.२२.१८	कडविय-कदमित	४.२२.३
कडुवयण-कटु + वचन	६.१२.९	कप्प-कल्प; प्रमाण, तुल्य	४.९.४
✓ कडुवत-कृष् + शतृ	४.१५.१६; ५.१४.११	कप्पड-कर्पट हिं कपडा	११.७.४
कडुवण-कर्पण	७.६.२९	कप्पस-कल्प + अन्त	५.५.५
कडुवणिय-निकसनशील	५.७.२४	कप्पण-कर्तन	७.६.११
कडुवभ-कर्षित	७.६.२५	कप्पदुम-कल्पद्रुम	३.३.११
कडुवय-कृष्ट	६.१३.२; ९.१३.२५	कप्पयस-कल्पतरु	४.१६.८
✓ कडुवत-ववयु + शतृ	२.२.२	कप्पवासि-कल्पवासी (देव)	१.१६.९
कणिट्ट-कनिष्ठ	२.५.१०; २.८.१०; ९.१७.९	कप्पिय-कर्तित	६.९.७, ८.११.१
कणिय-कणी	११.१३.२	कप्पूर-कर्पूर	७.१२.२; ८.१५.७
कणियार-कर्णिकार, हिं कनेरका वृक्ष	५.८.११	कप्परायस-कर्पूर + अगस	८.१९.५
कणिर-ववणित	३.८.३; ४.१५.९	कर्ण-कवन्व, कवच	६.१४.१३
कणिस-कणिस, सत्य वा धान्यका तीक्ष्ण अन्नभाग	१.१.१५	✓ कम्म-कम, उत्क्रम, कर्मत	५.१४.२; ७.१०.२२; ११.१५.१०
कण-कर्ण, हिं कान	५.१.२५	कम-कम, वरण	४.१.५
कण-कन्या	८.९.१३	कमलदल्लि-कमलदल + अक्षि	३.३.१
कण-कर्णराज.	१०.१.९	कमका-(वत्सम) लक्ष्मी	३.३.२
कण-किनारा	५.१०.२४	कमकायर-कमल + आकर, कमलाकर	२.४.३, ५.९.४
कणड-कन्यका:	४.१४.१४	कमकालिगिय-कमला + आलिङ्गित	१.१.७
कणडउज-कान्यकुब्ज, कन्नौज (नगर)	९.१९.१३	कमलुज्जल-कमल + उज्ज्वल	३.३.२
कणत-कर्ण + अन्त, कणान्ति	५.२.१९; ९.१८.३; १०.१६.४	कर्माध-कर्मगत	२.४.८
कणचउट्ट-कन्या + चतुष्क	४.१४.१७	कम्म-कर्म	२.२०.८; ४.४.८
कणपुड-कर्णपुट	३.१.२	कम्मकर-कर्मकर, शोधक	१०.१७.७
कणरयण-कन्या + रत्न	५.९.२३	कम्मकि-कर्मत्रोत	१०.६.८
कणवडि-कर्ण + पतित	४.७.१३	कम्मकिस-कर्म + कुश	२.३.९
कणहीण-कर्णहीन	९.२.६	कम्मवसय-कर्मसाय	११.१४.८
कणा-कन्या	१०.१.९	कमट्ट-कर्म + अण्ट	१०.२४.९
कणाड-कर्णाट (देश)	६.६.११	कम्मदहण-कर्मदहन, कर्मदाहक	१०.२१.८
कणडि-कर्णटी, कर्णाटकवासिनी (स्त्री)	४.१५.९	कम्मपरिणाम-कर्मपरिणाम	११.५.२
कणारयण-कन्या रत्न	७.१३.९	कम्मफल-कर्मफल	११.४.९
कणावतंस-कर्ण + अवतंस	४.१५.९	कम्मवध-कर्मवध	१०.२०.१३
		कम्ममति-कर्मभ्रान्ति	

कम्ममल-कर्ममल	११.७.३	°प्र (कर्मणि)	९.१२.१३
कम्मरइ-कर्मरति, कर्मसक्ति	१०.५.१२	करु (आशा०)	९.३.११
कम्मवस-कर्मवश	११.३.१	करहि (विधि०)	१०.५.३
कम्मविचार-कर्मविकार	९.१३.१३	करवि ८.१२.७; ९.८.१९; १०.१४.१४	
कम्मसत्ति-कर्मशक्ति	१०.४.११	करहु (विधि०)	८.९.१५
कम्मासअ (°य)-कर्म + आसव	२.७.१२, ४.३.१४;	करिव्वउ (विधि०)	३.९.३
	९.१.१९	करंत-कृ + शतृ	४.११.२; ९.५.१०
कम्मोवहि-कर्म + उपाधि	११.१४.५	करंक-अस्थि, घड़	६-९.१०
कय-क्रय	६.३.३	करविय-करम्बित, व्याप्त	५-१२.३
कय-कृत	२.९.१५, ४.२०.११	करकट्ट-(दे) के जाने योग्य वस्तुएँ	५.६.५
°कयंत-कृतान्त	३.७.५; ५.१४.३; ७.५.१५	करकसिया-करकतिका, कैंची	७.६.१४
कयंब-समुह	९.१०.२०	करकेंटि-करकैंटा	९.१०.१४
कयंबू-कदम्ब (वृक्ष)	४.१६.४, ५.१०.१३	करड-बाद्यविशेष	५.६.७; १०.१९.२
कयग्गह-कृत + आग्रह	९.४.३	✓ करडंत-करड-करड ध्वनि करते हुए	११.१२.७
कयग्गह-कृत + ग्रह-ग्रहण	५.१०.२३	✓ करडंतय-देवैः करडंत	१०.१९.२
कयडिल्ल-कडिल्ल, कटिवरन्ध्रयुक्त	९.१८.३	करडयल-कुम्भस्थल	७.५.३
कयणाअ-कृतनाअ	९.११.१४	करडि-कराटिन, हस्ति	६.९.१०
कयणीड-कृतनीड	५.३.१२	करण-(१) करण, राजसाधन, पैतरा	
कयसिडडि-समृद्धिविटपी, समृद्धि लपी वृक्ष		(॥) करण, मैथुनविधि	९.१३.१२
प्रश्न०	१७	करणनाम-इन्द्रियग्राम	२.१.११
कयत्थ-कृतार्थ	६.१.२	करणुज्जम-करण + उज्जम	१.१५.१३
कयत्थ-कृतार्थ	४.१.३	करतक्कह-(दे) ध्वन्या०	१.१५.५
कयदोस-कृतदोष, अपराधी	११.१४.२	करफंसण-कर + फंसण	२.१०.३; ५.४.१२
कयपयज्ज-कृत + प्रतिज्ञ	५.११.१८	करमर-(तत्सम) वृक्ष विशेष	४.१६.५
कयवंध-कषवन्ध, केशवन्ध	९.१८.४	करसुइ-कर + मुद्रा—मुद्रिका	४.१३.७
कयवंध-कृतवन्ध	८.११.२५	करधणु-धनुष	७.१०.२
कयमण-कृतमणा	८.४.१	करयत्थ-करक + स्थ	१.५.११
कयरू-कृतलप	३.९.९	करयल-करतल	४.१७.२०; १०.२४.६
कयली-कदली, केला	४.१६.३	कररुह-(तत्सम) कररुह, नख	२.१५.१५
कयवमाल-कृतवमाल	१०.९.५	करवंद-वृक्ष विशेष	४.१६.२
कयावर-कृत + आदर	१०.१.५; ११.५.५	करवदि-करवंदी, हि० करौवा वृक्ष	५.८.१२
कयावि-कदा + अपि	३.६.५, ४.९.७	करवध-करपत्र, करौत	८.९.१, ११.४.४
कर-कर, हस्त	३.१४.१९; ४.२२.७; ९.८.२३	°करवाल-(१) करवाल (तत्सम) अक्षि	
कर-गुण्डा	४.२२.७	(॥) करेण वाला: केशा:	९.१३.१५
कर-किरण	५.७.५	करवावड-कर + व्यापृत, व्याकुलहस्ता (स्त्री०)	८.१५.१०
✓ कर-कृ °इ	९.१०.५	करसंगह-करसंग्रह, पाणिग्रहण	८.१२.८
करेवि	९.८.१०	करह-करम	५.६.५
°उ (विधि०)	८.७.१	करहाड-करहाटक (नगर)	९.१९.१०
करेविणु	८.१४.१४	कराल-(तत्सम) भयंकर	१०.२६.१
करेसइ-करिष्यति	१०.२५.९		

✓ करि-कृ + (विधि०)	८.११.१७	कलाव-कलाप	७.४.३
करि-हस्ति	वि-कृत्वा ७.१३.१३; १०.१४.१४	कलि-(१) कलह, कगडा (१) षत्रु	४.१.११
करि-करि + इन्द्र	६.१४.५	कलिग-कलिङ्ग (देश)	९.१९.१५
करिखंघरोह-कर + स्कन्ध + भारोह, महावत	५.१४.६	कलिगचार-(१) कलिङ्ग (राजा)	
	६.११.४	(१) आश्रयुक्त धारक	५.८.२२
करिगण-(दे) पैतरा, देखें. सं० टिप्पण	५.१४.२१	कलिय-कलित	६.२.१०; ६.८.११
करिणि-हस्तिनी	१.१४.१०	कलेवर-कलेवर, शरीर	११.५.८
करिचढ-करिषटा, गजसमुह	५.७.१	कल्ल-कल्य, हिं कल	२.१३.११; ३.८.११
करिमथर-करि + मकर	५.६.१४	कल्लाण-कल्याण	४.८.२२; १०.८.१३
करिसण-कर्षण, कृषि	१.८.५	कलाल-कलाल, मलविक्रेता	५.७.२१
करिसार-करि + सार, श्रेष्ठ हस्ति	५.१०.१	कलिक-कल्प, आगामी कल	४.१४.१९
करिसिरसुसाहक-करि + शिर + मुक्ताफल		कल्लोह-(तत्सम) कल्लोह	७.६.६
गजमुक्ता	८.१५.१३	कल्लोह-(३०) वत्सतर, वल्लहा	५.७.२३
करीर-करील (झाडी)	१०.७.३	कलढ-कपट	१०.८.४
करीरायण-करीर + रायण-रायण, सं० राजादनी		कलण-किम्	१.३.१; ५.७.१५
	४.१६.५	कलय-कवच	६.१३.९
करुण-कोमल	४.१६.५	कवरी-कवरी, कैवर्षाण	४.११.१०
कल-(तत्सम) मधुर स्वर	४.१७.१२; १०.८.९	कवल-कवल हिं प्राप्त	२.२०.५; ७.४.१०
✓ कलभ-कलय + वात	४.१७.२२; १०.१३.४	✓ कवलजिज-कवलम् (कर्मणि) इ	
✓ कलत-कलय + वात	९.१४.१		२.१४.१०; ११.२.६
✓ कलजिज-ज + इ (कर्मणि)	११.४.१०	कवलिय-कवलित	८.१४.२१
कलहुत्त-कलायुक्त + क (स्वायें)	१.११.७	कवाड-कपाट	९.१७.४
कलकोइल-कलकोकिल	३.१२.६	कवादल-कपाट + क	८.१६.२
कलत्त-कलत्र	२.१४.५, ११.५.६	कवाल-कपाल	१०.२६.१
कलमसालि-कलमशालि, काव्यविशेष	१.८.१	कवालकुट्ट-कपालकोष्ठ	७.६.८
कलयठ-कल + कण्ठ	४.१६.७	कवि-काव्यि	४.१०.९
कलयंठि-कलकण्ठी, कोकिला	४.१७.१८	कविगुण-(तत्सम) काव्यगुण	१.४.४
कलयल-कलकल (वृत्ति) १.१५ १.६ ७.१.७.८.४		कवित-कवित्व, काव्यप्रवच	५.१.३
कलयलिय-कलकलित, कोलाहल	७.५.१४	कविल-कविल, पिङ्गलवर्ण	७.४.३
कलरोल-कलकलध्वनि	९.१३.११	कवेरोतढ-कावेरीतट	९.१९.५
कलवेणु-(तत्सम) मधुरवंशी	४.८.६	कवोल-कपोल	१.९.४; ४.१३.९, ४.१७.११
कलस-कलश	१.१.२.१.१२ ४.४.७ ५	कवोलतय-कपोल + त्वचा	२.१८.१२
कलहमूल-कलह + मूल	६.१२.६	कव्व-काव्य	१.२.८, ६.१.१
कलहावणीय-(१) कलहायनी, कलहयुक्ता (स्त्री०)		कव्वय-काव्य + वंग	८.१.३
(१) कलस + आपनीय, (स्त्री०)		कव्वगुण-काव्यगुण	१०.१.१
कलमयुक्ता	५.८.३३	कव्वय-काव्य + वर्थ	१.२.११
कलहोय-कलघोष	१.१२.४	कव्वपीकस-काव्यपीयूष	३.१.१
कलाथाण-कलास्थान	३.४.६	कव्वभेन-काव्य + भेद	१.३.४

कवच-कवच, हि० कवचा	७.६.२२	कहि-कुव, हि० कही	१.६.११; ३.१४.५, ९.७.६
कवाड़-कवाड़ीपन	९.८.१६	कहिमि-कुवचित्, कही भी	१.१५.२; ९.१३.८
कवाडिअ <sup>य</sup> -कवाड़ी	९.८.२, १०.१८.२	कहिअ-कवित	३.५.११; ९.८.१४
कवामय-काव्य + अमृत	७.१.१	<sup>य</sup>	७.११.१०, ८.८.१६
✓ कस-कष, कसेऊष	९.२.३.	कहि मि-कुवचित्, कही भी	३.४.५; ८.२.१०
कस-कषा, हि० कसोटी	१.४.२; ९.१.२	कहियंतर-कथित + अन्तर	७.४.९
कसण-कृष्ण (वर्ण)	२.१४.८, ८.१५.२	कहु-कस्य	७.१.१६
कसमस-(दे) हि० कसमसाना	४.२२.११	कहो-कस्य	३.६.८; ८.१०.७
कसमीर-कसमीर (देश)	९.१९.१०	का-(तत्सम) का (स्त्री०)	२.१४.६
कसर-(दे) अघम बैल	७.३.१३	काअ-काक	८.१५.१४, ९.५.११
कसरक-कुङ्कुम, फूलकी कली	७.१.२	काहूँ-किम्	२.१८.१४, ३.१४.१७, १०.२.९
कसरहअ-कषपट्टक, कसोटी	९.१.३	काहं मि-किमपि	८.११.११; १०.५.२
कसाअ-कषाय	८.६.६	✓ काउं-क + तुमुन्, कतुम्	४.२.९
✓ कसाहयंत-कषायमानः, कसैला		काउरिस-कापुरुष	७.२.१६
कसाता हुआ	४.१५.१४	काविय-कवित	६.४.९; १०.१४.१३
कसिण-कृष्ण (काला)	१०.२५.१०	काणण-कानन	२.१३.१२
कसु-कस्य	४.२२.२५, ११.४.१०	काणिअ-काणित	९.११.३
कह-कथा	५.११.८	काम-काम (देव)	४.१६.१०
✓ कह-कथय् <sup>०</sup> ह	८.३.९; ९.३.४	काम-कामना	११.१.१३
कहहे (विधि०)	४.१.१४	✓ कामंत-कामय् + शतृ	११.५.६
कहमि	२.१३.९	कामकरि-काम + करि, मदमहस्ति	४.१९.१५
कहवि	१०.८.१४	कामकरेणु-कामहस्तिनी	४.११.५
कहिवि	१०.२५.६	कामकोळ-कामकोड़ा	१०.१३.३
कहेइ	८.१७.९	कामट्ठाण-कामस्थान	९.१३.९
कहेमि	९.४.३	कामस्थ-काम + अर्थ	५.९.१५
कहहि-(विधि०)	९.१०.१८	कामघेणु-कामवेनु	४.१८.६
कहि-कथय् (विधि०)	९.१८.९	कामपंडुर-काम + पाण्डुर	१.९.४
कहिउज-कथय् (कर्मणि) <sup>०</sup> ह	२.११.९	कामरुव-कामरूप (असम देश)	९.१९.१५
✓ कहंत-कथय् + शतृ	५.४.९	कामकय-कामलता (स्त्री)	३.१४.२१;
कहत-कथान्तर	२.३.१	(वैश्या)	९.१२.४
कहण-कथन	७.१.६	कामचेअ-काम + वेग	४.१९.१
कहयंअ-कथा + वन्ध	१.७.५	कामाउर-कामातुर	९.७.२
कह व-कथम् वा	२.१६.७; ३.११.४; १०.६.९	कामाउळ-कामातुर	२.६.९
कहव कहव-कथम् कथम् + अपि	३.७.७	कामिणी-कामिनी	१.९.३; ३.१४.२१
कहा-कथा	१.५.७; ७.१.६	कामिणीजणाउळ-कामिनीजन + आकुल	५.१.८
कहाणअ-कथानक	९.५.३, १०.६.१०	कामिणीयण-कामिनीजन	३.१२.११
कहार-काछी (जाति विशेष)	५.६.५	कामुअ-कामुक	४.२१.९
कहावसेअ-कथा + अवशेष	९.१४.५	कामुय-कामुक	३.१२.४
कहाविराम-कथा + विराम	४.४.९	कामुच्छाह-काम + उत्साह	१०.२.२



काय-(i) काय, देह	२,२०.३;	किट्ट-कृष्ट	९.९.१०
(ii) काक, कौवा	११.७.१०	किणक-किणाद्धित, चिह्नयुक्त	७.४.७
कायाकिलेस-कायवलेष	१०.२२.८	✓ किण-क्री वि	१०.११.५
कायमाण-(दे) आसन	८.१३.३	ह (विधि०)	९.१.२
कायरी-कातरा (स्त्री०)	९.१७.१	किणिय-क्रीत	१०.११.२
✓ कार-कारय	६.३.७	किचि-कीति	४.९.९, ४.१४.१६
कारवि	३.१३.१३	किचिचय-कीतिलता	१०.१.१२
कारेवि	६.३.७	कित्य-कुत्र	१०.१०.३
कारंड-कारण्ड (पक्षी विशेष)	४.१८.२	किपिण-कृपण	७.८.१४
कारण-हेतु, कारण	४.१२.१२	किम्-कयम्	४.४.३
कारिष-कारित	२.१९.५, १०.२०.४	किमि-कुमि	११.६.४
कारियं-कारापितं, लिखाया	अथ० १९; २२	किमेयमेरि-किम् + एतम् + एरि-किल	२.३.४
काक-(तत्सम) शृगुराज	२.१९.१; ६.१.१५	कियत-कृतः + क (स्वार्थ)	१.१०.१८, ९.१५.१४
काककूट-कासकूट	१०.५.६	कियत-कृतान्त	८.८.१५
काकवृष-कासवृष	३.१.८; ८.८.१४	कियतर-कियत् + अन्तर	२.१५.१२
काकमुयंग-कासमुजङ्ग	३.८.१०	किया-किया	२.१६.६
काकरत्ति-कासराशि	१०.१३.७	किर-किल	७.७.१०; ९.११.११
काकवट-कासपुण्ड, घनुष	५.१४.२१	किरण-(तत्सम)	१.९.७
काकसप-काससर्प	९.१.९; ९.१०.७	किरणाहय-किरण + आहत	१.१७.१
काकाहि-काक + अहि, कृष्णसर्प	१.१८.८	किरमुक्त-किल + विस्मृतः	९.४.१०
कावाकिय-कापालिक	७.६.१३	किराड-किरात, शील	५.७.२०; ९.१८.२
कास-कास, खासी	२.१३.९, ३.११.३, ९.९.८	किरिमाक-वृक्षविशेष	५.८.११
कासु-कस्य	६.१.१५	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
काहक-कोल, शील	५.८.२१	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
काहक-वाद्यविशेष	१.१४.९	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
काहि-कस्या	४.११.१	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किड-कृतः	२.११.१०, ४.९.१०	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
कि-किम्	२.१४.११, ५.१२.५	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किडर-किडर, सेवक	६.८.४, ७.१३.१३	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किकिणी-किङ्किणी, क्षुद्रघण्टिका	२.३.७, ५.२.१	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किपि-किम् + अपि	८.७.१	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किपुरिस-(i) किपुरुष, देव	९.१२.१०	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
(ii) किपुरुष, हीनपुरुष	३.१२.१३	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किमुय-किमुक (पुष्प)	९.१९.४	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किक्किध-किक्किन्धा नगरी	९.४.१६	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
किच्छ-कुच्छ	१३.९, २.१४.१०, ५.४.३; ९.१२.१३	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
✓ किजज-कृ (कर्मणि) ° इ	२.१२.२; ९.१०.१७	किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११
उ (विधि)		किरिनि-वाद्यविशेष	५.६.११

कीलामहिहर-क्रीड़ा + महीवर	३.२.७	कुबार-कुठार	९.१५ १४
कीलाक-रघिर	६.१०.१३	√ कुण-कृ <sup>०</sup> ह	२ २०.६, ४.४.१२
कीलालकीला-रघिरप्रवाह	१०.२६.१	कुणिवि	१० १७.१२
कीव-वलीव	४.१५.१५	कुत्तक-कु + तर्क	१०.२४ ८
कु-को, कोई	१०.७.५	कुत्थिय-कुत्सित, अवध	२ २५
कुंकुम-(तत्सम) कुङ्कुम	१.९.३	कुद्ध-कुद्ध	५.८ १४
कुच-कुचै	१०.१६.६	कुद्धमण-कुद्धमन	९.७ ८
कुचहय-कुचित	१.९.९	कुम्ह-कु + मति	५, १३.२३
कुचिय-कुचित	४.१५.११	कुमार-कुमार	३.४.८
कुंजर-कुञ्जर	१.१४.२	कुमापुसल-कु + मनुष्यत्व	११.७.७
कुंडल-(कर्ण) कुण्डल	१.१४.३	कुमारभाव-(तत्सम) कुमार अवस्था	४.१४.१३
कुंडलियंग-कुण्डलित + बङ्ग	६.१०.८	कुमारिया-कुमारिका	४.१२.७
कुंत-(तत्सम) कुन्त, भाला	१.१५.५	कुम्भ-कुम्भ	४.२०.११
कुत्तल-कुत्तल (वेश)	९.१९.३	कुम्भाचार-कुम्भ + आकार	४.१३.१७
कुत्तलमर-कुत्तल + मार, केशकलाप	४.१५.१०	कुम्भासणद-कुम्भसन + स्थ	५.१४.२१
कुत्ताडह-कुत्तापुष	७.१०.१३	कुरंगसिन्धु-कुरङ्ग + शिबु	५-१० १५
कुंद-कुन्द (पुष्प, वृक्ष)	४.११.१४, ४.२१.२	कुरवभ-(१) कुरवक (वृक्ष विशेष)	
कुंदुलक-कुन्द + सज्जवल्	८.२.१६	(११) कु + रत	४.१७ २
कुम्भ-कुम्भ, गण्डस्थल	६.३.४	कुर-कुरवेध (इतिनापुर प्रवेध)	९ १९.१३
कुम्भ-कुम्भाण्ड	५.७.१७	√ कुर-कृ (विधि०)	१०.१४ १३
कुम्भस्थल-कुम्भस्थल	७.१.१८	कुरल-गर्वत	५.१०.११, ७ १३.३
कुम्भल-कुम्भल, कुम्भस्थल	४.२०.८	कुरलमंग-कुरल + मङ्गल, केशमङ्गिमा	४.१५.८
कुम्भिलया-वटवारिणी	१.९.१	कुरविसय-कुरविषय	१०.१८.६
कुम्भि-कुम्भी, हस्ति	८ १५ ३	कुरलसिय-कुल + पुत्री, कुलवधू	४ ५ २६
कुम्ह-कु + कवि	१ ६ ५	कुलकम-कुलकम, कुलपरम्परा	५ ३.३.१५
कुम्भक-कु + कलत्र	१.७ १	√ कुलकुल-कुरकुराय, कुर-कुर ध्वनि करना	
कुम्भकुड-कुम्भकुट (पक्षी)	१० २६ ४		५ १० १६
कुम्ह-कु + गति	११ ७.७	कुलकल-(तत्सम) कुलचातुरी	७.५ १५
कुम्हपह-कुम्भपथ	२.१६ २	कुलमहकण-कुल + मलिन., कुलको मलिन	
कुटणि-कुटिनी	५ ७ २४	करनेवाला	४.३.४
कुटिणी-कुटिनी	४ १९ २०	कुलमंगल-कुल + मङ्गल	४.७ ११
कुट-कोष्ठ, हिं० कोठा	७ ६ ७	कुलमंग-कुलमार्ग	२.१७ ७
कुट्य-कुटुम्बी	४ ६.१	कुलपर-कुल + पर-परम, श्रेष्ठकुल	४ १.१२
कुट्य-कुटन वृक्ष	५ ८ ११	कुलपट्ट-कुलप्रभु	९ १०.१४
कुटि-कुटी	९ १० २	कुलवाल्या-कुलवालिका	२ ९ १४
कुटिल-कुटिल	८ १६ १०	कुलभूषण-कुलभूषण	
कुटिलमान-कुटिलभाव	११ ७ ९	कुलथर-कुलकर	११ २ ४
कुटुम्बी-कुटुम्बी, कृपक	१ ८ ७	कुलाचार-कुल + आचार	२ १९ ३
कुट्ट-कुट्ट, भित्ति	१.१६.४; ९ १४ १४	कुलिस-कुलिश, वज्र	७.४ १

कुलकल-कुलया + तल	४ २१.७	केलि-कदली, हि० केली	८ ७.१२
कुवलकच्छि-कुवलय + अक्षि	४.१२.६	केवल-केवल (ज्ञान)	४.४.२
कुवलय-(तत्सम) (१) कुवलय, नीलकमल		केवलदीवध-केवल (ज्ञान) + दीपक	४.३.१४
(११) कु + वलय, पृथ्वीमण्डल	८ ३.१६	केवलनाथ-केवलज्ञान, सम्पूर्ण ज्ञान,	१०.२१.६
कुवि-कोऽपि	६ ५.७	केवलबाह-केवल(ज्ञान)वाहक	१.१६.२
कुविध-कुपित	७.७.१०	केस-केश	१.१७.६
कुस-कुषा, अंकुष	५ ७.११	केसबंध-केसवन्ध	५ १२.१८
कुसम-कुसुम	८.१०.८	केसभर-केशभार	१०.१६.५
कुसल-कुशल	१.१८.९	केसर-(१) केशर-तिलक (वृक्ष)	४.१७.३
कुसमि-कु + स्वामी, पृथ्वीपति	७ ६.२५	(११) सिंहके कन्धेपर-के वाल	७.४.३
कुसुंभ-कुसुम्भ, रंग विशेष	६ १४ १३	केसरि-केशरी, सिंह	५.१२.१४
कुसुमकिंभ-कुसुम + अङ्कित	१ १७ २	केसकटी-केशकटी, केशकी लटें	९.१८.३
कुसुमदाम-(तत्सम) कुसुममाला	१.९ ३	केसव-केशव, नारायण	४.४.४
कुसुमाल-स्तेन, चोर	९.१५ ७	को-कः, कौन	२.१८.५
कुसुमिय-कुसुमित	१.८.५	कोइ-कः अपि-कोऽपि, हि० कोई	४.१८.१
कुभ-क्षुभ	१० १७ ७	कोइल-कोकिला	५.१०.१६
कुइय-कुजित	४ ६ ३	कोउहल-कोतुहल + अर्थ	९.१२.१३
कुइअ-कुट + क, प्रतिरूप	९.१३.४	कोउहल-कोतुहल	१.१३.८
कुइमंत-कुटमन्त्र	४ १७ १७	कोकण-कोकण (देश)	९.१९.४
कूर-कूर	५ ५ ८	कोण-कुण देश	९.१९.१४
कूरगह-कूर + ग्रह	१०.२५ १०	कोत-कुन्त	५.१४.१०, ७.१०.१३
कूरगह-कूर + ग्रह	५ ५ ३	कोतकोडि-कुन्त + कोटि, आलेकी नोक	४.२१.११
कूलावहि-कूल + अवधि	१.१०.१४	कोतगा-कुन्ताग्र (अन्त विशेष)	७.६.१
कूव-क्षुप	१० १७ ४	कोतावह-कोन्त + बाधुष	६.६.९
कूवार-सागर	१ १८ ९	✓कोकिज-व्या + हू (कर्मण) 'इ	११.५.२
के-कः, कौन	७ ३ १०	✓कोकिज-व्या + हू + इर ताच्छीत्ये	२.४.११
केउर-केयूर	१.१४.३, २.२०.११	कोट्ट-कोट, दुर्ग	५.३.१३
केणय-क्ययोग्य वस्तु	५.११.३	कोट्टहाल-(दे०) कच्चे फलका समूह	६.४ १
केणिय-क्रोत	६.३.३	कोट्टवाल-कोटपाल, हि० कोतवाल	५.११.३
केत्तिय-कियत्, हि० कितना	११-३.७	कोट्टअ-कोष्ठक, हि० कोठा	१.१८.१५
केम-कथम्	५.४.२१	कोट्टा-कोष्ठ, हि० कोठा	१.१६.४
केयार-केदार, छेत	५-९.६	कोड-(दे) कौतुक	२.१२.६
केरअ-(अप०) षष्ठि प्रत्यय	६.२.३	कोड-कोटि, हि० करोड	६.३.२
केरल-देश	९.१९.१	कोडि-कोटि, किनारा, अग्रभाग	६.७.४
केरलनयरी-केरलनगरी	५.५.१७	कोडी-कोटि, हि० करोड	३.४.९
केरलपुरि-केरलपुरी	५.३.६	कोड्ड-(दे) कौतुक	३.११.८
केरलबल-केरलसैन्य	१०.१२.१४	कोड्डावण-कौतुक उत्पन्न करनेवाला	१०.७.११
केरलि-केरलवासिनी स्त्री	४.१५.८	कोड-कुष्ठ, हि० कोड	२.५ १२
केरिस-कीदृश	४.१८.११	कोणंत-कोण + अन्त	५.१४.१६

कोणतर-कोण + अन्तर, एक कोना	२.१६.१३	खंम-स्तम्भ, हि० खंमा	१.१० १२
कोवड-कोवण्ड, घनुष	१०.१२.१	खग-खडग	६.३.४, ७ ६.१
कोलउळ-कोल + कुल, जंगली सूअरोंका		खगंक-खडग + अङ्क	१.११ १०
मुण्ड	५.८.१६	खगफल-खडगफलक	६ १४.९
कोच-ईषत्	८.१४.५	✓ खज-खा (कर्मणि) °इ	२ २ २
कोविय-कुपित	६.४.६	✓ खजत-खा + शतृ	९.१ १०, ९ ५ ६
कोस-कोष	८.१४.५	खडकिय-खटकुत (ध्वन्या०)	७ ६.५
कोसंव-कोशात्र (वृक्ष विशेष)	५.८.१३	खडखडिय-खडकृत, हि० खडखडाना (ध्वन्या०)	६ ७.३
कोह-कोष	११.८.७		
कलजोयय-सद्योतक	७.२.१३	खडतड- (ध्वन्या०)	१ १४.७
कलथकर-क्षयकर	३.७.१५	✓ खडहडत-(दे) खटकु + शतृ	६ १०.११
✓ कलव-क्ष °इय् °इ	२.७.१०	खडिया-खटिका, हि० खडिया	६.१४.१५
*कलाणय-आख्यातक	९.१९.१९	✓ खण-खन् °इ	९.८ १३
कलारिय-क्षरित °उ	२.६.१०	✓ खणत-खन् + शतृ	५ १०.७
*कलाकिय-क्षालित	१.१३.५	खण-क्षण ( मात्र )	४.१९.५, ८ १३.१०
✓ किललत-नीङ् + शतृ	६.३.९	✓ खणखणत-खनखनाय् + शतृ	६ ६ ६
कलोणारिचण-क्षीण + क्षरि + ईषन	१.११.४	खण-खनन्, खनक	९.७ ६
कलोह-क्षोभ	६.४.१	खणतर-क्षणान्तर	२.१६ १३
		खणदिह-क्षण + इष्ट	९ १२ ६
		खण्ड-क्षण + षट्	५ ५.१५
		खन्धिय-क्षत्रिय	५ ३ १५
		खद्ध-(दे) भुक्त	१.१८ ८; १०.७.२
		खद्ध-(दे) भुक्त	९.१.८
		खप्पर-कपाल, हि० ठीकरा	५ २ २२
		खम-क्षमा	३ ६.२
		✓ खम-सम्, खमंतु (विधि०)	८ १.२
		✓ खमावध-क्षमापय् °मि	८ ७.१०
		खमिय-क्षमित	८.७ १०
		खय-क्षय	७ ९ ११, ८.८ १५; १०.१९, ५
		✓ खय-क्षि °ई	१०.४ १४
		खयकरि-क्षयकारी	८ ७.१६
		खयकाल-क्षयकाल	१० २५ ११
		खयचियड-क्षत + वित्, क्षतयुक्त	६ ६.११
		खयर-ख + चर, खचर, खेचर-विद्यावर (जाति)	५ ४.१२, ५.११.१५
		खयरखंभ-खेचर + अन्तक-मारक	७ ११ १४
		खयरवल-खेचर + वल	७.१ ७
		खयरवड-खेचरपति	७ ५ १०
		खयरवि-क्षय + रवि, प्रलयपूर्व	५ १३ १४

[ख]

ख-(तरसम) आकाश	२.३.७, ५.५.८
खभ-क्षय, विनाश	९.७.१४, ११.८.५
खडभ-क्षयित	३.५.८
खडय-खचिन्	७.१०.२३
खहर-खदिर, हि० खैर	५.८.६
खं-खम्, आकाश	५.७.४
✓ खंच-कृप् °वि	५.१.५
°हि (विधि०)	५.११.२९
✓ खंड-खण्डय् °मि	२.१५.१५
खडिऊण	७.६ ३१
खंड-खण्ड	२ १७.११
खंडयंद-(१) खण्ड + चन्द्र	
(११) खण्ड + कन्द (मूल)	५ ८ ३६
खडिय-खण्डित	१ ११ ९, ७ १०.२
खंडवड-क्षान्तव्य	७ १२ १२
खति-क्षान्ति	११ ८ ७
खघ-स्कन्ध, समूह	७.४ ७ १० २४ ५
खंधंत-स्कन्ध + अन्त	१० १६ ५
खथार-स्कन्धावार	५ ८ १, ७ १३ ४



गंभीर—(तत्सम) गम्भीर	१ ६ ६	गयद—गजेन्द्र	४.२१.१३
✓गगिर—गद्गद् ईर (ताच्छील्ये)	२ १० ७	गयखेव—गतलेप, गतकाल	६ ३.५
✓गच्छ—गमय् ई	२.८.१८; १० ८ ७	गयगंड—गज + गण्ड (स्थल)	५.७ ८
ई (विधि०)	९ ४ १२	गयघड—गजघटा	८.१३.१९
गच्छि (विधि०)	१० ८ ११	गयण—गगन	१.१.१०
✓गज्ज—गर्ज् ई	५.१३ २३	गयणगई—गगनगति (विद्याधर)	५.११.९; ६.१०.१३
✓गज्जंत—गर्ज् + शतृ	५ ८.१४	गयणगमण—गगनगमन, गगनगति विद्याधर	६.१०.५
गज्जमाण—गर्ज् + शानच्	७.४.१५	गयणनाण—गगन + आङ्गन	५.४ ७
✓गज्जिर—गर्ज् + इर (ताच्छील्ये)	५ ८ ३२	गयणपक्व—गगनप्रवह—गगने प्रवहमान इत्यर्थः	
गज्जिरव—गर्जि + ख, गर्जन	४ २० १२		७.२.१२
✓गडयडह—(दे) गिडगिडाना (ज्वनि)	६.१४ ४	गयणवह—गगनपथ	७.५.४
✓गड्डिचि—(दे) गाड्कर	९.८.१७	गयपहरण—(१) गत + प्रहरण	
✓गण—गणय् ई	६ ७ १४	(२) गदा + प्रहरण	१.११.१४
✓गणंत—गणय + शतृ	६ १३ ६	गयपार—गत + पार	४.६.१३
✓गणंती—गणय् + शतृ "ी (स्त्रियाम्)	९ १३ १	गयचङ्चय—गतपत्तिका (स्त्री०)	८.१५.४
गणण—गणना	८.८.४	गयचर—गजचर	७.१०.१३
गणहर—गणवर	१.१६.५	गयसारि—गजशारि, युद्धके लिए हाथीका पर्याय	
गणिघड—गणिकाजनाः	९ १२ ७		७.११.२
गणिवार—गणिकार वृक्ष	५ ८.११	गरल—(तत्सम) हालाहल	३.७.१४
गत—गात्र	६ ७ ६	गरिट्ट—गरिष्ठ	१०.२६.६
गह—गर्हम्	५.११.५	गरिल्ल—गरिष्ठ	७.११.१; ११.१०.३
गढम्—गर्भं	४ १ ८	गरुध—गुरु + क (स्वार्थे)	३.७.४
गढमढंतर—गर्भं + आभ्यन्तर	४ ७.२	गरुड—(तत्सम) गरुड (पक्षिराज)	३.७.१५; ११.२.२
गढमंतर—गर्भं + अन्तर	१.९ ४	गरुय—गुरु + क (स्वार्थे)	१.५.१४; ६.१.५
गढमवई—गर्भवती	४.७ ८	गरुयड—गुरुक	८.११.३; ७.४.६
गडिमण—गमित	१० १६.५	गरुयमाण—गुरुक + मान	१०.६.५
गड्ढुडढ—गर्भं + उद्भूत	१ ५ ८	गरुयारड—गुरुकार + क (स्वार्थे)	१.५.९
गढभोरुय—गर्भं + उव + ञ	४.१३.१६	गरुयारंभ—गुरुक + आरम्भ-उद्योग	५.८.३०
गस—गमन	८ ५.१३	गरुव—गुरुक	४.२०.१२; ९.५.७; १०.१.४
गसण—गमन	२ ८.१०	✓गल—गल् ई	११.१७
गसणविछंद—गमन + विलम्ब	१.७ १०	✓गलंत—गल् + शतृ	५.१.२६; ५.१३.१८
गसणि—गमनी, जानेवाली	१०.८ १	गल—गल, कण्ड, हिं गला	१०.२६.३
गमतुर—गमनतुर, प्रस्थानतुर्य	४.२.४	गल—वडिष, मछली पकड़नेका काँटा	५.८.२५
गमागम—गम + आगम—गमनागमन	५ १३ २७	गलगज्जि—गल + गजित	६.५.६
गमिअ—गमित	६ १८.१०	गलत्थि—त्रेपक, फेंकनेवाला	४.२०.७
✓गम्म—गम्य् ई (आत्मने)	३ १२.१३	गलपमाण—गलप्रमाण	६.२.४
गय—गज	५.३ १४	गलिअ—गलित	१०.१८.१२
गय—गताः (स्त्री०)	४.१८.५	गलिय—गलित, सस्त	५.९.६; ८.७.५
गयउल—गजकुल	३.२.११		

गवक्ष-गवाक्ष	८.१५.९	हि (विधि०)	९.१५.६
गवक्षतर-गवाक्ष + क्षन्तर	१.९.४	√ गिण्हाविञ्ज-ग्रह् + गिच् + हु	
गवय-नीलगाय	५.८.१५	(विधि०)	९.८.९
√ गवेस-गवेपम् सेह (विधि०)	१०.९.६	गिद्ध-गृद्ध	६.७.७, ६.८.६
गव्व-गर्व	७.७.६; ७.१२.१२	गिरा-गिरा	५.१३.१३, ९.१७.१६
√ गस-ग्रस् इ	१०.१२.१०	गिरा-(तत्सम)गिरा	२.१९.७
गसिञ-प्रसित-प्रस्त	१०.१३.१३	गिरिदि-गिरि + इन्द्र	४.१०.५, ५.१०.११
गहण-गहन वन	११.८.१०	गिरिकडणि-गिरिकटनी, गिरिमेसला,	
गहण-ग्रहण, लेना	१०.१०.८		५-८.१४, ९.९.१०
गहण-प्रवेश, सामर्थ्य	५.१३.२८	गिरिहणय-गिरितनया, पार्वती	५.९.१४
गहिञ-ग्रहीत	१.१७.९	गिरितुल्ल-गिरितुल्य	९.४.१०
गहियण-ग्रहीत + ल्य	१.१.१२	गिरिदि-गिरिदिवर	९.१०.१९
गहियादर-ग्रहीत + अक्षर	४.१७.१४	गिरिग-गिरिगवी	८.७.७, ११.१.६
गहिर-गमीर, गम्भीर	५.१०.२, ८.११.२	गिरिसिञ-गिरिशृङ्ग	७.८.७
गहिरक्षर-गम्भीर + अक्षर	१.१४.२	गिरि-गिरा	२-१८.१०
गहिरक्षर-गम्भीर + स्वर	३.४.४	√ गिरि-गि, नियलना इ	७.५.१४
√ गाहञ्ज-गा (कर्मणि) इ	४.१५.१	गिरिञ-गिरित	९.१.८
√ गायन्त-गा + शतृ	५.१.१९	गिरिञ्ज-गिरिञ्ज, सुर	७.११.३, ८.४.१५
गाएञ्ज-गाना	४.१२.१३	गिरिञ्ज-गिरिञ्ज + बाधय	२.६.३
गाह-गाव, वृह	६.४.९, ७.८.१३	गुञ्ज-गुञ्ज-गुञ्ज (व्यति)	१०.१९.४
गाहगहि-गाह ग्रन्थ	९.१२.१	√ गुञ्ज-गुञ्ज + शतृ	४.२२.४; ५.६.१०
गाहण-गाहण, वृहता	८.११.६	गुञ्ज-गुञ्जा वृक्ष विशेष	५.८.१०
गाहिक्ष-गाह, हि० गाही, वृह	१०.१४.१३	गुञ्ज-गुञ्ज-गुञ्ज (स्त्री०)	५.८.१४
गाम-ग्राम	५.९.१; ८.२.२०	गुञ्ज-गुञ्जित	१.१२.५
गामर-ग्राम + लन	२.१६.१०	गुञ्ज-गुञ्ज + लन	५.१३.११
गामर-(दे) ग्रामीण	५.९.१	गुड-(दे) कपदी, मायावी	४.२१.११
गामि-(तत्सम) गामी, जानेवाला	३.५.२	√ गुड-गुड, होदा वादि लगाकर सजाना	
गामी-(तत्सम) गामी, जानेवाली	१.१८.७	गुडति (बहुव०)	५.६.४
गामीण-ग्रामीण जन	३.१.१९	गुडाई-गुड + आदि	१०.१.३
गाविड-वेनव.	१.१३.७	गुडिञ-य-गुडित, कवचयुक्त	६.११.३, ७.५.७
√ गाविञ्ज-गा (कर्मणि) इ	५.९.११	गुडि-य-गुडित, कवचयुक्त	५.१०.२३
√ गस-ग्रसय, इ	६.९.९	गुण-(तत्सम) गुण, प्रत्यञ्चा	५.१४.११
√ गाह-ग्रह, गाह-ग्रह, + क्त्वा	१०.१४.९	गुण-गुणयुक्त	४.६.११
गाह-ग्रह (कृग्रह)	९.२.७	गुण-गुणयुक्त	४.४.५
गाहा-गाया	१.११.१५	गुण-गुणयुक्त	४.२.३
√ गिञ्ज-गी (कर्मणि) इ	४.१०.२	गुण-गुणयुक्त	१.४.२
√ गिञ्ज-गी + शतृ	२.१२.१, ५.१.२३	गुण-गुणयुक्त	३.६.१
√ गिण्ज-ग्रह, इ	८.१५.१३	गुण-गुणयुक्त	१०.१८.११
इ (विधि०)	९.१.४	गुण-गुणयुक्त	५.१३.३०

गुणमंदिर—(तत्सम) गुणनिधान	३.२.१२	गोचरद्व—(स्त्री०) गोचरवती	४.२.३
गुणसीला—गुणशीला (बहु व०)	२.११.७	गोघन—(तत्सम) गो + घन	१.९.२
गुणहार—(तत्सम) हि० हारकी छद्दे	८.१६.६	गोधूम—(तत्सम) गोधूम, हि० गेहूँ	५.८.२९
गुञ्जरत्ता—गुर्जरत्ता, गुजरानवाला (सिन्ध)	९.१९.९	गोमंडल—(तत्सम) गो (पृथ्वी) + मण्डल	१.११.१३
गुञ्ज—गुह्य (स्थान)	४.१९.१६	गोमय—(तत्सम) हि० गोबर	२.९.२
गुत्त—गोत्र	८.१०.१२	गोरंगी—गौर + अङ्गी (स्त्री०)	३.३.९
गुत्त—गुह्य	८.१६.६	गोरसविचार—(१) गोरस + विचार	
गुत्तायार—गोत्राचार	८.१२.६	(१) गो-वाणी + रस + विचार १.३.३	
गुत्तितल—गुत्तिवय	१०.२०.७	गोरी—(१) गौरी, पार्वती	
√गुप्प—गोपय् °इ (आत्मने०)	१०.१०.३	(१) गौरवर्णा स्त्री	४.१८.१२
गुप्फाविय—गुल्फावित	६.१४.१२	√गोब—गोपय् °इ	१.१.८.९
गुमगुमिय—गुमगुमित (ज्वलन्ता०)	४.१.२५	गोबयण—गोबदन, गोमुख	९.१९.१२
गुह—(१) गुह्य द्रोणाचार्य		गोवाल—(१) गो + पाल; पृथ्वीपालक, राजा	
(१) गुह्य—बड़े-बड़े	५.८.३२	(१) गो + पाल, शायोका पालक;	
गुरुपय—गुरुपय, दीर्घयात्रा	१०.८.१२	गवाळा	५.९.५
गुरुपय—गुरुपय, गुरुचरण	१०.१९.१७	गोबी—गोपी, गोपिका	५.९.११
गुरुव—गुरुक	९.५.७	गोसामि—गो + स्वामी	५.७.१५
गुरुवयण—गुरुवचन	२.७.१२	गोसामिणि—गो + स्वामिनी	१.१०.३
°गुरुसरि—गुरुसरित्, महानदी	२.८.७	गोहण—(१) गो + घन, पशुघन	
गुह्यार—गुरुमार	४.७.३	(१) पृथ्वीघन	५.९.५
गुह्यखेड—ग्राम (भालवा)	१.४.१	गोहृत्तण—(३) पुरुषत्व, पौरुष	५.४.४
गुह्याडाण—गुहिका—गुटिका + स्थान	४.१३.१३	गवविज्ज—°य—शोकसूचक ध्वनि	२.५.१६; ३.९.१०
गोह—गोय, गीत	१०.८.९	[ घ ]	
√गोह—ग्रह °इ	८.१६.१३,	घट—घण्टा (वाद्य विशेष)	५.६.९
°मि	९.११.१०	घरघरियगिर—घरघरित + गिरा, खोखलीवाणी	
गेण्हेवि	२.१२.१		२.१८.१०
गेय—गेय, गीत	८.९.१०	घट्ट—घुट्ट	५.१०.१०
गेयारव—गेयरव, गीतरव	९.२.६	घट्टण—घट्टन	४.२१.११
गेत्य—गीत + क (स्वार्थ)	२.९.३	°घट्ट—घटा, समूह	५.१०.४, ६.६.५
गेवज्ज—प्रवेयक	११.१३.५	√घट्ट—घट्टय् °इ	४.१.४, ८.१०.१५
गेविज्ज—प्रवेयक	११.१२.२	घडिनि	४.१२.१५
गेह—गृह	३.११.११, १०.१७.२	√घडावळ—घटापय् °इ	८.९.६
गेहिणि—गृहिणी	२.५.४; २.१९.३	घडिज्ज °य—घटित	६.३.२, ६.१०.५
गो—(१) वेनु (१) जल	२.५.३	घण—घना, सघन	४.१६.२, ५.८.६; ७.६.२२
गोउर—गोपुर	१.९.१; १.१६.३	घणठ—घना, निविड, सान्द्र	७.१.२२
गोट्ट—गोष्ठ, हि० गोयान, ओजपुरी : वयान	८.१५.११	घणणीळ—घननील	१०.१.११
गोट्टगण—गोष्ठ + आङ्गन	१.७.९	घणणेह—घनस्नेह	१.१.५.५
गोट्टि—गोष्ठी	९.१७.११	घणयण—घन + स्तन	१.७.९
गोत्त—गोत्र	८.७.१६	घणयणतड—घनस्तनतड	८.११.११



घणपटल-घनपटल, अघपटल	९.९.८	✓घोकिर-घूर्ण + इर (वाच्छील्ये)	४.२.१७
घणुक्त्यणी-घन + उच्च + स्तनी (स्त्री० विशेष)	४.५.९	✓घोस-घोषय् °ह	४.१.४
घणोह-घन + ओह	९.९.९	घोसिभ-घोषित	७.१.४
घत्थ-ग्रस्त	२.५.१२; ३.११.२	[च]	
घम्म-घर्म, हि० घाम	८.१३.१	✓चम-त्यच्, चएसह (भवि०)	४.६.१५
घम्मण-वृषा विशेष	५.८.६	चएवि	९.१.१४
घरकज्ज-गृह + कार्य	३.९.७	✓चम-ज्यु, चएप्पिणु	३.१०.७
घरपंगणु-घर + प्राङ्गण	१.९.६	चह्म-त्यक्त	८.४.११
घरत्तिभ-गृह + संस्थित	३.९.७	चउ-चतुः	८.१.१७
घरहसि-घरघराहट (घ्नत्या०)	१.१५.४	चउक्क-चतुक्क, हि० चोक	३.१०.१०; ७.१२.३
घरिथ-घारित, विह्वल	७.४.१४	चउक्कउ-चतुक्क	३.१०.१५
✓चल्ल-क्षिप्, चल्लवि	९.६.९	चउगह-चतुर्गति	१.१३.९; १.१३.२
✓चल्लत्त-क्षिप् + शतु °f (स्त्रियाम्)	४.२२.२० १०.२०.७	चउगहचयण-चतुर्गति + वदन (मूळ)	३.७.१३
चल्लिअ-क्षिप्त्	६.१४.७, १०.१७.४	चउगुण-चतुर्गण, हि० चोगुना	९.१३.६
चवक्क-उद्दीप्त	८.१३.१५	चउत्थ-चतुर्थ	१०.२२.५
चविय-तृप्त	६.९.९	चउत्थउ-चतुर्थ, हि० चौथा	४.१२.६
चाअ-चात	६.१०.८, ७.३.५; १०.९.७	चउदह-चतुर्दश	११.१०.२
चाइअ-चातित	५.६.१०; ६.१४.५	चउदिस-चतुर्दिस	११.११.३
चाय-चात	६.१३.७	चउपास-चतुः + पार्श्व	५.३.७
✓चाय-चातय् °हि (विधि०)	९.४.१४	चउप्पह-चतुष्पथ	४.८.३
चार-(दे) चौक	७.१.१२	चउरंग-चतु + अङ्ग, चतुरङ्गः	६.२.१०
चिणावण-घृणा + श्रानयन, हि० चिनीना	१०.७.११	चउवणसंघ-चतुर्वर्ण संघ	११.१५.११
✓चित्त-(अप०) क्षिप्, चित्तूण	४.१४.६	चउवीस-चतुर्विंशति, हि० चौबीस	४.४.३
चित्तअ-ग्रहीतव्य	९.१०.१	चउव्विह-चतुर्विध	१०.२६.१०
छुगुइय-घूर्णयित, घूर्णु भवि	५.८.१९	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	३.९.१२
छुमछुम-(छन्न्या०)	१.१४.६	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	१०.१६.१
✓छुम्म-घूर्ण °ह	१.८.२	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	१०.१७.१४
✓छुम्मसाण-घूर्ण + श्रानच्	४.११.७	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	१.१५.१
छुम्माविथ-घूर्णयित	१.१४.६	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	११.६.१
छुम्मिय-घूर्णित	८.९.२	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	४.२१.५
छुम्भिय-घूर्णित	५.८.१६	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	२.६.८
छुम्भिय-घुरघुरायित (घ्नत्या०)	७.१०.१२	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	४.१६.६
✓छुल्ल-छुल्ल °ह	९.१३.१८	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	४.७.७
✓छुल्लत्त-घूर्ण + शतु	२.९.१, ११.१३.९	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	१.९.९
छुसिण-कुङ्कुम, केशर	५.८.१९, ८.१५.१४	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	१.११.९७.६ ७ २
छूण्ड-छूण्ड, उल्लू	५.८.९	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	३.११.७
छोटि-छोटी वृक्षविशेष	४.१३.१; ७.४.१३	चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	१.११.९७
✓चोळत्त-घूर्ण + शतु		चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	४.२१.२
		चउसहि-चतु षष्ठी, हि० चौसठ	८.१२.५

चंदनसाह-चन्दनशाखा	१.१०.६	✓ चडफडत-(दे) तडफडाते हुए	१०.१४.१३
चंदनह-(१) चन्द्रनखा, रावणकी वल्लभ,		चडाविष्य-आरोहित	४.१८.३; ६.१३.१;
(११) चन्दनवृक्ष	५.८.३३.		१०.१३.१
चंदफळ-चन्द्रफलक	८.८.११	चडिड-आरुढ	७.५.७
चंदमंडल-चन्द्रमंडल	१.१२.२	चडिण-आरुढ	५.५.१४
चंदमुखिय-चन्द्रमुखी	७.१२.७	चडिण्ड-आरुढ	३.६.१२
चंदवयण-चन्द्रवदन	३.३.४.	चडिय-आरुढ	१०.१२.४
चंदसरिस-चन्द्रसदुष	४.१७.१६	चडिय-आरुढ	९.८.५
चंदसूर-चन्द्रसूर्य	१.१८.१०	चत्त-त्यवत	२.१९.८; १०.२६.५.
चंदायण-चान्दायण (जठ)	४.१४.१२	✓ चप्प-आ + क्रम्, चप्पेवि	७.११.१
चंदिण-चान्दनी	८.१५.१५	चपयण-आक्रमण	७.६.१०
चंदोवय-चैंदोवा	१.१५.७	चप्पिय-आक्रान्त	९.१३.९
चप-(दे) भोजपुरी : चाँपना, चवाना	१.९.९	✓ चमक-चमत् + कृ + इ	२.१५.१७
चंपाययसि-चम्पानगरी	३.१०.११	चमकल-चमत्कार	५.१२.११
चपापुर-चम्पापुर नगर	१०.२४.११	चमकिय-चमत्कृत	९.१४.१३
चंपिभ-(दे) चंपित; देखें : 'चंप'	१.१.१	चमर-चामर, हि० चंवर	१.१२.५; ८.१३.४
चक्र-चक्र, हि० चक्रा	६.१०.४, ७.६.१६	चमराणिक-चमर + क्षणिक	३.७.७
चक्र-चक्र (१) समूह (११) सुदर्शन चक्र	५.५.९	चम्म-चर्म	११.६.२
चक्रधर-चक्रधर	३.३.१२	चम्मजडि-चर्म + यष्टि	४.२१.७
चक्रक-(दे) चक्राकार, विद्याल	१.१२.४	✓ चय-त्यज्, °मि ८५.१३, °वि ३.५.९; ६.१०.१०;	
चक्रवह-चक्रवर्ती	३.१.११	९.८.६, १०.६.३	
चक्रवह-चक्रवर्ती	३.३.१६	✓ चयंत-त्यज् + शतृ	२.७.११, ११.१४.५
चक्रवह-चक्रवर्ती	३.८.७	चयण-त्यजन, त्याग	१०.२१.८
चक्रवह-चक्रवर्ती, हि० चक्रवा ५.७.३, ८.१४.१६		चयणिज-त्यजनीय	३.८.५
चक्रो-चक्रो, चक्रवर्ती	३.४.७.	चयारि-चत्वारि	३.१३.१४; ११.११.५
चक्रेश्वर-चक्र + ईश्वर-चक्रेश्वर	३.७.१०	✓ चर-चर्, °ई ३.३.१०; चरिवि ८.३.१२; चरेपिणु	
✓ चक्र-आ + स्वाद्य, चक्रसि	२.१५.११	८.२.१०; १०.२१.७; °उ(विधि०) १०.७.३	
✓ चक्रल-आ + स्वाद्य + शतृ	९.५.१२	✓ चरंल-चर् + शतृ	९.१०.७
✓ चक्रिण-आ + स्वाद्य (कर्मणि) °इ	१.८.६	चरण-(तरसम) चारित्र	८.२.१२
चक्र-चक्र	१.१.५; ११.१३.८	चरणग-चरण + गण	१.१.१
चक्र-चक्र	४.१०.१, ८.७.६	चरणयुक्त-चरणयुगल	३.३.५
चक्रचरियबंध-चर्मरी + गन्ध	१.४.५	चरमतणु-चरमसरीरी, जम्बूस्वामी	७.१.२१
चक्रिच-चक्रित	६.२.५	चरमसरीर-चरमसरीरी, अन्तिमसरीर ४.३.८; ८.७.१	
चट-चट, शिष्य	८.३.११, १०.८.२	चरिम-चरित्र	१.१८.२२; ११.१५.१०
✓ चड-आ + रुह्, °मि ५.१४.१६, °वि ८.११.११;		✓ चरिज-चर् (कर्मणि) °इ	२.२.११
१०.१४.१०; °इ (वहुव०) ८.१०.१६;		चरिय-चरित्र	प्रश० ६
°हि (विधि०) ५.१४.१६, चडेवि		चरियकरण-चरित्रेचना	प्रश० १०
९.३.१०, ११.१४.११		चरियसय-चरित्र + शत	४.४.६
✓ चडाप-आ + रुह् + णिच् विवि	८.७.५	चरिया-चर्वा	३.६.६

चरियासग-चर्यामार्ग	२.१५.८	चालिय-चालित	१.१२.१
✓ चल्-चल ई ५.१२.१; °उ (विधि०)	५.१२.२	✓ चाव-चव् °हि	१०.५.६
✓ चलंतु-चल् + शतृ (विधि०)	१.१४.१	चाव-चाप	४.१८.३; ६.१३.१
चलण-चरण	२.१९.९; ३.५.३; ७.५.३	✓ चाह-चाह्ल ई	२.१४.२; ७.१३.८
चलणग-चरण + अग्र	१.१.३	चाहिअ-चाह्लित	६.११.१०
चलणछवि-चरण + छवि	४.१४.५	चिचइय-(दे) मण्डित	१.९.८
चलणयुगल-चरण + युगल	४.४.१३	✓ चित-चिन्तय् ई ९.५.१; ११.८.१; वइ २.१४.६;	
चलरमण-चञ्चलरमणा (स्त्री० विशेष०)	४.१९.८	७.१.२१; चि २.८.९; ९.११.१३;	
चलवक्रिय-चलवक्रित, चञ्चल	१.९.८	चिचि ९.५.१; ९.८.१०; ११.८.१	
चलसिद्ध-चञ्चल + शिखा	२.४.१२	✓ चित्त-चिन्तय् + शतृ	८.२.३
चलिअ-चलित	१.११.६; ७.१३.२; १०.१०.३	चितासल-चिन्ता + शल्य	९.१५.८
चलित-चलित	१.१४.१०; ४.१६.१	चिनिअ-चिन्तित	९.६.७
चलियअ-चलित	७.१३.२	✓ चित्तिअ-चिन्तय् (कर्मणि) °इ	५.१३.१९
✓ चव-चव् °ई	२.१८.१; ८.८.३; १०.८.१	चित्तिअव-चिन्तयितव्यम्	११.१३.१०
चवण-च्यवन	२.२.६	चिध-चिह्ल, पठाका	७.२.६
चवल-चपल	२.९.६	✓ चिकमंत-चक्रम् + शतृ	२.१५.१०
चवलय-चपल + क (स्वार्थे)	१.८.३	चिकराड-चीत्कार, चिबाहु	४.२१.११
चविअ-चवित	५.१३.१३, १०.२५.७	चिकार-चीत्कार	५.७.१४
✓ चव्वंति-चव् + शतृ °ति (स्त्रियाम्)	७.१.१६	चिकिण-चिक्कण, चिकना	७.६.२०
✓ चविअ-चवित, चवाया हुआ	५.११.५	चिमिअल-(दे) कर्मण	७.६.२०
चवेड-चपेट	४.१९.२१	चिचुय-(दे) चिपटा	२.१८.१२
चसअ-चसाक	४.१७.१५	चिण-चीर्ण	२.४.५
चहरी-(दे) मदित	५.१०.१०	✓ चिजंतु-चि + शतृ (कर्मणि)	११.१४.८
चहुइ-(दे) निमग्न होना, चपेटा जाना, फँसा हुआ		चित्त-मन	१.१८.४; २.१५.१०
°इ ७.६.२०; ८.११.१०		चित्त-चित + वत्, चित	३.१३.११
चहुइ-(दे) चिपक गया, फँस गया	९.७.१२	चित्तड-चितोड	९.१९.७
चाअ-च्याग	८.१४.९, ११.१४.९	चित्तअममण-चित + अमण	९.१४.१३
चाअ-चाप	४.१३.५; ६.१.३	चित्तअ-चित + क (स्वार्थे)	५.८.२६
चाउरंग-चतुरङ्ग	५.६.१५	चित्तअय-चित्रसिद्ध, चित्रित	४.८.८
चामीयर-चामीकर, सुवर्ण	१.१२.७	चिचुसाल-चित + उत्ताल, उतावला	५.५.१६
चाय-च्याग	१०.१.९	चिय-चिता	२.५.१४
चार-(१) आचरण (२) प्रियाल वृक्ष	५.८.३३	चिय-च + एव	७.१.६
चारणरिद्धि-वारणरुद्धि	३.५.२	चिरकअव-चिरकाव्य, प्राचीनकाव्य	९.१.३
चारणइ-चारण + आदि	३.६.४	चिरअम्म-पूर्वगम	२.५.१२
चारइद्धि-चारभटी	७.७.५	चिरअव-पूर्वगव	८.२.१४
चारइद्धिय-चारभटी	७.६.१९	चिरहिअल-वृक्षविशेष	५.८.८
चारित-चारित्र	१.३.५, ११.१.१४	चिराउस-चिर + आयुष्य	२.१७.२
चारिय-चारित,	५.३.११	चिलिअल-(दे) आर्द्र, गीला	५.७.८
चारु-(तत्सम) सुन्दर	१.१.७, १०.८.५	चिलिसावण-(दे) जुगुप्सनीय	२.५.१३
		चिअल-(दे) परित्याज्य	९.१.१०

चीण-चीन (कोचीनपत्तन) ९.१९.२  
 चीया-विता १०.२६.८  
 चीर-चीर, वस्त्र ८.१२.१२  
 चीर-चल-चीराञ्चल ७.४.१४  
 चुअ-च्युत ३.९.७; ४.७.२; ७.६.३३  
 चुअल-चुम्मल, गोवर ६.१०.३  
 ✓ चुअ-चुम् ६ ४ १७.१८, चुर्ववि ७.१३.७  
 चुयण-चुम्बन ४.१६.११; ९.१३.९  
 चुविअ-चुम्बित ४.२१.४  
 चुविपास-चुम्बित + आस्य ३.१२.२  
 चुक्क-भ्रष्ट २.९.३  
 ✓ चुक्क-(दे) भ्रष्ट ९.१०.९  
 चुक्का-भ्रष्टा (स्त्री० विद्ये०) २.१९.३  
 चुय-च्युत ३.७.३; ७.९.३  
 चुव्वल-चूडा, बाहुवल्य + लल (स्वायें) ४.११.२; ६.३.१  
 चुय-चूत, आन्न ३.१२.५  
 ✓ चुय-चूरय्, ६ ४.२१.३; ७.६.१३; ९.११.११  
 चूरिअ ५-चूरित ४.२२.५; ७.३.४  
 ✓ चूरिज्जाण-चूरय् (कर्मणि) + ज्ञानच् ९.११.११  
 चुल- (तत्सम) केश १०.१६.३  
 चेइगेइ-चैत्यगृह २.१९.५  
 चेइहर-चैत्यगृह २.१६.११; ३.२.७  
 चेउल्ल-चेउल्ल (देश) ९.१९.४  
 चेउ-चेउटा ५.७.१७  
 चेउअ-चेउ + क (स्वायें) १०.१४.१  
 चेय-च + एव १.१८.११; १०.९.६  
 ✓ चेयअ-चेतय् ६ २.२०.७; ९.११.६  
 चेक- (तत्सम) वस्त्र ८.१२.११  
 चेव-च + एव ७.४.८  
 चोइच् ५-चोदित ६.४.६; ६.१२.५; ६.१२.९  
 चोञ्ज-(दे) आश्चर्य १.३.९  
 चोड-(दे) चूडा, चोटी ९.१३.५  
 चोडदेस-चोलदेश ९.१९.१  
 चोर-(तत्सम) चोर ३.१०.८  
 ✓ चोर-चोरय् ९.१५.५  
 चोरत्तण-चौर्यत्व ९.१४.४  
 चोरिय-चौर्य हिं, चोरी ३.१४.१७  
 चोरियअ-चोरित १०.८.१०  
 ✓ चोरेइ-चोरय् + तुमुन् ९.११.१७

चवण-अर्चना ८.४.१  
 चिचय-च + एव, चैव ४.१८.७.  
 च्छ-अच्छु, अस्तु १०.१२.६  
 च्छरा-अप्सरा ९.२.९  
 च्छि-अक्षि ३.१.२

[ छ ]

छइय-छादित ५.१२.१६; ८.१४.१७  
 छइल्ल-(दे) विदग्ध, अतुर ५.८.३७  
 छंकार-जलकण १.१.२  
 ✓ छंट-(दे) छंटय्, छंटना, छंटइ ५.७.२१  
 छंट-छन्द ४.१२.१२  
 छंट-(i) क्षमिप्राय, (ii) आच्छादित ५.८.३६  
 छक्खंजवसुंघर-पट्छण्डवसुंघरा ३.३.१२  
 छक्खंजिअ-पट्छण्डित ११.११.९  
 ✓ छज्ज-छाज् ६-शोभित ४.१३.१०; १०.१८.१४  
 छट्ट-पल्ल ६.१४.१८  
 छट्टअ-पल्ल १०.२२.८  
 छट्टम-पल्ल + अल्लय, ३.९.१२.  
 छट्ट-छटा ७.१२.२  
 ✓ छट्ट-छदि, मुच्च, छट्टिवि ६.५.२; ९.७.४; छट्टिविणु ७.१०.२३  
 छट्टाविअ-छदित, शोचयित ९.७.१०  
 छट्टिय-त्यक्त (त्यक्त्वा) ९.१.१९  
 छट्टिय-छदित, मुक्त ८.१४.२०  
 छण-क्षण, सत्सव ४.१९.२; ९.८.१२  
 छणहंइ-क्षण + इन्दु, पूर्णचन्द्र १०.१.८  
 छणदिण-क्षणदिन, सत्सव विवस ९.८.१२  
 छणससि-क्षण + शशि, पूर्णचन्द्र ४.१०.३; ८.१.६  
 छणिहु-क्षण + इन्दु ६.१३.३.  
 छण-छन्न, छादित २.१२.९; ९.९.८  
 छणवइ-पट्टनवति ६.३.१४  
 छत्त-छत्र ६.७.६; ७.१.१०  
 छत्तपत्त-छत्रपट ५.७.९  
 छसायार-छत्र + आकार ११.१२.१०  
 छइव्व-पट् इव्व १०.१८.७  
 छइयिअ-छदित १.१.१४  
 छपरयार-पट् प्रकार, छ. प्रकार १०.२२.११  
 छप्पवालि-पट्टय + अलि ४.२०.१०  
 ✓ छमछम-छमच्छमाय् (अन्य०) छमेइ ४.११.३

✓ छमछमंति-छमच्छमाय् + शतृ ° (स्त्रियाम्)

७.१.१२

छम्मास-षण्मास २४.१, १०.१२.५

छम्मासावहि-षण्मासावहि ८.५३

छल-(तरसम्) छल, कौशल ६.९ ११, १० २४

छल-छल, बहाना ६.५३

छलय-छलक (जुमाहो) ४.२.१०

छलिख-छलित ११.३ १०

छवि-(तरसम्) कान्ति, घोभा १०.१८ १४

छविह-वद्विव १० २३.८

छाभ-छाया, कान्ति ५.५.११

छाह्य-छावित १.७.२

छाय-छाया, कान्ति २.१३.२

छाया-छाया ९.१४.१

छार-कार, भस्म ११.१३.९

छाहरवसलभ-१०७६ प्र० ३

✓ छिज्ज-छिद् (कर्मणि) ° इ २.२.११

✓ छिज्जंत-छिद् + शतृ ४.१७.१४; ५.७.५

छिण-छिन्न २५ १४; ६.१० ८

छिप-स्पृष्ट ९ १७ ३

छिद्-छिद्र ११.८.५

छिन्न-छिन्न ८ २.४

छिनुच्छाह-छिन्न + छाया, कान्तिहीन ८.१६.४

✓ छिच-स्पृष्ट, छिवेह ६ १३.८

छुह-(वे) मुक्त १० १७.१८

✓ छुह-छुद् ° मि ९.११ ९

छुहछुह-(हे) (ः) शीघ्र-शीघ्र, (॥) पुन-पुनः ४ २० २

छुह-सिप्त, निमग्न १०.६.७

छुह-सिप्तः ५.१३ १५, ८.१४ ६

छुरिय-छुरिका ९.१२ १

छुह-क्षुधा १ ७.७

✓ छुह-सिप्, छुहेवि(विधिं) ३ ११ ९, छुवहि-

(विधिं) ५.१३ ५; छुहेवि ९ ८ १८

छेम-छेद १० ७ १०

छेच-क्षेम ५ ९.९

छेचामाला-क्षेममाला ९.९ १०

छेध-छेद ६.३ ५

छेभ-आश्चर्य १०.४.९

छोकार-(दे) ओवकार शब्द ५.९.९

छोडिम-छोटित, त्यक्त

१० २०.३

✓ छोकिज्-तस् (कर्मणि) ° इ हि० छोलना १.१०.५

✓ छोल्ल-तस्, छोलना, ° इ ५ २ १८

छोहार-छोहार (दीप) २ १९.६

[ ज ]

जल-जय-जेयः ९ १६.४

जल-जग ७.४ ८

जह-यदि २ १८.४; ४.११ ६

जहच्छ-यथा + इच्छा, स्वेच्छाचारी १० २२.९

जहयहुं-यदा २ २.१

✓ जहल्ल-जि + हल्ल (ताच्छोले) ५.७.६

जहवर-यतिवर १० २५ ६

जहवि-यद्यपि ५.४.१; ८.११.३

जउ-जव, वेग, क्षीघ्रता ६ १०.९

जउण-यमुना ९ १९.१५

जं-यत् २.१३ ७

जंगम-जङ्गम २.१.७; ११.१३ ३

जघ-जङ्घा, हि० जाघ १०.१५.७; १०.१६ २

जंघतराल-जङ्घा + अन्तराल ४.११.१२

जंघयाम-जङ्घा + स्थाम वल ५.८ २८

✓ जंत-यम् + शतृ ३.६ १३, ३.११.१३; १०.१० २

✓ जंतभ-यम् + शतृ ११ ८.३

✓ जति-यम् + शतृ ° (स्त्रियाम्) ९ २५

✓ जंलीण-यम् + शतृ ° (स्त्री) बहुव० विदी०) १.१० १

जंतु-जन्तु, जीव ८ १४.४; १० २२ ७

✓ जंप-जल्प् ° इ ५.१३ १३

✓ जंपंत-जल्प् + शतृ ९ ४ १३

जंघाणभ-जम्पानक, पालको ११ १ ९

जंघाणय-जम्पानक, पालको ४ २० ४

जंघाणाहित्ठ-जम्पानक + अयित्ठ ३ १३.२

जंपिय-जल्पित ५.५ ६, ८.७.१२

जवीर-जम्बीर, जंबोरी नौवृका वृक्ष ४ १६.४

जंघु-जम्बू (वृक्ष), हि० जामुन ४.२१.२

जंघुअ-य-जम्बूक ९.११.८ ५ ८ १०;

जंघुल-जम्बूक, शृगाल १०.१०.८

जंघुह-येतम् (वैत का वृक्ष) ५.८ १३

जंघुसामि-जम्बूकायो ४.१०.२.११ १५.१०

जंघुहल-जम्बूक ४.८.२०

संवृद्धी-अमृद्धी	६.१.१३	जणेर-(अप०) जनक	२.१०.८
संवृद्धी-अमृद्धी	३ २ ३	जरा-यात्रा	३.१२.१२; १०.२५.३
जकस-यस	४.१.९, ४.३.७	जचकज-यात्रा + कार्य	३.१२.११
जकलामर-यक्ष + अमर, यक्षदेव		जचुच्छव-यात्रा + उत्सव	३.१३.२
जकलेसर-यक्ष + ईश्वर	१ १७.३	जत्य-यत्र	१.९.१, १.९.७
जग-जगत्	२.१४.१०	जम-यम	७.४.११
जगद्वण-(दे) कदर्थन, पीडन	१.१० ११	जमडरी-यमपुरी	१०.१४.८
√ जगर-जागृ°ह	१०.२२.१	जसणिह-यमनिशः, यमसदृश	६ १०
√ जगत्-जागृ + शतृ	३.१४.१३, १० ८.१६	जमदूय-यमदूत	११.२.१
जजजरिभ-जर्जरित	४.१९ २१, ६ ९ ६	जममहिंस-यममहिप	५ ५.१
जह-(१) जटाएँ (॥) जह, मूल	५ ८ ३६	जमल-युगल	१०.१६.२
जहमह-जहमति	१ ६.११, ६ ५ ५	जमाहृ-यम + आदिष्ट	१०.९.२
जडिभ-(हे) जटित°हल (स्वायें)	५ ७ ७; १० ८ ७	जम्म-जम्भ	९.१२ ६
जडिक-जटिल	९ ९ १२	√ जम्म-जवी°ह	११.३.७
जडिकल-जटित्, जटाधारी	५.७ ७, १० ८ ७	जम्मण-जम्पन, जम्म	११.९.१
जण-जन, लोक	९ १० १३	जम्मंतर-जम्मान्तर	२.८.२; ३.५.५
√ जण-जनयु°ह ९.७ ३; °हि (विधि०) ८.१०.१७;		जम्मादिवस-जम्मादिवस	३ ४.३
जणवि २.१७ १		जम्मावहि-जम्मावधि, आचम्म	८.१०
√ जणत-जनयु + शतृ	४.२२ १३	जम्माहिसेभ-जम्माभिपेक	११.२
जणभ-जनक	२.१८ १४	जय-मेघेश्वर	३.१.११
जणकम्मण-जनकर्मण, वशीकरण	९ १६.८	√ जय-जि°उ (विधि०) १.१.३; ३.१.४, हि०	
जणकिण्ण-जन + आकीर्ण	३.१० ११	(विधि०) ४.४.१२	
जणखेलकण-जन + क्रीडनक; लोगोका खिलोना	९ ३.९	√ जयकंसिर-जय + कांश् + हर (ताच्छीमे)	१.१०.८
जणजाणिथ-जन + जात, लोकप्रसिद्ध	८ ४.४	√ जयकार-जय + कारयु°रिधि	५.२.७
जणण-जनन, जनक प्रश० ११; ८ ९, १०.२४ १०		जयकारिभ-जयकारित	३.४.८, ७.१३.५
जणणंविणी-जननविनी	१०.१९.१३	जयघंट-(तत्सम) विजयघण्टा	५.६.९
जणणयय-जननयम	३.१.९	जयधोस-जय + स्तोम	१०.१.१३
जणणायर-जननायर, नागरिकजन	१० १९ १२	जयसह-जयभद्रा (वेष्टिपत्नी)	३.१०.१३
जणणि-जननी	४ २२.२६; °णी ८.७.१	जयसंहिर-जयमन्दिर	१.१७.६
जणदाण-जनदान	३.२.९	जयवल्कह-जयवल्कभ	४.७ ११
जणधण-जनधन, जनसकुल	५.४.७	जयसासन-जयसासन	१.१.५
जणंभोरुह-जन + अम्भोरुह	४.५.२	जयसिरि-जयश्री	१०.१.१४
जणमण-जनमन	४.१५.५	जयादेवी-वीर कविकी चौथी पत्नी	प्रश० १६
जणवय-जनपद, धौरजन	२.९.१३	जयास-जय + जाया	४.१४.२२
जणविद-जनवृद्ध	४.२२.२४	जयासय-जय + आसय	६.१३.६
जणसंकिण्ण-जनसकीर्ण	४.१४.२३	जर-जरा	३.८.१०
जणार्णद-जन + आनन्द	४ ८ ११	जर-(तत्सम) बृद्ध	९.७.९
जणिभ°य-जनित	२.१.१३, ९.९ ६	जरजुण्ण-जराजीर्ण	१०.१४.३
√ जणिज्ज-जनयु (कर्मणि)°ह	११.५.४	जरमरण-जरा + मरण	१.१.१०

जरमरणुद्धभव-जरा+मरण+उद्धभव	३.७.९	२.१५.९, ७.१२.१५; काहु (विधि०)	
जल-जल, पानी, विन्दु	४.१८.७		१०.२५.७
जलजकी-जल+अञ्जलि	१०.१.२	जाअ-जात	५.१.४
✓जलत-जल+घात	४.६.२; ५.५.३	जाइ-जाय ईल्ल (स्वार्थ)	८.१२.१०
जलकंत-जलकान्त (स्वर्गविमान)	८.२.२५	जाइमि-यानि + अयि	४.४.६
जलक्रीड-जलक्रीडा	४.१९.३	जाई जाई-यानि यानि	४.१२.१४
जलगथ-जलगत	१.६.८	जाउ-जात	६.११.३
जलण-जलन (नाम)	३.१२.१९	जाएल्ल-गल्लव्यम्	५.४.१५,
जलनिहि-जलनिधि	९.५.८	जागरल्ल-जागर + इल्ल, पहरेदार	५.७.२३
जलपयर-जलप्रकर, जलप्रचुर	३.१२.२०	✓जाण-✓ज्ञ जाणिमो	६.२.२;
जलपाण-जलपान	५.९.१०	°इ ३.४.१०; °मि ४.१४.९; ९.३.२;	
जलधुल्लुय-जल + बुद्बुद्	२.१८.११	°सि १०.१५.१, °हि (विधि०) १०.१.१५	
जलयर-जलवर	११.४.५	°वि १०.१७.३; °हुँ ८.९.१६; जाणिकण	
जलयरबक-जलवर + बल	७.५.११	९.१७.१०; जाणिवि ९.११.११; जाणिवि	
जलकोल- (तत्सम) जलकी लहुरें	६.२.४	४.११.७, ११.३.६	
जलवाहिणी-(१) जलवाहिनी नदी		✓जाणत-ज्ञ + शतु	४.१२.१३
(११) जलवाहिनी, हि० पतिहारिन	१.६.२०	जाण-यान	११.१.९
जलसेय-जलसेचन)	१०.१७.१३	जाणवच-यानपात्र	१०.११.७
जलहर-जलधर	४.२०.१२	जाणिय-जात	४.१७.२; २.११.११, १२.९
जलहि-जलधि	६.१४.२	✓जाणिकज-ज्ञ (कर्मणि) 'इ'	३.१.१०; ७.३.११
जलिय-ज्वलित	५.८.२३	जाणु-जानु, घुटना	९.७.१३
जलोथर-जलोदर	३.११.३	जाम-याम, प्रहर	४.४.१५
जलोत्किय-जल + उल्ल, आर्द्र-जलार्द्र	३.८.४	जाम-यावत्	१०.२६.११
°जलोह-जल + ओष	४.११.१	जामहि-यावत् + हि	९.५.९
जव- (तत्सम) जव, वेग	५.५.१५; ९.११.१३	जामिणि-यामिनी, राजि	३.४.१०
जसइ-जसई, वीरकविका तीसरा अनुज	प्रश्न १४	✓जाय-जनी, °इ ११.११.३, ११.८.१, °हि	
जसणाउ-यशनाम	प्रश्न २१	(विधि०) ४.१४.१४, ७.४.३; जायत-जात	
जसणिवास-यशनिवास	प्रश्न २१	८.५.१; ११.१५.८	
जसपढह-यश + पढह	१.५.३	जायण-याचना	९.१३.१४
जसमइ- (स्त्री) यशमती (छे छिपली)	३.१०.१३	जायर-जागर, जागृत	९.१६.९
जसलंपड-यशलम्पट	६.७.१०	जाया- (तत्सम) जाया, पत्नी	१०.९.४
जसु-यशः	१.११.३	जगर- (तत्सम) अभिचारी	१०.१०.५
जसुजल-यश + उज्जवल	७.१२.१६	जारिस-शार्दूष	९.१६.७
जसोहणा-यशोघना (रानी)	३.३.२	जाल-जाल, समूह	७.९.१०
जहा-यथा	१०.१.३	°जाल-ज्वाला	५.१३.१०
जहि-यत्र, हि० जहाँ	९.१०.१८	✓जाल-ज्वालय 'इ'	११.१३.९
जहिच्छा-यथा + इच्छा	९.१.१४	जालंधर-जालन्धर (नगर)	९.१९.१५
✓जा-गम, जाप्रवि १०.१७.१३, जाइ १०.१७.१८		जालामुख-ज्वालामुख, अग्निमुख बेंताल	७.६.८
जाएसमि (सवि०) १०.११.५, जामि ९.		जालिय-ज्वालित	८.१५.४
५.४, जायवि १.१५.४; जाहि (विधि०)			

जाव-यावत्	२११२	जियअ-जीवित	७.४.८
जि-एव, चव, खलु	११४५, ८६.४	✓जियतु-जीव् + शतृ	७.१.१५
जिअ-जित.	७८.१४	जिह-यथा	४.६.६, ९.३.३
जिउ-जीव	९.१.१७	जीउ-जीव	१०.२.१०; ११.७.६, ११.१४.१२
जिट्ट-ज्येष्ठ (मास)	४.३.२; ४.७९	जीउगुण-जीवगुण	११.५.१०
जिण-जिन (मगवान्)	३.३.५	✓जीव-जीव् + इ ३.१.१२; जीवेसमि (मवि०)	९.११.९; जीवेसहि ९.३.१३
✓जिण-जि, °इ ५.९.१४; जिणिवि ६.१४.१;			
जिणवट्ट ३.१०.१५			
जिणंद-जिन + इन्द्र	१.१७.८, ४.४९; ४.५.११	✓जीवंत-जीव + शतृ	७.६.३५
जिणकिरण-जिनकीर्त्तन	८८६	जीवण-जीवन	२.६.९
जिणहवण-जिनस्नपन	३.३.१७	जीवत्त-जीवत्त्व	२.१.२
जिणणाह-जिननाथ	३.१३.१३	जीवभाउ-जीवभाव, जीवस्वरूप	१०.२४.४
जिणदंसण-जिनदर्शन, जिनधर्म	२.१८.२	जीवसरण-जीवशरण	१.१.५
जिणदिट्ट-जिन + उपदिष्ट	३९.१९	जीवाह-जीवादि (द्रव्य)	२.६.७
जिणपय-जिनपद	१४६	जीवासउ-जीव + आश्रय	११.७.२
जिणपडिम-जिनप्रतिमा	५.१०.१५	जीवासा-जीव (जीवन) + आशा	२.५.१४
जिणपुंराम-जिनपुञ्ज	४.१.५	जीविअ-जीवित	८.७.७
जिणभवण-जिनभवन	५.३.८	जीविउ-जीवाहु, जिलानेवाला	७.११.९
जिणमह-जिनमती	४७२	✓जीविज्ज-जीव् (कर्मणि) °इ	११.२.७
जिणयास-जिनदास	४.२.५	जीवियमरण-जीवित (जीवन) + मरण	२.२०.४
जिणवह-जिनवती	४२२, ८, ९, १७.१६	जीविचास-जीवित + आशा	९.११.१२
जिणवह्णह-जिनमतीनाथ, कीरकवि	१.६.१	जीह-जिह्वा	५.१४.१३
जिणवदुण-जिनवन्दना	११४.११	जीह्वा-जिह्वा	८.७.७
जिणवयधर-जिनवत्तधर : (विशे०)	४३१३	जुअ-युत	१.१६.१
जिणवर-जिनवर	३७.१५	जुअऊ-युगल	१.११.१५; ८.१४.१४
जिणवरिंद-जिनवरिंद	४१.१३	✓जुअम-युष् °इ ६.४.३; °हि (विधि) ५.१२.२५	
जिणसमय-जिनसमय, जिनधर्म	५९३	✓जुअंत-युष् + शतृ °उ ७.११.१४; °ई (बहुव०)	६.९.१
जिणसेन-जिनसेन	१०.२१.३	✓जुअंतिय-युष् + शतृ	७.३.९
जिणहर-जिनगृह	८.३.२४	✓जुअत्तमाण-युष् + शानच्	७.१४.११
जिणुदिट्ट-जिन + उपदिष्ट	४५५	जुअभाव-युद्धभाव	७.४.१६
✓जिणिवह-जि + तुमुन् १०.१५.२, °वए ३.१५.१५		जुअमह-युद्धमति	६.१.७
जिणसर-जिनेस्वर	१.१.१	जुअिअय-युद्ध	६.५.५, ७.१२.१२; ८.१६.१५
जिणसुर-जिनेस्वर	४.४.३	जुण-जीर्ण	९.१०.२
जिस-विजित	२३१५; ५.१.१४	जुअ-युक्त	८.२.४, ११.१२.२
जिससिदि-जितश्री (अष्टिकरुपा)	८.१०.११	✓जुअ-युक्, जुप्पति (बहुव०)	५.६.४
जिथु-यय	२११.९, ३.११.६	जुअळ-युगल	११.१२
जिम-यथा	१०.४.२, १०.४.१५	जुअळुळ-युगल + उल्ल (स्वायें)	४.१३.१७
✓जिम-भुज, °इ	३.९.१४	जुअह-युवती	४.१९.२२
जिय-जित, विजित	८.५.६	जुअह्णण-युवतीजन	१.१६.६
जिय-जीव	२.७.४		



खुवल्ल-युगल + °उल्ल (स्वायें)

४.४.१३; १०.१५.७

जुवाण-युवान, हि० जवान

१०.१५.८

जुवार-युतवार

४.२.८

जुवण-यौवन

२.१६.७

जूअ-यूत

४.२.९

जूढ-जूट, जूडा

९.१२.२

जूयार-यूतकार

४.२.१०

✓ जूरंत-जूर + जतु ७.६.१०; जूरंतिय (स्त्रियाम्)

९.१३.३

जूवफळ-यूतफल

४.३.८

जूवार-यूतकर

८.३.१३

जूह-यूथ

८.१०.४

जूहवह-यूथपति

९.७.१

जे-ये

२.२.६

जेह-ज्येष्ठ (भ्राता)

२.११.१०

जेतह-यव

३.४.११

जेथ-यव

१.३.२; ४.१०.२, ५.४.१४; ८.३.१४

जेम-यथा

३.४.९

जेह-सदृश

१०.५.८

जेहव-(अप०) यादृश

६.१०.१४

जोम-जोग (ध्यान)

११.४.८

जोहंगण-ज्योतिर्गण, खद्योतक

८.१४.२१

जोहय-दृष्ट

४.६.२, ७.१०.२

जोहस-ज्योतिष् (देव)

१.१६.८, २.५.८

जोहसगण-ज्योतिष् + गण

१.१.७

जोहसिम-ज्योतिष्क

४.१४.२१

जोहार-जयकार

५.१.२१

जोग-योग

११.१४.९

जोगा-योग

२.१.१०, ८.९.४

✓ जोर-योजय, °वि

१.२.६

जोडणय-योजनक, जोडनेवाला

९.१६.१०

जोडिम °य-योजित

४.२.१७, २.९.१७

जोणि-योनि

२.२.३; ११.३.२

जोणहा-ज्योत्स्ना

४.१०.३

जोणहारस-ज्योत्स्नारस

८.१५.६

जोहार-योजतारः (कर्तरि)

५.१०.२०

जोय-योग (काय, वाक्, मन)

११.३.२

✓ जोय-दृष्ट °ह ९.५.९; °ह (विधि०) ८.१२.१४;

°हिं (बहुवचन) ७.८.५, जोह(विधि०) ४.१८.१

✓ जोयंत-दृष्ट + जतु

७.१३.७; १०.११.११

जोयण-योजन

७.८.५; ११.९.२

जोयणसय-योजनशत

५.४.३

जोयलीण-योगलीन

१०.२६.९

✓ जोव-दृष्ट °ह

९.१४.८

जोवण-यौवन

२.१५.३

जोवण-यौवन

२.१४.६

जोह-योद्धा

६.१०.४

जोहणय-यौवनकः, लडानेवाला

९.१६.८

जोहणार-यौवनद्वीप

९.१९.१६

[ झ ]

झंकार-झङ्कार (ध्वनि)

५.१.२२

✓ झंकार-झङ्क °ह

४.१३.८; ८.१९.११

झंकोरि-झान्दोल + °इर (ताच्छील्ये) ४.१५.१३

झंल-झलना °इर (ताच्छील्ये), परेशान होना ८.११.१४

झंझं-ध्वनि

५.६.१०

✓ झंपत-(दे) नृद + जतु

६.७.३

झंषाण-झाञ्छादन, हि० झंषना

४.१७.९

झंषिर-(दे) झम्प + इर (ताच्छील्ये) हि० कूदना

२.४.१२

झंसी-वृक्ष विशेष

५.५.७

झडा-झडप

६.६.५

झडयि-झटिति

७.८.७

✓ झणप्यंत-झा + छिद् + जतु

६.७.३

झहपसाळ-झपटनेवाला

७.२.१४

झहपिअ °य-आच्छिन्न ४.२०.१०; ८.१०.४

✓ झणझणंत-झणझणाय + जतु (ध्वन्या०) १.१४.७

झसि-झटिति ५.४.६.८.१३.२; १०.१०.९

✓ झर-झर्, झरन्ति (बहुव०) ७.१.१०

झरिह-झरणसीक ६.९.१०

झरि-(दे) झाडो ५.८.२४

✓ झलझ-जाज्जवल् °हि

४.१९.७

झलविकय-झलझलायित

७.८.११

झलज्झल-झलझलाय (ध्वन्या०), हि० झलझलाना

७.५.१२

झल्लरी-वाद्यविशेष १०.१९.३

झसिय-(दे) पर्यस्त, उल्लिख्य, गलित २.५.१८

झाण-ध्यान १०.२३.७

झाणिगि-ध्यान + लणि १.६.६

ज्ञानभुजक-ध्यानयुगल	१०.२२.७	डिम्-स्थित	१ ११ १९; १०.१४.३; ११.१२.२०
ज्ञानागम-ध्यान + आगम	१०.२१ ९	डिय-स्थित	२.१७ ४; ३.३.१५
ज्ञानाणक-ध्यान + अणक	१ १.९		
ज्ञाय-√ घ्या °इ	२ १४.५	[ ड ]	
ज्ञायमाण-व्यायमान	१ १८.१३	√ डंक-दंश् °इ	३ ८ १०; डंकेइ ८ १७ १२
ज्ञीण-क्षीण	१.१२ ४	√ डंस वञ्च् °हि	१०.५.८
झुङक-(दे) झूमका	४ ८.८	डक्क-(दे) डक्का (वाद्य विशेष)	४.२.७, ५ ६.९
√ झुण-ज्वन् °इ १०.८.९; झुणन्ति (बहुव०)		डक्कार-डक्कार (ध्वन्या०)	७ ६.१३
४ १५ ३		√ डज्झ-दह्, °इ न.१६ ५; °ए (आत्मने०) ३.९.१	
°झुणि-ज्वनि	१.५ ९; ४ १३.८; ८ ११.४	डज्झमाण-दह् + शामच्	४.१४.८; ९ १४.६
√ झुलंत-जाम्दोल् + शतृ	४ ८ ७	√ डज्झं-दह् + शतृ °सिय (स्त्रियाम्)	६ ५.१
झुलुक्किभ-दग्ध	२ १५.१६	डमडंक-डमरु ज्वनि	५ ६.९
झुलिकिक्थ-जाम्दोलित	८ १४ ४	डमडकिक्थ-ज्वनि	१०.१९.३
झुलिकिक्थग-(दे) झुलसते हुए अज्झोवाला		डमडमिय-डमडमायित ज्वनि	५.६ ९
१०.१३.११		डमर-भयङ्कर	४.२२.४
°झुलुक्की-(दे) झुलस गयी (स्त्री०)	१०.१५ ४	डमरु-डमरु वाद्य	५ ६ ९; ७ ३.१
√ झुर-झि, हिं झूरना		डर-डर, भय	३.२ १३; ९ ४.२
झुरिय-स्पृष्ट, चित्तित	७.६.३०	डराविय-भीषित, डराये हुए	६.१३ ५
झुडुभ-कन्दुक	१.६.९	√ डस-दंश °इ ४.१९.१७; डसन्ति ( बहु व० )	४.११.१२, ६ १३.५
		डसिय-वष्ट	४ २२.१०
[ ट ]		√ डह-दह्, °इ	२ १६ ५; ३.३ १६
टंक-जङ्गा	६ १०.२	√ डहंत-दह् + शतृ, बहव्	७.९ ६
टंकार-टङ्कार (ज्वनि)	५ ६.९	डहण-दहन, अग्नि	७.९.११
√ टंकारभ-टङ्कारय् °इ (बहुव०)	४.१.३८	डहाका-जबलपुर प्रदेश	९.१९.१५
टंकारिभ-टङ्कारित	७ ८ ७	डाङ्गि-डाकिनी, हिं डायन	७.१.११
टटं-ज्वनि विशेष	१०.१९.२	डाढ-दष्ट्रा	३.८ १०
टक्क-टक्क, पञ्जाब	९.१९ १०	डाक-(दे) शाखा	५ १०.१५
टणविकथ-टङ्कारित	६ १३.४	डाङ्गुसार-दाह + उत्तर, अग्निमे तपाया हुआ	८.१२.९
टिंघर-टिम्बर वृक्ष	५ ८.९	डिडिम-डिडिम वाद्य	१०.९ १
टिविक-वाद्य विशेष	१० १९.२	डिम-डिम, वालक	५ ७ १७
टेंट-(दे) टेंटा, घृतगृह	४.२.१०	डिमस्थ-डिममत्	३.२ ११
टिभ-स्थित, स्थूल, कठोर	२ १४.९, ४.७.१०; ६ १०.१२	डेविभ-डिप्त, उल्लङ्घित	७.१०.११
		डोकहर-डोला	४.१६ ११
[ ठ ]		√ डोल-दोल् °इ	८.७ ६;
ठक्कुर-ठाकुर, योद्धा	७ ६ १९	डोल्लन्त-दोल् + शतृ, डोलायमान	९ १८.६
√ ठव-स्थापय (विधि०) °हि ५ १३.२६; °वि		डोडिय-डोलित	१०.१५ ५
२ ७ ९; ठवेप्पिणु १ १० ९		डोव-डोम (एक जाति)	५ ११ ४
ठविभ-स्थापित	४ १४.२१, ९.१.९	√ डोह-दोह, डोहिकण-श्ववगाहा	४.२१.३
ठाण-स्थान	५.१० २३	√ डोहिय-दोहित, अवगाहित	५ ७ १२
√ ठा-स्था °हु (विधि०)	३.६ ९		
४२			

## [ ढ ]

ढउह-ढोह वृक्ष	५८१२	तं-तम्	६४.२
ढक-ढका, बाद्य विशेष	४५.१२; ५६१०	तंजिया-तंजिका (दिश)	९.१९१
√ढक-छादय् °ह	११.८.२	तंढविय-तत, विस्तीर्ण	५७९
ढक्सार-बाद्यविशेष	१.१४ ८	तं तं-तत् तम्	३१४१०
ढलकिय-(दे) दुलक गये	७.८.१०	तंतवाळ-तन्त्रपाल	५६.२
ढलभ-(दे) ढलित, दुलक गये	१०१४१५	तंति-तन्त्री (बाद्य)	४१५.३
√ढलकजह-(दे) ढाला जाता है	१०.१४.११	तंवा-गो	४१८१३
ढिल्ल-शियिल	९.१७३	तयाहर-ताम्र + अघर	४.१८१२
ढुक्क-ढोकित	६११.३	तविर-ताम्र	१.१२.३, ५.१८.१२
√ढुक्क-प्र + विश् °ह	१०२५१	तंबोल-ताम्रबूल	८९४
√ढुक्कत-प्र + विश् + शतृ	६.९७	तंबोलवच-ताम्रबूलवच	९.१२३
ढुक्कड-ढोकित	८.१३.१४	तक्क-तर्क	४१२११
√ढोहजमाण-ढोकय् + शानच् ५	१.२२; ९.१३.७	तक्कर-तस्कर	९.१५.२
√ढोय-ढोकय् (विधि०) °ह	१०.११ ८	तक्करकम्म-तस्करकर्म	३.१४१६
√ढोयंतु-ढोकय् + शतृ	१३.८	तक्करवित्ति-तस्करवृत्ति	३१४.२३
ढोर-(दे) पशु	८१११०	तक्करायार-तस्कर + व्याचार	१०१८९

## [ ण ]

णं-तनु	११०.१, २.३.३, ४.७४, १०२०७	तक्खण-तत् + क्षण	५१०२०; ६.१२१०
णहविय-स्नापित	५१०१६	तखिलितखितखिल-बाध ध्वनि	५६.१२
√णहा-स्ना, ण्हाएवि	९८.१५	√तञ्ज-तर्जय्, तज्जिऊण	७.३६
√णहाव-स्नपय् °ह	५१०१५	तट्ट-तस्त + क (स्वार्थे)	११०८
णहण-स्नान	४.१८ ८	√तट-तन् °ह	१६.५.२.

## [ त ]

तहअ °य-तृतीय	२२०१०, ३५८, १०.९६	तट-तट	४.१९५
तहयअ-तृतीय + क (स्वार्थे)	८२२२; १०२२२	तटतटण-तटतटण (ध्वन्या०)	११४९.५.६.७
तहयहुँ-तदा	२.२१	तटतडिअ °य-तटतडिअ	५६१३, ७८७
तहया-तदा, तृतीया	११४; प्रश्न० १६	तटति-तट इति, हि० तटसे	५७१९
तहलीक्क-त्रैलोक्य	११८, ११७७, ८११६	√तटरीह-तट् + इति + इह, तटसे	२१९१
तहै-तदा, तस्मिन् काले	४८१४	√तटफिड-(दे) तटफडाना, तटफिडवि	७५१२
तड-तत, हि० तो	७१३१८	√तटयडंत-तटतडाय् + शतृ	१११५५
तड-तव, तुम्हारा	८६.६	तडि-तडित्	७८७
तड-तप	२२० ८	तडिल्लतडि-ध्वन्या०	११४७
तडधम्म-तपधर्म	८१०१४	तडिमाळि-तडित् + माली, विद्युन्माली देव	४७२
तप्-तव, तुम्हारा	११८१०	तडिय-तत, विस्तीर्ण	९१०८
तओ-ततः	४५१६, १०९७, १०२६७	तडियतडि-ध्वन्या	१०.१९४
तं-तत्	२१२३, ४१७१३	तडिवडण-तडित् + पतन	५६७
		तण-तृण	६१३.६
		तणठ-प्रति, सम्बन्धी (सम्बन्धवाचक अव्यय)	१.१११९, २१८१४
		तणथ-तनय, पुत्र	४.७११, ९३१२
		तणयूमि-तृणसुमि	१९४

तणिया-(अप०) षष्ठि (सम्बन्धसूचक) अन्यथ	तरलच्छि-तरल + अक्षि	४ ८.४
(स्त्री०) २.१६.३	तरलदृक-(तत्सम) चञ्चलपत्र	४.१६.३
तणु-तनु, शरीर ३.१० १, ८.१२.१३.११.१२.११	तरवार-तलवार	७-६ ७
तणु-तृण ४.२.११	✓ तरिय-तृ + क्त्वा	१०.१०.२
तणुअ-तनुक-क्षीण ४ १८ ११	तरिया-हि० तैराक	१०.११.७
तणुकंति-तनुकान्ति, ३.१३ ३	✓ तरिल्ल-तृ + इल्ल (ताच्छील्ये)	५.७.१२
तणुचेष्टा-तनुचेष्टा, शारीरिक सेवा १०.२३ ३	तरु-तरुह	२.४ ८
तणुताण-तनु + त्राण, रक्षाकवच ६ ७ ४, ६.९.७	तरुणअ-तरुण + क (स्वार्थे)	९.३.८
तणुग-तनु + प्रभा, वेदकान्ति ३.१०.६.	तरुणत्तण-तरुणत्व, तारुण्य	२.१८.३
तणुमम-तनुदमव ८.६.३.	तरुणमाव-तरुणभाव, तरुणावस्था	४.९.७
तणुरुह-तनुरुह, पुत्र १०.३९.	तरुणाण-तरुण + अरुण	४.८.१
तणु-तनु ८.४.१०	तरुणि-तरुणी	३.१२.१५
तणुल्लय-तृणालु + क (स्वार्थे) २.६.९	तरुणियण-तरुणीजम	४.१९.६
तथा-तप्त १०.१३.२	तरुणी-तरुणी, युवती	३.९.९
तथ-तत्त्व २.१.५; २.६ ७	तर-तल १०.१३.२; ११.९.९	
तथास्थ-(१) तत्त्वार्थ (२) तत्रत्य १० ३.११	✓ तलप्पत-(दे) तल्लकर बाते हुए	५.१४.६
तस्थ-तत्र ३ ७ ३; ११.११.४	तलवायह-(दे) तल्लपार्थीगतिसे तैरना	४.१९.१०
तस्थस्थि-तत्र + अस्ति ३.१.१३	तलाय-उदाग	४.६.४
तद्विद्विद्विद्वद-वन्त्या० ५ ६.१२	तलार-(तत्सम) कोतवाल, नगररक्षक	९.१४.१; १०.८.११
तद्वद-तत् + द्रव्य १०.९.८	✓ तल्लिज्ज-तल् (कर्मणि) °इ	२.२.२
तद्विदस-(तत्सम) तत् + दिवस ३ ९.६	तल्लुविल्लि-(दे) तल्लुवाहट	९ १०.४
✓ तप्प-तप् °इ १.११.१९; २.६.१२	तव-तप २ ६.५	
तप्पणद्वेदथ-तर्पण देवता ४.१७ १३	तव-तव, तेरा ४.६.१४; ४.११.३	
तम-(तत्सम) अन्वकार १.९ ७; १०.२५.११	✓ तव-तप, °इ ३ ६ ७	
तमणाय-तमनाम, तमःप्रभा नरकभूमि ११.१०.८	तवंग-प्रासाद ४.१९ १६; १०.१५.५	
तमणासण-तमनाशन १०.२३.३	तवंतर-तप + अन्तर, तप प्रकार ३.१०.१०	
तमणितर-तमनिकर ४.३.१५	तवगहण-तपग्रहण ३.८.१	
तमारि-(तत्सम) तम + अरि, सूर्य ५.११.१६	तवसरण-तपस्वरण ३.५.८, ३ ९ ४, ८.१२.१८; ९.१६.१२	
तमाकि-(तत्सम) तमसमूह १० ६.४	तवण-तपन, सूर्य ८.१४.४; ९.१०.३;	
तमी-रात्रि ४ ५ २२	तवतविय-तपतपित ८.४.१०	
✓ तर-तृ, तरेइ ५.५.५; तरंति (बहु व०) ७.१ १०;	तवफल-तपफल १०.२६.६	
तरवि १०.१०.२	तवसंतकसर-तप + मन्त्र + अक्षर ३ ७ १५	
✓ तरंत-तृ + शतृ °इ (बहु व०) ६.९.८	तवसाहिअ-तप + साधित ३.१३.१५	
तरद-वाद्य १.१४ ८	तवमिस्ति-तप. श्री ३ ६.१	
तरंग-तरङ्ग २.१२.९; ४.१९.६	तवोवण-तपोवन ८.११ २	
तरणिणि-तराङ्गिनी, सरित् ८.११.१२	✓ तस-त्रासय, °इ ३.१६.१४	
तरट्ट-(दे) प्रगल्भ ९ ३ ८	तह-तथा २.६ १२, ३.१२ ३; ९.५ १२	
तरट्टि-(दे) प्रगल्भ स्त्री ४.२१ १२		
तरणि-तरणि, सूर्य ४.१९ ३		
तरक-चंचल ३.१.१७		

वहवि-तथापि	२६१२	विक्खंकुड-तीक्ष्ण + अङ्कुड-फाली	९.४.८
वहा-तथा	१.१८.१२	विक्खंकुस-तीक्ष्ण + अङ्कुष	८.८.३
तहि-तत्र	७६३७, ११.१४४	विक्खकडक्खड-तीक्ष्ण + कटाक्ष + वत्, तीक्ष्ण कटाक्ष-	
ता-तत्, हि० तो	८.६.२	वाली ३.१०.१४	
ता-तावत्	१०.५.१२		
ताभ-जात	८.५.८	विक्खक्खर-तीक्ष्ण + अक्षर	२.१३.४
ताइवाइ-तानि तानि	४.१२.१४	विक्खं-विक्खण्ड	४.४.४
ताइमि-तानि + अपि	४.४.६	विक्खं-विक्खत्र	१.१७.२
ताइय-ताजिक (देश)	९.१९.१०	विजय-त्रि + जगत्	१.१.१२
ताड-ताः	४.१४.२; ८.१०.७; ९.१२.७	विज्ज-विज्यञ्च (पशुगति)	१०.१७.१९
ताड-ताप	८.१४.८	विट्-तृषा, तृष्णा	१०.५.७
ताप-तया	२.१७.९	विट्छिन्न- (दे) छीटोसे युक्त	७.२.९
√ ताड-ताड्य् ° ह	९.८.२०	विण-तृण	३.१.८, ४.२२.१३; ९.११.१२
ताडण-ताडण	२.२.३	विणमय-तृणमय	८.१३.३
√ ताडिज्ज-ताड्य् (कर्मणि) ° ह	११.४.४	विणसम-तृणसम	३.१.८
ताडिय-ताडित	१.१४.८, ६.१४.११	विण्णि-त्रीणि हि० वीनो	१०.८.१४
ताणावलि-तान + (स्वरताल) आवलि	४.१३.३	विण्णिवीस-त्रीणि + त्रिशति, तैवीस	११.१०.९
ताम-तावत्	१.१५.१; १.१५.८, ५.२.१	विचहि-तत्र	३.८.२
तामहि-तावत् + हि, हि० तमी २.२.११; ८.१४.३		विच्य-जीयं	१.१.१
ताय-तात	३.१४.१२	विर्यकर-तीर्थकर	१.१३.१०
तार-तार, विशाल, उच्च	७.१.५; १०.१८.१३	विर्ययर-तीर्थकर	४.१.९
√ तार-तार्य् ° ह	१.१.२.१०	विर्ययर-तीर्थकरत्वं	१.१७.८
तारजसु-तार + यशः	१.४.५	विट्-विट्ण्ड	४.१८.९
तारय-तारक	९.०.८	वित्तयण-त्रि + नयन, महादेव	१.१०.८
तारिय-तारित, तारक	८.६.७	वित्तयणत्वेण-त्रिनयनतनु, महादेव	४.८.३६
तारुण-तारुण्य ° ङ (स्वार्थे)	२.१४.११	विमिर-विमिर	२.६.८
तारुणकंठ-तारुण्यकंठ	४.१९.१३	विद-स्त्री	१०.१४.१४
तारोह-तारा + ओष	१०.१८.१०	वित्तयण-त्रि + अक्ष, व्यक्ष, महादेव	७.४.१३
ताळ-ताल (वृक्ष)	४.१६.३	वित्तयण-स्त्रीत्व	९.१.१५
तालभ-हि० ताला	३.११.९	वित्तदम्भ-स्त्रीग्रन्थ	९.१.१५
ताळु-तालु	२.१८.११	वित्तमय-त्रिकमयः	९.१.१३
तात्र-तावत्	८.१४.३	वित्तस-त्रिदश, देव	२.४.१
√ ताव-ताप्य् ° हि (विधि०)	१०.२.६	वित्तिय-य-वित्तिय	२.२.३, ११.१.८
तावलि-ताप्रलिप्ति	९.१९.७, १०.२४.१४	वित्तियि-वृक्ष विशेष	४.८.७
ताविय-तापित, तप्त	४.१९.३	वित्तियि-वृक्ष हि० वित्तिया	२.१८.१५
तावियडि-ताप्ती + तटी-ताप्ती तटवासिनी स्त्री		वित्तिय-य-वित्तिय	१.१२.१७, ४.१७.१६
	४.१५.११	वित्तिय-वैलङ्गी, आग्रवासिनी स्त्री	४.१५.८
तावीयड-ताप्ती (नदी) तट	९.१९.४	वित्तिय-वैलङ्गी + यवत्	२.६.१
तिक्ख-तीक्ष्ण, हि० तीक्षा	४.१६.६	वित्तिये-वित्तियमात्र	४.२२.१६
		वित्तियभूय-वित्तियभूय	३.२.३

तिलोयग-त्रिलोक + अथ	११८.७	तूरसद-तूरशब्द	५.६.१५
तिष्ठ-तैल	२.२.२	तूल-तूल, रुई	८.१६.३
तिष्ठिय-तैलिक, हि० तेली	१०.४.१५	तूलियक-तूलि + अङ्क, गद्दा	४.५.२३
तिवग्ग-त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)	४.९.६	तेज-तेज	३.१२.१९; ४.८.१
तिवलि-त्रिवली	४.१९.१६	तेवीसोबहि-त्रयस्त्रिंशत + उदधि (आयु प्रमाण)	
तिव्व-तीव्र	५.१.१६		११.१२.६
तिव्वसअ-तीव्र ताप	६.१४.३	तेचड-(अप०) तावत्	६.१.१८
तिस-तृषा	२.२.११	तेत्थ-उत्तमात्, तत्र	५.४.६; ६.११.३
तिसट्ठि-त्रिपटि	४.४.५	तेय-तेज	१.१८.१९; ५.१२.१२
तिसायअ-तृपित	९.७.१५	तेयपूर-तेजपूर, तेजपूर्ण	१.१८.२
तिसिअ-य-तृपित	८.११.१०; ९.७.११	तेयमाल-तेजमाला	१०.१.११.
विह-सथा	१०.४.१३	तेयवारि-तेज + वारि, तेजवारि	२.३.२
विहिवार-तिथि + वार (रविबारादि)	३.४.१	तेरड-(अप०) तेरा	५.१३.२७; ६.२.३
विहुअण-त्रिभुवन	४.९.९	तेलोक-त्रैलोक्य	४.३.१४
विहुयण-त्रिभुवन	४.१४.१६	तेल-तैल	५.७.२३
विहुयणसिलअ-त्रिभुवनतिलक	२.१८.२	तेल्लिय-तैलिक, हि० तेली	५.७.१९
विहुवण-त्रिभुवन	२.४.६; ७.५.१४, ११.२.८	तेदअ-सर्व	८.१३.८
वीर-वीर, तट	१०.९.८; १०.१०.७	तो-तत्, तावत्	२.१७.१; ६.७.१२; ९.२.१२
वीरुत्तार-वीर + उत्तरण	११.८.४	तोअ-तोय	१.१.२
हुंगिम-सुङ्गिमा	१.१५.११	✓ तोड-वृट्, 'मि	४.२.१२
सुण्ड-सुण्ड	१.९.११	✓ तोडंत-वृट् + शत्रु	४.७.१३
✓ सुट्ट-वृट्, 'इ	१०.४.१३	तोडणय-त्रोटनक, तोडनेवाला	९.१६.१०
✓ सुट्टंत-वृट् + शत्रु	४.८.४; ११.१५.५	तोडिअ-त्रोटित	४.२१.५
सुट्ट-सुण्ड	९.१०.२०	तोण-तूणीर	७.८.१
सुट्टमण-सुण्ड + मन	१.१४.१२	तोमर-त्रोमर, बाल्य विशेष	७.९.१३
सुबिअ-वृटित	१०.१२.७	तोयावलीदीव-तोयावलीद्वीप	९.१९.६
सुण्हक-सूणीक	८.२.६	तोराविय-(दे) उत्तेजित	५.१०.५
सुरग-सुरङ्ग	४.२१.१४	तोरा-(दे) तुम्हारा	४.१८.१
✓ सुरंगम-सुरङ्गम	५.११.१२	✓ तोर-तोलय् 'ए (आत्मने०) ७.४.१०; 'हि	
✓ सुरंत-स्वरय् + शत्रु	९.१०.१०	(विवि०) ११.६.५	
सुरय-सुरग	४.१३.१५; १०.१९.७	तोळिय-तोलित	८.३.१०
सुरयविड-सुरगवृन्द	७.८.३	✓ तोस-तोपय्, 'इ	११.८.७
सुरिअ-सुरिअ-स्वरया स्वरया	२.१३.५	तोसळ-तोसल (देश)	९.१९.१
सुरुअ-सुरुअ, सुकी (देश)	९.१९.१०	ताडिअ-ताडित	५.५.१०
सुलिय-सुलित	७.४.९	तार-तार, विद्याल,	८.१२.९
सुल-सुल्य	४.१३.१७	तास-तास	१.१५.४
सुसार-सुपार	७.२.८	त्ति-हति	५.१४.८
सुहाणायल-सुहितावल, हिमालय	४.१०.५	°त्यवण-अस्तवन	९.९.२
सूर-सूर (वाद्य)	५.१०.१४, ६.२.८	°त्याणु-आस्यान	६.१.१६

[ थ ]

थंस-स्तम्भ	५.१२.१३	थावण-स्थापन	११.७.१
✓ थंस-स्तम्भय्, थम्वि	३.१४.१२	थावर-स्थावर (जीव)	११.१३.३
थंभण-स्तम्भनः, रोकनेवाला	१.१६.८; ११.८.८	थाविज-स्थापित	३.७.१; ७.११.१६
थक्क-स्तब्ध	६.१३.८; ७.९.११; ८.१५.१४	थाहर-स्थान, हि० ठोर	७.१०.११
✓ थक्क-बलम् थकना, श्रान्त होना	११.२.८; १० (विधि०) ११.१४.४	थिब-स्थित	३.९.१८; ८.४.११; ९.६.९; १०.८.१६
✓ थक्किज-बलम् (कर्मणि) °ए	५.९.११	✓ थिपिर-वि + गल् + इर (वाञ्छोल्हे)	९.१०.२
थगदुग-बाध	५.९.११	थिय-स्थिता (स्त्री०)	१०.१०.७
थगधुगि-(बन्ध्या०)	१.१४.६	थिय-स्थित °उ (स्वायिक)	२.८.५; ७.४.१७
थङ्क-समूह	४.८.४; १०.१६.१२	थिया-स्थिता (स्त्री०)	९.६.६
थङ्क-युय, समूह	५.१.११	थिर-स्थिर	४.९.९; ५.२.७
थङ्क-स्तब्ध	५.८.३४; ५.१०.१०	थिरसमण-स्थिर + गमन °उ (वत्)	१.६.६
थण-स्तन	४.१९.११; ५.९.१०	थिरदिट्ठि-स्थिरदृष्टि	५.१२.१३
थणपढमार-स्तनप्राग्मार	४.१९.२१	थिरिंरि-बाध	५.६.१३
थणमंडळ-स्तनमण्डळ	२.१४.८; २.१५.१५	थिरिंरिठट्टकट-(बन्ध्या०)	५.६.१३
थणयङ्क-स्तनतट, वृषक	९.१३.९	थुह-स्तुति	४.११.७
थणवट्ट-स्तनवृत्त	४.१५.११; ४.१९.१५	थुमिथण-(बन्ध्या०)	१.१४.६
थणसिद्धर-स्तनशिलर	४.१९.६	✓ थुचवंत-स्तु + शतु	१०.१९.१६
थणहर-स्तनधर, वक्षस्थल	८.१६.६	✓ थुण-स्तु थुमिथि	१०.१८.६
थणहारड-स्तनधरा, स्तनधारिणी (स्त्री० विधि०)	१.६.८	थुसुक्कारिभ-चिक्चिक्कृत	८.७.१३
थन्ति-स्थिति, स्थान	१०.२५.७	✓ थुवंत-✓ स्तु + णिच् + थ	१०.१९.१५
✓ थरहरंतु-परहराय् + शतु	६.५.८	थेर-स्थविर	१०.८.१
थरहस्थि-कम्पित	१.१.१०	थेरि-स्थविरा (स्त्री०)	९.९.८
थळकमळिणि-स्थलकमळिणी	१.७.४	थोब-स्तोक	१०.८.३
थळीमडळ-स्थलीमण्डळ, राजस्थान	९.१९.७	थोत्त-स्तोत्र	१.१८.१४
✓ थव-स्थापय् °इ	२.७.१	थोर-(दे) स्थूल, गोल	८.११.६
थवई-स्थपति, निर्माता	५.२.१४	थोरियगरिद्ध-(दे) थोलाईसे थोटा केबा थपेटा हुआ	
थविषड-स्थापित, रखा हुआ	११.६.४	थिरोवस्त्र ५.७.१२	
थाण-स्थान, आसन	५.१.३; ७.१०.३	थोव-स्तोक	५.१०.७
थाणंतर-स्थान + अन्तर	१०.१७.१	थोव-स्तोक + °उ (स्वायिक)	१.५.११
थाणयर-स्थानकर; पहरेदार	३.१४.१२	थोवंतर-स्तोक + अन्तर	१.१५.८
थाणु-स्थान	२.५.१३	थोह-(दे) बल, पराक्रम	९.९.५
थाम-स्थाम, वल	३.१.११; ३.१०.८		
थाम-स्थान	११.१०.८		
✓ थाव-स्थापय् °इ ११.१०.१, °उ (विधि०) ८.२.८;			
थावन्ति (बहु व०) ४.१९.११			
✓ थावंत-स्थापय् + शतु	११.१५.१		

[ ड ]

दहल-द्वैव	२.१५.२
दहल-द्वैव, द्वैत्य	९.१९.१८
दहल-द्वैत्य	५.१४.८; १०.९.३
दहल-द्विवा, पति, प्रेमी	३.११.१४; ४.१७.७
दहल-द्विवा-द्विगम्वरी + क (स्वायि)	२.१७.५
	८.५.१४

दृष्ट्यायत्त-दैव + आयत्त, दैवाधीन	७.१२.१४	दृष-दर्पण	१०.२० ३, १०.२२.५
दृष्ट-दैव	४.१२.१६	दृष्य-दर्पण	१०.३.५; १०.४.८
दृष्टसंज्ञा-दैवसंयोग	१०.१४.१२	दृष्यकरा-दर्पणकरा, दर्पणहस्ता (स्त्री० विशेष०)	
दृष्टवारि-दोवारिक	१.१२.९		१.१० ४
दृष्ट-दण्ड (नीति)	४.२१ ८; ५.३.५	दृष्यते-दर्पणतेज	१०.४.९
दृष्टकर-दण्डकर, दण्डकारी,	२.७.५	दृष्यहरण-दर्पणहरण	६.४.८
दृष्टकरविभ-दण्डगवित	५.१३.९	दृष्य-दर्पित	५.३.३
दृष्टगविभ-दण्ड + गमित-शक्तिगमित, भानगमित	५.१३.१३	दृष्यिष्ट-दर्पिष्ठ	५.१४.९
		दृष्यिणि-दर्पिणी, दर्पित करनेवाली	४.३ १४
दृष्टधार-दण्डधारक	१.१५.६	दृष्य-दर्पित	१.१२.१; ५.१३.७
दृष्टिवाचक-दण्डिका चतुष्क	५.१.१२	दृष्टुमह-दर्प + उदयत	५.१२.२५
दृष्ट-दत्त	५.२.१८	√ दृष्ट-दृश्य-दृश्य °हि	१०.१०.१५
दृष्ट्या-दन्त + अग्र	६.७.६	दृष्ट-दृष्ट, इन्द्रियनिग्रह	३.६.२
दृष्टपति-दन्तपङ्क्ति	१.१०.५	दृष्ट-दृष्टनः, दृष्टन करनेवाला	४.१५.७
दृष्टवण-दन्तवण, दातृ	९.११.३	दृष्टदृष्टि-दृष्टदृष्टि (स्त्रिया०)	७.५ ५
दृष्टि-दन्ती, हस्ति	६.७.६	√ दृष्ट-दृष्ट °ह	५.१३.२२
दृष्टि-दन्तमय	४.११.२	दृष्ट-दया	९.१०.१७; ११.१३.१०
दृष्टुर-दन्तुर	४.१४.२; ९.१८.५	दृष्टवत-दयावन्त	३.४.१२
दृष्ट-दर्शन	२.८.२, ४.१०.८	दृष्टावण-(वे) दृष्टोपादक, दीन	१.९.११
दृष्टावण-दर्शनावरण (कर्म)	१०.२४.३	दृष्ट-दृष्ट, ईपत्	४.१३.१७, ४.५.१२
दृष्टि-दर्शित	२.१०.१०; ६.१२.७	दृष्टावण-दर्शित	७.१२.१
दृष्ट-द्राक्षा, अंगूरका वृक्ष,	१.१०.११, ४.१६.३	दृष्टावण-दर्शित	८.२.१६, ८.११.७
दृष्टवण-दर्शान्वित, दिखलाना	५.१४.५	दृष्टावण-दर्शित	११.६.६
दृष्टावण-दर्शित	४.२.१०	दृष्टि-गिरिकन्दरा	२.८ ७, ४.२०.१२
दृष्टारण-द्राक्षारण	१.७.४	दृष्टि-गिरिकन्दरा	६.१.१, ९.८.२
√ दृष्टारण-दर्शय + दातृ	१०.१४.१२	√ दृष्टि-दर्शय दृष्टिवाचक ४.११.५, दृष्टिवाचक	
दृष्टावण-दृष्टि (विद्या)	९.१९.१		९.११.६
दृष्ट-दृष्ट	१०.१०.८	दृष्टि-दर्शी, दिखलानेवाली, दर्शनीय	१.५.१
दृष्टि-दृष्टा (स्त्री० विशेष०)	४.१८.५	दृष्टि-दर्शित	३.१२.१२
दृष्ट-दृष्ट	६.६.१०	दृष्ट-दृष्ट + उष्ण, ईपदृष्ट	८.४.२
दृष्टावण-दृष्ट + अघर	५.१३.११	दृष्टवृष्ट-दृष्टमर्दन	१.८.९
दृष्टोष्ठ-दृष्ट + ओष्ठ	५.१४.१२	दृष्टि-दर्शित	६.८.१, ७.४ १; ९.६.२
दृष्ट-दृष्ट	४.१.१	√ दृष्टि-दृष्ट (कर्मण) °ह	१.१२.६
दृष्टि-दृष्टदृष्टि (स्त्रिया०)	५.१४.१६	दृष्टि-दर्शित, दृष्टकृत्, दृष्टकृता, दृष्टिना	७.८.११
दृष्टि-दर्शित	५.६.७	दृष्ट-दृष्टनः, दृष्टन करनेवाला	१०.२६.११
दृष्ट-दृष्ट	४.१८ ९, ११.६.४	दृष्ट-दृष्टन	५.१२.१६; ६.१०.५
दृष्ट-दृष्ट	५.१४.२१	दृष्टि-दृष्टि, दृष्टि	१०.१०.९
दृष्ट-दृष्ट	२.६.१	दृष्टि-दृष्टि	९.१९.२
दृष्ट-दृष्ट	९.१४.९	दृष्टि-दृष्टि	९.१५.६, १०.२.३
दृष्ट-दृष्ट	७.९.१०; ८.१३.६	दृष्ट-दृष्ट	१०.२.१०; १०.१०.१



दम्बस्वरूप-द्रव्यस्वरूप	९.१.१७	दासत्तण-दासत्व	५.१.११
दम्बावेक्षण-द्रव्य + अपेक्षा	१०.२२.१२	दासि-दासी	४ १९.२०; ८.१२.१२
दस-दश	२.३.९	दाहिण-दक्षिण, दाहिवा	७.१०.१७, ९.१२.३
दसण-दशन	९.१३ १०	दाहिणपह-दक्षिणापय	५.२.१२
दसदिस-दशदिक्	१०.२५.१०	दिण-द्विज	२.११.१; २.१३.१
दसदिसि-दशदिशि	४ ७.१२	✓ दित्तु-दा + घत्तु	३.११.६; वेत्तु ३.११.१४;
दसपयार-दशप्रकार	११.१२.८	४.१७.११; दिती (स्त्रियाम्) ८.११.९	
दसम-दशम	१.१६.९, ४.८.१	✓ दिक्ख-दीक्ष्, दिक्खंकाहि (विधि०)	२.१९.१०
दसम्मि-दशमो तिथि,	प्रश्न० ४	दिक्खकिञ्ज-दीक्षाङ्कित	२.७.१०, ३.५.१३
दसलक्खण-दशलक्षण	११.१४.१२	दिक्खा-दीक्षा	२.१४.२, १०.२०.१
दससायर-दशसागर	३.१०.२	दिक्खिञ्ज-दीक्षित	२.४.१०
दह-द्रह	९.९.११	✓ दिग्ग-दा (कर्मणि) °ह	४.२.१४; १०.१०.४;
दह-दश	११.१०.६	११.८ ६. °च (विधि०)	२.८.११; ८.५.१४;
दहम-दशम, दसवाँ,	१.१६.९	°हि (विधि०) ३.१३.५	
दहमुह-दशमुख, रावण	३.१२.१	दिट्ठ-दृष्ट	२.३.८, ४ १३.१४, १०.९.७
दहलक्खण-दशलक्षण (वर्म)	११.१३.७	दिट्ठअ-दृष्ट	९.१.६
दहविह-दशविध (वर्म)	११.२.१०	दिट्ठु-दृष्टम्	५.५.१५
दहि-दधि, वही	७.१२.५; ८.१५.११	दिट्ठफल-दृष्टफल	१० २१.९
✓ दाव-दा,	°ह ५.७.३; दाळण ६.७.९	दिट्ठि-दृष्टि	२.८.४; ८.११.१६
✓ दित्त-दा + घत्तु	४.१९.७	दिट्ठिबह-दृष्टिपथ	१०.१५.११
दाहज-दायाद, दहेज	८.१२.८	✓ दिव-दुव्य् °वि	१०.२५.९
दाहालि-दंष्ट्रा + आबलि	९.७.५	दिव-दुव	७.४.६, ११.८.२
दाडिय-दाढी	१०.१६.६	दिवसित्त-दुवसित्त	९.२.१
दाडियल- (दे) दाढीयुक्त	५.८.२७	दिवधम्म-दुवधर्म (मन्त्रियुक्त)	३.७.८, ३.९.१०
दाडुक्खय-दंष्ट्रा + वस्त्रात	५.८.१६	दिवप्पहारि-दुवप्रहारी (भील)	१०.१२.१
दान-दान	२.१२.४, ४ ७.८	दिवमह-दुवमति	२.७ १२
दाण्डु-दाव + अम्बु	४.२२.५	दिववग्ग-दुववल्गन, खूब कूबनेवाले	७.८.३
दाणपवत्ति-दानप्रवृत्ति	१०.२.३	दिण-दिन	३ ९.१२
दाणबलण-दानव्यसन	१०.२.३	दिणमणि-दिनमणि, सूर्य	५.१०.४, ७.२ १२
दामिअ-दामित, दमित	५.७.१५	दिणयर-दिनकर	२.११.६
दार-द्वार	९.१७.३, १०.१३.५; १० १७.८	दिणसंक्र-दिनसङ्क्रा	१.१.७
दारकवाड-द्वारकपाट	९.१५.१०	दिण्ण-दत्त	५.७.१३, ६.१०.७
दारिय-दारित, विदारित	६.८.८, ८ १०.३	दिण्णअ-दत्त	६.८ ७
दारवण-(१) दारण, ताण्डवनृत्य (१) दारु (वृक्ष)वन	५.८.३६	दिण्णदिहि-दत्तघृति, दुःसाहसी	८.९.६
		दिण्णय-दत्त	२ १९ ४
		दित्त-दीप्त	४.८.१
दालिमाळि-दाहिम + माला	४.२१.२	दित्ति-दीप्ति	२.१४.१०, ४.८.२
✓ दाव-दर्शय् °ह १.१०.३; °ए (आत्मने०) १.९.५		✓ दिप्पिर-दिप् + हर (ताच्छील्ये)	२.९ ३
✓ दावत्त-दर्शय् + घत्तु	४.१७.२२	दिम्मुह-दिङ्मुह	८ १४.१९
✓ दाव-दापय् °ह	८.१७.८	दिअ-द्विज	२.१७.४
दाविय-दक्षित	८.६.९		

दिय- (हे) दिवस	३.१०.७	दीहणयणि-दीर्घनयना (स्त्री० विभे०)	४.१७.१६
दियंत-दिग् + अन्त	२.३.२	दीहत्त-दीर्घत्व	३.२.१
दियंवर-दिगम्बर	२.१३.४	दीहर-दीर्घ	१.६७;१.२.२
दियण्दण-द्विजनन्दन	३.५.६	दीहरखर-दीर्घस्वर	१४.१५
दियतणय-द्विजतनय	२.१७.३	दीहिदीहिआ-दीर्घदीर्घिका	४.२१.४
दियवर-द्विजवर	२.४.८, २.८.१३	दुदुहि-दुन्दुभि	१.१७.३, ५.१०.१४
दियह-दिवस	४.१४.३	दुधर-दुधकर	२.१४.१.१.२.८
दिव-दिवस	२.४.१०	दुध्वि-दुध्वित	४.६.८
दिवि-दिवि-सी-सी	२.१४.६	दुध्व-दुध्व	२.२.१०;६.१२.५
दिवसपहर-दिवसप्रहर	३.१२.४	दुध्वम-दुध्वित	३.१३.१०;८.१.१६
दिवसयर-दिवसकर, सूर्य	१०.१८.७	दुध्वितया-दुध्विता. (बहुव० स्त्री० विभे०)	३.११.१२
दिवायर-दिवार	५.५.१, ८.१४.१२	दुग्ग-दुग्ग	४.१४.७
दिव्य-दिव्य	१.१७.४	दुग्गंघ-दुग्गंघ	१०.१७.१०
दिव्यच्छर-दिव्य + अप्सरा	२.२०.११	दुग्गमिच्छ-दुग्गम + हल (स्वायं)	५.७.८, १.११.९
दिव्यछणि-दिव्यछनि	८.४.९	दुज्जण-दुर्जन	६.५.११
दिव्यवत्थ-दिव्यवत्थ	५.१२.१५	दुज्जोहण-दुर्जोघन	५.१३.७
दिव्याउह-दिव्य आयुध	७.९.७	दुह-दुह	५.१४.९, १०.१२.६
✓ विस-दृष्ट् + वि	१०.५.८	दुहमाउ-दुहमाव	३.११.१२
विसठ-विश	२.१५.१२	दुणय-दुर्नय, दुर्नाति	५.१४.५
विसकरेणु-विशागज	४.२०.९	दुणिरिक्ख-दुर्निरोध	५.१२.१२
विसमाण-दृश्यमान-	३.१.१५	दुत्तर-दुस्तर	३.८.९;४.४.१३;१०.९९
विसाविजभ-विशाविजय	५.१४.२	दुत्थ-दुत्थ (विभे०)	१.१.६, १.९.११
विसि-विशा	६.१४.११	दुहस-दुर्दस	९.४.८;११.१४.७
दिहि-वृत्ति	१.५.४;२.८.१	दुह-दुह	४१८.६
दीव-दीप	८.१४.११	दुहदर-दुहदर	४.२०.१२;६.१०.१
दीव-दीपक	११.७.५	दुहय-दुर्नय, दुर्नाति	५.१३.२
दीण-दीनता	१०.१५.९	दुधिच्छ-दुधिक्ष	१०.२६.३
दीव-दीप	११.११.२	दुध्वल-दुध्वल	८.११.१०
दीवभ-दीपक	८.१५.५	दुम-दुम	५.१०.१३, ५.१४.५
दीवणि-वत् + दीपनः (स्त्री० विभे०)	८.११.४	दुम्मण-दुर्मन, दुःखी	६.१.१
दीवसमुद-दीप + समुद्र	११.११.१	दुम्मसिण-दुर्मयण (ब्राह्मण)	२.११.१
दीविय-उदीपक	८.१६.११	दुग्गंघ-दुर्लभ	४.५.१०
दीविया-उदीपिका (स्त्री० विभे०)	९.१२.८	दुलह-दुर्लभ	१०.१०.१६
दीविय-दीप, ज्वालित (स्त्रियाम्)	८.१५.१३	दुल्ललि-दुर्ललित, दुर्लदय	९.३.४
दीवोह-दीप + ओष	२.४.८	दुल्लह-दुर्लभ	२.८.१, १७.११, १०.१.१५
✓ दीस-दर्शय् + इ (आत्मने०)	४.१५.१५, ६.११.८; १०.५.९, दीसति (बहुव०)	दुवाउ-दुवति, भावी	९.३.८
	५.८.२४;	दुज्जर-द्वार	१.१६.२, १.१७.१२
८.३.२४, दीमेह (आत्मने०)	१०.१८.१०,	दुवाल-द्वार	४.२०.१०
विसिहिह (सवि०)	२.१४.११	दुव-दुर्वा	७.१२.५
दीह-दीर्घ	४.१३ १४, ४.२१.४, १० १५ ६	दुज्जयण-दुर्जन (१) अपसव्य, (११) दुर्जन	१.३.६

दुःखसण-दुःखसण	४.२.५;८.८.९	देवाउस-देवागुण्य	३.१.७
दुःखाय-दुःखार्त, आधी	१.११.१८	देवागम-देवागम	१०.२४.७
दुःखार-दुःखार	४.२२.६	देवाविभ-दापित, विलाया	५.१२.२२
दुःख-दुःख	३.१३.१०, ११.१५.३	देवाहिदेव-देवाधिदेव	१.१५.१२;४.४.१०
दुःखमहाणक-दुःखमहानक	३.८.२	देवि-देवी	३.१०.१०
दुःखयर-दुःखपर; दुःखी	६.८.६	देवित-देवता (स्त्री० बहुव०)	१.१६.५
दुःखिय-दुःखिता (बहुव०)	४.१४.१५	देवोत्तर-जिस नामके अन्तमें 'देव' पद है, अर्थात्	
दूध-धूत	५.१२.७, ५.१३.२४; १०.९.२	मवदेव ८.२.९	
दूई-दूती	१०.१६.८	देवोत्तरकृत्-देवकृत् + उत्तरकृत्, जैन पौराणिक	
दूयडिया-दूतिका	८.१५.१	भूमिर्मा ११.११.५	
दूयत्तण-दूतत्त्व + न (स्वार्थे) दूतपना	५.१२.१९	द्वेस-द्वेष	५.३.९; ६.१२.७
दूरतर-दूर + अन्तर	४.१८.१५; ४.१९.१९	द्वेसतर-द्वेषान्तर	१०.१५.२
दूरतराक-दूर + अन्तराक	२.१५.१३	द्वेसतराक-द्वेषान्तराक	१०.८.२
दूरद्विष-दूरद्विष	७.८.५	द्वेसभासा-द्वेषभाषा	५.१.९
दूरपिय-दूर + प्रिय (पति)	३.१२.३	द्वेसवहसिसंघंधियव-तद्द्वेषसम्बन्धी	५.१२.४
दूरपयंत-दूर + प्र + यण् + णतु, प्रयान्तम् ७.६.४		द्वेहदिक्-द्वेहदीप्ति	३.६.८
दूरथर-दूरतर	६.६.३; ७.१.५	द्वेहदि-द्वेह + ऋदि	४.९.१
दूरजिज्ञय-दूर + जजिज्ञत, त्यक्त	१.१६.१	द्वो-द्वि, दो (सख्या)	७.४.७; १०.१२.६
दूरमम-दूर + उद्भट	७.६.१३	द्वोण-(१) द्वोणाचार्य (२) द्वोण, माप विशेष ८.३.९	
दूव-दूर्वा	३.३.१०	द्वोणी-द्वोणी	९.१९.७
दूव-दूत	५.१२.२०	द्वोत्ति-द्वुत्तरी, दुष्टमद २.१३.९, ५.७.१९, १०.१८.७	
दूवाकाव-दूत + आलाप	७.३.१	द्वोमिर्य-दूमित + अङ्ग	४.२१.११
दूसाह-दुस्सह	१०.२२.९, ११.१.४	द्वोर-(दे) प्रत्यञ्चा	६.३.४
दूसावास-दूषय + आवास, तम्बू	५.१०.२३	द्वोर-(दे) ओर, कटिपुत्र	३.३.१४, ६.३.४
दूसिभ-दूषित	९.१५.४	द्वोक्थि-द्वोलित	१.१.३
√दूसिच-दूषय + तुमुन्	१.१५.६	द्वोस-द्वोष	१.१.२; ४.१८.१
दूहव-दुर्गम	४.१८.४	द्वोस-द्वेष	५.१३.१७
√दे-दा, दे ७.७.९; देउ (विधि०) १.१.१२;			
देवि ७.१३.१४, १०.१०.१०; देविण्			
२.६.१; १०.२३.३, देहि (विधि०) ८.६.१०;			
देह (विधि०) ८.९.१५			
√देत-दा + णतृ	६.१.१		
देउ-देव	१.१.१२, १.१५.१२, ११.३.८		
देउक-देव + कुल	४.१०.१; १०.८.१५		
देउउ-दातव्या (स्त्री० बहुव०)	४.१४.१५		
देवच-देवदत्त (कवि)	१.५.४		
देवदाह-वृक्ष	४.२१.३		
देवय-देवता	६.९.४		
देवयत्त-देवदत्त (कवि)	५.१.१		
देवल-देवालय, देवल	१०.८.१२		

[ घ ]

घन-घन	४.२१.१७, ६.४.१०
√घंत-घाच् + णतृ	१.१५.५
घककवसा-घाककवर्ग (कुल)	१.५.२
√घराघरांत-घराघराय् + णतृ	४.६.२
घटि-(दे)कुण्डल	१०.१६.४
घण-घन्या, भार्या	२.१५.२
घण-घन	१०.२.३, १०.२३.३
घणम-घ-घनद, कुवेर	१.९.१०, १.१६.३
घणहृत्त-घन + वृत्, घनवान्	३.१०.१२, ४.२.२
घणकण-घन + कण, घनधान्य	१.५.१
घणकणय-घनकण + क (स्वार्थे), घनधान्य	१.६.२

धनयत्तड-धनदत्त (खेदि)	४.१२.६	घरेसह (अवि०)	२.१६.४; घरि (त्रिषि०)
धनराशि-धनराशि (ज्योतिषीय मन्त्र)	४.१४.२१	८.११.१७; घरेलु ७.४ १४, ९.१९.१;	
धनलोह-धनलोभ	११.५.७	घरेवि ७.११.१; ८.१० ९; ११.११.११	
धनहृद-धनदत्त (कृपक)	९.३.२	✓ घरव-घृ + शतृ	७.१०.९
धनिय-धनिक, कृपक, स्वामी	७.६.१६	✓ घरतु-घृ + शतृ	९.१८.१
धनिय-धन्या	२.१६.१	✓ घरवो-घृ + शतृ ° (स्त्रियाम्)	६.१.२
धनु-धनुष	२.५.१, ७.९.१४, १०.१२.३	घरण-घारण; घारक	३.९.८
धनुतड-धनु + शतृ, धनुषवान्	६.७.१४	घरणि-धरणी	१.८.२
धनुदर-धनुधर, कामदेव	३.१०.१४; ८.५.७	घरणिपीठ-घरणिपीठ	१०.२०.११
धनुषय-धनुषशत	३.१.१२	घरणिथल-घरणीतल	१.५.१९
धनुदर-धनुधर	६.४.९	घरणीयल-घरणीतल	१.९.८
धण-धन्य	२.१८.२	घरणीरुह-परवत	१०.३.९
धणड-धन्य	२.१५.६, ४.१४.१४	घरवाड-घरा + पीठ	५.१२.३
धणवड-धन्य + शतृ, धन्य	२.१४.१३	घराह-घरा + आदि	२.१.८
धणिय-धन्या (स्त्री० विशेष०)	७.१२.७	घरायल-घरातल	९.८.५
धम्म-धर्म	२.११.५; ५.९.१५	घरिभ °य-घृत	३.६.१४, ८.१४.११; ११.२.२
धम्मकज-धर्मकार्य	२.१९.४	✓ घरिज-घृ (कर्मण) °ह	११.५.४
धम्मचक्र-धर्मचक्र	१.१७.७	घरिचि-घरित्री	६.४.११
धम्मण-धम्मन (वृक्ष)	५.८.६	घरियड-घृतः	११.१०.२
धम्मतरु-धर्मतरु	१०.१८.८	घरियकर-घृतकर, 'कर' लेनेवाला	३.३.२
धम्मथ-धर्म + अर्थ(बो पुरुषार्थ) ४.१२.१२; प्रवा० ९		धव-धव (वृक्ष)	५.८.६
धम्महि-धर्म + अग्नि	१०.३.९	धवळ-तत्सम) श्रेष्ठ वृषभ	७.३.१३, ७.६.१७
धम्मयण-धर्मरत्न	८.६.६	धवळविध-धवलविह्व, श्वेतपताका	५.११.११
धम्मलाह-धर्मलाभ	१०.२५.८	धवळहर-धवलगृह, प्रासाद	१.९.४, १०.१५.१०
धम्मबुद्धि-धर्मबुद्धि	२.१७.१	धवल्लिय-धवल्लित	१.१७.६; १०.१.१०
धम्माणुगल °य-धर्माणुगत	५.९.३; ११.१४.११	धवलीकिज-धवलीकृत	४.१०.३
धम्माधार-धर्माधार	१.६.३	धसक्षिय-धसकृत, भोत	६.१३.७
धम्माहम्म-धर्म + अधर्म	४.४.८	✓ धा-धाव्, °ह ४.१७.८; धाप्रवि	९.१३.५
धनुह-धनुष (चरसेष प्रमाण)	११.१०.१०	धाड-धावित	९.११.१३
°धय-ध्वज	१.१५.७, ६.१०.११; १०.१६.११	धाहम-धावित	७.११.१२, १०.१०.८
धयग-ध्वज + अश्व	४.२१.१७	धाहयखंड-धातकीलड (द्वीप)	११.११.१०
धयचिध-ध्वज + चिह्न- छोटी पताका	६.२.१०	धाड-धातु ( वाद, पित्त, कफ)	३.११.४
धयमाला-ध्वजमाला	५.२.४	धाडिय-(३) निस्सारित	१०.१३.९
धयवड-ध्वजपट	७.५.४, ७.५.१६	ध णुक्-धानुष्क	६.५.८; ६.७.२
धयाडंवर-ध्वज + आहम्बर	१०.१९.१३	धाणुक्षिय-धानुष्क	९.१३.१३
धवलरोह-धवलरुह, प्रासाद	४.७.६	✓ धाम-धाव् + हर (ताच्छील्ये)	४.२१.९
धवलहर-धवलरुह	३.६.१२	✓ धाय-धाव्, धायवि	९.१३.५
धर-धरा, धारण करनेवाली स्त्रियाँ	६.२.६	धाय-धातकी, धातु १०.३.३, °हि ५.८.८	
धर-धरा, पृथ्वी	५.१०.२	✓ धार-धार्य धारति (बहुव०)	४.१४.२; धारि-
✓ धर-घृ, °ह; ४.१९.१९, ५.८.३, °हि (विधि०),		ऊण ४.२१.९; ५.७.२५; धारेवि ६.३.७	

धाराखंडण-धारा (अतिधारा) + खण्डन	१.११.१०
धाराहर-धाराघर, मेघ	४.१.६; ९.९.१३
धारि-धारी, धारण करनेवाली	५.१.१५
धारि-धारी, धारक	१०.१२.१
धारिणी-धारिणी (रानी)	३.१०.१३
धारिय-धृत °त (स्वाथे)	२.६.१०
धारिय-धृत, धारित	८.९.११
✓ धाव-धाव °ह ६.१.१०, ९.८.३; धावहो	
(आज्ञा) ६.२.७, धावेवि ५.१४.१७	
✓ धावत-धाव + धतृ	६.६.५
✓ धावमान-धाव + धानच्	७.६.८
धाविष-धावित १.१६.२; ७.९.६; १०.१९.१२	
✓ धाह-(हे) धाह, पुकार, चित्लाहट, धाहानह	
४.१९.२०; १०.११.७	
धाहाविष-(हे) धाह, पुकार, चित्लाहट	३.७.५
धिकारिष-धिकृत्	३.१४.१६
धिद्रु-धृष्ट	५.७.१७
धिष-धृत	१०.९.२
धीय-धृता, पुत्री, हिं० बी	११.३.५
धीरक्षण-धीरत्व; क्षीरता	५.४.३
✓ धुण-धुन °ह	१.९.९
धुत्त-धूर्त्त ४.१७.५; ९.१०.२३	
धुत्ति-धूर्त्ता (स्त्री०)	८.१३.१५
धुमधुमिय-धुमधुमित (ध्वन्या०)	५.६.८
धुमधुमुक्क-धुमधुमुक् (ध्वन्या०)	५.६.८
धुय-धुत, कम्पित	४.२२.१७
धुयकंच-धुतस्कन्ध	७.६.२०
धुयधय-धुतकण्ठ	२.१६.१०
धुर-धुरा	७.१.२०, ११.२.३
धुरंघर-धुर-घर	१.११.८, १०.१५.२
धुरधर-धुरा + धर, धुरधर	१.४.६
धुरि-धुरी	११.११.१२
धुव-धुव	७.६.२९
✓ धुवत-धुत + धतृ	५.७.९
✓ धुमिह-धुत + °हर (ताच्छीत्ये)	५.२.४, ५.११.
११.७.५.१६	
धूम-धूम (अश, मरकभूमि)	११.१०.७
धुमारक-धुमाकृत्	७.९.६
धुमिर-धूम + हर (ताच्छीत्ये)	४.१४.८
धुमगार-धूम + उद्गार	६.५.१

धूय-धूप	११.६.८
धूलोरध-धूलिरव	५.७.४
धूव-धूता, पुत्री	९.७.३, ९.१२.२
धूसर-मुद्ग, भृंग	१८.३
✓ धोव-धोव, धोमा, धोविनि	४.३.२
[ न ]	

नय-नय	१०.४.७; १०.४.१४
नद-नदी	९.१०.१, ११.१.६; ११.११.४
नहमिति-नैमित्तिक	२.१.१२
नठ-न	२.६.११, ३.४.५; ३.४.३; ७.९.११
नठरहिण-नठरहय	४.६.९
नठर-(i) नकुल, पाण्डव (ii) नकुल-नेवला (iii)	
न + कुल-हीनकुल ५.८.३१; ९.१२.७	
नठरदरि-नकुलदरि	९.१०.१०
✓ नन्द-नन्दय, नन्दति (बहुव०)	८.७.५
नन्द-नन्दन, पुत्र	४.६.१४, ९.७.३
नन्दवण-नन्दवन (उद्यान)	१०.१९.१५
नन्दि-नन्दिनी पुत्री	५.२.१४
नन्दिणी-नन्दिनी (स्त्री०) विज्ञे०	१०.१८.१३
नन्दिण-नन्दनका, आनन्ददायक	८.१५.१४
नन्दिषो-नन्दिषोष	५.६.१४
नकल-नल	४.२१.२६; ६.१०.६
नकलत-नकल	१.१.१०
नकलत्तसासि-नकलत्तसासी, चन्द्रमा	५.१.१५
नगा-नगा (स्त्री०) विज्ञे०	१०.१०.१४
नगोह-न्यग्रोह	२.१२.८; ४.१६.५
नच-नृत्य	९.१.४
✓ नच-नृत °ह ३.१.४, ४.३.९; ८.१४.१२;	
✓ नचन्ती-नृत + धतृ ° (तिनयाम्)	३.१.४
नचनसाल-नर्त्तनसाला	३.२.६
नचवाविष-नर्त्तित	६.१४.१३, ९.१३.१०
✓ नचिन्न-नृत (कर्मणि) °ह १.५.६; ३.९.९	
नचिय-नर्त्तित	७.९.९
✓ नचिर-नृत + हर (ताच्छीत्ये)	८.१४.८
नच्छुच्छव-नृत्योत्थव	९.२.६
नच्येन्य-नर्त्तन	४.१२.१३
नच्छेर-न आश्चर्यकम्	१०.४.९
✓ नल-न °ह (आत्मने०)	४.१३.१०; ११.११.९
नट-नट्ट	७.७.१, ८.३.७

नष्टि-नष्टा (स्त्री०)	१०.१४.१४	नरथायर-नरकाकर	११.१०.४
नष्ट-नष्ट	१०.१४.३	नरस्थ-नररत्न	४.१.४
✓ नष्ट-नष्ट + णत्	४.७.१३	नरस्थ-नररूप	६.३.७
✓ नष्ट-नष्ट + णत् + णिच् (स्त्रियाम्)	९.१.५	नरवद्ध-नरपति	१.१२.६; १.१७.१८
नष्टवेद-नष्टवेदा, नष्टोका वेदा	१०.१४.१	नरवेष्ट-नरवेष्टा	४.२.४
✓ नष्टाव-नष्ट + णिच् ई	५.१३.१७	नरसंक्रमण-नरसंक्रमण	४.९.१०
नष्टि-नष्टित, छलित	२.१५.४; १०.८.७	नरामर-नर + अमर	२.३.१
नष्टि-नास्ति	३.३.१६; ९.४.६	नराकथ-नरालय, मनुष्यलोक	११.११.११
नष्ट-नाद	१.१५.६	नराहित-नराधिप	३.१४.७
नष्ट-नष्ट, गाँठ	१०.१२.७	नराहित-नराधिपति	१.१०.१३; ३.१.३
नष्ट-नष्ट, आच्छादित	२.१८.१६	नरिद-नर + इन्द्र	५.१२.७; ११.७.५
✓ नम-नम, नमसेवि	४.५.१	नरिदसंविणी-नरेन्द्र + स्यन्दनी, राजमार्ग	४.२१.१२
नमसि-नमस्कृत	१.१२.१०; ३.१०.५	नरिद-नरेन्द्र	४.१.५
नमस्य-नमदा	७.१३.३, ९.५.५	नरेश-नरेश्वर	१.१६.१४
नमस्त-नमस्तपुर (नगर)	५.९.१२	नल-नल, सरकहे	१.८.४
नमस्त-नमदा + तट	९.१९.४	नल-चरण	७.५.६
नय-नय, न्याय, नीति	३.५.१३	✓ नव-नव ई	५.१२.२१; नवि-५.१०.१६;
नय-नय	१०.२२.७	नवेविणु ७.११.८	
नयल-नययुक्त	४.१४.१२	नवल-नवक, नवीन	११.८.२
नयण-नयन उल्ल (स्वार्थ)	७.६.१२	नवंग-नव + अङ्ग, अभिनव अङ्ग	१०.१७.१४
नयणज-नयन + अञ्जन	९.१६.९	नवगञ्ज-नव + गवैयक (स्वर्ग)	११.१२.२
नयणदल-नयनदल	९.१३.१७	नवनिधि-नवनिधि	३.३.१२
नयपद-नयप्रवर	२.६.३	नवनेह-नवस्नेह	५.९.१४
नयपस्य-नयप्रवस्त, नीतिकुशल	५.१२.६	नवम-नवम	१.१६.८
नयमग-नयमार्ग	१०.१८.१	नवर-(अप०) केवल,	७.४.६; १०.२६.९
नयर-नगर	१.१०.१३, १.१४.१२	नवल-नव + ल (स्वार्थ) नवीन	१०.१७.२
नयरज-नागरजन	४.२१.१८	नववस्थ-नववस्त्र	८.१२.५
नयरी-नगरी	४.२.२; ४.७.१२	नववद्ध-नववधू	४.१७.९
नयरी-नगरी	१.५.१; ३.३.६	नवविह-नवविध,	३.९.८; ११.१४.११
नयरीरक्ष-नगरीरक्षक	३.१२.२१	नलसि-नवीन वस्त्र, उपयाचितक	२.१०.५
नर-नर	९.१९.१७, ११.७.१	नविण-नवीन	९.१.१८
नर-नरक	११.४.२	नल-मण्डा	६.१४.१२
नरज-नरजन	१०.२०.६	नह-नम	६.६.१
नरजाण-नरयान	१०.१९.९	नह-नल	७.४.१
नरजो-नरयोग, मनुष्यसंयोग	१०.१५.४	नहकंति-नल + कान्ति	१.१.४
नरणाह-नरनाथ	४.४.६, ७.१३.५	नहगण-नम + आङ्गन	६.१३.७; ८.१५.४
नरत्तण-नरत्न	११.१३.५	नहमह-नमगति, गगनगति (विद्याधर)	७.७.४
नरपरमेश-नरपरमेश्वर, राजा	५.२.२३	नहणिउ-नल + निकुरम्ब, नलसमुह	५.१.१७
नरय-नरक (गति)	४.४.७; ११.९.४	नहमगा-नममार्ग	१.१७.१९
नरयग-नरकगति	२.२.१	नहमणि-नलमणि	५.१२.१२, १०.१६.२

नहयल-नभस्तल	२.१४.१०; ५.६.१६	नाराय-नाराच, वाण	७ ९४
नहर-नखर, नख	४.१९.१५	नाराहिज-न + आराधित	११.३९
नहरुक्ख-नमबुद्ध	८१४.१२	नाळियर-नालिकेर	२१८.१०
नहळच्छि-नभलक्ष्मी	८.१५५	नाकी-कमलनाल	९.२.१०
नाभ-नाग, हस्ति	४ २२ १; ५.१४.७	√ नाव-नसु, नाविनि	८.७५
नाहँ-(अप०) इव, हिं नाई	२.१५ २, ४.१९ १३	नावह- (अप०) इव, हि नाई	७ ४.१९
नाहय-नावित	५.६.१०	नास-नासा, नाक	३.११ ८
नाड-नाद	२.१३.७	√ नास-नाशय, 'इ, २.२० ३; नासति (बहुव०)	३ ९ १५
नाड-नाम	९ १ ११	नासड-नासापुट	५.१३.११
नाश-नाग (वृक्ष)	४ १६ ५	√ नासंक-न + आ + शङ्क, 'इ	५.१३.२०
नागर-नागर (देश)	९ १९ ५	नासावंस-नासावध, नासिका	४.१३ ७
नाडय-नाटक	५ १ २६; ८.१३.९	नासाहर-नासा + अवर	२.५.१३
नाडिय-नाटित	५.६ १३	नासिय-नाशित	८.४ १२
नाणचउक्क-ज्ञानचतुष्क	३ ५ १	नाह-नाथ	३.३.९; ९.१२.७
नाणजोहँ-ज्ञानज्योति	१.१८ १०	नाहक-म्लेच्छ	५.८.२१
नाणविट्ठ-ज्ञानदृष्टि	९.१ ७	नाहि-नाशि	७.४.१२
नाणवसास-ज्ञान + अभ्यास	१०.२३ ४	ना हि-न + हि; न खलु, नही	१० ८ १०
नाणवत-ज्ञान + मतुप, ज्ञानवन्त	१२.१ ४; ९.१.१३; १० ४.५	नाहिमडक-नामिमण्डक	४.१३ १३, नाही ८ १६.७;
नाणावरण-ज्ञानावरण (कर्म)	१० २४.३	विच-विम्ब ८ ११ ९	
नामंक्रिय-नाम + अङ्कित	५.२ ८	नाहेय-नामेय, ऋषभजिन	३.१ ११
√ नामंत-नामय + धातु	५ १४.१०	√ निभ-इष्, निपवि ६.११ २, ९.१३.४; निपह	
नामपथाव-नाम-प्रस्ताव, परिचय	५.१.२०	(विधि०) ३ ११.८; नियच्छहँ (बहुव०)	४.२०.३
नामिय-नामित	५ १०.१४; ६.५.१०	निड-निज	४.५.१२
नाय-नाग, हस्ति	३ १०.१	निड-नीत, ले जाया गया	३.११ ९.१०.१०
नायपुवि-नागदेवी (ब्राह्मणी)	२ ११.२	निड-नृप	५.१३.२५, १०.१०.९
नायक्क-नायक, नेता	७.३ ८	निडह-निवृत्ति, मोक्ष	११ ४.२
नायण-नयन + पण्डि, नेत्रीका	१०.४.९	निठंज-निकुञ्ज	२.३.३
नायर-नागर, नागरिक	८ ३.५	निठण-निपुण	१.२.८
नायरजण-नागरजन, नागरिक	३ १२ २०	निठणह-निपुणाः ( वेद्या )	९.१२.१९
नायरमिठुण-नागरमिथुन	३.१.१९	निउरावल-नृप + राजकुल, प्रासाद	५.१.६
नायरपय-नागरप्रजा, नागरिक	३ २ १०	निउरंय-निकुरम्ब, समूह	४.६.१
नायरिय-नागरिक	५.९ १	निठेमिख-टप	२.१५.७
नायवसू-नागवसू (ब्राह्मण कन्या)	२.११.२	निपमिथ-निदेशित, निर्दिष्ट	७.११.१०
नायवेळि-नागवेल	१ ७.८, ४ २१ २	√ निठ-निम्ब, निर्दिवि	२.१९.९
नायाहिदिठय-नागावणित °ड (स्वार्थ)	८.३.६	निद्रा-निन्दा	१.१८.३
नारल 'य-नारकी	११.३.८; ११.१०.११	निद्रापसम-निन्दा + प्रणमा	२.२० ४
नारहय-नारकीय	२.२.२	निव-निम्ब वृक्ष	४.२१.२, ५.८.१३
नारड-नारद	७.११.४		
नारग-नारङ्ग, नारङ्गी	४.१६.५		

निधोय-नियोय	२६.९	निडुरिय-(दे) तिः + डरित्, ऋस्त	४.२२.१८
निर्द्धट-निष्कटक	९.३.१५	निडुल-(दे) ललाट	२.१८.१२
√निर्द्धत-नि + कर्त् + इ	११.१३.१	निणाय-निनाद	७.८.८
√निर्द्ध-नि + कर्त् + इ	११.१४.१२	√निणाय-निर्नाथ्य ऽमि	२.१८.११;
निर्द्धप-निष्कम्प + इर (ताच्छ्रित्ये)	१०.२५.९	निष्ठासिथ-निर्नाथित	४.३.१२; ५.१३.२
निष्कारण-निष्कारण	२.२.३	निचि-नीति	६.१४.२३
√निर्द्धत-नि + कम् + शतृ + उ (स्वार्थे)		निचिस-निस्त्रिथ, निर्दय	६.११.८
	३.१३.१४	निह-निद्रा	१०.१३.२
√निक्ख-निः + क्षिप् + इ	९.१३.६	निहा-निद्रा	६.८.३; १०.११.१०
निक्खत्त-नि + क्षात्र, निःक्षत्रिय	७.७.३	निदिष्ट-निदिष्ट	१०.२३.७; प्रश्न० ५
निक्खथ-निः + क्षय, अक्षेप	४.८.१३	निदिष्ट-निदिष्ट	१०.२.८
निक्षिपक-निः + क्षीड्, निष्क्रिय	४.११.१२	निद्वेष-निद्वेष	१.६.३
निगम-निर्गत	१.१४.१२	निद्वेष-निद्वेष	१०.१६.२
निर्गम-निर्गत	१०.२१.३	निद्वेष-निर्घन	९.१२.१७
निर्गम-निर्गम (न)	२.१९.८	√निद्वेष-नि + घाटय् + इ	३.१२.९
निर्गम-निर्गत	९.१०.१	निद्वेष-निर्घाटन, निष्कासन	१०.२०.४
√निर्गम-नि + ग्रह् + इ	३.९.२; ५.५.३	निद्वेष-निर्घृष्ट	४.६.२
निर्घट-निर्घट	१.३.३	निर्घ-निनाद	७.२.३; १०.९.१
निघण-निघन वृक्ष	५.८.९	निनाथ-निनाद	४.२१.१; ५.१४.७
निघ-निरय	३.१४.२०; १०.१७.५	निष्पह-निष्पन्न	३.११.२
निघ-निरय	५.४.१८	निष्पह-निष्पन्न	४.८.२
निघ-निरय	८.६.११	√निष्पीक-निष्पीडय् + इ	४.२०.२; ७.४.१२
निघ-निरय	९.६.११	निष्पद-निष्पद	८.११.१०
निघ-निरय	२.१३.७	√निर्वच-नि + वच् + इ	१.१.३
निघ-निरय	९.१७.१२	निर्वच-निर्वचन	२.१.१३; २.२.३; ११.८.६
√निघ-नी + इ (आत्मने०) ११.२.१; ए (आत्मने०)		निर्वच-निर्वच + क (स्वार्थे)	१.१.७
३.४.९		निर्वच-निर्वच + क (स्वार्थे)	१०.१०.११
√निर्जात-नी (कर्मणि) + शतृ	६.७.११, ७.६.६	निर्वच-निर्वच + क (स्वार्थे)	१०.१४.४
√निर्जर-निः + जृ + इ	२.२०.८; ११.९.६	निर्वच-निर्वच	६.९.१०
निर्जर-निर्जरा	११.९.२	निर्वच-निर्वच	१.१२.४
निर्जर-निर्जरा	११.९.८	निर्वच-निर्वच	६.९.४
√निर्जर-निः + जि + इ	४.७.४	निर्वच-निर्वच	७.४.१३
निर्जर-निर्जित	८.८.६	निर्वच-निर्वच	६.८.३
निर्जरा-निर्जित	७.१.९	निर्वच-निर्वच	१०.२४.२
निर्जर-निर्जर	५.८.४, ११.२.५	निर्वच-निर्वच	९.५.५
√निर्जरा-नि + ध्याय् + इ	२.१५.१२	निर्वच-निर्वच	५.३.१५; ११.१५.१
निर्जरा-निर्वच	४.५.१७	निर्वच-निर्वच	४.१४.१०
निर्जरा-निर्वच	७.६.२	निर्वच-निर्वच	२.१८.३
√निर्जरा-नि + स्थापय् + इ, अन्त करणा ४.२०.१०		निर्वच-निर्वच	३.१०.९
निर्जरा-निर्वच	२.१३.४; ६.६.११	निर्वच-निर्वच	७.६.१४



निश्मिय-निमित्त	११.११.५	नियोगिण-निदानित, निदानभूत	११.१.३
✓ निष्मूक-निर्मूल्य °हि (विधि०)	१०.२०.१३	नियामि-नियामक	८.८.२
✓ निय-दृष्ट, °इ २.१२.६; २.१६.१२; १.१२.५;		नियार-(१) कारोक्षित कृत, टेढी नजरसे देखना,	
नियवि २.१६.१२; १०.९.९		(११) निष्कार, क्षपमाव	४.२.१०
✓ नियन्तु-दृष्ट + शतृ	३.११.५, ७ ७ ६	नियारहर-निज + अघर	६.१३.५
निय-निज	६ १४ ७; ८.७.५, ९.८.१०	निरंजण-निरञ्जन, निर्मल	२.२०.२; १०.५.१३
नियड-निकट	९ ४.७	निरंतरं-अतिशयेन निरन्तरम्	४.८.१८
नियडदेश-निकटदेश	२ ८.५	निरगल-निरगल, निर्वाण	४.२.१६
नियंत-निज + अन्त्र °इ (बहुव०)	६.८.६	निरस्थ-(१) निरस्त, अपकृत	१.४.८
✓ नियंत-दृष्ट + शतृ °फ याष्ट (स्त्रियाम्)	९.२.१	(११) निरर्थ (क)	११.९.१
नियंत-नितम्ब	९.१२ १०	निरुद्ध-निरुद्ध	४.८ १२
निर्योगिण-नितम्बिनी	४.१६.१२.५.१०.१०; १०.८.९	निरुद्ध-निरुद्ध	९.१४.५
निर्यस-निवसन, वस्त्र	८.१४.५; °ण ८ १५ २	निरुद्धि-निरुद्धि	२.१.५, ११.५.१०
नियगोत्त-निजगोत्र, कुल	४.३.९	निरुद्धि-निरुद्धि	११.१५.६
नियठाण-निजस्थान	५.१० २३	निरुद्धि-निरुद्धि	४.१७.३, ९.१३.७
नियडीहुय-निकटीभूत	८ २ १९	निरुद्धि-निरुद्धि + क (स्वार्थे)	११.१४.८
नियणदण-निजनन्दन	३.१४ १६	निरामय-निरामय, नि शेष	२.१.१३
✓ नियच्छ-दृष्ट °इ ९.१३.८; °वि ३.५.३, °छवि		निरास-निरास १०.२०.११; °विति-वृत्ति १०.२२.४	
५.४ ७, १०.९.३		निरास-निरास	८ ११.५
नियच्छिद्य-वृष्ट	२ ३ २	निरुद्धि-निरुद्धि	४.१४.२०
नियच्छ-निवृत्त	१ १४.४	निरुद्धि-निरुद्धि	५.२.२१
✓ नियच्छ-नि + वृत् °हि (विधि०)	५.१२.२५	✓ निरुद्धि-निरुद्धि °विति (बहुव०)	१.१८ १२
नियच्छण-निवर्तन	२.१२.५	निरुद्धि-निरुद्धि	१०.४.३
नियच्छिद्य-निवृत्त	९.१९.४	निरुद्धि-निरुद्धि	१०.१७ ३
नियथाण-निजस्थान, निजगृह	९.८ ६	निरुद्धि-निरुद्धि	११.१४.७
नियद्वय-निजद्वय	३.१३.१३	✓ निरुद्धि-नि + वृत् °वि	९.१३.२
नियनिय-निज-निज	३ १२.१३	निरुद्धि-निरुद्धि	३ ९.६, ५.१.३, १०.१५.४;
नियपर-निजपर २ ८.६; °पुर ५.१३.३१, °बुद्धि		निरुद्धि-निरुद्धि	८.७.१५
१०.१४ १६. °भाल, ४ १७.१०, °रावल-		निरुद्धि-निरुद्धि	४.१३.४
राजकुल ५.१.६, °हल ९ ४ ४		निरुद्धि-निरुद्धि	८.१३.६
नियम-नियम	३.९.५	निरुद्धि-निरुद्धि	२.१८.१३
नियमवय-नियम + व्रत	२.१६ १३	निरुद्धि-निरुद्धि	१०.१०.१४
नियमिथ-नियमित	१०.२१.८; ११.२२ २	निरुद्धि-निरुद्धि	५.८ २७
नियथ-निज + क (स्वार्थे)	५ १ २८	निरुद्धि-निरुद्धि	६.१२.५, १०.१४.२
नियल-निगड	६.८ ८	निरुद्धि-निरुद्धि	१० १९.१४
नियसिय-निवसित, पढ़ने हुए	१.६.२३	निरुद्धि-निरुद्धि	१.१६.३, ३ ५.९
नियहिय-निजहित	२.११.१०	निरुद्धि-निरुद्धि	८.१४.१९
नियमाण-निदानक्षण, अवसानसमय	८.१३.१४	✓ निरुद्धि-नि + वृत् °इ (आत्मने०)	८.१६.५
		निरुद्धि-निरुद्धि	५.२.२१

√ निवह-नि + पत् °ह ६.८.८; ८.१४.५, ११.४.२; °हि (बहुव०) ८.१५.७; निवडेवि ९.५.१३; °डिवि-९.५.१०	निव्वत्तिथि-निवृत्त ९ १३.१८
निवडण-निपतव ५.७.१८	निव्वत्तसाय-निव्वत्तसाय ९.१०.३
निवडिअ-निपतित १०.१४.१३	निव्वाण-निर्वाण, ओख १०.२३.११
निवथाण-नृपस्थान, राजकुल ३.२.४	निव्वासिथ-निर्वासित ५.३.९
निवसंदन-नृपनन्दन ३.९.१४	√ निव्वाह-निर्वाह्य °ह २.१४.२
निवमण-नृपमन ५.६.१७	निव्वाहिय-निर्वाहित ९.३.६
निववाहिणी-नृपवाहिनी, सैन्य ५.१०.११	निव्विण-निर्विश ६.४.११; ८.५.१३
निवस-निवास, गृह ३.११.६	निव्वुडु-निर्मज्जित १०.१८.९
√ निवस-निवस् °ह ३.१४.१९; ५.१३.३२	निव्वूह-निर्व्यूह १.४.२
निवसंपय-सुपसम्पदा १० ११.५	निस्संत-(१) निशा + अन्त (II) निशात, राजगृह ४.८.१
निवसिथ-निवसित १ १५.११	निसग्ग-निसर्ग, नैसर्गिक ७.६.१५
निवाडिय-निपातित ७ ९.१३	निसा-निशा ९.१६.१२
निवाण-निपान ३.१२.७.९.९.११	निसागम-निशा + आगम ८.१५.१; ९ ११.६
निवायार-नुवाचार, राजनीति ४ ५ ९	निसामिअ-निः + श्रुत ९.४.७
निवार-निवारक ७.१०.८	निसि-निशि, निशा ३.१४.१२; १०.१४.२; नाव १० १८ ७
√ निवार-निवारय °ह २.१६.२	निसिय-निशित ५ १४.७, ६ ५ ७
निवारिय-निवारित ५.७ १६, ७ ७ १२	√ निसुण-निः + श्रु °हि (विधि०) ९.५ ३; निसु- णति (बहुव०) ९.३.३; निसुणेवि ६ १.९; १०.१०.१; निसुणेप्पिणु ९.१६.१
निवासण-निवासन, रहना १०.२२.६	√ निसुणि-निः + श्रुणु (विधि०) सुनो ९ १८ १०
निविट्ट-निविट्ट ८ १३.७, ८.१५.११	√ निसुणंत-नि + श्रु + शतु °उ (स्वाथे) ४ १.९
निविड-निविड, घमा ९ ६.२.९.७ १	निसुणिय-निःश्रुत ७ १.८
निविडअ-निविड + क (स्वाथे) ८.१६ २	निसुमिय-निशुम्भित ७.२.६
निविस-निमेष ५.११.९	निह-निभ, समान ७ ५ ९
निवेड्य-निवेदित ५.१२ ८, °उ (स्वाथे) २ १९ ९	√ निहम्म-नि + हव °ह ५ १३.२२; ७.६ १७
√ निवेस-निवेशय °ह १.२.११	निहय-निहत १.१७.३
√ निवेसंत-निवेशय + शतु ७.१४ ११	निहस-निकष, कसौटी ७.४.६
निवेसिय-निवेशित ४.११ ८, ८.४.१०; ८ ९.१८	निहसण-निघर्षण ७.६.३
√ निव्वट्ट-नि + वृत् °ह ६ १४.४	निहान-निधान ५.५.११; १०.८.२
निव्वट्टिय-निर्वसित ७ १.२०	√ निहाक-निहालय, °हि (विधि०) २ १८.१४; ४ १७ ६; ११.६.५
√ निव्वड-नि + पत् °ह १.१५.१९	निहि-निधि ९ ८ १; ९ ८.२३
√ निव्वड-नि + पादय °ह १० १ ४	निहिअ-निहित ९.७.१३
निव्वडिअ-निपतित १ १७ १८	निहिअ-निहित, निक्षिप्त ९.१८.४
निव्वडिय-निर्वृत्त, निष्पन्न, सिद्ध ५.१.१२	निहिय-निहित, पिहित ८.९.१२
√ निव्वण-नि + वरण्य °मि ४.१.१०; °हि (विधि०) ५ १३.१५	निहुअ-निभ्रुन + क (स्वाथे) शान्त, मन्द ९ १४ २
√ निव्वत्त-निः + वर्तय °मि २ १३ ५	निहुअणकेळि-निधुवनक्रीड़ा ४ १६ १२
निव्वत्तिअ-निवृत्ता (स्त्री० विशेष०) ९ १३ ४	



पडसिय-प्रवासित	३.११.१४	पङ्क-पक्व	४.२१.३, ९.४.९; °उ ११.१.९
पट्ट-प्रदेश	२.१२.११, ५.५.१७	पक्व-पक्ष, द्वि० पक्षबाढा	४.१०.७, ६.२.३
पवोहर-पयोधर (१) स्तन (११) मेघ °हरिया (स्त्री०-विशे०) ४ ७.९; हरीय (स्त्री० विशे०) ९.७.७		पक्खालिय-प्रक्षालित	६.९.११
पंकज-य-पङ्कज, कमल ४.२१.५; ५.१३ ४, °दल ४.१३.१७; °सर ८.१४.१७		पक्खि-पक्षी	९.१०.४, ११.१३.५
पंकपह-पङ्कप्रभा (नरक भूमि)	११.१०.७	पक्खिराय-पक्षिराज	५.५.९
पंकयसिरी-पङ्कजश्री, पद्मश्री (श्रेष्ठिकल्या)	९.२.३	पग्गि-प्राक्	४.२.१५
पंकिल-पङ्क + इल, पङ्कयुक्त	४.७.७	पग्गि-प्राक् + एव	२.१३.७
पंगण-पङ्गण	९.१५.९; १०.१९.१	पङ्ग-पक्व	१.१३.६
पंगुरिय-प्राहुत	९.१८.५	पङ्ग-प्रत्यय	२.१३.८
पंचंग-पञ्च + अङ्ग	४.१५.२	पङ्गव-प्रत्यय	२.१३.८
पंचस-पञ्चस, सृत्यु	९.३.५	पङ्गव-प्रत्यय	२.११.५, ९.२.११
पंचमगाह-पञ्चमगति, मोक्ष	११.१५.९	√ पञ्चारयत्-उपा + लम् + शतृ	६.६.४
पंचमुह-पञ्चमुख (सिंह)	५.१४.७	पञ्चारि-उपाळम्ब, आहूत	७.६.३२.
पंचवाण-पञ्चवाण, कामदेव	४.१५.४	पञ्चुञ्जाविय-प्रति + उत् + जीवित-पुनरुज्जीवित	७.४.१८
पंचवीस-पञ्चविंशति, पञ्चवीस	११.१०.५	पञ्चुत्तर-प्रति + उत्तर	१०.१०.४
पंचसय-पञ्चशत	७.१३.१	√ पञ्चुल्लिङ-प्रति + उत् + स्फिट् °फिट्तेवि ९.२.५	
पंचाण-पञ्चानन, सिंह	५.८.१४	पञ्च-प्रत्ययः	४.७.२१
पचाणणाळोय-सिंहावलोकन, देखें. सं० टिप्पण	५.१४.२२	पञ्चेच्छिङ- (अप०) प्रत्युत	२.४.५, ३.१४.२०
पंचपयार-पञ्चप्रकार	११.१२.९	पञ्छ-पृष्ठ	१०.१५.१
पंचिदिय-पञ्चेन्द्रिय	११.१३.४	पञ्छ-पश्चात्	४.३.१३
पंचेदिय-पञ्चेन्द्रिय	१०.२२.५	पञ्छ-पश्चात्	९.१३.६; १०.१५.३
पंजर-पंजर, पिंजडा	८.८.७	पञ्छ-पश्चात्	५.१३.१८
पंजल-पञ्जल + क (स्वाथे), शुद्ध	११.७.१०	पञ्छ-पश्चात्	१०.१६.११
पंडवगाह-पाण्डवनाथ, युधिष्ठिर	१.६.३	पञ्छ-पुष्टमाग, नितम्ब	९.१.१२
पङ्गि-पाण्ड्य (देश)	९.१९.३	पञ्छा-पश्चात्	९.१.१५
पङ्गि-पण्डित	प्रश्न० २१	पञ्छा-पश्चात्	८.१६.३
पङ्गियमरण-पण्डितमरण	२.२०.९	पञ्छा-पश्चात्	९.३.१०
पंडीपहावत-पाण्ड्यदेशोद्भव	४.८.६	पञ्छा-पश्चात्	१०.१७.१
पंडुरंग-पाण्डुर + अङ्ग, पाण्डुर शरीर	१०.१७.६	पञ्छि-पश्चिम, अन्तिम	२.३.६; प्रश्न० १६
पंडुरि-पाण्डुरित	१०.१७.१०	पञ्जंत-पर्यन्त	१०.३.१
√ पंडुरिजंत-प. ण्डुर + क (कर्मणि) + शतृ १.१.३		पञ्जलिय-प्रचलित °उ (स्वाथे)	१.११.६
पंडुरिय-पाण्डुरित	१०.९.२	पञ्जरिय-प्रक्षरित	३.३.७; ७.६.६
पंति-पटिक्त	४.१८.२, ९.१४.१	पट्ट-पत्तन	५.३.५, ५.९.१
पंथ-पथ	५.२.११	पट्ट-पत्तन	४.२०.७
पंथसमिय-पथश्रमित, पथश्रान्त	९.१८.९	पट्टि-पट्टि-प्रति + व्याहृ, प्रत्युत्तर	४.२१.१२
पथिय-पथिक,	३.१२.६	पट्टि-वस्त्रविशेष	४.८.६
		√ पट्ट-प्र + स्थापय् °वेवि	८.१६.२
		पट्टि-प्रेषित, हिं० पठ्या हुया	५.१२.७
		पट्ट-पट	९.१८.२

पडिय-पठित	४.९.५	पडिमकड-प्रतिमकट, शत्रुवानर	९.७.२
✓ पड-पत् °इ १०.१७.२०; °उ (विधि०) २.८.७;		पडिमयगळ-प्रतिमयगळ, शत्रुहस्ति	४.२०.७
पडंति (बहुव०) ७.८.१०; पडेऊण १०.२६.८;		पडिमा-प्रतिमा	प्रश्न० ७
पडेविणू ९.११.५		पडिमिलित-प्रतिमिलित	४ २२ २४
✓ पडंत-पत् + शतृ	१.१८.८, ९.७.१६	पडिय-पठित	५.१० ९; ७.८.७
पडमावड-पमावती (श्रेष्ठिपत्नी)	४.१२.२	पडियार-प्रतिकार, खड्गकोष, म्यान	७.८.२
पडह-पटह वाद्य	७.३.१, १०.१९.२	पडिरक्खिय-प्रतिरक्षित	५ ३ १५
पडावेड-पट + आवेष्ट(न), वस्त्रवेष्टन, चादर	४.५.१६	पडिरब्धिय-प्रतिरटित (ध्वन्या०)	५ ६.७
पडिअ-पठित	७.१.१३, ९.६.२; ९.१४.११	पडिअग-प्रतिअग	१.१.५, ७.६.५
पडिद-प्रति + इन्द्र	३.१०.५; १०.२४.१०	✓ पडिअग-प्रति + अग + शतृ	८.५.९
✓ पडिअह-प्रति + कथय °ह	१०.७.५	पडिअपल-प्रतिअपल	८ ४ ६
पडिअसव-प्रतिकेशव (जैन पोरा० पुरुष)	४.४.४	✓ पडिअज्ज-प्रतिअज्ज °ज्जवि	९.४.६
✓ पडिअल-प्रति + अलव °ह	५ ५.१	पडिअज्ज-प्रतिअज्ज	३ ९.६
पडिअलुहिय-प्रतिअलुहित, प्रतिअलुष्य	७ ५.११	पडिअणिगय-प्रतिअणिगय	४.१२.८
पडिअग-प्रतिअग, शत्रुहस्ति	६.६.५	पडिअह-प्रतिअह	१.१७.३
पडिआहिय °य-प्रतिगृहीत	४.१७.२०; ५.१० २१;	पडिअर-प्रतिअर	७.६.२५
	७ ७.३	✓ पडिअर-प्रति + आ °ह	२.१५.१, १० १६ ७
✓ पडिअल-प्रति + अलव °ह	६.६.५	पडिअर-प्रतिअर	५.१२.६
पडिअल-प्रतीअलित	१०.२१.१; यउ ३.९.११	पडिअर-प्रतिअर + क (स्वायें)	५.१.१८
पडिअल-प्रतिअल, प्रतिअल	२.१८.१४	पडिअर-प्रतिअर	३.१४.११
पडिअल-प्रति + अल, प्रतिअलित	५.१.१५	पड-पट्ट	९.१९.९; १०.१९.२
✓ पडिअल-प्रति + अलव °ह	९.१६.१	पडपडह-पट्टपटह वाद्य	४.८.३४; ६.७
पडिअल-पठित	५.५.१४	पडल-पाटल पुष्प	८.१६.४
पडितुल-प्रतिअल	११.१.१	✓ पड-पट्ट °ह	८.१६ ११, १०.८.९
पडितुल-प्रतिअल + क (स्वायें)	४.१३.१७	✓ पडत-पट + शतृ	१०.१.१३
पडिअल-प्रतिअल, वस्त्र विशेष	४.८.६	पडम-प्रथम	५ १३.१९, ११.१०.४
पडिअल-प्रतिअलित	१०.१.५	पडमकल-प्रथमकल	प्रश्न० १७
✓ पडिअल-प्रति + अलव °ह	१.५.२१	✓ पडमाण-पट + अलव	५.१ २७
✓ पडिअल-प्रति + अलव °ह	७.१.३	पडमाण-प्रथम + अलव	६ ६ २
पडिअल-प्रतिअल	११.८.४	✓ पडिअ-पट + तुमु	८ २ ९
पडिअल-प्रतिअल	२.१५.१, ९.१२.१०	✓ पडिअ-पट्ट (कर्मणि) °ह	४ १० २
पडिअल-प्रतिअलित	४.१७.१२	पण अ°य-प्रणय	७.११.१६; ८.११.१३
पडिअल-प्रतिअल, जाग्रत	४.६.६	पणअणि-प्रणयिनी	८.११.१३
पडिअल-प्रतिअल	१०.१८.१	✓ पणअ-प्र + अलव °ह	४ १.१४
पडिअल-प्रतिअल	९.४.६	पणअिय-प्रणयित	१. सं० ८
पडिअल-प्रतिअल, शत्रुयोद्धा	१०.१.१२	पणअ-प्रनष्ट	४.११.१७; १० ९.८
पडिअल-प्रतिअल	४.२२.२	पणअ-प्रनष्ट, प्रणाम	५.१ १६; ६ १.३
✓ पडिअल-प्रति + अलव °ह	१.५.६; ५.४.१६	पणअिय-प्रणयित	९.१८.७
पडिअल-प्रतिअल	५.७.१५	पणअकुड-प्रणयकुड	४.१७.५

पण्यारुढ-प्रण्यारुढ	९.१२६	पमाञ-प्रमाद, कट्ट	११.१३५
√ पणव-प्र + नम् ई, पणविवि १२.१, पणवेवि ३५.५, पणवेप्पिणु ८.१.११		पमाड-प्रमाद	२.८.१०
पणमिञ ईय-प्रणमित ३६.९, ७.१३ १७, १.१७ ८		पमाण-प्रमाण, संख्या	२.५.१०, ५.१४.११
√ पणविज्ज-प्र + नम् (कर्मणि) ई २.१०.१		पमाणिय-प्रमाणित, कथित	११.१२-९
पणाम-प्रणाम	५.१.१९	पमाथ-प्रमाद-दोष	२.८.११
पण-पर्या, पत्ते	५.८.२२; ११.१.८	पमुक्क-प्रमुक्त	४.२१.११
पणगतिय-पन्नगस्त्रिय, नागनियी	१०.१७.११	पमुद्द-प्रमुख	४.८.१०; ८.८.१९
पणसाल-पर्णशाला	५.११.२	पमेय-प्रमेय	१०.३.१०
पणारह-पञ्चदश, पद्मह	११.१०.६	√ पमेळ-प्र + मुच् ल्लेवि	१०.९४
पणारहखेत्त-पञ्चदशक्षेत्र	११.२.४	पमेळिय-प्रमुक्त	७.११.२
पत्त-पात्र, वाहन	१.१६.१	पम्मुळ-प्रमुक्त	१०.२६.२
पत्त-पदाति	४.२१.१६	पय-जल	१.१.३
पत्त-प्राप्त	२.८.२, ६.११.१; ९.८.११	पय-पद, चरण	१.२.१; ६.५.२
पत्त-पात्र, भाजन	१०.२०.१०, ११.१४.५	पय-(i) जल (ii) दुग्ध	४.७.९
पत्तड-प्राप्त + वत्, प्राप्त	८.१४.३, १०.१९.१५	पयह-प्रकृति	५.१३.३३
पत्तल-(क्षे) पत्तली	२.१५.३	पयंग-पतङ्ग	५.१४.२५
पत्ति-पदाति	४.२१.१५, ७.६.१	पयड-प्रचण्ड	१०.९.२
पत्ति-पत्नी	१०.१३.७	√ पयप-प्र + जल्प् ई २.१.३; ६.७.११; पयपति (बहुवचं) १०.२६.६;	
पत्तिवाळ-तलवार	९.१२.३	पयपिञ-प्रजल्पित	५.४.२०
पत्थ-(i) पार्थ-अर्जुन (ii) प्रत्य एक माप	८.३.९	पयकमल-पदकमल	१०.१६.२
पत्थान-प्रस्थान	८.२.१	पयखलण-पव (पाठ) स्खलन; (ii) पव-व्यवसाय (या मार्ग) स्खलन	८.४.११
पत्थार-प्रस्तार, विस्तार,	४.९.२	पयग्ग-प्रयाग	९.१९.१५
पत्थाव-प्रस्ताव	५.१.२०	पयच्चपण-पद + आक्रमण, पदाघात	५.७.१३
पत्थिव-पार्थिव, राजा	३.१२.१	पयळिन्न-पदछिन्न, पदनिर्धारित	९.१.४
पट्ठिण-प्रवृत्त	१०.२०.११	पयज्ज-प्रतिज्ञा, हिं० पैज	४.२.१४
पट्टडियार्वंध-पट्टडियारुद्ध	१.४.३	√ पयट्ट-प्र + वत् ई ५.३.५; ७.३.१, ११.६४	
पट्टा-स्वर्दा	१.११.१३	पयट्टिया-प्रतिष्ठिता (स्त्री०)	प्रश्न० ८
पट्टाहय-प्रधावित	७.१३.३	√ पयडल-प्रकटय ई ८.२.१०; ८.१६.६; मि १०.६.१; डेवि ७.१६	
पट्टाय-पट्टग	५.८.२२	√ पयडल-प्रकटय + श्रुत	६.४.१
पट्टुल्लिय-प्रफुल्लित	४.६.४	पयडवन्ध-प्राकृतवन्ध	१.२.१४
पवंध-प्रवन्ध	१.४.१०; १.५.१४	पयडिल य-प्रकटित	२.९.८; ८.७.१४
पवल-प्रवल	६.५.११	पयडोक्क-प्रकटीकृत	३.१२.२०
पवोद्-प्रबोध	४.५.२	पयणेल्लवी-पचन + छवि	३.३.७
पवमार-प्राग्भार	४.१३.२	पयणेतव-पगनुपुर	३.८.३
√ पमण-प्र + मण् ई २.१०.७; ४.१४.१९; ५.१३.२४		पयदल्लिय-पददलित	६.८.११
पमास-प्रभास (तीर्थ)	९.१९.४	पयधूरण-पदधूरण	२.१५.१९

पयवन्ध-पदवन्ध (i) (सप्त) पदवन्ध, सप्तपदी	परलोअंय-परलोक	२.१८.१६, १० ३.६
(ii) पदवन्ध-पदरचना १ ३.५	परवचन-परवचनः, परवचक	९ १२.१४
पयमर-पदमार	परवस-परवश, पराधीन	५.९.१७
पयर-प्रकर, समूह	परवस-परवण	२.१४.२
पयरण-प्रकरण	परस-स्पर्श	२ २० ७
पयलग-पादलग्न २.५ ६; उ° (स्वायें) ८.११.१५	परसंकल्प-परसंकल्प	१० २३ ६
पया-प्रजा	परसु-परशु, कुल्हाडा	८.१०.५
पयाड-प्रताप	पराद्वय-परागत	८ ९.२
पयाण-प्रयाण	✓परस्मिन्-परा + नि °लण	७ ३ ६
पयाणध-प्रयाण + क (स्वायें)	परायड-परागत	२.१५ ६, ४.१८ ८
पयार-प्रकार	पराहड-पराभव	५.७ २७
पयाव-प्रताप	✓परिडंठ-परि + प्रोञ्छ °छिवि	१.२.८
पयावड-प्रजापति	✓परिओस-परि + तोपय् °इ	२.१५.१०
पयावबोसणा-प्रतापबोपणा	✓परिक्रमंत-परि + क्रम् + शतृ	१० २४.७
पयावहुयास-प्रतापहुतास(न), प्रतापानि १ ११.४	✓परिकलन-परि + कल्य् °लिवि	४.२२.१४
✓पयास-प्रकाशय् °इ ८.१६ ७, °मि ९.१६ ५	परिकलिअंय-परिकलित	१.३.२; ६ ६ ३
पयाहिण-प्रदक्षिणा	✓परिकल-परि + ईस् °हि (विधि०)	१ २ ३,
पर-परम	६.७७, परिकलकृण ९ १.१	
परह-परतः, परे, हूर ९ ३.११, प्र १०.५.१, ए°	✓परिकलक-परि + स्तल् °इ	४ १७.२३
१.२.५, १.१५.११	✓परिगक-परि + गल् °उ (विधि०)	१०.२५.७
परयर-पररपरा	✓परिगदिअ-परिगलित °य	२ १८ ४
परकयथ-पर (म) + कृतार्थ	परिगह-परिग्रह	२.७.१, ५ १ २२
परकुडुडि-पर(म) + कुबुडि	परिगह-परिग्रह, सैन्य	६.१ १४
परकेवल-पर(म) + केवल, विलकुल अकेले-अकेले	परिग्रह-परिग्रह	१.१५ १०
३.१३.१०	✓परिचसंय-परि + त्यञ् °इ	१०.४.१४
परवर-परगृह	°वप्रति ५ ४.३	
परतड-पर(म) + तप	परिचहयड-परित्यक्त	१ ५ १९
परतक-पर (म) + तर्क	परिचत-परित्यक्त	९ १२ ८, ११.१३ ८
परचण-पर (म) + चन्य	परिचअ-परिचय	८.२ १४
परपचक-परप्रत्यक्ष	✓परिचक-परि + छल्य् °इ	४ १७ २३, °वि
परमगुड-पञ्च परमेष्ठि	४ १७ ११	
परमल्य-परमार्थ	परिचिअंय-परिस्थित	१.१२ ८, ५.८.३, ६.१३ १
४.६.१०; १० १२ ८	✓परिचव-परि + स्थापय् °वि	२.७ १०
परमपर-परमपर, परमात्मा	परिचिअ-परिस्थापित	५.११ १
परमप्यलंय-परमात्मा	✓परिण-परि + णी °इ	५.४.१९, १०.४.२;
परमरई-परमरति	११ ६.५	
परमिडि-परमेष्ठि	✓परिणंत-परि + णी + शतृ	११ ५ ६
परमेडि-परमेष्ठि	परिणयण-परिणमन, परिणय ४ १४.२०, ८.११ १७.	
परमेसर-परमेस्वर	परिणामड-परिणाम + मनुप, भावयुक्त	११ ४ ६
परयारकज-परदारकार्य, परस्त्रीगमन		

परिणाविभ-परिणायित	३.४७, °यठ	९१५१३	√परिवद्ध-परि + वृष् °इ	४.९.१
परिणिभ °य-परिणीत	१०.१०५	५.२.१३	√परिवद्धन्त-परि + वृष् + शतृ	३.१४.९
परिणेवड-परिणायितव्या (स्त्री०)	४.१४.१५;		परिवद्धिभ °य-परिवद्धित	२.११०; ९७.५
५.२.२३			परिवाही-परिपाटी	९.२.३
परिणयव्य-परिणायितव्य	न ५.८		परिवारिभ-परिवारित	३.४.८
परित्त-परित्राण	७.३.१०		परिसंठिभ-परिसंस्थित	११.११.१
परितुष्ट-परितुष्ट	७.६.१४		√परिसक्त-परि + ध्वक् °इ	२.१५.१७, ५.८.३७
परितोसिभ-परितोपित, परितुष्ट	७.११.४		√परिसीलन्त-परि + शील्य + शतृ	३.१४.११
परिधिभ-परिस्थित	२.५.१३		परिसौल्यिभ-परिसौल्यित	२.१२.११
परियोडभ-परिस्तोक, बहुत थोडा	५.४.४		√परिसुक्त-परि + शुप् °इ	२.४.२
परिपक्व-परिपक्व °ठ (बत्)	१.७.५; ८.१३.१२		√परिसुस-परि + स्वप् °इ	९.१४.६
√परिपाळभ-परिपाळ्य °इ	८.३.१५		परिसेलिभ-परिसेपित; परित्यक्त	१०.२०.९
परिपीडिभ-परिपीडित	२.५.११		°परिहृच्छ-उपरिहृस्त	७.६.१३
परिपूरभ-परिपूरित	८.१३.१०		परिहृच्छभ-(हे) वक्ष	९.१३.१२
परिपूरिभ-परिपूरित	२.५.९		परिहृण-परिधान	४.२०.३
√परिकुर-परि + स्फुर °इ	१०.३.२		√परिहर-परि + ह्र °इ ९७.३, °हि (विधि०)	
परिमह-परिभ्रष्ट	२.२.८		२.१६.४; °रिनि ६.१२.११, ९.४.१७	
√परिमम-परि + भ्रम् °इ ९.११.१.७, °वि ९.५.१०			परिहरणभ-परिहरण, परिहारक	११.१४.३
√परिमसंत-परि + भ्रम् + शतृ	१०.२४.७		परिहरिभ-परिहृत	८.१३.१५
√परिमसिर-परि + भ्रम् + इर (ताच्छील्ये)			परिहृव-परियव, पराभंव	६.९.११; ७.४.१५
५.१२.३; ७.६.१०			√परिहृव-परा + भ्र् °इ	३.७.१२
√परिमात्र-परिमात्र्य °इ ११.७.१; °हि (विधि०)			परिहा-परिखा	१.८.८
१०.२.६			परिहाण-परिधान	९.१८.२
परिभाविभ-परिभावित	८.११.१६		परिहामंडल-परिखामंडल	३.१२.०
परिभिभ °य-परिमित	१.१६.३, ४.९.११; ५.३.१४		परिहासापेसक-परिहास + आपेसक-अतिशय मनोज	
परिसुणिभ-परिज्ञात	१०.१८.४		४.१७.१	
परिमण-परिजन	८.१५.१६, १०.१६.११		√परिहिज्ज-परि + होय (कर्मणि) °इ	३.१२.७
√परियस-परि + वर्तय् °वि	४.१७.७; ९.१८.१		परिहिय-परिवृत	१०.१८.८
परियचण-परिवर्त्तन	१.२.१४		परीसह-परीपह	२.२०.७; ११.९.६
परियर-परिकर	६.१.६		पल्ल-प्रल्ल	१०.८.१४
√परियर-परिचर् °रिनि	७.५.८		परोप्पर-परस्पर	३.११.१२, ९.७.८
परियरिभ °य-परिचरित	१.१४.११; ११.१०.२		परोहण-जलयान	१०.११.१
√परियाण-परि + ज °इ ४.१८.१५, °वि ६.१२.१;			पल-(तत्सम) मांस	६.८.९; १०.१०.८
८.८.१८			पलय-प्रलय ६.१४.२, ९.९.४, °काल	४.२२.१२
परियाणिभ °य-परिजात	१.१७.४, २.५.८;		पलाण-पलायित	१०.२६.७
४.१८.१५ ३.१४.१०;			√पलायन्त-पलाय + शतृ	४.२१.१७
परिरिचय-परिरक्षित	५.९.५		पलाल-(तत्सम) पुआल, वृष	९.१५.७
परिवज्जिभ-परिवजित	११.१४.१०		पलास-(i) पलास, मांसभोजी रासस (ii) पलास	
परिवडिय-परिपतित	७.५.३		वृक्ष ५.८.३४; ६.८.६	



✓ पलाह-परा + व्यु (आज्ञा०)	१.११.११	पलुचव-प्र + वक्तः	४.२.५
पक्ति-प्रदीप्त	५.१३.१०	✓ पवेष-प्र + वेश्युं <sup>०</sup> हि (विधि०)	९.१६६
✓ पकोय-प्रलोक्युं <sup>०</sup> इ १०.४.१०, अंति (बहुव०)		✓ पवोक्तुं-प्र + युज् + तुमुन्	८११.१०
७.४.४; अंति (विधि०) १०.११.९		पव-पर्व	९.८.१८
पल्लं-पर्याङ्क	८.१५.१६	पवह्य-प्रव्रजित	८४११
✓ पल्ल-परि + वर्तयुं <sup>०</sup> इ २.१५.९, ४.११.२;		✓ पव्वज्ज-प्र + जज्जुं <sup>०</sup> जेमि २ १३.११; मि८.७.९	
११.६.४		पव्वज्ज-प्रवज्या	१०.१९ १८; १० २१.१
पल्लाणिय-पर्याणित	५.६४, ७.१.१९	पव्वज्जिज्ज-प्रव्रजिताः (स्त्री० बहुव०)	१०.२१.५
पल्लि-पल्लि, छोटा गांव	५ ८.२९	पव्वज्ज-पर्वत	८.१४.१८; ११.११ ४
पल्लिवण-(दे) चोरोंके निवास योग्य वन	५ ८.२४	✓ पसंस-प्रशंसुं <sup>०</sup> इ	४.३.९
पल्लव्य-पर्यस्त, परिवर्तित	७.१.१९	पसंसणु-प्रसथन (कर्तरि)	४३९
पवंच-प्रपञ्च	१० १८.२	पसंसिज-प्रशंसित	६.१२.१
✓ पवञ्च-प्र + जज्जुं <sup>०</sup> जेइ ५ ५.१२; ज्जमि ९ ९ ४		पसणवयण-प्रसन्नवदन *	प्रश० १३
✓ पवज्जंत-प्र + वद् + शतृ	४.५ ८; १०.०.१	पसत्य-प्रशस्त	२.५ ८, ५.१२.१५, ९.१५.१३
पवद्धिअ <sup>०</sup> य-प्रवद्धित ९ ३ ६.९.११ ७, ११.५.८		पसत्यपद-प्रशस्त + पद (शब्द)	* प्रश० ६
पवणाह-पवनाहृत	५.७ १	पसन्न-प्रसन्न	७.११ १५
✓ पवन्त-प्र + वर्तयुं <sup>०</sup> इ ११.११ ७, अंति (विधि०)		पसर-प्रसार	२.२०.३
५.१२ २४		पसर-पुरतः	९.४.८
पवत्त-प्रवृत्त	१०.२६.५	पसर-प्रातः, हि० पसर, सवेरा ९.४.४, १० २३.१०	
पवत्ति-प्रवृत्ति	९.१० ६	✓ पसरं-प्र + रु + शतृ	८.३.९, १०.२६.११
पवत्तिअ-प्रवर्त्तित	८ १२.१४, १०.२४.४	पसरण-प्रसरण	५ ७.६
पवन्न-प्रपन्न	९ ८.४	पसरिअ <sup>०</sup> य-प्रसृत १.१४.१; ५.३.७, ७.८.८, ८.१४.९	
पवर-प्रवर	४.१२.२; ६.१० ६	पसविअ-प्रसवित	१.१३.६
पवरभुअ-प्रवरभुजः (पु० विशेष०)	३.५.७	पसाअ-प्रसाव	२ १३.१२, १०.१९.१८
पवळ-प्रवळ	२.९.१२	पसारिअ <sup>०</sup> य-प्रसारित	६.१४.१, ७ १ १३
✓ पवहंत-प्र + वह् + शतृ <sup>०</sup> (स्त्रियां) १० १८.७		पराहण-प्रसाधन	५.२.१६
पवहाविअ-प्रवाहिन	७ ६.६	✓ पसिचमाण-प्र + सिञ्च् + शानच्	८.१३.३
पवाल-प्रवाल	५ ९ ८	पसित्त-प्रसित्त	८ १३.१
पवाह-प्रवाह	६.५ १०, १०.१७ ८	पसु-पशु	२.६.१२, ११.१३.५
पवाही-प्रवाही (स्त्री० विशेष०)	५.१० ७	पसुत्त-प्रसुप्त	९.४.७, १०.९.४
पवि-(तत्सम) वज्र	५ ४ ९.५.१२.२५	पसुया-प्रसुता	९.७.४
पविअ-पवित्र	४.५ १४, ८ १२ ८	पसेअ-प्रस्वेद	६.१३.५, १०.१३ १०
✓ पविशअ-पवित्र्युं <sup>०</sup> सेअ (विधि०)	१.१८.४	पसोवण-प्र + स्वपन	१० ९.१
पविसि-प्रवृत्ति	६.१ ४	पह-पथ	२.२६.५, १० ८ ४
पविपंजर-पविपञ्जर, वज्रपञ्जर	११.२.५	पहअ <sup>०</sup> य-प्रहृत	६ २.८, ६, १०.११, ७.५.४
पविरल-प्रविरल	९ १०.६, १० ५.९	पहंजण-प्रमज्जन	८.१३ ४
✓ पविसंत-प्र + विष् + शतृ	५.१ २७	पहर-प्रहार	९.१०.२१
✓ पयुच्च-प्र + वद् <sup>०</sup> इ (आत्मने०) ४.१ १४, ५ २२.		✓ पहरंत-प्र + ह् + शतृ	७.१ १४
२३; १० २३ ४		पहरण-प्रहणः (कर्तरि)	६.४ ८, ७ ११ ७

पहरण्डिभ-प्रहरण + स्थित	३.९.१६	पामरी-(तत्सम) कृपक ववू	५.९.९
पहरन्-प्रहर + अर्द्ध	१०.२४.१	पामा-खुजली रोप	८.७.८
पहरिय-प्रहारित	८.११.१३	पाय-पाद, चरण	६.७.९; १०.म.६
✓ पहासंत-प्र + हस् + शतृ	३.१.१९	पायड-पादप	४.१०.७
पहाश-प्रभाव	४.६.६; ९.११.४	पायच्छित्त-प्रायश्चित्त	१०.२३.१; ११.८.८
°पहाड-प्रभाव	३.१३.९	पायत्यवण-पादस्थापन, पादपीठ	५.१.१४
✓ पहाव-प्र + धाव् °ह	३.१२.८	पायपहार-पादप्रहार	४.१७.४
✓ पहाव-प्र + भू °ह	११.१.५	पायय-प्राकृत	१.४.१०
पहावह-मति, कान्ति, देखें सं० टिप्पण	३.१२.८	पायार-प्राकार	३.१.२०; ४.६.५
पहि-पयिक	९.८.१८	पायाल-पाताल	८.३.६
पहिअ-य-पयिक	१.७.६; ३.१२.१२, ५.९.९	पायालसग्य-पातालस्वर्ग, पाताललोक	१०.१७.११
पहिकड-(दे) प्रथम, हि० पहला	५.१३.१८	✓ पारभ-पारय, °ए (आत्मने०)	४.१२.९
पहिलारभ-(दे) प्रथम, हि० पहला	१०.२१.८	पारक्क-परकीय (विशे०)	६.१.१०
पहु-प्रभु	२.१९.९, ६.८.४; ८.५.१४	पारग्गह-(दे) युद्ध	६.१.१२
✓ पहुच्छ-(दे) प्र + आप् °ए (आत्मने०)	३.४.५	पारणकज्ज-पारणकार्य	३.९.१२
पहुत्त-(दे) प्राप्त	३.११.१३, ४.१५.७; ५.१२.५	पारणत्थ-पारण + अर्थ	२.१५.७
पहुत्थि-प्रफुल्लित या (स्त्री०)	४.८.१४	पारद्धि-पारधी, भुगया	४.१३.१
पाभ-पाद, चरण	२.१२.८	पारंसिध-पारम्भित	१.६.१; १.१०.१२; ५.३.५
पाभ-पाद, प्ररोह	४.१९.१९	पारस-पारस (देश)	९.१९.६
पाइअ-पदाति	६.११.१	पाराबिय-पारित	३.६.१०
पाइअ-पदाति	१.१५.३; ६.८.१०	पारिय-पारित	४.११.८
पाड-पाप	३.११.६	पारियत्त-पारियात्र (प्रदेश)	९.१९.८
पाडस-पावस	१०.१४.१	पारोह-प्ररोह	प्रश्न० १७
पाडसंत-प्रावृष् + अन्त	९.५.५	✓ पाल-पाल् °ह	२.१६.७; ११.१३.९
पाडसपूर-पावसपूर	९.५.६	पालंअ-प्रालम्ब, शाला	२.४.१२
पाडससिरि-पावसश्री	०.९.७	पाकणिह-पालन + इष्ट, पालननिष्ठ	४.५.९
✓ पाड-पत् + णिच् °ह ५.१४.१४ °वि ५.७.१४;		पाकद्धयालि-(दे) बांसमे लगी हुई छोटी-छोटी	
पाडेवि २.६.२, °हहि (भवि०) ५.७.१७		भुवियाँ	५.७.१०
पाडक-पाटल	३.१२.८; ४.१५.१३	पालि-(तत्सम) पक्षि, मेढ	९.१०.१
पाडिअ-पातित	७.९.१४, ७.१०.१८	✓ पालिज्ज-पाल् °उ (विधि०)	३.१४.१८
पाडअ °य-पाठक	५.१.२७, ११.१५.११	पालियकर-पालितकर, शुल्कग्राहक	११.१४
✓ पादंत-पठ् + णिच् + शतृ	२.१४.५	पालिचर-पालित + घरा, घरापालक	५.२.२३
पाडण-पठन	४.९.५	✓ पाव-प्रापय् °ह ५.१३.२१; ९.२.१३; ११.४.२;	
पाण-प्राण	४.३.६	°मि ९.११.६; °हो (विधि०) ६.२.७;	
पाणहिअ-प्राणाधिक, प्राणप्रिय	२.५.६	पाविज्ज ६.१०.१०; पाविवि ९.५.५;	
पाणिड-पानी	४.१९.२२; ९.७.११	पावेसमि (भवि० उ० पु०) ९.१०.१४	
पाणिग्गहण-पाणिग्रहण	४.१४.१८	पाव-पाप	३.१३.१०
पाणिपत्त-पाणिपान, करपात्र	३.९.१४	पावक्कम्म-पापकर्म	२.५.१२; १०.१०.१३
पामर-(तत्सम) कृपक	९.४.१	पावक्कअ-पापक्षय	११.१४.८

पावज्ज-प्रज्जया	३.८.५	पिय-पति	संघ-स्कन्ध ४.१९.४; मरण २.५.१५;
√ पावज्ज-प्र + ज्ज् + णिच् °इ	१०.२.४	यम-प्रियतम ४.१२ २; ८.१३.१	
पावपिण्ड-पापपिण्ड	२.२.४	वियर-वित्तु	२.६.२; ८.१०.५
पावमई-पापमति	२.१८.१	पियलाळिया-प्रियलाळिता (स्त्री°विशे°)	पतिकी
पावरस-पापरस	५.१३.१९	लाइली ५.९.१४	
पावाळिया-प्रपालिका (स्त्री°)	५.९.१०	पियलि-(दे) टीका, तिलक	८.१४.१४
पाविभ-प्रापित, प्राप्त	७.१०.१४	पियवयण-पितृवचन	३.९.६
√ पाविज्ज-प्र + आप् (कर्मणि) °इ १.११.५.		पियसंग-प्रियसङ्ग	३.१२.९
- ११ ३.१		पिया-प्रिया २.१०.८; ३; ३.३.२; °वतनक-वतुष्क	
पाविय-प्राप्त	१.७.८; ७.४.१६; ८.६.५	३ १३ १	
पास-पार्श्व, हि°पास	२.१३.९; २.१९.८; ४.१२.२	पियामह-पितामह	१.१७.७
पास-पाश	१०.२६.९	पियारी-प्रियतरा, हि° प्यारी	२ ११ २
पासंगिठ-प्रासङ्गिक	५ ४.८	पियाळवण-(i) प्रियाळ + वण; (ii) प्रिया +	
पासगंठि-पाशग्रन्थि	१०.१४.१३	आलपन	१.७ ३; ४ १८.४
पासट्टिअ-पार्श्वस्थित	३.९.९	पियासिअ-पिपासित, प्यासा	३.१३.१०
पासणाह-पार्श्वनाथ	१.१.१३	पिक्कणअ-प्रेरणक. (कर्तरि)	९.३.९
पासेय-प्रस्वेद	५.१३.१०	पिक्किय-प्रेरित	९.१७.४
पाहन-पाषाण, हि° पाहन	९ ११.११	पिसुण-पिशुन, दुर्बल	२ १०.८; ११ ५ ७
पाहसिय-प्राहुरिक, पहरेदार	९.१४.२	पिहु-पृथु	९.१२ १
पाहाण-पाषाण १ २ ९; २.२०.७; °मय प्रथ° २०		√ पी-पा, पियइ ४.२ ७; ९.७.११; ११.१५.४;	
पाहुड-प्राशुन	५ १.२३	पियवि १०.७ ८	
पि-अपि	१.५ २१	पीउस-पीपूष	३.१.१
पिड-प्रिय, पति ४.१७ १७; ४ ४ १९.१८; ६ ८.१२;		√ पीड-पीड °इ	९ १२.१६
९ ४.१६		पीडावर-पीडाकर	७ ८.९
√ पिक्कमाण-ट्वच् + शानच्	१ १८.११	पीडिअ °अ-पीडित	१.१.५; ८.११ ६; १०.७ ७
पिंग-पिङ्ग (वर्ण)	२.९.३, ४.२१ २	पीड-पीठ, हि° पीडा	९ १८.८
पिंगळ-पिङ्गळ (ग्रन्थ)	४.९.२	पीणत्तंअ-पीनत्तकन्ध	५.१२.१८
पिंगलिय-पिङ्गलित	७ ६ ३	पीणत्थणी-पीनस्वनी (स्त्री°विशे°)	७.१२.६
पिंगीकय-पिङ्गीकृत	३.६.८	पीणिय-प्रीणित	१०.१.९
पिण्ड-पिण्ड, पितर पिण्ड	२ ६.२	पीवह-पीवर, पीन, स्थूल ५ १२.१३; °तह-तट	
पिण्वास-पिण्ड + आवास, छावनी	५ ११.२	४.१३ १२	
√ पिउज-पा °इ (आत्मने°)	१.७ ४; ३ ३ ८;	√ पुंअ-पुञ्ज, °इ	३ १४.२२
१०.५.७		पुंअय-पुञ्ज + क (स्वायें)	२ ३.३
√ पिज्जंत-पा + णच्	९.१०.१०	पुंअज-पुञ्जित	३.९ ९
√ पिट्ट-पीड °ट्टिणि	१०.१३ ९	पुंअच्छज-पुण्ड + झु + यन्	१.८.६
पिट्टि-पृष्ठ	४.२०.११	पुंअरिंकिणी-पुण्डरीकिनी (नगरी)	३.१.२१
पित्तळ-पित्तल (वायु), हि° पीतल	२.१८.५	पुंअरिंकिणी-पुण्डरीकिनी (नगरी)	३ ४.१२
पिय-प्रिया, कान्ता	२ १५.११	√ पुक्कर-पूत + कृ °इ	४.१.९.२०
पिय-प्रिय (जन)	३.११.१३	√ पुक्कर-पूत + कृ + णिच् °इ	५ ७.२०

पुक्ल-क्षय-पुष्करादौ, पुष्करवरद्वीप	११.११.१०	पुत्तवच्छल-पुत्रवत्सल	३८.१
पुक्ललावङ्ग-पुष्कलावती (नगरी)	३.१.१३	पुत्ताण-पुत्रानन	३.४.४
पुगल-पुद्गल	१०.३.४	पुत्ति-पुत्री	४.१२.५
पुच्छ-(तत्सम) पुच्छ, हि० पूँछ	४.२१.५	पुष्प-पुष्प	५.२.१९
√पुच्छ-प्रच्छ, °इ २.७.१; ९.१७.६, °सुविधि०)		पुष्पपरिणाम-पुष्पपरिणाम	११२.१६
८.६२; °ह (विधि०) ८.११.८		पुष्पयन्त-पुष्पदन्त (अप० महाकवि)	५.१.२
√पुच्छन्त-प्रच्छ + शतृ °ताहँ (बहुव०)	८.६.१२	पुरद-°ओ-पुरत.	१.१.८; ४.१९.९; ५.११.१; १०.४.१०
पुच्छिभ-पुष्टः	२.१.२	पुरंदर-पूरन्दर	२.२.९
√पुच्छिज्ज-प्रच्छ (कर्मणि) °ह ४ १ १३, ६.११.४;		पुरद्विष-पुरस्थित	५.१.१९
८.१.१२, ९.१८.९		पुरलोभ-पुरलोक, नागरिक	९.११.७
पुच्छिभ-पुष्टः	२.१८.९, ९.७.६	पुरवासि-पुरवासी	५.९.१५
पुञ्ज-पूजा	३.१२.१४	पुराण-(तत्सम) प्राचीन	४.४.५; ४.४.१०
√पुञ्ज-पूज्, °इ ३.१४.९; °वि ३.१३.४		पुरावासि-पुर + आवासी, नगरनिवासी	४.५.११
√पुञ्ज-पूर (कर्मणि) °इ ३.१४.१०		पुरि-पुरी, नगरी	७.११.११
√पुञ्जमाण-पूज् + शानच्	१.१८.५	पुरिष-पुरी + क (स्वार्थे)	६.१.१७
पुञ्जवय-पूज्यव्रतः (पु० विशेष०)	८.३.१४	पुरिष-पुरुष	९.१२.६
पुञ्जारह-पूजार्ह	१०.२३.२	पुरीस-पुरीष	१०.१७.४
पुञ्जिभ-√पूजित	१.१४.३	पुरुषोत्तम-पुरुषोत्तम	१.११.१३
√पुञ्जिज्ज-पूज् (कर्मणि) °ए १.१८.२		पुलक-पुलक	२.९.२०
पुट्ट-पुष्ट, पीठ	९.४.८	पुलिण-पुलिन	९.१३.१५
पुट्टाहर-स्पृष्ट + अक्षर	९.१९.११	पुलिणट्टाण-पुलिनस्थान	५.१०.८
पुट्टि-पुष्ट	२.१०.३	पुलिद-पुलिन्द, भील	३.१२.१६
पुट्टी-पुष्ट, पीठ	९.८.४	पुव-पूर्व	७.६.१२
पुववि-पुथिवी	११.१०.३	पुव्वत्थ-पूर्व + अर्थ	१.५.१८
पुण-पुनः	२.१९.२	पुव्वदिट्ठ-पूर्वदृष्ट	९.१०.१०
पुणरधि-पुनरपि	२.१०.१	पुव्वमणिअ-पूर्वमणित, पूर्वकथित	४.१४.१८
पुण्यणल-पुन + उन्नत	२.२०.१०	पुव्वमवन्तर-पूर्वभवान्तर	३.१०-१०
पुण्युत्त-पुनरुत्त, पूर्ववत्	१०.१७.१६	पुव्वमाय-पूर्वभाग	९.१९.१३
पुण-पुण्य	१.१८.५	पुव्वविदेह-पूर्वविदेह	८.२.२३
पुण्यपद्माव-पुण्यप्रभाव	३.३.१७	पुव्ववसंकेय-पूर्ववञ्जित	२.१९.८
पुण्यपाव-पुण्यपाप	३.१३.८	पुव्वमावर-पूर्वपरि	२.११.९
पुण्यपुञ्ज-पुण्यपुञ्ज	४.२.४	पुव्वमावरविदेह-पूर्व + अपर विदेह	११.११.६
पुण्यणिमिच-पुण्यनिमित्त	११.७.१०	पुव्वमावरोवहि-पूर्व + अपर उदधि	५.८.३
पुण्यमहंद्-पूणिमा + चन्द्र	३.४.१	पुव्वमास-पूर्व + आशा, पूर्वदिशा	३.१.९
पुण्यमचंद्-पूणिमा + चन्द्र	१.१४.११	पुव्वमासिअ-पूर्वाश्रित	२.२०.८
पुण्य-पुनः	२.१४.११	पुहह-पुथिवी	१०.११.१
पुत्त-पुत्र	२.५.१७; ११.५.६	पुहईसर-पुथिवी + ईस्वर	५.१.३०
पुत्तव-पुत्र	४.१४.२०	पूह-पूति	९.१.११
पुत्तकर-पुत्र + अहकुर	९.७.६	पूय-पूति	११.६.३
पुत्तदुह-पुत्रदुह	१०.१९.९		

पूसा-पूजा	१.१८२	पोमराग 'य'-पसराम	१.९.६; १.१६.११
पूर-पूर(क)	१.१४.५	✓पोमाश-स्तु 'इवि	६.१४.७
✓पूर-पूर 'इ' ३ ६.१०; 'हु' (विधि०)	९.८.१८	पोमाइश-अर्धसित	१०.१८.४
✓पूरंत-पूर + शतृ	१.१४९	पोमावइ-पचावती (वीर कविकी पत्नी) प्रश०	१५.
पूरिअ 'य'-पूरित ४. ६. ३; ४.२१. ६; ९. ८. ७;		पोस-पोष (क)	१०.१७.५
९.९.१.१३		'ष्य-आत्म -	९.९.५
पुष्माणकोडि-पूर्वकोटि, कालप्रमाण	३.१.१२	'ष्यवह-प्रचण्ड	५.१.११
✓पेक्ख-दृश्, 'ह'-९.१० २१; ११.१५ ५; 'मि-		'ष्यवार-प्रकार	४.१५.१
३.११.१०; ९.१५.७; पेक्खु(विधि०)		'ष्यथाच-प्रताप	४.५.७; ५.५.११
१.१३.२; २.१२. ८, ४.१७.१३; ४.१८. ६;		'ष्यवण-प्रपन्न, उद्यत	१०.१.९
१०. ४. ७; 'हि' (विधि०) ९. ८. १४;		'ष्यस्थ-(अ) प्रशस्त	१.१८.६
पेक्खिवि ४.२.१५; ६.१२.१०; पेक्खवि-		'ष्यहार-प्रहार	७.६.१०
४. १७. १२; ७. ११. ३, ८. १३ ६;		'ष्यिअ-अपित	५.१४.१५
१०.१४.१४; पेक्खेवि १.१०.७; पेक्खवि			
६. ८. ५; पेक्खेसहुं(अवि०बहुव०) ८.११ ८			
✓पेक्खंत-दृश् + शतृ	९.१३. ८	[ फ ]	
✓पेक्ख-दृश्, पेक्खु (लोट्)	१.१३.२		
पेक्खणय-प्रेक्षणक	५.१.२५	फंस-स्पर्श	१.६.४
पेक्खेवह-प्रपुव्य	८.११.१३	फसण-स्पर्शन्	२.१६.२; ३.६.१५
पेक्ख-✓दृश् 'इ'	१०.१३.३	फडक-फलक	१.५.२०
पेम्म-प्रेम	८.१३.१५	फडाडोय-फटा + आटोप	५.१४.७
पेम्मपुंज-प्रेमपुञ्ज	२.१५.१६	फणकडप्प-फण + कटप्र, फणसमूह	१.१.१४
पेयखंड-प्रेतखण्ड	५.१४.१४	फणस-फलस (वृक्ष)	५.८.९
✓पेक्क-प्र + इट्, पेक्किवि	७.१०.१३	फणाळ-फण + आळ-मनुष्य, फणवाला	७.२.१४
पेक्किल-क्षिप्त	७.९.५	फणिज्जक्ख-फणि + यज, नागयज	३.१२.२१
पेक्किलय-प्रेरित ४.१९.११; ४.२१.१३, ७.८.६;		फणिद-फणि + इत्त	१.१.२२
१०.२०.२		फरय-फलक (शस्त्र)	५.७.१७
✓पेस-प्र + इप्, 'इ' १०.१७.५; 'हि' (विधि०)		फरहरिय-फरफरायित	७.५.४
१०.१४.८		फलसर-फल + मार	१.७.८
पेसणकार-प्रेषणकार	७.७.१०	फलबंघ-फलबद्ध, फलमुक्त, फूले हुए	५.९.६
पेसणथार-प्रेषणकार	४.८.११	फलिह-स्फटिक	१.१७.५
पेसिअ 'य'-प्रेषित १.१३. ९; २.१५.७; ८. ९. ५;		फलिहफलख-स्फटिक + फलक	५.१.१४
१०.२०.९		फलिहमथ-स्फटिकमथ	४.१७.१५; ९.१.१२
पोअ 'अ'-पोत १०.११.३; १०.११.९		फलिहुल्लय-स्फटिक + लल्लय (मनुष्यार्थे) स्फटिक-	
पोइय-पोत, पिरियो हुआ	७.८.२	मथ ४.१०.१७	
पोगक-पुद्गल	१०.५.३	✓फाड-स्फाट्, फाडिवि ९.१०.२०; फाडेवि	
पोगकखंड-पुद्गलस्कन्ध	९.१.१३	९.१५.४	
पोट्टक-(दे) पोटली, पोट	११.६.३	✓फाडिअ-स्फाट् (कर्मणि) 'इ'	२.२.१, ११.४.४
पोत्त-पोत, वस्त्र	४.२०.२	फाडिय-स्फाटित	७.१.१८
		फार-स्फार, बहा	४.५.१५, ७.२.११
		फारक्क-फारक्क, फारक्क शस्त्रधारक	९.१३.१४
		फाल-फाल, फालांग, हि० छलांग	५.१०.१४

✓ फलिज्वमाण-स्फाट् (कर्मणि) + शानच् ७.६.२	वर्धय-वर्धन्य	५.१२.१५; ६.१२.४
फितकार-फेकार ध्वनि	वर्धव-वार्धव	३.७.१; ७.३.१४; ९.१५.१२;
✓ फिट्-फेट्, °हं (बहुव०)	, ,	११.३.४
फुत्कार-फूत्कार	वंधसमर्थी-वन्धसमर्था (स्त्री० विरो०)	१०.२०.८
✓ फुट्-स्फुट्, अंग् °इ ६.१.११, ७.६.२१; फुट्टति (बहुव०)	बंधुक-बंधूक (पुण्)	१०.१८.११
✓ फुट्टंत-स्फुट् + शतृ	बंधुर-बन्धुर, श्रेष्ठ	६.१.७
फुड-स्फुड	बंधूय-बन्धूक (पुण्)	१.१२.३
फुडिभ-स्फुटित	बंधंड-ब्रह्माण्ड	८.८.७
फुडिय-स्फुटित	बंधन-ब्राह्मण	२.४.९; २.६.१
✓ फुर-स्फुर् °इ ८.२.७, ८.८.१३	बंधचेर-ब्रह्मचर्य	३.९.८; ११.१४.११
✓ फुरंत-स्फुर + शतृ	बंधोत्तर-ब्रह्मोत्तर (स्वर्ग)	३.१०.१; ८.२.२५
फुरण-स्फुरण	✓ बल्ल-बल्म् °इ ११.५.२, °ति ४.१५.६	
✓ फुरङ्खंत-स्फुर + शतृ	✓ बल्लंत-बल्म् + शतृ	७.१२.४
फुरिय-स्फुरित	बलीस-द्वित्रिश, बलोस	३.३.१३; १०.२१.११
फुरियरुद्ध-स्फुरितरुद्धि, क्षोभायमान	बद्ध-बद्ध	७.११.१; १०.४.६; १०.१४.१०
फुरियाहरण-स्फुरिताभरण	बप्प-(दे) बाप, पिता	११.३.४
फुकिंग-स्फुलिङ्ग	बलपूर्व-बलदेव	४.४.४
फुल्ल-पुष्प, फूल	बलद्-बलीवर्द, हिं बलद	९.११.२; १०.४.१५
✓ फुल-✓ स्पृश्, फुंसति (बहुव०)	बलविसेद-बलविशेष, अत्यन्त बलवात्	१०.७.२
फेकार-फेकार	बलहर-बलहरः, (कर्तरि)	४.२०.१२
✓ फेड-स्फेद् °मि १०.१५.६, फेडिवि ११.६.८	बलाहिय-(i) बलाहक (ii) बलाधिक, बलवात्	१.६.३
फेडिय-स्फोटित	- बलाथ-बलाका, बगला	४.६.४
फेगाबलि-फेन + आबलि	बलावल-बल + अवल	५.१३.१६
फेरिय-(दे) घुमाता हुला	बलिभ-बली, बलवान	९.४.२
✓ फोड-स्फुट्, हिं फोडना, फोडिवि	बलिद्व-बलिष्ठ	४.२१.१६
फोडिभ°य-स्फोटित ५.३.१३; ५.७.२१, ५.१०.१०; ९.४.५	बल्लद्धर-बल + उद्धर-वत् + घरः (कर्तरि), बलघारक	६.१२.२
फोफल-पूगफल, हिं सुपारी	बल्ल-बल्ल	६.१२.३; १०.१९.१४
[ व ]	बल्लरंग-बल्लरङ्ग	११.७.४
वइरु-(दे) वैल	बहि-बहिय, बाह्य	१०.२२.१२
✓ वइस-उप + विव् °इ	बहिणि-भागिनी	५.२.१३; १०.६.५
वंदि-वन्दी	बहिर-बधिर, हिं बहरा	२.२०.६
°वंध-वन्ध, कर्मबन्ध	बधिरस-बाह्यात्	१०.२२.११
वध-(रति) वन्ध	✓ बहिरंत-बधिर + कृ + शतृ-बधिरि कुर्वन्	७.८.८
✓ वंध-वन्म् °इ	बहिरन्त्य-बाह्य + अर्थ, बाह्यादर्थ	१०.२०.१२
वंधिरुण	बहिरिय-बधिरित	५.८.५
	वहुअ-वहुक	५.४.४, १०.१९.१०
	वहुकाम-वहुकाम, बहुवासनायुक्त	११.४.६
	वहुचेड-बहुचेट + °उ-वत् (विजे०)	१०.१.४:१
	वहुजाण-वहु + ज्ञानी	१.२.१५

[ व ]

अइवत्त-(दे) वल	५.७.१४; ९.४.४	अहिरत्त-बाह्यत्व	१०.२२.११
✓ वइत्त-उप + विव् + इ	५.१२.२१	✓ वहिरत्त-वधिर + कृ + शतृ-वधिरी कुर्वन् ७.८.८	
वदि-वदी	४.११.७	वहिरत्त-बाह्य + अर्थ, बाह्यवार्थ	१०.२०.१२
वंध-वन्ध, कर्मवन्ध	२.९.१०; २.२०.२;	वहिरिय-वधिरित	५.८.५
	९.१३.१३	वहुअ-वहुक	५.४.४, १०.१९.१०
घघ-(रति) वन्ध	९.१३.१३	वहुकाम-वहुकाम, बहुवासनायुक्त	११.४.६
✓ वंध-वन्ध् + इ	९.१.१३; ११.५ ३	वहुचेष्ट-वहुचेष्ट + लृ-वत् (विजे०)	१०.१.४:१
वंधिरुण	१०.९.७	वहुजाण-वहु + ज्ञानी	१.२.१५



भट्टद्वूल-भट्टशार्ङ्गल	६.१४.६	भयवन्त-भयवन्त	४.५.८
भट्टारा-भट्टारक, स्वामी	३ १०.१०; ९.१०.१९	भयवन्त-भयवन्त	२ ५.७; २.६.३; ८ ४.३
भट्टारिभा-भट्टारिका, स्वामिनी	१०.१०.६	भयावण-भयावना	५.१३.११; ७.१.२२
√मण-मण् 'इ ४.२.२; १०.१२.९. 'मि ५.१२.२४;		भर-भार	४.११.१०; ७.३.१३
उ (विधि०) १०.३.४; 'हि ३.७.१०;		√भर-भृ, 'इ	५.९.१०
भणिवि ५.४.१०; भणिवि ८.१०.९;		√भरन्त-भृ + शतृ	९.९ ११
भणेवि ९.१०.१२ मणु (विधि०)		भरनिष्वाह-भारनिर्वाह	७ ६.१९
१०.१.१६; १०.८.१२		भरह-भरत	१.५.८; ३ १ ११
√मणन्त-मण् + शतृ	३.६.९	भरहखेत्त-भारत + क्षेत्र	४ ३.१५; ११ ११.९
मणिभ-मणित	२.१२.२; ५.१२.६; १०.१०.१२	भरहाडय-भरत (चक्रवर्ती) + आदिक	४ ४.३
√भाणिज्ज-मण् (कर्मणि) 'इ	११.१४.९	भरहालकार-भरत (मुनि) + अलकार	३.१.३
मणिय-मणित	४.१७.७, ५.१.१; १०.२५.६; 'य	भरिथ-भरित	३ १.१६
१.५.१२		भरिय-भृता (स्त्री० विशे०)	१०.१६.१०
√मणन्त-मण् 'इ ३.१४ २; ८.१०.१४; १०.२३.६		भरिथज-भरित + क (स्वार्थे)	७.५.२; ९.८.१३
मन्त-मन्त	४.५.१२, ८.५.१२	भरिथच्छ-मन्तकक्ष, भर्षीष (चन्द्ररगाह)	९.१९.४
मन्तार-मन्तार, पति	६.३.३; ९.३.२	मन्त-भाला (शस्त्र)	७.६.९
मन्तारधम्म-मन्तारिधर्म, पतिधर्म	२ १९ ३	मन्त-मन्त्र, मन्त्रा	८.१२.११
मन्ति-मन्तित	१.१४.४	मन्तु-मन्त्र + क (स्वार्थे)	८.१६.८; ११.९.८
मन्-मन्त्र	१.१७.३	मन्त्रायर्ह-मन्त्रायतकी (वृक्ष)	५.८.८
मन्त्रंग-मन्त्ररङ्ग (देवा)	९ १९ ४	मन्त्रि-वर्षी	४.११.४; ८.१५ ३
√मन्-भ्रम् 'इ ६ ६.२; ९.२.१०, १०.४.१५, मासि-		मन्त्रुकि- (दे) शिवा, शृगाली	५.८.२०; ७.१.१७
भ्रम् + क्त्वा ९ ९.१; भ्रमेवि १०.१७.१९;		मन्त्रुड-मन्त्रदेव	२.८.७, ३.५.७; ८ ४ १४; 'एव
भ्रमेसह (भवि०) ४.३.१३		२.९.१५	
√भमन्त-भ्रम + शतृ ९ १.१७; 'ी (स्त्रियाम्)		भन्त्रुवामर-भन्त्रदेव अमर	३.३ १८
८ ११.८		भन्त्रुहम-भन्त्रकर्मम	२.७.९
भमण-भ्रमण	१०.२०.१०; ११.३.२	भन्-भन्, ससार ९.११.१६, ११.१३.११, 'गङ्ग-गति	
भमर-भ्रमर	१ १२.५; ८.५ ६	(जम्) ३.५.१२; 'छेय-छेद ८ २.१९; 'जल	
भमरउल-भ्रमरकुल	४.१६.७	४.३.१२; 'णिसि-निशि ३ १३ ८; 'तरण	
भमरपति-भ्रमरपतिवृत्त	४.१७ ६	भन्तरण (कर्तृ०) भन्तारक १९.२३ १; 'तारज	
भमरी-भ्रमरवती (स्त्री० विशे०)	५ १०.८	'तारक ४.४.१३ 'धर-गृह १० १८ १२;	
भमरोली-भ्रमर + आवलि	५.९.८	'वहतरिणी-वैतरणी २.११.१३; 'सवारण-	
√भमाड-भ्रामम् 'डेह	७.४.१४	'सवारण-भन्त्रवारण ११.५.९, 'सिमुह-सिमुद्र	
भमाडिभ-भ्रमित	६ १४.११	४ ६.१३; 'सायर-सागर ११ २.९	
भमिज-भ्रमित	८ १५.५; ९.१८.९	भन्त्रुवन्त-भन्त्रवन्त	३.३.३; ८.२ २१
भमिय-भ्रमित	४.१४.१६; ४.१६.७	भन्त्र-भन्त्र	८ २ १९; १० १८ २
√भमिर-भ्रम् + हर (ताच्छीत्ये)	१.१.७; ५.८.५	भन्त्रवन्त्रु-भन्त्रवन्त्रु	१.५ ७
भम्मह-भ्रमक (ध्रुमकक्ष)	१०.७.१	भन्त्रवन्त्रु-भन्त्रवन्त्रु	१.१ ६, १० २४ ८
भम्मुहि-भ्रह्ममुष्टि (एक धूर्त्त चट)	१०.८.२	भन्त्र-भ्रमर	३ ३.५; ९ ९.३
भन्त्र-भ्रमर	३.११.३	√भा-भा, 'इ ४ १९.१५; माति	१० ३.५



भाभ-भाब	२.८.८; ४.६.७; ९.१.१५	मिंगलि-भृङ्ग + बलि, भ्रमर पङ्क्ति	१०.१.११
भाङ्-भ्रातृ, भाई	२ १०१; १०.८.६	मिमल-विह्वल	६.१०.३
भाङ्जाय-भ्रातृजाया, हि० मौजाई	१०.८.६	मिक्ख-मिक्षा	९.२.१०; १०.२.१९; १०.२२.२
भाङ्गि-(दे) भाङ्ग	९.१३.५	मिक्ख-भृत्य	५.१४.८; १०.९.३
भाभासुर-भा + भास्वर	५ ६ १२	मिक्खत्तण-भृत्यत्व	९.३.१३
✓ भाभ-भ्रामय्, भ्रामवि	७.१०.७; भ्रामिकण	✓ मिज्जत-भिद् + शतृ	६.७.६
६ १०.१०		✓ मिड-(दे) मिड्ना, मिडिज्जहो (विधि०)	६.३.८
✓ भाभंत-भ्रामय् + शतृ	४.१३.१५	✓ मिडंत-(दे) मिड् + शतृ	७.६.१४
भाभंडल-भा (प्रभा) + मण्डल	१.१७.५	मिड्मि य-मिडित, मिड गया	६.१०.५; ७ ५.१०
भाभिणि-भामिनी	१.१० ३; ३ १०.२१	मिन्म-मिन्न, विलक्षण	१.म.१३; ३.६.१२
भाभिय-भ्रामित	१ १७; ६.४.८	मिन्नदंत-(तत्सम) मिन्नदन्त, छिन्नदन्त	६.७.१३
भाभ-भाप	४ १३.९	मिक्क-मील	५.८.२७; १०.१२.१
भाभ-भ्रातृ, हि० भाई	१०.१४.८	मिक्कमाल-मिक्कमाल, (नगर), आधुनिक मिण्डमाल	९.११.७
भाभण-भाजन	५.७.१८; ११.१.१४	मीमगाय-मीमगवा	५.१४.१४
भाभर-भ्रातृ	११.५.५	मीय-मीत	१.११.१०
भारङ्ग-भारती	१.६ ४	मीस-मीष(ण)	५.८.३१; ७.६.८
भारङ्कत-भार + आक्रान्त	३.१३.१०	मीसण-मीषण	६.१०.१
भारह-भारत (देश)	१ ६.१७	मीसद्विय-मीषित	६.९.२
भारह-(i) भारत, महाभारत युद्ध		मुज-मुज	५.५.५; १०.१६.१
(ii) भारत देश	५.८.३१	मुजण-मुवन	१.१०.९; ३.२.३; ४.१०.३; ६.२.४
भारिय-भरित	५.३.११	मुजणसार-मुवनसार, लोकश्रेष्ठ	४.१२.९
✓ भाव-भास् ह	२.७ ३; १० ३.५; ११.५ १;	मुजधाम-मुजस्थाम, मुजबल	७.११.१
११.१३.२		मुजवंड-मुजवण्ड	१.११.९, ६.२.४
भावण-भावना	१.१६ १०	✓ मुज-मुज् ह	९.८.२२; मुंजेह २.२०.५; मि
भावण-भवनवासी देव, ११.१२.८; १.१६ ८ पारिल-		३.८.८. हि (विधि०)	३.८.६; १०.३.५
नार्यः, भवनवासी देवियौ	१.१६ ७,	मुंजिवि ८ १३.१४, मुंजिसह्वं (भवि० च० पु०	
✓ भावत-भावय् + शतृ	११ १५	बहुव०)	९.३.१५
✓ भाविज्ज-भावय् (कर्मणि) ह	११ ३.१	✓ मुंजंत-भुज् + शतृ	९.१.१७; हिं (बहुव०)
भाविष य-भाविष	२.१.१५; ४.१३ ५; ७.२.५	३.१ ६	
✓ भास-भाषय् ह	८.६ ११, ८ १६ १४; ह	✓ मुंजिय-मुक्त	११.९.२
(ताच्छील्ये)	५.५.६	मुक्ख-(दे) वृमुक्षा, हि० भूख	२ ९.८; १०.६.६
भासण-भापमाणः	१.१४.२	मुक्ख-(दे) वृमुक्षित	३.१३.१०
भासार्तिय-भापा + त्रय-संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश		मुत्त-मुवत, वशीकृत	६.८.३
४.११.१२		मुत्तसेस-मुवतशेष	९.८.४
भासिल य-भाषित	२.११.१०; ७.७.३, ९.१७.२	मुत्ती-मुवता (स्त्री० विधे०)	३.८.८
भासिरि-भास्वरा (स्त्री० विधे०)	४.१६.८	मुयंग-मुजङ्ग, शेषनाग	४.२२.५
भासुर-भास्वर	२.३.५; ४.८.१५		
मिडढी-मुकुटि	१०.२६.१		
मिंग-भृङ्ग	२.९.३; १०.१.१०		

भुयंग-भुजङ्ग (i) सर्प (ii) भुज + अङ्ग, देहलता  
(iii) प्रेमी, पति (iv) कामीपुरुष १.१०.६;  
१.१२.७

भुयंगम-भुजङ्गम, सर्प, १.१०.९; १०.१२.२  
भुयंगिणि-भुजङ्गिनी, नागिन ४.१९.१७

भुयञ्जक-भुनयुगल १.७.७

भुयत्तुल-भुजत्तुला (i) भुजाक्षी तुला (ii) भुजाव्यो-  
में धारण की हुई तुला ८.३.१०

भुयदंढ-भुजदण्ड १.११.२; ०बल ६.१४.९, वैय-  
वेग १ म० ७

भुवहालिया-भू + डालिका (दे), भ्रूलतिका ५.९.१०

भुवण-भुवन १.६.४; ३.१०.१५

भुवणुल्ल-भुवन + उल्ल (स्वार्थे) १.१०.१२

√भू-भू, भविस्सप (भवि० तृ० पु० एकव०) २.३.४

भूस-भूप. १०.१७.१५

भूह-भूति, मत्स्य १.१.६, ५ ५.११

भूगोथर-भूगोथर ५.१३.२८

भूजयकङ्क-भूजयुगल ५.१३.५

भूजग-भूमङ्ग, कटाक्ष १.१० १०, ९.१३.१०

भूजंगवत्त-भू + अङ्ग + वत् (युक्त्वा) ४.२२.११

भूमिकम-भूमिक्रम, देखें सं० टिप्पण; १.१५.५

भूमिमाथ-भूमिमाग ४ २१.७; ५.१.२३

भूय-भूत, प्राणी १०.३.२

भूय-भूत, पञ्चभूत १०.४.१

भूयावलि-भूत + आवलि १०.२५ ४, ११ १५.४

भूवङ्कवत्त-भू + वङ्कवत्त ४ १७.२१

भूवलि-भूवलि, भ्रूलता १.११ १५

भूवाळ-भूपाल ५.१ १६

भूसण-भूपण १०.१९ ७

भूसिज-भूपित ३ १३ १, ४.९.८

भूसिअंग-भूपित + अङ्ग ३.६.१

भेअ-भेद ११.९.३

भेअसंघाय-(दे) भेअ-कायर + संघात ७ ६.१३

भेय-भेद (नीति) ५.३ ४

भेय-भेद, फुट, विग्रह ६.१ १४

भेयअ-भेयक ८.१५.३

भेसिय-भेषित ५.११.१३

भोअ-भोग (i) भोगेच्छा (ii) केंचुली ३.९.१७

भोअअ-भोगिक, भोगयुक्त, साधनसम्पन्न ५.९.२

भोग-(तत्सम) (i) कणाटोप (ii) वस्त्रामरणादि  
भोगोपभोगसामग्री १.१०.६

भोज्ज-भोज्य १०.२.१; १०.२०.१०

भोज्जसत्ति-भोज्यशक्ति १०.२.१

भोय-भोग २.९.११; ४.९.१२

भोयण-भोजन २.१२.२, ८.१३ ८

भोयणसत्ति-भोजनशक्ति १०.२.१

भोयभूमि-भोगभूमि ११.११.५

भोयायर-भोग + आदर ५.२.१६

[ म ]

म-मा (निपेचार्ये) ३.७.१०; ३.१३.५

मअ-मद ६.५.१०

मइ-मति, मतिज्ञान ३.५.१; १०.५.१२

मइद-मूगेन्द्र ६.७.८; ७.८.६

मइद-मत्पण्व ११.८.५

मइजरळ-मतिजरळ, अतिथय प्राज्ञ ९.१०.७

मइणण-मतिज्ञान १०.१८.७

मइमोहण-मतिमोहणः (कर्त्तरि) ५.१३.७

मइर-मदिरा ४ १७.१५

√मइल्ल- (दे) मलिन + विचप् + शतृ ६.४.१०

मइलण- (दे) मलिनोकरण ६ ५ ११

मइलिय- (दे) मलिनित ११.७.९

मइलळ- (दे) मलिनोक्रियमाण. (विशेष) ५ ७.६

मइवर-मतिवर, अल्ल, मतिमान् ५.१२ २२

मइ-मति ८.९ १५; ९.१६ ५

मड-मय, युक्त १ १६ ११

मड-भूत ३.९ १६

मड-मद ३ १२ ५

मडळ-मुकुट, हि० मीड २.२०.११; ८.१२.४;

१०.२०.३

मडपिंड-मुत्तिपण्ड १० ४ ४

√मडरिज्ज-√मुकुट् (इमेणि) इ ३.१२.५

मडरिय-मुकुरित ४.१५.१३

√मडल्लंत-मुकुल्य + शतृ ९.१३.१७

मडलाविअ-मुकुलायित ७ २.५

मडळि-मौल, मुकुट ५.१.१६; ८.११.१५

मडलिय-मुकुलित ८ १६ ९

मडर-मयूर ४.७.६; ५ १० १४, ७.९.९

मं-मा (निपेचार्ये) ६ १२.३

मंक्रुण-मत्क्रुण	१० २६.४	मंदुज्जोअ-मन्द + चद्योत	११.७.५
मंगेकराहअ-मङ्गलराजि	४.५.१७	मन्दुर-मन्दुरा	५.१०.२२
मंगलवन्त-मङ्गलवन्त	९.४.९	मंसदक-मासखण्ड	१०.१० ७
मंच-मञ्च	८.१६.३	मगह-मगव	२.३.१०; ५.८ ३८
मंचअ-मञ्चक, मञ्च	८ १२.१२	मगहदेस-मगघेदेस	१.६.२; ३ १४.६
मंजरि-मञ्जरी	१ ८ २	मगहा-मगव	२ ४.७
मंजिट्ट-मंजिज्ठ, हि० मंजीठ	११.७.४	मगहाहिअ-मगवाधिप, मगघेस	३ १४.३, ४.२२ २५
मंड-मण्ड, हुठात्, बलपूर्वक	१.११ २; ५ ५ ४	मगहेस-मगघेस	७.१३ ६
मंड-मण्ड, बल	७.१० ९	मगहेसर-मगघेसर	१ १४ १
मंडण-मण्डन, वस्त्र	४ १२.९	मग्ग-मार्ग	४ २१.२; १०.१७ १, १०.१९ ११
मंडण-मण्डन, बनाव-शुद्धार	९ १२.१७	√मग्ग-मार्ग्युं ह	४ ९.७, ६.१२.८
मंडलंतर-मण्डल + अन्तर, प्रदेशान्तर	९.१७.९	√मग्गंत-मग् + शतृ	५ ३.४
मंडकरग-मण्डलाम, अंसि	७.२.९	मग्गण-मार्गण, बाण	७ ८.१४
मंडलवइ-मण्डलपति, राजा	२.५.३; ४ २०.६	मग्गरोह-मार्ग + रोष (अवरोष)	५.७.२४
मंडकि-मण्डली	५.८.२८	मघकुंद-मुचकुंद वृक्ष	४ १६ २
मंडकिय-माण्डलीक	५ १.९, ५.७.१०	मच्छ-मत्स्य	४.२१ ४; १०.१० ८
मंडली-मण्डली	१.११.९	मच्छिय-मसिका	७.१.१२
मंडव-मण्डप	२.९.४, २ १० ३	मच्छी-मत्स्यवती (स्त्री० विष्टे०)	५.१० ८
मंडवथाण-मण्डपस्थान	३.२ ९	मज्ज-मज्ज	४ २.७, ४.१७.३
मंदिअ ०अ-मण्डित ३.१.२१; ४.२.८; ४.१३.२; ११.११.१		√मज्ज-मत्स्य, ह	६.५ ३
√मडिज-मण्डय (कर्मणि) ह	११.१४.२	√मज्जत-मत्स्य + शतृ	१०.१८.८
√मडिर-मण्ड + हर (ताच्छील्ये)	६ १० २	मज्जणवड-मज्जनवट	४.१३.१२
मंत-मन्त्र, मन्तव्य	९.४.३, ९ ९ ४	मज्जपट्ट-मज्जपात्र	५.७ २१
√मंतड-मा + शतृ, हि० समाना	२.१० २०, मनु ८ ८.७	√मज्जमाण-मत्स्य + शानच्	५ १०.६
मंतथ-मन्त्र + अर्थ	४.९ ५	मज्जाथ-मर्यादा	५.३ ७
मंति-मन्त्री	१.१२ ८, ५.१३.१२	मज्झ-मध्य, कटि	२.५ ५; ९.१७ ७
√मंतिज-मन्त्र्य (कर्मणि) ह	९ ८.८	मज्झाकिय-मध्यङ्कृत	११ ११.२
मंतिजणुअमव-मन्त्रितनूदमव, मन्त्रिपुत्र	३.७ ८	मज्झाद्विय-मध्यस्थित	१.१७.५
मंतिमुअ-मन्त्रिसुत	३.९.१०	मज्झण-मज्जाह्ण	५ ७ २, ८ १२.१४
√मंर-मथुं ह	८.१५.११	मज्झस्थ-मध्यस्थ	१.२.६
मंथाण-मन्थान, हि० मथानो, हांडी	८.१५.११	मज्झिम-मध्यम	११.११.१
मंदमई-मन्दपति	१.२.१	मदप्पर-(दे) मान, गर्व	७ ११ ७
मंदमार-मन्दमार वृक्ष	४ २१.३	मदिय-(दे) आवृत, मदा हुआ	११ ६.२
मंदर-मन्दर पर्वत	१.१.१	मण-मान	२.१५ १४, ४ २१ १९; १० ११ ३
मंदल-मंदल वाद्य	१०.१४ १२, १० १९ ३	मणअहिराम-मन + अमिराम	२.९.७
मंदार-मन्दार वृक्ष	४ १६ २	मणकसाय-मन + कपाय	२ ७.१०
मंदी-मन्द-मन्द (विष्टे०)	९.१०.६	मणयोहथेण-मन + अर्थ + ओष + स्तेन; मन (या मनोरथ) समूह रूपो घनको घुरानेवाला	४.५ ६

मणपञ्जय-मन पर्यय (ज्ञान)	३.५.१	मणिय-मानित, स्वीकृत	९.११.१२
मणसंक्रुण-मनमत्क्रुण	८.८.१२	√मणिज्ज-मनु (कर्मणि) इ	१.५.११
मणरंजन-मनरञ्जन, मनोरंजन करनेवाला	४.४.११	मत्त-मात्र, केवल	२.१५.१९
मणरोहण-मनरोधन, मनोनिरोध	११.१४.७	मत्त-मत्त, मतवाला	४.१६.७; ५.१०.२०
मणवल्लह-मनोवल्लभ	२.१५.११	मत्थय-मस्तक	२.४.२
मणसुद्धि-मनसुद्धि	५.९.१५	मत्थिय-मथित	७.१.१०
मणहर-मनोहर	५.२.२१	मदल-मदल	५.६.८; ४.८.३
मणहारिणी-मनोहारिणी	२.१५.४	मदव-मार्दव; मार्दवयुक्तचित्त	११.१४.३
मणाल-मनाक्	२.१५.१७	ममत्ति-मम + इति, ममत्व	११.५.१०
मणिकडय-मणिकटक	९.६.२	मम्मण-(दे) कन्दर्पालाप, कामवार्ता; कामुक फुस-	
मणिसुद्ध-मणिसुचित	१.१५.६	फुगाहट ८.११.१४	
मणिचदकंति-चन्द्रकान्तमणि	३.३.८	मम्मण-अव्यक्तवचन	९.११.४
मणिशुत्त-मणियुक्त	१०.१९.७	मय-(i) मद, हस्तिमद (ii) मद-सुरा	१.१०.११;
मणिह-मन. + इष्ट, मनोज	५.१०.४	१.१५.२; ५.१०.६	
मणिमण्डल-मणिमुकुटधर	३.३.१३	मयंक-मृगाङ्क, चन्द्रमा	४.५.१५
मणिमुञ्च-मणिमुक्, मणि छुडानेवाला	५.५.९	मयंक-मृगाङ्क राजा	५.२.१३; ६.१.१२
मणिरथय-मणिरत्न	९.८.७	मयंग-मातङ्ग, हस्ति	५.१०.२१, ६.७.१०
मणिवण-मणिदर्प (रग)	७.१२.३	मयङ-भृगोन्म	६.१०.६
मणिसार-मणिजटित	३.१.१०	मयगल-मदगल, हस्ति	५.१०.६
मणिसिह-मणिशिख, मणिवेखर, रत्नचूल (विद्याधर)	६.१०.८; ७.३.४	मयच्छि-मृगाङ्गी (स्त्री० विभे०)	१०.८.११; १०.१०.६
मणिह्वा-मणिष्ठा (स्त्री० विभे०)	प्रश्न० १५	मयलक-मदलक	४.२०.९; ७.५.३
मणुज-मनुज	३.१०.७	मयलोडिय-मदयोजित, गविष्ठ	९.३.८
मणुज-मनोद्भव	८.६.३	मयण-मदन, कामदेव	४.१८.३, ४.१८.१४
मणुज-मनुज	३.११.७; १०.१०.१६	मयणवाडु-मदनवाडु	४.१३.१
मणुयत्त-मनुजत्व	१०.४.१५; १०.१७.१९	मयणमय-मदनमद	८.११.१२
मणुयत्तण-मनुजत्व + ण (स्वार्थे)	२.२.४	मयणवाण-मदनवाण	९.२.५
मणुज-मनुज	५.१३.१७	मयणावास-मदनवास	४.१९.१६
मणुसुद्ध-मनुष्यगति	५.४.५; ७.७.९	मयनाहि-मृगनाभेय, कस्तूरी	४.१७.१६
मणुसोत्तरगिरि-मानुषोत्तरगिरि(पौरा०)	११.११.११	मयमुक्-मदमुक्त	४.२२.१९
मगौरम-मनोरम	३.२.३	मयरङ्क-मृकन्द	५.९.७, १०.१.१०
मणोरह-मनोरथ	१.११.२०; ७.३.१२	मयरचिब-मकरचिह्न, मकरध्वज	कामदेव ४.१३.८;
मणोरहारण-मनोहरकारक	९.१५.१२	१०.२०.४	
मणोहारिय-मनोहारी	५.६.१४	मयरद्वय-मकरध्वज	४.७.६; ९.१.५
√मण-मनु, इ	३.९.९; ९.३.१; १०.४.१२;	मयरमच्छ-मकरमत्स्य, मगरमच्छ	४.६.५
°मि ४.२.११; १०.६.८; मण्णि (वहुव०)		मयरहर-मकरगृह समुद्र	८.३.८; १०.१८.७
३.१७, ९.१२.३; मण्णिविणु ८.१४.१३;		मयराय-मकराकर, समुद्र	९.५.७
°हि (विवि०) ३.५.१२		मयलङ्गम-मृगलङ्करी, चन्द्रमा	४.७.१०, ८.१५.४
√मण्णत्त-मनु + शतृ	२.१४.३; ५.१२.२२	मयसंग-मदसङ्ग, मदसहित	१.१०.१०
		मयाइ-मद आदि कपाय	११.१४.३
		मयामिम-मृगामिप	५.८.२६

मयालोयणी-मृगलोचनी

४.५.६

महाकरि-महाकरि-महागज

९.५.५

✓सर-मृ, °ह ९.६.५; १० १४.१६, °मि ९.६.६;

महाकन्व-महाकाव्य १.१८ २२; ३.१४ २५

°उ (विधि०) ७.७.७, मरवि २.२०.९;

महागज-य-महागज ६.५.३; ७.१०.११

मरेवि ३.१३.१५; मरेवि ३.५.८;

महागह-महागति, परमपति १.१.५

११.१५.७; मरेप्यिणु ८.२.२२

महाचुण-महाचूर्ण, (हि०) मुवाशिख चूर्ण १०.९.२

महाबह-महा बटवी ५.८.५

✓सरंत-मृ + शतृ

१०.१४.१४

महागयर-महानगर ८.१३ १२

मराग्वण-मरकतवर्ण

१.११.३

महाणस-महानस ३.३.७

मरागय-मरकत (मणि)

५.९ ८.८.१५.२

महागुमाथ-महानुमाव ७ ३.७

मरागयमिति-मरकतमिति

३.३.९

महातव-महातप १०.२२ ८; १०.२३.५

मरह-वर्णयुक्त

७.५.१५

महातम-महातम (प्रभा, नरकभूमि) ११.१०.९

मरहट्टि-महाराष्ट्री स्त्री, हि० मराठिन ४.१५ १५

महादिहि-महापुति ९.१६.१०

✓मरिण-मृ (कर्मणि) °ह

१०.१४.११

महादुस-महादुस २.१२.८

मरु-मरुत, मासु

४ ६ ३, ९.१२.३

महावथ-महावज ५.११.११

मरुमोयण-मरुत + भोजन, वायुमोली सर्प ३.९.१७

महापडम-महापड (राजा) ३.५.१०, ८.२.२३

मरुण-मर्वनः (कर्त्तरि)

४ १५ १०

महापह-महापथ ८.५.१३

मरुवाचक-पर्वत

५.२.१२, ९ १९.१

महाकहाक-महाकण + बाल (मनुष्य) महाकणयुक्त

मरुिक-वृक्ष

४.२१.२, ५ ८ ८

७.२.१४

मरु-✓मापय °ह

४.१९.१८

महासर-महासार २.९.१९, ५.१३.२२

मसाण-स्मशान

११.६.४

महासन्व-महासन्व १०.१८.४

मसिण-मसुण

२ १४.१०, ८.१६.८

महासरु-महामरुत ३ १४.७

मसियाक-मसिकाल (विशेष०)

१०.२६.४

महासांस-तत्सम) नरमास १०.२६.२

मसी-मसि

४.७.४

महारथ-हमारा ११.१४.१०

मह-मम

२.१६.८; २ १९.७, ४ ३.८

महारह-महारति, महाप्रीति ८.११.१७

✓मह-मह, काङ्क्ष °ह

९.२.७; ९.१४.१२

महारडि-महास्वन २ १३.९

महं-महत्, महान्

९.१९.७

महारह-महारथ १.११ ८

महपुवि-महावेवी

१०.१६.१०; १० १७.२

महारा-हमारा ९.१०.१९

महकह-महाकवि

१.३.४; १.३.९

महारायाहिराय-महाराजाधिराज ५.१ १४

महण-मन्थन

८.१४.१०

महारसि-महा + श्रुति, महपि ३.१३ ८; ७.१३.१५

महणह-महानवी

४.९.२

महावह-महा आपति ५ १३.८

महणव-महार्णव

८.१४.१५; ९.५.१३

महावण-महावर्ण, रक्तवर्ण १०.९.२

महत-महत्, महात्मा

३.७.१; ५.१३ २३

महावथ-महावत ३.९ १५; ८.२.२२

महपुरिस-महापुस्व

४.४.५

महासंत-तत्सम) महासन्त, महाजन ८.२.८

✓महमहंत-मह + मह + शतृ

४.६.३

महासिह-महानिखर १.१३.१०

महाराय-महाराजा

४.२०.७; ५ १३.३

महाड-महा + बाहव, महायुद्ध ५.७ २७

महरिह-महाराष्ट्र

९.१९.४

महि-मही, पृथ्वी ७.२.६; १०.२५.११

महरिसि-महर्षि

४.६.८; ५.२.२२

महिथ-महिथ, पूजित २.६.४

महवक-महत् + क (स्त्रायें)

१ ८.२; ११.४.२

महिणाह-महीनाथ १.१६.२

महावहिय-महाउत्कलिक, लडीसा निवासी ९.१९.१९

६.१४.१०

महिषचउ-महीशान्त ४.२.१७

महावहि-महायुधि, महायोद्धा

१.६.२, ७.५.५

महिथक-महीतल

महिल-पहिला	५.७.२; ९.१.१६	माणिक-माणिक्य	४.८.१२; १०.११.४
महिलायण-महिलाजन	२.१२.६	माणिकजडिय-माणिकजट्टि	५.१.२०
महिचङ्ग-महोपति, भूपति	१०.१३.४, ११.४.७	माणिणि-मानिनी	३.१२.२; ८.११.१४
महिवट्ट-महोपृष्ठ, धरणिपृष्ठ	४.२२.२२; ५.१२.२, 'बोढ' पीठ २.१०.१; ८.३.१६	माणिय-मानित, स्वोक्त	२.९.११
महिस-महिष	५.८.१७	माणुणञ-मान + चत्त	७.१३.२
महिमि-महियो, महारानी	१०.१५.३	माणुस-मनुष्य	९.१५.१; १०.१७.५
महिसी-महिपो (i) महारानी (ii) भैरव	२.५.३; ५.९.४	माणुसगोत्त-मनुष्यगोत्र	४.२.१
महिहर-महीधर	८.७.१४, ११.४.५	माणुसत्त-मनुष्यरत्न	१०.१३.६
महीषल-महीतल	३.१४.१०	माभ-माया, मातुल	९.१८.९; १०.१२.९
महीस-महि + ईष, नृपति	५.८.३२, ७.१३.१७	माय-मातु	९.१५.६; १०.१९.९
महीहर-महीधर	९.५.५; ९.१२.१०	मायंग-मातङ्ग	५.११.१२; ७.६.३
महु-मधु	१.१०.११	मायति-मातु, माता	४.१.३; १.१३.५
महु-मधु (महुवा) वृक्ष	१०.७.२	मायरी-मातु	९.१७.१
महुभर-मधुकर	८.१२.४	माया-माता	८.६.२
महुकीला-मधुकीला, वसन्तकीला	८.२.१	मायामास-मायामाया, लक्ष्मेशी मातुल	१०.१.५
महुवड-मधुवट, मदिराकुम्भ	४.१७.१२	मार-वृक्ष	५.८.१२
महुमत्त-मधुमत्त	८.१४.५	मार-कामदेव	१०.१.७
महुर-मधुर	४.१५.३, ४.१७.११; ८.११.१४	√मार-मार्यु <sup>१</sup> ८.८.९; मारिऊण	५.७.२५; ६.१२.८
महुगखर-मधुर + खर	५.१.२७	मारण-मारवा	२.२.३
महुगत्त-मधुरत्त, माधुर्य	१०.१.३	मारविज <sup>२</sup> -मारयित, मरवा डाळा	७.७.२; १०.१०.१३
महुगयर-मधुरकरः (कर्तरि)	८.१३.१४	मारि-मार-काट	५.३.३
महुसंच-(i) मधुसंचय, मधुलज	९.१२.१८	मारिज <sup>३</sup> -मारित ६.७.१३; ९.११.१३; १०.१२.२	
महुगलह-मधुरलह	३.१२.१७	√मारिज्ज-मृ (कर्मणि) <sup>४</sup>	९.४.१
महुसत्ति-मधुरशक्ति	१३.३.३	मारिणि-मारिणी (स्त्री० विद्ये०)	२.१५.४
महुस्यण-मधुसूदन (श्रेष्ठ)	१.५.२	मार्य-मर्यु	११.८.१०
महैसर-महेश्वर	१.१०.७	मार्य-मर्यु (i) हनुमानके पिता, (ii) पवन ३.१२.२	
मा-मा (निपेवार्ये)	१०.२.६	मार्यवेध-मार्यु + वेध	५.२.४
माभ-माता	९.१५.१०	माल-माला	२.४.२
माह-मातु, माँ	९.१५.२, ९.१६.५	माल-माला, लक्ष्मी	१०.१.२२
माहहर-मातुगृह	८.१०.९	मालह-मालती लता	३.१२.१०; ४.१३.११
माण-मान, सम्मान	२.२०.१२; ३.१२.५	मालहल्लय-मालतीलता (मृगाङ्गुली रानी)	५.२.१३
√माण-मनु <sup>५</sup> (आत्मने०) ३.४.१०; 'हि० (वहव०) १०.५.४; 'हुँ (उ० पु० वहव०) ८.१०.१७		मालतकण्ठ-माला + कण्ठ, स्वर्णमाला	४.१२.३
माणदंड-मानदण्ड	५.८.३	मालव-मालवा (देश)	१.५.१; ९.१९.८
माणव-मानव	११.२.२	मालविणि-मालविनी, मालवदेववासिनी	४.१५.१२
माणस-मानस	३.१.७	मास-मांस	७.१.१०, १०.१२.५
		माह-माघ (महीना) प्रथ० ४	१०.२३.१०
		माहव-माघव, वसन्त	४.१६.८

माहव-मावव (वृत्तनाम)	१.१०.२३	मुकटहास-मुवत + अट्टहास	७.६.७
माहुलिंग-मातुलिङ्ग वृक्ष	४.२१.३	मुकणाय-(१) मुवतनाद (११) मुवतफेत्कार	५.८.३५
माह्वर-माह्ववर	४.१८.९	मुकविरोह-मुवतविरोध	१.१६.१०
मि-अपि ३.४.५; ७.११.११, ८.९.१०; ९.२.८, ९.६.८		मुकसद-मुवतगवद, नि.शब्द	१०.९.१
मिग-मृग	३.३.१०, ५.९.९	मुक-मुवत	१०.१५.१
मिगकडगपाळ-पैतरा, देखें सं० टिप्पण, ५.१४.२२		मुक्क-मूर्ख	४.१७.४
मिगणयण-मृगनयना	९.५.१३	मुखचण-मूर्खत्व	९.५.२
मिच्चु-मृत्यु	५.५.१२	✓मुचमाण-मुच् + शानच्	९.१४.७
मिच्छत-मिच्यात्व २.६.८; २.८.८; 'भर' 'भार' २.१६.४; 'मोह' ३.७.१३		मुच्छ-मूर्च्छा	३.७.४
मिच्छा-मिथ्या १.१.१४, १०.३.१०; 'दंसण' 'दर्शन' १०.४.११; ११.७.८		✓मुच्छ-मूर्च्छ, 'हर (ताछीत्ये) ६.९.८; ९.१३.१६	
मिट्ट-हि० मेंठ, महावत	७.६.२	मुच्छावसग-मूर्च्छावश + अङ्ग	६.११.८
मिट्टत-मिट्टव	९.१२.१६	✓मुच्छिज-मूर्च्छ (कर्मणि) 'इ	९.१०.४
मित्त-मिव	६.१२.४	मुच्छिज-मूर्च्छित, मोहित	९.११.४
मियंक-मृगाङ्क (राजा) ७.३.२, ११.२.३, 'पहु' 'प्रभु' ५.१२.९		मुट्ट-मुषित	५.७.२०
मिरियचिलि-हि० मिर्चकी बेल	१.७.६	मुट्ट-मुषित	९.१०.२३
✓मिक-मिल्, ई० (बहुव०) १०.२५.११; मिलिनि ९.११.१४		मुट्टिगाह-(१) मुट्टिगाह (११) मूठ	४.१३.४
✓मिलंत-मिल् + शतृ १.१२.५, ४.१५.१४; ७.६.३		✓मुट्ट-मुक्त, मुड्डिनि	७.३.१३
मिलण-मिलन, मिलना	७.५.११	✓मुण-ज्ञ, 'इ ५.१३.१६; मुणह ६.१०.९; 'उ' ४.१२.११, (वर्त० द्वि० पु० एकव०) ९.५.३; 'हु' (विधि०) ११.३.७; मुणि (विधि०) ३.९.२२; ११.९.६; मुणिनि ८.६.११; १०.१७.१२; मुणनि ३.९.१ मुणनि ९.१७.५	
मिलिअ 'य'-मिलित ४.१०.१२; ८.८.१४; १०.४.११ १०.८.३		✓मुणंत-ज्ञ + शतृ	९.६.१०
✓मिल्ल-मुच् मिलिनि ४.२१.१९; ७.७.१; १०.१०.८		✓मुच-मुच्, मुचव १०.२०.८; १०.२३.४; मुचव ३.४.५; मोत्तूण ८.२.१०	
मिल्लिय-मुवत	८.६.३	✓मुचव-मुच् + शतृ	४.१९.४
मिस-मिप्, वहाना	४.१७.९; ८.१६.६	मुणाल-मृणाल	४.१४.१७
मिट्टण-मिथुन 'उल्ल (स्वायें) ४.२०.१; ८.१४.१६		मुणि-मुनि २.१५.९; 'दंसण' 'दर्शन' ३.६.५; 'पुंगव' २.१.२.३; १०.२४.२; 'मग' 'मार्ग' १०.२२.१; 'वयण' 'वचन' २.१२.१	
मीण-मीन	९.५.८; १०.१०.९	मुणिद-मुनी-द्र	२.११.४; २.१९.८
मुल-मृत	५.१३.६; १०.१२.८	मुणिय-ज्ञात	६.११.७; ९.१४.२
✓मुल-मुच्, मुयवि २.१८.११; मुड्डिनि १०.३.७, मुएवि ८.११.३		मुणी-मुनि	२.६.६; २.६.७
✓मुलंत-मुच् + शतृ	२.५.१६	मुत्त-मूर्त	१०.४.२
मुद्य-मृत	१०.१४.७	मुत्तदुवार-मृत्तदार	९.१.११
मुड-मृत	३.१३.१२; ९.११.२	मुत्तनिहाण-मृत्तनिधान	११.६.३
मुड-मुण्ड	६.२.५; ६.१०.२	मुत्ताहक-मृत्ताफक	४.१०.५; ७.४.२
मुडिय-मुण्डत उ० (स्वायें)	२.१८.१०	मुत्ति-मुवित, त्याग	१.१.७
मुक-मुवत	१.१७.२; ५.७.१४; १०.१४.२	मुत्तियमय-मुवतमद	५.१.१९
मुकअ-मुवत	९.८.१७; १०.२०.६		

सुनित्यसय-मोक्तिकगत	५.१.१७	मेकावज-मैलापक, मिलाप, हिं० मेला	७.२.११
सुद-मुद्रा, चिह्न	३.११.१०; ८.१४.११	✓मैल्य-मुच्, °ह ९.१४.८; मैलिह (विवि०)	
सुदिभ-मुद्रित	१०.२०.७	५.१३.४; मैलेवि ५.९.१७; ८.१०.६;	
सुद-मुग्ध, मोला	४.१७.८; ८.१५ १०; ९.१७.२	मैलेवि ७.१२.११; ९.६.१०; १०.१.१६	
सुदबिभ-मुग्धा (स्त्री० विज्ञे०)	२.१५.४	✓मैल्यंत-मुच् + वातु	१०.१९.१०; ११.२.३
सुदमुद्रि-मुग्धमुखी	९.५.३	मैल्यिच-मुक्त्त ४.१६.७; ७.११.३; ८.६.२; ९.१३.१४	
सुदि-मुग्धा (स्त्री० विज्ञे०)	४.१७.८	१०.२०.२४	
सुदिय-मुग्धा	१.१०.५	मेवाह-मेवाह प्रवेष्ट	९.१९.७
✓सुय-मुच्, °इ २.१८.६; ९.७.९; १०.१४.६;		मेहवण-मेयवन	प्रश० २०
मुयवि ७.२.१०; १०.१०.११		मेहवणपट्टण-मेयवनपत्तन	प्रश० ३
✓सुयंत-मुच् + वातु	९.१०.१२	मेहुण्ट-मैयुनिक, मामाका लवका, साला, ६.१.१.७	
सुयभ-मुत्तक, मुन	७.४.१७; ३.११.६	मोक्ल-मोक्ष	२.१.१३; ९.२.१६; १०.३.७
सुयसेस-मुत्तगैव, मुत्तप्राय	७.२.२	मोक्लयाण-मोक्षस्थान	४.३.१२
सुरभ-मुरज बाध	१०.१४.९	मोक्लवास-मोक्षवास	९.१४.११
सुरथ-मुरज	१.१४.६; १.१२.१	मोग्ग-मुद्गर, मुग्गर	६.१०.१०; ७.१.१३; ७.३.४
सुपिय-मुपित	१०.७.७	✓मोड-मुद् + लिच् °ड	३.११.४; ५.७.१९
सुसुहि-मुसुंकि लक्ष्य	७.६.२	मोडिभ °य-मोडित	६.९.३; ९.२.८; १०.२०.३
सुद-मुद १.१०.५; ४.१६.११; ४.१७.१६; °कंति		मोडियक्क-मोडित + लय (वृगी)	७.१.२०
-°कान्ति ५.१.१५; °कुहर ५.५.२; °नालि		मोसिभ-मोक्तिक	५.१४.१; ८.१२.९
६.७.५; °विद-°दिम्ब १०.३.३; °मर-°व्यास		मोयण-मोचन	६.३.६
१.१३.५; °वड-°पट ६.४.६; °घास-°व्यास		मोर-मयूर, हिं० मोर	४.१८.१; ८.१४.१८
८.५.६		मोह-मोह, मोहनीय कर्म	२.६.८
सुहर्तव-मुख + ताम्र, ताम्रमुख	९.१०.१२	मोह-मोह, मूर्च्छा	६.१०.४
सुधाणक-मुखानक	७.१.१७	मोह-मयूख	७.१२.१
सुधाभास-मुखाभास + क (स्वाद्ये)	१.१८.११	✓मोहय-मुह् °ड	४.१३.७
सुदिय-मोहित	१.३.७	मोहवाक-मोह (कर्म) वाक	२.१९.१
°सुदिय-मुखी (स्त्री० विज्ञे०)	४.१२.४	मोहणय-मोहयकरः (कर्तरि)	९.१६.८
सुहुत्त-मुहूर्त	७.१३.१२; ८.१२.३	मोहवद्दरि-मोहवैरी	१०.२६.१०
सुहुक्क-मुख + उल्ल (स्वाद्ये)	२.१४.७	मोहिभ-मोहित	११.८.५
मूढमण-मूढमत	१०.१७.२०	मोहियमाणस-मोहितमानस	३.२.२
✓मुख-मुप, मूमिनि	३.१४.२२		
मुखिभ °य-मुपित	३.१४.५; ९.१५.४		
मेच्छ-म्लेच्छ	११.४.६		
मेच्छदेस-म्लेच्छदेश	९.१९.११		
मेच्छ-महावत	५.१०.२१		
मेत्त-मात्र, केवल	२.१.५; ९.८.२		
मेय-मेद	८.१५.३		
मेरु-पुमेर पर्वत	१.१.३; १.११.१२		
✓मेलव-मिल (कर्मणि) °ह	२.७.१		



✓ रभ-रब्, रएप्पिण्ड ७.१०.३; रएविण्ड १.१०.९	✓ रंघ-रघ्, राव्ना ०ह	९.२.१०
रङ्-रति ५.१३.१५; ९.५.४; ११.१५.९	रंघणी-राघनेवाली, रसोई बनानेवाली	५.७.१६
रङ्ग-रचित १.४.९; ३.९.४	रघिणी-रघ्नीनी, पाकशाला	५.११.४
रङ्गकाममिहण-रतिकाममिथुन, रति-काम युगल	रंभा-रम्भा, कवली	४.१३.१६
४.१६.९	✓ रकल-रक्, ०ह ११.१४.११; ०हि (विधि०)	२.२.९, ७.९.१२; ११.२.८
रङ्गलेय-रतिखेद, सुरतश्रम	४.१९.१४	
रङ्गालय-रतिनाटक	८.११.५	
रङ्गाल-रतिनाथ, कामदेव	४.१३.५	
रङ्गावण-रतिस्थापकः (कर्तारि), रतिभाव उत्पन्न करनेवाला	३.११.१५	
रङ्गाल-रतिदंष्ट्रा	३.७.१४	
रङ्गमंग-रतिमङ्ग	७.१.१	
रङ्ग-रचित	५.१२.५	
रङ्गंभी-रति + रन्धी, रतिरन्ध्र, कामस्थान	४.१.११	
रङ्गरस-रतिरस	३.१२.४; ४.१५.४	
रङ्गराम-रतिराम, कामदेव, रमण	४.१३.१६	
रङ्गवह-रतिपति, कामदेव	४.९.७, ४.१२.१६	
रङ्गवह्नाय-रतिपतिराज कामदेव	४.१३.१२	
रङ्गवंत-रति-प्रीति + वान्	४.१४.१३	
रङ्गवर-रतिवर, कामदेव	१.१०.१२, ४.६.११	
रङ्गवसन-रतिव्यसन	९.७.२	
रङ्गविहय-रतिविहयना	९.१.७	
रङ्गविहलंघक-रतिविहल	८.११.७	
रङ्गसुह-रतिमुख	१.१.९, १०.१९.५	
रङ्ग-रति, आसक्ति	९.१६.६, २.७.७	
रङ-रघ	३.७.४, ७.२.३	
रङ-रज	६.४.१०, ६.६.१	
रङ-रौद्र	५.६.७, ६.१.१३	
रङरव-रौरव (नरकभूमि)	२.१८.६	
रङ-रङ्ग, आसक्ति	४.२१.१४	
रङ्गावलि-रङ्गावली	१.९.६	
रङ्गिय-रङ्गिजत, रंगीले	६.४.७	
✓ रंज-रञ्ज ०ह ५.१३.१९; ०मि २.१५.१४;		
रंजसह (मवि० तु० पु० एक व०) १.५.७		
रंजन-रञ्जनः (कर्तारि)	९.१२.१६	
रंजनय-रञ्जनकः (कर्तारि)	९.१६.९	
रंजिय-रङ्गिजत	१.२.१२, १.४.४; ९.१६.२	
रङ्गिय-रङ्गित, विषवाकृत	६.२.६	
रंघ-रन्ध्र	१.८.१, ४.६.३	
रक्ष-रक्ष, रक्षा ०ह ११.१४.११; ०हि (विधि०)	२.२.९, ७.९.१२; ११.२.८	
रक्षण-रक्षाणः, रक्षकः	३.११.१०; १०.१४.२	
रक्षस-राक्षस	६.७.१४, ८.३.१२	
✓ रक्षिज-रक्ष (कर्मणि) ०ह ११.२.१ २.१४.४;	३.४.९	
रक्षिय-रक्षित (०ह आत्मने०)	१.११.१३	
रक्षा-रध्या	४.११.७; १०.१५.११	
रक्षासुह-रध्यामुख	९.११.२	
रज-राज्य	१.११.१९; ३.८.११	
रजज-राज्यघर, राजा	३.२.१२	
रज्जु-राज्जु (प्रमाण)	११.११.१	
रज्जु-(i) राज्य (ii) रज्जु-रस्सा	६.१२.४	
रज्जु-राष्ट्र	९.१९.३	
✓ रज्जु-रज्जु + शतृ	७.६.२०; ७.१०.१०	
रजाविय-रणरणावित	४.१५.९	
रणगण-रण + बाङ्गना, रणदेवी; रण + बाङ्गना,		
रणभूमि ६.१३.३, ७.२.१		
✓ रणक्षणक्षण-रणक्षण (व्यव्या०)	१.१४.७	
रणरण-रणरण (व्यव्या०)	२.१८.१२	
रणरण-रण (वे) उद्विग्न होना	१०.१.६	
रणरणिय-रणरणायित ध्वनि	५.७.१८	
रणसू-रणसू	३.२.१३	
रण-रक्त	९.१२.९	
रण-रक्त + वत, रक्त, आसक्त	८.१४.५	
रणदण-रक्तचन्दन	४.११.४	
रणवह-रक्ताम्बर	८.१४.१४	
रणकण-रक्तकण	६.७.६	
रणकिरण-रक्तकिरण	५.७.२	
रणपीच-रक्तपीच, लालवस्त्र	६.२.६	
रणण-रक्तानन	९.६.९	
रणसोय-रक्तशोक	८.५.६	
रणहर-रक्ताघर	५.२.१८	
रत्ति-रात्रि	४.५.९; ९.१७.७; १०.२५.७	
रत्नी-रक्ता, आसक्ता (स्त्री० विशेष०)	२.५.५	

/रस-रम्, ६ १.११.१६; रसति (बहुव०)  
७.१.११; रसहि (बहुव०) ५.९.५

रमण-नितम्ब	१.७.९
रमण-(तत्सम) कामस्थान	९.१.११
रमणस्थल-रमणस्थल,	८.११.८
रमणसत्ति-रमणशक्ति	१०.२.२
रमणि-रमणी	२४.७; ९.२.१२, १० १.१२
रमणुल्ल-रमण + उल्ल (स्वायें)	१.१०.१२
रमावंक-रमा (लक्ष्मी) + आकुल	
लोभापूर्ण	५.१.६; ५.६.१७
रमिय-रमित	३.१ १९; ४.१८.१३
रम्भ-रम्भ	१.११.१७
रय-रज, पराग	४.१६.६
रय-रज, धूलि	६.६ ३
रय-रज (स्त्री रज)	१०.१५.७
✓ रय-रश्मि	८.५.१३, १०.८ १५;
वि	७ १०.२२
रयजल-रजजल, धूलिरूपी जल	५.६.१६, १०.१५.७
रयण-रत्न	२.१८.५; ४.१२.१५; ११.१३.१
रयणचूल-रत्नचूल (विद्याधर) रत्नशेखर	५.११ १९;
	६.१०.५
रयणत्तय-रत्नत्रय	१.१.७
रयणपद्म-रत्नप्रभा (नरक भूमि)	११ १०.४
रयणमाला-रत्नमाला	७.१२.४
रयणरिद्धिली-रत्न + ऋद्धि + इल्ली (मनुष्यार्थ), रत्नऋद्धि युक्त (स्त्री० विशे०) ३.८.६	
रयणबिद्धि-रत्नवृद्धि	३.६.१०
रयणसिंह-रत्न + शिख, रत्नशेखर विद्याधर	
	५.३.१, ५.१२.११
रयणायर-रत्नाकर, सागर (आयु प्रमाण)	
	७.२.१३; ११.१२.३
रयणायरत्न-रत्नाकर + अन्त, सागर पर्यन्त	१.१३.१
रयणाहार-रत्न + आहार, रत्नधारक	४.६.१३
रयणाहिम-रत्नाधिप	३.३.१२
रयणि-रजनी १.१.७, ९ ४.१३; भाण-रात्रिप्रमाण	
	३.१२ ३
रयणुद्धरण-रत्न + उद्धरण	३.१.१४
रयणुद्धयभ-रत्न + रुचि + क(स्वायें) दन्त रुचि, दन्त- दीप्ति ३ २.११	

रयसर-(i) रज + भार, घुलिसमुह

(ii) रज + भार, (स्त्री) रजस्वा

(iii) रज + भार, सुरत आवेग ६.६.१०

रयसर-रतभार, सुरत आयास	९.१३.१८
रय-रय, वेग	१.६.९; ४.१९.८
रयण-(i) रमण, कामी (ii) रमण-नितम्ब	९.१२.१७
रयण-रमण-रमणीक	५.३ ८
रयण-रमणीय, रमणीक	२.८.१३, ३.१३.६
रविकन्त-रविकान्त, सूर्यकान्तमणि	१.९ ७, २.१.९
रविग्रहण-रविग्रहण	८.१३.१०; ९.८.६
रविसेण-रविपेण (श्रेष्ठि)	३.१३.१
रस-रस, रुचिर	६.१४.१२
रस-रस, आस्वाद, आनन्द	८.१२.१५
रसक्रिय-रस + अङ्कित	५ १४.२४
रसन्त-रस + अन्त, रसान्त, उत्कृष्ट रस	५ १.२६
रसगिद्धि-रसगुद्धि	११ ८.८
रसचाभ-रसत्याग	१०.२२ ५
रसह-रसाढ्य	५.८ ३४
रसदिग्ध-रसाढ्य	७.११.५
रसदिग्ध-रसाढ्य, रसिक	६ १३.२
रसण-रसन (वानर ध्वनि)	५ ७.२
रसण-रसना, मेखला	३.८.३
रसणा-रसना, जिह्वा	७.१.१
रसदित्त-रसदीप्त	९ १४
रसध्विय-रसप्रीणित	६.९.९
रसभरिय-रसभरित	९.१८.८
रसमण्डलिय-रसमुकुलित-आनन्दवश निमीलित नेत्र	
	३.१.२
रसा-चर्वी	७ १.७
रसायण-रसायन	१० ५.७
रसिय-रसिक	६.२.८
रसियभ-रसदा, रस (फल) देनेवाली	४.९.६
रसिकल-रस + इल्ल (मनुष्यार्थ) रसयुक्त, रसीला	
	८.१३.९
रह-रय	६.२.९; १०.१९.१४; ११.१ ९.
रहचक्र-रयचक्र	५.७.१३
रहस-रमस्, उत्कण्ठा	९.८.५; ९.१६.३
रहस-रहस्य, एकान्त	९.८.१५
रहस-रहस्य (गुप्तवार्ता)	१०.१५.१०
रहसिज-रभसित, उत्कण्ठित	५.६.९; ५.१०.१६

रहि-रयी, रयवान्	६.७.८	रायगिह-राजगृह (नगर)	३.१४.२१, गेह ४.५.४
रहिय-रहित	१.७.६; २.६.४ यय ११.९.८	रायगोस-राग + द्वेय	२.२०.२, ११.९.८
रहुकुल-रहुकुल	८.३.७	रायमार-रागमार	१०.१८.१२
रहुवह-रधुपति, राम	५.१३.२९	रायचिरोह-राग + विरोध, रागद्वेय	८.७.१०
राज-राजा	३.१०.८	रायरायहिह-राजराजाविष, राजाधिराज	१०.१९.६
राज-राग	१०.८.१४	रायागमण-राजा + आगमन	५.१०.१३
राजपरिग्रह-राजपरिग्रह, राजसैन्य	६.१.१४	रायागम-राजन्यक, योद्धासमूह	५.१.१७
राजवारिज-राजद्वारिक राजसेवक	५.१.२२	रायागुमग-राज + अनुमार्ग, राजमार्ग	४.१६.१
राहम-राहित	१.१.४	रायाहिराय-राजाधिराज	१.१३.१
राहजायरण-रात्रिजायरण	४.८.१०	राब-रव, गच्छ	६.७.१; ७.४.१५
राहय-राजिन, रज्जित	६.१४.१३	राचण-विशेषशोषवृक्ष	५.८.७
राई-रागी	९.१.१२	रावळ-राजकुल	७.१२.१०
राडच-राजपुत्र	३.५.१३	रिड-रिपु ८.८.४, ७.२.८; वरिणी-गृहिणी	१.११.६
राडळ-राजकुल ६.१.९; ६.४.३; ७.१२.१०; वार-		४.१८.२; रमणी १.११.१७, वल	
डार ५.१२.५		७.३.७; सह-समा ७.३.१, ७.११.११;	
राड-रट, चिल्लाहट	५.७.२०	सैण-सैन्य ६.२.१	
राड-राइ (देश)	९.१९.१३	√ रिचवेव-रिच (कर्मणि) इ	९.१२.१९
राणड-राणा, राजा	७.१३.५	√ रिजळ-री (कर्मणि) इ	३.१२.५
राणि-रानी, राजी १०.१५.११; यण-जन १.१२.१		रिण-ऋण	६.८.३ ६.१४.१६
राणी-रानी, राजी	८.४.४	रिच-रिचत	९.८.२०
राम-रामा, रमणी	८.१४.१३	रिद्ध-ऋद्ध, समुद्ध	१.९.११; ९.१३.१३
राम-रमणीय	४.५.१५	रिद्धि-ऋद्धि	३.१.५; ३.६.४
राम-रामचन्द्र	३.१२.१	रितह-ऋतपम्	१ मं १२.४.४.३
रामथ-रञ्ज, मनोरंजन कराना	१०.१९.३	रिसि-ऋपि २.८.११; २.१८.७, वरण ३.५.३;	
रामा-(नत्सम) रमणी	३.१२.१	संव २.१२.१२; २.१६.२	
राम-राजा	५.१३.२८	रीण-अरित, उ (स्वार्थ)	२.६.१०
राय-राग, स्वर	८.१६.१२	√ रुजंत-रुद् + गतृ	२.५.१७
रायभंतेडर-राज + भन्त.पुर	५.१०.१९	रड-रवि	८.२.१५, १०.१८.१०
रायडच-राजपुत्र	१०.१८.३	रुहर-रुचिर	९.१२.१५
रायडळ-राजकुल ९.१३.१२; १०.१३.५;		रुड-रवि	१.११.१७
कडन-कार्य प्रथं ९; कणगा-कन्या		रुज-वाद्य	५.६.१०
३.४.७; कुमार ४.९.११; त्याण-राज		√ रुज-रुज्, रुजति (वहव०)	७.४.३
आम्यान, राजसमा ३.७.११; ५.२.५;		रुजिय-रज्जित	१.१४.८
हुहिय-हुहिता ७.१२.७, वरिग्रह-		रुड-रुड, घड	६.२.५
परिग्रह ५.१०.२३; पुरोहिह-पुरोहित		रुड-वृक्ष	४.२१.२
९.१०.२३; लच्छि-लक्ष्मी ३.८.६;		रुं रुं रुं-रुग्ना०	१.१४.८
लीक-लीला ४.९.११; १०.१३.३;		रुक्क-रुक्क, हि० रुक्क ४.१६.८, ८.१०.५; संत-	
वाणी ५.५.१२; सासन-शासन		सन्तति ४.८.१५	
५.१.१७; मुञ्ज-मुञ्ज ३.९.७		√ रुक्क-रुक् इ	२.११.४, ३.१४.१८, ९.१५.६

√ रुञ्ज-रुञ्ज् °इ	८.९.१७	रोमञ्च-रोमाञ्च	४.१३.१९, १०.१८.२
रुञ्ज-रुञ्ज	३.११.५, ४.२२.१०	√ रोच-रोच् °इ ९.४.१५; रोचति (बहुव०) ३.७.६;	
रुञ्जि-रुञ्ज + अरि	५.१४.१२	९.६.६	
रुणुसंज्ञिय-रुणुसंज्ञित (वचना०)	२.१२.९	रोचाविञ्च-रुच् + णिच् + क्त रोचित	६.१४.१४
रुणय-रुदित	९.१०.१२	रोचिञ्च-रोचित, रुदित	९.१०.१५
रुक्मल-रुद्राक्ष वृक्ष	४.१६.३	√ रोचिञ्च-रुच् + णिच् °इ	७.२.४
रुद्ध-रुद्ध अवरुद्ध	३.११.८, १०.१७.१	रोचियधणु-रोपितधनुष	११.११.९
रुमय-रुप्यमय	४.७.५	रोस-रोष, क्रोच	१०.१७.१२, ११.९.८, ११.१४.२
रुपिणि-रुविमणी (रानी)	८.४.२	रोसाविञ्च-रुप् + णिच् + क्त, रोपायित	१.१५.२
√ रुम-रुम् °इ	२.२०.३	रोसिञ्च °ञ-रोपित, रुष्ट	५.८.१९; ८.१५.१४
रुमुक-नि ववास छोड़ना	४.२२.२१	रोहिणि-नक्षत्र, वृक्ष विशेष	४.७.१०, ५.८.७
रुहिर-रुधिर	६.५.१०; ११.१५.४	रोहिण्य-रोधित, अवरुद्ध	५.९.१३, ६.४.२
रुहिरुह-रुधिर + क्रोच	६.२.५; ६.९.८		
रुहिरुलित-रुधिरलित	४.१५.१५		
रुभ-रुप	४.१७.१२		
रुढ-रुक्क	१०.१७.२		
रुपकम-रुपक्रम, वेशरचना	९.१८.१		
रुव-रुप ४.६.११; ९.१८.१; १०.२६.३; °णिहि-			
°निवि १.१२.१; °दंसण-दर्थन २.२०.६; °रेद्धि-			
°रुद्धि २.१५.४; °रुच्छि-°रुक्ष्मी (श्रेष्ठिकन्या)			
४.१२.६, °सिरि-रुपश्री (श्रेष्ठिकन्या) ९.९.५			
√ रुव-रोप् °मि	९.४.११		
रुवञ्च-रुप्यक, रुपया	९.८.१२; ९.८.२१		
रुवञ्च-रुप, सौन्दर्य	९.१२.५		
रुवासञ्च-रुप + अभाव	१०.५.१३		
रुवासञ्च-रुपासक	१०.१७.११		
रुविञ्च-रुपित, रचित	९.१३.१३		
रेणु-रेणु, वृत्ति	६.५.११		
रेण-°(१) रेत, बालू (११) रेतसु, रज-वीर्य ९.१३.१५			
रेक्ताविञ्च-रुक्कित	४.२०.९		
रेवाण्ड-रेवानदी	५.१०.५; ५.१०.२४		
रेह-रेखा	१.११.३; १०.२०.५		
√ रेह-राज् °इ	८.१३.१३, १०.२०.५		
रेहा-रेखा	५.१२.२०		
रेहाइव-रेखा + रुद्ध, रेखायित, रेखायुक्त ४.१३.१०			
रेहाविञ्च-राजित	२.१६.३		
रोञ्च-रोग	९.११.७		
रोक्क-°(दे) रोकड, जमा	९.८.४		
रोड-°(दे) ह्रीन होना	९.१०.३		
		[ ल ]	
		√ लञ-ला, लएणि ४.२.१७, लह-ला + क्त्वा	
		४.१७.४, ४.१८.६; लएसइ (मवि०)	
		२.१३.२; ४.६.१५	
		√ लङ्-ला	५.१२.२१, ९.६.६
		लहञ्च-लात, स्वीकृत, गृहीत	७.३.७, १०.९.७
		√ लङ्गञ-ला (कर्मणि) °इ	५.१०.१७
		लङ्गञ-लात	८.१४.२; ११.५.९
		लङ्गञ-लात	९.८.१९
		लङ्गि-लङ्गि	६.५.९; ७.१.१४; ७.६.१०
		लङ्गिङ्ग-लङ्गिङ्ग	१०.९.२
		लङ्गणयरी-लङ्गणगरी	५.८.३३
		लङ्गञ-लाङ्गल हलः	९.४.९
		√ लञ्च-लञ् °इ	२.१४.८; ५.१०.१७, १०.११.३
		लञ्चिञ्च-लङ्गित	६.१२.७
		लञ्चिञ्च-लाञ्छित	१०.१४.४
		लञ्चिञ्च-लाञ्छिका (वेद्य)	९.१९.२
		लञ्चिञ्च-लम्पट	७.५.१६, ८.११.११
		√ लञ्च-लम्, °इ	४.१३.२१
		लञ्चिञ्च-लम्, दीर्घ, हि० लम्वे	८.१५.१०
		√ लञ्च-लम् + शतृ ४.८.७; ७.६.१३, ७.८.१०	
		लञ्चिञ्च-लम्पायित	१०.१६.३
		लञ्चिञ्च °ञ-लम्बित	५.११.२१, ७.१३.४
		√ लकञ्-लक्ष् + णिच् (स्वास्) °इ ९.१०.२१;	
		°हि (विवि०) ५.१३.३३; ७.१३.९;	
		९.१०.१९	
		लकञ्च-लक्षण	३.४.२; ४.१४.१७

कक्सणंक-लक्षणाङ्क वीरकविका दूसरा अनुज  
प्रथ० १४

ककिलख-लक्षित १.१५.८, ४.४.२; ६.१.१८  
✓ककिलख-लक्ष + णिच् (स्वार्थे) (कर्मणि) °ह  
१ २.१५; २.१४.४

ककिलख-लक्षित ५.२.१०, १०.८.५  
✓ककिल-लक्ष, °ह ११.७ ३; लमिगवि १० १० ४,  
लमोसह (मवि० तू० पु० एकव०) ७.१२ ८

ककिल-लक्षना (स्त्री०) ६ ७.८, १०.१०.१४

ककिल-लक्षन १०.१९.११

✓ककिल-लक्ष + शतृ १ १.२, ३.९.७

✓ककिल-लक्ष + हर (ताच्छोले) ९.१२.९

ककिल-लक्षना (स्त्री० विधे०) ४.१६.११

ककिल-लक्षमी २.१०.६; १०.१.१६

ककिलपञ्च-लक्षमी + प्रयुक्त ४.३.१०

ककिलफल-लक्षमी + फल ५ ४.१८

ककिललक्ष-लक्षमी + लक्षित-कान्तिमान् देहयुक्त  
६.१०.६

ककिल-लक्षमी १.१५.९, १.१८.१

✓ककिल-लक्ष °ह ५ १३.२३

✓ककिल-लक्ष (विधि०) °ह १०.१० १४

✓ककिलमान-लक्ष + शानच् २.१९.६

ककिल-लक्ष + अङ्कित १.१४.१६

✓ककिल-लक्ष + णिच् °ह ९.१.१२, ९ ४.१

ककिल-लक्ष प्रधान ५.१४.९

ककिल-लक्ष, हि० छाठी ३.११ ६

ककिल-लक्ष, सुन्दर, लाडला ७ १.५

ककिल-लक्ष (ललित) + अङ्क २ १४.५

ककिल-लक्ष ७.७.१, ८.६.६, °वव ६.८.८; °वर १.४.६

°रस ८.१०.१७; सस-लक्षवत्, प्रशंसाप्राप्त  
२.५.१

✓ककिल-लक्ष °ह (आत्मने०) ९ ९ १४, १०.१० १२  
°हि (बहुव०) १०.५.८

ककिल-लक्ष १२.३; ७.१०.२३; ९ १३.५; १०.२१.४

ककिल-लक्ष २.४ ११

ककिल-लक्ष, जिह्वा ९ १०.८

✓ककिल-लक्ष + शतृ ९ १०.८

ककिल-लक्ष २ १५.३, ५.२ ४

ककिल-लक्ष २.१०.६

ककिल-लक्षनीय

ककिल-लक्ष ८.१४.१९; ९.१८.६, °कण-°कण  
२ ५.५, °वसर-°वसर ७ १.४, वाह  
१०.२१ ३

ककिल-लक्ष, कण, किचित् ९.१३.११; १०.१७ २०

ककिल-(१) लावण्य (२) लवण, सार ८.१३.११

ककिल-लक्ष + लवण + अर्णव १.१०.१४

ककिल-लक्ष + लपलपित ५.१४ १३

ककिल-लक्ष वृक्ष ४ १६.३

ककिल-लक्ष, कथित ९.१६.३

✓ककिल-लक्ष °ह २ २.३; ७ १० २१; ११.१५ ९,

°मि ९.१३.७; १० ११.११; लहिवि

८.२ १; १० ४.१५; लहिवि ११ १३.७,

लहिविपु ८ ७.३

ककिल-लक्ष, शीघ्र ८.२.१३; ८.१५.४

ककिल-लक्ष + क (स्वार्थे) ३.७.१; ८.४.१४

ककिल-लक्ष, लघुकः प्रथ० १३

ककिल-लक्ष + लघुक + आरभ (स्वार्थे), अनुज ३ ५.७

ककिल-लक्ष ९.१७.१३

✓का-का °हिवि ९.७ १३

का-का ४.२०.९, ८.४.६

का-का ९.१९ ७

✓का-का °ह ३.१२.१६

का-का २ ४.३; २.१८.९; ४.१४.११,

°तरंग-°तरङ्ग २.१७.८, °रस २.१८ ४

का-का ८.१५ ९

का-का ४ ७.३

का-का ९.१.१०

का-का २.१८.१०

✓का-का + णिच् °ह ४.१७.१८; °हि (विधि०)  
१०.१५.८

का-का ४.११.१४, ११.१ ७

का-का १० १४.५

का-का ८.१०, १४, १०.१४.६

✓का-का + शतृ ८.६.१२; ८.७.१५; °व

८.९.१७; लिताह ८.६ १२; लिताह

८ ११ १८

का-का २.९.२; ४.१३.१४

का-का ४.१०.३

✓का-का °ह ८.१५.९, १०.७.९, °मि

४.११.१३

लिहिष 'य-लिखित	७.८५; ८.९.१२
लीण-लीन	१.१८.१३; २.१५.१
लीकव-लीला + वत्	४.२०.१३
लीलावद्-लीलावती, बीरकविकी तीसरी पत्नी	
प्रवा० १६	
लोह-रेखा, रेखा	५.१४.१३
लुभ-लून	९.११.८
लुचिय-लुञ्चित	२.१६.८
लुठ-लुठकः, लुठनेवाला	९.१९.६
लुवि-लुम्बि वृक्ष	४.२१.२, ५.१०.५
लुक्-लुञ्चित	५.८.२७
√ लुक्-नि + ली 'ह २.६.११; 'मि	९.१०.९
√ लुण-लु 'मि	३.११.८
लुणिय-लुणित	६.३.१०, ६.७.५
लुह-लोघ वृक्ष	४.१०.७
लुव-लुव, हि० लोभी	५.१३.१५
लुद्धि-लुवता	९.१४.१०
लुप-लून	७.३.३
√ लुक्-त-लुट् + घट्	६.१४.१२
लुलाविय-लुलावित	९.१८.३; १०.१६.५
लुडिप-लुण्टित	५.३.१०
लुरण-लुवन, हरण	८.८.८
√ लै-ला, लेह २.१८.७; लेमि ९.८.१६; लेवि	
८.४.९; १०.८.२; लेसह ( भवि० तु० पु०	
एकव० ) ९.१५.१३; लेसमि ( भवि०	
उ० पु० एकव० ) १०.१४.७	
√ लैत-ला + शत्	३.७.१०; ११.३.३
लेव-लेप	९.७.१२
लेस-लेश, अल्प	१.२.२; १०.१८.५
√ लेङ्-लम् 'ङ् (आज्ञा०) लमताम्	५.१४.८
लेहण-लिहन, चाटना	९.७.१६
लोभ-लोक	७.१२.१४, ९.२.८
लोहिय-लुण्टित, मुषित	५.३.८, ६.४.१
लोय-लोक, लोग	३.१.२१; ८.५.१०
लोयम्-लोकाय, लोकान्त	११.१२.१०
लोयण-लोचन	१.१.६; ३.९.१७
लोयणिद्-लोकनिन्द	५.४.३
लोयपवर-लोकप्रवर, लोकान्तम्	८.१२.१३
लोयवाल-लोकपाल	२.११.६; १०.१५.२
लोयाणुरूप-लोक + अनुरूप, लोकेस्वरूप	११.१०.१

लोयायार-लोकायार	८.८.३
लोयालोय-लोकालोक	१०.२४.६
लोयाहाण-लोक + आख्याय	५.४.१३
लोयाहिच-लोकाधिप, लोकपति	३.१.१०
√ लोक-लुट्	४.१९.१८
√ लोकमाण-लुट् + घानच्	४.२१.४
लोह-लोभ	३.९.१६; ९.५.४
लोहडर-लोहपुर	९.१९.११
लोहिणि-(१) लोमिनी (२) लोहिनी शृङ्गला	१०.२०.८
लोहिय-लोहित	४.११.४

[ व ]

व-इव, वत्	१.१४.११, ११.१५.६
वज-व्रत	२.८.८
वह-पति	६.११.३; ७.१३.१०
वहट्ट-उपविष्ट	७.१२.१०, १०.१४.६
वहतरणि-वैतरणी (नरक नदी)	११.४.३
वह्वरुम-वैदर्भ, विदर्भ (देश)	९.१९.३
वह्यर-व्यतिकर, प्रसङ्ग, वृत्तान्त ७.११.९, ९.१५.११	
वहर-वैर	१.१८.३;
वहर-वष्य देश	९.१९.७
वहराय-वैराध्य	८.९.१७; १०.१८.१
वहरायर-वज्राकर, वज्रमणिकी खान	८.१२.१०;
वज्राकर देश ९.१९.३	
वहरि-वैरिन्, वैरी	६.१.१४; ७.१०.८; ८.८.५
वह्वस-वैवस्वत, यम	४.२०.१३; ७.१२.२
वह्ववाह-विवाह	८.८.१९
√ वह्वस-उप + विश्, 'सरिचि	२.१६.१२;
५.१२.२३, वह्वसरवि ३.७.११	
वह्वसिय-उपविष्ट	९.१८.८; १०.१६.१०
वह्वसवण-वैधवण (श्रेष्ठ)	४.१२.५
वह्वसाण-वैवसाण	६.६.२
वह्वसारिभ-उप् + विश् + व्यप्, वैठाय	५.१.५;
७.१३.७	
वओहर-वृत्तघर, द्वत	५.१३.१२
वंक-वक्र, कुटिल, वंकी (स्त्री० विशेष०)	४.१८.११;
५.९.१६	
वंकव-पङ्कज	४.२१.६

वंकाकाय-वक्रालाप, वक्रोक्ति आलाप	४.१७.२३	वच्छयक-वक्षतल, वक्षस्थल	२.५.१७
वंकुञ्जल-वक्र + उज्जवल्	४.१३.४	वच्छर-वत्सर, सवत्सर	९.१७.१०
वंकुडड-वक्र, हि० वौका	४.१५.४	वच्छायण-वात्स्यायन (कामसूत्र)	८.१६.११
वंकुडिय-वक्र, हि० वौका	९.१८.३	वज्र-वज्र	४.१५.२.५.११.१८
वग-वज्ज (देश)	९.१९.१४	✓ वज्र-वृज् 'ह	३.१२.१०
✓ वंच-वञ्च्, वचिवि	२.१५.१२.१०.१०.३	✓ वज्रव-वृज् + शतृ	८.९.९
✓ वचत-वञ्च् + शतृ	५.१४.२०	वज्रिभ 'य-वज्रित	४.३.३;४.२०.४
✓ वचमाण-वञ्च् + शानच्	६.१०.८	वज्रयन्त-पु० वज्रदन्त (राजा)	८.२.२३
वंचय-वञ्चक	९.१३.३	वज्रजासणि-वञ्च + अशनि	६.५.९;८.१०.३
वचिभ 'य-वज्रित	१०.३.१०;१०.१०.१०; १०.१८.२	वज्रजय-वादित	५.६.११;८.१२.२
✓ वंचिज-वञ्च् (कर्मणि) 'ह	११.१४.२	वष्ट-(१) वरमं मार्ग, हि० वाट, (११) प्याला	८.१३.१२
✓ वंछ-वाञ्छ् 'ह	२.६.११;९.४.१६;९.१५.१;	✓ वष्ट-वृत् 'ह	२.१४.६.८; ६.१.१६.५.११.८; ६.१४.८; ९.१५.८; १०.४.१३; 'ए (आत्मवे०) १०.१९.१४
हि (विधि०) ९.४.१२		वष्टिया-वतिता, प्रवतिता (स्त्री०)	१०.१९.१४
वंठ-(दे) वृत्, ठग	४.२१.१०	वट्टल-वटुल	२.१४.८
✓ वंद-वन्च् 'ह	५.१.११.५, वद्वि १.१८.५;२.१९.९	वट्ट-पृष्ठ	५.१४.२१
वंदण-वन्दना	२.१६.१२.३.५.३	वट्टी-पृष्ठ	५.१४.२०
वंदणहति-वन्दना + भवित	८.४.८	वट्ट-(दे) बडा	९.१०.२१
वंदणा-वन्दना	२.३.५	वट्टवानल-वट्टवानल	७.२.१३
वदारभ-वृदारक, देव	१.१.३.८	वट्टय 'य-वटुक, ब्राह्मणपुत्र	२.४.१२;१०.६.२
वंदि-वन्दी	८.७.४.१०.१९.१५	वट्टप्पर-(दे) बडा फलक	४.२.८
वंदिभ 'य-वन्दित	२.१२.१३;३.१३.७;४.१.५; ४.४.९;७.१३.१७	वट्टहर-वटहर, काशीके पास एक गाँव	९.१९.१६
वंदियसवण-वन्दितभयण	३.३.१७	वट्टभ-(दे) बडा	१.१३.८
वंदिर-वन्दित् + र (स्वार्थे), वृद्ध, समूह	८.७.४	वट्टल-(दे) बडा	१०.१६.६
वंस-वंश, कुल	१.५.२;५.१३.१७	✓ वट्ट-वृच् 'ह	९.१६.६
वंसपञ्च-वंशपर्व, बाँसकी ग्रन्थियाँ	५.८.२	✓ वट्टव-वृच् + शतृ	४.१७.१८
वंसि-वंशी	५.८.७	वट्टमाण-वट्टमान	१.१३.१०;२.८.१३
वग-वर्ग	७.६.१८	वट्टमाणिकित-वट्टमान + अङ्कित, वट्टमान नामक	
✓ वग्ग-वल्ग् 'ष्ट	५.१३.१४	ग्राम ८.२.२०	
✓ वग्गंत-वल्ग् + शतृ	१०.९.३	वट्टमाण-वट्टमान (तीर्थकर)	१.१.१;जिन प्रश० ७
वगिगय-वगित	६.४.७	✓ वट्टार-वृच् + णिच् (स्वार्थे) 'ह	७.११.१५
✓ वगिर-वल्ग् + हर (ताच्छील्ये)	७.६.१३	वट्टारिभ-वर्धपयित	६.१२.६
वगुर-वागुरा, पशुओंको फँसानेका जाल	४.१३.२, ५.८.२५	वट्टिभ 'य-वट्टित	१.१३.५;३.८.२;४.१४.२२, ५.१४.५;१०.८.५.७
वग-व्याघ्र, हि० बाघ	२.१३.९.५.८.१५	वट्ट-वट, मूर्ख	९.४.१२
✓ वच-वञ्च् 'मि ९.५.१३; 'सु (विधि०) ८.६.२		वण-व(द)न, मुच	९.११.३
✓ वचवत-वञ्च् + शतृ	४.२१.२;१०.८.३	वण-वन	५.८.२४;१०.१३.१; 'करि-वनहस्ति ५.१०.४; गय-वनगज १.३.३
वच्छ-वक्ष (स्थल)	६.१.४.६.१३.३.७.३.५	वणघट्ट-बुनार (नगर)	९.१९.१५
वच्छ-वक्ष	२.१२.१०		

वणकल-वनफल, कापसिकल कपासका फूल	१.८.४	वयणिज-व्रतनिजित	३.८.१३
वणमाल-वनमाला (रावी)	३.३.१५, ३.८.३	वयणिभूमल-व्रतनिर्मल	३.९.१८
वणवर-वनवर	५.८.५; ११.४.५	वयणीय-वयनीय, निम्न	५.३.१५
वणराइ-वनराजि	८.१४.६	वयणुल्ल-वदन (मुख) + उल्ल (स्वार्थ)	५.२.२१
वणासङ्ग-वनस्पति	१.१३ ३; ४.८.१४	वयतरणी-वैतरणी	२ १३.३३
वणिष्ठ-वणिकपुत्र	४.१४.१२, १०.७.५	वयधार-व्रतधारक	२.४.५
वणिण्दण-वणिकुन्दन	४.१.७	वयसर-व्रतसार	१०.२१.१
वणिय-व्रणित	९.१२.७	वयविद्धि-व्रतवृद्धि	१०.२२.७
वणिय-वणिक	९.१९.१६	वयविमल-व्रतविमल	२ २०.५; ८.११.१८
वणिवरग-वणिकवर्ग	१०.१८.९	वयस-वयस, वय.	२.१८.४
वणीस-वणिक + ईश	३ ६.९.४ २.२	वयसील-व्रत + शील	८.२.१५
√ वणण-वर्ण + णिच् (स्वार्थ) इ ४.१०.२, ४.२२.२५		वयोवासि-य-व्रत + उपवासित	२.१९.५
उ (विधि) ८.१.५; वणिण्ण १.१८.१		वयोहर-व्रतवर	८.१०.१; ८.१०.९
√ वणिज-वर्ण + णिच् (स्वार्थ) (कर्मणि) इ १.६.४		वरइत्त-वरयिता, वर, वृत्ता २.१२ १४; ७.१२ ९;	
वण्ण-वर्ण, शब्द	८.२.७; १०.१.१०		९ ८.१
वण-वर्ण, वर्णन, कीर्ति	११.१.२	वरइत्ती-वरयित्री (कर्तरि), वरण करनेवाली	३.८.८
वणण-वर्णन	७.२.९	वरंग-वर + अङ्ग, वराङ्ग, निम्ब ४.१९.६;	
वण्णकरिम-वर्ण + उत्कर्ष	८.५.१६		४.१९.११
वत्त-वृत्त, वृत्तान्त	५.१२.८, ६.११.७	वरंगचरिम-वराङ्गचरित	१ ४.३
वरथ-वस्त्र	२.९.१९, १० १९.८	वरच्छि-वर + अक्षि	६.१३ ८; ९.९ १
वत्थाइ-वस्त्र + आवि	१०.९.१०	वरताज-वर + तात	८.९.५
वरु-वस्तु १०.४.१२, १०.९ १०; *रुव-रूप		वरयत्त-वरयिता, वर, वृत्ता	८.१४.३
१ १८.१२; *रुव-रूप ९.१.१४;		वरकळी-वर (श्रेष्ठ) + लक्ष्मी	४.६ १२
१०.२०.९		वरवण-वर + वर्णक, दूतविशेष	४.२.९
√ वडाव-वृष् + णिच् (स्वार्थ), हिं वडाई वेना,		वरवहुय-वर-वधू	९.१४.५
मि १.१३.८		वराभ-य-वराकः, वेवारा ७.७ ७; १० ९ ७;	
वडावम-वडाविक. (कर्तरि)	१.१४.३; ४.१५.२		१०.२६.७
वडावण-वडावित, वडाई	४ ७.१२	वराढ-वरार (शान्त)	९.१९ ४
वडावणा-वडावित	४.८.४	वरि-वरम्, अच्छा	२.१५.११; ९.३.१; ९.५ २
वप-वाप, पितृ	८.६ ४	वरिष्ठ-वरिष्ठ	५ ८ ४; ८.१०.६
वमाल-व्याप्त	२.९.९, ७ ९.१०	वरिस-वर्ष, अब्द	२.५ १०; १०.१७.२
वम्मह-वग्मव	८.१४.२०, १०.८.९	√ वरिस-वृप् इ	९.९.९
वय-व्रत	२.१२.१, ३.६.२	वरिसण-वर्षण, हिं वरसना	७.९.१०
वयखग-व्रतखड्ग	१०.२६.१०	वरिसा-वर्षा	६.६.८
वयण-वदन, मुख	३.४.१, ४.१९.९	वरदीसिरी-वरेंद्र (बो), उत्तरी वगाल	९.१९ १३
वयण-वचन	२.१०.७, १०.२.८	वलज-वलज, मण्डल	६.३ २; ८.८.१७
वयणमहा-वदनमन्दिरा	४.१७.३	√ वल-वल, वलु (लोह), वलु-वलु, लोटो लोटो	६.१२ ६
वयण-व-वदनरङ्ग मुखरूपी रङ्गमञ्च	३.१.४	√ वल्ल-वल + अतु	५ १ २३; १०.१०.४
वयणमास-वदनामास, मुखामास	१०.४.६	वल्लग-अवल्लन	६ ७.१०
वयणसव-वदनासव	९.१.९		



वलयार-वलयार	११.११३	वाकल्लिय-पुतली	९.१.६
वक्त्रिय-वल्लित, मदित	१.११.१	वाकळि-वातुल ( ववंडर )	६.१४.२
वक्त्रिय-वल्लित, लौट गये	१२.१२.४	वाही-वाटिका	३.२.५
वल्लर-(दे) वल्लर, खेत, अरण्य	१.८.३	वाण-वाण	४.१२.१५; ५.१४.११
वल्लरि-वल्लरी	८.७.१७	वाणपत्ति-वाणपत्ति	१०.२०.२
वल्लह-वल्लभ, पति	१.४.१०; ४.१६.११	वाणर-वानर	२.४.१२; ९.६.९
ववराय-व्यपगत	५.१४.२३; ८.१४.२०	वाणरसुह-वानरमुख	९.१९.१३
ववरायसत्-व्यपगत सत्त्व	३.१३.१२	वाणरिय-वानरी, हि० वन्दरी	९.७.३
√ ववहर-व्यवहृ °ह	८.३.१२	वाणसंड-वाणपंड, वाणावलि	७.९.१
ववहार-व्यवहार	२ १.१२, ५१२.४	वाणारखी-वारानखी	९.१९.१५
√ वस-वस् °ह ३.१०.१२; १०.१२.१०, वसिऊण	८ ३.२	वाणिज-(१) वणिजः (कर्त्तरि), वणिक् (ii) पातीय, पानी,	८.३.८; १०.११.१
वस-वृष, वृषभ	९ ११.४	वाणिज-वाणिज्य १०.७.६; कज्ज-कर्म ९.१८.११	
वस-वसा, चर्वी	६.७.७, ७ १.१०	वास-वाम, सुन्दर	१०.१६.६
वस-वश	२.१४.१०; ८ १० १७	√ वाय-वद्, °ह ३.१२.१७, °हु (विवि०)	४.१८.५
वसण-व्यसन, विपत्ति, संकट	५.१३ १५; ६ १ १	वायरण-व्याकरण	४ ९.३; ८.१३.९
वसह-वृषभ	४.१८ १३	वाया-वाचा	१.१८.८
वसि-वशी, वशवर्ती	४.२२ २३	वायाहय-वात + आहत	२.१८.१२
वसीक्षिय-वशीकृत	५ १.२२	√ वाय-वारय् °ह ८.११.१८; ९.१३.२, ११ ८.४	
वसुसह-वसुमति, पुण्यी	३.८.८, ६.१४ १४	वार-वार	११ ७.२
वह-प्रवाह हि०, बहावः	९.१०.१	वारवंकण-वार + वंकिन (दे) कपाट	९.१७.३
√ वह-वह् °ह ४.१८.३; ९.१२.१०.७.५; वहंति;		वारणसि-वारणसी (नगरी)	१०.१५.१
(वहव०) ९ २.५; °मि ४.२.१५, १०.९.१०		वारिभय-वारित १.१५.६; ३.१४.१६; ८.९.१	
वहंवि १०.२६ १०		९.४.१०	
√ वहंत-वह् + वसु	१० ७.३, १०.११.९	वारुभ-(दे) वीप्रपानी	१.१४.१०
वहण-वह्ण, कोमा	७ ९.११	वारुण्य-वारुण + श्रव्य	७.९.८
वदि-व्याधि	३.९.९	वारुस-वल्लभी (मुद्रात)	९.१९.७
√ वहिज्ज-वह् (कर्मणि) °ह	१ ७ ७	√ वाव-वि + आप् °हि (विवि०)	१०.५.६
वहु-वधू	८ ३ ८; ९.१३.१४; ९ १६.४	वावड-व्यापृत	१ ३ १.५.६.३
वहुभ °य-वधू	८ १६.६, १२; १० २१.५	√ वावर-वि + आ + वृ°ह (आत्मने०)	१.८.१; ३.३.७
वहुवढवक-वधूवतुण्क	८ १५.१५	√ वावर-वि + अव + ह् °ह	८.३.९
वहुसुह-वधूमूल	९ १४.१०	वावलट-शस्त्र	७.६.१
वहुव-वधू	४.१७ ९, ९ १४.५, ९ १६ ३	वावार-व्यापार	८.८.१३; १० ३.८
वहुवयण-वधूवदन ( मुख )	९ १६ ११	वावी-वापी	३.२.८
वहुवर-वधू + वर	८ १२ १४	वासरलच्छि-वासरलक्ष्मी, दिव्ययोमा	८.१४.१३
वाभ-वाक्	४ १ १३	वासहर-वासयुह	८.१५.१६, ९.१८.६
√ वा-वा °ह	१ १३.४, ३.४.४	वासारत्त-वर्षादिषु	९.९.६
वाङ्णा-वाचना, वाणी	२.३ ४	वासिय-वासित, सुवासित	५.८ १९; ८ ३.३
वाङ्-वादी	१.५ १७	वासुपुञ्ज-वासुपुञ्ज, (वी०) १०.२४ ११; जिन	१.१२.६
वाड-वायु	१ ११ १९, १.१३ ४		

ह-प्रवाह	७.६.५; १०.१३.१०	विमिय-विस्मित २.३.१०; ९.१९.१६; 'चित्
/वाह-वह्+णिच् °इ	१०.११.१	३.६.६; 'मण-मन ९.३.३
/वाहंत-वह् + शतृ	९.४.४; ९.४.९	✓ विक-वि + क्तो °इ २.१८.५; 'मि १०.११.४
हाह-वाहन	४.२०.५; ५.३.१४	विक्रम-विक्रम, पराक्रम ४.२२.८; ७.१०.१६
हाहयट्-घोटक संघात	४.२०.१०	विक्रमकाल-विक्रम संवत् प्रथम २
/वाहर-व्या + ह °इ	३.३.४	विक्रार-विकार १.८.६
हाहिरिभ-व्याहृत	१०.१७.१६	विक्रान्त °य-वित्याप्त °इय ३.१४.८; ४.१४.१६;
हाहल-(वे) क्षुद्र जलप्रवाह	५.८.२१	'यत् ७.१३.१० प्रथम २१; प्रथम १४;
हाहि-व्याधि	२.५.११; ३.११.२	विकिपरिय-विकीर्ण ५.१.२४
हाहिणी-वाहिनी, नदी	७.६.६	विगय-विगत २.१८.११
हाहितर/मिणि-व्याधितरङ्गिणी	३.८.९	विगाह-विग्रह, युद्ध ६.१.१२; १०.१५.३
हाहियालि-(तरुम) अवक्रीडास्थल	३.२.१०;	विगाहग्रह-विग्रहगति, शरीरगति ८.८.१२
४.१३.१५		विगल-विगल ३.७.१०
✓वाहुड-(वे) चल् °वि १०.९.१०; °हि (विमि०)		विचित्त-विचित्र ४.१२.१३; 'वाम १.८.८; 'मह-
२.१२.१०		'मति, घूर्त, चतुर ८.३.१३
वाहुडण-(वे) गमन	२.१२.७	✓विचित्त-वि + चिन्त् °इ ११.१३.१
वि-इव, अपि १.२.४, १.२.५; ५.८.३; १०.८.५		विच्चंतर-वृत्ति + अन्तर, वृत्त्यन्तर, वृत्तिपरिवर्तन
✓विडज्ज-वि + दुव् °इ	१०.७.८	२.१४.४
विडण-द्विगुण ११.११.३, ११.११.१०		विच्छद्वि-विच्छर्द् + कट, वैभवशील ७.१.२१
विडणल-द्विगुण + क (स्वार्थे)	११.१०.११	✓विच्छर्त-व्याप् + शतृ ४.२१.५
विडल-विपुल (पर्वत) १.१३.१०		विजडसाड-विजय + चत्साह ७.३.७
विडलहरि-विपुलगिरि १०.१३.११; 'गिरि १.१५.८		विजय-विजय (नामक स्वर्ग विमान) ११.१२.२
विडल-विदस १.२.६; ४.९.३; 'यण-जन १.२.१२;		✓विजय-वि + जि 'यंतु (विमि०) १.१.१; १.५.१८
'सह-समा १.४.४		विजयंतरिभ-विजय + अन्तरित ६.१.७
विद्योय-वियोग ९.१५.१४		विजयद्व-विजयार्द्ध ११.११.८
विहंत-विक्रान्त, शूर ६.७.४		विजयसंल-विजयसङ्घ ४.१३.१०
विजण-(१) व्यञ्जन-भ्रमर		विजयास-विजय + आशा ७.४.१८
(ii) व्यञ्जन-भोजन पदार्थ ८.१३.९		विजय-विद्या ३.१४.११; ४.१२.१०
विज्ज-विजय ५.८.१; ९.१९.४, १०.१२.१		विजय-वैद्य ५.४.१३
विज्जहरि-विजयगिरि ४.१५.९		✓विजल-विद् °इ ४.१४.६
विज्जएस-विजयदेश ५.८.३८		✓विजलमाण-वीज् + घानच् १०.१३.४
विज्जाडह-विज्याटवी ५.८.३०		विज्जा-विद्या ३.१४.९; ८.५.५; 'कुल-कुल
विट-वृत्त ११.९.९		३.३.५; 'पवर-प्रवर ८.४.५; 'दल
विंतर-व्यन्तर (वेन) १.१६.८, १.११.२.८		३.१०.८; ६.१४.३; 'वंत-वन्त ३.१४.२४;
विट-वृत् ४.५.४, १.१.१२		'वयण-वचन ५.४.६; 'सरीर-शरीर
✓विध-विन्व °इ ३.१०.१५; ४.१२.१६		१.१८.९
विधण-हि० वीचना ७.९.३		विज्जावच-वैद्यावृत् १०.२३.३
विभल-विस्मय ३.६.१४, ४.१०.१०		विज्जाहर-विद्याघर ५.२.६; ७.२.९
विमह्य-विस्मित ९.६.३		

विज्जाहरिद-विद्याधर + हन्त्र	५.१४.६	विणयसिखि-विनयश्रो (श्रेष्ठिकन्या) ४.१२.५; ९.८.१
विज्जु-विद्युत्	२.३.३; ७.९.९	विणास-विनाश २.४.२; ३.८.११
विज्जुचर-विद्युच्चर (चोर)	९.१८.६	विणासण-विनाशन (कर्तरि), विनाशक १०.२२.३;
विज्जुच्चर-विद्युच्चर (i) चोर ३.१४.४; (ii) मुनि	११.१४.६	
११.१५.३		
विज्जुप्पह- (देवी) विद्युत्प्रभा	३.१४.१	विणासिय-विनाशित ३.१३.८, ७.३.१४
विज्जुमालि-विद्युन्माली (देव)	२.३.५; १०.६.४	विणिग्गल-विनिर्गत १.४.१; १०.१७.९
विज्जुल-विद्युत्	११.१.१०	विणिज्जिय-विनिर्जित १.१०.१३
विज्जुलचल-विद्युत् + चल-चञ्चल, क्षणभङ्गुर	३.५.१२	विणिबद्ध-विनिबद्ध १.३.४, १.१२.९, ७.७.११
विज्जुचई-विद्युत्त्वती (देवी)	३.१४.१	✓ विणिबद्ध-वि + नि + बन्ध् 'ह', १.१७.८
✓ विज्जाअन्वि + ञ्माप्, विज्जाएसह (अवि० तु०		विणिग्गिय-विनिर्गित १.१६.३; ५.८.२५
पु० एकव०) ४.३.१५		विणियत्तण-विनिवर्तन १०.२३.६
विटलक- (दे) गठरी	११.६.३	विणिवाह्य-विनिपातित ७.११.१२
विटलिक- (दे) विगाड़ा हुआ	५.११.४	✓ विणिवाय-वि + नि + पत् + णिच्, 'ह' (विवि०) ९.३.१४
विट्ट-उपविष्ट	२.३.८; २.५.१४	विणिचारण-विनिवारण (कर्तरि), विनिवारक १.१.७.७
विट्टतंरंढार-विष्टा + अन्तर + अण्व + द्वार	१०.१७.८	✓ विणिहम्ममाण-वि + नि + हन् + क्षानच् ७.६.२
विट्ठि-वृष्टि ४.८.१५; ४.२०.११; ७.११.३		विणोय-विनोद ४.९.१२, ५.१.३१
विड-विट ५.११.४, ६.१२.३		विणोयकर-विनोदकराः (पु० बहुव० विशेष०) ५.१.१
विडंग-विडङ्क (i) वृक्ष (ii) विदग्धजन ३.२.६		विणोयपरा-विनोदपरा (स्त्री० विशेष०) पराजित करनेवाली ५.२.२०
✓ विडंग-वि + डम् 'ह' ४.१३.११		विण्णत्त-विज्ञप्त २.७.८
विडंग-विडम्भ, प्रपञ्च ४.१५.११		✓ विण्णप्प-वि + ज्ञा + णिच् 'ह' ६.१३.४, ३.१४.३
विडजण-विटजन ८.१४.२०, ९.१२.१७		✓ विण्णव-वि + ज्ञा + णिच् 'ह' ३.२.१२, 'मि' ६.११.५
विडपुरिस-विटपुर	१०.८.१	विण्णविअ-विज्ञापित १०.१९.१८
विडप्प- (दे) राहु ५.५.८		विण्णण-विज्ञान ३.१४.१०, ८.४.५
विडव-विटप, वृक्ष ८.१०.५		वित्त-वृत्त, व्यतीत, घटित ८.१.४
विडवि-विटपी, वृक्ष प्रश० १७		वित्त-(i) वृत्त + स्थूल, गोल (ii) वर्तन आचरण १०.२०.५
विडाळ-माजार्, विलार ८.१५.९		विस्त-वृत्तगत ६.१.१८; ७.४.८
विण-विना ७.३.८; ८.६.६		वित्तिपरिसंखल-वृत्तिपरिसङ्खलक, वृत्तिपरिसङ्ख्यान नामक तय १०.२२.२
विणअ-विनय २.१२.२, १०.२३.२		विस्थर-विस्तार १.५.६; १.५.९; ११.११.३
विणट्ट-विनट ९.६.११, ९.८.२१		विस्थारिअ-विस्तारित १.४.४, ५.६.१४
विणडिय-विनटित, विडम्बित ११.१४.१३		विस्थिणज-विस्तीर्ण + क (स्वाथे) ६.१४.१५, १०.२०.११
विणमि-विनिमि १.१.११		विस्थिणी-विस्तीर्ण (स्त्री० विशेष०) ६.१४.१५
विणय-विनय २.९.१६		विथारियन-विदारिताङ्ग ६.११.८
विणयगुण-विनयगुण ३.१०.३		विहविथ-विहवित ५.१३.२
विणयलुअ-विनय + युत्-युवत् १.४.८		
विणयमह-विनयमति (श्रेष्ठिपत्नी) ४.१२.६		
विणयमाल-विनयमाला (श्रेष्ठिपत्नी) ४.१२.५		
विणथर्वत-विनयवन्त ९.४.२		

विद्वारिथ-विदारित	५.८.१५
विद्वम-विद्वम	४.१४.२; ७.१२.३
विद्वमराय-विद्वमराग	२.१४.७
विद्वत्-विद्व	४.१३.६; ६.५.८; ६.१२.९
विद्वपुरिस-वृद्धपुरुष	३.११.१०
विद्वंस-विध्वंस	६.१२.७; ८.७.१७
विद्वंसयत्-विद्वंसकर	१.१.१०
विद्वंसिय-विद्वंस्यस्त	५.१३.२३
विद्धि-वृद्धि, समृद्धि	१.३.५, ४.८.९
विणोअ-विनोद	४.१३.१३
विष्य-विप्र	२.९.८
विष्विभोय-विप्रयोग, विरह	४.१४.१
विष्कार-विस्कार	४.२.१३
विष्कारिथ-विस्फारित (नेत्र)	८.९.९
विष्कुर-विष्कुर °इ	१.५.१५
विष्कुरिय-विष्कुरित	११.६.७
विचंअणी-असहाय स्त्री	५.७.१६
विठमम-विभ्रम	९.२.४; १०.१५.४
विठमुक्कल-विस्मृत	८.१४.१६; १०.१५.७
विमाविअ-विभावित	३.१४.१४
विभिय-विस्मित	५.२.३
विमण-विमन, विपण	३.१२.१२
विमसिअ-विमबा, (काम) मयदहिता (स्त्री० विज्ञ०)	९.१३.४
विमल-विमल, शुद्ध ३.५.१. °कमलाण ० कमलानन	३.३.१; °अस—यथा १.४.२
विमलगिरि-पर्वत	२.२०.९
विमलिय-विमलित	२.३.९
विमाण-विमान	२.२.७, २.२०.१२
विमाणय-विमान + क (स्वायें)	२.३.७
विमीस-विमिश्र	२.९.१६; २.१२.१३
विमुक्क-विमुक्त ९.४.१५; १०.१८.१२; ११.१५.३	
विमुक्कअ-विमुक्त + क (स्वायें)	४.१२.१५
विमुह-विमुद्ग, अमुद्गित, मुद्गासन	३.११.१०
विमक्खण-विचक्षण	८.२.२४; ११.६.६
विमड-विकट, विस्तीर्ण	२.१४.९, ५.९.११
विमडयड-विकटतट, विस्तीर्ण	१०.१६.१
विमप्प-विकल्प	१०.२.१०; ११.४.८

विमप्पण-विकल्पना	८.७.१
विमप्पिअ-विकल्पित	९.१३.३
✓ विमंस-वि + जुस्म् °इ ९.१३.७; ११.१३.४	
विमंसिअ ६.१४.६	
✓ विमर-वि + किर °इ ४.११.५	
विमल-विकल	४.२२.१९; ९.७.१२
विमलंग-विकलाङ्ग	९.१३.१६
✓ विमलंत-वि + गल् + शतृ	१.७.४
विमलपाण-विकलप्राण	९.१४.७
विमलमह-विकलमति	६.१०.१३
विमलंदिथ-विकल + इन्द्रिय	११.१३.४
विमलिय-विगलित	१.१५.४
✓ विमस-विकस् °इ ४.१५.१४	
✓ विमसंत-विकस् + शतृ	५.९.७
विमसिय-विकसित	३.१२.११; ४.१२.४
विमाण-वितान	४.१८.४; ५.१.१३
✓ विमाण-वि + ज्ञा °इ २.७.२; ८.१५.११	
विमाणिय-विजानित	११.१२.९
विमार-विकार	२.१७.११; १०.२.१०
विमार-विचार	८.६.१०
विमारिअ-विगारित	६.११.८
✓ विमारिज्ज-वि + क्क (कर्मणि) °इ १०.५.२	
विमास-विकास करनेवाला	१०.१.१४
✓ विमास-वि + काण् + णिच् °इ ८.१६.७	
✓ विरअ-वि + रअच् ; विरअवि २.५.१४; विरएवि ४.१७.१६	
विरह-विरति	११.८.६
विरहअ-विरचित	३.१४.२६; १०.२६.१३
विरहज्ज-वि + रच् °अ १.४.१०; ९.१२.१३	
विरहय-विरचित	८.२.७, ९.१२.१
विरहयंअ-विरचित + अज्जअ	१.१४.१
✓ विरहयिअ-वि + रच् °मि ८.७.९	
✓ विरम-वि + रम् °इ ५.७.२६	
✓ विरय-वि + रअच् °इ ४.१५.४	
✓ विरयंत-वि + राज् + शतृ ४.५.१; ४.७.८	
विरयण-विरचना, मजावट	८.१६.७; ९.१२.१५
विरयत्त-विरक्त	१०.२०.६
विस्सक्खर-विरसागर	४.२.८
विरहगिअ-विरह + गनि	८.१४.२०

विरहाउर-विरहातुर	३.१२.१	विसिद्धसहा-विशिष्टसभा	१.५७
विरहाणक-विरह + अनल	४.११.१	विसुद्ध-विशुद्ध	२.५१; ४.२२.१
विरह्मि-विरहित	१०.२२.७	विसुद्धअ-विशुद्ध + क (स्वार्थे)	१०.२०.१०
विरहीयण-विरहीजन	८.१४.७	विसुद्धगुणि-विशुद्धगुणी, विशुद्धगुणवान्	३.४११; १०.२३.११
✓विराभ-वि + राज् °इ	४.१७८	विसुद्धमई-विशुद्धमति	२७७, ४७८
विराह्य-विराजित	५.२.६; १०.२४.१४	विसुद्धमण-विशुद्धमन	३.५.६
विराय-विराग	८.१२.२	✓विसूर-वि + घुर °इ	९.११.११
✓विरायमाण-वि + राज् + शानच् + क (स्वार्थे)	२.३.७	विसूरिभ-विसूरित, खिन्न	६८.१२; °थ ६.८.१
विरायचंत-विराग + मतुप्, विरागवन्त	८.१०.१५	विसेस-विशेष	६.८.२; १०.२.९
✓विरुज्झ-वि + रुघ् °इ	४.२.१	विसोहण-विशोधन	८.१४.१
विरुद्ध-विरुद्ध	१०.४.१०	विह-विध	१.२.१०
विरुभ-विरुप, रूपहीन	९.१२.५	विहउ-वैभव	३.१२.२०
विरुव-विरुप, कुरूप	२.१६१४	✓विहल-वि + घट् °इ ९.१६.५, °हिं	८.१५.७
विरुवभ-(१) वि + रूप्यक, रूप्यक-रहित (११) विरु-पकः, कुरूप ५.१३.३१; ९.१२.५		✓विहलंत-वि + घट् + शतृ ७.६.१३; ९.१६१०; १०.१८.१८	
विरुह-विरुद्ध, आरुद्ध	७.२१३	विहलण-विघटन	७.६.१४
विरेणु-(तत्सम) (१) रेणु विना (११) विशिष्ट रेणु	४.१८६	विहलफट-(दे) व्याकुल	७.१०.२९, ८.११; ९
विरोह-विरोध	५.१३.२३; ७.१३.१३	✓विहलदाभ-वि + घट् + णिच् °इ	८.९.६
विसयजीहा-विषय (कामभोग), जिह्वा	३.७.१४	विहल्लिभ-विघटित	८.१४.१२
विसयबंध-विषय + अन्व	९११.१५	विहल्लिभ-वि + लण्डित, बाहृत	६.८.१
विसयसार-विषयसार (१) प्रदेशोर्मि श्रेष्ठ (११) भोगोर्मि श्रेष्ठ १६.४		विहल्ल-विभक्त	६.८.४; प्रश० ९
विसयसुख-विषयसुख	९.७.१५	विहल्ल-विघटत	७.१.१९
विसयसुद्ध-विषयसुद्ध	९.६.७	✓विहरत-विहर् + शतृ २.१५५; ७.१३.१६; १०.१२.४	
विसयासक्त-विषयासक्त	९.५१२	विहव-विभव, वैभव	५.२.१५; १०१.१
विसयाठिलास-विषयाभिलाष	२१८४	विहवीह्य-विषवाभूता (स्त्री० विज्ञ०)	१.११.५
विसर-विस्वर-दु.खद	२.२०.३	✓विहसंत-वि + हस् + शतृ	५.४१२
विसरिस-वि + सदृश, विशेषसदृश	५.८.२५; ५.१११७	✓विहा-वि + भा °इ ४.१७१५, ५.७.४, °इ (घट्टव०) ९.९८	
विसविल्लि-विपवेल	५१३.५	विहाइय-विभावित, दष्ट	८.२.२
✓विसह-वि + शोम् (राज्) सह °इ ७.१०२१		विहाइय-शोभित	९.८.६
विसहर-विपहर (कथा)	४.१०७; १०१८.१	विहाण-विमान, विधान	२.१२.३; ९१५१३
विसहल-विपफल	७.४.११	विहि-विधि	३.६.१०
✓विसहेव्व-वि + सह (कर्मणि, भवि०)	२.२८	विहिय-वि + घ्रा	३.१०.१०
विताय-विपाद	२.१६.५, १११.११	विही-विधि, देव	८.९.६
वितायर-विप + आकर, जलनिधि	१६.२०	विहीण-विहीन	९.१०.२; १०२.५
विशाल-विशाल	१.१८.१; ९.१३.१५	✓विहुण-वि + घृन् °वि	९.१९.१७
		विहुणिय-विघ्नित	५.७.१०; ५.७.२२

विहुर-विहुर, विषमपरिस्थिति आपत्ति ६.१२.२;	वृत्त-वृत्त	५.१३.३१
७.८.१२	वेज-वेग	७.१०.१४; १०.१४.१२
विहृसण-विभूषण	वेहृल्ल-विचकिल्ल (पुष्पलता)	४.१६.४
विहूसिय-विभूषित	वेत्तर-व्यन्तर	१.१६.७
विहोयल-वैभवयुक्त	वेज्ज-वेद्य	११.४.१
वी-अपि	वेडिअ 'य-वेण्टित	५.३.६; ६.१.१३; ११.११.३
वीज-द्वितीय	✓वेडिज्ज-वेण्ट् (कर्मणि) °ह	११.७.६
वीण-वीणा	वेमाणिय-वैमानिक	११.१२.७
वीणञ्जकार-वीणाञ्जकार	✓वेमेळ-वि + मुचु °ह	२.२०.२
वीणाह-वीणा आदि	वेय-वेद	२.५.८
वीणाचज्ज-वीणावाद्य	वेय-वेग	७.६.६
वीणावायण-वीणावादन	वेयघोस-वेदघोष	२.४.९
वीणोवस-वीणोपम	वेयण-वेदना	१०.२६.५; ११.५.८
वीयराज-वीतराज	वेयथंढ-(?) हस्ति	६.१०.३
वीयसोय-वीतसोका (नगरी)	वेयल्ल-वेग + ल्ल (मतुपार्थे), वेगयुक्त	३.१२.१२
वीयसोया-वीतसोका	वेयाल्ल-वेताल	७.१.११; १०.२६.३
वीर-वीर कवि	वेलाठल्ल-वेलाफूल	१०.११.४
वीर-वीर, महावीर तीर्थंकर १ सं० १; १.२.१३	वेलाणह्म-वेलाणदी, समुद्रोपकण्ठनदी, वेले : सं०	
११.१.१	टिप्पण १०.९.८	
वीरकहा-वीर + कथा	वेल्ह-वेलि, लता	४.१७.२१
वीरजिणिद-वीरजिनेन्द्र	वेल्हपास-वेल्हपाच, लताजाल	१०.२६.८
वीरवयण-वीर (कवि) वचन	वेल्हिक-वेलि, लता	५.१०.२२
वीस-विशति	वेस-वेस्या	९.१२.५; ९.१३.१
✓वीसर-वि + स्मृ (बहुव०)	वेस-वेवा	२.३.१
वीसर-(१) विहवर (२) वी-पक्षी + स्वर	वेसपड्ड-वेसपट्ट, पट्टवेसचारी	९.१८.२
वीसरिअ-विस्मृत	वेसर-(तत्सम) वेसर, अवतर, खच्चर	१.१५.४
वीसमण-विश्राम	वेसा-वेद्या	४.२१.१४
वीसोवहि-विशति + उदाधि, वीससागर (काल	वेसायड-वेस्यायत्त, वेस्याकी आधीनता, वेस्यागमन	
प्रमाण) ११.१२.५	५.९.१६	
✓वीह-वी °ह	वेसायण-वेस्याजन	४.२.६
✓वीहत्त-वी + शतृ	वेसावाह-वेस्यावाट	९.१२.४
वीहल्ल-वीमत्स	वेसिणि-वेसणी, परिवारिका	१०.१५.९
वुक्कार-गज्जना (ध्वन्या०)	वोड-वोड (नट)	१०.१४.३
वुच्च-वच् °ह	वोमहाअ-वयोम + भाग	५.५.१५
वुणण-दे) दोन, छद्दिन्न	वोरीहल्ल-वेरीफल्ल	८.१५.१३
वुण्णिगय-दे) भयभीत	✓वोल्ह-वि + उत्तम् 'वि १०.१०.२; वोलेविणु	
वृत्त-वृत्त	७.१२.१७	
वृत्त-वृत्त	✓वोळिज्जमाण-वृद्ध + णिच् + शानच् ४.१९.२०;	
२.५.७; १०.१०.२	५.८.३७	

चोक्तिय--(दे) व्यतिक्रान्त

८.१४.२१

चोक्तीण--(दे) व्यतिक्रान्त

४.१९.२

चोसग--व्युत्सर्ग

१०.२३.५

चव--इव

१८.३;२.२०.६

चवण--व्रण

९.१३.१४

## [ स ]

स-स्व

८.७.२; स स-स्व-स्व ५.८.२६

सभ-शत

३.११.२;११.८.३

सभा-सदा

८.८.५

सइत्तिचा-स्वपिता (स्त्री०)

४.९.९

सइ-स्वयं

१.११.२०

सइच्छ-स्व + इच्छा

४.२०.२

सइत्त-सवित, साववान

४.५.११

सइत्तड-(अप०) भुवित

४.२.२

सइ-स्वयं

४.८.१४

सउणयण-शकुनिजन

१०.१८.९

सउण-सम् + पूर्ण

४.११.१६;४.१३.१८

सउचायार-चोच + आचार, चोचवर्ष ११.१५.५

सउदिवहु-शत + द्वयर्द्ध, डेडसी

५.४.१५

सउहम्म-सौवर्म (राजकुमार) ८.४.११;८.५.५

सं-असिबृहत्

७.२.१२

संक-शङ्का

१.१.४;७.६.२८

संकड-संकट, संकीर्ण

९.७.१६;११.३.२

संकड-संक्रान्त

५.१.१६;१०.८.७;१०.८.१२

संकण-संकल्प

१.१८.१३;१०.२३.५

संकास-संकाश

१०.१८.११

संकिट्ट-सकिल्ल

२.२०.१

संकिण-संकीर्ण

४.१३.५;६.१२.१०

संकिण-शङ्कित

१.५.६

संकिण-संकलन

१.५.५;५.७.५

संकुह-संकुचित

५.१.२१;९.९.३

संकुल-सङ्कुल

१.१५.१

सकेभ-सङ्केत

९.४.७;१०.८.१४

✓ संकेय-सम् + केत् वि

१०.१६.९

✓ संकेस-✓ सम् + किलिस् इ

२.१६.११

संकोय-संकोच

५.१४.२२

संख-शङ्ख

१.१४.९;१०.१९.५

संखिणि-सङ्खिणी (कवाही)

९.८.१;१०.१८.१

संखेभ-सखेप

२.९.१५; १.५.९

संग-सङ्गा, प्रसङ्ग, सङ्गत

७.२.९;१०.२६.९

संगभ-सङ्गत

१०.१९.५

सगम-सङ्गम

९.९.३;११.१३.६;

संगर-सङ्ग्राम

१.११.११

संगर-सङ्ग्राम

३.१२.८

सगह-सङ्ग्रह

८.३.१३

✓ संगह-सं + ग्रह् हि

१०.२६.१०

सङ्गहिय-सङ्गहीत

८.२.६; १०.१०.७

सगाम-सङ्ग्राम

५.१४.१६;१०.१.१३

संणिणि-सङ्गिनी

८.११.१२

सङ्ग-सङ्ग

६.७.१;१०.१८.८

✓ सङ्ग-सम् + षट् इ

६.९.५

सङ्गहिय-सङ्गहित

१.९.२

सङ्गहिय-सङ्गहित, निर्मित

११.६.२

✓ संवर-सम् + वृत्ति

७.१.८

संघाड-संघात, जोडो २.८.११;२.१५.७;५.७.२३

संघाय-संघात

७.१.१२

संघ-सङ्घय, समूह १०.१६.५;१०.१८.२

✓ संघ-सम् + आच्छ् वि

६.२.३

संघडिभ-आच्छ

१.१४.१०

संघडिभ-(दे) संघारा हुआ

१०.१६.६

✓ संघर-सम् + चट् इ ११.६.१; ६ (विधि०)

६.१.११

✓ संघर-सम् + चट् + क्तु ४.१५.७;४.२१.५

संघरिय-संघारित

६.७.७

संघडिभ-य-संघलित

५.४.६;१०.१९.११

संघार-संघार, संघरण

९.१०.६

संघरिय-संघारित

५.१०.२२

संघिण्य-संघितार्थ

१.५.१७

संघइय-सम् + छादित

३.१.१५;४.१६.७

संघन्नय-संघन्न + क (स्वायें)

५.८.२२

संघविय-संघादित

४.८.६

संघिण्य-संघिण्य

६.६.१

संघिण्य-संघिण्य

२.८.१

संघन-संघन

११.१३.१०;११.१४.७

संघाभ-य-संघात

४.२.४;७.६.१;१०.१७.१४;

१०.२५.१०

संघाण-संघाण (देख)

९.१९.४

संजायरह-संजातरति	५.२.९	√संदेस-सम् + दिष् °इ	९.३.१
संजीवणि-संजीवनी	८.१८.४	√संध-सन्ध् °वि	७.९.५
संजुभ-सयुक्त	१०.२४.१३	संधी-सन्धि	१.१८.२३; ६.१४.१८
संजुप्त-सयुक्त	८.१४.३	संनिवेशय-सन्निवेशित	५.१.१२
संजोभ-संयोग	९.१२.११	√संपञ्चमाण-सं + पञ् + घानच्	५.८.२९
संज्ञा-सन्ध्या	५.११.५; ६.१०.१४	√संपञ्च-सम् + पद् + णिच् °इ ( आत्मने० )	९.२.९; १०.२.४; ११.७.८
संष्टविय-संस्थापित, वैयं वैघाया	२५.१७	संपण-सम्पन्न	५.३.११
संष्टिय-संस्थित	५.८.२२	संपणय-सम्पन्न + क ( स्वार्थे )	१०.१९.६
√संठवि-सम् + स्था + णिच् + विधि०	४.१८.८	संपत्त-सम्प्राप्त	३.६.५
संठाण-संस्थान, पैतरा, देखें, सं० टिप्पण	५.१४.२१	संपन्न-सम्पन्न	४.१२.९; ८.४
संठिभ °य-संस्थित	८.१३.३; ९.१७.८; १०.१९.११; १०.२६.११	संपन्ननाणसा-सम्पन्न (संप्राप्त) ज्ञान, देखें. सं० टिप्पण	३.१.८
संठिया-संस्थिता ( स्त्री० )	१.११.७; ६.१०.२	संपय-सम्पत्, सम्पदा	१.१३.९; ४.१४.११; ९.२.८
√संढक्षमाण-सम् + दह् + घानच्	५.५.११	संपया-साम्प्रतम्, सम्प्रति	६.१.६
संढ-षण्ड, नपुंसक	९.२.५; ११.४.६	संपल्लिख-सम् + प्रदीप्त	४.११.१
संत-शान्त ( स्थान, मोक्ष )	१०.५.१३	संपाद्भ °य-संपादित	४.९.६; ७.१३.३
संत-शान्त	१०.८.१२	संपुण्ण-सम्पूर्ण	३.६.४; ९.८.११
संतचित्त-शान्तचित्त	२.६.६	संपुणिंक्षियत्-सम्पूर्ण + क्ष्निप्रत्यय	११.१३.६
संतद्-संयस्त	७.६.६	संपेक्षिभ °य-सम्प्रेषित	२.८.१२; ५.४.१७; ५.१२.४; ७.११.१०; ८.८.१९
संतत्त-समुत्प °इ	३.१३.१२; ६.१.११	√संबञ्ज-सम् + बन्ध् °इ	४.२.१
संतप्तिभ-सन्तप्रिय	४.२.२	संबोहणाकाव-संबोधन + आलाप	२.१९.१
संताविभ-संतापित	५.११.१७; ८.१२.५	संबोहिभ-संबोधित	१.१७.१०; ८.८.१०
संताण-सन्तान, सन्तति	२.७.१०; १०.१८.८; १०.२१.२ प्रश्न० १७	संसड-संभव	= १२.९
संताविभ-संतापित	६.१४.३	संभारिभ °य-संस्पृष्ट	३.६.५, ७.८.९
संति-शान्तिनाथ तीर्थकर	१.४.५	√संभाव-सम् + भू °इ	२.८.१०, ११.४.१०
संतुभा-सन्तुवा ( वीरकविकी माता )	१४.८; प्रश्न १२	संभाविय-संभावित, सम्मानित	६.११.९
संतोस-सन्तोष	२.७.३; ७.१३.६	संभावियभ-संभावित + क ( स्वार्थे )	२.१०.२
संथड-सार्थ, वणिक् दल	८.३.११	संभासण-संभाषण	७.१३.११, ११.१४.६
संथर-सस्तरण, विछोना	१०.२०.११	संभूभ °य-संभूत	३.३.७; १०.३.४
संथाण-संस्थान, शास्त्रकोष, म्यान	५.१४.१०	√संमाणिज्ज-सम् + माण् ( कर्मणि ) °इ	८.१६.४
संथाविभ-संस्थापित	३.४.७; १०.१४.५	संरक्षिय-संरक्षित	७.६.१२
संथुभ-संस्तुत	७.१३.१८	√संलग्ग-सम् + लग् °इ	४.९.७
संदण-स्यन्दन	६.४.५, ७.१.२०	संलद्ध-संलब्ध	२.१९.६
संदरसिय-संदर्शित	३.७.९	सलीण-सलीन, लया द्वया	९.१४.१४
संदिणी-स्यन्दिनी, राजमार्ग	१०.१९.१४	संवच्छर-संवत्सर	२.५.१०; १०.१५.३
संदिण-संदत्त	५.६.१०; ९.१४.१६	√संवड-सम् + पद् °इ ( आत्मने० )	४.११.१५
संदीवण-संदीपन	१०.८.९	संवस्थि-संवृत्त	८.६.१४, ११.८.९
संदीविभ-संदीप्त, प्रज्वलित	१०.१५.८		



संक्लिष	य-संक्लिष ४.१४.१; ५.१.१८; १०.४.११
सचिच-सचित्र, विविध	४.१२.१३
सचेयण-सचेतन	११.५.८
सच्च-सत्य	११.१४.६; °स-सत्य २.१३.८; ४.१७.४
सच्चरिच य-सच्चरिच	८.२.४; प्रश्न ११
सच्चविय-( दे ) दृष्ट, विलोकित	७.६.१४
सच्छ-स्वच्छ	६.१.४
सच्छंद-स्वच्छन्द	१०.७.२
सच्छमई-स्वच्छमति	१.२.३
सच्छाय-सक्षाया, शोभायुक्त	३.१३.४
सच्छंद-( i ) स्वच्छंद, (ii) स + छन्द	१ ३ ३
सज्ज-सर्ज वृक्ष	५.८.१०
सज्ज-सज्जित, तैयार	७.३.१२; ७.१२.१५
सज्जण-सज्जन	१.८.२; ८.८.५
सज्जिअ-सज्जित ४.९.९; ७.१२.१८; °य ४.२०.४, ७.८.१३	
सज्ज-साध्य	३.९.४; ९.५.१२
सज्जहरि-सहागिरि, सहाद्रि	४.१५.९; °गिरि ९.१९.४
सज्जाम य-स्वाध्याय	२.८.३; १०.२३.४
सज्जक्य-( दे ) झटपट	५.१४.२०
✓ सज्ज-सज्ज + शतृ	६.१०.११
✓ सण-सण धान्य	१ ८.५
सणाह-सनाथ ( स्त्री० विशेष )	१.१०.६
सणेह-स्नेह	९.१२.८
✓ सण्णत-समु + णप् + णिच् (स्वार्ये) + शतृ	१० १६.७
सण्णण-स्व + ज्ञान	२.१.५
सण्णाल्लयअ-संज्ञालु + क (स्वार्ये)	२ ६ ९
सण्णस-संन्यास	३ ९.१९, १०.२४.१२
सतक-(१) सतक (ii) सतक, मट्ट सहित	८.१३.१३
सताक-सताल, सरोवरयुक्त	३.२.५
सत्त-सप्त	३.१ ६.४.५.१३
सत्त-सत्त्व	६ ९.३
सत्तंग-सप्त + अङ्ग	१.१२.६
सत्तगोयावरीभीम-सप्तगोदावरीभीम (वीर्य)	९.१९ १४
सत्तम-सप्तम	१.१६.८; २.३ ६
सत्तरि-(हि) सत्तर (७०)	प्रश्न १
सत्तरह-सप्तदश, सत्रह	११.१०.७

सत्ति-शक्ति	७.८.१२; ९.१९.१६
सत्तिरुव-शक्तिरूप, शक्ति अनुसार	८.२.६
सत्तु-शतृ १.१.८; ६.१.१८; ६.४.२; °वर-शत्रुस्त्री पर्वत ५.४.९	
सत्थ-सार्थ समूह	२ १३.१
सत्थ-शास्त्र ४.९.५; ४.१२.९; ६ १४.५.९.१५.१३	
सत्थत्थ-शास्त्र + अर्थ	५.१.१८
सत्थाण-स्वस्थान ५.१.२१; °अ-क(स्वार्ये) ७.१३ १४	
सत्थिच-स्वस्तिक	२.९.१०
सत्थी-स + स्त्री	१०.२०.८
सदप्पण-सदपण	८.३.१४
सद्वक-सद् + अक्ष	४ १७.७
सदाण-स + दान, दानयुक्त	४ ५.१७
सदाण-स + दान, मदयुक्त हस्ति	४.२१.१३
सदित्त-सदीप्त, दीप्तियुक्त	४.५ १४
सह-शब्द १.१७.३; २.२०.६, °त्थ, °अर्थ २.५.९; °सत्थ-°शास्त्र, व्याकरण १.३.२	
सद्धक-शार्ङ्गक	५.८.३५
सद्दोहम्मिदु-शब्द + ओष + इत्तु	
सद्ध-श्रद्धा	१.५.२९.९.२.१६
सद्ध-श्रद्धा, श्रद्धावान्	९.१७.१२
सद्दालु-श्रद्धालु	१.३.८
सधर-स + धर, पर्वतसहित	१.१०.१४
सधर-स + धरा, धरासहित	१ १०.१
सधूमणि-स + धूम + अग्नि	१०.२६.२
सनिर्यसण-सविबसन	४.१९.३.
सज्जज्ज-समु + नह् (कर्मणि क्तः) सज्जह्	६ १ ९, सज्जह्वि ७ ३.२, सज्जह्वि ६.२ ७
सज्जाम-सज्जाम (धारक)	५ १३.१२
सज्जिह-सज्जिम	५.१४ ७.९.७.११; १०.२३ ९
सपत्त-सपत्र, बाणसहित	७ ८ १३
सपरियण-सपरिजन	३.१२ २०; ४.७.१, ७ १२.१५
सपरियर-सपरिकर	१०.२०.८
सपलास-(१) स + पलाश-राक्षस सहित (ii) स + पलाश वृक्षसहित	५.८.३४
सपहरण-सप्रहरण	६.११.३
सपिअ-सप्रिया	१०.८.१६
सप्प-सर्प	३.७.१२; ९.५.५.१०.१२.४
सप्पपत्ति-सर्पपङ्क्ति	७.९ ४

सपञ्च-सप्रपञ्च	१० २५.३	समसीसी-समशीर्षता, समानता	१.१५.१२
सप्यसंका-सर्पशङ्का	१-९.८	समहृद्य-वैतरा, देखो सं० टि०	५ १४.२१
सप्पुरित-सत्पुरुष	७.९.२; ११.१४.६	समहिद्विय-सम् + अर्धिष्ठित,	५.९.८
सपञ्चद-सवान्धव	८.१३.८	समहिद्वियश्च-समहृषित	९.१८ ७
सवर-शवर, भील	५.१०.९	समाण-समान, सार्द्धम् ४.२.७; ४.१२.३; १०.८.२	
सवल-स + बल, सैन्यसहित	५.६ १; ६ ४.२	समाण-स + मान, मानसहित	९.१७ १४
सवभाव-स्वभाव	२.१.४	√समाणय-सम् + आ + नी० णियइ	५.४.१७
समञ्ज-समार्या	४.६.७; ७.१३.२	समाणिज-सामानिक छन्द	९.१७.१४
समोक्ष-समीप	४.५.१२	समाणिज-समाप्त	११.१५.१०
√सम-शस् ०इ	२.८.१०; ४.१७.४, १०.१७ १७	√समार-सम् + आ + रच् ०इ	३.१२.१४
समक्ष-समय	२.२.६; १०.१७.३	समारब्ध-सम् + आरब्ध	५.१४.११
समर्द्ध-समर्क, सह	२ १३ ६; ८.१६.१३	√समारोव-सम् + आ + रोप् ०ए(आत्मने०) ५.५.१३	
समडसिय-समवासित, वस्त्र पहनाये	१० १९.८	समाकत्त-समाकृत, कथित	१०.९.५
समर्ग-सम + गन्ध, गन्धसहित	५.९.६	समावासिय-समावासित, सुवासित	४.१६.९
समरग-समग्र	४ १५ १६	समास-(i) समास रचना (ii) स + मास, मासयुक्त	
समरग-स्वमार्ग	९.८ ४; ९.८.९	१.३.६	
समरगल-सम् + अग्रल, समधिक	९.८.२२	√समास-सम् + आ + स्वम् ०इ	२.१३.१२
समचाङ्क्ष- (दे) बलवान् (?)	६.१४.५	समासाह्व-समासादित, प्राप्त	९.१९.१२
समश-समस्त	५.१२.८	समासीसदान-समाशीपदान	५.५.१४
समश-समाप्त	५.१४.१६; ६.१४.१८; ८.१६.१८	समाह्व-समाहृत	७.१० ११
समन्थ-समर्थ	२.१ ८, ७.१२ ८	समाहि-समाधि	३.१३.१५, १०.१२ १, ११.१५ ७
√समन्थमाण-सम् + अर्थ + शानच्	१ ५.१२	समिद्ध-समुद्ध	८ १६ ३
समन्थिय-समन्थित	८.११.१	समिद्ध-समुद्धि	३.१२.९
√समन्थ-सम् + अप्, समन्पति (बहुव०)	७ ४ ५	समिद्धि-समुद्धि	१.१३ ३
समन्थिज-समन्पित	१.१०.११	समिय-शमित	१.११.१६
√समभाव-सम + भू, समान होना ०हि (बहुव०)		समिर्ग-स + भृगाङ्क, भृगाङ्क ( राजा ) सहित	
१० ५ ६		५.४.१८	
समय-समय मययुक्त हस्ति	५.७.१	समी-शमी, छोकार वृक्ष	५.८ १०
समयण-समदन, सकाम	२.५.५	समीरण-समीर + न (स्वाधिक)	१ ८.१
समरखेल-समरक्षेत्र	६.४ २	समीरणवल्य-समीरवल्य, वातवल्य, देखें : सं०	
समरगण-समराङ्गण	५.४.१७	टि० ११.१०.२	
समरि-शवरी	८ १६.१३	समीव-समीप	५ २.२
समरीसी-सदृशता	१ १५.१२	√समीहमाण-सम् + ईह + शानच् २ ३.५.१.१८	
समलक्रिय-समलंकृत	८ ९.१०	समुग्गम ०य-सम् + उद्गत ८ १३ ११, ९ १३.१६	
समवसरण-समवशरण	१.१ ५, ८ ४.८	समुग्गोरिय-सम् + उद्गीरित समुद्गीर्ण	१ १८ ४
समवाज-समवाय, अमिप्राय	२ १.१, ९.११ १४	समुच्चय-समुच्चय, साथ	८ २.१४
१ १० ३ २		समुच्चय-सम् + उच्च + क (स्वाच्ये)	५.१३ १७
समसंत-सम + सत्त्व, समान बलवाले	६.९.१	समुजबोश्च-समुद्योत	५ २ १
समसीसिया-समशीपिका, स्पष्टा	७.६.२९	समुज्जोद्ध्य-समुद्योतित	१.१८.३

√ समुद्रत-सम् + उत् + स्या + शतृ	४.५.७	सयपंच-शतपञ्च	३.४.७
समुद्रिय-समुत्थित	९.१८.७	सयक-सकल	३.४.६
समुद्रिय-समुद्रित	८.१४.११	सयवत्त-शतपत्र	१.७.१; ४.१२.४; ९.९.२
समुद्रिय-समुद्रित	८.७.१६	सयसकर-शत + शर्कर, शतधाकृत शतशः विदीर्ण	९.१५.१५
समुद्र-समुद्र	५.३.७; ८.१४.११; ९.१६.१	सया-सदा	३.१.११
समुद्र- (अष्टि)	४.१२.१	सयास-सकाश, पार्श्व	११.१.२
समुद्रिच-समुद्रोप्त	४.५.४	सर-स्वर	४.१६.७, ५.८.९; ६.४.९
समुद्रिरिच-समुद्रित	३.७.१५	सर-शर	४.१०.८
समुद्राहय-समुद्रावित	५.५.१५; १०.२६.१	सर-सरोवर	४.१९.३
√ समुत्पाभ-सम् + उत् + पद् + णिच् ण्		√ सर-सृ ँइ	१०.७.१०
(आत्मने०)	१.९.५	√ सरंत-सृ + शतृ	२.५.१४; ४.५.६; १०.७.३
समुत्पाकिय-समुत्पाकित	५.६.६	√ सरंत-सृ + शतृ	१०.७.३; ७ (स्वार्थे) १०.७.४
समुत्पन्न-समुत्पन्न	११.९.४	√ सर-सृ ँइ	१०.२.१०; १०.२.११
√ समुत्पासभ-सम् + उत् + मास् ण् (आत्मने०)	१.१८.१०	√ सरंत-सृ + शतृ	३.६.३
√ समुत्पाकयंत-सम् + उत् + लल् + णिच् + शतृ	१०.२६.२	सरठ-सरठ, करकैटा	९.१०.७
समुद्र-समुद्र	५.११.२०	सरण-शरण	१.१०.८.३.९.१६
समोसारण-समुत्सारण, हृदना	५.१.२०	सरणाहय-शरणागत	५.१३.३
सम्मद-सम्मति, तीर्थंकर महावीर	१.१.१२	सरणागत-शरणागत	७.१२.८
सम्मद-सम्मति, सद्बुद्धि	१.१.१२, २.१.२	सरघोरण-शरघोरण. (कर्तरि), शरघारक, घनुप	३.१२.१६
सम्मज्ज-सम् + मार्जन	५.१.२४	सरपालिभ-(i) सरपालि-सरोवर पंक्ति, (ii) स्मर-पालित, मदनपोषित (विद्यार्थी)	३.२.६
सम्मत्त-सम्यक्त्व २.८.१; ३.७.२; सम्मत्तदिट्ठि-सम्यक्त्वहृष्टि २.१८.१; ँवर ३.५.९; ँविति-वृत्ति ११.१३.१०		सरभेय-स्वरभेद	४.१५.३
सम्मन्त्राण-सम्यक्ज्ञान	१०.२३.७	सरमद-स्वरमन्द	४.८.३
सम्मन्त्राणिभ-सम्यक्ज्ञानी	९.१.१६	सरल-सरल वृक्ष	३.१.१७; ५.१०.२०
सम्मान-सम्मान	७.६.१२	सरलंगुलि-सरल + अङ्गुलि	१.८.७
सम्मानिभ-सम्मानित ४.८.९; ७.१२.११; ११.१५.१०		सरलक्षण-सरलत्व, सीधापन	९.१२.१४
सम्मुह-सम्मुल	११.८.१०	सरलाहय-सरलायित, सरलित	४.१३.६
सय-शत	६.१४.१४, ११.३.२	सरलाकिय-स्वरललित, ललितम्बर	५.६.६
सयन्-स्वयम्भू ( कवि )	१.२.१२	सरलविश्र-सरलायित, सरलित	४.१५.८
सयन्सृज-स्वयम्भूदेव ( कवि )	५.१.१	सरवत्त-शरवत्त, बाणमुल, बाण	७.८.१
सयसद-शतसण्ड	१०.६.१६	सरवर-सरोवर	१.७.१, ४.२०.१; ५.९.७
सयद-शकट	५.७.१२	सरस-सरस, रमयुक्त	१.५.१०
सयण-शयन	९.१३.१७, १०.८.१६	सरस-स + रस, सङ्ग्रामरस, वीररस	५.६.१
सयण-स्वजन, सज्जन	४.६.७; ६.११.९	सरस-(तत्सम) (i) ग + रस, (ii) रसयुक्त (ii) मन्त्रे, सानुराग (iii) घनयुक्त	९.१२.१८
विद्व-स्वजनवृन्द	८.१०.३	सरमद-समयवी देखी	१.४.७
सयणिज्ज-शयनीय, शोभ्य	३.११.१३	सरमय-संपर्प, मग्गो	७.२.९

सरस्ववण-(i) सरस + वण, नवीन वण(ii) शर +  
स + वण, वाणके वणसे युक्त ६.६.१०  
सरस्वई-सरस्वती ३.१.४  
सरह-शरभ, शार्दूल १.१.८; ५.८.३१, ७.४.३  
सरह-स + रय ५.८.३१  
सरह-स + रभस् सोत्कण्ठा, २.१५.१४; ७.११.८  
सरहस-स + रभस् ९.८.१४  
सराह-स + राह, राहदेश सहित ९.१९.१०  
सराय-स + राजन्, राजासहित ६.१.१६  
सरावणीय-(1) रावण सहित (ii) रावण वृक्ष  
सहित ५.८.३३

सरासन-शर + आसन, वनस्प ७.९.१२  
सरि-सरित् १.५.१०; ४.१०.४; ६.९.१०  
सरिभ-स्वरित १.६.१०  
सरिभ-स्युत ६.११.३  
सरिभ-सवृष, २.१८.१५; ९.१२.९  
सरिभ-स्वरित ६.७.२  
सरिभ-सवृष ५.९.१, ६.१.२, १०.१.११  
सरीर-शरीर २.४.२; ४.१९.१०, १०.२६.५  
सरुभ-स्व + रूप १.१८.१२, ४.१७.१२  
सरुभ-स + रूप, सुन्दर ९.१२.१५  
सरुभ-स (1) स + रूप्यक ९.८.२१  
सरुभायर-स्वरूपाकार ९.११.१५  
सरोरुह-सरोरुह, कमल १.१८.७  
सरोस-सरोष ५.१३.१२  
सरुक्खण °उ-सरुक्खण ५.४.१९, ८.१२; ४.७.११  
सरुक्ख-लक्ष्मा सहित ७.२.४; १०.८.२  
सरुवट्टि-(वे) सरुवट्ट, सिकुद्ध ४.१२.१२, ४.१४.७  
✓सरुसक-सरुसल्ल, °लति ( बहुव० ) ९.१०.३  
सरुसलिय-सरुसलित ( ध्वन्या० ) ५.६.८  
✓सरुह-बलाध्, °हन्ति २.११.३  
✓सरुहन्त-बलाध् + धत् २.७.११  
✓सरुहिल्ल-बलाध् ( कर्मणि ) °इ ४.९.८;  
५.८.२८  
सली-स + लीला, लीलायुक्त ४.११.५  
सलेव-स + लेप, सदर्प ६.११.५  
सलोण-(1) स + लवण (ii) स + लावण्य-१.६.११  
सल्ल-शल्य, काटा २.१८.१५, ५.११.१५  
सल्ल-सल्लकी वृक्ष ४.१६.४; ४.२१.१

सल्लतुल्ल-शल्यतुल्य ३.१३.१०  
सल्लिय-शल्यित, शल्ययुक्त ५.४.६; १०.१९.१२  
सल्लेद्वण-सल्लेखना १०.२४.१०  
सव-शव १.११.१४  
✓सवंत-सव् + शतृ ८.२.४  
सवचूरिभ-सर्वचूरित ६.८.११  
सवण-श्रवण, कर्ण, ४.८.१६  
सवण-श्रमण २.८.५; २.१८.२; °संघ १०.२४.१३  
सवत्ति-सपत्नी, हि० सीत ९.२.३  
सवर-शबर ५.१०.१०  
सवहु-सवधू ८.१३.८  
सवाल्लिणि-हि० सवालीन ( ३३ ) ११.१०.१०  
सवाल्लण-(1) स + वासन ( हि० वासन ), भाजन-  
सहित, (ii) शव + आसन, राक्षस ८.३.१२  
सवाह-स + वाध १०.१३.१०  
सविद्व-स + विद्वम्ब(ना) ९.१०.३  
सविणय-सविनय १.२.१; २.१.१; ४.१.१३;  
१०.२५.३  
सविण्य-सविकल्प २.१.११; १०.४.१  
सविथास-स + विकास ५.१४.२२  
सविल्लक्ख-सवैल्लक्ष्य, लज्जित ९.२.२  
सविवेय-सविवेक ८.२.७  
सविसेस-सविशेष, विस्तारपूर्वक ५.४.९; ६.११.१०;  
८.५.११  
सविसेसदिल्ल-सविशेष वीक्षा २.२०.१  
सविहीसण-(1) सविभीषण, विभीषण सहित (ii)  
विभीषण. (कर्तरि), भयभीत करनेवाले  
जंगली पशुओं सहित ५.८.३४  
सव्व-सर्व २.१९.४; ३.९.६  
सव्वग-सर्व + अङ्ग १.८.५  
सव्वगुण-सर्वगुण ३.३.१६  
सव्वण-सम्रण, व्रणयुक्त ७.२.२  
सव्वणहु-सर्वज्ञ १.१८.१  
सव्वत्थ-सर्व + अर्थ ८.९.९  
सव्वत्थगव-(1) सर्वार्थगत. सर्वपदार्थज्ञात (ii)  
सर्वार्थ(सिद्धि)गत (iii) कैवल्यप्राप्त  
११.१.२  
सव्वत्थसिद्धि-सर्वार्थसिद्धि ( स्वर्ग ) ११.१२.२;  
११.१५.७

सव्वक-शवल शस्त्र, हि० सव्वल	७.६.१	सहाव-स्वभाव	१.२.३; ९.६.७
सव्ववाणी-सर्ववाणी, सर्वभाषाएँ	१.१७.४	सहि-सखी	१०.१७.१६
सव्वस-सर्वस्व	१.१०.९	सदिह-सहित	१ ३.९; ८ १५.१६, 'य ४.४.७
सव्वस्स-सर्वस्व	६.१.१	✓सहिज्ज-सह् (कर्मणि) °हो (विधि०)	६.३.८
सव्वहि-स + व्याधि	११.५.८	सहुं-सह, साथ	१ १८.१४; ३.१०.३
सव्ववाचय-सर्व + अवयव	१.१.६	सहुं-सभा	२.३.९
सव्वास-सर्व + अथा: (कर्तरि) अग्नि ५.४.४, ५ ५.३		सहुट्ठ-स + ओष्ठ	३.११.८
सव्वास-सर्व + आशा	४.६.२	✓सहेव-सह् + तुमुन्	१०.२६.६
ससक-शशाङ्क	४.१२.४	सहोयर-सहोदर	२ १३.१०; प्रश्न० १३
✓ससंत-स्वस् + शतृ	९.२.२	सहोयसि-सहोदरा, भगिनी	११ ३.५
ससद्ध-ससाव्वस्	२.१२.५	साहिणि-शाकिनी, शाकिनी	९.१२.९
ससर-(१) स + शर, शरयुक्त (११) स + सर, सरो- वरयुक्त ५.८.३२		साकद-स + आकन्द(न)	१०.१८.९
ससरीर-स्वशरीर	१०.२.११	साढण-शाटन, नष्ट करना	३.६.२, ११ ८.८
ससहर-बाशघर	७.३.३४, ८.१२.४	साडिय-शाटित	११.९.१०
ससि-शशि २ ११.६; ४.१३.९; ११.६.५; °कंति- चन्द्रकान्ति ९.२.१		साण-दवान	९ ११.१३
ससिल्लण-शशिलाञ्जन, मृगाङ्क राजा, १० १८.९		सारणद-स + आनन्द	४.१७.८
ससिहर-बाशघर:	५.२.२१	साणुत्तर-स + अनुत्तर (देव विमान)	११.१२.५
ससी-शशि	४.७.४	साम-साम (नीति)	५.३.४
सखेण-स + सैन्य	४.५.८	साम-साम्य	४.१४.५
✓सह-राज् 'इ १.१२.७; ८.१३.१३; °हि (बहुव०, आत्मने०) ८.३.१३		सामगि-सामग्री	४.१५.६, १०.१३.५
✓सहंत-राज् + शतृ	१०.२६.५	सामण-सामान्य	४.१४.९; ८.८.११
सहण-सहन, हि० सहना	४.१४.५; १० २५.८	सामंतचक्र-सामन्तचक्र, सामन्तवृत्त	५.१.२३
सहयर-सहचर	५.२.१५	सामरिस-स + अयर्थ	६.६.७
सहयार-सहकार, आन्न	४ १५.१३	सामक-व्यामल, नीलवर्ण २.१५.३, ५.८.२३; ७.९.६	
सहयारि-सहकारी (कारण)	१०.४.३	सामकी-व्यामल (स्त्री० विशेष०), हि० सावली	
सहक-(१) स + फल, फलयुक्त (११) सफल ३.२.९, ६.१२.३; ९.१५.२		३.३ ९; ४.१८.१२	
सहक-सरल, आसान	९.१५.२	सामाणिअ-सामानिक छंद	९.१७.१४
सहस-सहज	३.९.१७; ४.२.९	सामि-स्वामी	६ ८.३; °अ °क (स्वार्थे) ८.६.८; °य-°क (स्वार्थे) २.७.८; ६ ८.७
सहसकख-सहसाख, इन्द्र	१ १५	सामिसाळ-स्वामिसार, स्वामिश्रेष्ठ	९.१०.११; ११ ३.६
सहसट्ठ-सहस + अष्ट, अष्ट सहस	५ १४.९	सामी-स्वामी	१.११ ११
सहसत्ति-सहसा + इति	१ १४.२	सार्यमरी-शाकम्भरी (नगरी)	९ १९.९
सहससिद्ध-सहसमृङ्ग-पर्वत	५.२.८	सायद्धण-स + आकर्षण, लोचनेवाली	९ १२.१५
सहा-सभा	२.९.१८, ४ ५.३	सायस-स्वायत्त	१०.१०.१६
सहाअ-साहाय्य	९.८.५; १०.२४.७	सायर-सागर (कालप्रमाण)	२ १०.१०, ८.२.१४
सहायर-साहाय्यकर, सहायक	८ १६.१	सायर-सागर(दत्त) (श्रेष्ठि)	८.८.१९; १०.१९.१२
		सायर-सागर, समुद्र	१.३.७; °चद-°चन्द्र (राज् कुमार) ३.६.४; ३ १०.४, °जल १०.११.३;

°दत्त (श्रेष्ठ) ४.१४.१२; °दत्ताइ सागर- दत्त आदि ८.५.४; °सहि-°शशि, सागरचन्द्र (राजकुमार) ८.२.१२	साधन-साधन, सैन्य ४.२० ५.७.२२ साधणिय-साधनिक, सेनापति ५.६.१ साहयवट्टि-साधकवत्तिका १.६.८ साहरण-साभरण ७.१२.६ साहस-साहस, पराक्रम ५.२.१ साहसिम-साहसीक, साहसी १०.३.११ साहार-स + आहार ७.१२.१७ √साहार-सम् + आहारम् ११.२.९ साहारण-साधारण १०.४.१ साहिन्य-साधित, कथित ४.२२.२५; ६.११.९; ७.८.३
सार-(१) सार वृक्ष (३) सार-सारभूत १.७.३ सार-सार, सारभूत ७.२.११ सार-सारण, सरकाना, खिसकाना ८.१७.८ सारंग-सारङ्ग, मृग ४.१८.५; १०.१.८ सारभूत-सारभूत ५.१२.७ सारिच्छ-सदृश ४.१.२ सारिड-सार + वत्, श्रेष्ठ (नारियाँ) १.१६.७ सारिनर-(दे) महावत ६.७.१३ साक-शाक ( वृक्ष ) ४.२१.१ साक-वाच ४.८.४ साकतय-स + आलक्तक (हि० अलता) १०.१६.२ साकस-स + आलक्ष्य ४.७.३ साकि-शालि धान्य ५.९.६, ९.४.११ सालिष्ठेत्त-शालिष्ठेत्त ४.६.३; ९.४.९ साली-शाली, धान्य ४.६.१२ सावज-सावज १.१८.५ सावण-सामान्य ४.११.१५ सावय-श्वापद ८.३.६ सावय-आवक २.१२.१; °कुल ४.३.३; °वर ३.९.११; °वय-°वत ३.१३.११; ४.३.६	साहिज्ज-साहाय्य, सहायक ११.४.१ साहिमाण-साभिमान ५.१२.२१ साही-(दे) रथ्या, मार्ग ५.१०.७ साहीण-स्वाधीन ९.११.१; १०.१०.११ साहु-साधु २.३.४, ८.९.१४ साहुकारि-साधुकारित ७.१३.७ साहुजन-साधुजन १०.३.११ साहुसीक-साधुसीक ६.१.३ √सि-अस्ति २.१८.२; ४.१७.२ सिअ-सित, स्वेत ४.५.१५ सिअ-शिव १०.५.१३ सिंग-शृङ्ग, हि० सींग ३.१.१४; ४.१.६; १०.१.१० सिंगार-शृङ्गार ४.९.८; ५.२.१४ सिंगाररस-शृङ्गाररस ४.१८.१४ सिंगारवीर-शृङ्गारवीर (रसात्मक काव्य) १.१८.२२; ३.१४.२५ सिंगारास- (१) शृङ्गार + आश्रय (२) शृङ्गार + आश्रय ८.४.२ सिंगाहय-शृङ्ग + आहत ५.८.१७ सिंगि-शृङ्गी, शृङ्गयुक्त ११.१३.५ सिंघासन-सिंहासन ५.१.७; १०.१.३४ सिचिय-सिचि ३.७.७ सिदिं-सिदी, खजूरी, खजूरका वृक्ष ५.८.१२ सिडुवार-वृक्ष ४.२१.३ सिडु-सिन्धु (नदी) °तड-°तट ९.१९.११; °तीर ९.१७.१७ सिंधुर-सिन्धुर, हस्ति ८.७.१७ सिंधुरिसी-सिन्धुवर्षी (नगरी) १.५.१

सिसमी-जोशम (वृक्ष)	५.८.१०
सिंहल-सिंहल (देश)	९.१९.१
सिंहवार-सिंहवार	५.१०.१९
सिंहासन-सिंहासन	१.१२.७; १.१४.२
सिक्कार-सीत्कार	१.८.६
√सिक्कारंती-सीत्क + शतृ (स्त्रियाम्)	८.१६.१३
सिक्किरी-(दे) पताका	१.१५.७
सिक्ख-सिक्खा	८.८.१८
सिक्खापमाण-शिक्षाप्रमाण	२.१९.६
सिक्खिअ-य-शिक्षित	४.१७.२१; ५.२.१५
या-शिक्षिता (स्त्री०)	४.१२.१०
सिग्घ-शीघ्र	३.५.११; १०.१०.४
सिग्घजाण-शीघ्रयान, विमान	६.१०.११
सिग्घ-शीघ्र	२.१५.१२
सिज्ज-शैव्या	१०.१६.१०
√सिज्ज-सिद्ध १०.२.६; ए (आत्मने०)	३.९.२
सिद्ध-शिष्ट, कथित	९.१२.६; अ ९.४.१३; उ १०.२.५ अण-शिष्टजन ९.१५.४
सिद्धि-श्रेष्ठि	३.११.१
सिद्धि-शिक्षि	९.१८.५
सिण्ण-सैन्य	७.३.३
सिणेह-स्नेह	५.९.४
सिपा-सिक्त	४.११.४; ४.१९.२
सिद्ध-(१) सिद्ध (११) शिक्षित ११.१.२; ११.१२.११	
सिद्ध-सिद्ध, तान्त्रिक, अवधोर (पंथी)	६.७.७
सिद्ध-प्राप्त	९.४.१२; उ १०.३.६
सिद्धंत-सिद्धान्त	१०.४.७
सिद्धविनास-सिद्धविनाश, उपलब्धनाश	९.१०.२२
सिद्धालय-सिद्धालय, मोक्षस्थान	१०.२४.९
सिद्धिअ-सिद्धिनय, दैवयोग	९.८.१५
सिद्धिबहु-सिद्धिबधू, मोक्षबधू	४.४.११; ८.४.१०
सिप्प-शिल्प	२.९.८
सिप्पिणी-(१) शिल्पिनी (११) सूक्ति, हि० सीपी ७.४.२	
सिमिर-निविर, स्कन्धावार, सैन्य ५.१०.३, ६.१.१३	
११.७.५	
सिय-लक्ष्मी, श्री, घोभा	४.१६.८, ९.३.१५
सिय-सित, श्वेत ४.११.१४; गुणवक्त्रिमा १.१०.५;	
छुह सुवा, चूना, २१६१०; धण	
गोरस्तन ४.७.४; पचमी-शुक्लपचमी	

३.१२.१८, बह-श्वेतपट १०.१८.९;	
सत्तमि-शुक्लसप्तमी १०.२३.१०; हारस-	
श्वेतहार धारिणी (स्त्री० विशेष) १.६.८	
सियाळ-शृगाल, हि० सियाळ, सियार ९.११.२	
सिर-शिरा १०.१३.८; ११.६.२	
सिर-शिर २.१६.८, ५.१३.१०; १०.१९.१७	
कमल १.१३.१; २.१०.१, भार ५.२.१९	
हिय-शिरा घृत १०.१९.७	
सिरस-सिरीष (पुष्प) ८.१०.८	
सिरसिष-सरसिष, कमल ८.१२.४	
सिराबच्च-शिराबच्च ४.२२.१७	
सिरि-श्री २.१४.६; ४.१६.८; खंड-श्रीखण्ड	
७.१२.२; ८.१५.८; तखड-श्रीतखड (श्रेष्ठि)	
१.६.१; लाडवग श्रीलाटवग (गोत्र) १.४.२	
सिरिस-सिरीष पुष्पवृक्ष ५.८.१०	
सिरिसत्तुआ-श्रीसत्तुआ (वीरकविकी माता) प्रश० १२	
सिरिसेण-श्रीसेना (श्रेष्ठिपत्नी) ३.१४.८	
सिरिमज्जदेस-श्रीमज्जदेस ९.१९.१३	
सिरी-श्री ४.५.३; शर ८.२.१३; पव्वय-श्रीपर्वत	
९.१९.२	
सिळ-शिला १.९.६; ८.६.१४	
सिणायड-शिलातट ६.९.१०, ९.९.१०	
सिद्ध-शिव, शृगाल ७.१.१२	
सिद्ध-शिव (घूर्तनाम) ९.१०.२३, १०.१८.१	
सिद्धपवि-शिवदेवी (नेमि दीर्घकरकी माता) ९.१४.७	
सिद्धकुमार-शिवकुमार (राजपुत्र) ८.१३.४, कुमारि	
३.५.११; कुमारहिहाण शिवकुमार +	
अभिधान (नाम) ३.४.४,	
सिद्धधाम-शिवधाम, मोक्ष ११.१.१४; पद्म-शिवपथ	
९.१०.१४; बद्ध, बधू-मोक्षलक्ष्मी	
१.१४.११, सुह-शिवसुख २.६.११;	
८.८.१८	
सिवाल-शृगाल १०.१२.४	
सिचिण-स्वप्न १.२.२; उ ४.५.१७; त्य-स्वप्नार्थ	
४.६.१०	
सिसिर-शिशिर (ऋतु) ४.१८.९	
सिसु-शिशु २.१०.४, ५.९.१३; भाव-शैशव ३.४.६	
सिहडि-(१) शिखण्डी-मयूर; (११) शिखण्डी अर्जुन-	
का सहयोदा ५.८.२१	
सिद्ध-शिखर ४.७.६; सिहरा (वटवृ०) १०.३.९	

सिहरि-शिखरिन्, पर्वत ५.१३.३२; ७.८.१२;  
१०.१.१०

सिहि-शिखिन्, अग्नि २.१८.४

सिहि-शिखिन्, मयूर ९.९.६

सिहिण-स्तन ४.१३.१२

सिहिसाहुल-शिखि + साहुल-(हे) वस्त्र  
शिखिवस्त्र, मयूरध्वज ५.७.७

सिही-शिखिन्, अग्नि ५.५.११

सीम-सीमा (क्षेत्र) ५.३.१०

सीमंतिणि-सीमन्तिनी ३.९.१७; ६.१४.१४

सीमंतिणी-सीमन्तिनी १.९.१०

सीय-सीत, सीतल १०.७.६

सीय-सीता ३.१२.१; ५.१३.६

सीयर-सीकर ८.१५.८

सीयल-सीतल १.७.२; ३.१.१६; ७.१५.८; °घण-  
अतिशीतल १.१३.४

सील-शील ३.६.२

°सील-शील (साच्छील्ये) २.१२.७

सीबाव-पिबु + णिच्, सीबाविम-सिलबाया ४.३.२

सीस-सीर्ष २.१२.१३; ७.१३.१७

सीस-शिष्य ७.१३.१६; ११.१.२

✓सीस-शास् °ह ३.६.१३; ९.८.१

सीसक्क-(हे) शिरस्त्राण ६.१३.९

सीसत्तमाड-शिष्यत्वभाव ४.१७.२१

सीह-सिह ५.१४.२; ११.२.६; °हार-सिहद्वार  
४.५.१०

सीहवार-सिहद्वार ५.१०.१८; ५.११.१

सीहल्ल-वीर कविका एक अनुज प्रश० १४

सीहसिक्कि-सिहशिषु ७.६.३०

✓सु-श्रु, सुम्मई (वहुव०) ४.१५.२; ७.२.३

सुभ-सुत ३.५.९; ३.१४.८; ७.५.८

सुभ-श्रुत ६.१.५

सुभकेवकि-श्रुतकेवली ४.३.१३

सुद्ध-श्रुति-श्रवण १.१.११

सुद्धण-स्वप्न १०.१३.३; १०.१३.१२

सुद्धणत्तर-स्वप्नान्तर १०.७.८

सुद्धाण-श्रुतिज्ञान, शास्त्रज्ञान १०.१८.१

सुद्धाणोय-स्वप्न + आलोकन, स्वप्नदर्शन ४.६.९

सुद्ध-सुचिर ९.१२.१८

सुद्धसत्थ-श्रुति + शास्त्र ९.१६.७

सुव-सुत ४.२.५

सुंढ-सुण्ड, हि० सुंढ ४.२०.११; ६.१०.३

सुंदर-सुन्दर, सुद्ध १.२.७; २.११.४

सुंदरि-सुन्दरी २.१४.६; १०.१४.११

सुकद्ध-सुकवित्त १.३.१

सुकम्म-सुकर्म, पुण्य २.५.४, ४.५.५

सुकन्ति-सुकान्ति, सुकान्ते (स्त्री० सप्तमी) ४.१८.१२

सुकर-सुकर, सहल, आसान २.७.२; २.७.३

सुकुमार-सुकुमार १०.१६.१

सुकुलक्कम-सु + कुलक्रम ११.१३.६

सुक्क-शुक, रज-वीर्य ९.१३.१६

सुक्क-शुक्क १०.२.६

✓सुक्कत्त-शुप् + शतृ ५.८.२६

सुक्कंग-शुक्क + अङ्ग १०.१३.८

सुकुग्गण-शुक्कलघ्यान १०.२४.१

सुकुक्क-शुक्क + वंश (बास) ४.१५.२९

सुक्क-शुक्क (चर्म) १०.१२.६

सुक्क-सुक्क ८.२.१४

सुक्कत्त-शुक्क ५.८.१६

सुक्कहार-सुक्कार्हा ११.१२.७

सुक्कट्ट-(i) सु + खट्वा, खाटोसे युक्त (ii)

सुक्कट्टा, कट्टे पदावधि युक्त ८.१३.१२

सुवद्धि-सुवदित ८.९.६

सुवित्त-सु + वित्त + वत्, शुद्धवित्तवाला ३.१०.१२

सुट्ठ-सुट्ठ ३.११.५

✓सुण-श्रु °मि ५.१२.२१; °हि (विधि०)

१०.१२.९; सुणी (विधि०) १.५.९;

सुणु (विधि०) २.१८.९; सुणिवि

६.२.८.५; ८.६.११; सुणिवि १०.८.१४

सुणोण ५.५.१३;

✓सुणत्त-श्रु + शतृ २.१३.४; ३.६.१२

सुणह-सुणख, स्वान ९.११.५

सुणिव-श्रुतम् ४.१२.११, ९.१६.३

सुण-शून्य, रिक्त ४.१०.९; ४.११.२; °अ-शून्य

८.१६.१२; णिही-°निवि ९.८.२३; °हत्त-

°हत्त ६.१०.९

सुण्णारार-शून्य + आगार, शून्य घर आदि १०.२२.६

सुण्णार-सुवर्णकार, हि० सुनार १०.१६.१



सुण्णासण-सूय + आसन	७.६.२	सुमह-सुमद्रा (श्रेष्ठ पत्नी)	३.१०.१३
सुण्ह-सुनुषा, वधू	९.१७.४	सुमह-सुमति, सुवृद्धि	प्रश० १३.
सुतरणि-सु + तरणि, सूर्य	- १.१.२	सुमह-सुमति मुनि	३.१३.७
सुत्त-सुत्त, घागा, हि० सूत	१.३.१०; १०.४.३	✓ सुमरव-स्मृ + शतृ	३.७.४; १०.१७.१२
सुत्तउ-सुत्त + वत्, सुत्त	३.१४.१३	सुमरण-स्मरण	५.४.८
सुत्तकण्ड-सूत्रकण्ड (ब्राह्मण)	२.५.२	✓ सुमराव-स्मृ + णिच् 'इ	४.१९.८
सुत्ति-शुक्ति, हि० सीपी	८.११.९	✓ सुमरावन्त-स्मृ + णिच् + शतृ	८.३.५
सुत्थिय-सु + स्थित	१.१६.१०; ८.२.१३	✓ सुमरिज्ज-स्मृ (कर्मणि) 'इ	१.११.५
सुत्थिय-सुप्ता (स्त्री० विद्ये०)	४.५.१७	सुमरिय-स्मृत	७.५.१५; ८.५.११
सुदंसणा-सुदर्शना (देवी)	३.१४.२	सुमहत्त्व-सुमहत्	५.६.१४
सुदिट्ठ-सुदृष्ट	४.१९.५	सुमहुर-सुमधुर	८.१६.५
सुइय-कथानाम	१.४.४	सुमाणिक्क-सुमाणिक्क	४.५.१०
सुद्ध-शुद्ध (भाव)	१०.४.१४	✓ सुम्म-श्रु 'इ (आत्मने०)	१.१०.२; ३.१२.६
सुद्ध-शुद्ध १०.२.८; 'गामि-शुद्धाचारी	१०.२१.७;	सुय-सुता	४.१२.६
'चरित्त-शुद्धचरित्त ११.१४.१३; 'पक्ख-		सुय-सुत	१.३.५
'पक्ख, सुक्कपक्ख प्रश० ४, 'मई-भति-		सुय-भुत, सुना	३.१२.१३
२ १८.८; ८.४.७, 'मण-मन १०.२६.११;		सुयंभ-सुगन्ध	१.१३.४; २.९.१०; ४.५.१६
'वंस-वंस प्रश० १२; 'सुक्ख-शुद्धस्वरूप		सुयकेवकि-भुतकेवली	४.३.१३
१०.४.१३		सुयण-स्वजन	२.९.१८; १०.२१.२
सुद्धायास-शुद्धाकाश	११.१०.१	सुयण-सुजन, सज्जन	३.१४ १६.७.१.२.९.१.१
सुद्धि-शुद्धि	४.१८.१०; १०.२१.९	सुयणन्तर-स्वप्नान्तर	१०.१३.३
सुधम्म-स्वधर्म	९.१७.१४	सुया-सुता	३.७.६
सुपहट्ठिय-सुप्रतिष्ठित (राजा)	८.३.१२	सुर-सुर, देव ४.३.१०; ५.११.१९; 'कारि-ऐरावत-	
सुपत्त-(i) सुपत्त, सुन्दर पत्ते (ii) सुपात्र (व्यक्ति)		हस्ति ४.१०.४; 'दन्ति-ऐरावतहस्ति ७.४.१०;	
३.२.९		'नर-सुर + नर २.१.१; 'नारी-अप्परा	
सुपत्त-(i) सुपात्र सुन्दरभाजन (ii) सुपात्र-योग्य-		९.४.१७; 'रमणि- 'रमणी, अप्सरा ८.९.३;	
व्यक्ति ८.१३.१३		'वह-पति, इन्द्र १ सं० ८, 'वह-वधू, अप्सरा	
सुप्रमाण-सुप्रमाण	७.१३.४	६.४.५, ७.६.३; 'सरि-सरित्, सुरगङ्गा, गङ्गा	
सुप्रयोहर-(i) सुप्रयोधरा, स्वच्छ जलयुक्त		४.१०.४, १०.१७.९	
(ii) सुप्रयोधरा-सुस्तनी	३ २ ८	सुर-सुरा, मदिरा	६.७.२१
सुपरिक्खिअ-सुपरीक्षित	२.११.८	सुरभ 'य-सुरत	२ १३.६; १९.८
सुपसत्थ-सुप्रसत्त	२.१३ १; ५.६.१४	सुरमणीअ-सुरमणीक	३ २.८
सुपसाअ-सुप्रसाद, कृपा	३.७.२	सुरहि-सुरभित	८ ३.४
सुपसिद्ध-सुप्रसिद्ध	१.६.२	सुरहिअ 'य-सुरभित १० १७ १३; ८.१३.४, ९.१२.२	
सुपहट्ठ-सुप्रतिष्ठ (राजा)	८.४.७	सुरहिवाअ-सुरभितवायु	३.१०.१
सुप्पमाण-सुप्रमाण	६ १०.७	सुरा-सुरा, मदिरा	४.८.१५
सुप्पह-सुप्रभा (जैन साध्वी)	१०.२१.४	सुराअ 'य-सुर + आलय	२.३.६, ३ ७.३
सुफुरिय-सु + स्फुरित	१.६.५	सुरिंद-सुरेन्द्र	१ १७.१
सुबधुत्तिकअ-सुबधुत्तिक मुनि	३.५.२	सुक्कलण-सुक्कलणा-(स्त्री० विद्ये०)	२.११.३

मुल्लिय-मुल्लित	३.१.१६; ५.१२.१५	सुहृणकखल-शुभ + नख + वत्, सुन्दर नखोवाली	
√ सुच-स्वप् ई	६.८.३		३.१०.१४
सुवर्ण-सुवर्ण	४.५.१६, ९.८.७	सुहृणकखलजोख-शुभनक्षत्रयोग	३.४.१
सुविश्वर-सुविस्तार	३.२.१	सुहृसील-शुभसील, शुद्धाचरण	प्रशं० १२
सुविशुद्ध-सुविशुद्ध	३.५.६	सुहृम्म-सौवर्म या सुवर्म मृनि	१०.१९.१७;
सुविहोय-सुर्वमवयुवत	३.६.११	१०.२१.६; 'सामि-सुप्रमस्वामी	७ १३.१६
सुव्यय-सुवता (जैनसाध्वी)	३.१३.१४	सुहय-सुमय, सुन्दर	४.१९.२२; १०.१६.८
√ सुत-स्वप् ई	४.११.४	सुहयत्त-सुमयत्त 'ण (स्वाधिक)	१०.१७.१७
सुसं-सुसाम	९.९.१०	सुहा-सुधा, समृ	१.१८.८; २.१२.१
सुसक-सुसकत, ससकत	५.४.२१	सुहापङ्क-सुधापण्डु, चूनेसे पुता हुआ	४.५.१४
सुसक्त-सुसक्त, सुहृदय, शुद्धात्मा	८.५.१२, ११.१५.७	सुहाभाविय-सुधा + भावित (प्रभावित)	२.१२.१
सुसम-सुसम, सरल, सुख	१०.३.१०	सुहायर-सुहाकर, सुखकर	८.१३.६; ११.१२.५
सुसाह-सुसाहृ	३.३.८	√ सुहाव-शोभ ई (आत्मने०)	११.१२.१०
सुसिध-शुष्क	१०.१५.६	सुहावण-सुहावन, हि० सुहावना	१.१६.४; ४.८.१६;
सुसिर-सुपिर, छिद्र	११.८.३		४.१५.७
सुसुति-सुसुति	९.१७.७	सुहावणि-सुहायनी (स्त्री० विशेष०)	१.१०.२
सुद-शुभ, सुन्दर	४.७.७; ८.५.१४ 'कम्म-कर्म	सुहासायर-सुधासागर	१.१८.६
२.११.५; ८.५.११; 'गघ-गन्ध	४.६.३;	सुहासुह-शुभ + अशुभ	३.७.१४; ४.४.८
'वरण २.७.८, 'वरण-वारित्र	१.४.१;	सुहि-सुहृत्	५.१.३०; ८.१०.१४
दंशन (१) 'दर्शन-सुन्दराकृति (११) शुभदर्शन-		सुहिय-सुखित, हि० सुखी	२.६.१२
सम्यकश्रद्धा	२.६.६, 'भाव-शुभभाव	सुहितक-सुखद 'इल्ल (स्वायँ)	११.६.१०
१०.४.१४; 'भावण-शुभ भावना (युक्त)		सुही-सुहृत्	१.५.४
१.१६.१०; मण-शुभमन	४.३.७; 'लस्त्रण-	सुहृम-सुहृम	८.१२.५
शुभलक्षण	८.४.१; १०.८.५	सुहृभ-सुचित	१०.४.३
सुह-सुख ८.४.१२, ८.६.९; 'निलय-निलय	२.१८.८	√ सुहृञ्ज-सृच् (कर्मणि) ई	५.१०.१८
२, 'निहान-निधान ६.८.५; 'त्तित-तृप्त		सुद्धि-य-घाटित, सञ्जित	४.२१.६, ५.३.१०;
२.३.१०, 'दुह-सुखदुःख	२.२०.४, 'धाम-		८.१०.३
'धाम ५.३.१०, 'पुण-पूर्ण	५.१.२९;	सुधाहर-सूति + गृह, प्रसूतिगृह	४.८.३
'मायण-भाजन	३.१३.९, 'मिच्छु-मृत्यु	सूर-सूर	६.२.९, ६.७.१
१०.१४.८, 'यर-कर	१.२.११; 'रजिय-	सूर-सूर्य ८.१२.१४, 'कंति-कान्त (मणि)	३.३.७,
रञ्जित	१०.८.१५; 'सायर-सागर	१०.२.५; 'गो-किरण	२.३.३
'साहिय-साधित	६.४.७, 'सुत्त-सुत्त	'वचक-वक्त्रो, सूर्य चक्रवर्ती	१०.२५.१
९.१६.७		सुरखेण-सूरसेन (वणिक्)	३.१०.१२, ३.१३.५
सुहृकर-शुभहृकर, कल्याणकारी	११.२.४	सुलिणि-शूलिनी, शूलधारिणी, चण्डिका देवी	
सुहृकरण-शुभकरण	२.७.७		२.१६.१४
सुहृद-सुमट	५.३.३, ६.५.१०	सेज-(१) सेतु-गुल १.१.२, (११) सेतु-सेतुबंध काव्य	
सुहृदग-सुमट + अङ्ग	७.६.५		१.३.४
सुहृदत्त-सुमटत्त 'ण (स्वाधिक), हि० मुमटपना	७.७.५	सेज्ज-सैय्या	६.१४.१४
सुहृदसार-सुमट + सार, श्रेष्ठमुमट	५.१२.९	सेट्टि-श्रेष्ठि	३.१०.१२; ४.६.७

सेण-श्येन, बाज	१०.१०.९
सेणावह-सेनापति	५.१.२२, ५.६.१
सेणिष्ठ <sup>य</sup> -श्रेणिक राजा	१.१८.२३, ५.१०.२५; ५.१४.२६
सेणियराख <sup>य</sup> -श्रेणिक राजा	२.१.१; ७.१२.८
सेण-सैन्य	५.११.१९; ६.१२.११, ६.१३.७
सेण-शेणो, पङ्क्ति	७.३.८
सेय-श्वेत	८.१२.५
सेय-स्वेद ३.८.४, ५.१३.१८; <sup>युय</sup> -स्वेदच्युत १.९.३	
सेल्ल- <sup>(दे)</sup> कुन्त, भाला ७.८.२; <sup>हर</sup> -कुन्तपुह, भालोके कोश ७.८.२	
सेव-सेवा	११.६.१०
✓ सेव-सेव् <sup>इ</sup>	३.३.१३; ७.१.१७
सेवञ्जि-बुध	५.८.१०
सेवय-सेवक	१.४.६
✓ सेविञ्ज-सेव् <sup>(कर्मणि)</sup> <sup>इ</sup> ५.९.१७; <sup>सु</sup> <sup>(विधि०)</sup> ८.७.२	
सेविय-सेवित	८.१३.५; ९.१२.१०
सेस-शेष	४.५.१५
सेस-शेष (नाग)	४.१०.७
सेसमहाफणि-शेषमहाफणिन्, शेषनाग	५.५.४
सेसिय-शेषित, श्वशेषमात्र	७.४.१
सेहर-शेखर	१०.१९.७
सेहरिय-शेखरिक, शेखरयुक्त	४.७.५
सेक्ख-सीख्य ३.१३.१६; ९.६.१०; <sup>चत्त</sup> -सीख्य- त्यक्न १०.१४.१६; <sup>रासि</sup> -सीख्यराशि १०.६.२; <sup>वास</sup> -सीख्यवास १०.१.१४	
✓ सोच्च- ✓ शुच् <sup>इ</sup>	२.१५.५
सोढव-सोढव्य, सहनीय	१०.२२.९
सोत्त-स्रोत	७.१.१०
सोपारय-सोपारक (पत्तन) सूरत	९.१९.४
सोम-सोमनाथ	९.१९.७
सोमपाण-मोम (रस) पान	२.४.१०
सोमसम्म-मोमशर्मा (ब्राह्मणी)	२.५.४, २.५.१५
सोमाकिया-सुकुमारिका, सुकुमार कन्या	८.१०.८
सोयात्तर-शोकानुर	३.७.५
संयाणल-शोकानल	२.६.१
सोयार-श्रोतार., श्रोता	११.१५.११
सोरट्ट-सोराट्ट	९.१९.७

सोलह-षोडश	४.६.१४; ११.१२.१
✓ सोव-स्वप् <sup>इ</sup>	२.६.१०; १०.८.१२
सोवण-सुवर्ण (दीप)	९.१९.७
सोवाविय-स्वापित	६.१४.१४
सोसिय-शोषित	२.१९.५
सोसिया-शोषिता (स्त्री० विशेष०)	१०.१३.६
सोह-शोभा ६.७.४; <sup>इल्ल</sup> शोभित	८.१३.९
✓ सोह-शोभ् <sup>इ</sup>	४.७.७, ६.३.३
सोहमाण-शोम् + आनच्	५.१.१३
✓ सोहिज्ज-शुष् <sup>(कर्मणि)</sup> <sup>इ</sup>	१०.१७.७
सोहग्ग-शोभाग्य	५.९.१४, ९.१३.६
सोहण-शोभन	१०.१६.३
सोहम्म-शोधर्म (मुनि)	२.६.४
सोहाकिय-शोभावत्, शोभायुक्त	७.२.९
सोहाकिया-शेफालिका (फल वृक्ष)	५.८.१०
सोहिय-शोषित	७.१३.१९
सोहिय-शोभित	५.९.१३

[ ह ]

हअ-हृत	४.२.१६
हउं-अहम्	३.७.१; १०.१०.१२
हओ-हय, अवय	१.१५.३
✓ हउं-हन् + लुमन्	५.१४.११
हंसगई-हंसगति (स्त्री० विशेष०)	५.४.१९
हंसदीव-हंसदीप (?)	५.३.१
हक्क- <sup>(दे)</sup> आह्वान, हिं हाक ४.५.८, ४.२१.१८	
✓ हक्कंत्- <sup>(दे)</sup> आ + ह्वे + शत्	६.५.९
✓ हक्कार-आ + क्क + णिच् <sup>रिचि</sup>	३.१४.१६
हक्कारिञ् <sup>य</sup> -आकारित, आहृत, ५.८.२०; ६.१२.६;	
९.१७.१६; ७.४.१६	
हक्किय- <sup>(दे)</sup> हुङ्कृत, हुकार	१०.९.५
हह- <sup>(दे)</sup> हाट, आपण ४.१०.१; ७.१२.१; <sup>मग्ग</sup> - हाटमार्ग १.९.२, ८.३.८	
हड्ड- <sup>(दे)</sup> अस्थि, हिं हाड २.१८.१३, ७.१.२१	
✓ हण-हन् <sup>इ</sup> ९.७.३; <sup>इ</sup> ९.७.३, <sup>इ</sup> ६.७.१४;	
हणति ६.६.६; हणु-हणु (आज्ञा०)	
५.१४.९; हणिवि ५.१४.३	
✓ हणत्-हन् + शत्	२.५.१७, ७.११.१३
हणुवत्-हनुमत्, हनुमान	३.१२.२
हत्ति-मणित	१.१४.१२; ५.१०.१२

हृत्-हृत् २.१.१७; ७.१.१४, १०.१९.८  
हृत्+कुब्-हृत् + अङ्कुष ४.१५.१५  
हृत्+क-हृत्+क ५.१४.१; °पमाण-हृत्प्रमाण  
११.१२.८  
हृत्-हृत् ४.१०.४; १०.१२.२; °णावर-हृत्तिना-  
पुर(नगर) ३.१४.६; °णी-हृत्तिनी ४.२१.११,  
°मणि-नाजमुक्ता ६.३.१; °रोह-महावत  
५.७.२४; °हडा-°घटा, हृत्तिसेना ६.६.५  
हृत्पियार-(दे) हृत्पियार, शस्त्र ४.२१.१३  
हृत्-हृत् ४.६.१२  
हृत्मीर-हृत्मीर (वेश) ९.१९.१०  
हृत्-(तत्सम) हृत्, अक्ष १.१६.१; °वयण-हृत्पवन,  
अक्षमुख (जाति) ९.१९.१२, °हृत्पिय-हृत्-  
हृत्पित, घोडेका होसना ६.५.६  
हृत्-हृत् १.११.१७, ४.२०.९; °व(स्वायें) ८.१०.५,  
°दण्ड-दण्डाहत, ५.८.१५; °विमाण-हृत्विमान  
६.११.६  
हृत्बच्छ-(i) हृत्बक्ष(स्थल) (ii) हृत्बक्ष ९.१३.१२  
हृत्पक्ष-हृत्पक्ष, दुर्जन १.२.५; १०.१०.३  
√ हृ-हृ °ह ५.५.४; °मि ९.१४.४; हृत्पिण्ड  
४.२.६  
हृत्पिय-हृत्पिय, खोया हृत्पिय १०.११.११  
हृत्-विष्णु, नारायण ३.८.७, ७.४.१३  
हृत्-हृत्, अक्ष १०.११.५  
हृत्-हृत्, सिंह ८.१०.४  
हृत्-(i) कृष्ण (ii) सिंह ५.८.३१  
√ हृत्पञ्च-हृत् (कर्मणि) °हृत् १०.२२.५  
हृत्पञ्चरेह-हृत्पञ्चरेखा, चन्द्ररेखा ४.१८.११  
हृत्पञ्चमिया-हृत्पञ्चमी, चन्द्रलोमा, चन्द्रकान्ति  
३.३.१५  
हृत्पञ्चमयी-हृत्पञ्चमयी, मृगलोचनी ३.४.१०  
हृत्पिणी-हृत्पिणी १.१२.२, ३.१.१७  
हृत्पि-हृत् १.११.१५; ३.१२.१; ३.१४.१३  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ४.१.१३  
हृत्पिदण-हृत्पिदण, सिंहमुख ९.१९.१२  
हृत्पिद्वर-हृत्पिद्वर, सिंहासन १.१७.१  
हृत्पि-हृत्पि २.१६.५; ८.३.१६  
हृत्पिदण-हृत्पिदण, अक्षसहित ३.२.१०  
हृत्पिदण-हृत्पिदण, सिंहसदृश ९.११.१३  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ४.३.९; ४.७.१; ८.२.११

हृत्पिदण-हृत्पिदण, अक्षसहित २.११.६; ३.८.७;  
९.४.८  
हृत्पिदण-हृत्पिदण, अक्षसहित ३.१.१८; ९.३.४  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ४.१९.१०  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ९.३.१; १०.१५.६  
√ हृत्पिदण-(दे) कम्प, (हिलना) + हृत् (ताच्छील्ये)  
१.८.८; २.१२.९; ३.१.१५; ४.१९.११;  
५.१२.३  
√ हृत्पिदण-हृत्पिदण २.१८.८; ९.६.४; १०.२१.११; °वति  
११.१२.७; °विण-हृत्पिदण ९.१.१९;  
हृत्पिदण (मवि०, तु० पु०, एकव०) ४.१.८;  
९.१०.१७; हृत्पिदण (मवि०, तु० पु०, बहुव०)  
९.३.२२  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ३.३.७  
√ हृत्पिदण-हृत्पिदण १.८.४  
√ हृत्पिदण-हृत्पिदण + हृत् ९.२.२; १०.३.८  
हृत्पिदण-हृत्पिदण १.७.१; ४.१६.९; १०.१०.१०  
हृत्पिदण-हृत्पिदण २.१५.४, २.१६.१  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ४.२.९  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ९.३.२, १०.१८.१  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ८.१६.१५  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ४.१४.११  
√ हृत्पिदण-हृत्पिदण + हृत् (ताच्छील्ये) ५.५.६  
हृत्पिदण-हृत्पिदण १०.२.११  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ५.८.९  
√ हृत्पिदण-(दे) भ्रम् °मि ९.१५.३  
√ हृत्पिदण-(दे) भ्रम् + हृत् ६.७.७  
हृत्पिदण-(दे) भ्रमण + हृत् (ताच्छील्ये) ६.१०.२  
√ हृत्पिदण-हृत्पिदण (राग), हि० हि०ला राग  
८.१६.१२  
हृत्पिदण-हृत्पिदण १.१५.१०  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ९.३.९  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ३.११.११  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ११.११.४  
हृत्पिदण-हृत्पिदण १.१.४  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ११.११.८  
हृत्पिदण-हृत्पिदण ३.१२.१४; ४.१५.५; °अ २.६.१;  
६.६.११, ७.१.३; °हृत्पिदण-हृत्पिदण + हृत्पिदण  
२.२०.१२, °हृत्पिदण-हृत्पिदण + हृत्पिदण (स्वायें)  
३.७.६, °हृत्पिदण-हृत्पिदण ९.३.१

हियस्थ-हित + अर्थ	२.१५.१३; ५.१३.१६	हुयवह-हुयवह, अगिर	२.५.१९; ७.६.३
हियय-हृदय ४.१०.९; ९.१२.१४; °च्छिन्-°छिन्न		हुथम-हुताथ(न), अग्नि	८.१४.८; १०.२६.८
८.११.१; हुख-हुख ३.१३४, °सल्ल		√ हुस्मिज्ज-हुस् (कर्मणि) + अतृ	६.७.६
°शाल्य ७.६.१५; सूळ-सूळ-५.११.१९		हुळण-हुळ्ना	४.२०.४
हियवठ-हृदय + क (स्वार्थे) १.११.६, ९ १५.२;		हुळ्ण-हुळ्ण ध्वनि	१.१४ ९
१०.१५.७		हेइ-हेति शस्त्र	- ७.१.१९
°हिरोविय-अविरोपित	७.८ २	हेठ-हेतु	१०.२०.१२; १०.२१.९
हिळिहिलिय-(हज्ज्या०) हिनहिनामा	५.११.१२	हेंवाइय-(अण०) गवित	४.२.१३; ७.७ ५
ही-विक् दुःख, शोक, आश्चर्य	२.११.११	हेट्टासुह-अवोमुख	२ १८.८
हीर-हीरा	१.३ १०	हेट्टिल-अघस्तन, नीचेका	११.१० ३
हीरय-हीरक, हीरा	४.१४.२, ११.१३.२	हेमेयठ-हेममय, सुवर्णघटित	८.१६.३
हु-खलु	१.५.२१; २.६.१२	हेरिय-हेरिक, गुप्तचर	६ १.१७, ७.३.२
हुअ-सूत	७.११.१२, ९.१४, ९.११.४	हेळम-हेला, वेग	१.१०.७
√ हुत-भू + अतृ १.११.१२; ३.७.१२; ४.११.६		हेछि-(वे) अवभुत (?)	९.२.४
हुय-सूतः ३.७.३; ४.७.४; ४.१०.४; हुया(बहुव०)		√ हो-भू °इ ३.१२.८; °सि १०.१७.१०; °मि	
९.७.४		४ १४.३; ५.४.९; °उ (विधि०) ४.४.१३;	
हुयठ-भूतः	२.१५.१०	°हु (विधि०) ७ ३.१२; °ह्वि ९.७.१५;	
√ हुंकरं व-हुंक्कृतं + अतृ	५.७.२२	°एत्थिणु ३.१०.७; °वि ५.२.८; °सइ	
हुंकरिय-हुंकारित	६.७.२	(अवि० तु० पु० एकव०) २.१५ १०; °संति	
हुंकारिय-हुंकारित	५.८.१७	(अवि० तु० पु० बहुव०) ९.३.१४ °एसहिं	
√ हुंवरयमाण-हुंक्कृ + आनच्	१०.२६.४	(अवि० तु० पु० बहुव०) ४.३.१३	
हुळुक्का-नाथ	४ २.७; ५.६.१०	√ होत-भू + अतृ,	१.६.३
हुणिय-धुनित	१.१.५	होवठ-भू + अतृ (भूतार्थे)	२ १६.११
		√ होमिल-हु (कर्मणि) °इ	२.४.१०

## खाद्य-पदार्थ

कूर-विशिष्ट चावल	८.१३.१०	बहि-बवि	७.१२.५
आरणाळ-काजी, सावदाना	३.९.१०	दुद्ध-दुग्ध	४.१८.६.९.१०.२१
गोधूम-गोधूम, गेहूँ	५.८ २९	नाली-कयलनाल	९ २.१०
तंदूर-ताम्बूल	८ ८.४	खट्ट-खट्टे अचार, चटनी आदि	= १३.१२
संवलवत्त-ताम्बूलपत्र	९.१२.३	नेह-स्नेह, घृत	८.१३.१०
तक्क-तक, छाछ	८.१३.१३	लवण-लवण	८.१३.११
तिलजव-तिल + यव	२.६.१	मुग-मूंग	८.१३.११
तेल्ल-तैल	५ ७.२३		

ध्वन्यात्मक-शब्द

आरङ्ग < वा + रङ्-घोस्कार वरना	७.८.९
कणकणिर-कणकणिवण + हर(ताच्छील्ये) कणनशील	
३.११.६; ५.१.२१; ५.२.१	
कडक्क-कडकिय, कडाक्के दूटना	७.८.१२
खडक्क खडकिय, खडक्क करके टकराना	७.६.५
करड-करड-करड	१०.१९.२
कलल-कलकल, कोलाहल	१.१६.१, ६.७.१; ७.८.४
कलरोल-कलकल मधुररव	९.१३.११
किरिरिकिरिट्ट-किरिरि बाघकी ध्वनि	५.६.११
कुलकुल-कलकल	५.१०.१६
खडक्क-खडक्काहट	१.१५.७
खडक्क-खडक्काहट	६.१०.११
खणखणखण	६.६.६
खलखल	५.८.२१
खलखल	१.७.९
गगर-गद्गद	२.१०.७
गडगड-गडगडाहट	६.१४.४
गुमगुमिय-गुमगुम	५.१२.८
घरघर-घरघर, घरघराहट	२.१८.१०
घरघरिय-घरघरायित	२.१८.१०
घरघरिय-रघाविकी घरघराहट	१.१६.४
धुधुधुध-धुधु, उलूकध्वनि	५.८.१९
धुमधुम	१.१५.६
धुधुरिय-घरघराहट	५.८.१६
छोकार-पशु-पक्षियोंसे खेतोंकी रक्षाके लिए कृपक	
धधुधुका शब्द	५.९.९
मलमल-जलका मलमलाना	७.५.१२
मलमलय-मलमलानाहट	१.१५.७

टंटे-टिबिलवाचना शब्द	१०.१९.३
डमडक-डमल शब्द	५.६.९
डमडकिय-डक्का शब्द	१०.१९.५
डमडमिय-डमल शब्द	५.६.९
तखितखितखितखित-तक्का बाघका शब्द	५.६.१२
तडतड-तडतड	१.१५.९
तडति-तडतडिय, विद्युत् गर्जन	५.६.१३; ५.७.१९;
७.८.७	
तडितरतडि-तरड बाघका शब्द	१.१४.७
तडिफिड-हिं तडफडाना	७.१५.१२
त्रं त्रं-डक्का शब्द	५.६.१०
दगदग-दगदग बाघ शब्द	५.६.११
दगदग-बाघ शब्द	१.१५.६
घरघर-घरघर कांपना	५.७.११; ६.५.८
घिरिरिकटतट्टकट-घिरिरि बाघ ध्वनि	५.६.१३
घुगिय-बाघ शब्द	१.१५.१६
डमदमिय-डमदमाना, वल्लना	७.५.५
डगदग-जलनेका शब्द	४.६.२
घाह-घाह देकर रोना	३.७.५; ४.१९.२०; १०.११.७
रणरण-बाघ शब्द	१.१४.७
रण रण-	२.१८.१२
रं रं रं रणिय-रन्ना बाघका शब्द	१.१५.८
रणरडिय-भ्रमर गुञ्जार	५.१०.९
रणरणिय-रणरणाहट	२.१२.९
वोकार-कुङ्कार, हिं डूम मारना, गर्जना	५.८.१८
सलसलय-कंसाल शब्द	५.६.८
सलसलय	९.१०.३
हिलहिलिय-हिं घोड़ोंका हिलहिलाना	५.११.१२
हूहू-बाघ शब्द	१.१५.९

वाद्य-यन्त्र

बालावणि-आलापिनी, वीणा	९.९.११
कंसाल	१.१५.७; ४.८.७, ५.६.८
करड	५.६.७; १०.१९.३
कलवेणु-मधुरवंशी	४.८.६
काहल	१.१५.९
किरिरि	५.६.११

कुंद	५.६.१२
घंटा	५.६.९
मल्लरी	१०.१९.४
टिबिल	१०.१९.३
डमल	५.६.९; ७.३.१
डक्का	४.५.१२; ५.६.१०

तंति-तन्त्री	४.१५.३	पटुपटह-पटुपटह	४.५.५.६.७
तरड	१.१५.७	रंज-रंजा	५.६.१०
थगदुग	५.६.११	संख-संख	१.१५.९
थिररि	५.६.१३	खाल	४.५.७
दडिडंबर	"	हुडुका	४.२.७.५.६.१०

## वृक्ष-वनस्पति

अंकोल-मुष्प	५.१०.९	गणियार-गणिकार	५.८.११
अंकोल-वृक्ष	५.८.८	गुंजा-गुञ्जा, हिं चौटली	५.८.१०
अंजण-वृक्ष	५.८.७	गोबूम-गोबूम-गेहूँ	३.८.२९
अकल-चसुविमीतक या बहेड़ा	५.८.३४	घम्मण-	५.८.६
अळजुण-अर्जुन	५.८.३१	घव-	५.८.६
अंब-आम्र	४.२१.२	घुसिण-केसर	२.९.९;११.१३.९
अल्लय-आम्रक, अदरक	७.१.२	घोदि-	५.८.९
अल्लहज-आम्र वणका, गीले चने	३.१२.१५	चंदण-चन्दन	५.८.३३
असोय-अशोक	१.१७.१२;४.१७.४	चार-चार, म्रियाल	५.८.३३;४.२१.३
अहिमार	५.८.६	चिरहिल्ल	५.८.८
आसत्ताम-अश्वत्थ, पीपल	५.८.३२	जंबुहा-जम्बू	४.२१.२
इंदीवर-इन्दीवर, कमल	१.७.७	जंबुहल-जम्बूफल, हिं जामुन	४.८.२३
जंवर-जडुम्बर	५.८.१३	जंबीर-नीबू ( वृक्ष )	४.१६.३
कटिवेरी-कंटीली बेरी	५.८.६	टिबर	५.८.९
कंबोह-नीलकमल समूह	५.९.७	ताल	४.१६.३
कणवीर-हिं कनेर	४.१६.५	तिरिगिच्छ	५.८.७
कणियार-कणिकार-कनेर	५.८.११	थलकमलिण-स्थलकमलिनी	१.८.४
कर्मव-कवम्ब	४.१६.४;४.२१.३;५.१०.१३	दक्ख-द्राक्षा, अंगूरफल	१.७.४
करवंद } हिं करींदा	४.१६.२;५.८.१२	दक्ख-द्राक्षा ( वृक्ष )	१.११.११;४.१६.३
करवंदि }		दालिम-दाड़िम	४.२१.३
करीर-करील ( झाड़ी )	१०.७.३	दुब्बा-दुर्वा, घास	७.१२.५
करीरायण-करीर + रायण-राजन, सं राजादनी		देवदास-	४.२१.३
वृक्ष ४.१६.५		धामड-धातकी, घतूरा	१०.३.३
कलमसालि-कलमशालि, धान्य-विशेष	१९.१	घायई-घातकी	५.८.८
कुंद-पुष्प वृक्ष	४.११.१४;४.२१.३	नमोह-न्यग्रोध ( वट )	२.१२.८
कुडय-कुटज	५.८.११	नालियर-नालिकेर, नारियल ( वृक्ष )	२.१८.१०
कुरवज-कुरवक	४.१७.२	निघण-	५.८.९
कुवल्लय-नील कमल	८.२.१६	निव-निम्ब, नीम	५.८.१३;४.२१.२
केलि-कदली	८.६.१२	पंकज-पङ्कज, कमल	४.२१.८
खइर-खदिर, खैर	५.८.६	पहुल-पाटल, गुलाब पुष्प	८.१५.४

पाटल-पाटल, गुलाब	४.५.१३	वणफल-वणफल-या कपासफल, कपासका फूल	१.९.४
पलाश-पलाश	५.८.३४	वल्गरी-लता	८.६.१७
फोफल-भूगफल, सुपारी	१.८.८	विडंग-	३.२.६
मल्लायई-मल्लायकी वृक्ष	५.८.८	वेइल्ल-विचकिल्ल, पुष्पलता	३.१२.१२, ४.१६.४
मंदार-	४.२१.३	वोरीहल-वेरीफल, वेर	८.१४.१३
मंदार-	४.१६.२	सज्ज-सर्ज	५.८.१०
मचकुंद-मुचकुन्द	४.१६.२	सण-घान्य विशेषके पीपे	१.९.५
मल्लि-	४.२१.२; ५.८.८	समी-शमी छोकार	५.१८.१०
महु-मधु-मधूक, महुया ( वृक्ष )	१०.७.२	सरल	३.१.१७, ५.१०.२०
मार-	२.८.१२	सरसव-सर्वप, सरसो	७.२.९
मालह-मालती लता	३.१२.१०, ४.१३.११	सल्लई-शल्यकी	४.१६.४, ४.२१.१
माहुल्लिग-मातुल्लिग	४.२१.३	सार	१.८.३
मिरियविल्लि-मिर्च वेल	१.८.६	साल-शाख	४.२१.१
मुणाल-मुणाल	४.१४.१७	सालि-शालि (घान्य)	५.९.६, ९.४.११, ११.११.१
रसदण-रक्तचन्दन	४.११.४	शालिखेत्र ४.६.३, ९.४.९	
रक्तासोय-रक्ताशंक	८.४.६	सिसमी-शीशम	५.८.१०
रावण-विशेषे क्षीपक्षि वृक्ष	५.८.७	सिरसिय-सरसिल-कमल	८.११.४
संद-	४.२१.३	सिरिस-शिरीष	५.८.१०
सद्वल-सद्रास	४.१६.३	सेवसि	५.८.१०
लवलि-लवली, लवंग ( वृक्ष )	४.१६.३	सोहालिया-शेफालिका	५.८.१०
वधूक-वधूक पुष्प	१०.१८.१४	हिणुणी	५.८.९
वधूय-	१.३.१३		

### व्यक्तिगत-नाम

अवादेवय-अंवादेवी	१.५.६	बाहुंल-बासण्डल-इन्द्र	२.४.७
अकल-अक, रावणपुत्र	५.८.३४	उवहिचंद-उदधिवन्द, सागरवन्द	३.५.१३
अज्जुवसु-आर्यवसु (ब्राह्मण)	२.५.२	कंचाहणि-कात्यायनी-चामुण्डादेवी	५.८.३५, कंचा-
अज्जुण-अजुन (पाटव)	५.८.३१	यणी १०.२५.२	
अमरेंद-अमरेंद्र, देवेन्द्र	४.१.५	कणयसिरि-कनकश्री-श्रेष्ठिकन्या (जंबूद्वामीकी एक	
अरुहास-अरुहास(श्रेष्ठी)	४.१.७, ४.३.१०, ८.५.२,	पत्नी) ४.१२.४, ९.६.१	
९.१४.२; १०.२१.३		कामधेणु-कामधेनु	४.१८.६
अरुणाह-अरुहनाथ (तीर्थकर)	३.१३.७	कामलय-कामलता (विद्या)	३.१४.२१; ९.१२.१४
अहमिद-अहमिन्द्र	१०.२४.१२	केसवि-केशव, कृष्ण	४.४.४
आह्चवदंशणा-आदित्यदर्शना ( विद्युन्माली देवकी		गयणगइ-गयनगति विद्याधर	५.११.९
एक देवी )	३.१४.१	गयणगमण-गयनागमन, गयनगति विद्याधर	६.१०.५
अलोहणिविज-अवलोकिते विद्या	५.२.१०	गिरितयण-गिरितनया, पार्वती	५.९.१४
आसरयाम-अश्वत्थामा (द्रोणाचार्यपुत्र)	५.८.३२	गुरु-द्रोणाचार्य	५.८.३२



गोगी-गौरी, पार्वती	४.१८.१२
चंद्राह-चन्द्रनखा (रावणकी बहिन)	५.८.३३
छत्रय-छत्रक (नामक) जुबारी	४.२.१०
जंबूस्वामि-जम्बूस्वामी	४.३.११; ४.४.१;
० ८ १६ ज्ञादि	
जया-मेघेवर, एक पौराणिक चक्रवर्ती	३.१.११;
५.११.१७	
जयादेवी-वीरकविकी चौथी पत्नी	प्रश्न० पं० १६
जमद्-वीरकविका तीसरा अनुज	प्रश्न० पं० १४
जसनास-यशनाम-यश नामका पण्डित	पं० प्रश्न० २१
जसमद्-यशोमति, सूरसेन श्रेष्ठिकी पत्नी	३.१०.१३
जयमद्-जयमद्रा-सूरसेन श्रेष्ठिकी प्रथम पत्नी	३.१०.१३
जसोहणा-यशोधना रानी	३.३.२
जालामुह-ज्वालामुख (बैताल)	७ ६.८
जिणमद्-जिनमती, जंबूस्वामीकी माता	४.७.२
जिणयास-जिनदास श्रेष्ठि, जंबू स्वामीके स्वर्गीय चाचा	४.२.५
जिणवद्-जिनवती-वीरकविकी पहली पत्नी, प्रश्न० पं० १५	
जिणवद्नाह-जिनपती नाय-वीर कवि	१.७.१
जिणसेन-जिनसेन-अरहदास श्रेष्ठिका मतीदा	१०.२१.३
जित्तसिरि-जित्थी-श्रेष्ठिकन्या जंबूस्वामीकी एक पत्नी	८.९.११
तटिमास-तटिम्बाली = विद्युम्बाली देव	४.७.२
तप्परादेवय-नर्पणदेवता	४.१७.१३
तिनयण-तिनयन-महादेव	१.११.८; ४ ३६
तियवल-त्र्यल, महादेव	७.४.१३
वहमुह-दगमुस, रावण	२.१२ १
दिह-पूरी-हट प्रहारी नामक नौक	१०.१२ १
दुजोहण-दुर्घोषण	५.१३.७
दुम्मरिसण-दुर्म्मपण नामक द्विज, नागवसुके पिता	२.११.१
देवत-देवदत्त-महाकविके पिता	१.६.४
देवत ,, ,,	१.६ ४
देवोत्तरनाम-नवदेव	८ २.९
दोण-द्रीण (आचार्य)	८ ३.९
घाहट घदग-घाहट वर्गवंग	१.५ २

घणय-घनद-कुवेर	१.१७ ३
घणयत्त-घनदत्तश्रेष्ठि जंबूस्वामीके पितामह	४.१२.६
घणहट-(सं०) घनदत्त नामक रूपक	९ ३.२
(काम-)	वसुधर-घनुर्वर, कामदेव ३.१०.१४, ८ ५.७
घरिणि-घारिणी-शूरसेन श्रेष्ठिकी तीसरी पत्नी	३ १०.१३
नउल-नकुल (पाण्डव)	५.८.३१
नमि-ऋषभ तीर्थकरके एक पौत्र	१.१ ११
नहग-नभोगति-गगनगति विद्याधर	७.७.४
नायवसू-नागवसू-भवदेवकी ग्राहणी पत्नी	२ ११ २
णाहेय-नाभेय-ऋषभ तीर्थकर	३.१.११
नेमिचंद-नेमिचन्द्र, वीरकविकी प्रथम पत्नीने उत्पन्न पुत्र	प्रश्न० पं० १८
पईव-प्रदीप, पतञ्जलिके व्याकरण महाभाष्य पर कैपट कृत टीका	१.४.२
पठमसिरि-पद्यश्री श्रेष्ठिकन्या जम्बूस्वामीकी एक पत्नी	४.१२.२
पठमावद्-पद्यावती पद्यश्रीकी माता	४.१२.२
पंकयसिरि-पङ्कजश्री, पद्यश्री, जम्बूस्वामीकी एक पत्नी	९.२.३
पंचबाण-पञ्चबाण, कामदेव	४.१५.४
पडवनाह-पाण्डवनाथ. युधिष्ठिर	१ ७ ३
पटय-पार्य, अर्जुन	८.२.९
पुक्करद-पुक्करार्द्ध पुक्करद्वीप	११.११.१०
पुक्कयत्त-पुप्पवन्त (बप०) महाकवि	५.१.२
पोमावद्-पद्यावती वीरकविकी दूसरी पत्नी	प्रश्न० सं० १४
वलएव-वलदेव, बलराम, रामचन्द्र प्रभृति ती पीगा-जिक महापुरुष	४.४.४
भम्मुट्टि-वहामुट्टि एक घृत वट	१० ८.२
भयवत्त-भवदत्त, भवदेवका अग्रज	२.४.७, ८.२.३
भवएल, भवएव-भवदेव वही	२.७ ९; २.१३ ३
	३.४ ७, ८ ३.१६
भवएवामर-भवदेव देवता	३ ३.१८
भवयत्त-भवदत्त (वही)	३.३ ३, ८.१.२१
नागह-(महा) नारद गुह	५.८.३१
नासातय-भापातय संस्कृत प्राकृत ता रंग (१३०)	४.१२.११
मयंग, मियंग-यूयाक, केरळ नृपति	५.७ १३;
	६.१.१२; ९.११.३

महापद्म-महापद्मराजा ३.५.१०; ८.१.२३  
 मारु-मारुति, पवनञ्जय, हनुमानके पिता ३.१२.२  
 मालइलय-मालतीलता, कनकश्रीकी माता ४.१२.३  
 माहव-माधव नामक घूर्त ९.१०.२३  
 रमणसुल-रत्नसुल विद्याधर ५.१.१९; ६.१०.५  
 रमणसिंह-रत्नशिख, रत्नखेवर (वही) ५.३.१;  
 ५.१२.११  
 रविसेण-रविसेण श्रेष्ठ ३.१३.१  
 रङ्गकुल-रघुकुल ८.२.७  
 रङ्गवह-रघुपति, रामचन्द्र ५.१३.२९  
 रामायण १.४.४  
 रावण ५.८.३३, ५.१३.३६  
 रिसह-ऋषभ तीर्थकर ४.४.३  
 भद्रमारि-भद्रमारि, व्यस्तारदेवी १०.२.५  
 रम्यिणि-रमिमणी ८.३.२  
 रुक्मच्छि-रूपलक्ष्मी श्रेष्ठकन्या, जम्बूस्वामीकी  
 एक पत्नी ४.१२.६  
 रुक्सिरि-रूपश्री, रूपलक्ष्मी (वही) ११.५  
 रुक्मण-रुक्मणाङ्क वीरकविके द्वितीय अनुज  
 प्रश० प० १४  
 रुक्मण-रुक्मण, राम अनुज ८.२.७  
 सौलाबह-सौलाबती, वीर कविकी तीसरी पत्नी  
 प्रश० प० १६  
 वरेश-वैवस्वत, यमदेवता ४.२०.१३, ७.१.२२  
 वज्रयत्त-वज्रयन्त राजा ८.१.२३  
 सङ्गमाण-वर्द्धमान महावीर १.२.१.१.३.१०,  
 २.८.१३  
 वगमाल-वगमाला, महापद्मकी रानी ३.३.१५;  
 ३.८.३  
 वरगचरिअ-वराङ्कचरित, १.५.२  
 वासुपुत्र-वासुपुत्र तीर्थकर ३.१३.६; १०.२.४.११  
 विक्रमकाल-विक्रमकाल प्रश० प० २  
 विजुबर-विजुच्चोर ३.१४.४; १.८.११.१५.३  
 विजुप्पह-विजुत्तप्रभा-विजुमाली देवकी एक देवी  
 २३.५, १०.६.४  
 विमि-ऋषभ तीर्थकरके एक पौत्र १.१.११  
 विजुच्चर-विजुच्चोर ३.१४.४, ९.११.१७,  
 १०.१८.१२, ११.१५.३

विषयमाल-विनयमाला, विनयश्रीकी माता ४.१२.५  
 विणयमह-विनयमती, रूपश्रीकी माता ४.१२.६  
 विनयसिरि-विनयश्री जम्बूस्वामीकी एक वधू  
 ४.१२.५  
 विसंघ-विसन्ध नामक राजा, विजुच्चरके पिता  
 ३.१४.६  
 विहीसण-विभीषण, रावणका अनुज ५.८.३४  
 वीर-कवि, जम्बूसामिचरिठके रचयिता १.६.४  
 वीर-महावीर तीर्थकर १.२.१  
 वीरजिरुह-वीरजिनेन्द्र (वही) ४.४.२  
 सलहम्म-सौधर्म कुमार जो पीछे मुनि हो गये तथा  
 भ० महावीरके अंतिम गणधर हुए ।  
 इन्होंने ही जम्बूस्वामीकी वीक्षा की तथा  
 जम्बूस्वामीके द्वारा पूछे जानेपर इन्होंने  
 भगवान् महावीरके मुखसे जैसा सुना था,  
 वैसा समस्त जैन आगमोंको कहा ८.३.११  
 सखिणी-शङ्खिनी नामक कवाडी ९.८.१; १०.१८.१  
 संजुवा-सन्जुवा-वीर कविकी माता १.५.८ प्रश०  
 प० १२  
 सवक-शाक ( इन्द्र ) ५.५.९  
 समुदत्त-समुद्रदत्त श्रेष्ठ ४.१२.१  
 सम्मह-सम्मति, महावीर तीर्थकर १.२.९  
 सम्य-स्वयम्भू, अष्ट० महाकवि १.२.१२  
 सम्यभएव-स्वयम्भुदेव ( वही ) ५.१.१  
 सरसह-सरस्वती देवी १४.७, सरस्ई ३.१.४  
 सहसवस-सहस्राक्ष, इन्द्र १.१.५  
 सायरचद-सागरचन्द्र राजकुमार ३.६.४; सायर-  
 ससि - सागरचन्द्र ८.१.२४  
 सायरदत्त-सागरदत्त श्रेष्ठ ८.४.४  
 सिरिसेण-श्रीसेना, विसन्धराजाकी रानी ३.१४.८  
 सिब-शिव, एक घूर्त ९.१०.२३; १०.१८.३  
 सिबएवि-शिवदेवी, नेमितीर्थकरकी माता ९.१४.७  
 सिबकुमार-शिवकुमार, राजपुत्र ८.२.१४ कुमार  
 ३.४.४; ३.५.११  
 सिंहहि-शिशुषवी-अर्जुनका वीर सारथी ५.८.३१  
 सीय-सीता-रामपत्नी ३.१२.१५, ५.१३.६  
 सीहल्ल-वीर कविके एक अनुज प्रश० प० १४  
 सुद्वेय-श्रुति + वेद २.५.१  
 सुदसत्य-श्रुतिशास्त्र ९.१६.७



करिवयण-करिवदन, हस्तिमुख, एक हिमालय पर्व-  
तीय जाति, ९.१९.३  
कलिग-कलिग नगर, उड़ीसाकी राजधानी, भुव-  
नेश्वर ९.१९.१४  
कवेरीतट-कावेरी तट, भाषाता (ओकारनाथ) के  
निकट नर्वादाकी उत्तरी छाया, ९.१९.५  
कसमीर-काश्मीर ९.१९.१०  
कामरूप-कामरूप, आसाम ९.१९.१५  
किक्काण-केकय देश, पंजाबमें सतलज और व्यासके  
बीचका प्रदेश । ९.१९.११  
किक्किथ-किक्किथा धारवाडमें तुंगभद्रा नदीके  
दक्षिणी तटपर अनगंडीके पास छोटी बस्ती,  
इसे अनगंडी भी कहते हैं, ९.१९.६  
कीर-कीर नगर, पंजाबमें वैजनाथ नामक तीर्थ,  
कोट कागडासे तीस मील पूर्व ९.१९.६  
कुंतल-कुंतल देश, सीमाएँ उत्तरमें नर्वादा, दक्षिणमें  
तुंगभद्रा, पश्चिममें अरब सागर, पूर्वमें गोदावरी  
और पूर्वीघाट ९.१९.३  
कुष-कुषदेश, हस्तिनापुर, ९.१९.१३  
कुषविसय-कुषविषय, वही, १०.१८.६  
कुरल-कुरल पर्वत ५.१०.११  
केरल-केरलराज्य ९.१९.१  
केरलनयिरि-केरलनगरी ५.५.१७  
केरलपुरि-केरलपुरी वही ५.२.६  
कोकण-कोकण देश, पश्चिमीघाट और अरबसागरके  
बीचका संपूर्ण प्रदेश, प्राचीन परगुराम क्षेत्र  
९.१९.५  
कोग-कुर्ग, कोयटूर, सलेम और तिमनेवल्लो तथा  
ट्रावनकोर जिलोंका कुछ भाग ९.१९.१४  
कोसल-(दक्षिण) कोसल, गोडवाना, आधुनिक महा-  
कोसल ९.१९.१  
खस-खसदेश, काश्मीरके दक्षिणका प्रदेश, दक्षिणपूर्वमें  
कास्तवार नदी, पश्चिममें विवस्ता (व्यास)  
९.१९.१०  
खोरमहण्य-खोर महार्णव, खोर समुद्र, खीरोद  
(पौराणिक) ६.१.१३ (द्रष्टव्य वृ० स० १४.६)  
खीरोदहि-खीरोदहि-वही ४.१०.६  
गज-गोडदेश ९.१९.१३ उत्तर कोसल, राजधानी  
आवस्ती, आधुनिक गोडा (स० प्र०) प्राचीन

कालमें भारतका एक विशाल भूभाग गौड़ कह-  
लाता था । पंजाबको उत्तर गौड़, गोडवाना  
(महाकोसल) को पश्चिम गौड़, कावेरीके तट-  
पर एक दक्षिण गौड़, एवं संपूर्ण बगालको पूर्व  
गौड़ कहा जाता था । अगदेशके दक्षिणमें दक्षिण  
वंगाल, जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति रही, उसे  
भी गौड़ देश कहते थे । स० प्र० में गोडा  
स्थानका भी नाम (गोनर्द) गौड़ था और  
उज्जयिनी तथा विदिशाके बीच एक कत्वा भी  
गौड़ नामसे जाना जाता था । (विशेष द्रष्टव्य :  
नं० ला० डे प्रा० म० भा० भी० कोश)  
गग-गगानदी ९.१९.५  
गंगवाडी-गंगवाडी नगरी (आंध्र) गंगराजाओंकी  
राजधानी ९.१९.२  
गंगोवहि-गंगोदधि, गंगासागर, सागर संगम,  
९.१९.१६  
गुलखेड-गुलखेड १.५.१; मालवानमें प्राचीन सिंधुवर्षी  
नगरीके पास वीर कदिका जन्म पाँव ।  
गुजराता-गुर्जरत्रा प्रदेश, गुजरात खानदेश और  
मालवाका एक बड़ा भाग गुर्जरत्रा कहलाता था ।  
वीरे-वीरे वही गुजरात बन गया । ९.१९.९  
गोल्ल (?) सम्भवतः गौड़देश ९.१९.१४, गंगदेशका  
दक्षिण भाग, अथवा दक्षिण बगालकी राजधानी  
ताम्रलिप्ति (तमलुक) ।  
गोवयण-गोवदन, हिमालयीन गोमुखजाति ९.१९.१२;  
देखिये : वृ० स० १०.२३; ६८.१०३  
चंपानयिरि-चंपानगरी, दक्षिण बिहारमें भागलपुरसे  
चार मील पश्चिम ३.१०.११  
चंपापुर-चंपापुर (वही, १०.२४.११)  
चित्तउड-चित्तोड ९.१९.२  
चीण-कोचीन पत्तन (केरल राज्य) ९.१९.९  
चेउल्ल-चेउल्ल (?)  
चोड-चोल, द्रविड देश ९.१९.२, उत्तरमें पैन्नार या  
दक्षिण पिनाकिनी नदी, पश्चिममें तजोरको  
लेकर कुर्ग अर्थात् वेल्डोरसे पुदोकोट्टई तक  
छोहारदीव-छोहारद्वीप (?) ९.१६.६  
जसण-यमुना नदी ९.१.५  
जंबूदीव-जम्बूद्वीप, एक विशाल जैन पौराणिक क्षेत्र,  
हिंदू पुराणोंके अनुसार भारतवर्ष ३.२.३;  
६.१.१३



मिलाकर बंगालके पाँच विभाग थे। पुण्ड्र-उत्तरी बंगाल, समुद्रतट पूर्व बंगाल, कर्ण सुवर्ण-पश्चिम बंगाल, ताम्रलिल-दक्षिण बंगाल और कामरूप-बासाम। कामरूपको छोड़कर पश्चात् कालमें बंगालके निम्न चार विभाग हुए—बरेन्द्र और वंग गंगाके उत्तरमें; तथा राठ और बागडी गंगाके दक्षिणमें; बरेन्द्र और वंग ब्रह्मपुत्र नदीसे विभाजित थे, तथा राठ और बागडीके बीच गंगाकी एक शाखा जालिंगी नदी बहती थी। बरेन्द्र अर्थात् पुण्ड्र, महानंदा और करो-तोया नदियोंके बीच। वंग-पूर्व बंगाल। राठ-भागीरथी (गंगा) के पश्चिममें कर्णसुवर्ण। और बागडी अर्थात् दक्षिण बंगाल १.१९ १४;

बंभोत्तर—ब्रह्मोत्तर स्वर्ण ३ १०.१; ८.२.१३

बव्वर—बर्बरजातिका देश, बर्बर देश, बार्बरिका द्वीप जो सिंधु नदीके डेल्टाके एक ओर फैला था; और सिंधु नदीके मुहानेपर बर्बर नामक एक बड़ा बंदरगाह तथा व्यापारी नगर भी था।

बालुप्पह—बालु (का) भन्ना, (एक नरक भूमि) १०.१० ६

बालुयासायर—बालुका सागर, संभवतः अरबसागर १.१९ १२

भद्वरंग—भद्वरंग १.१९.३, प्राचीन भद्रावती (भद्रा) नदीके आसपासका प्रदेश, चाँदा (जिला सं० प्र०) से अठारह मील उत्तर-पश्चिममें भंडक नामक गाँव १ १९.३

भरहलेत—भरतखेत, भारत ४.३.१५, ११.११.९

भयच्छ—भुगुच्छ, भडौच १.१९.५

भारह—भारत देश १.६.१७;

भारत—महामागतकी युद्धभूमि ८.३.८, "रणभूमि-वही ८.८.३१

भिल्लमाल—आधुनिक भीनमाल, प्राचीन श्रीमाल, आजू पर्वतसे पचास मील पश्चिम १.१९.७

भोयभूमि—भोगभूमि, देवकुल उत्तरकुरुमें पौराणिक भोगभूमिया ११.११.५

भंदर—भंदारगिरि (जिला भागलपुर, द० बिहार)

भगह—भगध देश २.३.१०; ५.८.३८ "विसल-मगध विषय वही, २.४.७ सीमाएँ—गंगाके उत्तरमें बनारससे लगाकर मुंगेर तक, दक्षिणमें सिंहभूम जिला संपूर्ण; पश्चिममें सोननदी, और पूर्वमें बंगाल

मधुसोत्तरगिरि—मानुपोत्तर पर्वत (पौराणिक) ११.११.११

मज्जदेश—प्राचीन मध्यदेश १ १९.१४; सीमाएँ—पश्चिममें कुरुक्षेत्रमें सरस्वती, पूर्वमें इलाहाबाद, उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें विन्ध्य एवं पारियात्र [ विशेष द्रष्टव्य : नंदलाल डे प्रा० और म० का० भार० भौगो० नामकोश तथा B. C. Law-Hist Geog of Ancient, India 'मध्यप्रदेश' ]

मलयाचल—मलयगिरि, पश्चिम घाटका दक्षिणपर्वत ५ २.१२; ९.१९.१

महरट्ट—महाराष्ट्रदेश, ऊपरी गोदावरी और कृष्णा नदीके बीचका प्रदेश, जो किसी समय 'दक्षिण' कहलाता था १ १९.३

मालव—मालवदेश इसकी प्राचीन राजधानी अवन्ती या उज्जयिनी रही, और भोजके समय धारा। इसकी अवन्ती देश भी कहते थे। १ ६ १; ९ १९ ८

मालविणी—मालव स्त्री ४ १५.१२

मेच्छदेश—मेच्छ देश सरस्वतीके उत्तर पश्चिममें कोई देश (?) १ १९.११

मेरु—मुमेर पर्वत (पौराणिक), ऐतिहासिक दृष्टिसे गढ़वालमें खड्गिमालय १.१.५, ११.११.२

मेवाड़—मेवाड़ प्रदेश (राजपूताना) १.१९.८

मेहवणपत्तन—मेघवनपत्तन (?) प्रश्न० गाथा ७

रमणप्पह—रत्नभन्ना, एक नरक भूमि, ११.१०.४

राठ—राठदेश, गंगाके पश्चिममें बंगालके तमलुक, मिदनापुर, हुगली और बर्दवान जिले (देखें 'वंग') १ १९.१४

रायगिह—राजगृह, आधुनिक राजगिरि (दक्षिण-बिहार) ३.१४.२१; ४.५.५

रेवानई—रेवा, नर्मदा नदी ५.१.५; ५.१०.२४

लंकानगरि—लंकानगरी पालि साहित्यके प्रमाणानुसार आधुनिक सीलोनको लंका कहा जाता है। परंतु कुछ कारण हैं जिनसे प्राचीन लंका सीलोनसे भिन्न प्रतीत होती है। आधुनिक विद्वानोंमें डॉ० राजवली पाण्डेय आदिका मत भी सीलोनको लंका माननेके विरुद्ध है। (विशेष द्रष्टव्य : न० ल० डे : प्रा० म० भा० भौगो० नामकोश) ५.८ ३३, लंजिया—लंजिकादेश, संभवतः सागुलिनी नदीका

प्रदेश गोदावरी और महानदीके बीच लागुनिया, लागुलिनी ( मा०पु० ) लांगली ( महाभा० ) नागलंदी अथवा नागवती नदी बहती है जो कलहंडीसे निकलकर गजम जिलेमें होती हुई मद्रासमें चिकाकोलके बीच खाडीमें गिरती है चिकाकोल विजयानगरम् और कर्लिगपत्तम्के बीच स्थित है । ९.१९.१

साब्देश-साटदेश ९.१९.८, निम्न तासिके बीचमें खानदेश सहित दक्षिण गुजरात ।

लोहपुर-लोहपुर, लोहावर, लवपुर, आधुनिक लाहौर ९.१९.११

वइतरणी-वैतरणी नरक नदी ११.४.३; वयतरणी-वही, २.१३.१३

वइदम्-वैदर्भ, विदर्भ ९.१९.३; बरार, खानदेश, निजामके प्रदेशका कुछ भाग और म०प्र०का कुछ भाग । प्राचीन समयमें इसमें भोपाल और विदिनाके राज्य सम्मिलित थे, और इसकी प्राचीन राजधानी विदर्भनगर (बीदर) थी ।

वइर-वज्रदेश कलकुड या गोलकुण्डा, हैदराबादसे सात मील दक्षिणमें, जो अपने हीरोके लिए प्रसिद्ध रहा है । ९.१९.५

वइरायर-वजाकर वैडूर्य पर्वत या विध्यपाद अर्थात् सतपुड़ा पर्वत श्रेणी, जो अपने हीरो-पन्नोकी खानोके लिए प्रसिद्ध है । १.२.१०; ९.१९.३

वज्जर-वज्र, हैमवन, हैमकूट या कैलास पर्वत, जो कुबेरका निवास समझा जाता है ९.१९.११

वडुहर-वडहर, काशीके पास एक गांव ९.१९.१६  
वडुमाण-वर्द्धमान प्राचीन अगधमें एक गांव २.४.१२, ८.२.८

वणष्ट-आधुनिक चुनार ( उ० प्र० ) ९.१९.१६  
बराड-बरार प्रांत ९.१९.४; देखें 'वइदम्'  
वरंदीसिरी-वरेंद्रश्री, वीरेंद्र, उत्तरी वगाल, ( देखें : 'वंग' ) ९.१९.१४

वाणरमुह-वानरमुख, एक उत्तर पर्वतीय जाति ९.१९.१३ ( देखिए वृ० सं० ६८.१०३ )

वाणारसी-वाराणसी, वनारस ९.१९.१६

वाराणसि-वही, १०.१५.१

वालम-वल्लभी ९.१९.६; लम्भातकी खाडीमें आधुनिक वल या वल्ले वन्दरगाह, भावनगर ( गुजरात ) से १८ मील उत्तर-पश्चिम ।

विठल-विपुल पर्वत १.१४.१०; °इरि-गिरि, वही १०.२३.१२, °गिरि १.१६.८

विज्झ-विध्यपर्वत ५.८.१, ९.१९.४; १०.१२.१; °इरि-गिरि ४.१५.९; °एस-वध्यदेश ५.८.२८, °इड-विध्याटवी ५.८.३०

विजय-विजय नामक एक स्वर्ग

विजयट्ट-विजयार्द्ध पर्वत ( पौराणिक ) ११.११.८

विमल गिरि-विमलाचल, विपुलाचल २०.२०.९

वीथलोया-वीतलोका नगरी ( पौराणिक ) ३.३.६

सजाण-संजण ९.१९.४, बंबईके थाना जिलेमें सजय नामक एक पुराना गांव; जरवोका सिंदन, महाभारतके अनुसार संजयंती नगरी । इसे शाहपुर भी कहा जाता था और एक नाम साहजण भी था ।

सबाहण-संवाहन नगर ९.१९.४, भगवमें गंगाके तटपर कोई प्राचीन नगर ।

सक्करपह-शर्कराप्रभा ( एक नरक पृष्ठी ), ११.१०.५

सज्जगिरि-सह्यागिरि, सह्याद्रि पश्चिमी घाट पर्वत श्रेणी, कावेरी नदीके उत्तरकी श्रेणियां ४.१५.२० ९.१९.३

सत्तगोयावरी-ससगोदावरी भीम, गोदावरीके सात मुहाने और गोदावरी जिलेमें सोलंगीपुर नामक तीर्थ ९.१९.१६

सरसड-सरस्वती नदी, जो हिमालयकी शैवालिक नामक पहाड़ी नदीसे निकलकर कई स्थानीपर लुप्त और फिर प्रगट होती हुई घग्घर या घाघरा नदीमें मिल जाती है, जो सरस्वतीका ही निचला भाग है, ९.१९.११

सम्बत्थसिद्धि-सर्वार्थसिद्धि, सर्वोच्च स्वर्ग ११.१२.२

सख्वायर-स्वस्वापर ( विशेषण ), कामरूप ९.१९.११

सहस्रसिग-सहस्रशृंग पर्वत, सभवतः सह्याद्रि (?) ५.२.८

सायंभरी-साकंभरीतीर्थ, अजमेर ( उ० प्र० ) के पास सांभर ९.१९.९

सिछम्-सिंहल, सोलोन ९.१९.१

सिधु-सिधु नदी, उत्तर भारतकी सबसे बड़ी व प्रधान नदी, ९.१९.११

सिधुतीर-सिधुतट, सिधुनदी, मालवमें कालीसिधु जिसे दक्षिण सिधु भी कहा जाता है, ९.१५.५

सिंधुवरिसी-सिंधुवर्षी नगरी मालवामें सिंधुनदीके तटपर कोई प्राचीन नगर १.६.१

सिरोपव्वत-श्रीपर्वत, कर्नूलके उत्तर-पश्चिममें कृष्णा-नदीके दक्षिणमें स्थित श्रीशैल, ९.१९.२

सुरसरि-सुरसरित् गंगा, ४.१० ४; १०.१७.९

सोपारय-सोपारक या सुपरक पत्तन, ९.१९.५। इसे पहले सुरत समझा जाता था, जो ठीक नहीं। धाना जिलेमें बंबईके सैतीस मील उत्तरमें सुपर या सोपर नामक स्थान है, जहाँ अबोक्रा का एक शिलालेख भी है। यह अपरात या उत्तर कोकणकी राजधानी थी।

सोरहु-सौराष्ट्र, काठियावाड़ (गुजरात) ९.१९.७

सोवण्णदोणी-सुवर्ण द्वीपी ९.१९.७, संभवतः सुवर्ण-

गिरि बंबईके धाना जिलेके उत्तरमें वाडके पश्चिममें, खानदेशमें वाघली नामक स्थानपर स्थित पर्वत।

हंसदीव-हंसद्वीप, लंकानगरीके समीप एक द्वीप ५.३.१; ९.१९.६; (ब्रह्मव्यः विमलसूरि प० च० ५४.४५ आदि)

हथिणाउर-हस्तिनापुर, प्राचीन कुरुक्षेत्रकी राजधानी (जिला मेरठ, ड० प्र०) ३.१४.६

हम्मीर-हम्मीर देश, राजपूतानेमें रणथंभीर ९.१९.१०  
हयवयण-हरिवदन, व्याघ्रमुख ज्ञाति ९.१९.१३;  
(ब्रह्मव्य वृ० सं० १४.५)

हिमवन्त-हिमवान् पर्वत ११.११.४

हिमालय-हिमालय पर्वत ११.११.८





# BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

## MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

*General Editors :*

Dr. H. L. JAIN, Jabalpur : Dr. A. N. UPADHYE, Kolhapur.

The Bhāratīya Jñānapīṭha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning. In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions etc. and published by the Jñānapīṭha.

### **Mahābandha or the Mahādhavalā :**

This is the 6th Khaṇḍa of the great Siddhānta work *Saṅkhaṇḍāgama* of Bhūtabali : The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta. The entire work is published in 7 volumes. The Prākṛit Text which is based on a single Ms. is edited along with the Hindī Translation. Vol I is edited by Pt. S. C. DIWAKAR and Vols. 2 to 7 by Pt. PHOOLACHANDRA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha Nos. 1, 4 to 9. Super Royal Vol I : pp. 20 + 80 + 350 ; Vol. II : pp. 4 + 40 + 440 ; Vol. III : pp. 10 + 496 ; Vol. IV : pp. 16 + 428 ; Vol. V : pp. 4 + 460 ; Vol VI : pp. 22 + 370 ; Vol VII : pp. 8 + 320. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1947 to 1958. Price Rs. 11/- for each vol.

### **Karalakkhana :**

This is a small Prākṛit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās. The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof. P. K. MODI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No. 2. Third edition, Crown pp. 48 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price 75 P.

### **Madanaparajaya :**

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Samvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid. Edited critically by Pt. RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation etc., Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 1. Second edition. Super Royal pp. 14 + 58 + 144. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price Rs 8/-.

### **Kannada Prāntīya Tādapatriya Grantha-sūci :**

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss. in the Jaina Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor etc. Edited with a Hindī Introduction etc. by Pt. K. BHUJABALI

SHASTRI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 2 Super Royal pp. 32 + 324 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1948. Price Rs. 13/-.

### Tattvārtha-vṛtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasaṅgāra (c. 16th century Vikramā Samvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism. The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough. Edited by Pts. MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof. MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindi Introduction on the exposition of the important topics of Jainism. The edition contains a Hindi Translation and important Appendices of referential value. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 4. Super Royal pp. 108 + 518 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949, Price Rs. 16/-

### Ratna-Manjūsā with Bhāṣya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody. Edited with a critical Introduction and Notes by Prof. H D VELANKAR. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 5. Super Royal pp. 8 + 4 + 72. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949, Price Rs. 2/-.

### Nyāyavinīścaya-vivarana :

The Nyāyavinīścaya of Akalaṅka (about 8th century A. D.) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c. 11th century A. D.) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular. Edited with Appendices etc. by Pt. MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 3 and 12. Super Royal Vol I : pp. 68 + 516 ; Vol II : pp. 66 + 168 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949 and 1954. Price Rs. 15/- each.

### Kevalajñāna-praśna-cūdāmani

A treatise on astrology etc. Edited with Hindi Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc. by Pt. NEMICHANDRA JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 7 Super Royal pp. 16 + 128. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 4/-.

### Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhananjaya (c. 8th century A. D.) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarkīrti (c. 15th century A. D.). The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes. Edited by Pt. SHANBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr. P. L. VANDYA

and a Hindi Prastāvanā by Pt. MAHENDRACHANDRA. The Appendix gives Anelārtha nghanṭu and Elārṣarī-kośa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 6. Super Royal pp. 16 + 140. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 3.50 P.

### **Samayasāra :**

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism. Prākṛit Text, Sanskrit Chāyā. Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof. A. CHAKRAVARTI. The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all-important topic of the Self. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, English Grantha No. 1 Super Royal pp. 10 + 162 + 344. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 8/-

### **Jātakatthakathā :**

This is the first Devanāgarī edition of the Pālī Jātaka Tales which are a store-house of information on the cultural and social aspects of ancient India. Edited by Bhikkhu DEERUAPAKSHITA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Pālī Granthamālā No. 1, Vol. 1. Super Royal pp. 16 + 384. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1951. Price Rs. 9/-.

### **Kural or Thirukkural :**

An ancient Tamil Poem of Thevar. It preaches the principles of Truth and Non-violence. The Tamil Text and the commentary of Kavīrārpaṇar. Edited by Prof. A. CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English. Bhāratiya Jñānapīṭha Tamil Series No. 1. Demy pp. 8 + 36 + 440. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1951. Price Rs. 5/-.

### **Mahāpurāṇa :**

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Guṇabhadra, full of encyclopaedic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jain life in general and composed in a literary style. Jinasena (8th A. D.) is an outstanding scholar, poet and teacher ; and he occupies a unique place in Sanskrit Literature. This work was completed by his pupil Guṇabhadra. Critically edited with Hindi Translation, Introduction, Verse Index etc. by Pt. PANDIT JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 8, 9 and 14. Super Royal : Second edition, Vol. I : pp. 8 + 68 + 746, Vol. II : pp. 8 + 556 ; Vol. III : pp. 21 + 706 ; Bhāratiya Jñānapīṭha Ka-shi. 1951 to 1954. Price Rs. 10/- each.

### **Vasunandī Śrāvaka-cāra :**

A Prākṛit Text of Vasunandī (c. Sarvāt first half of 13th century), in 548 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindi

Translation by Pt. HIRALAL JAIN. The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvākācāra. There is a table of contents. There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratisthāvidhāna, Sallekhanā and Vratas. There are 2 Indices giving the Prākṛit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No. 3. Super Royal pp. 230. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1952. Price Rs 5/-

### **Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam**

This is an important commentary composed by the great logician Akalaṅka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti. The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss by Prof. MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 10 and 20. Super Royal Vol. I : pp 16 + 430 ; Vol. II : pp. 18 + 436. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1953 and 1957. Price Rs 12/- for each Vol

### **Jinasahasranāma :**

It has the Svopajña commentary of Paṇḍita Āśādhara (V. S 13th century) In this edition brought out by Pt. HIRALAL a number of texts of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given. Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation, Śrutasāgara's commentary of the same is also given here. There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara etc. There are some useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 11. Super Royal pp. 288. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1954. Price Rs. 4/-.

### **Purāṇasara-Saṁgraha :**

This is a Purāṇa in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthaṅkaras and other great persons. The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by Dr G.C. JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 15 and 16. Crown Part I pp. 20 + 198; Part II : pp. 16 + 206. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1954, 1955. Price Rs. 2/- each.

### **Sarvārtha-Siddhī :**

The Sarvārtha-Siddhī of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Grhīrapiccha. It is edited here by Pt. PHOOLCHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 13. Double Crown pp. 116 + 506, Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1955. Price Rs. 12/-.

**Jainendra Mahāvṛtti**

This is an exhaustive commentary of Abhayānandī on the *Jainendra Vyākaraṇa*, a Sanskrit Grammar of Devanandī alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D. Edited by Pts. S N. TRIPATHI and M CHATURVEDI. There are a Bhūmikā by Dr. V.S. AGRAWALA, *Devanandīkā Jainendra Vyākaraṇa* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀṆSAKA and some useful Indices at the end. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 17. Super Royal pp. 56 + 506. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1956. Price Rs. 15/-.

**Vratatīthi Nirṇaya**

The Sanskrit Text of Sinhanandī edited with a Hindi Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 19. Crown pp. 80 + 200. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1956. Price Rs. 3/-.

**Pauma-cariū :**

An Apabhrāṃśa work of the great poet Svayambhū ( 677 A. D ). It deals with the story of Rāma. The Apabhrāṃśa text up to 56th Sandhi with Hindi Translation and Introduction of Dr. DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 3 Volumes Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhrāṃśa Grantha Nos 1, 2 & 3. Crown size, Vol. I pp 28 + 333; Vol II : pp. 12 + 377; Vol. III : pp. 6 + 253. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1957, 1958. Price Rs. 3/- for each Vol.

**Jīvaṃdhara-Campū :**

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvaṃdhara and his romantic adventures. It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindi Translation and Prastāvanā. There is a Foreword by Prof. K. K. HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvaṃdhara tale by Drs. A.N. UPADHYE and H. L. JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 18. Super Royal pp. 4 + 24 + 20 + 344. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1958. Price Rs. 8/-.

**Padma-purāṇa :**

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa ( V. S. 734 ) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale. It is edited by Pt. PANNALAL JAIN with Hindi Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindi dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26. Super Royal

Vol. I : pp. 44 + 548 ; Vol. II : pp. 16 + 460 ; Vol. III : pp. 16 + 472.  
Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1958-1959 Price Rs 10/- each

### **Siddhi-viniścaya :**

This work of Akalankadeva with Svopajñavṛtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr. MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship. The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22, 23. Super Royal Vol I. pp. 16 + 174 + 370, Vol II : pp. 8 + 808. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1959. Price Rs 18/- and Rs 12/-.

### **Bhadrabāhu Sambhita :**

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents etc. Edited with a Hindi Translation and occasional Vivecana by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. There is an exhaustive Introduction in Hindi dealing with Jain Jyotisa and the contents, authorship and age of the present work. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 25. Super Royal pp 72 + 416. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1959. Price Rs. 3/-.

### **Pāncasamgraha :**

This is a collective name of 5 Treatises in Prākṛit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gōmmatasāra etc. The Text is edited with a Sanskrit commentary, Prākṛit Vṛtti by Pt. HIRALAL who has added a Hindi Translation as well. A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume. There are a Hindi Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No 10. Super Royal pp. 60 + 804. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1960. Price Rs. 15/-.

### **Mayana-parajaya-carīṭ :**

This Apabhraṃśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindi Translation by Prof Dr. HIRALAL JAIN. It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina. This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindi. The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts. There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṃśa Grantha No 5. Super Royal pp. 88 + 90. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1962. Price Rs. 8/-.

**Harivaṃśa Pūraṇa :**

This is an elaborate Purāṇa by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivaṃśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣṇa and Pāṇḍavas. The text is edited along with the Hindi Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by Pt. PANNALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 27. Super Royal pp. 12 + 16 + 812 + 160. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1962. Price Rs. 16/-.

**Karmaprakṛti :**

A Prākṛit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommatasāra. Edited by Pt. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatīkīrti and Hindi Tikā of Paṇḍita Hemarāja, as well as translation into Hindi with Viśeṣārtha. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛit Grantha No. 11. Super Royal pp. 32 + 160. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1964. Price Rs. 6/-.

**Upāskādhyāyana :**

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri. It deals with the duties of a householder. Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc. by Pt. KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Granth No. 28. Super Royal pp. 116 + 539, Bhāratiya Jñānapīṭha, Kāshī 1964. Price Rs. 12/-.

**Bhojcaritra :**

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavalabha (15th century A. D.) Critically edited by Dr. B. Ch. CHHABRA, Jt. Director General of Archaeology in India and S. SANKARNARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 29. Super Royal pp. 24 + 192. Bhāratiya Jñānapīṭha Kāshī, 1964. Price Rs. 8/-.

**Satyasāsaṇa-parīkṣā :**

A Sanskrit text on Juyogic by Ācārya Vidyānandi critically edited for the first time by Dr. GOKULCHANDRA JAIN. It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy. There is an English companion of the text, by Dr. NATHMAL TATIA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 30. Super Royal pp. 56 + 31 + 62, Bhāratiya Jñānapīṭha, Kāshī, 1964. Price Rs. 5/-.

**Karakanda-carit : :**

An Apabhraṃśa text dealing with the life story of king Karakaṇḍa, famous as



'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature. Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices etc. by Dr. HIRALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṁśa Grantha No. 4 Super Royal pp 64 + 278. Bhāratiya Jñānapīṭha Kashi, 1961 Price Rs. 10/-

### **Sugandha-dasamī-kathā :**

This edition contains Sugandha-dasamīkathā in five languages viz. Apabhraṁśa, Sanskrit, Gujarātī, Marāṭhī and Hindi, critically edited by Dr HIRALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Apabhraṁśa Grantha No. 6. Super Royal pp 20 + 26 + 100 + 16 and 48 Plates. Bhāratiya Jñānapīṭha Publication Varanasi, 1966 Price Rs. 11/-

### **Kalyāṇakalpadruma :**

It is a Stotra in twenty five Sanskrit verses. Edited with Hindi Bhāṣya and Prastāvanā etc. by Pt. JUGALKISHORE MUKHTAR. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 32 Crown pp 76. Bhāratiya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1967 Price Rs 1/50.

### **Jambū sāmī carīu :**

This Apabhraṁśa text of Vīra Kavi deals with the life story of Jambū Swāmī, a historical Jain Ācārya who passed in 463 A. D. The text is critically edited by Dr Vimal Prakash Jain with Hindi translation, exhaustive introduction and indices etc Jñānapīṭha Murtidevī Jaina Granthamālā Apabhraṁśa Grantha No. 7. Super Royal pp. 16 + 152 + 402; Bhāratiya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1968 Price Rs. 15/-.

### **Gadyacintāmani :**

This is an elaborate prose romance by Vādībha Singh Sūri, written in Kāvya style dealing with the story of Jīvandhara and his romantic adventures. The Sanskrit text is edited by Pt Pannalal Jain along with his Sanskrit Commentary, Hindi Translation, Prastāvanā and indices etc Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 31 Super Royal pp. 8 + 10 + 258. Bhāratiya Jñānapīṭha Publication, Varanasi 1968 Price Rs 12/-.

### **Yogasāra Prābhṛta :**

A Sanskrit text of Amitgati Ācārya dealing with Jain Yoga vidyā. Critically edited by Pt. Jugalkishore Mukhtār with Hindi Bhāṣya, Prastāvanā etc. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Grantha No. 33 Super Royal pp. 14 + 236. Bhāratiya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1968. Price Rs 8/-

*For copies please write to :*

**Bharatiya Jnanpitha, 3620/21, Nctiya Subhas Marg, Dwiyogany, Delhi (India)**

